आज का भारत

मेरे पिता
उपेंद्र कृष्ण दत्त की स्मृति को
(जन्म कलकत्ता, भारत 17 अक्तूबर 1857
मृत्यु लेदरहेड, इंगलैंड, 12 मई 1939)
जिन्होंने मुझे राजनीतिक समझ का
पहला पाठ पढ़ाया, भारतीय जनता
और आजादी के लिए संघर्षरत
सारी जनता का प्यार
करना सिखाया

अनुसधान परिषद् की ओर से

भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद के अनेक उद्देश्यो मे एक है शोध की उपलब्धियो को उस पाठकवग तक पहुचाना जो हमसे यह अपेक्षा रखता है कि हम भारतीय भाषाओ मे इतिहास सबधी रचनाए तैयार तथा प्रकाशित करें। अगरेजी भाषा के माध्यम से भारतीय इतिहासविद अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे पहुच सकते ह, नाम और प्रतिष्ठा अर्जित कर सकते है, किंतु भारतीय पाठकवग का यह छोटा अश ही इससे लाभ उठा पाता है। शिक्षण और अनुसधान के माध्यम के रूप मे हिंदी तथा अय भारतीय भाषाओ के प्रयोग की प्रकृति वल पकड रही है। ऐसी स्थिति मे इतिहास की स्तरीय पुस्तको की कमी गभीर रूप से अनुभव की जा रही है। सबसे पहले हम भारतीय इतिहास की ओर ध्यान देना है। अत भा०इ०अ० प० ने कुछ गौरवग्रथो (क्लासिक्स) तथा इतिहास विषयक शोध की निर्दोष पद्धतियो पर आधृत और इतिहास की समकालीन प्रवृत्तियो को प्रतिबिंबित करने वाली कुछ अय पुस्तको का अनुवाद कराने का निश्चय किया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'आज का भारत' मार्क्सवादी इतिहास लेखन का एक मागदशक उदाहरण है। इसमे भारत मे ब्रिटिश उपनिवेशवाद की कायप्रणाली की प्रकृति का विश्लेषण किया गया है तथा यह दिखाया गया है कि इससे भारत किस तरह ब्रिटिश पूजीवाद का कृषि-पिछलग्गू बनकर रह गया और भारतीय राष्ट्रीय आदोलन कितनी बुरी तरह पिछडेपन का शिकार हुआ। इसके साथ ही पुस्तक मे स्वाधीनतासग्राम मे सवहारावग की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। हालांकि 'आज का भारत' प्रकाशित होने के बाद दत्त का अनुसरण करते हुए अनेक पुस्तकें लिखी गई है फिर भी वे किसी भी रूप मे इस पुस्तक से आगे नही बढ पाई ह और यह आज भी अपनी तरह का गौरवग्रथ है।

इस पुस्तक का प्रकाशन पटना यूनिट के प्रयासो का परिणाम है जिसके लिए हम अनुवादक श्री आनदस्वरूप वर्मा, नगेंद्रप्रसाद वर्मा तथा अय सभी सहयोगियो को धयवाद ज्ञापन करते है।

रामशरण शर्मा
अध्यक्ष
भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद

26 जनवरी 1977
नई दिल्ली

अनुक्रम

खण्ड चार

भारतीय जनता का आदोलन

1970 के संस्करण की भूमिका

'आज का भारत' पुस्तक को लिखे लगभग तीस वर्ष और भारत में इसे पहली बार प्रकाशित हुए लगभग पच्चीस वर्ष बीत चुके हैं। बीच के इन वर्षों में भारत को आजादी मिलने के साथ साथ नए घटनाक्रमों का एक पूरा युग गुजर चुका है और नई नई खोजों से ऐसे तमाम मसलों पर और भी रोशनी पड़ी है जिनपर इस पुस्तक में विचार करने का काफी हद तक पहली बार प्रयास किया गया था। इसलिए 'आज का भारत' को महज अपने काल की एक ऐतिहासिक कृति के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए जिसमें मार्क्सवादी दृष्टि से भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास का और आजादी मिलने के समय तक भारतीय जनता के संघर्ष का सर्वेक्षण किया गया है जिसमें राष्ट्रीय आंदोलन और मेहनतकश वर्ग का आंदोलन शामिल है, फिर भी ऐसा लगता है कि इस पुस्तक की मांग आज भी है और इसीलिए 1947 के मूल भारतीय संस्करण का पुनः प्रकाशन किया गया है।

पुस्तक का मूल पाठ वही है जो 1947 के संस्करण में था। इसमें जानबूझकर कोई सुधार या परिवर्तन नहीं किया गया है। हां, उन कुछ अंशों को इस पुस्तक में जरूर शामिल कर लिया गया है जिसे ब्रिटेन में प्रकाशन के सेंसर की वजह से निकाल देना पड़ा था। उन अंशों को यहां पहली बार प्रकाशित किया गया है। इन निकाले गए अंशों के बारे में दो शब्द कहना काफी उपयोगी होगा क्योंकि ये ब्रिटेन में आज भी जारी राजनीतिक सेंसरशिप की एक अद्भुत मिसाल पेश करते हैं।

'आज का भारत' की पांडुलिपि मूलतः 1936-39 ई० में लेफ्ट बुक क्लब के लिए लिखी गई थी। इस संस्था की पुस्तकें विक्टर गोलांज प्रकाशित करते थे। पुस्तक लिखने का

अनुबंध 1936 मे ही हुआ था पर अतिम तौर से पाडुलिपि नवबर 1939 यानी विश्व युद्ध छिडने के बाद तक नही दी जा सकी। कारण यह था कि इस पुस्तक के सिलसिले म मुझे बहुत काम करना पडा और इसके लिए अपनी व्यस्तताओ के बीच बडी मुश्किल से किसी तरह रुक रुक कर समय निकालना पडता था। इन वर्षो मे मेरे ऊपर अनेक जिम्मेदारिया थी, मैं उन दिनो डेली वकर' और 'लेबर मथली' का सपादन करता था, कम्युनिस्ट पार्टी की पोलिट ब्यूरो का सदस्य था, 1937 के प्रारभ मे गठित क्रिप्स, वेवन, मैक्सटन, ब्राकवे, और पालिट के साथ सयुक्त मोर्चा समिति मे मैं शामिल था और विभिन्न चरणो मे इसकी नियमित बैठक चला करती थी। साथ ही मैं कुछ अन्य गति विधिया मे भी लगा था। चैंबरलेन डेलेडियर के कृत्रिम युद्ध का हमने विश्लेषण किया और उसके साम्राज्यवादी चरित्र का उदघाटन किया जिसके कारण गोलाज ने अक्तूबर से कम्युनिस्ट पार्टी के साथ अपना सबध तोड लिया। नतीजा यह हुआ कि वे इस पुस्तक को प्रकाशित करने से कतराने लगे पर मैंने उन्हे अनुबध की याद दिलाई। इसपर उन्हाने कहा कि इसे प्रकाशित करना कानूनी तौर से बेहद खतरनाक है। मैंने उन्ह बतलाया कि यह किताब कानूनी तौर पर प्रसारित हान के लिए लिखी गई है और मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे आपत्तिजनक अशा पर निशान लगा दे ताकि वैधानिक दष्टि से जहा सुधार करना जरूरी हो मैं कर दू। फिर उन्होंने मेरी पाडलिपि अपने वकील के पास भेज दी। उनके वकील ने पूरी पुस्तक देखने के बाद बताया कि पुस्तक का एक भी अश ऐसा नही है जो कानून की दृष्टि से आपत्तिजनक हो, हालाकि इसमे कोई सदेह नही कि पुस्तक का सपूण प्रभाव बेहद उत्तेजना पैदा करने वाला है ('इसका सीधा उद्देश्य जनमत को इस सीमा तक भडकाना है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का तख्ता पलटने का प्रयास करे')। अपने वकील द्वारा पुस्तक के एक भी अश को या एक भी वाक्य को कानूनी तौर से आपत्तिजनक न बताने पर गोलाज ने यह काम स्वय करने का निश्चय किया और जिन अशो को वह प्रकाशन के लिए खतरनाक समझते थे उनपर उन्हाने लाल पसिल से निशान लगा दिया। जितनी बार क्राति' शब्द का इस्तेमाल हुआ था उनकी पैंसिल इस शब्द को घेर कर निशान बनाती रही यहा तक कि एक जगह इग्लैंड के सदभ म 18वी सदी की औद्योगिक क्राति' की बात जहा लिखी थी वहा भी क्राति शब्द पर उन्हाने निशान लगा दिया। हम दोना पाडुलिपि सामने रखकर दिन भर विचार विमश करते रहे, हर चिह्नित अश को ज्या का त्यो रखने के लिए मुझे कठिन सघष करना पडा लेकिन तकरीबन एक सौ तेरो स्थल पे जिन्हे बदलने के लिए मुझे मजबूर होना पडा ताकि मैं पुस्तक का प्रकाशन कर सकू। इसलिए अब तक प्रकाशित पाठ म बार बार 'रूप परिवतन' और 'निर्णायक तब्दीलिया' करनी पडी है।

1947 मे इस पुस्तक का दूसरा सशोधित सस्करण भारत म प्रकाशित हुआ। (इस प्रकाशन स पूव भारत म इस कानूनी तौर से प्रकाशित करना सभव नही हो सका था हालाकि गैरकानूनी ढग स इसके कुछ हिस्सा या कुछ अशा के अनुवाद छापकर वितरित किए जा चुके थे) इसम 1946 तक की घटनाआ को शामिल कर लिया गया और इस

प्रकार पुस्तक को विस्तार दिया गया। 1946 मे मैंने भारत की यात्रा की (भारत मे मेरे प्रवेश पर लगा प्रतिबध हटाए जाने के बाद पहली बार) और इस यात्रा के अनुभवो को भी अतिरिक्त सामग्री के रूप मे इस सस्करण मे शामिल कर लिया गया। लेकिन इन तमाम चीजो को जोडने के बावजूद सामान्य तौर से मूल पाठ वही रहने दिया गया जो 1940 के सेंसर किए गए अगरेजी सस्करण का था।

अब जबकि 1947 के भारतीय सस्करण का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है इसकी तैयारी के दौरान गोलाज को सेंसर के लिए दी जाने से पहले की मूल पाडुलिपि पर और गोलाज द्वारा थोपे गए परिवतनो और आपत्तिजनक अशो पर हाथ लगा सका हू। तदनुसार, यद्यपि मुद्रण का काम आगे बढ रहा था फिर भी यह पता चलते ही मैंने कुछ महत्वपूर्ण परिवतन किए और कुछ जरूरी अश पुस्तक मे शामिल किए। पुस्तक मे ऐसे परिवतनो परिवधनो की सख्या लगभग पचास है। इस प्रकार वतमान सस्करण मे पहली बार वे सारे अश शामिल किए गए है जिन्हे अगरेज प्रकाशक ने सेंसर लागू करके निकाल दिया था।

यहा एक सवाल पूछा जा सकता है कि 1970 म जब यह नया सस्करण प्रकाशित हो रहा है तो मैंने 1946 मे 1970 के दौरान की घटनाओ के बारे मे लिखने के अवसर का फायदा क्यो नही उठाया।

इसका जवाब यह है कि आजादी के बाद से आज के युग के घटनाक्रमो का विकास इतना गभीर और व्यापक रहा और इस दौरान उत्पन्न समस्याए इतनी दूरगामी रही कि इनपर उचित ढग से विचार करने के लिए एक सवथा नई पुस्तक की जरूरत है, पुरानी किताब को ही जोड घटाकर काम नही चल सकता। 1946 से 1969 तक की घटनाओ का ब्योरा प्रस्तुत करने के लिए अत मे जोडे गए कुछ अध्यायो से साफ पता चल जाता है कि पैबद लगाया गया है क्योकि इस पुस्तक मे विवेचित अधिकाश मसले अब पश्च-दष्टि से प्रभावित होगे। यह चाहे पूण ज्ञान के जरिए हो अथवा अन्य अनुभवो के जरिए या पुराने प्रश्नो का नए रूपों म रूपातरण करके किया जाए। परिणामत 1947 के पाठ को अपनी खामिया और अपूणताओ के साथ ज्यो का त्यो रखने मे जानबूझकर एक आत्मनिषेधात्मक अध्यादेश का पालन किया गया है।

कुल मिलाकर इस पुस्तक मे साम्राज्यवाद के इतिहास और जन आदोलन के विकास का सामान्य तौर पर जो निरूपण और विश्लेषण किया गया है वह अब तक समय की कसौटी पर खरा उतरा है। लेकिन अनेक विशिष्ट मसले जिनका यहा जिक्र किया गया है, बाद के अनुभवा से प्रभावित हुए हैं या उन्होन नए रूप धारण किए हैं और उनपर यदि आज लिखा जाए तो उसके लिए एकदम भिन्न ढग से काम करना होगा। इस सिलसिले म उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

पहले गाधी की भूमिका को ही ले । गाधी की भूमिका का समान रूप से सकारात्मक और नकारात्मक चरित्र कुल मिलाकर बाद के ऐतिहासिक शोध और विवेचन के परीक्षण पर आधारित है । राष्ट्रीय आदोलन और काग्रेस के समूचे स्तर को पहले के सकीर्ण दायरे से उठाकर राष्ट्रव्यापी जन आन्दोलन के स्तर तक पहुचा देने और अत्यत पिछडी निष्क्रिय जनता के अदर राष्ट्रीय चेतना का सचार करने एव सघर्ष के लिए उन्हे प्रेरित करने मे गाधी की रचनात्मक भूमिका पर बल दिया जाना ऐसे समय काफी महत्वपूर्ण था जब कुछ वामपथी आलोचक कठमुल्लेपन के साथ गाधी का एकपक्षीय मूल्याकन करके उन्हे जन आदोलन का दुश्मन और कभी कभी तो ब्रिटिश एजेंट यानी अगरजो का दलाल कहने लगे थे । लेकिन इसी के समानातर गाधी की नकारात्मक भूमिका पर भी ऐसे समय प्रकाश डालना जरूरी था जब उनके समर्थक उन्हे निरपराध्य सत और पैगबर के रूप म पेश कर रहे थे (यह प्रवृत्ति आज भी कुछ क्षेत्रो म पाई जाती है) । गाधी की नकारात्मक भूमिका के सदर्भ म देखें तो गाधी ने अहिसा के नाम पर हमेशा जमीदारो और सपत्ति वान वर्ग के हितो की रक्षा की । सामाजिक तौर मे वह घोर रूढ़िवादी थे । जिस किसी जनसघर्ष की शुरुआत उन्होने की, उसे उस समय तत्काल रोक दिया जब सघर्ष ने सपत्तिवान वर्ग और साम्राज्यवाद के हितो के विरुद्ध क्रातिकारी रूप लेना शुरू किया । ऐसे समय गाधी को हमेशा यह भय रहता था कि आदोलन कही जनप्रिय क्राति का रूप न ले ले । लेकिन चौथे दशक के उत्तरार्ध म, जिस समय यह पुस्तक मूल रूप म लिखी गई गाधी की भूमिका और नीतियो के मूल्याकन से सबद्ध मसलो पर काफी बहस चल रही थी । इसीलिए गाधी के चरित्र के बारे म इस पुस्तक म जो विश्लेषण किया गया है वह तथ्य के रूप मे सच होने के बावजूद वादविवाद की सभावनाओ से भरपूर है ।

आज इस महान ऐतिहासिक व्यक्तित्व का अपेक्षाकृत सतुलित मूल्याकन करना ज्यादा उचित होगा हालाकि आज भी हमारा विश्लेषण अनिवार्य रूप से उसी पुरानी पद्धति पर ही होगा । इस मूल्याकन के लिए उनके अतिम दिनो के कार्यों के उच्च स्तर और श्रेष्ठता को भी ध्यान मे रखना होगा जब उन्होने सार्वजनिक रूप से माउटबेटन समझौते की भर्त्सना की और कहा कि यह उनके सपनो के स्वराज्य का मजाक है अपनी जान की परवाह किए बिना खुद को साप्रदायिक दगो और नरसहार की आग बुझाने मे लगा दिया, इस आधार पर खुद को कम्युनिस्टो के ज्यादा करीब पाया और अत म दक्षिणपथी दुराग्रहियो की गाली के शिकार हुए ।

भाषा के प्रश्न पर (पृ० 295 98) 222 पृथक भाषाओ' के साम्राज्यवादी मिथक के खडन का औचित्य तो बना रहता है लेकिन काग्रेस सिद्धात की इस अतर्निहित स्वीकृति पर कि हिंदी भारत के लिए एक आम भाषा का समाधान प्रस्तुत करेगी उन कठिनाइयो ने प्रश्नचिह्न लगा दिया है जो इस नीति को लागू करने के दौरान पैदा हुई । और इस अनुच्छेद म प्रस्तुत निष्कर्ष कि 'भारत मे भाषाओ की समस्या तकरीबन 12 या 13 विभिन्न भाषाओ की समस्या है', सभवत सही आकलन के काफी करीब है ।

'बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान' (पृ० 464 81) के प्रश्न पर यह अनुच्छेद, बेशक, ऐसे समय लिखा गया था जब पाकिस्तान अभी एक राजनीतिक योजना का अग था और एक राष्ट्र के रूप मे उसकी स्थापना नही हुई थी। उस समय विश्लेपण के जो सामान्य सिद्धात निर्दिष्ट किए गए थे उनकी दिशा इस प्रकार थी राजनीतिक क्षेत्र मे साम्प्रदायिक विभाजन को मजबूत करने तथा राष्ट्रीय आदोलन को विफल करने एव उसमे फूट डालने के उद्देश्य से मुस्लिम लीग की स्थापना को प्रोत्साहन देने मे साम्राज्यवाद की जिम्मेदारी, व्यवहारत हिंदूवाद को साथ लेकर राष्ट्रीय प्रचार करने और इस प्रकार हिंदू मुस्लिम सहयोग पर आघात करने मे काग्रेस के नेतृत्व की जिम्मेदारी, यह मान लिया जाना कि बाद के दौर म मुस्लिम लीग को उल्लेखनीय जनसमथन प्राप्त हुआ और भारत के विभाजन की माग तथा अलग राज्य की स्थापना, विकृत रूप मे ही सही, वास्तविक राष्ट्रीय माग थी जो भारत के बहुराष्ट्रवादी स्वरूप के अनुरूप थी, राष्ट्रीयता को धम पर आधारित करन के किसी भी प्रयास की भत्सना क्योकि यह प्रतिक्रियावादी और विभाजनकारी प्रवृत्ति है तथा इससे अनेक नुक्सानदेह विनाशकारी दुष्परिणामो की आशका है।

तब से पाकिस्तान नामक राज्य की स्थापना हो चुकी है, 1956 म उसने 'इस्लामिक गणराज्य' की घोषणा की और आज दो दशको से भी अधिक समय से उसका अस्तित्व बना हुआ है। तदनुसार नई राज्य सीमाओ के अदर लोकप्रिय सघष विकसित हुआ है। विश्लेषण के सामान्य सिद्धातो की वैधता बनी रहती है। पाकिस्तान की स्थापना की बुनियाद कितनी अस्थिर थी और इसका शासन सभालने वाला वग कितना सकीण विचारधारा वाला था, इसका जायजा इन तूफानी वर्षों की घटनाओ तथा निरतर अशाति एव दमन, 1958 से लागू माशल ला और अयूब खा की सैनिक तानाशाही से मिल जाता है। इस पुस्तक के लिखन के समय तक अयूब खा के पतन और पश्चिमी पाकिस्तान के प्रभुत्व की समाप्ति की माग को लेकर पूर्वी पाकिस्तान मे तेज हो रहे लोकप्रिय आदोलन के साथ वतमान सकट पराकाष्ठा पर पहुच चुका है।

अतिम अध्याय 'भविष्य' को मूल के अनुसार ही पुनमुद्रित किया गया है। इस अध्याय मे स्वतत्रता की पूवसध्या 1946 मे, आजादी की प्राप्ति की भावी स्थितियो का आकलन करन का प्रयास किया गया है और इसलिए यह अध्याय कुछ हद तक अब भी महत्वपूण है। बाद की घटनाओ की रोशनी मे देखें तो मुख्य विषयवस्तु का आज भी कुछ महत्व है। प्रथम साम्राज्यवाद द्वारा नेपथ्य से जहा तक हो सके अपना नियत्रण बनाए रखने की निरतर कोशिशो का आभास मिलता है। सबसे पहले तो आजादी देने जैसी प्रारभिक प्रतिबधक शर्तों के जरिए करने की कोशिश और फिर इन तरीको के विफल हो जाने पर ब्रिटिश वित्तीय पूजी के सचालन की रक्षा करने और यहा तक कि उसके क्षेत्र का इस आशा के साथ विस्तार करने की कोशिश कि भले ही अब भारतीय ध्वज फहराता हो पर इस नए युग मे वास्तविक साराश और शोषण से पैदा मुनाफे का सर्वोत्तम

भाग तथा निर्णायक शक्ति जहा तक हो सके, ब्रिटिश पूजीवाद के हाथो मे बनी रह।' दूसरे साम्राज्यवाद की इस निरतर जकड को तोडने के लिए भारतीय जनता के सघप की प्रत्याशित प्रगति और सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यो, कृषि के क्षेत्र मे दिन ब दिन गभीर होते सकट और वर्गो के सबध के साथ इस सघर्प का एक अविच्छिन्न सपक। तीसरे आजादी मिलने के बाद भारत के सामने बुर्जुआ के विभिन्न हिस्सा की भावी भूमिका और वैकल्पिक रास्ते (अ) दकियानूसी शक्तियो का रास्ता (ब) आर्थिक दष्टि से आगे बढ रहे पूजीवादी भारत के विकास और सभवत 'भारतीय समाजवाद' का नाममात्र का लेबल लगाकर नियत्रित पूजीवाद के लिए राष्ट्रीय बुर्जुआ का रास्ता और अतत (स) जनतात्रिक क्राति का काम पूरा करने, साम्राज्यवाद का सफाया करने, जमीदारी प्रथा को समाप्त करन तथा अथव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए आर्थिक और सामाजिक पुनर्निर्माण करने पिछडेपन और सामूहिक गरीबी की स्थितियो को समाप्त करने और इस प्रकार समाजवाद की दिशा म वास्तविक प्रगति की आधार शिला रखने के लिए मजदूरा, किसानो और लोकप्रिय शक्तियो के बढते दस्ते का रास्ता।

आज उस परिदृश्य को लिखे जाने के बाद से 22 वर्षो के अनुभव ने तफसील, पेचीदगी, उतार-चढाव तथा व्यक्तित्वा के कौतुक की कही अधिक विपुलता के साथ उन महान विपया को आगे बढाया है जिन्ह उस समय महज सामान्य सिद्धाता के रूप म प्रस्तुत किया जा सका था।

15 अगस्त 1947 को भारत का आजाद होना, जो शुरू मे तो ब्रिटिश डोमीनियन रहा पर बाद म 26 जून 1950 को जिसने भारतीय गणराज्य की घोषणा की, विश्व इतिहास की एक महत्वपूण घटना थी और भारतीय जनता के कई पीढियो के सघप का फल था। यह विजय फासीवाद के विरुद्ध सोवियत सघ की अगुवाई मे विश्व की जनता के मुक्ति मोर्चे की 1945 की जीत के बाद, विश्व भर मे राष्ट्रीय मुक्ति, समाजवाद और जनता की प्रगति की सबसे पहली विजय थी। इसके बाद ही 1949 मे चीनी जनता की क्राति की सफलता ने पुराने उपनिवेशवाद पर मरणातक प्रहार किया और विश्वसतुलन म अप्रत्यावर्ती परिवतन हुआ।

किंतु भारत म ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद साम्राज्यवाद द्वारा अपन प्रभाव का इस्तेमाल करन और आजाद भारत मे शोषण के अपने हिता की रक्षा करने की कोशिशें समाप्त नहीं हुई। इसकी झलक 1947 के समझौत की नकारात्मक विशिष्टताओ म आ गई थी जिसे ब्रिटिश वायसराय लाड माउटबेटन के मागदशन म तैयार किया गया था। इसम उस जबरदस्त साप्रदायिक फूट का फायदा उठाया गया जिसे ब्रिटिश साम्राज्य वाद न हमेशा प्रात्साहित किया और स्वाधीनता की मान्यता को दो स्वतत्र देशा, भारत और पाकिस्तान क रूप म भारत के विभाजन क साथ जोड दिया गया।

1947 का माउंटबटन समझौता, जिसने भारतीय स्वाधीनता की मान्यता को वैधानिक स्वरूप दिया, दरअस्ल साम्राज्यवाद तथा राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम लीग के उच्च नेतृत्व वग क बीच हुआ एक सुलह समझौता था जिसके लिए लोकप्रिय जनक्राति की आशका के बारे मे मतभेदा के बावजूद दोनो पक्षो ने कुछ सवमान्य आधार ढूढ लिए थे। परपरागत सरकारी मिथ के विपरीत भारत और पाकिस्तान को प्राप्त आजादी न तो गाधीवादी तरीके की जीत थी और न ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा दिया गया यह कोई स्वार्थहीन 'उपहार' ही था।

यह अहिंसा की विजय नही थी। 1946 के जनविद्रोह ने जिसम रायल इडियन नेवी के लोगो ने विद्रोह करके यूनियन जैक के स्थान पर काग्रेस, मुस्लिम लीग और लाल झडा तीनो की सयुक्त पताका फहराई और इस विद्रोह की गभीरता से लोगो को अवगत कराया, तथा सेना की अन्य इकाइयो म इसी तरह की घटनाओ तथा जबदस्त हडताला और सडको पर चल रहे युद्ध ने साम्राज्यवादियो को तेजी से पीछे हटने को मजबूर किया। 19 फरवरी 1946 का लाड एटली का घोषणापत्र, जिसम भारत के सबध मे एक नए दृष्टिकोण का एलान किया गया था और जिसमे भारतीय स्वशासन के सिलसिले मे बातचीत शुरू करने के फैसले की घोषणा की गई थी, 18 फरवरी के नौसैनिक विद्रोह के ठीक एक दिन के भीतर आया। लेकिन इस विख्यात विजय का नेतृत्व काग्रेस ने नही किया था। काग्रेस के पहले के अहिंसात्मक अभियानो मे, जो सारे के सारे बुरी तरह विफल हो गए थे, और इस विद्रोह म कही कोई समानता नही थी। उल्टे, काग्रेस और मुस्लिम लीग के नेतागण इस जनविद्रोह से बुरी तरह भयभीत थे। वे इस विद्रोह पर काबू पाने के लिए रोजाना ब्रिटिश कमाडर इन चीफ और ब्रिटिश अधिकारियो से सलाह मशविरा करते थे। उन्होने सावजनिक रूप से इसे अहिंसा के विरुद्ध पाप कह कर और एक अपवित्र किस्म की हिंदू मुस्लिम एकता का नाम देकर इस विद्रोह की भत्सना की तथा सैनिको को आत्मसमपण के लिए आवश्यक निर्देश जारी किए। इस प्रकार वह लबी बातचीत शुरू हुई जिसके फलस्वरूप अगस्त 1947 का सुलह समझौता हुआ। लोकप्रिय क्रातिकारी लहर की विफलता, नेतत्व द्वारा इकार करने से और यहा तक कि राष्ट्रीय पूजीपति वग के विरोधी रवैये से पैदा हुई थी। इसके साथ ही राष्ट्रीय आदोलन का दौर होने के बावजूद वही कोई पयाप्त विकसित वैकल्पिक राजनीतिक नेतत्व काम करने की स्थिति मे नही था। इन कमियो के कारण जनता की क्रातिकारी शक्तिया घृणित साप्रदायिक नरसहार मे लग गइ। इसे उस लबी बातचीत द्वारा काफी तीव्रता मिल गई थी जिसमे घोषित रूप से साप्रदायिक या धार्मिक आधार पर भारत के बटवारे की तैयारी हो रही थी और इस बात चीत का समूचा स्वरूप साप्रदायिक राजनीतिक था। इस प्रकार 1946 47 के क्रातिकारी विप्लव का लाभ काग्रेस और मुस्लिम लीग के उच्च बुर्जुआ नेतत्व को मिला हालाकि इस नेतृत्व न व्यवहार रूप मे क्रातिकारी लहर का विरोध किया था और साम्राज्यवाद के साथ घनिष्ठ सहयोग किया था। स्वतत्रता के प्रारभ के इस परस्पर विरोधी स्वरूप की तह मे अनेक कठिनाइया दबी पडी थी जो बाद के वर्षों मे उभर कर सामने आई।

स्वतंत्रता ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा दी गई भेंट भी नहीं थी। ब्रिटिश सरकार के तर्कों को बड़े साफ शब्दों में क्रिप्स ने 5 मार्च 1947 को पार्लियामेंट में पेश किया था

> हमारे सामने कौन से विकल्प थे ? बुनियादी तौर पर हमारे सामने दो विकल्प थे। पहला यह था कि हम विदेश मन्त्रालय की सेवा में और अधिक अधिकारियों की नियुक्ति करके तथा ब्रिटिश सेना को उल्लेखनीय ढंग से मजबूत बनाकर भारत में ब्रिटिश शासन को दृढ बनाने की कोशिश करते। इस नीति के साथ यह निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है कि हम कम से कम 15 से 20 वर्षों तक भारत में बने रहना चाहिए। दूसरा विकल्प यह था कि हम इस सच्चाई को मान लें कि पहला विकल्प संभव नहीं था।

इस प्रकार 'दोनों विकल्प' यथार्थ रूप में केवल एक थे क्योंकि 'ब्रिटिश सेना को उल्लेखनीय ढंग से मजबूत' बनाना संभव नहीं था जो कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बने रहने के लिए आवश्यक था। यह वही ब्रिटिश सरकार थी जिसने 60 लाख मलय लोगों के दमन के लिए ब्रिटिश सैनिकों को भेजने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखलाई और जनता के मुक्ति आंदोलनों को विफल करने के लिए वर्षों तक अत्यंत बर्बर युद्ध का संचालन किया। लेकिन जहां तक भारत की 40 करोड़ की आबादी का प्रश्न था, सेना तक लोकप्रिय विद्रोह के फैल जाने के बाद ब्रिटिश सरकार के सामने इसके सिवाय कोई दूसरा विकल्प नहीं था कि वह भारत से अपना शासन समाप्त कर ले और राष्ट्रीय आंदोलन के उच्च वर्ग के साथ जहां तक संभव हो अच्छे से अच्छा समझौता कर ले। इसी प्रकार भारत में लार्ड माउंटबेटन के सेनापति लार्ड इस्मे ने अनिवार्य रूप से भारत से चले जाने का अपना फैसला दिया। (इसका उल्लेख एलेन कैंपबेल जान्सन की पुस्तक 'मिशन विद माउंटबेटन' में मिलता है।)

> मार्च 1947 में भारत, समुद्र के बीच में खड़े एक ऐसे जहाज की तरह था जिसमें आग लग गई हो और जिसके खाव पर हथियार लदे पड़े हों, उस समय तात्कालिक मसला हथियारों तक आग को पहुंचने से पहले ही बुझा देना था। दरअस्ल, हमने जो कुछ किया उसके अलावा हमारे सामने और कोई चारा नहीं था।

साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय बुर्जुआजी दोनों का हित इसी में था कि लोकप्रिय जनक्रांति को रोका जाए और इन दोनों के बीच एक सौदे के रूप में माउंटबेटन समझौते के सुलहवादी चरित्र ने अनिवार्य रूप से उपलब्ध स्वाधीनता के स्वरूप और शर्तों का प्रारंभ में ही गंभीर रूप से परिसीमन कर दिया। इस बात में संदेह की गुंजाइश नहीं है कि गांधी ने इस समझौते को यह कहकर नामंजूर कर दिया कि वह (समझौता) स्वराज्य की उनकी धारणा के अनुकूल नहीं है। उनके जीवनी लेखक ने अगस्त 1947 के हर्षोल्लासपूर्ण

समारोहो मे उनके भाग लेने से इकार करने का जिक्र किया है

> देश भर मे समारोह मनाए जा रहे थे। लेकिन उस व्यक्ति ने जिसकी भारत को विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने म किसी से भी ज्यादा भूमिका थी, इन समारोहो मे हिस्सा नही लिया। जब भारत सरकार के सूचना और प्रसारण विभाग का एक अधिकारी गाधी के पास उनके सदेश के लिए आया तो गाधी ने जवाब दिया कि 'मैंने मैदान छोड दिया है।' जब उनसे फिर कहा गया कि उनका कोई सदेश नही देना अच्छा नही लगता है तो उन्होंने जवाब दिया 'मुझे कुछ भी सदेश नही देना है। यदि ऐसा करना बुरा है तो होता रहे।' (डी० जी० तेंदुलकर 'महात्मा लाइफ आफ मोहनदास करमचद गाधी', खड 8, पृष्ठ 95-96)।

अपनी हत्या के चार दिन पूव, 1948 के स्वाधीनता दिवस के अवसर पर बोलते हुए उन्होने इन शब्दो मे अपनी मोहभग की स्थिति का वणन किया

> '26 जनवरी का यह दिन स्वाधीनता दिवस है। इस दिवस को मनाना उस समय काफी उपयुक्त था जब हम उस स्वाधीनता के लिए सघष कर रहे थे जिसे न हमने देखा था और न जिसका सचालन किया था। अब हमने इसका सचालन कर लिया और हमारा मोह भग हो गया। कम से कम मेरी तो यही स्थिति है, आपकी चाहे हो या न हो।' (वही, खड 8, पष्ठ 333)

इस सुलह समझौते के लिए चुकाई गई कीमतो मे सबसे बडी कीमत भारत के विभाजन के रूप म अदा करनी पडी। भारत और पाकिस्तान ने नाम से दो प्रभुसत्तासपन्न राज्या की स्थापना करके भारत का बटवारा कर दिया गया। यह बटवारा राष्ट्रीयता पर नही बल्कि धम पर आधारित था जिसे राष्ट्रीयता के समतुल्य माना गया था। चूंकि इससे सबद्ध दोनो धर्मों के लोग यानी हिंदू और मुसलमान व्यवहार रूप मे भारत के प्रत्येक हिस्से मे घुले मिले थे, इसलिए इस बटवारे का काम बेहद कृत्रिम सीमाए खीचकर ही करना पडा (पाकिस्तान का निर्माण दो पृथक हिस्सा मे करना पडा जिसके बीच भारत का हजारो मील का क्षेत्र पडता था)। इसके परिणामस्वरूप भारी सख्या मे लोगो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाना पडा, खून खराबा हुआ, साप्रदायिक हत्याए हुइ और बडे पैमाने पर शरणार्थियो को एक हिस्से से दूसरे हिस्से मे ले जाना पडा। दोनो देशो के बीच चिरकालिक सघष ने समूचे अनुवर्ती वर्षा के दौरान दोनो का कमजोर बनाया, उनके बजट को सैनिक खच पर लगाया और साम्राज्यवादी घुसपैठ को आसान बनाया। शुरू के दिनो म ही, जब अभी भारत और पाकिस्तान की सेनाओ का नियत्रण ब्रिटिश कमाडर इन चीफ कर रहे थे, काश्मीर के प्रश्न पर दोना देशा के बीच इस सघष ने बाकायदा युद्ध का रूप धारण कर लिया। लगभग दो दशक बाद 1965 मे फिर दोनो देशा

के बीच बाकायदा युद्ध हुआ और सोवियत सघ की मध्यस्थता के जरिए ही एक अस्थाई युद्ध विराम कायम होने मे सफलता मिल सकी। जैसाकि आयरलैंड तथा ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन से निकले अनेक देशो के साथ हुआ, यहा भी विदा होते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने देश के बटवारे का अपना सुपरिचित उपहार दिया जिसके भयकर परिणामों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता की पूर्ति को एव जनता की प्रगति को कमजोर बनाया तथा दो नए राष्ट्रों के बीच परस्पर वैमनस्य और फूट का फायदा उठाने के लिए साम्राज्यवाद को सुविधाजनक अवसर दिया।

माउटबेटन समझौते के सुलहवादी चरित्र का एक और नकारात्मक परिणाम यह था कि नए राज्यो को राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग के नेतृत्व के अधीन प्रभुसत्तासपन्न और स्वतत्र राष्ट्र की मान्यता तो दी गई फिर भी प्रारभ मे ही इन दोनो देशो को काफी हद तक पुराने साम्राज्यवादी शासन के सिलसिले के रूप मे चित्रित किया गया। साम्राज्यवाद के समूचे प्रशासन तत्र को ही लेकर आगे बढाया गया, वही नौकरशाही और न्यायपालिका तथा पुराने साम्राज्यवादी एजेंटो और चापलूसो की पुलिस, दमन के वही पुराने तरीके, पुलिस द्वारा निहत्थे लोगो पर गोली वर्षा, लाठी चार्ज, सभा करने पर प्रतिबध, समाचारपत्रों पर प्रतिबध या बिना आरोप लगाए अथवा मुकदमा चलाए लोगो को हिरासत मे रखना। भारत मे साम्राज्यवाद की विशाल सपत्ति—लागत पूजी और वित्तीय हितों की उत्साहपूर्वक रक्षा की गई और साम्राज्यवादी शोषण का अविकल प्रवाह जारी रहा। प्रारभ मे सैनिक नियत्रण व्यवहार रूप मे साम्राज्यवादी हाई कमान के हाथो मे ही रहा और दोनो देशो की सेनाओ के सेनाध्यक्ष, सैनिक सलाहकार तथा सैकडो की सख्या मे अफसरो के पदो पर अगरेज बने रहे। सैनिक कर्मचारियो का प्रशिक्षण ब्रिटेन मे दिया जाना जारी रहा। यहा तक कि शुरू मे तो ब्रिटिश गवर्नर जनरल भी सघ के प्रधान के रूप मे अपने पुराने पद पर ही बना रहा और दोनो देशो के महत्वपूर्ण प्रातो मे भी ब्रिटिश गवर्नर अपना पद सभाले रहे।

इस प्रारभिक दौर मे जुझारू मेहनतकश वर्ग के और किसानो के असतोष का दमन करने के लिए जबरदस्त हमला किया गया। 1949 तक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने बताया कि मजदूरो और किसानो के 25,000 नेता जेलो मे पडे हैं और इनमे से अधिकाश बिना किसी आरोप या मुकदमे के गिरफ्तार किए गए हैं। भारत की नई सरकार द्वारा प्रकाशित सरकारी आकडो के अनुसार 15 अगस्त 1947 से 1 अगस्त 1950 तक यानी अपने शासन के तीन वर्षों के अदर उसकी पुलिस या सेना ने कम से कम 1982 बार जनता के प्रदर्शनो पर गोली चलाई 3 784 व्यक्तियो का खून किया और लगभग 10 000 व्यक्तियो को घायल किया 50 000 लोगो को जेल के अदर डाला और 82 बंदियो को जेल के अन्दर गोली मार दी गई।

फिर भी 1947 के समझौते और पुराने साम्राज्यवादी शासन से जारी कुछ विरासत मे

प्रौप्त शासनतंत्र और शासन पद्धति वाली इस नई सरकार के नकारात्मक पहलुओं की वजह से हमें अनुकूल महती उपलब्धियों की अनदेखी नहीं कर देनी चाहिए। ये उपलब्धियां थी—जनतांत्रिक क्रांति के कुछ नियत कार्यों की पूर्ति, आतरिक सुधार और आर्थिक पुनर्निर्माण की शुरुआत, और भारत की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का रूपांतरण जिसका निष्पादन आजादी के बाद के 15 वर्षों में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व और खासतौर से प्रधानमंत्री नेहरू की महत्वपूर्ण भूमिका के अंतर्गत हुआ।

भारत की स्थापना एक धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक राज्य और 1950 से एक गणराज्य के रूप में हुई। इसमें जुड़ी बातें थी, सार्वभौम मताधिकार, कार्य संपादन करने वाली एक संसद, नियमित चुनाव जिसमें तमाम पार्टियां भाग लेती हैं, और (विशेष अधिकारों तथा खासतौर से पुलिस कार्यवाहियों के पूर्व उल्लिखित नकारात्मक पहलुओं के बावजूद) वाक् स्वातंत्र्य, समाचारपत्रों, सभाओं और संगठन बनाने के अधिकारों का अपेक्षाकृत उच्च स्तर। कुछ उल्लेखनीय अपवाद भी थे, केरल में जब एक कम्युनिस्ट सरकार निर्वाचित हुई तो 1959 में उसे केंद्र सरकार ने अपदस्थ कर दिया। लेकिन 40 करोड़ (अब 56 करोड़) की विशाल और विविध आबादी वाले किसी नवस्वाधीन एशियाई देश में, जहां का बहुमत अभी भी निरक्षर है, बुर्जुआ (पूंजीवादी) संसदीय जनतंत्र के कार्य का सामान्य तौर पर जो स्तर था, वह एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी। पाकिस्तान को यह उपलब्धि नहीं मिली। वहां पश्चिमी पाकिस्तान के मुट्ठी भर समृद्ध बड़े जमींदार परिवारों और सरकारी और सैनिक उच्च अधिकारियों ने सभी जनतांत्रिक आकांक्षाओं को विफल कर दिया, पूर्वी पाकिस्तान को गुलाम देश की तरह रखा और उसका जमकर शोषण किया तथा कमजोर संसदीय संस्थाओं को समाप्त कर उनके स्थान पर शीघ्र ही निर्द्वंद्व सैनिक तानाशाही स्थापित कर दी।

शाही रियासतें, जिन्होंने राष्ट्रीय विद्रोह के खिलाफ साम्राज्यवाद को मुख्य सहारा दिया था, तत्काल ही भारत और पाकिस्तान दोनों जगह प्रभुसत्तासंपन्न स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भंग कर दी गई और राज्य के सामान्य ढांचे में शामिल कर ली गई हालांकि राजों महाराजों को अपनी पदवी धारण किए रहने की अनुमति दे दी गई, उन्हें भारी मात्रा में राजस्व प्रदान किया गया, और इस आधार पर वे बाद में प्रतिक्रियावादी राजनीतिक भूमिका निभाने में समर्थ हो सके, इसका उदाहरण भारत की स्वतंत्र पार्टी की भूमिका है।

भारत में नागरिक अधिकारों के दायरे में जाति के आधार पर भेदभाव का कानूनी तौर से उन्मूलन शामिल किया गया जो खासतौर से उन लाखों करोड़ों 'अछूतों' के प्रति भेदभाव बरतने जाने के बारे में था जिनपर दकियानूस हिंदू व्यवस्था ने यह थोप दिया था। हालांकि भारत के अनेक हिस्सों में अधिकारों की इस कानूनी मान्यता का पालन नहीं हुआ।

कृषि संबंधी सुधार के उपाय अपनाए गए जिनसे भूमि संबंधी संकट का समाधान या

जमीदारी प्रथा का उन्मूलन तो नही हुआ और न जोतने वाले को जमीन ही मिली पर ब्रिटेन द्वारा स्थापित बडे जमीदारो और जागीरदारो की व्यापक जमीदारी प्रथा समाप्त हो गई। फिर भी कानून म भरपूर बचाव का रास्ता होने की वजह से जिन जमीदारो और उनके परिवारो की सपत्ति ले ली गई थी, वे उल्लेखनीय सीमा तक अपनी जागीर बचाए रखने मे समर्थ हो सके। इसके अलावा मुआवजे की राशि बहुत अधिक थोप दिए जाने से केवल धनी या मध्यम दर्जे के किसानो को ही भूमि के व्यापक वितरण का लाभ मिल सका और गाव की उस गरीब जनता को जिनके पास केवल अपने गुजारे भर की जमीन थी और जो मुस्तकिल रूप से कर्ज मे दबी थी तथा लाखो-करोडो भूमिहीन खेतिहर मजदूरो को कोई राहत न मिल सकी। सातवें दशक के पूर्वार्ध में सर्वेक्षणो से पता चलता है कि गावो म 3 6 प्रतिशत परिवारो के पास कुल खेती योग्य जमीन का 36 प्रतिशत और शेष एक चौथाई परिवार के पास कुल 84 प्रतिशत हिस्सा था। गुन्नार मिरडल ने अपनी कृति 'एशियन ड्रामा' (3 खडो मे, एलेन लेन 1968) मे 1965 म भारत के बारे मे लिख रहे एक अमरीकी विशेषज्ञ का उद्धरण दिया है 'हालाकि अन्य उपादान भी महत्वपूर्ण है, लेकिन जब तक जमीन पर काम करने वाले उस जमीन के मालिक नही बनते या कम से कम उन्हे काश्तकार के रूप मे सुरक्षा नही मिलती, तब तक सारी बातें व्यर्थ ही साबित होगी।

अपने विस्तृत विश्लेषण म मिरडल ने दिखाया है कि किस प्रकार महगे आधुनिक रासायनिक और वैज्ञानिक उपकरणो की शुरुआत से, जिसे केवल अच्छे खाते-पीते किसान ही खरीद सकते हैं और इस्तेमाल कर सकते है, कुल कृषि उत्पादन मे वृद्धि तो की जा सकती है और की गई है, तथा किस प्रकार सुधार सबधी तमाम उपायो ने सरकार और वर्तमान वर्ग सबधो को सहारा देने के लिए समृद्ध किसानो का एक स्तर तैयार कर राजनीतिक मकसद तो पूरा किया है लेकिन इन उपायो ने कृषि सबधी सकट की वास्तविक समस्याए हल करने के लिए कुछ भी नही किया है। इन उपायो की तुलना जार के शासनकाल मे स्तोलिपिन द्वारा किए गए कृषि सबधी सुधारो से करना प्रासगिक होगा। स्तोलिपिन के सुधारो का भी उद्देश्य वर्तमान शासन को एक सामाजिक आधार देने के लिए समृद्ध किसानो का एक ठोस वर्ग तैयार करना था लेकिन इन सुधारो से दिनोदिन गभीर होता कृषि सकट रुक न सका और अतत इसका विस्फोट 1917 की क्राति के रूप मे हुआ।

आर्थिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग ने भारत म मौजूदा साम्राज्यवादी आर्थिक हितो की रक्षा करने तथा प्रारभ मे दस वर्षों तक राष्ट्रीयकरण न करने की गारटी देकर विदेशी पूजी को अपने देश म लगाने के लिए आकर्षित करने की कोशिश के जरिए पुनर्निर्माण और उद्योगीकरण के व्यापक और महत्वाकाक्षी कार्यक्रम का प्रयास किया। इसस उत्पादन म उल्लेखनीय वृद्धि हुई। कोरिया युद्ध के शातिपूर्ण समाधान के लिए और इसम मध्यस्थता करन के सयुक्त प्रयास क लिए 1950 म नेहरू और स्तालिन के बीच पत्राचार हुए। सोवियत सघ क साथ इस सहयोग के आधार पर पचवर्षीय योजना की पद्धति

अपनाई गई। बताया जाता है कि 1951 से 1966 के बीच की प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ के दौरान कुल उत्पादन मे 159 प्रतिशत की वृद्धि हुई। आर्थिक विकास के काय मे मदद देने मे सोवियत सघ, साम्राज्यवाद से स्वतन्त्र एक महत्त्वपूर्ण कारक साबित हुआ। 1955 मे सोवियत सघ ने पूरी तरह नया विशाल इस्पात कारखाना बनाकर उद्योगीकरण के काम मे प्रत्यक्ष सहायता देने का सूत्रपात किया। साम्राज्यवाद ने ऐसा कोई विकास काय कभी नही किया था। सोवियत सघ, चेकोस्लोवाकिया और पोलैंड ने विकासशील देशो मे आधुनिक भारी इजीनियरिंग कारखानो के विशालतम समूह के निर्माण मे सहायता पहुचाई। बाद के वर्षो म इस उदाहरण ने पश्चिमी साम्राज्यवादी देशो को भी नए इस्पात कारखानो के निर्माण के लिए बाध्य किया और पश्चिमी जमनी तथा ब्रिटेन ने एक एक कारखाना बनाया। इस्पात का उत्पादन 1950 मे 15 लाख टन से बढकर 1964 मे 65 लाख टन हो गया। इस अवधि मे विद्युत शक्ति का उत्पादन भी दुगना हो गया।

फिर भी पूजीवाद के मूल आधार पर ध्यान दें तो इस आर्थिक प्रगति का एक नकारात्मक पहलू था। यह सही है कि दिसबर 1954 के ससदीय प्रस्ताव और 1955 के अवाडी काग्रेस प्रस्ताव मे निधारित उद्देश्यो के अनुसार सरकार और काग्रेस ने आधिकारिक रूप से 'समाजवाद' या 'समाजवादी ढाचे का समाज' की स्थापना का सिद्धात घोषित किया। लेकिन जैसा कि अत्यत समृद्ध इजारेदार और काग्रेस के मुख्य समथक घनश्यामदास बिडला ने, 1966 मे प्रधानमत्री इदिरा गाधी और कागेस को अपना समथन दिए जाने के बारे म लिखा है उनके अनुसार

> हमारा नारा जनतान्त्रिक समाजवाद है। कोई भी नही जानता कि इसका ठीक ठीक अथ क्या है। प्रधानमत्री ने अपने रेडियो प्रसारण म कहा है कि निजी क्षेत्र को सहयोग और प्रोत्साहन दिया जाएगा। यह काफी उत्साहवद्धक बात है।'
> (जी०डी० बिडला, प्राब्लम्स आफ इडिया टुडे'—लदन स्थित उच्चायोग के मुखपत्र 'इडिया वीकली' के 10 माच 1966 के अक म प्रकाशित लेख)

दरअस्ल पूजी का केद्रीकरण तेजी स होता गया और बडे इजारेदारो की न्यून सख्या ने भारतीयो के स्वामित्व वाले उद्योगो पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। इसके साथ ही विदेशी पूजी ने अपनी घुसपैठ और अनेक क्षेत्रो मे पहले से ही अपनी प्रबल स्थिति का और मजबूत कर लिया और भारतीय इजारेदारो के साथ अपना सपक भी विकसित कर लिया। 1963 के प्रारभिक दिनो म 'सैटरडे इवनिंग पोस्ट' को दी गई एक भेंट म नेहरू ने दावा किया बिट्रेन की कपनिया ब्रिटिश के शासन के दिनो म कमाए गए मुनाफे की तुलना म आज ज्यादा मुनाफा कमा रही हैं। यहा तक कि सर विंसटन चर्चिल ने भी इस पर काफी सतोष प्रकट किया है।'

अप्रैल 1968 मे कांग्रेस 'फारेम फार सोशलिस्ट ऐक्शन' मे अपन भाषण मे नेहरू ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि तमाम कोशिशो के बावजूद भारत मे धनी और गरीब वग के बीच की खाई बढती जा रही है

> ऐसा लगता है कि विकास की प्रक्रिया का फायदा मुख्यत उन्ह मिल रहा है जो इसका लाभ उठा सकते हैं क्योकि उनके पास अपेक्षाकृत अधिक साधन हैं। इसका नतीजा कुछ हद तक यह हो रहा है कि धनी व्यक्ति और समृद्ध होता जा रहा है जबकि गरीब लोगो की स्थिति मे कोई तबदीली नही आ रही है।

विदेशी सहायता पर निभरता काफी बढ गई और विदशी सहायता का वधमान अश पहले मिली सहायता के शुल्क को अदा करने मे ही चुक गया। बेरोजगारो की सख्या पहली योजना की समाप्ति तक 53 लाख थी जो दूसरी योजना के अत तक बढकर 71 लाख और तीसरी योजना के अत तक बढकर 96 लाख हो गई। अनुमान है कि चौथी योजना की समाप्ति तक यह सख्या 1 करोड 40 लाख से 1 करोड 80 लाख के बीच पहुच जाएगी। 1962 तक भारतीय योजना आयाग न अपनी रिपोट म लिखा कि 'भारत की दो तिहाई जनता भुखमरी के बिंदु पर गुजारा कर रही है।' (स्टटसमैन, 29 जनवरी 1963)

प्रगति के उपायो को सामाजिक क्षेत्र, खासतौर से शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र म लागू करने के प्रयास किए गए। 1931 म कुल आबादी के 92 प्रतिशत लोग निरक्षर थे (जैसा कि इस पुस्तक म उल्लिखित है) लेकिन 1961 की जनगणना मे बताया गया कि इस सख्या मे कमी हुई है और अब केवल 76 प्रतिशत लोग निरक्षर है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा मे वद्धि हुई। मृत्यु दर मे कमी हुई। यह 1931-41 मे 31 2 व्यक्ति प्रति हजार से घट कर 1960 म अनुमानत 16 2 व्यक्ति प्रति हजार हो गई।

सबसे बढकर, अतर्राष्ट्रीय सबधो के क्षेत्र म विश्व के सदभ म भारत की भूमिका का अत्यत विशिष्ट रूपातरण हुआ और इस काय का निष्पादन छठे दशक मे नेहरू सरकार द्वारा किया गया। ब्रिटिश राष्ट्रमडल म भारत का आविभाव एक अधिराज्य (डोमीनियन) के रूप म हुआ लेकिन प्रारभ से ही उसन 'गुटनिरपक्षता' की नीति को व्यक्त किया अर्थात 'सेंटो' (प्रारभ मे बगदाद सधि) या सीटो (1954 मे गठित) जिसम पाकिस्तान शामिल हो गया जैसे वर्गीय साम्राज्यवादी गठबधनो मे वह नही शामिल होगा। 1950 म, जब भारत ने ब्रिटिश राज्य के प्रति अपनी निष्ठा को तिरोहित करके गणराज्य की स्थापना की और ब्रिटिश सम्राज्ञी को केवल राष्ट्रमडल के प्रधान के रूप म मान्यता दी, विश्वशाति के सदभ मे नई रचनात्मक भूमिका ने भारत को अतर्राष्ट्रीय राजनीति की अग्रिम पक्ति म ला खडा किया। तथापि 1950 की गर्मियो मे भारत सरकार न सयुक्त राष्ट म अमरीका के सवधानिक प्रस्ताव के पक्ष मे मत दकर कोरिया के विरुद्ध अमरीकी सैनिक आक्रमण का औचित्य ठहराया था। लेकिन इस स्थल से

पश्चिमी साम्राज्यवादी देशो के आक्रमण तथा एशियाई देशा के विनाश से जुडने के विरुद्ध भारत म लोकप्रिय होती भावना तथा 1949 मे चीन जनवादी गणराज्य विजय के बाद एशिया मे नए शक्ति सतुलन से भारतीय विदेश नीति के स्थिति निधारण मे उल्लेखनीय प्रगति हुई।

विश्वशाति के लिए भारत की सक्रिय भूमिका की शुरुआत जुलाई 1950 मे नेहरू और स्तालिन के बीच हुए पत्राचार तथा कोरिया युद्ध के शातिपूर्ण समाधान के लिए किए गए निरतर प्रयासो के साथ हुई। 1954 के दक्षिण पूव एशिया सकट म, भारत ने हस्तक्षेप न करने और वियतनाम की जनता की राष्ट्रीय स्वाधीनता के आधार पर शाति स्थापित करने के पक्ष मे पाच बडे राष्ट्रो का कोलबो सम्मेलन आयोजित किया। जून 1954 मे भारत और चीन की सरकारो ने पचशील' या शाति के पाच सिद्धाता पर दृढ रहने के बारे मे एक सयुक्त घोषणापत्र तैयार किया। अप्रैल 1955 मे भारत सरकार और चीन सरकार ने मिलकर बाडुग मे प्रथम अफ्रो एशियाई सम्मेलन आयोजित किया जिसमे अफ्रीका और एशिया के 29 देशो ने भाग लिया। इसमे कुल डेढ अरब की सयुक्त आबादी यानी विश्व की आबादी के बहुमत का प्रतिनिधित्व हुआ और विश्वशाति तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता के लक्ष्यो की घोषणा की गई। निश्चित रूप स यह विश्व के नए सतुलन का एक रहस्योद्घाटन था। 1955 की समाप्ति तक सोवियत नेताओ की भारत यात्रा से अभूतपूव जनउत्साह की झलक मिलती है। 1956 म भारत ने स्वज युद्ध मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति का सावजनिक रूप से विरोध किया। यह युद्ध अरब देशो की मुक्ति के खिलाफ इसराइल के साथ साठगाठ करके आग्ल फ्रासीसी साम्राज्यवाद द्वारा सचालित था।

बाडुग सम्मेलन से उदघाटित नए विश्व सतुलन से पश्चिमी साम्राज्यवाद, खासतौर से ब्रिटिश और अमरीकी साम्राज्यवाद, चौक पडा। उन्होने देखा कि राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवाद के पक्ष मे तथा साम्राज्यवाद के विरोध मे नवस्वाधीन देशा के उभरते समूह को नेतृत्व देने के लिए विश्व की सर्वाधिक आबादी वाले दो देशा, भारत और चीन के बीच मैत्री और सहयोग साम्राज्यवाद के भविष्य के लिए कितना घातक हो सकता है, इस मैत्री और सहयोग मे उन्हे विश्व समाजवाद की अनिवाय विजय का माग दिखाई पडा। इसलिए उनका समूचा प्रयास, भारत मे प्रतिक्रियावादी इजारेदार शक्तियो के साथ मिलकर भारत और चीन सरकार की मैत्री को तोडने पर केंद्रित हो गया। इस उद्देश्य के लिए भारत-चीन सीमा समस्या का अनुचित लाभ उठाया गया तथा मैत्री और सहयोग के स्थान पर सघष और युद्ध को स्थापित करने के लिए समूचे मसले को भडकाया गया।

1962 का भारत चीन सीमा युद्ध एक अप्रिय घटना थी। अतर्राष्ट्रीय सबधो म तथा भारत म इसके हानिप्रद नतीजे हुए। व्यवहार रूप मे यह युद्धविराम के साथ समाप्त

हुआ पर कोई समझौता न हो सका। फिर भी, पश्चिमी साम्राज्यवादी देशो और भारत मे बडे व्यापारी वग के बीच उनके प्रतिक्रियावादी सहयोगियो का मुख्य उद्देश्य पूरा हो गया, उन्होने अपने निजी हितो के लिए इस मसले का अनुचित लाभ उठाया। भारत सरकार और चीन सरकार के बीच मैत्री और सहयोग समाप्त हो गया और उसका स्थान सघष ने ले लिया। अमरीकी और ब्रिटिश साम्राज्यवादियो को भारत मे अपनी स्थिति मजबूत करने का अवसर मिला। भारत के अदर वामपथी प्रगति को रुकावट का सामना करना पडा और अधराष्ट्रवाद के उन्माद की लहर चल पडी। वामपथी आदोलन छिन्न भिन्न हो गया। कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन हो गया, अनेक लोग जेलो मे डाल दिए गए और बाद के वर्षो मे इस विभाजन ने फूट का रूप ले लिया। मत्रिमडल म नेहरू के प्रमुख वामपथी सहयोगी रक्षामत्री कृष्ण मेनन के विरुद्ध दुष्प्रचार किया गया और उन्ह मत्रिमडल से निकाल दिया गया। दरअस्ल उन्हे ससद मे काग्रेस का प्रतिनिधित्व करने मे भी वचित कर दिया गया। 1969 मे पश्चिम बगाल मे वे सयुक्त मोर्चे की मदद से निदलीय सदस्य के रूप मे चुनाव जीतकर ससद म आ सके। यह दक्षिणपथी अभियान नेहरू के भी विरुद्ध दिशा लेने लगा था पर इसी बीच उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार नेहरू के अतिम दिना पर अप्रिय अनुभवो के बादल छाए थे बाडुग के उत्साह का स्थान चीन के साथ हुए सघष ने ले लिया, गुटनिरपक्ष राष्ट्रो के बीच भारत की प्रतिष्ठा और नेतत्व कमजोर पड गया और सीमा के प्रश्न पर इनमे से अधिकाश ने भारत को अपना समथन नही दिया, आर्थिक और वित्तीय क्षेत्र मे साम्राज्यवादी घुसपैठ बढती गई। साथ ही विदेशी ऋणदाताओ न 'सहायता सघ' (कसाटियम) बनाकर खुलेआम सरकार की नीति को प्रभावित करने का दावा किया, आर्थिक ह्रास होता गया बेरोज गारी की सख्या मे तेजी से वृद्धि हुई और आम जनता की हालत बदतर होती गई, स्वय काग्रेस सगठन के अदर गुटबाजी और भ्रष्टाचार पनपने लगा तथा दक्षिणपथी प्रति क्रियावादी शक्तियो की चुनौती बढती गई। राष्ट्रीय पजीपति वग के नेतृत्व के अतगत अनुकूल उपलब्धि की सभावनाए भरपूर ढग से नेहरू के प्रधानमत्रित्व काल के सफल वर्षों म महसूस कर ली गई थी। उनकी सीमाओ और उनके नकारात्मक पहलुओ का अब तेजी से अनुभव किया जा रहा था। स्थितिया एक नए युग के लिए तैयार हो रही थी और इसके लिए भारतीय जनता के एक नए प्रयास की आवश्यकता थी।

1964 म नेहरू क निधन के बाद आर्थिक स्थिति मे तथा काग्रेस से सबद्ध पुरानी सत्ता रूढ सस्थाओ म और भी तेजी से गिरावट आई। विदेशी सहायता पर बढती निभरता, घाटे का बजट, मुद्रास्फीति, खाद्यान्नो का भारी मात्रा म आयात, उत्पादन की गति म धीमापन तेजी स बढती बेरोजगारी, वास्तविक मजदूरी म गिरावट और आम जनता के उपभोक्ता स्तरो का बिगडते जाना इन सारी बातो मे सकेत मिलता था कि भारत अत्यत गभीर स्थिति म प्रवेश कर रहा है और य स्थितिया जनता की व्यापक हलचल का नेतृत्व करेंगी तथा इनके दूरगामी राजनीतिक प्रभाव होंगे।

सरकारी तालिका मे दज औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि 1960 मे 11 प्रतिशत से घटकर 1964 मे 7 प्रतिशत, 1965 मे 5 4 प्रतिशत और 1966 म 2 5 प्रतिशत हो गई। नेहरू ने अपने अतिम दिना मे इसपर खेद प्रक्ट ही किया था कि धनी और गरीब के बीच खाई बढती जा रही है। 1953-57 और 1960-61 के बीच आय के वितरण के बारे मे रिजव बैंक आफ इडिया के एक सर्वेक्षण से पता चला कि इस अवधि के दौरान आबादी के सर्वोच्च 10 प्रतिशत लोगो की राष्ट्रीय आय मे 28 से 37 प्रतिशत की हिस्सेदारी बढी है जबकि निम्न आयवग के 40 प्रतिशत लोगो की हिस्सेदारी म 20 से 13 प्रतिशत की कमी हुई है। इडियन लेबर जनल द्वारा अकित वास्तविक आय तालिका (1951 को 100 मानकर) देखने मे पता चलता है कि 1956 मे यह 115 4 थी जो मे 1960 मे 113 8 और 1964 मे 104 1 हो गई। खाद्यान्नो की वार्षिक खपत 1961 62 मे 375 पौंड प्रति व्यक्ति से घटकर 1666 67 मे 233 पौंड प्रति व्यक्ति हो गई। 1961-62 मे प्रति व्यक्ति 16 2 गज सूती कपडा इस्तेमाल हुआ, 1966 67 मे यह घटकर 15 1 गज हो गया।

जून 1966 मे रुपये का अवमूल्यन हुआ जिसने पहले से ही चली आ रही ह्रासोन्मुख स्थिति पर जबरदस्त प्रहार किया। यह अवमूल्यन आश्चयजनक रूप से $36\frac{1}{2}$ प्रतिशत की ऊची दर से हुआ। इसके फलस्वरूप पौंड की विनिमय दर 13 रुपये से बढकर 21 रुपये हो गई। यह जबरदस्त अवमूल्यन अमरीकी साहूकारा (बैंकरो) के दबाव से किया गया था जिन्ह विश्वबैंक द्वारा खुलेआम स्वर दिया गया था। इसके नतीजे विध्वसकारी थे। चूकि अब भी भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली चीजो मे मुख्यतया प्राथमिक वस्तुए (प्राइमरी कमाडिटी) थी जिनसे विश्व बाजार पहले से ही भरा पडा था इसलिए भारतीय निर्यात को कोई उल्लेखनीय प्रतिसतुलनकारी लाभ नही मिला। लेकिन निर्यात की बढती हुई लागत काफी थी और इसकी अभिव्यक्ति कीमतो मे बेतहाशा वद्धि तथा मुद्रास्फीति मे हुई जिसके फलस्वरूप पहले से ही भुखमरी की स्थिति मे गुजर कर रही आम जनता पर और भी भार पडा। अवमूल्यन के जरिए विदेशी ऋण पर ब्याज और चुकौती की दर बढकर 13 अरब 69 करोड रुपये या 65 करोड पौंड हो गई।

भारतीय स्थिति की इन कठिनाइयो का फायदा उठाने के लिए पश्चिमी साम्राज्यवादी देशा और खासकर अमरीकी सरकार तथा अमरीकी साहूकारा (बैंकस) ने अपना फदा और कस दिया। 'सहायता' के नाम पर अधिक से अधिक खगोलीय आकृतियो को थोडा थोडा करके बाटा गया जो व्यवहार मे दानकर्ता के पास ही वापस पहुच गया और उसे पहले की सहायता की दर पर भुगतान कहा गया। दरअसल हिसाब लगाने से पता चला कि कुछ ही वर्षों के अदर ब्याज और चुकौती की राशि कुल सहायता से अधिक हो जाएगी।

> 'वतमान परिप्रेक्ष्य के आधार पर, जो 1980-81 तक जाएगी, भारत को समूचे 15 वर्षों मे लगभग 18 अरब डालर की विदेशी सहायता की जरूरत पडेगी। इसी अवधि के दौरान भुगतान की जाने वाली ब्याज राशि और चुकौती

राशि 14 अरब डालर हो जाएगी। वस्तुत 1975 के बाद सभावित चुकौती राशि पूजी के सभावित अतर्वाह् को पीछे छोड देगी।'
(इकनोमिस्ट, 8 अप्रैल 1967)

जैसे जैसे दबाव बढता गया शर्तें और कठोर हो गई अमरीकी उत्पादन के मानदडो (भारत जिसे दबाव कहता है), जो भविष्य मे सहायता सबधी वायदो को सचालित करेंगे भारतीय और विदेशी निजी उद्योगो की और बडी भूमिका, अपेक्षाकृत कम नियत्रण, अमरीकी (और विश्वबैंक) निर्धारणो के अनुरूप आर्थिक क्षेत्र मे सुधार करने की इच्छा की बात खुलकर करता रहा है। ('दि टाइम्स' के वाशिगटन सवाददाता की टिप्पणी, 3 मई 1966)

इसी प्रकार 'टाइम्स' के वाशिगटन स्थित सवाददाता ने लिखा कि 'अमरीका को अब इस बात की चिता नही है कि वह जबरदस्त दबाव के होने की बात का खडन करे।' उक्त सवाद दाता ने अपने लेख मे भारतीय अर्थव्यवस्था मे विदेशी निजी पूजी के स्थान' पर और वतमान कानून एव नियत्रणो मे परवर्ती सशोधन की बात पर विशेप बल दिया। अमरीकी काग्रेस ने कुख्यात फूड ऐक्ट पी० एल०-480 को भारत मे अमरीकी उद्देश्या के लिए उपलब्ध पूरक राशि की सुविधा के साथ स्वीकार करके कानून मे निश्चित रूप से यह बात शामिल कर दी कि इसका लक्ष्य भारत म 'निजी उद्योग और पूजीनिवेश के लिए अनुकूल वातावरण' तैयार करना होना चाहिए।

यह वह स्थिति थी जिसने वतमान शासन और काग्रेस सरकार के विरुद्ध तेज होते जन विद्रोह को जन्म दिया जो 1967 के आम चुनाव के समय बहुत स्पष्ट रूप म सामने आ गया। जनता के अदर काफी दिनो से गुस्सा दबा पडा था और विगत 12 महीना मे लगातार हो रही आम हडतालो सामूहिक रूप से काम बद करने, ससद तक जुलूस ले जाने और विशाल प्रदशनो तथा पुलिस के साथ मुठभेडो म इस गुस्से की अभिव्यक्ति हो चुकी थी। इसी अभिव्यक्ति को 1967 के आम चुनाव मे और भी प्रकट होने का अवसर मिला और जनता न अनेक काग्रेस मत्रियो और नेताओ का चुनाव म सफाया कर दिया तथा कई स्थानो पर काग्रेस के बहुमत को समाप्त कर दिया। लोगो के गुस्से की यह अभिव्यक्ति चुनाव सबधी ससदीय प्रतिनिधित्व के मसले पर आशिक रूप से भटकाव म पड गई क्योकि इसी समय कम्युनिस्ट पार्टी मे फूट पड गई और उसके टुकडे हो गए। इससे पहले चुनाव मे कम्युनिस्ट पार्टी को हमेशा दूसरा स्थान मिलता रहा था और उसे लोग इस रूप म मानने लगे थे कि वह काग्रेस को चुनौती दे सकती है और भविष्य म काग्रेस का विकल्प प्रस्तुत कर सकती है। पार्टी मे फूट पड जाने मे राष्ट्रीय स्तर पर कोई ऐसी सयुक्त वामपथी शक्ति नही बच रही जो एक साथ मिलकर जनता की मागो को और उनके विद्रोह को आगे बढाने म शक्तिशाली भूमिका अदा कर सके। फलस्वरूप इस

फूट से विभिन्न दलो ने लाभ उठाया हालाकि काग्रेस की भूतपूव एकाधिकारी स्थिति से वामपथ की तरफ झुकाव देखा गया हालाकि यह झुकाव भी एकजुटता के साथ नही था। लेकिन कुछ अन्य राज्यो मे अपक्षाकृत नई दक्षिणपथी पार्टियो के पक्ष मे झुकाव की घटनाए मुख्य रूप से सामने आई। इन विविध नतीजो से कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकला कि किसी एक सयुक्त वामपथी दल के अभाव मे मतदाताओ ने उस पार्टी को समथन देना शुरू किया जिसके बारे म उनका ख्याल था कि वह काग्रेस के एकाधिकारपूण प्रभुत्व को समाप्त करने मे प्रभावशाली होगी। पहले के चुनाव समझौता के आधार पर जहा सयुक्त मोर्चे की सरकार थी, जैसे कि केरल म, वहा उन्ह पूरी तरह सफलता मिली। 1969 के मध्यावधि चुनाव मे यह बात पश्चिमी बगाल मे बहुत खुलकर सामने आई। इस अनुभव ने प्रगति के भावी पथ का सकेत दिया और लोगो ने यह महसूस किया कि यदि वामपथी एकता हो तो यह प्रगति उपलब्ध की जा सकती है।

कम्युनिस्ट पार्टी का दो दलो मे (बाद मे तीन दला मे) अस्थाई विघटन वामपथी एकता की प्रगति के माग मे सबसे गभीर बाधा बना। इसकी वजह यह थी कि कम्युनिस्टो की सख्या अन्य वामपथी दलो के सदस्या की मख्या की तुलना मे सबसे ज्यादा थी और वे सबमे अधिक शक्तिशाली थे। 1967 के आम चुनाव मे दोनो दलो के मिलेजुले कम्युनिस्ट सदस्यो की कुल सख्या 44 थी जबकि 1962 के चुनाव मे इनकी सख्या 30 ही थी। इससे यह पता चलता है कि यदि पार्टी म फूट नही पडी होती तो कम्युनिस्टो का स्थान अब भी काग्रेस के बाद पहले नबर पर होता। लेकिन बटवारा होने के परिणामस्वरूप दक्षिणपथी दल स्वतत्र पार्टी को दूसरा स्थान मिला। इसके सदस्यो की सख्या 18 से बढकर 42 हो गई और इस प्रकार इसे आधिकारिक तौर पर विपक्षी दल का दर्जा मिल गया। इसके बाद दूसरी मुख्य प्रतिक्रियावादी पार्टी जनसघ का स्थान रहा और इसके सदस्यो की सख्या 14 से बढकर 35 हो गई। ऐसे समय मे, जबकि, अब तक की प्रबल काग्रेस नीतियो के विरुद्ध व्यापक असतोष से एक नई दिशा की माग जोर पकडती जा रही थी, दक्षिणपथी प्रतिक्रियावाद की यह प्रगति सभावित खतरे का सूचक थी। दो प्रमुख दक्षिणपथी पार्टियो, स्वतत्र और जनसघ को कुल 3 करोड वोट मिले जबकि दोनो कम्युनिस्ट पार्टिया का प्राप्त मतो की सख्या 1 करोड 30 लाख थी।

ये दक्षिणपथी पार्टिया, पुरानी दकियानूस प्रवृत्तियो को प्रतिबिंबित करती थी और ये अपक्षाकृत नई पार्टिया थी जिनका उद्देश्य काग्रेस के विघटन से फायदा उठाना था। स्वतत्र पार्टी की स्थापना 1959 मे हुई और इसकी स्थापना काग्रेस के उन अत्यत दकियानूस तत्वो ने की थी जो काग्रेस द्वारा घोषित समाजवाद' के कायक्रम और सावजनिक क्षेत्र पर बल दिए जाने से असतुष्ट थे। इस पार्टी को इजारेदारा का समथन प्राप्त था जिनकी साठगाठ पुराने सामती राजाओ के साथ थी। इन महाराजाओ और महारानियो ने पिछडे क्षेत्रा की अपनी भूतपूव शासित जनता मे चुनाव म खुद वोट लेने के लिए फिर अपना सर उठाना शुरू कर दिया। यह पार्टी अत्याधुनिक अमरीका प्रशसक बडे व्यापारियो

और अति पुरातन फैशनेबुल राजकुमारों का सही अर्थों मे एक रूढिवादी सगठन थी। जनसघ ने पुराने प्रतिक्रियावादी हिंदू साप्रदायिकता के ताजा नतीजा का प्रतिनिधित्व किया। जनता मे फूट डालने के लिए साम्राज्यवादियो ने इस प्रवृत्ति को काफी बढावा दिया था। साप्रदायिक आतकवादी सगठन राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ पर, जिसके सदस्य गोडसे ने गाधी की हत्या की, जब 1948 मे प्रतिबध लगाया गया तो इसके राजनीतिक बाजू हिंदू महासभा की काफी बदनामी हुई। 1951 मे जनसघ की स्थापना उन्ही लोगो ने की जो उस परपरा को आगे बढा रहे थे। इसके कायक्रम मे जो बातें शामिल थी वे थी अध देशभक्ति (हारे हुए क्षेत्रो को वापस लेना)', सेना का विस्तार, परमाणु हथियारो का शस्त्रीकरण। साधुओ के साप्रदायिकतावादी जनोत्तेजक प्रदशनो का आयोजन और गो हत्या पर प्रतिबध लगाने के लिए (इस नारे की गाधी ने काफी पहले भत्सना की थी) सघीय कानून की माग। साथ मे सावजनिक क्षेत्र को सीमित करने के लिए महत्वपूण आर्थिक माग भी शामिल थी 'राज्य द्वारा अनावश्यक दखलदाजी किए बगैर निजी उद्योग को आगे बढने दिया जाना चाहिए।'

दक्षिणपथ के आक्रामक खतरे को देखते हुए हाल के वर्षों मे वामपथी एकता की दिशा मे उल्लेखनीय प्रगति हुई है और लोकप्रिय जनतान्त्रिक शक्तियो मे एकजुटता आई है। राज्यों के महत्वपूण चुनावो मे सयुक्त मोर्चे को सफलताए मिली और सयुक्त मोर्चा सरकारो की स्थापना हुई जिनमे दोनो कम्युनिस्ट पार्टियो तथा काग्रेस के अदर के जन तान्त्रिक तत्वो ने भाग लिया। इसके बाद 1969 के ग्रीष्म मे काग्रेस सरकार की प्रधान मत्री श्रीमती इदिरा गाधी ने 'सिंडीकेट' या पुरानी काग्रेस के सस्थापित प्रतिक्रियावादी नेताओ की खुलेआम अवहेलना करके 14 बको का राष्ट्रीयकरण किया और दोना कम्युनिस्ट पार्टियो के सावजनिक समथन तथा वामपथ के जन आदोलन के जरिए राष्ट्र पति गिरि का चुनाव कराया।

नई राजनीतिक मजिल की दिशा मे व्यापक जनतान्त्रिक प्रगति की ये शुरुआतें अब भी अनिश्चितता से भरी है और सक्रमण के इस अस्थिर दौर के खतरे स्पष्ट है। प्रतिक्रियावाद विभिन्न रूपो म जवाबी हमले की तैयारी कर रहा है। इन रूपो मे प्रतिक्रियावादी पार्टिया और काग्रेस के दक्षिणपथी खेमे के एक वैकल्पिक गठजोड की योजना और यहा तक की जनतत्र के मूल आधार के लिए खतरे का सकेत भी शामिल है।

भारत की जनता अब उठ चुकी है। भारत आज महान सघर्षो और दूरगामी रूपातरणो के एक नए युग मे प्रवेश कर रहा है। उस तूफानी अग्नि पराक्षाओ और चुनौतियो से होकर गुजरना है। अभी तक अपूण भारतीय क्राति तथा भारतीय जनता की आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति के सभी महान काय मजबूती के साथ जमते जा रहे है और व मौजूदा अस्थिर तथा तजी स बदलते सक्रमण काल और गभीर राजनीतिक अतर्विरोधो को उभारित कर रहे हैं। जनता की इस प्रगति के समानातर ही दक्षिणपथ का खतरा

भी चल रहा है। आर्थिक स्थिति, कृषि के क्षेत्र मे सकट, व्यापक भूख और बेरोजगारी, समृद्धि और निधनता के बीच की बढती खाई, ये सारी तात्कालिक समस्याए आज समाधान के लिए फरियाद कर रही हैं। कम्युनिस्ट आदोलन एव सभी जनतान्त्रिक तथा प्रगतिशील तत्वो की मिलीजुली ताकत से ही आम जनता को एकजुट किया जा सकता है ताकि वह अपने सामने खडे खतरा को शिकस्त दे सके, अपनी समस्याओ को हल करने का रास्ता अख्तियार कर सके और आगामी कल के भारत का, मेहनतकशों के भारत का निर्माण कर सके।

2 अक्तूबर 1969 — **रजनी पाम दत्त**

1

आधुनिक विश्व मे भारत

> मानवीय घटनाओ के क्रम म जब किसी एक जन समुदाय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह उन राजनीतिक बधनो को रद्द कर दे जिसने उन्ह दूसरे से जोडा है और पृथ्वी की शक्तियो मे से पृथक और समान स्थान ग्रहण कर ले जिसके लिए प्रकृति के नियमा और प्रगति के नियता ने उन्ह अधिकार दिया है तो मानव जाति के अभिमत को मर्यादित सम्मान देने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे उन कारणो की घोषणा करें जिन्होने उन्हे पृथक रहने के लिए प्रेरित किया है (अमरीकी स्वाधीनता की घोषणा।)

भारत का भविष्य आज विश्व राजनीति के समक्ष अनेक ज्वलत प्रश्नो मे से एक है। भारत की 40 करोड जनसख्या, समूची मानव जाति का लगभग पाचवा हिस्सा है। पिछले *दो सौ वर्षों से भारत की जनता विदेशी शासन के अधीन है। आज उस विदेशी शासन की* समाप्ति की घडी नजदीक आ गई है।

विश्व स्तर पर देखें तो आधुनिक जगत म साम्राज्यवादी प्रभुत्व बने रहने का सबसे बडा और सर्वाधिक महत्वपूण आधार है, भारत की गुलामी। सदियो से इस विशाल भूभाग की सपत्ति और स्रोत, यहा की जनता का जीवन और उसका श्रम, पश्चिमी पूजीवाद की घुसपैठ, आक्रमण और विस्तार तथा अतत पूण प्रभुत्व और जबरदस्त शोषण का लक्ष्य रहा है। इस व्यवस्था की समाप्ति सपूण मानवजाति के पाचवे हिस्से के लिए मात्र एक नए भविष्य का सूत्रपात ही नही करेगी बल्कि वह विश्व सबधो के सतुलन मे निर्णायक परिवतन लाएगी। साथ ही वह साम्राज्यवाद की व्यवस्था को और कमजोर तथा समूचे

विश्व मे जनता के स्वातंत्र्य सग्राम को और अधिक मजबूत भी करेगी। भारत की मुक्ति के साथ स्वतत्र चीन का उदय, एशिया की जनता तथा अन्य सभी उपनिवेशो की जनता की मुक्ति का माग प्रशस्त होगा।

आधुनिक विश्व की सभी समस्याओ और सघर्षों को भारत मे अपना केंद्रबिंदु मिलता है। यहा आधुनिक विजेताओ के दुर्दम्य भार के नीचे पिस गई और निष्क्रिय हो गई प्राचीन ऐतिहासिक सभ्यता के अवशेषो के बीच आदिम अथव्यवस्था, गरीबी और गुलामी के निकृष्टतम रूप के साथ साथ महाजनी पूजी के शोषण का अत्याधुनिक स्वरूप भी मिलगा। यहा कृषि के क्षेत्र मे गभीर सकट तथा अकाल की स्थिति है, लोग कज का पैसा चुक्ता न कर पाने के कारण गुलामी करने पर मजबूर होते है, जाति और कुजात की बेडियो मे लोग जकडे हुए है, औद्योगिक क्षेत्र मे असीम शोषण है तथा अमीर और गरीब के बीच इतनी चौडी खाई है जितनी विश्व के किसी भी देश मे नही मिलेगी, सामाजिक एव धार्मिक सघष, वगसघष तथा भारत के अदर उभरते राष्ट्रीय मसले, य सारी समस्याए अपने अनेक पहलुओ मे किसी गुलाम देश के पिछडेपन और अवरुद्ध विकास को प्रतिबिंबित करती ह तथा विदेशी प्रभुत्व के दबाव के फलस्वरूप साम्राज्यवादी शासन से मुक्ति की मुख्य समस्या के साथ स्वय को सामने लाती हैं और मुक्ति के लिए सघप की स्थितियो को जटिल बनाती है।

भारत आज जबरदस्त आर्थिक, राजनीतिक क्राति के युग म प्रवेश कर रहा है। इस क्राति का पहला चरण होगा, विदेशी शासन से मुक्ति और पूण स्वाधीनता की प्राप्ति। लेकिन यह निकट आती जा रही मुक्ति उन भीपण आतरिक समस्याओ, सामाजिक तनावो और सघर्षों को सामने ला देगी जो सदियो के विदेशी प्रभुत्व के कारण इकट्ठे हो गए है, जिन्होन विकास की गति को अवरुद्ध कर दिया है और जो आज समाधान के लिए फरियाद कर रह हैं। भारत की जनता का आज राष्ट्रीय और सामाजिक पुनरुद्धार का महत्वपूण काय पूरा करना है।

1 स्वाधीनता की पूव सध्या मे भारत

फासिस्ट शक्तिया पर सयुक्त राष्ट्र की विजय के फलस्वरूप नई विश्व परिस्थिति न भारतीय स्वतत्रता के प्रश्न को विश्व राजनीति की अग्रिम पक्ति म ला खडा किया है।

1914 18 के प्रथम विश्वयुद्ध न और उसी अनुक्रम म विश्व भर म फैली क्रातिकारी लहर न अन्य उपनिवेशो की तरह भारत म भी महान परिवतनो के युग का सूत्रपात किया। 1919-22 म जबरदस्त जनसघर्षों न भारत को झकझोर दिया और 1930-34 म (विश्व आर्थिक सकट के बाद जिसका सबस अधिक असर भारत पर पडा) पहल से भी ज्यादा तजी क साथ इसकी पुनरावृत्ति हुई। ब्रिटिश शासक न इस उफनते राष्ट्रीय आदोलन का मुकाबला कभी सुधारो और कभी दमन के द्वारा करना चाहा। भावी स्वशासन के वायदा

के साथ साविधानिक रियायते पेश की गइ जिनसे वास्तविक मत्ता सबधो म कोई तबदीली नही आई। इन साविधानिक रियायतो के फलस्वरूप 1937 मे ग्यारह मे से आठ प्राता म राष्ट्रीय काग्रेस के प्रातीय मत्रिमडल का गठन हुआ, लेकिन इससे दिनोदिन बढता असतोप कम नही हुआ, उल्टे उसे और प्रोत्साहन मिला। 1939 मे युद्ध छिडने के समय, जनता पर थोपने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा तैयार किए जा रहे सघीय सविधान के विरुद्ध आजादी के लिए एक जबरदस्त सघप का वातावरण बन चुका था। किसी सलाह मशविरे या जनता के अनुमोदन का दिखावा किए बिना युद्ध मे भारत को घसीट लाने तथा आपात-कालीन युद्ध तानाशाही से शासको और जनता के बीच की खाई और बढी।

द्वितीय विश्व युद्ध से भारतीय मुक्ति के प्रश्न को नया महत्व मिला। सयुक्त राष्ट्र ने आधि कारिक तौर पर अपने इस लक्ष्य की घोपणा की कि, 'प्रत्येक देश की जनता को अपनी सरकार स्वय चुनने का अधिकार है।' प्रथम विश्वयुद्ध के विपरीत, सयुक्त राष्ट्र के सगठन ने चार बडी शक्तियो के नेतत्व मे एक सयुक्त निकाय का गठन किया जिसमे दो साम्राज्यवादी राष्ट्र ब्रिटेन और अमरीका के अलावा दो गैर साम्राज्यवादी शक्तियो, राष्ट्रवादी चीन और समाजवादी सोवियत सघ को शामिल किया गया। ममूची दुनिया मे शक्तिशाली राष्ट्रीय मुक्ति आदालन फासीवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतत्रता के लिए सघप कर रहे थे। इसमे कोई आश्चय नही कि ऐसी विश्व परिस्थिति मे भारतीय जनता भी पूरी शिद्दत के साथ उसी राष्ट्रीय स्वतत्रता की माग करती जिसके लिए तमाम लोग सघप कर रहे थे और जिसमे प्राणो की आहुति देने के लिए भारतीय सैनिको को बुलाया जा रहा था।

एशिया म युद्ध की विशेप परिस्थितियो ने इस आवश्यकता को और बढा दिया। एशिया मे ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रभुत्व ने जब तक अपनी आत्मघाती मूखता के कारण जापानी आक्रमण और विस्तार का बढावा दिया था, लेकिन वही आक्रमण जब पल हावर के बाद सीधे आगे बढने लगा तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीव हिल गई। प्राचीन उपनिवेशवादी व्यवस्था के दिवालियेपन और भीतरी खोखलेपन की उस समय सबके सामने पोल खुल गई जब दक्षिण पूव एशिया के बडे बडे इलाके लगभग बिना किसी प्रतिरोध के आक्रामका के हाथ मे आ गए। हा, कुछ स्थानो पर विदेशो से बुलाए गए सैनिको ने उन इलाका को बचाने का प्रयास किया पर उन्हे सफलता नही मिली क्योकि विदशी शासक उस जनता को, जिसपर वे शासन करते थे, आदोलित करने मे पूरी तरह अक्षम साबित हुए।

इस रहस्योद्घाटन का भारतीय जनमानस पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। ब्रिटेन को अप-राजेय शक्ति मानने का भ्रम टूट ही गया। जापानी सैनिक आगे बढते गए और उन्हाने भारत की सीमा का रौद डाला। धुरी शक्तिया ने भूतपूव काग्रेस अध्यक्ष सुभाप बोम, जिन्होंने खुद का उनके हाथो मे सौंप दिया था, और 'इडियन नेशनल आर्मी' का बडी कुशलता से इस्तेमाल किया और अपने आक्रमण तथा विजय के इरादो पर इस ढोग का

नकाब चढा लिया कि व भारत के लिए चिंतित है। स्वाधीन भारत के विरुद्ध इस तरह के प्रचार का कोई असर नही होता, लेकिन गुलाम भारत के सदभ मे देखने से पता चलता है कि इस प्रकार के प्रचार का अनिवाय रूप से एक हद तक असर पडा।

इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसम केवल जनतत्र के सिद्धातो के लिए ही नही वल्कि भारत और सयुक्त राष्ट्र के समूचे युद्धस्थल की रक्षा के लिए भारतीय मुक्ति का काय तेजी से होना आवश्यक हो गया। भारत के राष्ट्रीय नेताओ न दुनिया भर म फासिस्ट गठबधन के खिलाफ जनतात्रिक सघर्षो मे शामिल लोगो के हित और भारत के हित को समान हित मान लिया था। उन्होने उस समान हित को मान्यता दी, और ऐसे समय म भी जब ब्रिटेन के शासक फासिस्ट आक्रमण को मदद दे रहे थे और उसे शह दे रह थे, उन्होने फासीवाद का समथन करते वाली प्रतिक्रियावादी नीतियो का सक्रिय रूप से विरोध किया। उन्होंने इस बात को मान्यता दी कि धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध सयुक्त राष्ट्र के युद्ध मे भारत का हित फासीवाद की पराजय और उस खेमे की विजय के साथ जुडा हुआ है जिसमे राष्ट्रवादी चीन, समाजवादी सोवियत सघ तथा यूरोप के जनतात्रिक मुक्ति आदोलन शामिल है। लेकिन उन्होने यह माग की, जो बिल्कुल ठीक थी, कि भारत को स्वतत्रता मिलनी चाहिए और यह स्वतत्रता भारतीय राष्ट्रीय सरकार के अधीन हो, साथ ही उसके पास पूण और कारगर अधिकार होने चाहिए ताकि वह सयुक्त राष्ट्र के गठबधन मे स्वच्छा से बने भागीदार के रूप मे भारतीय जनता की शक्ति को एकजुट कर सके। यह माग सयुक्त राष्ट्र के हितो के अनुकूल थी। इसको सयुक्त राष्ट्र के सभी देशो के जनतात्रिक विचारधारा वालो ने ही समथन नही दिया बल्कि ब्रिटेन के मित्रो, खास तौर से राष्ट्रपति रुजवल्ट और मार्शल च्याग काई शेक, ने अपने अपने आधिकारिक क्षेत्रो से इसका समथन किया।

किंतु द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति भी भारत म आजादी नही ला पाई। ब्रिटेन म टोरी वाद (अनुदार दलीय सरकार) के दिन थे और टोरी शासको ने भारत को आजादी देने के हर प्रस्ताव का दुराग्रहपूण ढग से विरोध किया। यहा तक कि युद्धकालीन स्थिति का देखत हुए किसी ऐसे अस्थाई समझौते के प्रस्ताव का भी उन्होने विरोध किया जिसमे भारत के लोकप्रिय नताओ के हाथ म प्रभावकारी सत्ता पहुच सकती थी। चर्चिल का सूत्र वाक्य कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के समापन की अध्यक्षता करन के लिए ब्रिटेन के प्रधानमत्री पद पर नही बैठे है' खतरो और कठिनाइयो से भरे अत्यत सकटपूण दिनो म भी ब्रिटिश नीति को सचालित करता रहा। 1942 का क्रिप्स समझौता भग हो गया। तत्कालीन परिस्थिति म उत्पन्न दुविधा म हताश और बिखरा हुआ राष्ट्रीय आदोलन अगस्त प्रस्ताव के बाद पैदा हुए गतिरोध के दलदल म फस गया। भारत के राष्ट्रीय नता जेला म डाल दिए गए और नताओ की गिरफ्तारी के विरोध म अनधिकारिक तौर पर जो छिटपुट आदोलन हुए और उनम जो अव्यवस्था फैली उसे आसानी से दबा लिया गया। युद्ध के बाद भी भारत की हैसियत गुलाम देश की ही रही और राजनीतिक गतिरोध की स्थिति बनी रही।

लेकिन फासीवाद पर सयुक्त राष्ट्र की विजय ने एक नई परिस्थिति को जन्म दिया। समूची दुनिया म फासिस्ट शक्तियो की सैनिक पराजय और उनका पूरी तरह धराशायी होना 1917 के दिनो के बाद प्रतिक्रियावाद पर हुआ सर्वाधिक जबरदस्त प्रहार था। सभी देशो मे जन आदोलनो की लहर उमड पडी। साम्राज्यवाद बेहद कमजोर हो गया। जमन, इतालवी और जापानी साम्राज्यवाद का दुनिया के नक्शे से सफाया हो गया। बस केवल दो वडे साम्राज्यवादी देश, ब्रिटेन और अमरीका, कायम रह सके और इनके साथ फास, वेल्जियम, हालैड और पुतगाल जैसे अधीनस्थ उपनिवेशवादी साम्राज्या का अस्तित्व बना रह सका। यूरोप मे नई जनतात्रिक सरकारो ने उन पुरानी दकियानूसी सरकारो का स्थान ले लिया जिन्होन फासीवाद के समक्ष या तो आत्मसमपण कर दिया था या फासीवाद के साथ गठबधन कर लिया था। ब्रिटेन मे टोरीवाद को चुनाव मे करारी हार मिली और उसके स्थान पर पहली बार लेबर पार्टी के बहुमत की सरकार ने सत्ता सभाली। समूचे एशिया मे उपनिवेशवाद विरोधी मुक्ति आदोलन तेज होते गए, और इडोनेशियाई गणराज्य आग्ल-डच साम्राज्यवाद तथा उसकी जापानी सेना के सैनिक प्रहार के विरुद्ध डटा रहा। भारत मे आजादी की व्यापक माग तथा राष्ट्रीय विद्रोह का आदोलन 1945 46 की सर्दियो मे पराकाष्ठा पर पहुच गया और इसकी अभिव्यक्ति हिंदू-मुस्लिम एकता सबधी जनप्रदशना मे तथा सेना तक राष्ट्रीय विद्रोह के विस्तार म हुई।

इस परिस्थिति ने नई लेबर सरकार के निर्देशन मे ब्रिटिश नीति को तेजी से एक मोड लेने के लिए मजबूर किया। 19 फरवरी 1946 को लेबर सरकार के प्रधानमत्री श्री एटली ने कैबिनेट मिशन को भारत भेजने के निणय की घोपणा की। 15 माच को इस मिशन की रवानगी के अवसर पर श्री एटली ने एलान किया

> अतीत के फार्मूले को वतमान स्थिति पर लागू करना हितकर नही है। 1946 का तापमान वही तापमान नही है जो 1920 मे, 1930 मे या यहा तक कि 1942 मे था
>
> जनमत की गति और वेग को महायुद्ध से ज्यादा कोई भी चीज तेज नही करती है। कोई भी व्यक्ति जिसका युद्ध के प्रारभिक दिनो मे इस प्रश्न से कुछ भी सरोकार रहा होगा उसे यह पता है कि 1914 18 के युद्ध का भारतीय आकाक्षाओ और विचारो पर क्या प्रभाव पडा। जो लहर शातिकाल मे अपेक्षाकृत मद गति से उठती है वह युद्धकाल म प्रचड हो जाती है और ऐसा खासतौर से युद्ध के तत्काल बाद होता है क्योकि युद्ध के दौरान वह लहर कुछ हद तक कगारो से बधी रहती है। मुझे पक्का यकीन है कि इस समय राष्ट्रीयता की लहर भारत मे और सच कहे तो समूचे एशिया मे बडे वेग से बह रही है
>
> भारत को खुद यह तय करना चाहिए कि उसकी भावी स्थिति क्या होगी और

> विश्व म उसका क्या स्थान होगा। मुमकिन है कि सयुक्त राष्ट्र के जरिए या राष्ट्रमडल के जरिए एकता स्थापित हो जाए लेकिन कोई भी महान राष्ट्र विश्व की घटनाओ मे हिस्सा बटाए बगैर अकेले टिका नही रह सकता।
>
> मुझे आशा है कि भारत शायद ब्रिटिश राष्ट्रमडल के अतगत रहना चाहे। मुझे विश्वास है कि ऐसा करने मे उसे काफी फायदा होगा लेकिन यदि वह ऐसा करता है तो उसे अपनी ही मर्जी से करना चाहिए क्योकि ब्रिटिश राष्ट्रमडल और ब्रिटिश साम्राज्य एक दूसरे के साथ किसी बाहरी बाध्यता से नही बधे है। यह स्वतत्र लोगो का स्वतत्र सगठन है।
>
> दूसरी तरफ, यदि वह स्वतत्रता चाहता है, और मेरे विचार से यह चाहने का उसे पूरा हक है, तो हमे चाहिए कि हम इस हस्तातरण को यथासभव आसान और बाधारहित बनाए।

यह बात ज्यादा से ज्यादा लोगो की जानकारी मे आई कि ब्रिटेन की सरकारी अभिव्यजना मे, भारत के सभावित लक्ष्य के सदभ मे 'स्वतत्रता' शब्द का पहली बार इस्तेमाल किया गया।

फिर भी भारत के अदर और भारत के बाहर अनेक क्षेत्रो म की जान वाली सहज आशाए कि कैबिनेट मिशन की रवानगी और इससे पहले ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावा का अथ भारत को स्वतत्रता देना है, बिल्कुल अधूरी आशाए थी। कबिनेट मिशन और तदनतर नए सावैधानिक प्रस्तावा के इतिहास की जाच हम अगले पृष्ठो मे करेंगे। इन समझौतो और उपायो का अतिम नतीजा व्यावहारिक अनुभव मे प्रदर्शित किया जाएगा। लेकिन यह सभाव्य है कि ऐतहासिक निणय से यह निष्कष निकलेगा कि वास्तव म ये प्रस्ताव भारतीय स्वाधीनता की शुरुआत के बजाय ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा सावैधानिक रूपातर और समझौते के प्रयत्नो की लबी श्रृखला की अतिम कडी थे।

1946 मे अब भी भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अग है। भविष्य मे स्वतत्रता का चुनाव करने के अधिकार के सदभ मे औपचारिक रियायत सविधान बनाने वाले निकाय के केवल उसी को अधिकार का इस्तेमाल करना है—पूवनिर्धारित और अप्रातिनिधिक चरित्र, सरचना तथा कायविधि के कारण अधिकाशत निष्प्रभाव कर दी गई है।

इस प्रकार आन वाले दिना मे साम्राज्यवाद को कुछ दिन और टिके रहने तथा नए रूपो मे भी साम्राज्यवादी प्रभुत्व कारगर ढग से बनाए रखन का प टा मिल जाएगा। भारतीय स्वतत्रता की लडाई अभी जीतनी है।

लेकिन आज किसी भी क्षेत्र मे व्यक्ति को यह सदेह नही है कि ऐतिहासिक घटनाक्रम की समूची धारा अब भारतीय स्वतत्रता के पक्ष मे है और यह कि निकट भविष्य मे भारतीयो को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाएगी।

यही वह सदर्भ है जिसके द्वारा हम आज के भारत, साम्राज्यवादी शासन के अतिम दिन, साम्राज्यवादी प्रभुत्व की लबी कहानी तथा भारतीय जनता की उफनती अग्रगति की जाच कर सकते हैं।

2 साम्राज्यवाद और भारत

सदियो से भारत आधुनिक साम्राज्यवादी विस्तार और प्रभुत्व का मुख्य आधार रहा है। भारत का क्षेत्रफल 1,808,679 वर्गमील है जो ब्रिटिश द्वीप समूह के क्षेत्रफल का पद्रह गुना और ग्रेट ब्रिटेन के क्षेत्रफल का बीस गुना है। भारत की जनसख्या 1941 की जन-गणना के अनुसार 38 करोड 90 लाख है और अनुमानत अब लगभग 56 करोड होगी जो सपूर्ण मानव जाति का लगभग पाचवा हिस्सा है।

भारत की 56 करोड आबादी ब्रिटिश साम्राज्य की कुल आबादी का तीन चौथाई हिस्सा ब्रिटिश साम्राज्य के समुद्रपारीय आबादी का 4/5 हिस्सा तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन औपनिवेशिक आबादी का लगभग 9/10 हिस्सा है।

वर्तमान युद्ध से पहले के आठ प्रमुख उपनिवेशवादी साम्राज्यो के विस्तार की तुलना करें तो पता चलेगा कि 1938 मे ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीय जनता, विश्व के अन्य उपनिवेशो म रहने वाले लोगो के आधे से अधिक हिस्से का तथा शेष अन्य उपनिवेशवादी साम्राज्यो, फ्रास, जापान, हालैड, अमरीका, बेल्जियम, इटली और पुर्तगाल की कुल औपनिवेशिक आबादी के डेढ गुने हिस्से से भी अधिक का प्रतिनिधित्व करती थी।

साम्राज्यवाद द्वारा प्रत्यक्ष उपनिवेश बनाए गए देशो मे भारत सबसे बडा ही नही है। यह सबसे पुराना और सबसे ज्यादा समय तक अनेक पीढ़ियो से शासित और शोषित है इसीलिए यह औपनिवेशिक व्यवस्था की कार्यपद्धति और उसके परिणाम का मुकम्मल रूप पेश करता है।

यूरोप की सभी उपनिवेशवादी शक्तियो ने अपनी पहली कोशिश भारत और भारत की सपदा को हथियाने की की, भारत के लिए नए समुद्री मार्ग की तलाश मे वे अमरीका और वेस्टइडीज के आरपार ठोकरे खाते रह, बाद मे कही जाकर वे अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, चीन तथा एशिया के अन्य हिस्सो तक अपना विस्तार कर पाए।

यदि हम नक्शे पर निगाह डाले तो आसानी से देख सकते है किस प्रकार भारत साम्राज्य-

वादी प्रभुत्व का केंद्र बिंदु रहा है। यह साम्राज्यवाद भारत को प्रभावशाली केंद्र बनाकर हिंद महासागर के चारों ओर तथा फारस की खाड़ी तक, पश्चिम में नए मध्यपूर्वी साम्राज्य और अरब तक, फिर लाल सागर और मिस्र तक, तथा दक्षिण पश्चिम में अफ्रीका के समस्त भूभाग तक, पूर्व में बर्मा, मलय राज्य और ईस्टइंडीज तक, दक्षिण पूर्व में आस्ट्रेलिया तक और सिंगापुर के प्रवेश द्वार के साथ साथ हाल ही में नए बर्मा यूनान मार्ग होते हुए चीन के रास्ते तक फैला हुआ है।

उत्तर में अभेद्य पर्वत के अवरोध (जो केवल उत्तर पश्चिम में आक्रमण के लिए खुला है) और समुद्र पर नियंत्रण के कारण भारत इस समूचे क्षेत्र पर आधिपत्य के लिए एक दुर्ग का काम करता है साथ ही वह स्वयं में संपत्ति और शोषण का समृद्धतम स्रोत है।

भारत में यूरोपीय पूंजी की घुसपैठ आज से चार सौ वर्ष से भी पहले उस समय शुरू हुई जब 1500 ई० में पुर्तगाल ने कालीकट में अपना कारखाना लगाया और 1506 में गोवा पर विजय हासिल की। सन 1600 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, 1602 में डच ईस्ट इंडिया कंपनी और 1664 में फ्रेंच कंपनी द इंदीज की स्थापना हुई। व्यापार समझौतों से अलग हटकर जो विजय के प्रारंभिक छोर थे, भारत में ब्रिटेन का प्रत्यक्ष क्षेत्रीय शासन 18वीं सदी के मध्य से शुरू होता है। 1757 में प्लासी के युद्ध को परंपरागत प्रस्थान बिंदु मानें तो भारत में ब्रिटिश शासन के दो सौ वर्षों का निकट से परिचय मिलता है।

पश्चिमी सभ्यता द्वारा भारत की विजय ने यूरोप में पूंजीवादी विकास के प्रमुख स्तंभों में से एक की सृष्टि की, विश्व में ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठता को स्थापित किया तथा आधुनिक साम्राज्यवाद की समूची संरचना का निर्माण किया। दो शताब्दियों तक यूरोप का इतिहास जितना स्वीकार किया जाता है उससे कहीं अधिक सीमा तक भारत पर प्रभुत्व के आधार पर निर्मित होता रहा। ब्रिटेन का स्पेन और पुर्तगाल, हालैंड, फ्रांस, रूस और जर्मनी के साथ एक के बाद एक जो संघर्ष होता रहा उसके पीछे भारत तक पहुंचने का रास्ता और भारत के प्रभुत्व का प्रश्न ही मुख्य था इसका पता लगाया जा सकता है। इंग्लैंड में आंतरिक राजनीति के शोर के पीछे तथा समूचे सामाजिक और आर्थिक ढांचे की पूरी शान तथा अनिश्चितता के साथ सहारा देने के पीछे भी इसी प्रभुत्व की भूमिका की खोज की जा सकती है।

भारत का भारी पतन में ब्रिटिश साम्राज्य की धुरी मान लिया गया है। जबकि उस समय भी भारत में फैले र, साम्राज्यवाद के अंतिम महत्वपूर्ण वायसराय लार्ड कर्जन ने 1894 में लिखा था (वायसराय बनने से पहले)

जिस प्रकार की भावना से कहा था कि भारत की सरकार और भारत पर विजय ही वस्तुतः के ... है जिन्होंने विश्व के अभिमान में इंग्लैंड का

> उसका उचित स्थान दिलाया है, उसी प्रकार एशिया में उसकी स्थिति से उत्पन्न वैभव और सम्मान ही ब्रिटिश साम्राज्य की आधारशिला है। प्राचीन एशियाई महाद्वीप के केंद्रस्थल पर वह उस सिंहासन पर आरूढ हैं जिसन हमेशा पूव पर शासन किया। उसका राजदंड पृथ्वी और समुद्र पर दूर दूर तक फैला हुआ है। 'ईश्वर की तरह उसके हाथ मे त्रिशूल है और सम्राट की तरह उसके मस्तक पर ताज सुशोभित है।' (माननीय एच० एन० कजन प्रावलम्स आफ दि फार ईस्ट' 1894, पृ० 419)

चार वष बाद 1898 मे साम्राज्यवाद के इस मदहोश प्रशस्तिगायक ने एक नया राग छेडा भारत हमारे साम्राज्य की धुरी है—यदि ब्रिटिश साम्राज्य अपने अधिराज्य का कोई दूसरा हिस्सा गवा देता है तो भी हम जीवित रह सकते है पर यदि हमने भारत को खो दिया तो हमारे साम्राज्य का सूरज अस्त हो जाएगा।

शब्दाडबरपूण बहुधा उद्धत किए जाने वाले इस वाक्य से आभास मिलता है कि उन्ह अपने अतिम दिनो का एहसास होने लगा था।

ऐतिहासिक तथ्यो को देखने से पता चलता है कि ब्रिटेन के लिए तथा ब्रिटिश पूजीवाद की समूची सरचना और उसके विकास के लिए भारत का आर्थिक और वित्तीय महत्व बहुत अधिक रहा है। यह महत्व अब कम हो रहा है तथापि अब भी उल्लेखनीय ता है। भारतीय बाजार पर चला आ रहा पुराना एकाधिकार, जो 19वी सदी मे 4/5 हिस्से से भी ज्यादा तक पहुच गया था और 1914-18 के युद्ध की पूवसध्या तक भी दा तिहाई था, अब समाप्त हो गया है फिर कभी वापस न आन के लिए। 1929 के बाद से भारत ब्रिटिश सामानो का एकमात्र सबसे बडा बाजार नही है और 1938 तक उसका स्थान तीसरा हो गया था। फिर भी भारतीय व्यापार का बहुत बडा हिस्सा आज भी ब्रिटेन के हाथ मे है। 1933 मे भारत कुल अनुमानित ब्रिटिश पूजी 1 अरब पौड थी। (इडियन चैंबर आफ कामस अनुमान)। यह राशि ब्रिटेन द्वारा समुद्रपारीय देशो मे लगाई गई कुल पूजी का एक चौथाई थी। इस समूची राशि मे अब कमी आ गई है हालाकि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और उसके बाद से जो परिवतन हुए है उनके प्रभावो के बारे म कोई आधिकारिक आकलन अभी तक नही किया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि युद्ध के दबाव के कारण जबकि दूसरे देशो मे ब्रिटेन का समुद्रपारीय पूजीनिवेश स्वतत्र रूप से बेचा गया, भारत मे लगी पूजी को दृढता के साथ बनाए रखा गया। कागज-पत्रा पर कुल सपत्ति का वतमान योग उस क्षतिपूर्ति से अधिक है जो युद्ध के दौरान भारत से, बिना भुगतान किए सामानो की प्राप्ति से जमा स्टलिंग सतुलना के रूप मे थी। लेकिन उनके भविष्य का निबटारा होना अब भी बाकी है। भारत से, किसी न किसी रूप म, ब्रिटेन जाने वाले वार्षिक कर की राशि अनुमानत 15 करोड पौंड (यह गणना वष 1921 22 पर आधारित है जो शाह और खबाटा की पुस्तक वेल्थ ऐंड टैक्सेबल कपेसिटी इन इडिया' के पष्ठ

234 पर उल्लिखित है।) या उसी तिथि में समूचे भारतीय बजट के योग से अधिक और ब्रिटेन की जनसख्या के हिसाब से प्रति व्यक्ति 3 पौंड प्रतिवर्ष की राशि से अधिक के बराबर या आकलन के समय सुपर टैक्स देने वाले प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक के लिए लगभग 1700 पौंड प्रतिवर्ष के बराबर है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए भारत का सामरिक महत्व भी कम नहीं है। इसका महत्व दो तरह से है एक तो इससे ब्रिटेन को अन्य हिस्सों म अपने साम्राज्य के विस्तार का आधार मिलता है, नकदी सपत्ति मिलती है और असख्य समुद्रपारीय युद्धो और अभियानो के लिए सैनिक मिलते है दूसरे उसे एक ऐसा केंद्रीय स्थल मिलता है जहा से लगातार सामरिक जोड तोड (भूमध्य सागर, स्वेज नहर और लाल सागर, फारस की खाडी और मध्य पूर्व साम्राज्य तथा सिंगापुर का नियत्रण) सचालित होते ह। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत के सामरिक महत्व का और भी ज्यादा प्रमाण मिला।

3 भारत मे साम्राज्यवाद का दिवालियापन

भारत म साम्राज्यवादी शासन का नतीजा क्या निकला है ? प्रेक्षको के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण कितने भी भिन्न क्यो न रहे हो, लेकिन एक मुद्दे पर दक्षिणपथी और वामपथी, सभी सहमत है। साम्राज्यवादी शासन के दो सौ वर्षो के बाद, भारत यहा की जनता की भीषण गरीबी और कष्ट की जो तस्वीर पश करता है वह दुनिया म बेमिसाल है।

यह देश के प्रकृतया गरीब होन या ससाधनो की कमी का ममला नही है। जिन विशाल क्षेत्रो मे लोग रहते है वे प्राकृतिक सपदा और साधनो की दृष्टि से काफी समृद्ध है। यह समृद्धि केवल भूमि की उवरता और कृषि उत्पादन की सभाव्यता के ही मामले म नही है बल्कि कच्चे माल के मामले मे भी है जिसका इस्तेमाल विशेष रूप से कोयला, लोहा और जलशक्ति जस बेहद विकसित औद्योगिक उत्पादन के साथ साथ जनता की प्रतिभा और तकनीकी अभिरुचि तथा दक्षता (जो तब स जब भारत साम्राज्यवादी शासन से पूव तकनीकी दृष्टि से अन्य देशो की तुलना म आग था, अब तक पूरी तरह समाप्त नही हुआ) के लिए किया जा सकता है। वैसे यदि कृषि उत्पादन की सभाव्यता और जमीन की उवरता की जाच की जाए तो पता चलेगा कि यदि इसका पूरी तरह इस्तेमाल किया जाए तो मौजूदा आबादी से कही अधिक आबादी के लिए भरपूर अनाज पदा हो सकता है।

फिर भी ये साधन और सभावनाए मुख्यतया अविकसित ह। पूजीवाद के बारे म यदि सामान्य तौर पर हम यह मानत ह कि उसम उत्पादन की बरबादी होती है और उत्पादन की सपूर्ण क्षमताओ का इस्तेमाल करन म पूजीवाद विफल होता है तो भारत म यह

विफलता अपनी चरम सीमा तक पहुची है और यह स्थिति उसे अपने स्वरूप मे किसी अन्य साम्राज्यवादी देश से बुनियादी तौर पर भिन्न बनाती है।

हाल ही में एक अमरीकी पर्यवेक्षक प्रोफेसर बुशनान ने 1934 तक के भारत के आर्थिक और औद्योगिक विकास का अत्यत महत्वपूण सर्वेक्षण किया और उन्होंने बहुत ही निराशाजनक नतीजे निकाले

> यह ऐसा देश है जहा वह सारा कच्चा माल मौजूद है जिसपर उत्पादन निभर करता है फिर भी पिछले सौ वर्षों से भी अधिक समय में इसने कारखानो म बने सामानो का भारी मात्रा मे आयात किया है और महज कुछ अति साधारण उद्योगो का जिनके लिए अन्य देशो मे बेहद उन्नत मशीनें और सगठन है, विकास किया है। यहा प्रचुर मात्रा म कपास, पटसन, आसानी से निकाला जा सकने लायक कोयला, आसनी से प्राप्य और उच्चकोटि का कच्चा लोहा है, यहा तमाम लोग ऐसे है जो लाभदायक रोजगार न पाने के कारण प्राय भुखमरी की स्थिति मे रहते हैं, यहा सोना और चादी का जितना जखीरा है उतना शायद ही किसी दूसरे देश मे हो देश की सीमाओ के अदर उत्कृष्ट बाजार है जिसमे दूसरे लोग बडे पैमाने पर अपने बनाए सामान बेच रहे है, इन सारे लाभो के बावजूद भारत एक सौ वष बाद भी कारखाना उद्योग से अपनी आबादी के केवल दो प्रतिशत हिस्से को सहारा दे रहा था।
> (डी० एच० बुशनान 'दि डेवलपमेट आफ कैपिटलिस्ट एटरप्राइज इन इडिया', 1934, पष्ठ 450)।

भारतीय अथशास्त्र के प्रमुख ब्रिटिश विशेषज्ञ और लदन विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग मे प्राध्याता डाक्टर वेरा एसटे ने भारत मे अवरुद्ध आर्थिक विकास की तस्वीर खीची। उन्होंने इसे अलत 'विचित्र' माना।

> क्योकि 18वी सदी तक भारत म आर्थिक विकास की गति अपशाकृत काफी तेज थी और उत्पादन तथा औद्योगिक एव व्यापारिक सगठन की भारतीय पद्धति इतनी सुदढ थी कि वह विश्व के किसी भी हिस्से मे प्रचलित पद्धति का मुकाबला कर सकती थी
>
> वस्तुत यह दावा नही किया जा सकता कि ब्रिटिश शासनकाल के दौरान कोई आर्थिक प्रगति नही हुई। ब्रिटिश सयोजन के परिणामस्वरूप भारत को सस्ते विदेशी सामान मिले, अनेक तरह के भारतीय उत्पादनो के लिए लोगो की माग बढी और जनता का उस कायपद्धति और प्रशासन प्रणाली से परिचय हुआ जिससे वह काफी बढी हुई मात्रा मे अनाज

का उत्पादन करने (खास तौर से विस्तृत सिंचाई साधनों द्वारा) तथा अन्य सामानों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजन (रेल और पानी के जहाज द्वारा) योग्य हो सकी। खास तौर से 19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत का कुल उत्पादन और व्यापार दिन दूनी रात चौगुनी दर से बढ़ा।

लेकिन इन परिवर्तनों ने भारत और पश्चिमी देशों की एक दूसरे पर निर्भरता बढ़ा दी जिससे भारत की प्रवृत्ति प्रमुख कच्चे मालों और खाद्य पदार्थों का उत्पादन करने एवं उनका निर्यात करने तथा कपड़ा, लोह और इस्पात के बने सामानों, मशीनों और अनेक तरह के सामानों का आयात करने की प्रवृत्ति और बढ़ी। इसके अलावा जनसंख्या में लगातार वृद्धि ने कुल उत्पादन में हुई वृद्धि को इस सीमा तक व्यर्थ कर दिया कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि का पता नहीं लगाया जा सका। इन तथ्यों से निश्चय ही यह दृष्टिकोण बना कि भारत में आर्थिक विकास 'अवरुद्ध' हो गया है

19वीं सदी के अंत तक जनता की समृद्धि पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव असंदिग्ध रूप से निराशाजनक था। (वी० एंस्टे दि इकोनामिक डेवलपमेंट आफ इंडिया तीसरा संस्करण, 1936, प्रस्तावना, पृष्ठ 5)

इधर हाल के वर्षों की क्या स्थिति है जिनमें कभी कभी यह कहा गया है कि यह स्थिति अब बदल गई है और उद्योगीकरण का काम ठीक ढंग से आगे बढ़ रहा है? वी० एंस्टे ने ही 1931 की जनगणना के आंकड़ों की जांच पड़ताल की और इस नकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचे

इन आंकड़ों का तेजी के साथ विकसित हो रहे उद्योगीकरण के साथ सामंजस्य बैठाना कठिन है। कृषीय विकास की तुलना में औद्योगिक विकास न केवल नगण्य है बल्कि भारत अब भी उन तमाम सामानों और सेवाओं की व्यवस्था के लिए, जो भौतिक दृष्टि से विकसित किसी भी देश के लिए अनिवार्य है विदेशियों पर बेहद निर्भर है सुव्यवस्थित आर्थिक जीवन की उपलब्धि अब भी नहीं हो पाई है और जनसामान्य का जीवनस्तर अत्यंत निम्न है।
(वही, पृष्ठ 8)

इस विरोधाभास का क्या जवाब है जो संभाव्य प्रचुरता के बीच अवर्णनीय गरीबी में (जो किसी सामान्य पूंजीवादी देश में पाए जाने वाले इस तरह के विरोधाभास से काफी अधिक हो), तथा तकनीक के क्षेत्र में सर्वाधिक संपन्न और अत्यधिक विकसित राष्ट्र के दो सौ वर्षों के शासन के बावजूद अवरुद्ध आर्थिक विकास में दिखाई देती है?

इस विरोधाभास को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम भारतीय जनता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में साम्राज्यवाद की वास्तविक कार्यप्रणाली का निकटता से अध्ययन करें।

भारत के उत्पादक साधनों को विकसित करने में विफल होने के कारण ही भारत में आज साम्राज्यवाद के आने वाले अंतिम दिनों का संकेत मिलने लगा है। ठीक वैसे ही जैसे सामंती राजाओं की शासन प्रणाली की तुलना में ब्रिटिश पूंजीवादी आक्रामकों की अपेक्षाकृत आर्थिक श्रेष्ठता ने ही (उस आक्रमण के दौरान बड़े पैमाने पर विनाश और लूटमार के बावजूद) उन्हें दो सौ वर्ष पूर्व भारत पर विजय दिलाई।

भारत में पुरानी व्यवस्था के दिवालिएपन और नई व्यवस्था के जन्म की सामाजिक-राजनीतिक अभिव्यक्ति ही साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध जिसने बीसवीं सदी में भारतीय परिदृश्य पर अधिक से अधिक आधिपत्य कायम किया, भारत की जनता का सक्रिय विद्रोह है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्थितियां उस रूपांतरण के लिए परिपक्व हो चुकी हैं जो भारत में साम्राज्यवादी अपकर्ष से उत्पन्न निश्चलता को समाप्त कर देगा और इसके स्थान पर जनता के आधुनिक गतिशील भारत का निर्माण करेगा।

भारत का जागरण

साम्राज्यवादी शासन की इस पतनशील और दिवालिया प्रणाली के विरुद्ध ही भारत की जनता इतने व्यापक और सर्वतोमुखी विद्रोह के लिए उठ खड़ी हुई है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन[1] पिछली शताब्दी के दौरान अनेक चरणों से गुजरकर और 19वीं सदी के अंतिम पच्चीस वर्षों से आधुनिक स्वरूपों में विकसित हुआ है। इसका विकास कानूनी और गैरकानूनी, सांविधानिक और क्रांतिकारी, कई रूपों में हुआ है। इसने अपने भीतर रूढ़िवादी और जातीय तथा आधुनिक युग में समाजवादी और साम्यवादी, अनेक धाराओं को समाविष्ट किया। आज से 50 वर्ष पहले तक वैधानिक आंदोलन की मांगें साम्राज्यवादी ढांचे के अंतर्गत महज सामान्य सुधारों के लिए थीं। संगठित आंदोलन मुट्ठी भर शिक्षित मध्यवर्ग तक ही सीमित था। लेकिन बीसवीं सदी में आंदोलन का क्षेत्र और लक्ष्य लगातार व्यापक होता गया है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय आंदोलन ने पूरी तरह व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया, अब पूर्ण स्वशासन की मांग की जाने लगी जिसकी व्याख्या अंततः 1929 ई० और बाद के वर्षों में की गई और इस मांग को पूर्ण स्वाधीनता तथा ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होने की मांग कहा गया।

भारत जग रहा है। भारत, जो हजारों वर्षों से एक के बाद एक विजेताओं की जीत का

शिकार रहा है, अब अपने स्वतत्र अस्तित्व की स्थापना का उद्बोधन कर रहा है जिसम स्वतत्र जनसमुदाय विश्व रगमच पर अपनी खुद की भूमिकाए अदा करे। इस जागरण ने हमारे जीवनकाल मे ही लबी छलागें लगाई है। पिछले 25 वर्षों मे एक नए भारत का उदय हुआ है। चाहे कितने भी अवरोधो पर अभी विजय क्यो न प्राप्त करनी हो पर स्वतत्रता के माग पर भारत की प्रगति को आज समूचे विश्व के लोग निकट भविष्य म उपलब्ध होने वाली विजय के रूप मे स्वीकार कर रहे हैं। लेकिन भारत के स्वतत्र होने का अथ गुलाम कौमो पर आधुनिक साम्राज्यवादी प्रभुत्व के मुख्य आधार का समाप्त हो जाना है।

विगत सपूण अवधि के दौरान ब्रिटिश नीति ने राष्ट्रीय आदोलन का मुकाबला करने, उसे रोकने, उसमें फूट डालने, उसे भ्रष्ट करने या उसका विरोध करने तथा आदोलन की प्रगति का डटकर सामना करने का भरपूर प्रयास किया। इसके लिए उसने अपने शस्त्रा गार के सारे हथियारो का इस्तेमाल किया, वह हथियार चाहे जबरदस्त दमन का रहा हो या सावैधानिक रियायतो का, चाहे फूट डालने के कुशल सचालन का रहा हो या आदोलन के नेतत्व वग तक पहुच का। ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति ने, जो साम्राज्यवादी नीति की बेहद कुशल, लचीली और अनुभवी अभिव्यक्ति थी, सुधारो के साथ बल प्रयोग को जोडकर और ऊपरी तौर पर दूरगामी रियायतें देकर हर तरह स अपने को नई स्थिति के अनुकूल ढालने और अपनी सत्ता तथा शोषण की असलियत को बरकरार रखने की कोशिश की। साम्राज्यवाद के ढाचे के अतगत स्वशासन और स्वतत्रता की दिशा म उपनिवेशो की जनता की क्रमिक और शातिपूण प्रगति की सभावना की बात करने वाले उदार साम्राज्यवादी और सुधारवादी सिद्धातो को यहा व्यवहार की कसौटी पर उतरना पडा। इतिहास इस सघप के अतिम परिणाम का निर्धारण करेगा जो मात्र भारतीय जनता के भविष्य के लिए ही नही बल्कि ब्रिटिश सामाज्य के भविष्य के लिए निर्णायक भूमिका अदा करेगा।

पिछले 25 वर्षो की घटनाओ ने दिखा दिया है कि नई स्थितियो के अनुकूल अपने को ढालने के साम्राज्यवाद के सभी प्रयास तथा इस अवधि की खास बात यानी बल प्रयोग और रियायत की प्रत्यावर्ती लहरें न ता राष्ट्रीय आदोलन के बढते प्रवाह को रोक सकी और न भारत की समस्या का कोई समाधान दे सकी।

साम्राज्यवादी शासन क अधीन भारत की राजनीतिक स्थिति के साथ साथ सामाजिक और आर्थिक स्थितिया म बद्धमूल उदीयमान अर्तविरोधा न बार बार एकता के प्रयासा का विफल कर दिया है। ऊपर अत्यधिक विकसित एव विस्तृत महाजनी पूजी का शोषण और प्रभुत्व तथा नीचे निम्नतम स्तर की सामाजिक दुदशा और पिछडापन य दोना स्तर कारण और प्रभाव क जाल म एक दूसर म गुथे हुए है। इनका विरोधी स्तरा क बीच अर्थात ऊपरी सिर पर साम्राज्यवादी शोषको तथा निचले सिरे पर असहायो की सख्या

बढान वाली जनता की दो परस्पर विरोधी पराकाष्ठाआ के बीच सक्रमणकारी रूप विधानो, विचवई परापजीविता, शोषण के अधीनस्थ रचनातत्र, पुरानी अपघटित होती हुई शक्तियो और नई प्रगामी शक्तियो का जमघट है। इनका प्रतिवप विस्तार हो रहा है और इन सवके माध्यम से भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना का तथा भारत की क्षुधित आम जनता की उदीयमान आर्थिक मागो का विकास हो रहा है। यह ऐसी स्थिति है जिसके हर मोड पर सामाजिक विस्फोट का वारुद दवा पडा है।

भारत की वुनियादी समस्या केवल राष्ट्रीय ही नही वल्कि सामाजिक है। साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता की चुनौती का सीधा अथ समूची मानवता के पाचवें हिस्से द्वारा विदेशी आधिपत्य से मुक्ति पाने का दावा है। लेकिन राजनीतिक स्वाधीनता के दावे की तुलना मे, जिसम उमे राजनीतिक अभिव्यक्ति प्राप्त होती है, स्वतत्रता की यह माग ज्यादा गहराई तक प्रहार करती है। यह अपने मूल मे, दूर तक सस्थापित उस शोषण व्यवस्था के विरुद्ध चुनौती है जिसका आश्रयस्थल तो लदन शहर है लेकिन जो भारत के अदर स्थापित विशेषाधिकार और शोषण की अधीनस्थ प्रणाली के साथ घनिष्ठ रूप से जुडी है। दूसरे को परे रखकर पहले को क्षति नही पहुचाई जा सकती, इसके लिए दोनो पर एक साथ प्रहार करना होगा।

इस अथ मे भारत की समस्या अतिम विश्लेषण मे एक सामाजिक समस्या है। भारत की मूल समस्या 40 करोड मनुष्यो की समस्या है। यह उनकी समस्या है जो बेहद गरीबी की स्थिति मे जीवन विता रह है और जिनकी आबादी का एक विशाल बहुमत अध भुखमरी की स्थिति मे है। इसके साथ ही वे एक ऐसे विदेशी शासन के अधीन है जिसका उनके जीवन पर पूरा नियत्रण है और जो इस तरह की भयावह स्थितिया पैदा करने वाली समान व्यवस्था को ताकत के वल पर वरकरार रखे है। ये करोडो लोग जीवन के लिए, जीवन के साधनो के लिए और प्रारभिक स्वतत्रता के लिए सघप कर रह है। उनके सघप की समस्या और उनके लक्ष्यो को प्राप्त करने के तरीके की समस्या ही भारत की समस्या है।

भारतीय जनता के सघप का तात्कालिक उद्देश्य है राष्ट्रीय मुक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति और स्वशासन का जनतात्रिक अधिकार। लेकिन यह उद्देश्य भारत के अदर एक गभीरतम सामाजिक सघप और एक गतिवान सामाजिक नाति के पहले चरण को चित्रित करता है। राष्ट्रीय और सामाजिक मसले एक दूसरे के साथ घनिष्ठता से जुडे हुए है और इस अत सबध की समझदारी ही भारतीय स्थिति के समझने की कुजी है।

सामाजिक रूढिवादिता आज भी भारत मे जड जमाए हुए है और यह राष्ट्रीय आदोलन की समस्याओ और उसके चरित्र को बुरी तरह प्रभावित करती है। इस तरह की सामाजिक रुढिवादिता और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियो के प्रभाव से राष्ट्रीय आदोलन का

विकास कमजोर पडता है तथा उसमे विघटन पैदा होता है। साम्राज्यवाद ने लूटमार के अपने असली कारनामो पर परदा डालने के लिए खुद को 'सभ्यता का प्रसार करने वाले के रूप मे प्रस्तुत किया, इसलिए हमे अब दूसरी दिशा म प्रचारित की जाने वाली सदश पूवधारणाओ तथा कृत्रिम मिथको के प्रति सचेत रहने की जरूरत है।

क्योकि साम्राज्यवाद की कृत्रिम मिथक कथाओ के विरोध मे, भारत म कुछ ऐसे लोगा के वग ने, जिसकी दृष्टि हमेशा पीछे की तरफ लगी रहती है, जवाबी मिथक कथाए गढने का प्रयास किया है। साम्राज्यवादी प्रभुत्व की बुराइया की प्रतिक्रिया मे इन लोगों न भारत मे ब्रिटिश शासन से पूव के काल को स्वण युग के रूप मे चित्रित करने का प्रयास किय' है। उन्होने उस सडी गली समाज व्यवस्था की बुराइया को कम आकने का प्रयास किया है जो ब्रिटिश शासन से पूव पतन के गत मे जा चुकी थी। उन्हाने भारत के अतीत के उन प्रतिक्रियावादी अवशेषो को, जिन्होने प्रगति को रोका, जनता की चेतना को दबाया और एकता मे बाधा पहुचाई, इतिहास के दृष्टाता से महज सही ठहराने का ही नही बल्कि उन्ह गौरवान्वित और आदश स्थिति के रूप म चित्रित करने का प्रयास किया है। वे इन प्रतिक्रियावादी अवशेषो के आधार पर राष्ट्रीय चेतना के निर्माण की कोशिश करते है। इस प्रकार उन्होने साम्राज्यवाद विरोधी सघप को सामान्यतया 'पश्चिमी सभ्यता' के विरुद्ध सघप मे तबदील करने की कोशिश की। उन्होने अपनी दष्टि हमेशा आगे के बजाय पीछे रखी।

इससे राष्ट्रीय मोर्चा मजबूत नही बल्कि कमजोर ही हुआ है। भारतीय समाज की य बुराइया केवल साम्राज्यवादी शासन से नही व्युत्पन्न हुई है बल्कि वे भारत के इतिहास प्रसिद्ध अतीत से भी विरासत मे मिली है। उलटे यदि उन बुराइयो के विरुद्ध लडन मे राष्ट्रीय मोर्चा साम्राज्यवाद के मुकाबले खुद को ज्यादा समथ दिखा सके तो वह मजबूत होता जाएगा। जहा तक साम्राज्यवाद की बात है वह अपनी भूमिका और अपने सामाजिक आधार की मूल प्रकृति के अनुसार इन बुराइयो को जारी रखने और यहा तक कि उन्ह और बढावा देने के लिए विवश होता है।

जब तक साम्राज्यवाद अपेक्षाकृत अधिक विकसित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रतिनिधि के रूप मे अपने को प्रदर्शित कर सका, तब तक अपनी तमाम आनुषगिक क्रूरताओं और बर्बादी के बावजूद वह अपना प्रभुत्व कायम रख सका। आज राष्ट्रीय मोर्चे की शक्तियो और भारतीय जनता की उन्नतिशील सामाजिक शक्तियो के बीच जितनी ही स्पष्टता के साथ तादात्म्य स्थापित होता जा रहा है—और वे साम्राज्यवाद के मुकाबल एक श्रेष्ठ सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रतिनिधि के रूप मे स्पष्ट दीख सकती है—उतनी ही स्पष्टता के साथ उनकी भावी विजय भी निश्चित हो रही है।

भारत म यद्ध रद्ध मवट के कारण तमाम आतरिक सामाजिक सघप और समस्याए सामने

आ रही है। भारतीय जनता के सामन आज जा बुनियादी क्रातिकारी काय है वे मानवता के और किमी हिस्से के सामने नही है। भारत के पिछडेपन के कारण उत्पन गभीर समस्याए, सदियो की दासता से उत्पन्न गदगी को साफ करने का काम, अवरुद्ध विकास और दकियानूस सामाजिक रीति रिवाज, इन सबका समाधान राष्ट्रीय मुक्ति के साथ ही नही हो जाएगा। उस समय ये सारी समस्याए अपने पूरे आयाम मे सामने आएगी और उनके समाधान के लिए आवश्यक परिस्थितिया की तैयारी का पहला चरण पूरा होगा।

भारत की मेहनतकश जनता की चेतना के विकसित होने तथा अपने भाग्य की बागडोर उसके द्वारा स्वय अपने हाथ मे लेने के साथ ही इन सघर्षो और समस्याओ का समाधान हाता जाएगा तथा भारत अपने वतमान आर्थिक एव सास्कृतिक पिछडेपन से उबरकर विश्व के सर्वाधिक उन्नत देशा के स्तर तक पहुच जाएगा। भारत की जनता को आज आने वाले दिनो म विश्व समाजवाद की स्थापना करने मे और पूव तथा पश्चिम के बीच और उन्नत एव पिछडे राष्ट्रा के बीच भेदभाव का अतिम रूप से समाप्त करने के महान काम म अत्यत प्रमुख भूमिका निभानी है।

वग समाज की सीमा मे, मर्वाधिक आदिम से सर्वाधिक उन्नत तक, सभ्यता और सस्कृति की प्रत्येक अवस्था भारत मे विद्यमान है। इसीलिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक क्षेत्र की व्यापक और विविध समस्याओ को भारतीय परिस्थितियो मे अत्यत स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। असमान जातियो और धर्मो के बीच सबधो और सह अस्तित्व की समस्याए, पुराने अधविश्वासपूण और पतनशील सामाजिक रूपो और परपराओ के विरुद्ध सघप, शिक्षा के लिए सघप, महिलाआ की मुक्ति के लिए सघप, कृपि के पुनगठन और उद्योग के विकास तथा गाव और शहर के बीच सबध का मसला, अत्यत विविध और प्रखर रूपो मे वग सघप के मसले, राष्ट्रवाद और समाजवाद के सबध की समस्याए, आधुनिक विश्व के ये विविध मसले भारत मे विशेप सुस्पष्टता और आग्रह के साथ आगे बढ रहे है।

इन विविध समस्याओ को अलग करके नही हल किया जा सकता। इन्हे निश्चित रूप से नए भारत के निर्माण के लिए भौतिक और मानवीय शक्तियो को मुक्त करके, राष्ट्रीय मुक्ति की प्रमुख समस्या के साथ जोडना होगा। भारत की समस्याओ के समाधान का अथ अपने जटिलतम रूप म उन अत्यत विचित्र और गभीर समस्याओ का समाधान है जिसका सामना समान रूप से विश्व की जनता को करना पड रहा है।

भारत की जनता ने पहले भी विश्व के इतिहास मे एक महान भूमिका अदा की है, विजेताओ के रूप मे नही बल्कि सस्कृति, चिंतन, कला और उद्योग के क्षेत्र म। भारतीय जनता की राष्ट्रीय और सामाजिक मुक्ति से मानवता को महान और नए सौभाग्य की प्राप्ति होगी।

टिप्पणी

1 'भारतीय राष्ट्र और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस शब्दावली का इस्तेमाल यहां और बाद के पृष्ठों मे, भारतीय जनता द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ और अपने राजनीतिक भविष्य का निर्माण स्वय करने के पक्ष म चलाए जा रहे सघष की एकता को वर्णित करने के लिए किया गया है। इस शब्दावली के इस्तेमाल म स्वतत्र भारत द्वारा अपनाए जाने वाले सभावित भावी राजनीतिक रूपा के प्रश्न पर या भावी स्वतत्र भारत के बहुराष्ट्रवादी चरित्र (जो राजनीतिक सस्थाओ के लिए महत्वपूण हो सकता है) के अभ्युदय क संकेतों पर निणय देना नहीं निहित है। इस विशेष मसले पर अलग से बाद म विचार किया जाएगा।

खण्ड एक

भारत जैसा है और जैसा होना चाहिए

2

भारत का वैभव और उसकी गरीबी

'भारत के बारे मे सर्वाधिक दिलचस्प तथ्य यह है कि उसकी धरती समृद्ध है और लोग गरीब।' (एम० एल० डार्लिग 'दि पजाब पीजेंट इन प्रास्परिटी ऐंड डेब्ट', 1925, पृष्ठ 73) भारत की वतमान स्थिति के सदभ मे दो तथ्य स्पष्ट दिखाई देत ह। पहला तथ्य है भारत का वैभव, उसकी प्राकृतिक सपदा, उसके प्रचुर साधन, उसकी अतर्निहित समृद्धि जिसमे उसकी सपूण वतमान आबादी को और उससे भी बडी आबादी को सुखी बनाने की क्षमता है।

दूसरा तथ्य है भारत की गरीबी, उसकी आबादी के बहुत बडे हिस्से की निधनता, ऐसी निधनता जिसकी वे लोग कल्पना भी नही कर सकते जो पश्चिमी जगत की परिस्थितियो को देखने के अभ्यस्त है। इन दो वास्तविकताओ के बीच है भारत की वतमान सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की समस्या।

भारत का वैभव

भारत गरीब लोगो का देश है लेकिन वह गरीब देश नही है। भारत के प्राकृतिक साधन इतने ज्यादा अनुकूल हैं कि यदि खेतीबाडी और उद्योग का मिलाजुला विकास किया जाए तो यहा के लोग समद्धि के शिखर पर पहुच सकते हैं। साथ ही यह भी सच है कि ब्रिटिश शासन से पहले भारत विश्वस्तर पर आर्थिक विकास के क्षेत्र मे अग्रिम पक्ति मे था।

यह सभी लोग जानते है कि पुराने जमाने म, दूसरे देशो के लोगो की दृष्टि मे, भारत

विशाल धन संपदा वाला देश माना जाता था। इस तरह के विवरणो को उचित संदेह के साथ देखा जाना चाहिए क्योंकि जिन प्रेक्षकों ने उन दिनों ये विवरण प्रस्तुत किए थे उन्होंने संपत्ति के वितरण पर ध्यान देने के बजाय धनी और शक्तिशाली लोगों के पास जमा संपत्ति पर ज्यादा ध्यान दिया था। इस तरह के प्रेक्षकों का विशिष्ट उदाहरण क्लाइव है जिसने 1757 में बंगाल की पुरानी राजधानी मुर्शिदाबाद को देखने के बाद लिखा था

> 'यह शहर उतना ही विस्तृत, उतनी ही अधिक आबादी वाला और उतना ही समृद्ध है जितना लंदन। फर्क इतना है कि यहां ऐसे लोग हैं जिनके पास लंदन की तुलना में असीम संपत्ति है।' (इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट के पृष्ठ 249 पर उद्धृत)

इस तरह के उपलब्ध वर्णनों में काफी भिन्नता और अतिशयोक्ति है और इनकी जांच के लिए हमारे पास कोई संभावित वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है फिर भी यह ध्यान देने की बात है कि 17वीं सदी और 18वीं सदी के प्रारंभ में भारत आने वाले विदेशी यात्रियों ने प्रायः इस बात का उल्लेख किया है कि उन दिनों गांवों में भी लोग आमतौर पर समृद्ध थे जबकि आज स्थिति बिलकुल विपरीत है।[1] इस प्रकार 17वीं सदी में भारत की यात्रा का विवरण लिखते समय तेवर्नियर ने टिप्पणी की कि

> 'छोटे से छोटे गांव में भी चावल, आटा, मक्खन, दूध, सेम तथा अन्य सब्जियां, चीनी तथा सूखी और शीरेवाली अन्य मिठाइयां प्रचुर मात्रा में प्राप्त की जा सकती हैं।' (तेवर्नियर 'ट्रेवल्स इन इंडिया' आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस संस्करण, 1925 खंड 1, पृष्ठ 238)

वेनिस निवासी मनूची ने, जो 17वीं सदी में औरंगजेब का मुख्य चिकित्सक बना, अपने संस्मरणों में अत्यंत भाव-विभोर होकर अलग-अलग प्रांतों के हिसाब से भारत के वैभव का वर्णन किया है। इसका ठेठ उदाहरण उसका बंगाल का वर्णन है। बाद के वर्षों में क्लाइव और उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल में हुई इसकी बरबादी और वर्तमान भयंकर गरीबी को ध्यान में रखते हुए मनूची का यह वर्णन देखने योग्य है

> मुगल शासकों के सभी राज्यों में से बंगाल फ्रांस में सबसे अधिक मशहूर है। बंगाल की बेहद उर्वरता का सबूत उसकी अपूर्व संपदा है जो वहां से यूरोप भेजी जाती थी। हम बेझिझक कह सकते हैं कि वह किसी भी मामले में मिस्र से कम नहीं है बल्कि सिल्क, कपास, चीनी और नील के उत्पादन के मामले में तो वह मिस्र से भी आगे है। यहां फल, दाल, अनाज, मलमल और जरी तथा रेशम के कपड़े, सभी चीजें भरी पड़ी हैं। (एफ० एफ० कात्रू

'दि जनरल हिस्ट्री आफ दि मुगल एपायर', वेनिस वासी मनूची के 'मेमायस' से उद्धृत । मनूची लगभग 40 वर्षों तक औरगजेब का मुख्य चिकित्सक रहा', जान थायर, लदन द्वारा 1709 मे प्रकाशित)

इसी तरह फ्रासीसी यात्री बर्नियर ने, 17वी सदी के मध्य मे, 1660 के आसपास दो बार बगाल की यात्रा की और उसने मुगल साम्राज्य की समाप्ति से पूर्व जो कुछ देखा उसका वर्णन किया

> अपनी दो बार की यात्रा मे बगाल के बारे मे मैं जो कुछ जान सका हू उससे मुझे विश्वास होने लगा है कि यह मिस्र की तुलना मे अधिक धनी है। यह भारी मात्रा मे सिल्क और कपास, चावल, चीनी और मक्खन का निर्यात करता है। यह अपने उपभोग के लिए प्रचुर मात्रा मे गेहू, साग सब्जियां, अनाज, मुरगे मुरगियां, बतखें और कलहस पैदा करता है। इसके पास ढेर सारे सूअर, भेडें और बकरे है। हर तरह की मछलियों का इसके पास बाहुल्य है। राजमहल से लेकर समुद्र तक असख्य नहरें है जिन्हे बहुत मेहनत से काटकर बनाया गया है ताकि नौसचालन और सिंचाई का काम लिया जा सके। (सर विलियम विलकाक्स की पुस्तक 'लेक्चस आन दि एशिएट सिस्टम आफ इरिगेशन इन बगाल' म बर्नियर का उद्धरण, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1930, पृष्ठ 18-19)

ब्रिटिश शासन से पहले के भारत मे आम जनता के जीवन स्तर से सबधित सामान्य मसलो पर अनिवार्य रूप से विवाद पैदा होते है हालाकि साक्ष्यो और जानकारियो से निस्सदेह रूप से यह सकेत मिलता है कि काफी लोग खुशहाल थे।

फिर भी यह तथ्य विवाद से परे और सर्वमान्य है कि ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत का औद्योगिक विकास समकालीन विश्व स्तर के सदर्भ मे काफी अधिक था। 1916-18 के भारतीय औद्योगिक आयोग ने इस वक्तव्य के साथ अपनी रिपोर्ट शुरू की

> ऐसे समय जबकि आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के जन्म स्थान पश्चिमी यूरोप म असभ्य जनजातियां बसी हुई थीं, भारत अपने शासको की समृद्धि और अपने शिल्पियो की अत्यत कलात्मक कारीगरी के लिए विख्यात था। और काफी समय बाद भी जब पश्चिम के साहसी सौदागर पहली बार भारत पहुचे इस देश का औद्योगिक विकास किसी भी कीमत पर अपेक्षाकृत अधिक विकसित यूरोपीय देशो स कम नही था (इडियन इडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ 6)

आयोग के अध्यक्ष और भारत की खनिज सपदा के अधिकारी विद्वान सर थोमस हालेंड ने 1908 मे अपनी रिपोट मे कहा

> देश मे तैयार लोहे की श्रेष्ठ किस्म, उच्च स्तर का इस्पात तैयार करने के लिए आज यूरोप म अपनाए जा रहे तरीके का पूवज्ञान, और ताबे तथा पीतल के बने कलात्मक सामानो ने एक समय म भारत को धातुकर्मीय जगत म महत्वपूण स्थान प्रदान किया था। ('दि मिनरल रिसोर्सेज आफ इडिया', टी० एच० हालेंड की रिपोट 1908)

यह ध्यान देने की बात है कि भारत मे आधुनिक उद्योग के विकास के लिए भौतिक परिस्थितिया इस हद तक तैयार थी कि लोह और इस्पात का उत्पादन काफी ऊचे स्तर तक विकसित हो चुका था। हम आगे के अध्यायो मे उन कारणो की खोजबीन करेंगे जिनकी वजह से ब्रिटिश शासनकाल म भारत की इस महत्वपूण स्थिति का विनाश हुआ और उसका अपकष पिछडी आर्थिक स्थिति म हुआ।

इस तथ्य को भी सभी लाग स्वीकार करत है कि भारत मे वे सभी प्राकृतिक साधन मौजूद है जो सर्वोच्च आधुनिक आर्थिक विकास के लिए जरूरी हैं। कृषि के सदभ म, भारत सरकार को आर्थिक उत्पादना के बारे मे रिपोट देने वाले सर जाज वाट के निष्कष का उद्धत करना प्रासगिक होगा

> यह स्वीकार कर लेना ज्यादा निरापद लगता है कि सिंचाई के विस्तार, परिवहन की सम्यक और पूर्ण सुविधाए कृषि के सामान और तरीको मे विकास तथा कृषियोग्य क्षेत्र का विस्तार करके—भारत की उत्पादकता को कम से कम 50 प्रतिशत तक आसानी से बढाया जा सकता है। निश्चय ही यदि केवल अविकसित साधनो के अतभूत मूल्य और उनकी सीमा को देखा जाए ता विश्व म बहुत कम ऐसे देश हैं जिनमे कृषि का इतन शानदार ढग से विकास करने की सभावना है जितनी भारत मे है। (सर जाज वाट मेमोरेडम आन दि रिसोर्सेज आफ ब्रिटिश इडिया, कलकत्ता, 1894 पृष्ठ 5)

इसस भी ज्यादा बडी मात्रा मे औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक साधन मौजूद है। भारत के पास कोयला लाहा तेल मगनीज, सोना चादी और ताबा प्रचुर मात्रा मे है। (तल के मामले मे, नए सविधान के अतगत बर्मा के राजनीतिक पृथक्करण ने वतमान मुख्य सप्लाई का काट दिया है, और इसम काई सदह नही कि इस पृथक्करण क मुख्य कारणो म एक कारण यह भी था कि बर्मा के तेल पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रभुत्व बना

मात्रा इतनी ज्यादा है कि यदि उनका इस समय इस्तेमाल नही किया गया तो इसे उनकी बरबादी ही कहा जाएगा क्योकि उनके इस्तेमाल से भारत मे भी लोहे का उत्पादन उतना ही होता जितना अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, जमनी, स्वीडन, स्पेन और रूस जैसे देशो म औसतन होता है। इन देशो मे औसत उत्पादन 1 करोड 62 लाख टन है जबकि भारत मे मात्रा 18 लाख टन। दूसरे शब्दो मे कहे तो भारत मे लोहे का उत्पादन कुल उत्पादन जितना होना चाहिए था उससे 11 प्रतिशत से थोडा अधिक था और 89 प्रतिशत का अपव्यय माना जाना चाहिए। (आर० के० दास 'दि इडस्ट्रियल एफिसिएसी इन इडिया, 1930, पृष्ठ 17)

भारत के खनिज लौह भडार के बारे मे ताजा अनुमान अमरीकी तकनीकी मिशन न पश किया है। मिशन की रिपोट से पता चलता है

भारत म कच्चे लोहे के भडार सभवत दुनिया म सबसे बडे है और इसकी किस्म अन्य किसी देश के लोहे की तुलना मे श्रेष्ठ है। अकेले सिहभूम जिले मे, 60 प्रतिशत अधिक लोहे के अशवाले कच्चे लोहे के भडार अनुमानत 3 अरब टन से कम नही और मुमकिन है कि यह 20 अरब टन तक हो। अनुमान लगाया गया है कि बस्तर राज्य मे इन भडारो मे उत्तम किस्म का 72 करोड 40 लाख टन कच्चा लोहा है। मध्य प्रात के पडोसी जिला मे भी महत्वपूण भडार है। इनमे से एक राजहाना पहाडियो मे है जिसमे अनुमानत 25 लाख टन खनिज लोहा है और उसमे लोहे की मात्रा $67\frac{1}{2}$ प्रतिशत है। (रिपोट आफ दि अमेरिकन टेक्निकल मिशन टु इडिया, अगस्त 1942 पृष्ठ 24)

1918 की औद्योगिक आयोग रिपोट के अनुसार

'भूगभ सर्वेक्षण विभाग ने भारत की खनिज सपदा की प्रकृति और मात्रा की व्यवस्थित ढग से जाच-पडताल की है हालाकि पूर्वेक्षण उपकरणा तथा व्यवस्था पर व्यय हतु सीमित धनराशि के कारण उस सिरे तक छानबीन के लिए काम करना असभव ही रहा है जहा और जाच किए बगैर व्यापारिक कार्यों के लिए उनका उचित ठहराया जा सके, बहुत खास मामला की बात और है।

दश क खनिज भडार तमाम तथाकथित महत्वपूण' उद्योगो का बनाए रखन क लिए पयाप्त है। वे उद्योग इसम शामिल नही हो सकत जिनके लिए पनन्यिम निकल और सभवत मालीबडनम की जरूरत पडती है।

भारतीय महाद्वीप मे कई हिस्सो म कच्चा लोहा पाया जाता है। लेकिन ऐसे उदाहरण बहुत ज्यादा नही है जिनमे अच्छे किस्म के खनिज और कोयले की सतोषजनक आपूर्ति के बीच पर्याप्त निकटता है हालाकि सभी सभावनाओ के साथ वतमान लोहा और इस्पात के काम का व्यापक विस्तार उचित ठहराया जा सकता है। (इडियन इडस्ट्रियल कमीशन रिपोट, पृष्ठ 36)

भारत के भूगभ सर्वेक्षण विभाग के स्थानापन्न सुपरिटेंडेंट डाक्टर सी० एस० फाक्स ने अमरीकी खान इजीनियर सी० पी० पेरिन के अनुमान को उद्धृत किया है। सी० पी० पेरिन पिछले लगभग 25 वर्षो से इडियन आयरन ऐड स्टील इडस्ट्री के साथ घनिष्ठ रूप से जुडे हुए है। उनका कहना है कि यदि एक चतुर्भुज बनाए जिसका उत्तर-पूव कोण कलकत्ता हो तो इस शहर से 400 मील पश्चिम और 200 मील दक्षिण मे उत्तम कोटि का 20 अरब टन खनिज लोहा है जो बगाल के कोयला क्षेत्रो से औसतन 125 मील की दूरी पर है। (इस्पात उद्योग को सुरक्षा देने के सबध मे इडियन टरिफ बोड की रिपोट, 1924)

यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'प्रबध के खर्चे चलाने और पूर्वेक्षण उपकरणो के लिए सीमित धनराशि' इसीलिए दी गई है वह खोजबीन का काम इतना न बढा ले जिससे इस अपार प्राकृतिक सपदा का उपयोग भारत की समद्धि बढाने के लिए होने लगे। इस प्रकार इसका ब्यौरा केवल कागजो पर ही दज है—ठीक वैसे जैसे कोई खगाल वैज्ञानिक अपने कागजो म तारो, नक्षत्रो का नक्शा खीच रखा हो। 1933-34 म सपूण 'वैज्ञानिक विभागो' पर कुल व्यय समूचे सरकारी खर्चे के 1 प्रतिशत का एक तिहाई हिस्सा तथा सैनिक व्यय के $\frac{1}{7}$ वें हिस्से से भी कम था। आगे चलकर हम देखेंगे कि यह रिपोट बडे अनिश्चित ढग से मात्र इतना सकेत द देती है कि कोयला और लोहा 'अपनी सारी सभाव्यता म इतने पर्याप्त ह कि वतमान लोहा और इस्पात के काम का व्यापक विस्तार उचित ठहराया जा सकता है।'

जलशक्ति साधन

देश	सभावित	(दस लाख हास पावर म) विकसित	प्रतिशत विकसित
अमरीका	35 0	11 7	33
कनाडा	18 2	4 5	25
फ्रास	5 4	2 1	37
जापान	4 5	1 7	37
इटली	3 8	1 8	47
स्विटजरलड	2 5	1 8	72
जमनी	2 0	1 1	55
भारत	27 0	0 8	3

इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण चीज भारत की जलशक्ति है। भारत के बिजलीकरण के लिए इसकी क्षमताओं का उपयोग किया जा सकता है लेकिन इन क्षमताओं की अवहेलना की जा रही है। पृष्ठ 49 पर दी हुई तालिका मे भारत के साथ तुलना करते हुए दुनिया के प्रमुख देशों के जलशक्ति साधनों और उनके इस्तेमाल के अनुपात को (वर्ल्ड अलमनाक 1932) मे दिखाया गया है।

जलशक्ति के मामले म अमरीका के बाद भारत का ही स्थान है फिर भी वह अपने इन साधनों के केवल 3 प्रतिशत का ही उपयोग करता है जबकि उसकी तुलना मे स्विटजरलैंड 72 प्रतिशत जर्मनी 55 प्रतिशत, इटली 47 प्रतिशत, फ्रांस और जापान 33 प्रतिशत और अमरीका 33 प्रतिशत भाग इस्तेमाल कर रहे है।

भारत की अर्थव्यवस्था का चाहे जो भी पहलू लें, यही तस्वीर सामने उभरती है कि यहां असीम संभावनाओं से युक्त संपदा है लेकिन वर्तमान शासन व्यवस्था में उसकी वस्तुत अवहेलना की गई है और विकास का काम नहीं हुआ है। इस स्थिति के खतरे को स्वयं साम्राज्यवादियों ने महसूस किया है हालांकि उनके पास इसका कोई समाधान नहीं है। कलकत्ता से प्रकाशित भारत के प्रमुख अंगरेजी अखबार 'स्टेटसमैन' के संपादक और 'दि टाइम्स' के कलकत्ता स्थित संवाददाता सर अल्फ्रेड ने 1933 मे रायल इंपायर सोसायटी की एक बैठक म आगाह किया था

> सर अल्फ्रेड वाटसन ने कहा कि भारत खोए हुए अवसरों का देश है और इसकी मुख्य जिम्मेदारी ब्रिटिश शासन पर है यद्यपि भारत के पास वे सारी दशाएं प्रचुर मात्रा म हैं जिनसे कोई देश महान औद्योगिक देश बनता है लेकिन वह आज आर्थिक दृष्टि से दुनिया के पिछड़े देशों म से एक है और उद्योग के क्षेत्र म अत्यंत पिछड़ा हुआ है हमने उद्योग के मामले म भारत की असन्दिग्ध क्षमता को विकसित करने की समस्या पर कभी गंभीरता से काम नहीं किया
>
> यदि आगामी चार वर्षों म भारत अपनी विशाल आबादी की बढ़ी हुई मांग के आधार पर बिल्कुल ही अभूतपूर्व ढंग से अपना औद्योगिक विकास नहीं करता तो [illegible] का जीवननिर्वाह स्तर जो अभी ही भयानक रूप स नीचा है मुमकिन है और भी नीचे गिर जाएगा। (सर अल्फ्रेड वाटसन, रायल इंपायर सोसायटी म भाषण 'दि टाइम्स' 4 जनवरी 1933)

भारत की गरीबी

[illegible] की [illegible]

पृष्ठभूमि म भारतीय जनता की भयानक गरीबी अपन अनिष्टकारी महत्व के साथ स्पष्ट दिखाई दे रही है।

भारतीय आकडे प्रशासन तत्र को सचालित करने की दृष्टि से तो बेहद भारी भरकम है लेकिन जब उन आकडा से जनता की हालत की स्थिति का पता लगाने का प्रश्न उठता है तो वे बिलकुल व्यथ और अनुपयोगी साबित होत है। राष्ट्रीय आय अथवा औसत आय के बारे म कोई आधिकारिक आकलन नही है। (विभिन्न सरकारी जाच-पडतालो के नतीजो को निजी और गोपनीय रखा गया है।) यह ठीक वैसे ही है जैसे भारत या समूचे ब्रिटिश भारत के लिए कोई नियमित आकडे नही हैं जो कुल उत्पादन वेतन दरो या मजदूरी के औसत स्तर, काम के घटो या मजदूरी की शर्तो की जानकारी दें। स्वास्थ्य के बारे मे कोई पर्याप्त आकडे नही हैं और न ही आवास के बारे मे आकडे उपलब्ध है।

प्रतिव्यक्ति औसत आय के आकलनो का एक अनुक्रम तैयार किया गया है और उसपर तीव्र विवाद पैदा हुआ है। इनमे 1868 से युद्ध के बाद तक के आकलन शामिल है

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का आकलन

आकलनकर्ता	सरकारी या गैरसरकारी	जिस वष किया गया	वष से सबधित	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय रु०	शि०
डी० नौरोजी[3]	गैरसरकारी	1876	1968	20	40
बेरिंग ऐंड बारबर	सरकारी	1882	1881	27	45
लाड कर्जन	सरकारी	1901	1997 98	30	40
डब्ल्यू० डिग्बी[4]	गैरसरकारी	1902	1899	18	24
फिंडले सिराज	सरकारी	1924	1911	49	65
वाडिया ऐंड जोशी[6]	गैरसरकारी	1925	1913-14	44½	59
शाह ऐंड खबाता[7]	गैरसरकारी	1924	1921-22	74	95
साइमन रिपोट	सरकारी	1930	1921-22	116	155
वी० के० आर० वी० राव[8]	गैरसरकारी	1939	1925-29	78	117
सेंटल बैकिंग इक्वायरी कमेटी (केवल कृषीय-आबादी के लिए)	सरकारी	1931	1928	42	63
फिंडले सिराज[9]	सरकारी	1932	1931	63	94½
सर जेम्स ग्रिग[10]	सरकारी	1938	1937 38	56	84
वी० के० आर० वी० राव[11]	गैरसरकारी	1940	1931-32	62	93

मगणना के आधार म भिन्नताओ तथा साथ ही मूल्यो के स्तर मे दूरगामी परिवतनो के कारण इन अको का मिलान नही किया जा सकता। भारतीय कीमता का सूचक अक, जो 1873 मे 100 था (39 सामान अभारित लेकिन इसम 1897 तक खाद्यान्न नही शामिल थे), 1900 तक बढकर 116, 1913 तक 143 और 1920 तक 281 हो गया। इसके बाद इसमे गिरावट आई और 1931 मे यह 236, 1925 मे 227, 1930 म 171 और 1936 मे 125 हो गया।

गणना के आधार से काफी व्यापक उतार-चढाव का भी पता चलता है और विभिन्न आकलनो को मात्र प्रारभिक सकेता के रूप म लिया जा सकता ह। इससे पुराने सरकारी आकलन खेतीबाडी से हुई आमदनी के कुल मूल्य (प्राय निश्चित रूप स वास्तविकता स अधिक मूल्याकन) पर आधारित थे। डिग्बी के आकडा म से आय की राशि को सेवा के लिए निकाल दिया गया है। सबसे अधिक मशहूर और प्राय सामान्य रूप से स्वीकृत आकडे नौरोजी तथा मेजर बेरिंग (बाद मे लाड क्रोमर) के थे। नौरोजी का आकलन 1868 के लिए था जिसम प्रति व्यक्ति आय 2 पौंड बताई गई थी। मेजर बेरिंग न अपन आकलन की घोषणा 1882 मे की थी और इसमे प्रति व्यक्ति आय 2 पौड 5 शिलिंग थी। ये आकडे खुद ही बताते ह कि एक सौ स भी अधिक समय तक ब्रिटिश सरकार द्वारा शासन किए जाने के बाद भी भारत की स्थिति स्वय सरकारी आकडा के अनुसार क्या थी।

बाद के आकडा से ज्यादा उतार चढाव का पता चलता है। आशिक रूप से यह कीमतो की बेहद अस्थिरता की झलक दता है। 1912 स 1920 के दौरान कीमता म दुगने स भी ज्यादा वद्धि हो गई और फिर एक दशक बाद, 1931 से उसम गिरावट आई जो युद्धपूव के स्तर तक पहुच गई। प्रोफेसर फिडल शिराज के युद्धोत्तर आकलनो म भी यह माना गया है कि युद्ध के बाद गैर-कृषीय आय के अनुपात मे वृद्धि हुइ है। प्राफेसर शिराज 1914 से 1921 तक भारत सरकार के सांख्यिकी निदेशक के पद पर रह चुके है।

1930 मे साइमन कमीशन ने एक रिपोट तैयार की जिसका पहला भाग, भारत म साम्राज्यवादी शासन की सफाई के लिए बडी सख्या म वितरित करने के उद्देश्य से लिखा गया था। इसम औसत भारतीय आय को काफी बढा-चढाकर लगभग 8 पौंड प्रतिवष बताया गया। इस अनुमान का बाद म खूब प्रचार किया गया। चूकि इस अनुमान मे बताई गई राशि इससे पहले पेश किए गए किसी भी अनुमान की तुलना मे अधिक थी, इस लिए उसके आधार की जाच करनी चाहिए।

साइमन कमीशन न अपनी रिपोट 1930 मे तैयार की थी। प्रथम विश्व युद्ध हुए उस समय लगभग दस वष बीत थ लेकिन उसन अपनी गणना का आधार विश्व युद्ध के तत्काल बाद के वर्षो को बनाया जब चीजों की कीमतें काफी बढ गई थी।

इसमें 1919 20 1920-21 और 1921-22 के दौरान औसत आय के, जो 74 रुपए से 116 रुपए के बीच था। तमाम आकलनों का हवाला दिया। इसके बाद कमीशन ने इन वर्षों की सबसे ऊची संख्या को चुनकर उसे 'उपयुक्त आकलनों में सर्वाधिक आशावादी' संख्या (खंड 1, पृष्ठ 334) का नाम दिया। फिर उसने बाद की गणनाओं में इस असाधारण संख्या का इस्तेमाल किया और इसे पूरी अवधि की प्रतिनिधि संख्या मान लिया हालांकि इसने उस संख्या का प्रतिनिधित्व किया था जो युद्ध के बाद हुई सहसा वृद्धि के काफी निकट थी (यह मानकर कि इस बीच मूल्यों में गिरावट आ गई है, इसे आज उच्च अंशों में नहीं पेश किया जा सकता', खंड 2 पृष्ठ 207—दरअसल मूल्य सूचक अंक 1920 में 281 से घटकर 1930 में 171 और 1934 तक 119 हो गया था) और इस अतिशयोक्तिपूर्ण संख्या को उसने अंगरेजी मुद्रा में लगभग 8 पौंड (8 पौंड से कम') प्रतिवर्ष के बराबर रखकर इसे औसत भारतीय की वार्षिक आय कहा जबकि औसत अंगरेजी की आय 95 पौंड प्रतिवर्ष थी।

> इस सबके बावजूद साइमन कमीशन ने 1921-22 में भारतीयों की औसत आय का जो सबसे अधिक आशावादी' अनुमान लगाया वह प्रतिदिन 5 पेंस के बराबर था। फिर भी वास्तविक तथ्यों के ज्यादा करीब पहुचने के लिए यह जरूरी है कि गणना के समय जिन बातों पर ध्यान नहीं दिया गया उनपर हम ध्यान दें और आवश्यक सुधार कर लें।

भारतीय कीमतों का भारत सरकार द्वारा निर्धारित सूचक अंक 1921 में 236 से घटकर 1936 में 125 हो गया अर्थात लगभग आधा हो गया। इस मंदी से सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ कृषि-उत्पादन जो भारतीयों की आय का मुख्य आधार है। 1921 और 1936 के बीच अनाज की फुटकर कीमतों का सूचक अंक सामान्य तौर पर आधे से भी ज्यादा कम रह गया। यह अंक चावल के लिए 355 से 178, गेहू के लिए 360 से 152, चना के लिए 406 से 105 और जौ के लिए 325 से 134 हो गया।

> इस प्रकार यदि अनाज की कीमतों में हुई गिरावट को भी ध्यान में रखा जाए तो 1921 22 में साइमन कमीशन ने 5 पेंस प्रतिदिन की औसत आय का जो अनुमान लगाया था, वह युद्ध से पूर्व की अवधि में ढाई पेंस प्रतिदिन ही रह गया।

किंतु यह भी विशाल बहुमत की वास्तविक आय नहीं बल्कि कुल औसत आय है। इसमें से वह राशि घटानी होगी जो साम्राज्यवाद द्वारा घरेलू खर्च के नाम पर और नजराने के नाम पर वसूल की जाती थी (इनमें ऋण पर ब्याज, ब्रिटिश पूजी निवेश पर लाभांश, बैंकों तथा महाजनों का कमीशन शामिल है) और भारत से बाहर भेज दी जाती थी तथा बदले में ब्रिटेन से भारत में कोई माल नहीं आता था। शाह और खंबाता का अनुमान है

कि इस तरह कुल राष्टीय आय का दसवे से कुछ अधिक भाग देश के बाहर चला जाता है। इस प्रकार जो आय प्रतिदिन ढाई पेंस थी वह केवल सवा दो पेंस प्रतिदिन रह जाती है।

इसके बाद हमे इस औसत आय मे शामिल आय की बेहद असमानता पर भी ध्यान देना पडेगा। उदाहरण के लिए यदि साइमन कमीशन के इस आकडे को सही माने कि ब्रिटन मे औसत आय प्रति व्यक्ति 95 पाड है तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक पत्नी और तीन बच्चो वाले औसत मजदूर को साल भर मे 475 पौड मिलते हैं। वस्तुत जो मजदूर इसका आधा प्राप्त करता है वह बेहद लाभप्रद स्थिति मे है और औसत मजदूर को अधिक से अधिक एक तिहाई, आमतौर से एक तिहाई से कम ही प्राप्त होता है। वितरण की यही असमानता भारत पर भी लागू होती है। प्रोफेसर के०टी० शाह और के० जे० खबाता ने अपनी पुस्तक 'वैल्थ ऐंड टैक्सेबल कैपेसिटी आफ इंडिया (1924) मे बताया है कि आबादी के 1 प्रतिशत हिस्से को राष्टीय आय का एक तिहाई भाग मिलता है जबकि कुल आबादी के 60 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का सिर्फ 30 प्रतिशत हिस्सा मिलता है। इसका अर्थ यह है कि आबादी के 60 प्रतिशत भाग या आबादी के बहुमत की वास्तविक औसत आय का पता लगाने के लिए प्रति व्यक्ति कुल औसत राष्ट्रीय आय को आधा करना पडेगा।[12]

> इस प्रकार यदि हम साइमन कमीशन के सबसे अधिक आशावादी अनुमान पर आय के वितरण के आकडा को लागू करें तथा बाद मे आने वाली मदी तथा साम्राज्यवाद द्वारा वसूले गए घरेलू खर्च और नजराने के रूप मे देश से बाहर जाने वाली राशि पर ध्यान दें, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि वर्तमान समय मे भारत की आबादी के अधिकाश के औसत व्यक्ति की दैनिक आय एक पेस से सवा पेंस तक है।

यह हिसाब लगाने मे हर उस बात पर ध्यान दिया गया है जो साम्राज्यवाद के अनुकूल है और इसका आधार खुद साम्राज्यवाद के आकलन है।

सामान्य तौर पर जो अनुमान लगाया गया है (ठीक ठीक आकडा के अभाव मे इतना ही किया जा सकता है) उसकी पुष्टि हाल ही म सरकारी सूत्रा स प्राप्त दो और आकलनो से होती है। 1931 म भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जाच समिति ने अपनी रिपोर्ट मे बताया था

> प्रातीय समितियो की रिपोर्टों तथा अन्य प्रकाशित सांख्यिकीय सूचनाओ स पता चलता है कि 1928 के मूल्य स्तरा के आधार पर वार्षिक कृषि उत्पादन का कुल मूल्य 12 अरब रुपया है। कुछ सहायक व्यवसाया मे हुई सभावित आय का जो अनुमान्त कृषि आय की 20 प्रतिशत है ध्यान मे रखकर और

> आधार बनाकर तथा पिछले दशक म हुई जनसख्या वृद्धि एव 1929 से कीमता म आई गिरावट की उपेक्षा करके देखें तो ब्रिटिश भारत म किसी खेतिहर की औसत आय लगभग 42 रुपय प्रतिवप से अधिक नही आती जो 3 पौड प्रतिवप से थोडा ही अधिक है। (रिपोर्ट आफ दि इडियन सेंट्रल बैंकिंग इक्वायरी कमेटी, *1931 खड 1, पृष्ठ 39*)

इससे पता चलता है कि कृपि क काम म लग लागो की कुल आय प्रतिव्यक्ति 2 पेंस है। यह आकडा 1928 के मूल्य स्तर पर आधारित है। 1928 और 1936 के बीच कीमतो का सूचक अक 201 स घटकर 125 हो गया। इससे 2 पेंस प्रतिदिन की आय घटकर सप्रति सवा पेंस प्रतिदिन हो जाएगी।

अप्रल 1938 मे भारत सरकार के वित्तमत्री सर जेम्स ग्रिग ने अनुमान लगाया कि भारत की कुल राष्ट्रीय आय 16 अरब रुपये या 1 अरब 20 करोड पौड है। ये आकडे कुल राष्टीय आय तथा करारोपण के बीच अनुपात दिखाने के उद्देश्य से पश किए गए थे। यदि यह मानकर चलें कि ये आकडे केवल ब्रिटिश भारत पर लागू होते है (यदि ये आकडे समूचे भारत के लिए है ता निश्चित रूप से प्रति व्यक्ति आय यथानुपात और भी कम होगी)और इस राशि को ब्रिटिश भारत की जनसख्या से विभाजित कर दे, जो 1938 म अनुमानत 28 करोड 50 लाख थी, तो हम इस नतीज पर पहुचते है कि प्रतिव्यक्ति *कुल औसत आय 56 रुपय या 84 शिलिंग थी। आमदनी के इस वितरण के आकडे को* इस कुल राशि पर लागू करें (अर्थात 60 प्रतिशत आबादी जो 30 प्रतिशत की आमदनी की हिस्सेदार है) ता हम फिर इस नतीज पर पहुचत है कि ब्रिटिश भारत मे आबादी के विशाल हिस्से के औसत भारतीय की आय 1 38 पेंस प्रतिदिन या 1 25 पेंस प्रतिदिन से थोडी अधिक थी। डाक्टर वी० के० आर० वी० राव न कुल आय 62 रुपये या 93 शिलिंग प्रतिव्यक्ति प्रतिवप का अनुमान लगाया है।[13] प्रोफेसर शाह और खबाता द्वारा सिद्ध किए गए अनुपात को फिर लागू करने पर हमे पता चलता है कि भारतीय जनता की अधिकाश आबादी की औसत आय लगभग डेढ पेंस प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति है।

ये आकडे महज इसलिए महत्वपूण है कि इनसे हम भारत की गरीबी की भयकरता का एक प्रारभिक आभास मिल जाता है। रहन-सहन की परिस्थितियो के रूप म इन आकडो का क्या महत्व है ? प्रमुख भारतीय अथशास्त्री शाह और खबाता न इसको इस प्रकार अभिव्यक्त किया है

> औसत भारतीय की आय महज इतनी है कि जिसम या तो हर तीन व्यक्तियो म से दो को खाना मिल सके या उन सबको आवश्यक तीन वक्त के भोजन के स्थान पर दो वक्त का भोजन दिया जा सके बशर्ते वे सब इस बात पर सहमत हा कि उन्ह बिना कोई कपडा पहन रहना है पूरा वर्ष घर के

बाहर आसमान के नीचे बिताना है, किसी प्रकार का आमोद प्रमोद या मनोरजन नही करना है और सबसे घटिया, सबस रद्दी और सबसे कम पौष्टिक भोजन के अलावा और किसी चीज की माग नही करनी है। (शाह और खम्राता दि वल्थ एंड टैक्सेबल कैपेसिटी आफ इडिया, 1924, पृष्ठ 253)

जेल सहिता (जेल कोड) और अकाल सहिता (फैमीन काड) के खर्चो की तुलना स अभिप्राय का कुछ पता लगाया जा सकता है। 1939 मे भारत म एक कैदी की देखरख पर प्रतिवष 116 67 रुपये खच होता था जा बैंकिंग जाच समिति द्वारा अनुमानित भारतीय खेतिहर की औसत आमदनी का लगभग तीन गुना है। 1923 म बबई म मजदूर वग के आय-व्यय की सरकारी जाच से मजदूरो के जीवनस्तर और जेलसहिता तथा अकाल सहिता के जीवनस्तर क अप्रात्याशित साम्य का पता चलता ह

प्रतिवयस्क पुरुष द्वारा दनिक उपभोग

बबई के मजदूरो का बजट		बबई की जेलें कठोर श्रम	बबई की जेलें हल्का श्रम	बबई अकाल सहिता (चलदार)
अनाज	1 29 पौड	1 05 पौड	1 38 पौड	1 29 पौंड
दाल	0 09 ,,	0 27 ,,	0 21 ,,	—
मास	0 03 ,,	0 04 ,,	0 04 ,,	आकडे
नमक	0 04 ,,	0 03 ,,	0 03 ,,	उपलब्ध
तल	0 02 ,,	0 03 ,,	0 03 ,,	नही है
अय चीजें	0 07 ,,	—	—	
	1 54 पौड	1 42 पौड	1 69 पौड	

(रिपोट आन एन इक्वायरी इटु वकिंग क्लास बजट्स इन बाब, बाब लेबर आफिस, 1923)

बबई का मजदूर, जो गावो म रहन वाली आम जनता से बहतर स्थिति म है, अकाल में मिलन वाले राशन के स्तर पर और कदियो को मिलन वाल जल राशन स भी नीच क स्तर पर अपनी राटी चला पाता पाता है।[11]

जहा तक साल दर साल आम जनता की स्थिति का प्रश्न है सरकारी रिपार्टो स एसी ही तस्वीर सामने आती है

'भारत म अत्यत कुशल कामगरो को छोडकर अन्य कामगरा को जो मजदूरी मिलती है वह उनके रोटी-कपडे व खच को चला पाने के लिए मुश्किल से पर्याप्त है। चारो तरफ बेहद भीड गदगी, फटेहाली तथा कगाली देखी जा सकती है।' ('इडिया इन 1927 28')

'भारत की आबादी का एक बडा हिस्सा आज भी इस तरह की निधनता से ग्रस्त है जिसकी तुलना समूचे पश्चिमी जगत के किसी भी देश से नही की जा सकती। यहा की अधिकाश जनता किसी तरह अपना अस्तित्व बनाए है।' ('इडिया इन 1929-30')

'आज भी 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत लोग किसी तरह जी रहे हैं।' (सर अल्फ्रेड चैटटन जनल आफ दि ईस्ट इडिया एसोसिएशन, जुलाई 1930)

1933 मे *भारतीय चिकित्सा सेवा के निदेशक मेजर जनरल सर जान मेगा ने जन स्वा*-स्थ्य के बारे मे एक रिपोट जारी की जिसम उन्होन अनुमान लगाया कि कुल आबादी के 39 प्रतिशत लोगो का अच्छी तरह पोषण होता है, 41 प्रतिशत लोगा का बुरी तरह पोषण होता है और 20 प्रतिशत लोगो का अत्यत बुरी तरह पोषण होता है। इसका अथ यह हुआ कि 61 प्रतिशत लोग या दो तिहाई हिस्सा अल्पपोषण का शिकार है। बगाल के लिए यह सख्या क्रमश 22 प्रतिशत, 47 प्रतिशत और 31 प्रतिशत है अर्थात बगाल मे 78 प्रतिशत लाग या पाच मे से लगभग चार लोग अल्पपोषण के शिकार है। उन्होने अपनी रिपोट मे आग बताया कि 'भारत भर म बीमारी फैली है और यह लगातार बहुत तेजी से बढ रही ह।'

पोषक आहार विशेषज्ञ डा० ऐक्रायड का कहना है कि भारत मे कुल आबादी का लगभग एक तिहाई हिस्सा लगातार अल्पपोषण का शिकार रहा है।' (फूड ग्रेन्स पालिसी कमेटी की रिपोट मे उद्धृत, 1943, पृष्ठ 33)

1926 मे सरकार न भारत म कृषि के लिए एक राज आयोग नियुक्त किया था। हालाकि विषयो की सीमा के कारण उसने जमीन की मिल्कियत एव काश्तकारी, लगान और भू राजस्व की वसूली की असल समस्याओ पर, जिनके कारण गरीबी व्याप्त है, विचार ही नही किया लेकिन स्वय सरकारी अधिकारियो न आयोग के कार्यालय म किसाना की भयानक हालत के प्रमाणो का अबार लगा दिया। भारत सरकार के कृषि सलाहकार *और आयोग के समक्ष प्रथम गवाह डाक्टर डी० क्लाउस्टन ने बताया कि गावो की* जनता शारीरिक रूप स कमजोर है और आसानी से महामारियो का शिकार हो जाती है।' कनल ग्राहम न आयोग को बताया कि 'कृषि के क्षेत्र मे सुधार के रास्ते मे सबसे बडी कठिनाई किसानो को पौष्टिक आहार का न मिलना है।' कून्नूर के पस्चयर इस्टीटयूट

मे अभावजन्य बीमारियो की जाच-पडताल के सचालक लेफ्टिनेंट कर्नल आर० मैक हैरिसन न तो और भी जारदार शब्दा म कहा

> भारत मे जनता जिन अनेक असमथताओ से ग्रस्त है उनमे शायद सबस बडी चीज है पौष्टिक आहार का अभाव भारत मे बीमारिया के जितने भी कारण हैं उनमे सबसे व्यापक कारण कुपोषण है। (लफ्टिनेंट कनल आर० , मैक हैरिसन मेमोरेंडम आन माल-यूट्रिशन ऐज ए काज आफ फिजिकल इनएफिसिएसी ऐंड इल हेल्थ एमग दि मासेज इन इडिया, कृषि सबधी राज आयोग के समक्ष साक्ष्य। (पृष्ठ 95)।

1929 म सरकार ने भारत के मजदूरो की हालत की जाच के लिए एक आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने पता लगाया कि 'अधिकाश औद्योगिक केंद्रो म कज के बोझ से दबे व्यक्तियो और परिवारो की सख्या, कुल आबादी की दो तिहाई से कम नही है अधिकाश व्यक्तिया पर जितना कज है वह उनकी तीन महीने की तनख्वाह से ज्यादा है और प्राय काफी ज्यादा है। (पृष्ठ 224)

इसने पाया कि विभिन्न उद्योगो मे लगे मजदूरो के वेतन में काफी अतर है। बबई की सूती कपडा मिल का पुरुष मजदूर 56 शिलिंग प्रतिमाह और महिला मजदूर 26 शिलिंग प्रतिमाह पाती है, बबई के अकुशल मजदूरो का वेतन 30 शिलिंग प्रतिमाह, मुख्य झरिया कोयला खान म खदान मजदूरो का वेतन औसतन 15 शिलिंग से 22 शिलिंग प्रतिमाह है, मौसमी कारखानो मे पुरुषो की मजदूरी 6 पेंस से 1 शिलिंग प्रतिदिन और महिलाओ की 4 पेंस से 9 पेंस प्रतिदिन है, बगाल, बिहार और उडीसा म अकुशल मजदूरो को 9 पेंस प्रतिदिन और महिलाओ को 6 पेंस प्रतिदिन तथा बच्चो को 4 पेंस प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती है, मद्रास और सयुक्त प्रात मे पुरुषो को मिलने वाली मजदूरी 5 पेंस प्रतिदिन तक है। उसने देखा कि 'अनियत्रित' कारखाना और उद्योगो मे, जहा भारत के औद्योगिक मजदूरो की काफी बडी सख्या नौकरी म है, कुछ स्थानो म 5 वष की उम्र तक के बच्चे मजदूरी करते है। उन सर्वाधिक सुकुमार वर्षों मे उन्ह न तो खाने क लिए पर्याप्त छुट्टी मिलती है और न हफ्ते मे एक दिन के लिए अवकाश मिलता है, महज दो आने (2 25 पस) के लिए उन्ह प्रतिदिन 10 से 12 घट काम करना पडता है। (पृष्ठ 96)

जहा तक लोगा क रहने के लिए मकान का सबध है औसत मजदूर परिवार के पास एक कोठरी भी नही है प्राय एक ही कोठरी म कई परिवार अपनी गुजर करते है। 1911 म बबई की समूची आबादी 69 प्रतिशत हिस्सा एक कमरे मे रहता था (जबकि उसी वष लदन म इस तरह रहने वाला की सख्या 6 प्रतिशत थी) और प्रत्येक कमरे म औसतन 4 5 व्यक्ति रहते थे। 1931 की जनगणना के अनुसार बबई की कुल आबादी का 74 प्रतिशत

हिस्सा एक कमरे की चाल म रहता था, इससे पता चलता है कि बीस वर्षों के बाद अति-सकुलता मे वद्धि ही हुई। आबादी का एक तिहाई भाग एक कोठरी म पाच आदमिया के हिसाब से रहता था 2,56,379 व्यक्ति एक कोठरी मे 6 से लेकर 9 आदमियो तक के हिसाब से रहते थे, 8,133 व्यक्ति एक कोठरी मे 10 से लेकर 19 आदमियो तक के हिसाब से रहते थे, 15,490 व्यक्ति एक कोठरी मे 20 या इससे अधिक आदमिया के हिसाब से रहत थे। यह भयानक जनसकुलता उस समय और स्पष्ट दिखाई देती है जब सवहारा की दशाए औसत मे शामिल करके नही अपितु अलग से देखी जाती है।

1937 मे काग्रेस मत्रिमडल ने सूती कपडा मजदूरा की स्थिति की जाच के लिए एक समिति नियुक्त की जिसने 1940 म प्रकाशित अपनी रिपोट मे बताया

> बबई म जाच का काम ई, एफ और जी वाड तक सीमित था क्योकि यही मुख्य रुप से मजदूरा की बस्तिया थी। एकत्रित आकडे बताते है कि जाच के दौरान जिन परिवारो स सपक किया गया उनम से 91 24 प्रतिशत एक कोठरी की चाल मे रहते ह और इस तरह की प्रत्येक चाल म औसतन 3 84 व्यक्ति रहते है। प्रति व्यक्ति उपलब्ध फश और चाल का क्षेत्रफल क्रमश 26 86 और 103 23 वग फीट है। (टैक्सटाइल लेबर इक्वायरी कमेटी रिपोट, खड-2, 1940, पृष्ठ 273)

व्हिटले कमीशन ने अपनी रिपोट म कहा कि कराची मे समूची आबादी का एक तिहाई भाग एक कमरे मे 6 स 9 व्यक्तियो के हिसाब से है। अहमदाबाद मे 73 प्रतिशत मजदूर वग एक कमरे के मकान म रहता था।

रहन सहन की स्थिति 1931 के बाद और खासतौर से युद्ध के बाद और भी ज्यादा खराब हो गई। बबई की आबादी 1945 मे बढकर 23 लाख हो गई जबकि 1931 मे यह 11 लाख और 1941 म 14 लाख 81 हजार थी। लेकिन इसके साथ ही 1931 के बाद से मकानो की सख्या म केवल 83,828 की ही वृद्धि हुई। प्रति मकान कुल औसत 7 01 है, जबकि 1931 मे यह 4 01 था। बेशक एक कोठरी की चाल की तुलना मे बडी चाल मे भीडभाड काफी अधिक है।

आवास समिति (बबई नगरपालिका द्वारा नियुक्त समिति) ने बबई मे प्रतिव्यक्ति औसत उपलब्ध धरातल 12 वगफीट निर्धारित किया जबकि बबई कारागार मैनुअल के अनुसार कैदिया तक का प्रतिव्यक्ति 40 वगफीट की जगह देने की व्यवस्था है। (रिपोट आफ दि हाउसिंग पैनल, जनवरी 1946)

इसके अलावा बबई की आबादी का 13 प्रतिशत भाग आज सडको पर सो रहा है। जब

कि युद्ध से पूर्व सड़को पर सोने वालो की संख्या 5 प्रतिशत थी। जहा तक सफाई का संबंध है व्हिटले कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे बतलाया

> सफाई की तरफ बरती जा रही लापरवाही का सबूत प्राय सडते हुए कूडे के ढेरो और गदे पानी के गडढो से मिल जाती है जबकि शौचालयो के अभाव मे सामान्यत हवा और मिटटी का दूषण बढ जाता है। मकानो मे भी अधिकाश ऐसे है जिनकी न तो कोई नीव है और जिनमे न तो कोई खिडकी है, केवल उसी ओर कमरा खुला होता है जिस ओर दरवाजा होता है और वह भी इतना नीचा होता है कि बिना झुके उसमे से होकर अदर नही जाया जा सकता। पर्दा करने के लिए मिटटी के तेल के पुराने कनस्तरो और पुरानी बोरियो का इस्तमाल किया जाता है जिनसे रोशनी और हवा आने मे और भी रुकावट पैदा होती है। इस तरह की कोठरियो मे लोग पैदा होते है, सोते है, खाते-पीते है जिंदगी बिताते है और मर जाते है। (पृष्ठ 271)

बबई के श्रम कार्यालय ने 1932-33 मे मजदूरो के बजट की जाच की और पाया कि इनके घरो म से 26 प्रतिशत ऐसे है जिनम आठ या उससे कम घरो के लिए पानी का एक नल है 44 प्रतिशत ऐसे है जिनम 9 से 15 घरो के लिए एक नल है और 29 प्रतिशत ऐसे है जिनम 16 या इससे अधिक घरो के लिए एक नल है (रिपोर्ट आफ इक्वायरी इटु वर्किंग क्लास बजटम इन बाबे 1935)। इनमे 85 प्रतिशत ऐसे हैं जिनम 8 या इसस कम घरो के लिए एक शौचालय है, 12 प्रतिशत ऐसे है जिनमे 9 से 15 घरो के लिए एक शौचालय है और 24 प्रतिशत ऐसे है जिनम 16 या इससे अधिक घरो के लिए एक शौचालय है। 1935 म अहमदाबाद सूती मिल मजदूर सघ ने औद्योगिक आवास के बारे म एक जाच की और पाया कि जिन 23,706 मकानो की जाच की गई उनमे से 5,669 के पास किसी भी पानी की किसी भी तरह की व्यवस्था नही थी जबकि वे लोग जिन्हे पानी की सप्लाई की जाती थी, उनके पास 200 या इससे अधिक परिवारो द्वारा अधिकृत क्षेत्र म एक दो नल थे, 5 000 मकानो म पाखाने की कोई व्यवस्था नही थी, सफाई या जल निकासी का कोई इतजाम नही था। औद्योगिक आयोग के समक्ष एक गवाह ने अपने बयान म कहा

> हालाकि मैंने अपनी जिंदगी म और अनेक देशो मे पर्याप्त गरीबी देखी है और हालाकि मैंने गरीबी के बारे म काफी कुछ पढा भी है तथापि बबई के इन बहुत गरीब लोगो के तथाकथित घरो को देखने से पहले कभी मैंने इसकी हृदयविदारकता और चरम बदनसीबी का अनुभव नही किया था (मजदूर को) उसके परिवार के साथ उसके घर म देखते ही खुद अपने म अनायास ही सवाल पूछना पडता है क्या यह भी मनुष्य है या मैं ही पाताल लोक के किसी काल्पनिक निर्जीव प्राणी का जादू स बुला रहा हू ? इस 10 फीट लबे और 10 फीट चौडे कमरे म, जहा हिलने डुलने की जगह भी

मुश्किल से ही हो, पूरा परिवार सोता है, पलता है, गोबर की तीखी गंधवाले उपलों की मदद से खाना बनाता है, अपने पारिवारिक जीवन के सभी समारोह मनाता है, बस केवल उनका सामूहिक शौचालय उनसे अलग रहता है। पुराने मकानों की तथाकथित ऊपरी मंजिल पर के कुछ कमरे जिनमें सीधा खड़ा नहीं हुआ जा सकता, एक ढलवा छत के नीचे बने सूराख से ज्यादा कुछ नहीं है। पीछे के कमरे आमतौर से अंधेरे और उदास है और काफी गौर से देखने पर तथा उस अंधकार से आंखों के अभ्यस्त हो जाने पर ही उन कमरों में रहने वाले लोगों को देखा जा सकता है। (ए० ई० माइरम्स एविडेंस बिफोर दि इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन, 4, पृष्ठ 354)

इन स्थितियों की जांच के लिए बंबई सरकार द्वारा नियुक्त एक भारतीय महिला डाक्टर ने अपनी रिपोर्ट में बताया

एक चाल की दूसरी मंजिल पर 15 फीट लंबे और 12 फीट चौड़े कमरे में मैंने छ परिवारों को रहते देखा। कमरे में इन छ परिवारों के अलग अलग चूल्हे बने हुए थे। जांच करने पर मुझे पता चला कि इस कमरे में रहने वाले वयस्कों और बच्चों की असली संख्या तीस है। इसमें रहने वाली छ महिलाओं में से तीन को कुछ ही दिनों में बच्चा पैदा होने वाला था रात में पूरा कमरा छ चूल्हों के धुए से भर उठता था और इसके साथ ही तमाम गंदगियां भी कमरे में मौजूद दिखाई देती थी जो निश्चित रूप से प्रसव से पूर्व और प्रसव के बाद किसी भी मां और बच्चे के स्वास्थ्य के लिए घातक थी। इस तरह के तमाम कमरे मैंने देखे। एक मकान के तहखाने के कमरों की हालत और भी बदतर थी। यहां दिन की रोशनी मुश्किल से ही पहुच पाती थी सूरज की रोशनी तो इन कमरों में कभी पहुंची ही नहीं। (बांबे लेबर गजट, दिसंबर 1922, पृष्ठ 31)

21 अप्रैल 1946 को मैं बंबई के निषिद्ध इलाके परेल के केंद्र में स्थित सूती मिल मजदूरों की चाल को देखने गया। यहां 12 फीट लंबी और 10 फीट चौड़ी एक दूसरे से सटी झोपड़ियों की तमाम कतारें थी। इनमें कोई खिड़की नहीं थी। जब हम इस तरह की चाल के अंदर गए तो हमने देखा कि चारों तरफ अंधेरा फैला हुआ है और एक ढिबरी की कांपती लौ से अंधेरा कुछ कम हो रहा था जबकि कमरे में जल रहे स्टोव के कारण काफी गरमी महसूस हो रही थी। जिस पहली झोपड़ी में हमने प्रवेश किया उसमें 10 लोग रह रहे थे। इसका किराया सात रुपये प्रतिमाह था। एक दूसरी झोपड़ी में मैंने 13 छोटे छोटे स्टोव और बर्नर देखे जिनसे पता चला कि यहां 13 परिवार रहते हैं। मेरा गाइड भी उसी इलाके का था और उसने बताया कि यहां कम से कम 20 लोग या इससे अधिक लोग रहते हैं। लेकिन उस कमरे में रहने वाले लोगों ने इस डर से मुझे सही सही संख्या नहीं बताई कि

कही किराया बढा न दिया जाए। इन मकानो की पहली तीन कतारो मे 30 कमरे थे जिनमे तकरीबन 300 लोग रहते थे लेकिन उनके लिए केवल तीन नल लगे हुए थे और इन नलो मे सुबह और शाम के वक्त रुक रुककर पानी आता था। एक नाली के ऊपर सूराख बनाकर तीन शौचालय तैयार किए गए थे। इनमे से एक पूरी तरह भर गया था और इस्तेमाल करने लायक नही था। अगली कतार मे 160 मकान थे और इनके इस्तेमाल के लिए केवल छ नल थे। पानी की कमी के कारण सुबह एकदम तडके और शाम को दो दो घटे तक नल चलता था जबकि बबई के समृद्ध इलाको मे बने मकानो मे पानी दिन भर उपलब्ध था।

इस अधभुखमरी, बेहद भीडभाड और सफाई की व्यवस्था न होने का लोगो के स्वास्थ्य पर क्या असर पडता होगा इसकी कल्पना की जा सकती है। इन स्थितियो की झलक उस समय की मृत्यु दर मे देखी जा सकती है। 1937 मे मृत्यु दर 22 4 व्यक्ति प्रति हजार पाई गई जबकि इसी अवधि मे इग्लैंड और वेल्स मे यह दर 12 4 व्यक्ति प्रति हजार थी। इग्लैंड और वेल्स मे रहने वाला व्यक्ति औसतन जितनी आयु की आशा करता है भारत मे रहने वाला व्यक्ति उसके केवल आधे समय तक जीवित रहता है।

> भारत मे औसत आयु अधिकाश पश्चिमी देशो की तुलना मे काफी कम है। 1921 की जनगणना के अनुसार पुरुषो और महिलाओ के लिए यह औसत क्रमश 24 8 और 24 7 वर्ष था। इसका अर्थ यह हुआ यह इग्लैंड और वेल्स की औसत आयु 55 6 की तुलना मे भारत मे 24 75 थी। 1931 मे इसमे और कमी आई और यह पुरुषो तथा महिलाओ के लिए क्रमश 23 2 और 22 8 हो गई। (इडस्टियल लेबर इन इडिया', इटरनेशनल लेबर आफिस 1938 पृष्ठ 8 1931 मे की गई भारत की जनगणना पर आधारित, पृष्ठ 98)[15]

इन स्थितियो की झलक इस बात से मिल जाती है कि भारत मे पैदा होने वाले प्रति एक हजार बच्चो पर, प्रसव के दौरान मरने वाली माताओ की सख्या 24 5 है जबकि उसके मुकाबले मे इग्लैंड और वेल्स मे माताओ की मृत्यु का अनुपात 4 1 प्रति हजार है। इनकी झलक इस विषमतापूर्ण वास्तविकता से भी मिल जाती है कि अहमदाबाद शहर मे, जहा लोग ऊपर वर्णित स्थितियो मे रहते है मृत्यु दर 41 05 प्रति हजार थी जबकि अहमदाबाद छावनी मे स्वास्थ्य और आराम की सभी सुविधाओ मे लैस यूरोपियनो की मृत्यु दर 12 84 प्रति हजार थी। इस स्थिति की झलक इस तथ्य से भी मिल जाती है कि भारत मे एक साल के अदर पैदा हुए प्रति हजार बच्चो मे से 163 बच्चे शैशवकाल मे ही मर जाते है जबकि इग्लैंड और वेल्स मे यह सख्या 46 थी। कलकत्ता मे यह सख्या 239 बबई मे 248 और मद्रास मे 227 थी (एक कमरे के मकानो मे रहने वालो मे मृत्यु दर और भी ज्यादा देखी गई। इस प्रकार 1926 मे बबई मे एक कमरे के मकान मे प्रति

हजार पर मरने वाले नवजात बच्चो की सख्या 577 थी, दो कमरेवाले मकान मे 254 थी और अस्पतालो मे प्रति हजार पर यह सख्या 107 थी)।

भारत म, सरकारी कागजो म मौत का कारण प्राय 'बुखार' बताया जाता है (ब्रिटिश भारत मे 1932 4 म प्रतिवष 62 लाख मौता मे से 36 लाख मौता का कारण बुखार ही बताया गया है)। अधभुखमरी की अवस्था मे रहन और निधनता का जीवन बिताने के बुरे स्वास्थ्य के रूप मे जो नतीजे होन है उनपर परदा डालने के लिए बुखार जैस गालमोल शब्द का इस्तमाल किया जाता रहा है। भारत की आर्थिक परिस्थितिया के आधिकारिक विद्वान और साम्राज्यवाद के हमदद वी० एनस्ट न कहा है कि भारत म जितने लाग मरते हैं उनमे चार म तीन व्यक्ति गरीबी की बीमारिया से मरत है

> 1926 म कुल मत्यु दर 26 7 व्यक्ति प्रति हजार म से 20 5 व्यक्तियो की मत्यु हैजा, चेचक, प्लेग, 'बुखार', पचिश और दस्त मे हुई। इनम से लगभग सभी बीमारिया गरीबी की बीमारियां' क अतगत आती है और इन सभी बीमारिया को रोका जा सकता था। पर्याप्त चिकित्सा और चिकित्सा सबधी सलाह तथा सस्थागत उपचार के साथ साथ सफाई की बहतर व्यवस्था (जिसमे शुद्ध जल की सप्लाई, भोजन को दूषित होने से रोकना गद पानी और मल मूत्र के निकासी की पर्याप्त व्यवस्था और रहन के लिए आवास की बहतर मकान की सुविधा शामिल है) के जरिए निश्चित रूप से शहरो मे मरने वालो की इतनी बडी सख्या को और तपेदिक तथा श्वास सबधी रोगा से होन वाली मत्यु को काफी बडे पैमाने पर कम किया जा सकता है। भारत म बीमारी के कारण मृत्यु (और बुरे स्वास्थ्य) को बडे पैमाने पर उन साधना के द्वारा रोका जा सकता है जो अधिकाश पश्चिमी देशा म अपनाए जा चुके ह और सफल साबित हुए है। (वी० एनस्टे 'दि इक्नामिक डेवलपमट आफ इडिया', पृष्ठ 69)

अक्तूबर, 1943 म भारत सरकार न सर जोसेफ भ्होर की अध्यक्षता म स्वास्थ्य सर्वेक्षण एव विकास समिति का गठन किया जिसने 1946 म प्रकाशित अपनी रिपोट मे बडे साफ शब्दा मे कहा

> 'जन स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए कुछ बुनियादी शर्तों को पूरा करना आवश्यक है। इसमे स्वस्थ जीवन के लिए सहायक परिवेश की सुविधा, पर्याप्त पौष्टिक आहार की सुविधा तथा स्वास्थ्य की रक्षा के लिए[16] रोगा के निदान और चिकित्सा मे सबधित सुविधाए शामिल हं। ये सुविधाए समुदाय के सभी सदस्या को मिलनी चाहिए चाह वे इसके बदल म कुछ धन दे सकें या नही। इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य को बनाए रखन के काम

मे जनता का भी सक्रिय सहयोग प्राप्त होना चाहिए। बडी सख्या मे निदानयोग्य बीमारियो और मत्यु दर का जिसका उल्लेख अभी किया गया है, मुख्य कारण यह है कि इन बुनियादी शर्तों के सिलसिले मे व्यवस्था अपर्याप्त है। देश के अधिकतर हिस्सो मे परिवेश सबधी सफाई का स्तर बहुत निम्न है, अपोषण और अल्पपोषण से आबादी के एक उल्लेखनीय हिस्से की जीवनशक्ति मे और प्रतिरोध क्षमता मे कमी आती है। इसके अलावा मौजूदा स्वास्थ्य सेवाए जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए एकदम अपर्याप्त है जबकि सामान्य शिक्षा और स्वास्थ्य सबधी शिक्षा का अभाव होने से जनता की उस उदासीनता को दूर करने मे कठिनाई काफी बढ जाती है जिसकी वजह से लोग अपने आसपास की गदगी भरी स्थिति को बर्दाश्त करते है बडे पैमाने पर मौजूद बीमारियो को झेलते रहते है। (रिपोर्ट आफ दि हैल्थ सर्वे ऐड डेवलपमेट कमेटी, 1946 खड 1 पृष्ठ 11)

विश्व म निम्नतम स्तर की गरीबी और दुदशा का यह चित्र सभी गैरसरकारी प्रेक्षको ने प्रस्तुत किया ह। यहा एक अमरीकी के विचार पेश किए जा रह ह जिसन भारत के एक गाव म कुछ दिन बिताए थे। उसने महसूस किया कि ग्रामीणो को चिकित्सा सबधी सहायता या दूसरी तरह की सहायता देने की सभी कोशिशें गरीबी की बुनियादी समस्या के सामने व्यर्थ हो गइ

आबादी के तीन करोड से चार करोड लोगो को दिन भर मे एक वक्त से अधिक खाना नही मिलता है और वे निरतर भुखमरी की स्थिति म जिंदगी गुजारते ह। जो मरीज मर पास आते थे उनके लिए अच्छी खुराक का निर्देश दना एक निराशाजनक स्थिति थी।

यदि उनसे यह कहा जाता था कि हैजे के मरीज के मैले कपडो को जला दो तो उनका जवाब होता था कि अगर वह नही मरा तो बाद म क्या पहनगा। गरीबी के कारण वे इस तरह की 'फिजूलखर्ची' को नही झेल सकते थे।

भारत के गावो की जनता को दवा की गोलियो की नही बल्कि भोजन और शिक्षा की जरूरत ह। (जी० इमरसन 'वायसलेस इडिया' 1931)

'दि टाइम्स' समाचारपत्र के कलकत्ता स्थित दकियानूस साम्राज्यवादी सवाददाता को भी कुछ इसी तरह की बात कहनी पडी। उसे यह कहना पडा कि नजदीक से देखन पर भारत अधभुखमरी की ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करता ह जो जबरन निगाहो म कौंध जाती है

भारत के विभिन्न भागो से गुजरते समय कोई भी व्यक्ति अपोषण
और अधभुखमरी के ददनाक दृश्यो को देखने से अपने को नही बचा सकता।
ये दश्य आखो मे चुभने लगते हैं। किसी भी व्यक्ति को इस बात मे भी
कोई सदेह नही हो सकता कि भारत के तमाम लोग यह बिलकुल नही
जानते कि उनके पास ऐसी कौन सी चीज है जिसे वे भरपट खा सकें।

जिस प्रात से मैं सबसे ज्यादा परिचित हू उसका उदाहरण देना चाहूगा।
बगाल के स्वास्थ्य अधिकारियो का दावा है कि भारतवासियो का
पोषण आज उतने अच्छे ढग से नही हो रहा है जितने अच्छे ढग से एक
पीढी पूव होता था। (दि टाइम्स के कलकत्ता सवाददाता, 1 फरवरी 1927)

साम्राज्यवादी शासन के 180 वर्षों बाद भारत की जनता की यह स्थिति है।

यह ध्यान देने की बात है कि गरीबी की यह स्थिति स्थिर नही है। यह एक गतिशील स्थिति है और इसका विकास होता जाता है। 'दि टाइम्स' के सवाददाता की इस टिप्पणी से कि आधुनिक भारत की स्थितिया खराब होती जा रही है अनेक समथ प्रेक्षक सहमत हैं। बगाल के स्वास्थ्य सचालक ने 1927-28 मे अपनी रिपोट म लिखा था कि 'काफी बडी सख्या म बगाल के मौजूदा किसान एसा भोजन खाने लगे हैं जिसे खाकर चूहे भी पाच सप्ताह से ज्यादा जिंदा नही रह सकते।' और यह कि 'अपर्याप्त भोजन के कारण उनके शरीर म जीवनशक्ति इतनी कम हो गई है कि वे गभीर रोगो के सपक म आते ही उनके शिकार हो जाते है। इसी प्रकार 1933 मे भारतीय चिकित्सा सेवा (इडियन मेडिकल सर्विस) के निदेशक ने अपनी रिपोट मे कहा था कि जैसा पहले ही देखा गया है 'समूचे भारत म बीमारिया लगातार बल्कि बहुत तेजी से बढ रही है।' स्थिति के इस तरह बिगडते जाने का सबध साम्राज्यवादी शासन की परिस्थितिया मे कृषि का सकट तेजी से बढने जाने से है जो सामाजिक और राजनीतिक परिवतन के लिए एक जबरदस्त प्रेरक शक्ति है।

अत्यधिक आबादी होने की भ्रातिया

भारतीय जनता की इस भयकर गरीबी का क्या कारण है?

इसके वास्तविक कारणो की खोज शुरू करने से पूव हमे उन वतमान सतही दलीलो को अपने रास्ते स हटा देना होगा जिसके कारण प्राय समस्या का गभीरता के साथ विश्लेषण नही हो पाता।

इसकी एक खास मिसाल यह दलील है कि भारतीय जनता की गरीबी का कारण सामाजिक पिछडापन, आम जनता की अज्ञानता और उसका अधविश्वास (तकनीक मे ए

वादिता, जातपात के बधन, गो पूजा, स्वास्थ्य विज्ञान की उपेक्षा, महिलाओं की स्थिति इत्यादि) है। इसमे कोई सदेह नही कि भारत की गरीबी म इन बातो की भी महत्वपूर्ण भूमिका ह और इस तरह की प्रतिगामी चीजा पर विजय पाना भारतीय जनता के सामन पुनर्निर्माण के काम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। लेकिन जब इन कारणो को भारत की गरीबी का मूल कारण घोषित किया जाता है तब वस्तुत गाडी को घोडे के आगे रख दिया जाता है। सामाजिक और सास्कृतिक पिछडापन जनता की निम्न आर्थिक स्थिति तथा राजनीतिक दासता का परिणाम और उसकी अभिव्यक्ति है न कि जनता की निम्न आर्थिक स्थिति तथा राजनीतिक दासता उसके सामाजिक और सास्कृतिक पिछडेपन का परिणाम तथा अभिव्यक्ति है। निरक्षरता के लिए उस सरकार की भर्त्सना की जा सकती है जो जनता को अज्ञान मे रखती है और उन्हे शिक्षा देन से इकार करती है लेकिन हम उस जनता की भर्त्सना नही करेगे जिसे सीखन का अवसर दिया ही नही गया। मूल समस्या आर्थिक-राजनीतिक है और सास्कृतिक समस्या इस मूल समस्या पर टिकी है। सामाजिक और सास्कृतिक पिछडेपन को ऐसे समय जबकि भयकर गरीबी बनी हो, अपनी उन्नति करने का उपदेश देकर और स्वास्थ्य पर भाषण पिलाकर नही दूर किया जा सकता। इस पिछडेपन का सगठन के भौतिक आधार मे परिवतन के जरिए ही दूर किया जा सकता है और यही अन्य सभी रास्तो की कुजी है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जरूरत है वग सबधो म परिवतन की, जिसका अथ है राज्य के स्वरूप म परिवतन। साम्राज्यवादी और सामती सबधो के जुए को उतार फेक एक शक्तिशाली जन आदोलन ही भौतिक, सामाजिक और सास्कृतिक विकास के लिए एक साथ माग प्रशस्त कर सकता है।

इस विश्लेषण की सत्यता का पता सोवियत सघ के उदाहरण से चल जाता है। जारशाही के अतगत जनता की गरीबी और निम्न जीवन स्तर की व्याख्या करते समय आमतौर पर विद्वान लोग इसे रूसी कृषक समुदाय के तथाकथित सहज पिछडेपन का अनिवाय परिणाम बताते है। लेकिन जब वहा के मजदूरो और किसानो ने एक बार मिलकर अपने शोषको को उखाड फेका तो उन्होने अपने आपको तकनीकी और सास्कृतिक प्रगति के क्षेत्र म इतना समथ दिखाया कि दुनिया के सर्वाधिक विकसित देश भी पीछे छूट गए। भारत मे भी ऐसी ही स्थिति आएगी भले ही इस प्रक्रिया को किन्ही दूसरे रूपो और मजिलो स गुजरना पडे। भारतीय किसानो का वास्तविक पिछडापन महज तकनीक और सस्कृति के क्षेत्र म ऊपर स दिखाई देने वाले निम्न स्तर तक (जो दासता और अवरुद्ध विकास के प्रत्यक्ष चिह्न हैं) ही नही है बल्कि सबसे बढकर यह साम्राज्यवादियो और जमीदारो के सामने आत्मसमपण करने तक है। इन साम्राज्यवादियो और जमीदारो का प्रभुत्व विकास को रोकता है। लेकिन यह एक ऐसा पिछडापन है जो निकट भविष्य म समाप्त होने जा रहा है और यही स आने वाले दिनो के प्रति आशा पैदा होती है।

भारत की गरीबी के बारे म प्राय दोहराए जाने वाले एक कारण का प्रचार कम रहा है यह कारण है अत्यधिक आबादी के तथाकथित परिणाम। यह दृष्टिकोण इतना ज्यादा

प्रचलित है और बार बार इसे दोहराने मे यह पश्चिमी देशा के 10 पाठका म से, जिन्हे वास्तविकताओ से परिचित होन का अवसर नही मिला, 1 के दिमाग म इतनी तेजी से बैठ जाता है कि हमारे लिए यह जरूरी हो गया है कि हम इसपर और भी विस्तार से विचार करे और यह दिखाए कि ज्ञात तथ्यो के आधार पर कैसे इसका पूरी तरह खडन हो जाता है।

क्रूर लोगो की मदद के लिए जितने झूठ गढे गए है उनम सबसे बडा झूठ यह है कि आबादी के अत्यधिक बढ जाने से पूजीवाद के अतगत जनता की गरीबी बढ जाती है। आधुनिक युग म यह झूठ माल्थस नामक उस प्रतिक्रियावादी पादरी के समय से प्रचारित हुआ है जिसने वस्तुत कोई नई बात तो नही कही लेकिन जिसने 1798 म फ्रास की क्राति और उदारतावादी सिद्धातो के खिलाफ प्रचार करन के लिए एक राजनीतिक हथियार के रूप मे (जैसा उसकी पुस्तक के टाइटिल म घोषित है) अपने इस सिद्धात का प्रतिपादन किया था और जिसको इसके पुरस्कारस्वरूप ईस्ट इडिया कपनी के कालेज मे प्रोफेसर-शिप मिली। उसके सिद्धात का इग्लैंड के कुलीनतत्र न आनदविभोर होकर स्वागत किया और मानवजाति के विकास के विषय म सभी उत्कठाओ को समाप्त कर देने वाली एक महान शक्ति' कहा। (मार्क्स 'पूजी', खड 1, 25वा अध्याय) माल्थस का सिद्धात आज भी प्रतिक्रियावादियो का बहुत प्रिय दशन है हालाकि सभी मतो के वैज्ञानिको और अथशास्त्रियो ने इसका मजाक उडाया है। यह सिद्धात उत्पादन के विकास की सभावनाओ पर मनमाने तौर पर कुछ जबरदस्त सीमाए लगा देता है और यह भी ऐसे समय जब उत्पादन का विकास सर्वाधिक तीव्र विस्तार के युग मे प्रवेशकर रहा हो। 19वी सदी के अनुभव ने माल्थस के सिद्धात की उस समय धज्जिया उडा दी जब आबादी की रफ्तार से भी ज्यादा तेजी के साथ सपत्ति का विस्तार हुआ और यह बात बहुत साफतौर पर उदघाटित हो गई कि गरीबी की वजह जनसख्या वृद्धि नही बल्कि कुछ और है। 20वी सदी मे खासतौर से प्रथम महायुद्ध के बाद और विश्वव्यापी आर्थिक सकट के आने पर इस सिद्धात को फिर से जीवित करने की कोशिश की गई। लेकिन अतर्राष्ट्रीय आकडो की मौजूदगी ने उसे फिर समाप्त कर दिया। लोगा न इस तथ्य का देखा कि युद्ध के दौरान हुए सपूण और व्यापक विनाश के बावजूद दुनिया म विश्व स्तर पर खाद्य पदार्थो, कच्चे माला और औद्योगिक सामानो के उत्पादन म लगातार इतनी वृद्धि हुई कि वह विश्व की जनसख्या से आगे निकल गई। इस तथ्य ने लोगो को यह सोचने पर विवश किया कि उनके दुखो का कारण समाज व्यवस्था मे ही कही निहित है। शासक वग के सामने यह समस्या पैदा होने लगी कि सपत्ति की वृद्धि को कैसे रोका जाए और इसके लिए उसने कई उम्दा तरीके निकाले। साथ ही आबादी के सदभ मे उसे यह शिकायत होने लगी कि यूरोप और अमरीका के लोग युद्धबलि की पूर्ति के लिए काफी बच्चे पैदा नही कर रहे हैं। आधुनिक शासक वग ने माल्थस के सिद्धात को उलट दिया और यह नारा अपनाया कि सपत्ति कम और बच्चे ज्यादा पैदा करो।

पुराने ढग के प्रतिक्रियावाद का यह बदनाम सिद्धात यूरोप और अमरीका से खदेडे जाने के बाद अब एशिया मे अपना अतिम आश्रय स्थल ढूढ रहा है। भारत और चीन की गरीबी के बारे मे एकमात्र कारण यह बताया जाता है कि यह गरीबी वहा की समाज व्यवस्था की नही बल्कि 'जरूरत से ज्यादा आबादी' की वजह से है। यह कहा जाता है कि साम्राज्यवादी शासन के जनहितकारी प्रभावो ने भारतीय महाद्वीप से युद्ध को समाप्त कर दिया है और महामारी तथा अकाल की सीमा में तथाकथित कमी करके उसन दुर्भाग्यवश आबादी की वृद्धि को रोकने के 'प्राकृतिक उपायो' को खत्म कर दिया और इस प्रकार भारत की अदूरदर्शी और बहुप्रज जनता को पेट भरने तक की रोटी भी दुलभ हो गई है। (1770 से 20वी शताब्दी की शुरुआत तक ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भयकर अकाल पडे। 1918 म इफ्लूएजा से एक करोड चालीस लाख व्यक्तियो की मृत्यु हुई। बगाल के हाल के अकाल के दौरान 35 लाख व्यक्ति मारे गए और आज आबादी का बहुमत चूहे के खाने लायक आहार' की स्थितिया पर निभर है) इसलिए भूमि पर बढता हुआ दबाव और अधभुखमरी की स्थितिया ब्रिटिश शासन की परोपकारिता के अनिवाय स्वाभाविक परिणाम है। इन स्थितियो म तबदीली तभी लाई जा सकती है जब भारत की जनता जनसख्या वृद्धि की दर को यूरोप की बुद्धिमान जनता की वृद्धि दर के अनुपात से भी कम करे।

जैसे जैसे भारत की समस्या अधिक भीषण होती जा रही है साम्राज्यवादी क्षेत्रों म इस तरह के तक देने का फशन अधिक मे अधिक बढता जा रहा है। साम्राज्यवादी अथशास्त्र के एक प्रमुख विशेषज्ञ न बडे नाटकीय ढग से चीख कर कहा कि 'वह भारतीय माल्थस कहा है जो भारत के बच्चो की विनाशकारी बाढ को रोक सके ?' (एस्ट 'इकनामिक डेवलपमेट आफ इडिया' पृष्ठ 475)। साम्राज्यवादी अथशास्त्र के ही एक दूसर प्रवक्ता ने घोषित किया कि ऐसा लगता है कि भारत माल्थस के इस सिद्धात को कार्यान्वित कर रहा है कि जब जनसख्या वृद्धि को रोकने के लिए युद्ध, महामारी अथवा अकाल नहा होते तब वह इस सीमा तक बढ जाती है कि लोगो को जिंदा रहने लायक भी खाना नहीं मिलता।' (एन०सी० नावेल्स 'दि इकनोमिक डेवलपमेट आफ दि ब्रिटिश ओवरसीज इपायर, पष्ठ 351) यह दृष्टिकोण उन वामपथी, प्रगतिशील' क्षेत्रो म भी फैला जो साम्राज्यवादी चाल की गिरफ्त मे आ चुके है। 1933 म जन्म निरोध अतर्राष्ट्रीय केंद्र के तत्वावधान म लदन स्कूल आफ हाइजिन ऐंड ट्रापिकल मेडीसिन मे 'एशिया मे जन्म निरोध' विषय पर एक सम्मेलन आयाजित किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य यह था कि केवल चिकित्सा विज्ञान के एक ममले के रूप म ही नहीं बल्कि एशिया की गरीबी की समस्याओ के समाधान के एक आर्थिक उपाय के रूप म जन्म निरोध का समथन किया जाए। ('बथ कट्रोल आफ एशिया' की रिपाट देखें, इसे बथ कट्रोल इटरनशनल इनफार्मेशन सेंटर न 1935 म प्रकाशित किया था।) इसका प्रसार सरकारी रिपोर्टो म भी हुआ

अनाज का बढा हुआ उत्पादन लोगो के जीवनस्तर मे कोई सुधार या उपलब्ध खाद्य पदार्थों की मात्रा मे वृद्धि नही कर सका। क्योकि इन अनुकूल स्थितियो मे आबादी तेजी से बढ जाती है। पहले युद्ध, अकाल और महामारी ये तीनो जनसख्या म कमी करने के लिए सक्रिय थी। युद्ध और अकाल का सक्रिय प्रभावकारी के रूप मे प्राय नकार दिया गया है जबकि महामारी से होने वाली मौतो म उल्लेखनीय कमी आई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश पर दबाव बढता चला गया। हमारे अलावा और लोगो की भी यह राय है कि जनसख्या का मसला सामान्य जीवनस्तर का निम्न बनाने म एक भूमिका अदा करता है' (व्हिटले कमीशन रिपोर्ट आन लेबर इन इडिया 1931, पृष्ठ 249)

सरकारी राज आयोग की अध्यक्षता करते हुए और हाउस आफ कामन्स के भूतपूर्व स्पीकर के मुख से बोलते हुए सपूर्ण प्रभामडल से परिपूर्ण माल्थस को देखिए। तथ्य क्या है ?

पहली बात तो यह है कि ऊपर दी गई तमाम दलीलों से कुछ ऐसी धारणा बनती है गोया ब्रिटिश शासनकाल म भारत की जनसख्या दूसरे देशो की तुलना म बेहद तेजी से बढती गई है और इसीलिए ऐसी हालत आ गई है कि यह देश हद से ज्यादा गरीब हो गया है। लेकिन कितने लोग यह जानते है कि ब्रिटिश शासनकाल के अतगत भारत के इतिहास की वास्तविक सचाइया देखने से बिलकुल उलटी तस्वीर सामने आती है।

ब्रिटिश शासनकाल के अतगत जनसख्या वृद्धि की वास्तविक दर यूरोप के किसी भी देश की तुलना म उल्लेखनीय रूप से कम रही है और विश्व स्तर पर जनसख्या वृद्धि के सामान्य पैमाने पर देखें तो यह सबसे निम्न स्तर पर रही है। यह बात समान रूप से अगरेजो के सपूर्ण शासनकाल या पिछले पचास वर्षों की अवधि पर लागू होती है।

समूची अवधि के लिए केवल अटकलो का सहारा लिया जा सकता है क्योकि भारत म 1872 तक कोई जनगणना नही हुई थी। मोरलैड ने अनुमान लगाया था कि 16वी सदी के अत म भारत की आबादी 10 करोड थी ('इडिया ऐट दि डेथ आफ अकबर' पृष्ठ 22) आज यह सख्या 35 करोड है। इससे पता चलता है कि 300 से अधिक वर्षों मे जनसख्या म साढे तीन गुना की वृद्धि हुई है। सावधानीपूर्वक किए गए पहले अनुमान (सेंसस रिपोर्ट्स आफ 1931 की भूमिका मे सरकार के बीमा विशेषज्ञ फिनलाइजेन) के अनुसार इग्लैड और वेल्स की जनसख्या 1700 मे 51 लाख थी। आज यह सख्या 4 करोड 4 लाख हो गई है। इसका अर्थ लगभग दो सौ तैंतीस वर्षों की अल्प अवधि मे आठ गुना वृद्धि हुई है। इग्लैड मे जनसख्या वृद्धि भारत की तुलना मे दुगने से भी ज्यादा दर से हुई।[17]

शताब्दी का उत्तरार्ध अधिक महत्वपूर्ण है, जब औद्योगिक क्रांति के साथ जोड़े जाने वाले, यूरोप के विशेष विस्तार में कमी आनी प्रारंभ हो गई थी। हम सबसे पहले 1914 के पूर्व के भारत और यूरोप की तुलना करें ताकि हमारे विवरण में वे जटिलताएं न आएं जो यूरोपीय देशों में सीमागत परिवर्तन के कारण पैदा हुई हैं। भारत में और प्रमुख यूरोपीय देशों में 1870 और 1910 के बीच जनसंख्या में वृद्धि की दर के निम्नांकित आंकड़े देखने से बात साफ होती है।

जनसंख्या में वृद्धि, 1870 1910

देश	प्रतिशत वृद्धि
भारत	18 9
इंग्लैंड और वेल्स	58 0
जर्मनी	59 0
बेल्जियम	47 8
हालैंड	62 0
रूस	73 9
यूरोप (औसत)	45 4

(वी० नारायण 'पापुलेशन आफ इंडिया,' 1925, पृ० 11)

फ्रांस को छोड़कर अन्य सभी यूरोपीय देशों की में भारत में जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार कम रही है।

1872 से 1931 तक की अवधि की जांच करने से हमें तथ्यों का पता चलता है इस अवधि के दौरान भारत में यह दर 30 प्रतिशत थी जबकि इंग्लैंड और वेल्स में यह 77 प्रतिशत पाई गई। पिछले 60 वर्षों में इंग्लैंड और वेल्स में जनसंख्या वृद्धि की दर भारत की तुलना में दुगनी से भी ज्यादा रही।[18]

महज 1921 से 1940 की अवधि में भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर इंग्लैंड और पश्चिमी यूरोप के देशों की तुलना में अधिक रही (यह दर 21 प्रतिशत थी जबकि इसी अवधि में अमरीका में यह दर 24 प्रतिशत थी)। लेकिन भारत में गरीबी की समस्या की शुरुआत 1921 के बाद से ही नहीं हुई है।[19]

1931 में केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति ने अपनी एक रिपोर्ट जारी की जिसमें काफी व्यापक क्षेत्र में भारत की आर्थिक स्थितियों का आधिकारिक और अत्यंत विस्तृत सर्वेक्षण किया गया था। इस समिति ने विवश होकर भारतीय गरीबी की परंपरागत व्याख्या 'अत्यधिक आबादी' की भ्रांति का पर्दाफाश कर दिया

> जमीन से होने वाला प्रति व्यक्ति उत्पादन और प्रति एकड उत्पादन अन्य तमाम देशो की तुलना म कम है औसत किसान आज भी अनाज और आहार की अपर्याप्त मात्रा पर निभर है जो उसके काम करने की शारीरिक क्षमता पर असर डालती है—साथ ही देश की मृत्यु दर मे उल्लेखनीय वृद्धि करती है इन स्थितियो की जिम्मेदारी हम पूरी तरह जनसख्या म अनुचित वृद्धि तथा उसके कारण जमीन पर पडने वाले भार पर नही डाल सकते। हमे भारत मे जनसख्या के विकास की तुलना इग्लैंड की जनसख्या के विकास के साथ करनी चाहिए। हमारे पास दानो दशो के 30 वर्षो के आकडे मौजूद है जिन्ह दखन से पता चलता है कि इग्लैंड और वेल्स की आबादी म 1891 और 1901 के बीच 12 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, 1901 और 1911 के बीच 10 91 प्रतिशत और 1911 तथा 1921 के बीच 4 8 प्रतिशत की वद्धि हुई। इसकी तुलना म इन्ही वर्षो म ब्रिटिश भारत की आबादी मे क्रमश 2 4 प्रतिशत, 5 5 प्रतिशत और 1 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।'
> (रिपोट आफ दि सेंट्रल बैंकिग इक्वायरी कमटी, 1921, पष्ठ 40 41)

अब आबादी के घनत्व पर विचार कर लें। 1941 म पूर भारत मे जनसख्या का घनत्व 246 व्यक्ति प्रति वग मील था जबकि इग्लड और वेल्स म यह घनत्व 703, बल्जियम मे 702, हालैंड मे 639 और जमनी म 348 व्यक्ति वगमील था। विभिन्न जिलो मे जन-सख्या के असमान घनत्व को ध्यान मे रखत हुए इन आकडो का महत्व सीमित है। लेकिन फिर भी यदि हम सबसे ज्यादा घनी आबादी वाले प्रात बगाल का लें तो हम पाएगे कि वहा यह सख्या 779 व्यक्ति प्रति वगमील है जो इग्लैंड या वेल्स या वेल्जियम के स्तर स थोडा ही ऊचा है। यह सही है कि बगाल के कुछ खास जिला म आबादी का घनत्व बहुत ज्यादा है जैसे ढाका मे यह 1542 व्यक्ति प्रति वगमील, टिपरा म 1525 या फरीदपुर मे 1024 व्यक्ति प्रति वगमील आबादी का घनत्व है। लेकिन अत्यधिक घनी आबादीवाले इन जिलो से सबद्ध विशेष सवाल पर, और इस प्रश्न पर कि उपलब्ध तथ्य यह मानने कि कोई गारटी देते है कि अत्यधिक घनी आबादीवाले बगाल मे भी जनसख्या ने जीवन के साधनो को पीछे छोड दिया है (शेष भारत का उल्लख किए बिना), 1931 के 'बगाल सेंसस रिपोट' के फैसले का उल्लेख किया जा सकता है।

क्या जनसख्या वद्धि ने खाद्य पदार्थो के उत्पादन की वृद्धि को पीछे छोड दिया है? कृषि के विकास मे निदनीय उपेक्षा के बावजूद और खेती योग्य जमीन के केवल आशिक हिस्से के इस्तेमाल के बावजूद आधुनिक काल के जो आकडे उपलब्ध हैं उनसे यह पता नही चलता कि आबादी की वृद्धि खाद्य पदार्थो के उत्पादन की वृद्धि से आगे निकल गई हो। देश मे पैदा होने वाले खाद्य पदार्थों की कुल मात्रा अब भी बहुत अपर्याप्त है और इसपर भी इस अपर्याप्त मात्रा का हिस्सा निर्यात कर दिया जाता है लेकिन इस अपर्याप्तता का कारण यह नही है कि जनसख्या वृद्धि न खाद्यान्नो की वृद्धि को पीछे छोड दिया है बल्कि

इसका कारण यह है कि भारत मे अब भी उत्पादन की पिछडी तकनीक का इस्तेमाल किया जाता हे, यहा जमीन की मिलकियत की पुरानी प्रणाली अब भी कायम है और अनेक तरह के भारी बोझो ने कृषि की कमर तोड रखी है।

1891 और 1921 के बीच जनसख्या मे 9 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी अवधि मे अनाज का उत्पादन करने योग्य भूमि के क्षेत्रफल म 19 प्रतिशत की वृद्धि हुई अर्थात जनसख्या की वृद्धि की तुलना मे दुगनी रफ्तार से वृद्धि हुई।

1921 से 1931 के दौरान हमारे पास प्रोफेसर पी० जे० थामस के आकडे उपलब्ध हैं जो उन्होंने 1935 मे जारी पापुलेशन ऐंड प्रोडक्शन' मे शामिल किए थे। वष 1920-21 और 1921-22 के औसत को 100 मानकर उन्होंने 1930-31 और 1931-32 के औसत के लिए सूचक अक जनसख्या के लिए अनुमानत 110 4, कृषि उत्पादन के लिए 116 और औद्योगिक उत्पादन के लिए 151 निर्धारित किया। दूसरे शब्दो मे कह तो जिस दशक मे जनसख्या की वृद्धि का सबसे उच्च आकडा रिकाड किया गया उस दशक के दौरान आबादी मे जहा 10 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई वही कृषि उत्पादन मे 16 प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन मे 51 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

मालथस के पक्के चेले और दुर्भाग्य के पैगबर प्रोफेसर राधाकमल मुखर्जी को भी अपनी हाल की पुस्तक फूड प्लेनिंग फार फोर हड्रेड मिलियन्स' (1938) म यह स्वीकार करने पर मजबूर होना पडा कि कुल कृषि उत्पादन मे वृद्धि से जनसख्या वद्धि को पीछे छोड दिया है' (पृष्ठ 18) और अपने इस कथन की पुष्टि के लिए उन्हे आकडे प्रस्तुत करने पडे हैं।

भारत मे आबादी और उत्पादन की प्रवृत्ति
(1910-1933)

(1910-11 से 1914-15 के औसत के आधार पर सूचक अक)

	आबादी	सभी फसलें	खाद्य फसलें	अखाद्य फसलें	औद्योगिक उत्पादन
1910-11 मे 1914-15 का औसत	100	100	100	100	100
1932-33	117	127	134	121	156

(राधाकमल मुखर्जी फूड प्लनिग फार फार हड्रेड मिलियन्स, 1938, पष्ठ 17 और 27)

खाद्यान का उत्पादन आबादी की तुलना म दुगनी रफ्तार म बढा है और औद्योगिक उत्पादन की मात्रा म तिगुनी रफ्तार से वृद्धि हुई है। 1900 म 1930 तक के पूरे तीन दशको का साराश प्रस्तुत करते हुए प्रोफेसर थामस ने लिखा

1900 और 1930 के बीच भारत की आबादी म 19 प्रतिशत की वृद्धि हुई लेकिन खाद्य पदार्थों और कच्चे माल के उत्पादन मे लगभग 30 प्रतिशत तथा औद्योगिक उत्पादन म 189 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1921-30 के दशक मे जनसख्या म बेशक आकस्मिक वृद्धि हुई लेकिन उत्पादन की भी प्रगति बनी रही। व्यापार मे मदी की स्थिति के बावजूद बाद के वर्षों मे भी यह प्रगति बनी रही, औद्योगिक उत्पादन का सूचक (1926 मे 100) 1934-35 मे 144 रहा और चालू वष मे इससे भी ज्यादा हो सकता हे।

इन सारी बातो से पता चलता है कि जनसख्या मे वद्धि उत्पादन मे वद्धि की तुलना म कम रही आकडो ने इस खतरे का समथन नही किया कि जनसख्या वृद्धि उत्पादन वद्धि को पीछे छोड देगी। जो लोग भारत म 'बच्चो की विनाशकारी बाढ' से खतरा महसूस करते है वे यदि राष्ट्रीय आय के वितरण, उपभोग की किस्म और जनसख्या के भौगोलिक वितरण एव अन्य सबद्ध मसलो की स्थिति म सुधार पर अपना ध्यान केंद्रित करें तो इससे देश का काफी भला होगा। (प्रोफेसर पी० जे० थामस का 'दि टाइम्स', 24 अक्तूबर 1935 मे लेख)

इस प्रकार तथ्यो को देखने से पता चलता है कि इस बात को भारत की गरीबी का कारण नही कहा जा सकता कि यहा जीवन निर्वाह के साधनो के उत्पादन मे वृद्धि की तुलना मे जनसख्या मे बडी तेजी से वद्धि हुई है। आकडो को देखने से हमे जीवन निर्वाह के साधनो के उत्पादन मे ही वृद्धि का पता चलता है, इसलिए गरीबी के कारणो की तलाश कही और की जानी चाहिए।[20]

कहने का मतलब यह नही कि स्वामित्व, पट्टा, तकनीक, परजीविता, और उपलब्ध श्रम शक्ति की बरबादी की वतमान स्थितिया के अतगत जीवन निर्वाह साधनो का वतमान उत्पादन लोगो की जरूरतो के लिए पर्याप्त है। यह बेहद अपर्याप्त है। चाहे पुरुष हो या महिला, यदि कोई व्यक्ति बिना मेहनत किए साधारण जीवन बिता रहा हो तो उसे भोजन के रूप मे प्रतिदिन 2400 कैलारी शक्ति मिलनी चाहिए। जो लोग थोडा बहुत काम करते है उन्हे 2500 से 2600 कैलोरी की जरूरत है और जो लोग ऐसे कामो मे लगे है जिसमे अत्यधिक शारीरिक श्रम करना पडता है उन्हे 2800 से 3000 कैलोरी जीवन शक्ति चाहिए। कुन्नूर के पौष्टिक आहार अनुसधान प्रयोगशाला के निदेशक डाक्टर एक्रायड ने 'दि न्युट्रिटिव वैल्यू आफ इडियन फूड्स ऐंड दि प्लानिंग आफ सैटिसफैक्टरी डायट्स' नामक स्वास्थ्य बुलेटिन नबर 23 (1941) मे लिखा है कि भारत मे लाखो करोडो लोग ऐसे है जिनको अपर्याप्त और सतुलित आहार के जरिए दिन भर म केवल 1750 कैलोरी शक्ति मिलती है।[21] (रिपोर्ट आफ हैल्थ सर्वे ऐंड डेवलपमट कमेटी, खड 1, पृष्ठ 69 70) इसके अतिरिक्त वसा (चरबी), प्रोटीन और सामान्य तौर पर जीवन रक्षक

खाद्य पदार्थों की खासतौर से गभीर कमी है। दूध का कुल उत्पादन अनुमानत 113 अरब पौड है जो सतुलित आहार के लिए आवश्यक मात्रा मे आधे से भी ज्यादा कम है।

इन तथ्या से वतमान सामाजिक और आर्थिक सगठन क दिवालियेपन का पता चलता है जो जनता की आवश्यकताआ की पूर्ति करन मे भारत के अपार प्राकृतिक साधना के इस्त माल और विकास मे असफल रहा है। लेकिन इस बात के प्रमाण नही है कि भारत म जरूरत से ज्यादा लोग है। इसके विपरीत दुनिया भर के विशेषज्ञो न यह स्वीकार किया है कि यदि भारत के साधना का ठीक ढग से इस्तमाल किया जाए ता समूचे देश की आज जितनी आबादी है, या निकट भविष्य म जितनी हा सकती है उससे कही अधिक आबादी इन साधनो के सहारे बडे आराम की जिंदगी बिता सकती है। भारत म कृषि योग्य जितनी जमीन है उसका लगभग एक तिहाई भाग अभी तक इस्तमाल मे नही आया है। जिस भाग पर खेती हाती भी है वहा खेती करने का तरीका इतना अधिक आदिम है कि उसम प्रति एकड जितनी पैदावार होती है उससे तीन गुना अधिक पैदावार उतनी ही जमीन और कम श्रम शक्ति लगाकर ब्रिटेन म की जा सकती है (पैदावार के लिए गहू की उपज से तुलना की गई है)। भारत की गरीबी की समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब हम भारतीय साधना के पूरे पूर इस्तमाल के माग म आने वाली रुकावटो पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

इस स्थल पर आकर साम्राज्यवादी अथशास्त्री और उसके प्रचारक वास्तविक समस्या स कतरा जाते है। उनका कहना है कि 'वतमान परिस्थितिया म अर्थात वतमान साम्राज्य वादी और सामती दबावो, सूदखोरा द्वारा की जान वाली वसूली, विकास के माग म बाधा पहुचाने और ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक आवश्यकताओ के रूप मे आर्थिक विघटन की स्थिति म मौजूदा उत्पादन अपर्याप्त है और इसीलिए भारत की आबादी 'जरूरत से ज्यादा' है। इस प्रकार उन्ही डाक्टर एस्टे ने, जिन्हाने 'बच्चो की विनाशकारी बाढ' को रोकने के लिए 'भारतीय माल्थस' की चीख मचाई थी और जिनका हमने पहले उल्लेख भी किया है, बडे शात ढग से निम्न शब्दो मे अपनी दलील पश की है

> 'यह दलील दी जाती है कि भारत की आबादी जरूरत से ज्यादा नही है बल्कि यदि उत्पादन वितरण और उपभोग के नात साधनो का उत्कृष्टतम ढग से इस्तेमाल किया जाए तो मौजूदा आबादी से भी बडी आबादी का काम चल सकता है। इस बात से इकार नही किया जा रहा है कि इस तरह की परिस्थितिया म इससे भी बडी आबादी का काम चल सकता है लेकिन इससे यह प्रश्न बमानी नही रह जाता कि कम से कम आबादी कितनी हो। मौजूदा परिस्थितिया के अतगत यह निश्चित है कि यदि आबादी कम होती तो प्रति व्यक्ति उत्पादन ज्यादा हाता। (वी० एन्स्टे 'इकनोमिक डेवलपमट आफ इडिया,' 1936 पृष्ठ 40 रेखाकन मेरा है)

'मौजूदा परिस्थितियो के अतगत' शब्द का इस्तेमाल ध्यान देने योग्य है क्योकि यह ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है जैसे तथ्यो का एक व्यावहारिक और वस्तुगत ढग से लिया गया हो लेकिन सच्चाई यह है कि इसके जरिए साम्राज्यवाद और जमीदार द्वारा किए जा रहे शोषण के समूचे ढाचे और उसके नतीजो की आवश्यकता को मान लिया गया है।

इसी प्रकार भारत म कृषि की जाच करने के लिए जो भारी भरकम राज आयोग नियुक्त किया गया था और जिसने 'रिपार्ट ऐंड एवीडेंस' के मोटे मोटे ग्रथ निकाले उसे जमीन के स्वामित्व, किसानो के अधिकारो तथा लगानो और मालगुजारी की व्यवस्था जैसे बुनियादी सवालो की जाच करने की मनाही कर दी गई थी। इस छोटी सी अवधारणा के आधार पर इस समस्या को बहुत जटिल मान लिया गया और भारत को अत्यधिक आबादी वाला देश घोषित कर दिया गया।

यदि उत्पादन का वतमान सगठन जो साम्राज्यवाद के अतगत है जनता की जरूरतो को पूरा करने के लिए अपर्याप्त पाया जाता है—जिसे निश्चित रूप से सगठन मे सुधार करके ठीक किया जा सकता है—तो जो निष्कष निकलता है वह यह नही है कि सगठन मे सुधार की आवश्यकता है बल्कि यह है कि आबादी को कम किया जाना चाहिए। उसके पैर काट दो क्योकि उसकी लबाई चारपाई से ज्यादा है।'

1933 मे लदन स्कूल आफ हाइजिन ऐंड ट्रापिकल मेडीसिन मे 'एशिया मे जन्म निरोध' विषय पर आयोजित सम्मेलन म डा० कुक्जिस्की ने भारत सबधी इस गलत धारणा का निममता से खडन किया था। डा० कुक्जिस्की को सम्मेलन के अध्यक्ष एव साख्यिकीय अथशास्त्रियो के अग्रणी ने कहा था कि वह आबादी की समस्याओ के जीवित विद्वानो म सबसे अधिक प्रतिष्ठित और अधिकारी व्यक्ति है।' अपने भाषण म डा० कुक्जिस्की ने कहा

> 'इन चीजो को तरफ हम अपरिवतनीय दृष्टिकोण से नही देखना चाहिए। हमे यह बताया गया है कि भारत मे इस समय बीस करोड एकड जमीन पर खेती हो रही है और समूची आबादी को भोजन देने के लिए 35 3 करोड एकड जमीन पर खेती करने की जरूरत है। लेकिन हम इतनी ज्यादा जमीन की क्या जरूरत है और किन परिस्थितियो मे इतनी सारी जमीन पर खेती आवश्यक है? यह तभी आवश्यक है जब हम रासायनिक खादो का इस्तेमाल न करे और जब हम खेती मे सुधार न करें। जिस किसी व्यक्ति को आधुनिक खेती का थोडा भी ज्ञान है वह इस बात मे इकार नही कर सकता कि भारतीय किसानो को बहुत ज्यादा शिक्षा दिए बिना भी बीस करोड एकड जमीन पर सभी भारतीयो के लिए पर्याप्त मात्रा मे

> खाने की चीज पैदा की जा सकती है। जिस प्रकार स्वास्थ्य रक्षा के उपायों के जरिए भारत म बढी हुई मृत्यु दर का नीचे लाया जा सकता है उसी प्रकार कृषि म सुधार करके खाने-पीने की चीजो के अभाव का दूर किया जा सकता है।'

इसी प्रकार हम सर जाज वाटस के फैसले को स्मरण कर सकते हैं जो उन्होंने 1894 म 'मेमोरेंडम आन दि रिसोर्सेज आफ ब्रिटिश इडिया' म (पृष्ठ 24 पर उद्धृत) किया था। उन्होन कहा था कि कृषि के क्षेत्र म 'भारत की उत्पादन क्षमता का आसानी के साथ कम से कम पचास प्रतिशत बढाया जा सकता है' और साथ ही उन्होंने यह भी कहा था 'कि यदि अतभूत मूल्यो और अविकसित साधनो की मात्रा पर ही ध्यान दें तो कह सकते है कि दुनिया म कम ही ऐसे देश है जिनम कृषि की इतनी जबरदस्त सभावना है जितनी भारत मे है।'

यहा तक कि साम्राज्यवाद समथक कुछ ब्रिटिश विशेषज्ञो ने हाल ही मे जो योजना तैयार की है उसन माल्थस के जनसख्या सबधी समूचे सिद्धात की धज्जिया उडा दी है। जसा प्रोफेसर ए० वी० हिल ने अपनी प्रस्तावना म कहा है इस योजना का उद्देश्य 'ऐसी सभावित व्यवस्था का सगठन करना है जिसके द्वारा साधारण, व्यावहारिक तथा ठोस परिणामो के देने योग्य अनुभव पर आधारित उपाय निकाले जा सके और उन्ह इतने बडे पैमाने पर लागू किया जा सके कि भारत मे कुल अनाज उत्पादन अगले सात वर्षो मे सवा गुना से लेकर डेढ गुना तक बढाया जा सके।' (ए फूड प्लान फार इडिया, 1945)

इस सिलसिले म 1931 मे हुई बगाल की जनगणना रिपोट के निष्कष भी काफी महत्व पूण है क्योकि इसकी परिचयात्मक टिप्पणी मे खाद्यान की सप्लाई और जनसख्या की समस्या पर विचार किया गया है

> 'पहले से ही दुनिया की सबसे घनी आबादीवाले इस प्रात बगाल मे इतनी बडी मात्रा मे जनसख्या वृद्धि की सभावना से यह धारणा बनती है कि बगाल की आबादी तजी के साथ उस सीमा तक पहुच जाएगी जब जीवन निर्वाह के साधन किसी भी कीमत पर जनता की माग पूरी नही कर सकेंगे इस बात से इकार नही किया जा सकता कि बगाल की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा जीवन निर्वाह के निम्नतम स्तर पर गुजर कर रहा है। इस प्रात की क्षमताओ का यदि विकास नही किया गया ता जनसख्या म किसी प्रकार की वृद्धि से निराशा और घुटन की स्थितिया बढेंगी। कहने का मतलब यह है कि ये क्षमताए इतनी ज्यादा है कि आबादी की भावी स्थिति के बारे म निराशा का रुख अपनाना उचित नही है। भारत के शेष भाग की तरह बगाल भी अपन अल्पविकसित साधना और इन साधना के इस्तमाल की अक्षमता के लिए प्रसिद्ध है। इस बात

की सभावना नही है कि यहा की धरती अब पहले से ज्यादा खराब होगी और बगाल जैसे इलाको के बारे मे जहा छोटी से छोटी फसल के लिए भी खाद की जरूरत है आम राय यह है कि उपज का न्यूनतम स्तर बहुत पहले ही प्राप्त किया जा चुका है और उसका इस दर से अनुकूलन हो चुका है जिससे पौधे मौसम से अपना आहार प्राप्त करते है। बगाल का किसान व्यवहार रूप मे अपने खेत मे कभी खाद नही डालता और यदि वह खाद का इस्तेमाल करे, साथ ही कृषि के विकसित औजार काम मे लाए तो उसके खेत की उत्पादन क्षमता मे काफी वृद्धि हो सकती है। अनुमान लगाया गया है कि (जी० क्लार्क 17वें भारतीय विज्ञान सम्मेलन की कार्यवाही) यदि विकसित साधनो का इस्तेमाल किया जाए तो समूचे भारतवर्ष मे खाद्यान्नो के उत्पादन मे लगभग तीस प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी। इसमे कोई सदेह नही कि और सघन किस्म की खेती के अतर्गत आवश्यक किसी भी श्रम की प्राप्ति आसानी से की जा सकती है क्योकि बगाल के खेतिहर कुल मिलाकर सभवत दुनिया के किसी भी हिस्से के खेतिहर से कम काम करते है। पूरक तालिका 1 मे यह भी दिखाया गया है कि कृषि योग्य कुल भूमि मे से इस समय वस्तुत केवल 67 प्रतिशत भूमि मे ही खेती होती है। यदि कुल कृषि योग्य भूमि पर खेती की जा सके और यदि खेती के उन्नत तरीके अपनाए जाए जिससे वर्तमान उपज मे 30 प्रतिशत की वृद्धि हो जाए तो यह बात बहुत स्पष्ट है कि बगाल मे मौजूदा जीवनस्तर पर 1931 की जनसख्या की लगभग दुगुनी आबादी का काम चल सकता है।' (बगाल सेंसस रिपोर्ट, 1931 खड 1, पृष्ठ 63)

भारत और यूरोप के देशो के बीच निर्णायक अतर आबादी के बढने की दर नही है। जनसख्या वृद्धि की दर यूरोपीय देशो मे ज्यादा रही है। भारत और यूरोपीय देशो की स्थितियो के बीच फर्क यह है कि यूरोपीय देशो मे आर्थिक विकास और उत्पादन का जो विस्तार हुआ है और जिसने आबादी को और तेजी से बढ़ने मे सहायता पहुचाई है, आर्थिक विकास और उत्पादन का वह विस्तार भारत मे नही हुआ। जैसा हम आगे देखेंगे उसे ब्रिटिश पूजीवाद की कार्य प्रणाली और उसकी जरूरतो ने कृत्रिम ढग से रोक दिया जिसके फलस्वरूप आबादी के एक बडे हिस्से को आदिम ढग की और अनेक तरह के बोझो से दबी खेती पर निर्भर रहना पडा। एक ओर तो देश की धन-दौलत का शोषण करके बाहर भेज दिया गया है और औद्योगिक तथा अन्य विकास के सभी रास्ते बद कर दिए गए है और दूसरी तरफ अधिकाश जनता के जीवन निर्वाह के एकमात्र साधन खेती को भी अपाहिज बना दिया गया है और उसे उपेक्षा तथा पतन के लिए अभिशप्त बना दिया गया है।

भारत की अत्यत गरीबी का रहस्य कोई ऐसा प्राकृतिक कारण नही है जो मनुष्य की पहुच

या उसके नियंत्रण से पर की चीज हो, अत्यधिक जनसंख्या की काल्पनिक कहानी से भी इसका कोई ताल्लुक नही है बल्कि इसका कारण साम्राज्यवादी शासन से पैदा सामाजिक आर्थिक स्थितियां है। इसका प्रमाण बाद के अध्यायों मे प्रस्तुत किया जाएगा। इस प्रमाण से जो राजनीतिक निष्कर्ष निकलते है उनसे पता चलता है कि भारतीय जनता को जीवन निर्वाह के साधन देने के लिए यहा सामाजिक, राजनीतिक रूपातरण जरूरी हैं और इस विश्लेषण से पता चलता है कि यह अवश्यभावी है।

टिप्पणियां

1 डब्ल्यू० एच० मूरलैंड ने अपनी पुस्तक इंडिया एट दि डैथ आफ अकबर (1920) और फ्राम अकबर टू औरंगजेब (1923) मे उन तमाम नकारात्मक प्रमाणो को इकट्ठा करने की कोशिश की है ताकि वह यह दिखा सकें कि 17वी सदी मे भी भारत की जनता काफी गरीब थी। फिर भी जब वह इंडिया ऐट दि डैथ आफ अकबर के वेल्थ आफ इंडिया नामक अपने अध्याय मे निष्कर्ष निकालते हैं तो वह इसी नतीजे पर पहुचने को मजबूर होते हैं
यह असभाव्य है कि यदि संपूर्ण भारत के सदर्भ मे प्रति व्यक्ति कुल आय देखें तो इस अनुपात में कोई ज्यादा तब्दीली मिले यह सभव है कि यह तब्दीली अपेक्षाकृत कम ही हो और ज्यादा सभावना इस बात की है जिससे कि यह पहले की तुलना मे अधिक हो लेकिन किसी भी स्थिति मे यह अंतर इतना बड़ा नही होगा कि आर्थिक स्थिति मे किसी निश्चित फेरबदल का सकेत मिले (पृष्ठ 286)
जहा तक बुनियादी सामानो के उत्पादन का सबध है कृषि से औसत आय लगभग उतनी ही होती थी जितनी आज है जगलो से भी यह आय लगभग उतनी ही थी मछली पालन से शायद कुछ आय होनी थी और खनिज पदार्थों से निश्चित रूप से आज की अपेक्षा कम आय होती थी। जहा तक उद्योगो का सबध है कृषि उद्योगो मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं दिखाई देता जहाज निर्माण के अलावा हस्तशिल्प के विविध सामानो उन से बने सामानो और यातायात उत्पादन से हुई औसत आय मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है लेकिन रेशम की बनाई से हुई आय मे गिरावट आई है। खनिज और परिवहन उत्पादन तथा हस्तशिल्प के विविध सामानो से हुआ लाभ इतना अधिक नही था जो इन घाटो को काफी हद तक प्रतिसतुलित कर सकें। लेकिन ये फायदे ठोस होने के बावजूद उस समय बहुत छोटे हो जाते हैं जब हम उन्हे कृषि से हुई आय के समक्ष देखते हैं (पृष्ठ 287)
आय के तीन अन्य स्रोतो जहाज निर्माण विदेश वाणिज्य और वस्त्र निर्माण (सूती और पटसन) की विस्तृत जाच करने से इस निष्कर्ष का औचित्य महसूस होता है कि इन उद्योगो ने देश की औसत आय का स्तर वर्तमान स्तर से ऊचा उठाने मे आज की तुलना मे उस समय ज्यादा योगदान नहीं किया होगा' (पृष्ठ 293)
निश्चित रूप से भारत आज की तुलना मे उस समय (अकबर के शासनकाल मे) ज्यादा समृद्ध नही था और सभवत आज की तुलना मे वह गरीब था (पृष्ठ 294)
जब दूसरे पक्ष के अत्यत श्रम साध्य तक 300 वर्षों के बाद भी आर्थिक प्रगति मे ठहराव का दावा कर सकते है (इन्हा 300 वर्षों मे यूरोपियन देशो मे हुए परिवर्तनो को देखें) तो जाहिर है कि विश्व के पैमाने पर कितना सापेक्षिक ह्रास हुआ होगा

2 पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस कमीशन के नतीजो और रिपोर्ट को ब्रिटिश सरकार ने अत्यत गोपनीय ठहराया और उन्हे न तो प्रकाशित किया न उनपर अमल किया

3 डा० नौरोजी 'पावर्टी ऐंड अन ब्रिटिश रूल इन इडिया 1876
4 डब्ल्यू० डिगबो प्रास्पेरस ब्रिटिश इडिया, 1902
5 जी० फिडले सिराज दि साइस आफ पब्लिक फिनास 1924
6 वाडिया और जोशी दि वल्थ आफ इडिया' 1925
7 शाह और खबाता 'वल्थ ऐंड टक्सेबल कपेसिटी आफ इडिया 1924
8 वी०के० आर० वी० राव इडियाज नेशनल इन्कम 1939
9 जी० फिडले शिराज पावर्टी ऐंड किडड इकोनोमिक प्राब्लम्स इन इडिया 1932
10 भारत सरकार के वित्त सदस्य सर जम्स ग्रिग का अप्रल 1938 म केंद्रीय विधानसभा म बजट भाषण
11 वी०के०आर०वी० राव दि नेशनल इन्कम आफ ब्रिटिश इडिया 1940
12 दि टाइम्स ट्रेड ऐंड इजीनियरिंग इडियन सप्लीमेंट के अप्रल 1939 अक म दि इडियन मार्केट के व्यापारिक अनुमान के अतगत भारत मे आमदनी के बटवारे और आमदनी की न्यूनता पर कुछ रोशनी डाली गई है। यह गरसरकारी आकडे ब्रिटिश पूजीपतियो ने अपने इस्तेमाल के लिए तयार किए थ और इसम साम्राज्यवादी शोषण के परिणामो की कोई खूबसूरत तस्वीर प्रचार के उद्देश्य स पेश करने की कोशिश नही की गई है बल्कि व्यापारिक उद्देश्यो के लिए वास्तविक तथ्यो को रखा गया है ताकि उपभोक्ताओ की श्रेणियो क बारे म जानकारी हासिल की जा सके। इसके परिणाम साइमन कमीशन क परिणामो से आश्चयजनक रूप से भिन्न हैं। भारतीय परिवारो की आय की अनुमानित श्रेणिया निम्न हैं

आय रुपयो म	ब्रिटिश मद्रा	परिवारो की सख्या
100 000 से अधिक	7,500 पौंड	6 000
औसत 5 000	375 पौंड	270 000
औसत 1 000	75 पौंड	250 000
औसत 200	15 पौंड	35 000 000
औसत 50	3 पौंड 10 शि०	शेष बचे लोग

ब्रिटिश पूजीपतियो द्वारा अपने निजी इस्तेमाल के लिए तयार की गई तालिका खुद ही सारी कहानी कह देती है।

13 डा० राव के अनुसार शहरी आय प्रति व्यक्ति ग्रामीण आय की तुलना में तीन गुना से भी अधिक है। गावो मे प्रति व्यक्ति आय 51 रुपये या 77 शिलिंग है जबकि शहरो म यह 166 रुपये या 249 शिलिंग है। गावो और शहरो मे रहने वाले लोगो की आर्थिक स्थिति मे बहुत बडा फक है और यही फक जनता के विभिन्न वर्गों की स्थितियो के बीच है।
बेशक जसाकि हम आगे चलकर देखेंगे गावो म लगभग समूची फसल जमीदार और सूदखोर महाजन ले लेते हैं।
शहरी इलाका म भी आमदनी का लगभग आधा हिस्सा कुल आबादी के दसवें हिस्से से भी कम के पास रहता है। यहा तक कि जो लोग अपेक्षाकृत सपन्न हैं और जिनकी आय प्रतिवष दो हजार रुपये से अधिक है उनमे भी 38 प्रतिशत लोगो के पास कुल आय का केवल 17 प्रतिशत हिस्सा आता है जबकि 1 प्रतिशत से कुछ अधिक लोग कुल आय का 10 प्रतिशत हिस्सा पाते हैं। (वी०के०आर०वी० राव दि नेशनल इन्कम आफ ब्रिटिश इडिया, 1931 32 पष्ठ 189)

14 उपयुक्त आश्चयजनक परिणाम की बाद म आलोचना हुई और कहा गया कि इसम उन अतिरिक्त पदार्थों का हिसाब नही लगाया गया है जिन्हे मजदूर इस्तेमाल करते हैं मसलन सस्ती मिठाइया मसाले, मछली सब्जिया या फल आदि। इन्ही कारणो से 1925 म सरकारी तौर पर फिर हिसाब लगाया गया। इससे पता चला कि उपरोक्त तालिका म खाद्य पदार्थों की सूची मे जो उल्लेख किया गया है उसका यह मात्र 406 प्रतिशत ही है। अर्थात बबई के वयस्क मजदूर द्वारा प्रतिदिन

उपभोग की जाने वाली कुल 2 450 कलोरी म 113 कलोरी की और वद्धि हुई और इस प्रकार कुल योग 2 563 कलोरी हो गया (बाम्बे लेबर गजट अप्रल 1925 प० 841 42)। पौष्टिक आहार के बारे म ब्रिटिश मडिकल एसोसिएशन की उपसमिति ने न्यूनतम राशि 3 390 कलोरी और प्रो० आर० मुखर्जी ने भारतीय परिस्थितियो मे 2 800 कलोरी निर्धारित की थी। (फड प्लानिंग फार फोर हड्रड मिलियन्स, 1938)। इन अनुमानो को देखने से पता चलता है कि बबई का एक वयस्क मजदूर कितनी कम कलोरी प्रतिदिन ग्रहण करता है।

15 भारत मे जन्म मरण के आकडे अत्यत अशुद्ध हैं। 1931 की जनगणना रिपोट ने गलती की गुजाइश 20 प्रतिशत रखी है। प्रत्याशित आयु के बारे में सरकारी विवरण से 1881 से 1911 तक के निम्न आकडे मिलते हैं

	1881	1891	1901	1911
पुरुष	23 67	24 59	23 63	22 59
महिलाए	25 58	25 54	23 96	23 31

1921 के जनगणना कमिश्नरो द्वारा प्रस्तुत इन विवरणो के अनुसार 1881 से 1911 के बीच प्रत्याशित आयु मे गिरावट आई 1921 के लिए कोई आकडा नहा तयार किया गया। पिछले 50 वर्षों म भारत की यह स्थिति इग्लड और वेल्स की स्थिति स काफी विपरीत है जहा 1881 90 से 1933 के बीच प्रत्याशित आयु क्रमश 45 4 से बढकर 60 8 हो गई।

1931 के लिए की गई एक वकल्पिक गणना म पुरुषो के लिए 26 9 वष और महिलाओ के लिए 26 6 वष की प्रत्याशित आयु कराई गई है। इससे मामूली वद्धि का सकेत मिलता है परतु इन आकडो की अशुद्धि का उस समय पता चल जाता है जब हम प्रत्याशित आयु और दज की गई मत्यु दर के विवरणो की तुलना करते है। अब हम 1931 के आकडे मे उल्लिखित प्रत्याशित आयु के अपेक्षाकृत अनकूल अक को भी ध्यान में रखकर मत्यु दर की गणना करते हैं तो पता चलता है कि पुरुषो के लिए यह प्रति हजार 37 और महिलाओ के लिए प्रति हजार 38 है जबकि दर्ज की गई मत्यु दर महज २३ है। प्रत्याशित आयु के आकडे अपने आप मे गलत हैं लेकिन वे जो भी हैं उनसे इसी निष्कष को समथन मिलता है कि भारत मे सामान्य मत्यु दर को कम से कम प्रति हजार पर 33 मानना ही सही है। (जी० चद इडियाज टीमिंग मिलियन्स पष्ठ 113)

16 ब्रिटिश भारत म सामान्य और विशष रोगो की चिकित्सा सहित अस्पतालो मे रोगियो के लिए कुल उपलब्ध शय्या की तुलना अन्य देशो से की जा सकती है

अमरीका	1000 जनसख्या पर 10 48 शय्या
इग्लड और वेल्स	1000 जनसख्या पर 7 14 शय्या
ब्रिटिश भारत	1000 जनसख्या पर 0 24 शय्या

17 यह जानकारी काफी दिलचस्प है कि विश्व जनसख्या के बारे म प्रो० कार-साडस ने हाल की अपनी महत्वपूण पुस्तक (वर्ल्ड पापुलेशन पास्ट ग्रोथ ऐंड प्रेजेंट ट्रेंड्स —ए०एम० कार-सांडस 1936) मे इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि 1650 स 1933 के बीच विश्व की कुल जनसख्या में जो वद्धि हुई उसमे यूरोप का योगदान 18 3 प्रतिशत से बढकर 25 2 प्रतिशत हो गया जबकि एशिया का योगदान 60 6 से घटकर 54 5 प्रतिशत हुआ। आज भी बहुप्रचारित काल्पनिक कथाओ के विपरीत प्रचुरता की ओर बढता यूरोप विश्व इतिहास के बुर्जुआ काल के दौरान एशिया की अपेक्षाकृत कम होती आबादी का स्थान लिया है।

18 फमिन इक्वायरी कमीशन समापक रिपोट 1945 प० 75

19 प्रमुख सांख्यिक डा० आर० आर० कुकिजकी ने 1921 स 1931 के बीच भारत मे प्रत्यक्ष जनसंख्या म हुई अचानक भारी वद्धि के कारण आमतौर से दिखाते जाने वाले निष्कर्षों के महत्व

पर कुछ संदेह प्रकट किया है। इन्ही निष्कर्षों के आधार पर अत्यधिक आबादी की भविष्य वाणियां की गई हैं। उनका कथन है कि

अनेक देशो के बारे म जहा जनगणना की जाती है हम वहा की वतमान आबादी के बारे में अनुमान लगा सकते हैं पर ज म और मत्यु के पर्याप्त आकडे न मिलने के कारण हम जनसख्या की प्रवत्ति के बारे म लगभग कुछ भी नही जानते हैं। इस प्रकार भारत की जनगणना के आकडो से पता चलता है कि 1921 स 1931 के बीच जनसख्या मे वद्धि 3 करोड 40 लाख अर्थात 10 6 प्रतिशत हुई। लेकिन 1931 की ज म मरण सबधी तालिका के अनुसार मृत्युदर काफी अधिक लगती है जबकि विवाह के पश्चात उत्प न बच्चो की सख्या और मा बनने म असमय विधवा महिलाओ की सख्या देखने स पता चलता है कि जनन क्षमता अपेक्षाकृत कम हुई है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि 1921 से 1931 के बीच भारत मे जनसख्या म जो प्रकट रूप मे वद्धि हुई है वह वास्तविक वृद्धि नही है। इस वद्धि क आभास का कारण 1931 मे की गई अपेक्षाकृत ज्यादा ठीक ठीक गणना और आयु की स्थाई सरचना क कारण है जिससे ज म सख्या बढी और मृत्यु सख्या म कमी देखी गई। (डा० आर० आर० कुक्जिस्की, पापुलेशन ट्रेंडस इन दि वल्ड,—25 दिसबर 1937 के स्टेटिम्ट मे प्रकाशित) यह ध्यान देने की बात है कि भारत मे ज म दर मे प्रत्यक्षत गिरावट आ रही है। 1901 10 के दशक मे ज म दर प्रति हजार पर 38 दज की गइ थी जा 1931 40 के दशक म 34 हो गइ और 1943 मे 26 ही गई।

20 भारत में साम्राज्यवाद द्वारा थोपी गई सामाजिक आर्थिक स्थितियो के कारण ही किसान जनता तेजी से गरीब होती जा रही है और अनाज के उत्पादन मे गिरावट आ रही है। इस तथ्य को भारत सरकार के एक अधिकारी डब्ल्यू० ब स ने ब्रिटिश भारत के लिए तयार किए गए निम्न लिखित आकडे मे और भी ज्यादा स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है।

वष	प्रमुख खाद्या नो वाल इलाके (करोड एकड)	प्रमुख खाद्या ना का उत्पादन (कराड टन)	जनसख्या (करोड व्यक्ति)
1921 22	15 86	5 43	23 36
1631 32	15 69	5 01	25 68
1941 42	15 65	4 57	29 58

(डब्ल्यू० बनस टक्नालाजिकल पासिबिलिटीज आफ एग्रीकल्चरल डेवलपमन्ट इन इडिया 1944) 1921 22 से 1941 42 के दौरान ब्रिटिश भारत म जहा ज नसख्या म 6 करोड 22 लाख की वद्धि हुई वही प्रमुख खाद्या नावाली कृषि भूमि के क्षेत्रफल मे 20 लाख एकड स ज्यादा की कमी आई। उत्पा न के आकडे और भी ज्यादा चौकान वाले हैं। उत्पा न मे 86 लाख टन की कमी आई।

21 राशन म जबरदस्त कटौती के फलस्वरूप फिलहाल औसतन एक भारतीय महज 960 कलोरी का उपयोग करता है जबकि एक अमरीकी 3150 कलोरी और एक ब्रिटिश 3000 कलोरी का शक्ति प्राप्त करता है।

3

दो ससारो की विषमता

मैंने स्वय देखा है कि सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन के बाद भी भारत के गावो म भोजन और पानी की गभीर कमी, स्वच्छता और चिकित्सा सुविधा का अभाव सचार साधनो की उपेक्षा शिक्षा सबधी सुविधाओ की दरिद्रता, और हर तरफ निराशा की भावना है। इन स्थितियो मे मुझे यह नही लगता कि ब्रिटिश शासन किसी के लिए उपकारी सिद्ध होगा। इस देश म सोवियत रूस के बारे म बात करना लगभग अपराध है फिर भी मैं सोवियत तथा भारत के बीच के अतर का उल्लेख करने से खुद को रोक नही पाता हू। मुझे यह साफ शब्दो म स्वीकार करना पडता है कि सोवियत सघ म अनाज उत्पादन शिक्षा प्रदान करने तथा बीमारी के विरुद्ध सघर्ष करने की दिशा म जो उत्साहपूर्ण तथा असाधारण उपाय अपनाए गए है उन्हे देखकर मुझे ईर्ष्या होती है। सोवियत-यूरोप और सोवियत एशिया के बीच अविश्वास अथवा अपमानजनक भेदभाव की कोई भी विभाजन रेखा नही है। मैं केवल वहा और यहा घटित हो रही स्थितियो की तुलना कर रहा हू जिन्हे मैंने स्वय देखा है। मैं इस नतीजे पर पहुचा हू कि तथाकथित ब्रिटिश साम्राज्य म हमारी इस स्थिति की जिम्मेदारी शासक और शासित वर्ग के बीच की बढती खाई पर है। (रवीन्द्रनाथ टगोर 1936)

भारत की समता और भावो की मूल तस्वीर को पूरा करने के लिए व्यावहारिक निरूपण की आवश्यकता है।

अभी पिछले बीस वप पहले तक यह तक देना सभव था कि भारतीय साधनो के विकसित करने मे या जनता का जीवनस्तर ऊचा उठाने म साम्राज्यवाद की असफलता की किसी भी सैद्धातिक भत्सना का अथ एक आदशवादी दृष्टिकोण से साम्राज्यवाद की आलोचना करना और एशिया के एक देश की स्थितिया मे व्याप्त उन तमाम अवरोधो को देखने मे विफल रहना है जो अत्यत निम्न तकनीक तथा पिछडेपन और मुख्यत निरक्षरता से ग्रस्त आबादी के कारण पैदा होते है। वतमान स्थितिया अथाह है और इस तथ्य को साम्राज्य-वाद के समथको ने भी स्वीकार किया है फिर भी साम्राज्यवाद के पक्ष मे बहुधा यह तक दिया जाता है कि एसी स्थिति म कोई भी दूसरा शासन इससे अधिक उपलब्धिया प्राप्त नही सकता था या नही कर सकता।

आज इस तरह के तक सगत नही प्रतीत होते। आधुनिक युग के अनुभव ने अत्यत पिछडी स्थितियो के अतगत भी तेजी के साथ रूपातरण की सभावनाओ को काफी विस्तत बना दिया है। इस सदभ मे युद्ध के बाद टर्की के पुनरुत्थान और आत्मोन्नति का उदाहरण काफी शिक्षाप्रद है और भारत के लिए इससे अच्छा सबक मिल सकता है। किंतु खास तौर से सोवियत सघ मे समाजवादी क्राति ने पिछले बीस वर्षो के दौरान जो सफलताए प्राप्त की है और एक ऐसे विशाल देश मे जहा उत्पादन की तकनीक बहुत पिछडी हुई थी, लोग काफी असगठित थे और अधिकाशत निरक्षर थे और जहा यूरापीय तथा एशियाई दोनो तरह के लोग रहत थे, उसने जैसे महान परिवतन कर दिखाए है उनसे सभी देशो की जनता की आखें खुल गई है। साथ ही इस बात का एक व्यावहारिक उदाहरण भी सामने आया है कि ऐसे देशो म भी क्या किया जा सकता है। सोवियत सघ का अनुभव भारत की जनता के लिए भी कम महत्वपूण नही है। यदि इस तुलना को हम कुछ और विस्तार के साथ सामन रखे तो काफी लाभप्रद हागा। इससे भारत की वतमान जड स्थिति पर रोशनी तो पडेगी ही, साथ ही इस बात का आशाजनक सकेत भी मिलेगा कि यदि उचित सामाजिक और राजनीतिक स्थितिया पैदा की जाए तो बहुत कुछ उपलब्ध किया जा सकता है।

1 समाजवाद और साम्राज्यवाद के बीस वर्ष

सयोग की बात है कि 1937 मे सोवियत समाजवादी गणराज्य की स्थापना के 20 वप पूरे हुए और उसी वप भारत मे ब्रिटिश शासन की स्थापना के एक सौ अस्सी वप पूरे हुए (बशर्ते ब्रिटिश शासन की स्थापना हम प्लासी के युद्ध से माने)। इस प्रकार समाजवाद ने रूस म जा कुछ कर दिखाया और जितने समय मे कर दिखाया उसस 9 गुना अधिक समय साम्राज्यवाद को भारत म कुछ कर दिखाने के लिए मिला।

इन दोनो विशाल देशा की पूववर्ती स्थितिया म जा अतर है वह काफी महत्वपूण है (खास तौर से एक स्वतत्र साम्राज्यवादी देश और एक उपनिवेश के बीच का अतर) फिर भी दोना देशो का विरासत म जो स्थिति मिली है उसम कुछ समानता भी है मसलन

समूची आबादी के एक बडे हिस्से का निरक्षर होना तथा अधिकाश किसानो का पिछडा होना सभ्यता के भिन्न भिन्न चरणो मे एक के बाद एक अलग अलग जातियो तथा राष्ट्रीयता के लोगो द्वारा बसे भूभाग की विशालता, अपक्षाकृत अविकसित प्राकृतिक साधनो की प्रचुरता ग्रामीण व्यवस्था के घटक को छोडकर और किसी भी तरह के जन तात्रिक रूप के अनुभव से शून्य निरकुश शासन की परिपाटी। इन समानताओ को मद्दे नजर रखते हुए यह तुलना करने की जरूरत पडती है कि एक सौ अस्सी वर्षों म साम्राज्य वाद ने भारत को क्या दिया और बीस वर्षो मे समाजवाद ने रूस को क्या दिया।

शोषण की पूववर्ती प्रणालियो के स्थान पर समाजवाद या उत्पादन के सामूहिक सगठन की अवधारणा एक आधुनिक अवधारणा है जो आधुनिक परिस्थितिया से उपजी है। इस धारणा को कल्पनालोक के क्षेत्र से गुजर कर विज्ञान के क्षेत्र तक पहुचने म सौ वष से भी कम समय लगा और नई सामाजिक व्यवस्था की व्यावहारिक सिद्धि के अनुभव क जरिए यह विज्ञान हमारे ही युग मे अपना पूण स्वरूप प्राप्त कर सका है। आज व्यवहार रूप म समाजवाद की प्राप्ति हो गई है। इसलिए केवल सिद्धात के स्तर पर ही नही बल्कि व्यवहार के स्तर पर भी साम्राज्यवाद और समाजवाद की उपलब्धियो का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

इस तुलनात्मक अध्ययन के लिए हम जारशाही रूस को ले सकत हैं। लेकिन हम 1917 के उस रूस को नही लेंगे जिसकी सारी व्यवस्था गडबड हो गई थी हालाकि समाजवादी शासन को रूस इसी हालत म मिला था। अपने अध्ययन के लिए हम जार के ही शासन काल के 1913-14 के रूस को लेंगे जब उसकी उपलब्धिया सर्वोच्च शिखर पर पहुच चुकी थी और उसकी तुलना हम 1937 के रूस से करके देखेगे कि 20 वर्षों म समाजवाद न उस देश को क्या बना दिया है। इसी प्रकार हम 1914 के अथात प्रथम विश्वयुद्ध से पहल के भारत को लेंगे और देखेगे कि 20 वर्षो म यानी 1934 तक इस देश मे साम्राज्यवाद की क्या उपलब्धिया रही। अत मे हम इसी अवधि म सोवियत सघ के मध्य एशियाई गणराज्या म हुए विकास की और भी उपयोगी तुलना करेंगे। इन गणराज्या मे वे तमाम विशेष कठिनाइया और समस्याए मौजूद थी जो भारत म पाई जाती हैं और वहा की जनता के विकास का सामान्य स्तर शुरू म भारत से कही ज्यादा पिछडा हुआ था।

उत्पादन शक्तियो के विकास की जो बुनियादी कसौटी है, उसी से हम अपना बात शुरू करें।

सोवियत सघ म औद्योगिक उत्पादन (बडे उद्याग का) का सूचक अक 1913 म 100 स बढकर 1937 म 816 4 हो गया। यह 8 गुनी वद्धि थी। यह वृद्धि एक ऐसी प्रगति की द्योतक है जिसकी तुलना किसी भी देश क आर्थिक इतिहास स नहीं की जा सकती। इसन रूस म निणायक उद्योगीकरण, भारी उद्योग और मशीन निर्माण की स्थापना, विदेशी

पूजी से स्वतन्त्र स्थिति और साथ ही हल्के उद्योग की स्थापना का ही प्रतिनिधित्व नही किया वल्कि एक पिछडे देश से रूपातरण करके, उस रूस को जिसे पहले 'ग्रामीण महाद्वीप' और विदेशी पूजी के आधिपत्य म उद्योग की दृष्टि से अल्पविकसित देश के रूप मे जाना जाता था यूरोप के प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र और विश्व के दूसरे सर्वाधिक शक्तिशाली औद्योगिक देश का दर्जा दिया। देश की कुल पैदावार की तुलना मे औद्योगिक उत्पादन का अनुपात 1913 म 42 प्रतिशत से बढकर 1937 म 77 प्रतिशत हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि रूस जो पहले मुख्य रूप से कृषिप्रधान देश था अब प्रमुख रूप से उद्योगप्रधान देश बन गया। देश म कुल जितने काम करने वाले लोग थे, 1913 मे उनके सोलह प्रतिशत लोग औद्योगिक कामगर थे और 1937 में इनकी सख्या बढकर 31 प्रतिशत हो गई। 1913 में राष्ट्रीय आय (1926-27 के मूल्यो को आधार मानकर) 21 अरब रूबल थी जो 1937 तक बढकर 96 अरब रूबल अर्थात पहले से साढे चार गुनी अधिक हो गई।

प्रारभ में ही यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत में औद्योगिक उत्पादन का या कुल राष्ट्रीय उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय का सामान्य सूचक अक निकालने का कोई प्रयास ही नही किया गया। मुख्य उद्योगो में औद्योगिक उत्पादन का सूचक अक निकालने का एक गैरसरकारी प्रयास डी०बी० मीक ने किया था। उन्होने यह प्रयास अपने एक लेख 'इडियन एक्सटर्नल ट्रेड' में किया था जिसे अप्रैल, 1936 मे रायल सोसायटी आफ आर्टस के भारतीय अनुभाग के समक्ष पढा गया था। अपने लेख मे उन्होने निष्कर्ष के रूप मे 1910 11 से लेकर 1914-15 तक के पाच वर्षों के सूचक अक को 100 मानकर यह आकडा प्रस्तुत किया था कि 1932-33 का सूचक अक 156 था, अर्थात कुल वृद्धि 56 प्रतिशत हुई थी जोकि अपेक्षाकृत निम्न अक से हुई सोवियत सघ की वृद्धि की दर का 16वा हिस्सा है। 1911 और 1921 मे एक औद्योगिक जनगणना हुई थी हालाकि 1931 मे वह नही हुई। उससे पता चला था कि 'सगठित उद्योगो' में अथवा उन कारखानो में जहा 20 से अधिक मजदूर काम कर रहे हो, 1911 में 21 लाख आदमी काम करते थे। 1921 तक यह सख्या बढकर 26 लाख हो गई थी। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति वर्ष 2 4 प्रतिशत की दर से वृद्धि होती थी। यह वृद्धि यदि 20 वर्ष तक बराबर इसी दर से होती रहती तो कुल 48 प्रतिशत की वृद्धि के बराबर होती (दरअसल युद्ध और उसके तुरत बाद के वर्षों में वृद्धि की यह दर बनी नही रह सकी)। सोवियत सघ की वृद्धि की दर का यह 19वा भाग होती है। 1911 मे उद्योग धधो में काम करने वाले मजदूरो की सख्या 175 लाख बताई गई थी और 1931 में 153 लाख। इसका मतलब यह हुआ कि जनसख्या की वृद्धि के बावजूद उद्योगो में काम करने वाले मजदूरो की सख्या में 12 6 प्रतिशत की पूरी पूरी कमी हो गई। यह इस बात का प्रतीक था कि छोटे मोटे हाथ के उद्योग लगातार नष्ट होते जा रहे थे और उनके अनुरूप आधुनिक उद्योगो का विकास नही हो रहा था। इसका नतीजा यह हुआ कि जहा कृषि पर निर्भर रहने वालो की सख्या 1911 मे 72 प्रतिशत से बढकर 1921 में 73 प्रतिशत हो गई और 1931 में भी इसी स्तर पर बनी

रही, वहा औद्योगिक मजदूरों की संख्या 1911 में 11 7 प्रतिशत से घटकर 1931 में 10 प्रतिशत पर आ गई। साम्राज्यवाद द्वारा 20 वर्षों में हुई उपलब्धि की ऐसी ही 'प्रगति' थी।

इस सामान्य तस्वीर को और महत्वपूर्ण बनाने के लिए दोनों देशों के सर्वाधिक उल्लेखनीय भौतिक उत्पादनों के आकड़ो की और भी ज्यादा ठीक ठीक तुलना करना जरूरी है। भारत मे कोयले का उत्पादन 1914 म 1 करोड 64 लाख टन से बढकर 1934 म 2 करोड 20 लाख टन हो गया। अर्थात 20 वर्षों मे 55 लाख टन की वृद्धि हुई जो 34 प्रतिशत वृद्धि थी। रूस म कोयले का उत्पादन 1913 म 2 करोड 90 लाख टन से बढकर 1937 म 12 करोड 80 लाख टन हो गया अर्थात 9 करोड 90 लाख टन की वृद्धि हुई जो 340 प्रतिशत वृद्धि थी। यह भारत मे हुई वृद्धि की तुलना मे पूरे दस गुना अधिक थी। इस्पात का उत्पादन जो भारत मे युद्ध से पहले अभी शुरू ही हुआ था 1934 35 तक 10 लाख टन नही पहुचा था (यह 8 लाख 34 हजार टन था)। सोवियत सघ म इस्पात का उत्पादन 1937 तक 1 करोड 75 लाख टन तक पहुच गया था जो युद्ध से पहले की तुलना मे 1 करोड 30 लाख टन से अधिक की वृद्धि का द्योतक है। सोवियत सघ म 1913 मे 1 अरब 90 करोड किलोवाट घटे बिजली तैयार होती थी जो 1937 म बढकर 36 अरब 50 करोड किलोवाट घट हो गई अर्थात कुल 18 गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई। इस अवधि म भारत म विद्युत उत्पादन की क्या स्थिति थी इसका कोई आकडा उपलब्ध नही है हालाकि 1935 म अनुमानत भारत म ढाई अरब किलोवाट घट बिजली पैदा होती थी। यह संख्या सोवियत सघ के विद्युत उत्पादन के 14वें हिस्से से भी कम और सोवियत सघ म प्रति व्यक्ति बिजली की खपत के स्तर के 30वें हिस्से से भी कम है।

कृषि के क्षेत्र म यह विषमता और भी गहरी हो जाती है क्योकि सोवियत सघ म विशाल बहुमत के लिए जो रूपातरण हुआ उसका बुनियादी दृष्टि से काफी महत्त्व है। जार शासित रूस मे जमीदारो, सूदखोर महाजनो और कुलको (धनी किसानों) की दया पर पलने वाली निर्धन और भूखी किसान जनता ने आज सामूहिक खेती करने वाले स्वतत्र और समृद्ध किसान का दर्जा प्राप्त कर लिया है। अब व अपने बडे बडे सामूहिक कृषि फार्मों मे दुनिया की आधुनिकतम मशीनो और तकनीक की मदद स खेती कर रहे हैं। जबसे खेतो के सामूहिकीकरण का काम पूरा हुआ है तबसे 5 वर्षों के अदर य किसान अपनी नकद आय तिगुनी कर रहे है। 1913 म फसल के क्षेत्र म एक तिहाई की वृद्धि हुई और इसके साथ अनाज की पैदावार डेढ गुनी हो गई। यह 1913 मे 80 करोड 10 लाख सेंटनस स बढकर 1937 म 1 अरब 20 करोड 20 लाख सेंटनस हो गई। कपास की पैदावार 1913 म 74 लाख सेंटनस से बढकर 1937 म 2 करोड 58 लाख सेंटनस हो गई जो साढे तीन गुनी वृद्धि है। भारत म कृषि के क्षेत्र मे जो सकट है उसका हम अगले अध्यायो मे विस्तार से अध्ययन करेंगे लेकिन यह सकट हर वर्ष और अधिक गभीर रूप लेता जा रहा है। जमीदारो, सूदखोर महाजनों और सरकार के मिलेजुले दबाव ने किसानो को

कंगाल बना दिया है और उनकी जमीनो से उन्ह लगातार बदखल किया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों मे फसल वोने के क्षेत्र म और फसल की मात्रा म जो वृद्धि हुई है वह जनसख्या की वृद्धि से मुश्किल से ही बढ पाई है। पूण मदी के बहुत ही स्पष्ट सकेत दिखाई दे रह हैं।

यदि हम उत्पादन और साधनो के विकास के बुनियादी उपायो से हटकर शिक्षा, स्वास्थ्य और जनता की खुशहाली को बढावा देन के लिए राज्य द्वारा किए गए सामाजिक उपायो पर नजर डालें तो साम्राज्यवाद और समाजवाद के बीच की विपमता किसी भी मामले मे कम नही है।

शिक्षा के क्षेत्र म सोवियत सघ मे काफी प्रगति हुई है। जारशाही रूस म 78 प्रतिशत से अधिक लोग निरक्षर थे और उन्ह जानबूझ कर निरक्षर बनाए रखा गया था लेकिन यह सख्या अब घटकर 8 प्रतिशत हो गई है। 1930 मे सावियत सरकार द्वारा एक आदेश के अतगत सावजनिक अनिवाय प्राथमिक शिक्षा की स्थापना की गई और 1934 के एक आदेश के जरिये सभी लोगो के लिए 7 वप की शिक्षा अनिवाय बना दी गई। इस शिक्षा का प्रसार बडे औद्योगिक केंद्रो से शुरू होकर सावजनिक 10 वर्षीय शिक्षा प्रणाली तक ले जाया गया है।

भारत मे 1911 म कुल आबादी के 94 प्रतिशत लोग निरक्षर थे और 1931 मे यह सख्या 92 प्रतिशत ही रही। 20 वर्षों मे साम्राज्यवाद ने कुल आबादी के 50वें हिस्से की निर-क्षरता दूर की।

1937 मे सोवियत सघ मे प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चो की सख्या 2 करोड 94 लाख (जारवादी रूस मे यह सख्या 78 लाख थी) या कुल आबादी का 17 2 प्रतिशत थी।

भारत मे 1934-35 के आकडो का देखने से पता चलता है कि ब्रिटिश भारत के प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलो मे किसी भी तरह की शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चो की सख्या 1 करोड 35 लाख या कुल आबादी का 4 9 प्रतिशत थी। लेकिन इन आकडो की जाच करने से पता चलता है कि जिनके बारे मे यह समझा जाता था कि वे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे वे भी पहले वप से आगे नही बढ सके। और जो लोग चौथे वप तक पहुच गए उनमे से पाचवा हिस्सा अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी नही कर सका (देखें 'ऐजूकेशन इन इडिया 1928-29,' 1931, पृष्ठ 28)। इस प्रकार जो लोग चार वप की सीमित प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे उनकी सख्या सरकारी आकडे, 1 करोड 11 लाख या 22 लाख के पाचवें हिस्से के बराबर है जो कुल आबादी का 0 8 प्रतिशत है।

1937 मे सोवियत सघ मे विश्वविद्यालयो एव उच्च शैक्षणिक सस्थाओ मे शिक्षा प्राप्त कर रह छात्रो की सख्या 5 लाख 51 हजार थी जो कुल आवादी के तीन दशमलव दो व्यक्ति प्रति हजार के बराबर थी (जारशाही रूस म यह सख्या मात्र 1 लाख 20 हजार थी)।

1934-35 म ब्रिटिश भारत म विश्वविद्यालयो और उच्च शैक्षणिक सस्थानो मे शिक्षा प्राप्त कर रह छात्रो की सख्या 1 लाख 9 हजार 8 सौ थी जो कुल आबादी की 0 4 व्यक्ति प्रति हजार के बराबर थी। यह सख्या सोवियत सघ की तुलना मे आठ गुनी कम है।

तकनीकी प्रशिक्षण के क्षेत्र म, जो किसी अविकसित देश के विकास की जरूरतो को पूरा करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, हम सबसे ज्यादा गभीर विषमता पाते हैं। सोवियत सघ मे प्राविधिक माध्यमिक स्कूलो और फैक्टरी स्कूलो का जा व्यापक जाल बिछा हुआ है उसकी तुलना भारत स किसी भी रूप म नही की जा सकती। अकेले वर्ष 1937 मे सोवियत सघ मे स्नातक स्तर तक शिक्षा पाने वाले प्राविधिक विशेषज्ञो (औद्योगिक और भवन इजीनियरो, परिवहन एव सचार इजीनियरो कृषि का मशीनीकरण करने के लिए प्रशिक्षित इजीनियरो और कृषि विशेषज्ञो) की सख्या 45,900 थी। भारत मे 1934 35 म इजीनियरिंग, कृषि या वाणिज्य मे स्नातक स्तर तक की शिक्षा पाने वालो की कुल सख्या महज 960 थी जो सोवियत सघ की सख्या से 1 और 48 के अनुपात म है। आबादी के अनुपात से यह 1 और 78 का सबध है।

अखबारो और प्रकाशनो के सदर्भ म सास्कृतिक विकास के अन्य उपायो पर विचार करें तो पता चलेगा कि सोवियत सघ मे 1913 मे दैनिक समाचार पत्रो की सख्या जहा 859 थी वह सख्या 1937 म बढकर 8521 हो गई अर्थात उनके प्रकाशन म 10 गुनी वृद्धि हुई। उनका दैनिक वितरण 27 लाख से बढकर 3 करोड 62 लाख हो गया अर्थात उसम 14 गुना वृद्धि हुई। भारत मे 1913-'14 मे 827 समाचार पत्र निकलते थे जो 1933 34 म बढकर 1748 हो गए। उनके दैनिक वितरण का कोई आकडा नही उपलब्ध है लेकिन यह वितरण बहुत कम रहा होगा। सोवियत सघ म प्रकाशित पुस्तको की सख्या 1913 म 8 करोड 67 लाख स बढकर 1937 म 67 करोड 30 लाख हो गई। यह वृद्धि लगभग आठ गुनी थी। भारत मे प्रकाशित पुस्तको की सख्या (आकडे उपलब्ध नही) 1913 14 म 12189 से बढकर 1933-34 म 16763 हो गई जो 20 वर्षों म केवल एक तिहाई की वृद्धि थी।

यदि हम सोवियत सघ म विद्यमान जन स्वास्थ्य और सामाजिक सुविधा के उपायो पर नजर डाल तो पता चलेगा कि लोगो की देखरेख और सुविधा के लिए जितना मुकम्मल और सुव्यवस्थित इतजाम यहा है उतना किसी भी दूसरे देश म नही है। इसके साथ ही

हम भारत मे इन सेवाओ के प्रति जो गहरी उपेक्षा देखते है उसमे दोनो देशो की व्यवस्था की विपमता का पता चलता है। सोवियत सघ म प्रत्येक नागरिक के पैदा होन से लेकर मरने तक उसके स्वास्थ्य और खुशहाली की देखरख की जाती है जिनम हर तरह की बीमारी या दुघटना की स्थिति मे चिकित्सा तथा अन्य तरह की सुविधाए शामिल हैं, माताओ और शिशुओ की देखरेख की व्यवस्था है सवतन अवकाश की सुविधा है, मजदूरो के लिए विश्रामगृह है और वृद्धावस्था के लिए उचित इतजाम है। दूसरी तरफ भारत म सामाजिक बीमा की अत्यत सीमित प्रणाली भी, जो पूजीवादी देशो मे आम तौर पर पाई जाती है, नही है। यहा सावजनिक स्वास्थ्य सबधी कोई कानून नही है और कस्बा या गावो मे मेहनतकश जनता के लिए सावजनिक स्वास्थ्य और सफाई की सर्वाधिक बुनियादी आवश्यकताए इतने निम्न स्तर पर पूरी की जाती है जिन्ह नही के बराबर ही समझना चाहिए।

सोवियत सघ में जन स्वास्थ्य पर 1913 मे 12 करोड 80 लाख रूबल खच किया गया जो 1928 म 69 करोड 90 लाख रूबल, 1933 मे 3 अरब 10 करोड 20 लाख रूबल और 1937 में 9 अरब 5 करोड रूबल हो गया। यह वृद्धि 70 गुना अधिक थी। 1937 मे 9 अरब 5 करोड रूबल का अथ यह हुआ कि प्रति व्यक्ति 53 रूबल खच किए गए। भारत म जन स्वास्थ्य के खच के मुख्य बोझ को प्रशासनिक परिवतनो के कारण प्रातो पर डाले जाने से 1913 के आकडे से प्रभावकारी तुलना नही हो पाती। लेकिन केंद्रीय और प्रातीय सरकारा द्वारा सयुक्त रूप से जन स्वास्थ्य पर खच की गई राशि 1921-22 मे 4 करोड 73 लाख रुपये थी जो 1935-36 मे बढकर 5 करोड 72 लाख रुपये हो गई। इसका अथ यह हुआ कि 1921-22 मे कुल केंद्रीय और प्रातीय खच 2 1 प्रतिशत से बढकर 1935-36 मे 2 6 प्रतिशत हो गया। 1935-36 म 5 करोड 72 लाख रुपये का अथ यह हुआ कि प्रति व्यक्ति 2 75 पेंस हो गया।

दोनो देशो की स्थितियो की तुलना के लिए यदि हम वहा के अस्पतालो मे मरीजो के रहने के इतजाम पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि सोवियत सघ मे 1913 मे अस्पतालो मे 138 000 मरीजो के रहने की व्यवस्था थी जो 1937 मे बढकर 543000 तक पहुच गई। इसका अथ यह हुआ कि समूची आबादी मे प्रति 313 व्यक्ति पर एक व्यक्ति के लिए यह सुविधा उपलब्ध थी। ब्रिटिशकालीन भारत मे यह सख्या 1914 मे 48435 थी जो 1934 म बढकर 72271 हो गई (इनमे सभी सरकारी और निजी सस्थाए शामिल है जिनमे से अनेक सस्थाए केवल यूरोपीयो के लिए या सेना के कमचारियो के लिए थी)। इसका अथ यह हुआ कि कुल आबादी के प्रति 3810 व्यक्ति पर एक व्यक्ति के लिए यह सुविधा उपलब्ध थी। सोवियत सघ मे इस क्षेत्र मे उपलब्ध सुविधा की तुलना मे यह 12 गुना कम है।

जारशाही रूस म 1913 म मृत्यु दर 28 3 प्रति हजार थी जो भारत म 1914 मे मृत्यु

दर 30 प्रति हजार के काफी करीब है। लेकिन सोवियत सघ म 1926 तक यह दर कम होकर 20 9 प्रति हजार पर आ गई जबकि उसी वष भारत मे यह दर 26 7 प्रति हजार थी। 1913 म मास्को म मृत्यु दर 23 1 प्रति हजार और 1926 मे 13 4 प्रति हजार थी। बबई मे 1914 म मृत्यु दर 32 7 प्रति हजार और 1926 म 27 6 प्रति हजार थी। मास्को म 1913 म शिशुओ के मरने की दर 270 प्रति हजार थी जो 1928-29 तक घट कर 120 प्रति हजार हो गई। उस वष बबई मे यह दर 255 प्रति हजार थी।

सावजनिक सफाई और छूत की बीमारियो पर पडने वाले उसके प्रभाव पर विचार करें। सोवियत सघ म 1913 म प्रति दस हजार पर 7 3 लोग टाइफस से पीडित थे लकिन 1929 मे यह सख्या 2 0 प्रति 10 हजार हो गई अर्थात 72 प्रतिशत की कमी हुई। इसी प्रकार डिप्थीरिया के मामले मे यह सख्या 31 4 से घटकर 5 9 प्रति हजार हो गई अर्थात 80 प्रतिशत की कमी हुई। चेचक के मामले मे यह सख्या 4 7 से घटकर 0 37 प्रति हजार हो गई अर्थात 90 प्रतिशत की कमी हुई (एच० ई० सिगरिस्ट, 'सोशलाइज्ड मैडिसिन इन दि सोवियत यूनियन', पृष्ठ 357)। टाइफस और डिप्थीरिया के बारे म भारत मे कोई आकडा उपलब्ध नही है लेकिन चेचक से हुई मौतो के आकडे से एक उप योगी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। भारत म 1914 म चेचक से मरन वालो की सख्या 76590 थी अर्थात इसकी दर 3 2 व्यक्ति प्रति दस हजार थी। 1934 म यह सख्या 83925 अर्थात 3 0 प्रति दस हजार हो गई। 1935 म इस सख्या मे मामूली वद्धि हुई। भारत म चेचक से मरने वालो की सख्या मे 20 वर्षो के अतराल के बाद भी कोई फक न पडना (3 2 और 3 0 प्रति 10 हजार) और सोवियत सघ म इसी अवधि मे चेचक से मरने वालो की सख्या म 4 7 से घटकर 0 37 का हो जाना दोनो देशो की विषमता को प्रकट करता है।

1913 म सोवियत सघ म डाक्टरो की सख्या 19800 थी जो 1937 तक बढकर 97000 हो गई। भारत म 1934 35 मे विश्वविद्यालयो से निकले चिकित्सा स्नातको की कुल सख्या 630 थी। इसम उन डाक्टरो की भी मामूली सख्या जोडी जा सकती है जो इगलड से प्रशिक्षण लकर लौटे थे।

अत म यदि हम मजदूरो की हालत पर विचार करें और सोवियत सघ म उनके काम के निर्धारित घटो पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि सोवियत सघ से 1922 म सभी उद्योगो म 8 घटे की अवधि काम करने के लिए निर्धारित की गई जो 1927 म सभी उद्योगो म 7 घटे के दिन के रूप मे तय हो गई। इसम खतरनाक पेशो म या जमीन के नीचे काम करने वाले मजदूरो के लिए दिमागी काम करने वालो के लिए और 16 तथा 18 वष के बीच के नाबालिगों के लिए 1927 म ही काम का 6 घटे का दिन निर्धारित किया गया। 14 वष की उम्र से कम के लडको को किसी भी स्थिति म काम की इजाजत नही थी और 14

वष से 16 वष की आयु वग के जो लडके असा ारण परिस्थितियो म काम करत थे उनके लिए दिन भर मे काम की अधिकतम अवधि 4 घट तय की गई।

भारत मे 1922 के फैक्टरी ऐक्ट द्वारा 11 घटे का दिन निर्धारित किया गया और 1934 के फैक्टरी ऐक्ट ने काम के लिए 10 घट का दिन तय किया तथा 12 वष से कम उम्र के बच्चो को रोजगार देने की मनाही की गई। लेकिन कारखाना की स्थिति की जाच करने वाले इसपैक्टरा की सख्या इतनी कम रखी गई (व्हिटले कमीशन की रिपोट के अनुसार 1929 मे भारत भर मे उनकी सख्या केवल 39 थी) कि किसी भी इस्पैक्टर के लिए प्रत्यक कारखाने मे साल मे एक बार भी पहुचना असभव था। इसका नतीजा यह हुआ कि मालिका ने फैक्टरी ऐक्ट की अवहलना की और खासतौर स कम उम्र के बच्चो को नौकर रखने म इस कानून की काफी अवहेलना की गई। इसके अलावा फैक्टरी ऐक्ट औद्योगिक मजदूरो के महज एक छोटे से भाग पर लागू है (1931 की जनगणना से पता चलता है कि 1 करोड 77 लाख व्यक्ति उद्योगो तथा परिवहन सेवाओ मे काम करते थे और इनमे से 1936 मे सिफ 16 लाख व्यक्तियो पर फैक्टरी ऐक्ट लागू था)। भारत के अधिकाश मजदूरो के लिए काम के घटो की कोई सीमा नही है उनकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नही है या छोट से छोटे बच्चो के शोषण की कोई सीमा नही है। जैसाकि व्हिटले कमीशन की रिपोट म बताया गया था 5 5 वष के बच्चो को दिन भर मे 12 घटे तक काम करना पडता था।

विभिन क्षेत्रो मे दोनो देशो की स्थितियो मे जिस विरोध का चित्र प्रस्तुत किया गया है वह ठोस तथ्यो पर आधारित है। इन तथ्यो के आधार पर, राजनीतिक दृष्टिकोण चाहे जो भी हो, यह फैसला दिया जाना चाहिए कि सोवियत सघ और भारत के बीच जो वैषम्य दिखाई पडता है वह सभ्यता और बबरता के बीच का वैषम्य है।

फिर भी बीस वष पहले जारशाही रूस और ब्रिटिशशासित भारत के लोगो की हालत मे इतना बडा अतर नही था। यह रूप परिवतन 20 वर्षो के समाजवादी शासन के कारण हुआ है। इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि आवश्यक राजनीतिक परिस्थितिया पैदा कर दी जाए और वग शक्तियो के सबध मे परिवतन हो जाए तो भारत म भी इस तरह का रूपातरण हो सकता है।

2 मध्य एशियाई गणराज्यो का अनुभव

सोवियत सघ के मध्य एशियाई गणराज्या के अनुभव से इस तुलनात्मक अध्ययन की और भी पुष्टि हो जाती है।

यदि हम 1913 के जारशाही रूस की तुलना आज के भारत से करें तो निस्सदेह रूप से यह बात सही लगती है और इस ध्यान मे रखना चाहिए कि भारत म रूपातरण के लिए

प्रारभिक प्रस्थान बिंदु 1913 के जारशाही रूस की विकास अवस्था की तुलना मे सामान्य तौर पर निम्न है हालाकि इससे विकास की आनुपगिक दर पर कोई प्रभाव नही पडता (वस्तुत 1913 के पहले के दशक म उत्पादक स्तरो के विश्व स्तर पर जारशाही रूस पिछड रहा था)। लेकिन यह विशेषता सोवियत सघ के मध्य एशियाई गणराज्यो के उदाहरण को और भी महत्व दे देती है क्याकि 20 वप पहले ये गणराज्य आज के भारत की तुलना म कही ज्यादा पिछडे हुए थे। इसके साथ ही प्रगति की उनकी वतमान उच्च अवस्था भारत के लिए एक महत्वपूण नमूना पेश करती है।

सोवियत सघ और ब्रिटिश शासित भारत के बीच सामान्य तौर पर विद्यमान विपमता ता आश्चयजनक है ही, यह विपमता उस समय और अधिक दिखाई पडती है जब हम मध्य एशियाई सोवियत गणराज्यो को देखते है। यहा हम यह देख सकते है कि प्रारभ म इन गणराज्यो की स्थितिया भी काफी हद तक भारत की स्थितिया जैसी थी और दोना की विकास प्रक्रिया मे भी काफी समानता थी। भारत की स्थिति को जिन विशेप कठिनाइयो का सामना करना पडता है उनका सामना उन्ह भी करना पडता था। इन गणराज्यो की जनता भारत की तुलना म अधिक पिछडी, आदिम, पीडित और निधनता से ग्रस्त थी। एशियाई अथव्यवस्था और एशियाई सामाजिक परिस्थितियो तथा महिलाओ की स्थिति, और धम आदि से सबधित विशेप प्रकार की सभी समस्याए इन गणराज्या म वहद उग्र रूप म मौजूद थी। इसलिए साम्राज्यवाद की उपनिवेशवादी नीति और पिछडी हुई जनता के सदभ म समाजवाद की नीति मे जो अतर है, वह इन गणराज्या मे जितनी स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है उतना और कही सभव नही है।

सात सावियत समाजवादी गणराज्या को मिलाकर स्थापित सोवियत समाजवादी गणराज्य सघ के अतगत तीन मध्य एशियाई सोवियत समाजवादी गणराज्य समान रूप से स्वशासी गणराज्यो के रूप म शामिल है। इनके नाम है तुकमेनिस्तान जिसकी आबादी 12 5 लाख और क्षेत्रफल 171 000 वगमील है, उजबकिस्तान जिसकी आबादी 50 लाख और क्षेत्रफल 66,000 वगमील है और ताजिकिस्तान जिसकी आबादी 15 लाख और क्षेत्रफल 55 000 वगमील है। इनके साथ घनिष्ठ रूप से जुडे है कारा-काल्पक स्वायत्त गणराज्य और किरगीज स्वायत्त गणराज्य। य पाचा गणराज्य कजाकिस्तान से दक्षिण म है और भारत की सीमा के काफी करीब हैं।

> कजाकिस्तान के दक्षिण म मध्य एशिया के पाच समाजवादी गणराज्य स्थित हैं जिनके नाम वहा बसे लागा की राष्ट्रीयता पर आधारित है, उजबेक तुकमन, ताजिक किरगीज और कारा-काल्पक गणराज्य।
>
> यह सावियत समाजवादी गणराज्य सघ का धुर दक्षिण प्रदेश है। इसकी सीमा फारस, अफगानिस्तान और पश्चिमी चीन स लगी हुई है। मध्य एशिया

की सीमा से भारत 15 किलोमीटर की दूरी पर है।

> क्राति से पूव मध्य एशिया अधगुलाम और औपनिवेशिक मजदूरो की भूमि थी। अब यह समान अधिकारवाली जातियो, समाजवादी कृपि और नवनिर्मित उद्योगो की धरती बन गई है। (मिखाइलोव सावियत ज्योग्राफी', 1937, पृष्ठ 6-7)

हम अपना अध्ययन ताजिकिस्तान से शुरू करे जो भारत से कुछ ही मीलो की दूरी पर स्थित है। अतीत मे ताजिक लोगो का जीवन खुशहाल नही था। क्राति होन के पूव तक वे जारशाही रूस के जुए के अतगत थे और बुखारा के अमीर की सामती-मजहबी तानाशाही से ग्रस्त थे। जारशाही साम्राज्य की समाप्ति के बाद जो गृहयुद्ध शुरू हुए वे 1925 तक अतिम रूप से समाप्त नही हुए। 1925 मे ताजिकिस्तान एक स्वायत्त गणराज्य बन गया और 1929 मे वह एक स्वतत्र सघीय गणराज्य के रूप मे सोवियत समाजवादी गणराज्य सघ मे शामिल हो गया।

ताजिक लोगो का जीवन जारशाही के अतगत अत्यत पिछडेपन की स्थिति मे था। इनका जीवन कितना पिछडा था इसका पता हम इस तथ्य से लगा सकत है कि क्राति स पहले वहा केवल 0 5 प्रतिशत लोग ही पढ लिख सकते थे (जबकि भारत म 1911 म 6 प्रतिशत लोग साक्षर थे)। 1933 तक वहा के 60 प्रतिशत लाग साक्षर हो गए थे (जबकि 1931 में भारत मे केवल 8 प्रतिशत लोग ही साक्षर हो पाए थे)। 1936 तक ताजिक गणराज्य म 3 हजार स्कूल (अथात आबादी के हर पाच सौ लोगो के लिए एक स्कूल), पाच उच्च शैक्षणिक सस्थाए और तीस स ज्यादा प्राविधिक विद्यालय हो गए थे। 1939 तक स्कूल मे पढन वाले छात्रा की सख्या 3,28,000 तक पहुच गई थी (जबकि 1914 म यह सख्या महज सौ थी), और उच्च शैक्षणिक सस्थाआ की सख्या 21 हो गई थी।

1924 म ताजिकिस्तान मे कृपि के काम म जाने वाली जमीन का क्षेत्रफल 1,C05 000 एकड था। 1936 तक यह 1,626 000 एकड हा गया और मुख्य फसल के रूप म कपास की खेती की गई। अधिकतर किसान परिवारा न कृपि का सामूहिक तरीका अपना लिया है। कपास की खेती का काम अधिकाशतया मशीनो से किया जाने लगा है। जुताई, कटाई आदि का काम अधिकाशतया ट्रैक्टरो से लिया जाता है। इन सारी चीजो म सिंचाई का विकास काफी महत्व रखता है

> कपास की उपज काफी हद तक सिंचाई पर निभर करती है। 1929 मे ताजिकिस्तान ने सिंचाई पर तीस लाख रूबल खच किए 1930 म एक करोड बीस लाख रूबल और 1931 के बजट म छह करोड दस लाख रूबल अर्थात 50 रूबल प्रति व्यक्ति निर्धारित किया गया था और इसके निम

अधिकाश धन जनता पर कर लगाकर नही वसूला गया बल्कि यह धन सोवियत सघ की केंद्रीय सरकार स मिला था। (जे० कुनित्ज डान ओवर समरकन्द,' 1935 पृष्ठ 235)

ताजिकिस्तान के इन आकडा से पता चलता है कि भारत मे सिचाई के विकास का काम कितना धीमा था। इतना ही नही पहले के सिचाई कार्यों की उपमा पर भी इसस रोशनी पडती है। इसके साथ ही जहा अत्यत सीमित पैमान पर नए सिचाई काय शुरू किए गए है (1913 14 म कुल सिंचित क्षेत्र 4 करोड 68 लाख एकड से बढकर 1933 34 म 5 करोड 50 लाख एकड हो जाना) व केवल पूजीनिवश के आधार पर शुरू किए गए जिसके लिए औसतन 7 प्रतिशत से अधिक वाली ऊची दर के प्रतिफलन की माग की गई। इस प्रकार किसानो पर अतिरिक्त भारी बोझ पडा और इस काय के फायद गरीब किसान तक नही पहुच सके।

इसस भी ज्यादा महत्वपूण बात उन स्थाना का तजी से औद्योगिक विकास किया जाना है जहा पहले कोई उद्योग नही था। समाजवाद के अतगत इस बात का सवाल ही नही पैदा होता कि भूतपूव औपनिवेशिक क्षेत्रा को ग्रामीण भीतरी प्रदेश क रूप मे रखा जाए जबकि आधुनिक उद्योग को पहले की तरह विशेषाधिकार प्राप्त 'महानगरीय' क्षेत्रा की वस्तु बना दिया जाए। उल्टे पुराने पिछडे इलाको के विशेष औद्योगिक विकास के लिए सबसे ज्यादा सक्रियता से कदम उठाए जाते है।

क्राति से पहले तक ताजिकिस्तान मे कोई भी उद्योग नही था। आज इस प्रदेश मे कई कारखान और सिल्क कारखाने है जिनका निर्माण पिछल कुछ वर्षो के दौरान हुआ है वारजोवस्क बिजलीघर के निर्माण का काम पूरा हो गया है और इससे शहर के औद्योगिक क्षेत्रा का बिजली दी जाएगी स्तालिनाबाद मे कपडे का कारखाना पूरे जोर शोर से चल रहा है और यही स्थिति लेनिनाबाद के बडे सिल्क कारखाने की है। इस वष एक विशाल कपडा मिल, मास तैयार करने का कारखाना शराब बनाने की फैक्टरी और एक सीमेंट फैक्टरी के निमाण का काम शुरू हुआ है। इट बनान के दो कारखाना म काम शुरू हो गया है और इसके साथ ही तेल बनान क दो कारखाना कपास साफ करने के दस कारखाना, छपाई के दस कारखाना इत्यादि म भी काम शुरू हो गया है। (यू० एस० एस० आर० ट्रेड डेलीगेशन इन ब्रिटेन मथली रिव्यू,' अक्तूबर 1936 पृष्ठ 552)

क्राति स पूव ताजिकिस्तान म आधुनिक सडकें नही थी। प्रथम पचवर्षीय योजना क दौरान ताजिकिस्तान म 181 किलोमीटर रेल लाइन बिछाई गई और 12 हजार किलोमीटर

सडकें बनाई गइ। इनमे से 6 हजार किलोमीटर की सडके
मोटर चल सकती है।

सावजनिक स्वास्थ्य की ही बात लीजिए। 1914 मे ताजिकि
1939 तक इनकी सख्या 440 हो गई। 1914 मे वहा समुच
म केवल सौ मरीजो के रहने की व्यवस्था थी लेकिन 1939
प्रबध हो गया। 1914 मे यहा के जच्चाखानो म एक भी
था लेकिन 1937 मे 240 मरीजो क रहन की व्यवस्था हो
की सहायता के लिए एक भी केंद्र नही था लकिन 1937
हो गई।

समाजवाद के अतगत ताजिक जनता के अदर नए जीवन का
की अभिव्यक्ति निम्न गीत म की गई है। यह गीत ताजिक स
का है जिसे जोशुआ कुनिरज ने डान ओवर समरकद' म उ

मेरी सास मुक्त और गम है
जब मैं देखता हू जुतती हमारी सूखी धरती,
जब मैं देखता हू बनकर पूरा हुआ कोई बाध
और जब मैं देखता हू उन्ह अपन साथ जो एक नई जि
की कोशिश म है,
मैं उल्लसित होता हू उस तरह जसे एक पिता अपन बे
मैं रोक नही पाता खुद को पुकार उठन से जियो!
सारे नए इसान',
जब म देखता हू अपन बट को खेत में यत्र चलाते हुए
जब मैं दखता हू एक हल फाडता है माटी और गहरी
मैं रोक नही पाता खुद को पुकार उठने म
'विजय उनकी जो श्रमरत
जब मुझे आशका दहलाती है 'पुराना ससार लौटगा'
मैं भूलुठित हो जाना हू, भय से कप हो जाता हू।
मुझे बदूक दो, कामरड, मुझे कुछ गालिया दो
मैं युद्ध को जाऊगा, मैं अपनी भूमि बचाऊगा

1927 28 मे सोवियत गणराज्यो का प्रति व्यक्ति खर्चे का बजट

(रूबल मे)

मद	रूसी गणराज्य	यूक्रेन	श्वेत रूस	ट्रास काकेशिया	उजबेकिस्तान	तुकमेनिस्तान	औसत
ग़ासन प्रबध	0 69	0 86	1 06	2 23	1 60	2 45	1 02
आर्थिक प्रशासनिक विभाग	1 08	0 88	1 57	1 13	1 04	1 46	1 06
सामाजिक-सास्कृतिक आवश्यकताए	2 16	1 92	2 57	3 59	2 48	3 84	2 20
वित्त प्रबध राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था	1 65	1 62	2 37	4 95	3 39	8 90	1 91
स्थानीय बजट को स्थानातरित	5 87	5 56	5 57	6 70	5 77	5 58	5 83
अन्य खर्चे	0 04	—	—	0.53	0 20	—	0 06
कुल योग	11 49	10 84	13 14	19 13	14 48	22 23	12 08

531000, माध्यमिक विद्यालयो मे 130000 और अन्य सस्थानो मे 710000 छात्र अध्ययन कर रहे थे। सामूहिक कृषि फार्मों के तेजी से विकास के अतिरिक्त उद्योग के मामले मे उत्पादन 1913 मे 26 करोड 90 लाख रूबल से बढकर 1936 मे 1 अरब 17 करोड 50 लाख रूबल हो गया और बिजली का उत्पादन 1928 म 3 करोड 40 लाख यूनिट से बढकर 1936 मे 23 करोड यूनिट तक पहुच गया। उद्योग के दायरे म 51 सूती धागे बनाने की फैक्टरिया, कोयला खान, कृषि के काम मे आने वाली मशीन बनाने का एक बडा कारखाना (ताशकन्द मे), एक सीमेट फैक्टरी, गधक की खान, एक आक्सीजन फैक्टरी, कागज का एक कारखाना, चमडे का एक कारखाना और कपडे सिलने के कई कारखाने शामिल है। 1914 और 1937 के बीच डाक्टरो की सख्या 128 से बढकर 2185 हो गई। क्रांति से पहले इस देश के पास अपनी कोई वर्णमाला तक नही थी। लैटिन के ढग की एक नई वर्णमाला के द्वारा इस कठिनाई को हल कर लिया गया। 1935 तक इस गणराज्य म पाच भाषाओ म 118 समाचारपत्र निकलते थे जिनकी वर्ष भर म दस करोड से भी ज्यादा प्रतिया बिकती थी।

इस अत्यत विशाल रूपातरण के लिए आर्थिक साधन कैसे जुटाए गए ? इस प्रश्न के जवाब से यह साफ पता चल जाता है कि पिछडे लोगो के औपनिवेशिक शोषण की साम्राज्यवादी प्रणाली और समाजवाद के अतर्गत समानता के आधार पर विभिन्न जातियो के बीच सहयोग की प्रणाली मे कितना बडा फर्क है। साम्राज्यवादी शासन के अतर्गत औपनिवेशिक देशो की पिछडी हुई और गरीब जनता से हर साल बेशुमार नजराना वसूल किया जाता है जो साम्राज्यवादी देशो के शोषक वर्ग की जेब म जाता है। समाजवाद के अतर्गत पिछडी हुई जातियो के तेजी से विकास म जो अतिरिक्त राशि खर्च होती है उसे सोवियत सघ के बजट मे उनके लिए अनुपात से अधिक रुपया रखकर पूरा किया जाता है। ताकि इस सक्रमण काल म इन पिछडी जातियो को प्रति वर्ष जितना धन वे राज्य को देती है उससे अधिक धन मिले। (अपने ऊपर कर्ज का कोई बोझ इकट्ठा किए बगैर वे यह राशि आराम से पाती है)। पृष्ठ 96 की तालिका से पता चलेगा कि 1927-28 मे सोवियत सघ के अलग-अलग गणराज्यो म प्रति व्यक्ति अलग-अलग मदो म कितने रूबल खर्च करने की व्यवस्था है

इसमे यह दिखाई पडेगा कि सभी बुनियादी मदो मे सबसे शक्तिशाली गणराज्य, रूस और यूक्रेन, अन्य गणराज्यो के बाद के स्थान पर है। सघ पिछडी जातियो वाले राज्यो की सास्कृतिक और आर्थिक प्रगति का काम तेज करने की देखरेख अपने जिम्मे लेता है।

सोवियत सघ का 1939 का बजट भी यही तस्वीर सामने प्रस्तुत करता है। जहा समूचे सोवियत सघ तथा गणराज्यो के कुल बजट म पिछले वर्ष के मुकाबले मे 12 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, वहा कजाकिस्तान के बजट म 20 1 प्रतिशत और तुर्कमेनिस्तान के बजट मे 22 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। रूसी सोवियत गणराज्य का बजट जहा अपने क्षेत्रा

से प्राप्त राजस्व का 18 8 प्रतिशत था वही ताजिकिस्तान के बजट मे यह राशि पूरी की पूरी 100 प्रतिशत निर्धारित की गई। 1928-29 से लेकर 1939 के पूरे दशक के दौरान समूचे सोवियत सघ का सामाजिक तथा सास्कृतिक खर्चा 25 गुना हो गया था जबकि तुर्कमेनिस्तान का खच 29 गुना और कजाकिस्तान का 31 गुना हो गया। इसी तरह नए औद्योगिक निर्माण कार्यों के मामले मे भी पिछडे हुए इलाका की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस तरह कजाकिस्तान का कुल बजट 1 अरब 51 करोड 30 लाख रूबल था लेकिन कम से कम 50 करोड 90 लाख रूबल की राशि सघ के कोष से निर्धारित की गई ताकि इस क्षेत्र में ताबे की ढलाई का विशाल बालखम कारखाना बनाया जा सके। करगडा इस समय सोवियत सघ का तीसरा कोयला बेसिन है और तचिमकन्द और रिद्दस्क का सीसे का कारखाना सोवियत सघ के सीसे के कुल उत्पादन के तीन चौथाई हिस्से की पूर्ति करता है।

इस प्रकार समाजवाद के अतगत बहुत जागरूक ढग से उद्योग का नया वितरण सचालित किया जाता है। जैसाकि मिखाइलोव ने अपनी पुस्तक 'सोवियत ज्योग्राफी' मे बताया है, पुराने जारशाही रूस मे उद्योग-धधे समूचे साम्राज्य के विशाल क्षेत्र मे असमान ढग से वितरित थे। रूस के उद्योग का आधा हिस्सा वतमान मास्को, लेनिनग्राद, इवानोव प्रान्श आदि मे केंद्रित था। आर्थिक नक्शे पर यह क्षेत्र एक टापू की तरह दिखाई देता था। यही वह जगह थी जहा से औद्योगिक पूजी का जन्म हुआ और उसका विकास हुआ। यही से जारशाही की विजय की किरणें फूटी और औद्योगिक केंद्र के काम आने वाले कृषि उत्पादन और कच्चे माल का भारी भडार इकट्ठा किया गया। उत्पादन और कच्चे माल के बीच लबी दूरी बनाकर दोना को पृथक कर दिया गया। सामाजिक श्रम की बरबादी हुई लेकिन उपनिवेशा ने इस खर्चे को बर्दाश्त किया। 'कपास के उत्पादक उजबेक को उचित मूल्य नही दिया जाता था और तैयार कपडे के लिए भी बडी मामूली रकम दी जाती थी बरबाद हो गए दस्तकारा और शिल्पिया के हाथ बिजली से भी ज्यादा सस्ते थे।'

योजनाबद्ध समाजवादी उत्पादन ने सहकारी विकास और राष्ट्रो की समानता के आधार पर उद्योग के वितरण के नए सिद्धात शुरू किए

> याजनाबद्ध समाजवादी उत्पादन और वितरण ने केंद्र से प्रतिस्पधा को दूर रखा। पुराने निषेधात्मक कानूनो के स्थान पर राष्ट्रीय दूरस्थ जिला के औद्योगिक और सास्कृतिक विकास की नीति विकसित हुई।
>
> सोवियत सघ म रहने वाले सभी लोगो को समान अधिकार ह। कानूनी तौर पर सभी जातियो के बीच समानता की बात रूसी क्राति के बिल्कुल प्रारभिक दिना म दी गई थी लेकिन असमानता को वास्तविक रूप से समाप्त करन क लिए यह जरूरी है कि रूस क पुरान उपनिवेशा की जनता के

> आर्थिक पिछड़ेपन को दूर किया जाए। (एन० मिखाइलोव 'सोवियत ज्योग्राफी' 1935 पृष्ठ 51)

इसलिए 1923 में रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की 12वीं कांग्रेस में स्तालिन ने इस सिद्धांत की घोषणा की थी

> रूस के सर्वहारा वर्ग को स्कूलों और भाषा का विकास करने के अलावा सीमावर्ती जिलों में, सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े गणराज्यों में उद्योग के केंद्र स्थापित करने के हर उपाय अपनाने चाहिए। पिछड़े गणराज्य अपनी किसी गलती की वजह से नहीं पिछड़े हुए हैं बल्कि उनकी हालत ऐसी इसलिए है क्योंकि सब से पहले उन्हें कच्चे माल का स्रोत मात्र समझा जाता था। (स्तालिन 'रिपोर्ट आन दि नेशनल क्वेश्चन टू दि ट्वेल्व्थ कांग्रेस आफ दि रशियन कम्युनिस्ट पार्टी, अप्रैल 1923)

हम यहां साम्राज्यवादी औपनिवेशिक शोषण और समाजवादी व्यवस्था के अंतर्गत अलग अलग जातियों के बीच समानता की उपलब्धि के फर्क को देखते हैं। समाजवादी व्यवस्था में सर्वाधिक पिछड़े लोग कितनी तेजी के साथ सर्वाधिक उन्नत लोगों के स्तर तक पहुंचे हैं, यह गौर करने की बात है।

मध्य एशियाई सोवियत गणराज्यों के समान अधिकारों और तेज विकास का यह चित्र देखकर भारतीय जनता उद्विग्न हो उठती है। यह ऐसा चित्र है जिसे देखकर स्वाभाविक रूप से साम्राज्यवादी शासन के अधीन भारत के विकास में बाधक अवरोध तथा शोषण के साथ समाजवादी देश की स्थिति की तुलना करने की इच्छा हो उठती है। लेकिन साथ ही यह ऐसी भी तस्वीर है जो हमारे मन में आशा का संचार करती है और दृढ़ विश्वास पैदा करती है कि भविष्य में साम्राज्यवाद के जुए को उतार फेंकने के बाद भारत की मेहनतकश जनता जब खुद अपने देश की मालिक बन जाएगी, तब भारत में भी इतनी ही तेजी से प्रगति हो सकेगी।

खण्ड दो

भारत मे ब्रिटिश राज

4

भारत की गरीबी का रहस्य

फिर भी एक वग है, सामान्य वग,
जिसके पास न योग्यता है न कोई ढोग,
अच्छे सरल लोग जो जानते ह सपमीनो को सपमीने ही,
मगर कभी रुक कर यह नही सोचते कि कैसा लगता है
चमडी का उतारा जाना,
तुष्ट रहते है जानकर कि सपमीनें है चमडी उतारने के लिए ही,
और भारतीयो की नियति है भुगतान करना,
और इसलिए जब वे महान और उच्च हो जाते है,
उनको सबसे ज्यादा नफरत होती है 'क्यो ?' शब्द से।
—इडिया बगाल के एक युवा नागरिक की तीन सर्गों मे
कविता, लदन 1834।

भारत मे साम्राज्यवाद की भूमिका को समझने के लिए यह जरूरी है कि इसके ऐतिहासिक आधार पर विचार किया जाए। हाल के वर्षों म भारत मे ब्रिटिश शासन के वास्तविक इतिहास को सरकारी आवरण के भीतर से खोज निकालने का काम शुरु हुआ है। लेकिन 1897 मे 'इपीरियल गजेटियर आफ इडिया' के सपादक सर विलियम हटर ने जो कुछ कहा था वह आज भी सही है

ब्रिटिश शासन के अतगत भारतीय जनता के सही इतिहास का निर्माण अभी सैकडा दूरस्थ अभिलेखालयो के सग्रहालय से एक साथ जोड जोडकर होना

बाकी है। इस काम म इतना परिश्रम और लगभग इतने पैसे लगेंगे जो किसी एक व्यक्ति और साधारण निजी सपत्ति की पहुच से बाहर है।

आयरलैंड की समस्या के बारे मे लार्ड रोजबेरी का यह कथन कि 'इस समस्या ने कभी इतिहास के दायरे मे प्रवेश नही किया क्योकि यह कभी राजनीति के दायरे से बाहर जा ही नही सकी' भारत पर लागू होता है। भारतीयो द्वारा स्वतत्रता प्राप्त किए जाने के बाद ही, गभीरतापूर्वक भारतीय इतिहास के अध्ययन का काम शुरू किए जाने की सभावना है। और यह अध्ययन विजेताओ के दृष्टिकोण के साथ किया जाएगा।

अपने एक महत्वपूर्ण लेखाश म, 19वी सदी के इग्लैंड के रूढिवाद के नेता ने इग्लैंड के इतिहास के बारे म लिखा है

> यदि इग्लैंड का इतिहास कभी किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखा गया जिसके पास जानकारी और साहस दोनो हो, और ऐसे काम के लिए य दोनो बातें समान रूप से जरूरी हैं, तो दुनिया के लोग नीबर (Niebuhr) का इतिवृत्त पढते समय जितना विस्मित होते हैं उससे कही ज्यादा विस्मित इस इतिहास को पढकर होगे। सामान्य तौर पर यह तो सभी महान घटनाए तोडमरोड कर पेश की गई हैं अधिकाश महत्वपूर्ण कारणों को छिपाया गया है कुछ महत्वपूर्ण चरित्रो का कभी उल्लेख ही नही किया गया और जिनका उल्लेख किया भी गया उन्हे इतना गलत समझा गया और इतने गलत रूप म पेश किया गया कि इसका [illegible] नतीजा पूरी तरह रहस्यमय रहा। (डिजरायली, 'सीबिल' (Sybil) अध्याय 3)

पूजीवाद के युग म और खासतौर पर 'शानदार क्राति' के बाद से इग्लैंड के इतिहास का यह रहस्यमयीकरण इस तथ्य को महज एक प्रकार प्रस्तुत करता है कि [illegible] विशेष [illegible] के शासन की असलियत को पौराणिक जाल की आड म छिपाया गया है।

लेकिन अगर यह बात इग्लैंड के इतिहास के बारे म सच है तो यह उस इतिहास (ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इतिहास जिसका [illegible] अग है भारत म ब्रिटिश शासन का इतिहास) के बारे म [illegible] जिसका सबध इग्लैंड के [illegible] की [illegible] अलग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

समय तक उसकी रणनीति की बुनियादी बातो के करीब आन है।

इस क्षेत्र मे आधिकारिक मनगढत कहानियो तथा पक्षमडन की प्रवृत्ति खासतौर से स्पष्ट है। बुजुआ सभ्यता के असली रूप को उसकी पूरी नग्नता के साथ प्रकट करने वाले अत्यत प्रारभिक तथ्यो को इग्लैंड की जनता की सामान्य चेतना तक पहुचन से पूरी ताक्त क साथ रोका गया है और उसे छिपाया गया है, ये तथ्य महज आयरलैंड या भारत के लोगो की ज्वलत स्मृतियो मे भर पडे है। समाचारपत्रो या मचो पर सामान्यत गभीर एतिहासिक विश्लेषण का स्थान स्कूली लडके किपलिंग टाइप प्रेमकथाओ ने ले लिया है। यहा तक कि साम्राज्य के अधिग्रहण को, जो किसी राकफेलर के जीवन भर किए गए काय जितनी ही कठोर अध्यवसायी सचयन प्रक्रिया थी, परपरागत इतिहास मे 'दिमाग की खब्त हालत मे घटित' एक 'दुघटना' कहा गया है। 'ब्रिटेन के शाही ताज मे सबसे चमकीले रत्न' विषयक शब्दाडबर भारतीय जनता की भयकर और शर्मनाक स्थितियो पर गभीरता से विचार करने मे रुकावट पैदा होती है। यह उनकी देखरेख के लिए जिम्मेदार किसी भी सरकार के लिए अभियोगपत्र है।

इग्लैंड और भारत के सबधो के इतिहास मे यह मिथक शास्त्र जितना सुस्पष्ट है उतना और कही नही।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि आधुनिक युग मे मिथक शास्त्र की यह प्रवृत्ति बढी है। जहा वलिंगटन, बर्क, क्लाइव, हेस्टिंग्स या ऐडम स्मिथ जैसे लोगो ने नजराने की उगाही, उत्पीडन और लूटखसोट की सच्चाइयो के बारे मे साफ साफ और बिना किसी लागलपट क बताया, जहा साल्सबरी तक ने भारत के 'रक्तस्राव' की बात कही, वही आज, जबकि सत्ता का आधार अब निरापद नही रह गया है, आधुनिक सरकारी उद्गार वमनकारी मधुरता से भरे मानवप्रेम का राग अलाप रहे है जिसके पीछे शोषण और सुव्यवस्थित दमनकारी सगठन का वास्तविक आधार छिपा है।

बिलकुल हाल के, भारत के इतिहासकारो ने एक दिलचस्प सदभ टिप्पणी मे, पिछले पचास वर्षो के दौरान स्पष्टवादिता मे 'मौन सेंसरशिप' (जैसा उनका कथन है) मे रूपातरण पर उल्लेखनीय बात कही है

> ब्रिटिश भारत के बारे मे लिखे गए सामान्य इतिहासो म से एक सौ वष या इससे पूव लिखे गए इतिहास पिछले पचास वर्षों म लिखे गए इतिहास की तुलना मे, सभवत बिना किसी अपवाद के, ज्यादा मुकम्मल, ज्यादा स ज्यादा बिना किसी लागलपट के और ज्यादा दिलचस्प है। उन दिनो मे किसी ने यह कल्पना भी नही की थी कि कोई एसा भी राजद्रोही हो सकता है जो सही अर्थों मे मौलिक समस्याओ (मसलन भारत म आपके रहन का आखिर क्या अधिकार है ?)

से हमारा सरोकार बस इतना ही है कि हम उन गतिशील शक्तियों को सामने लाएं जो आज भी जिंदा है।

आधुनिक समाजवाद के संस्थापक कार्ल मार्क्स ने सबसे पहले इस गतिशील दृष्टिकोण के साथ भारतीय इतिहास का अध्ययन किया, उन्होंने ही सबसे पहले समाज को संचालित करने वाली उन शक्तियों पर वैज्ञानिक प्रणाली की तेज रोशनी डाली जिनके कारण ब्रिटिश शासनकाल से पहले और बाद में भारत का विकास हुआ, उन्होंने ही सबसे पहले साफ साफ शब्दों में भारत में ब्रिटिश शासन की विनाशकारी भूमिका और भविष्य के लिए इसके पुनरुद्धारक क्रांतिकारी महत्व को समान रूप से समझाया। उन्होंने इस कार्य को, जो मानवता के भविष्य के लिए किए गए उनके कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण है 19वीं सदी के मध्य में पूरा किया। 50 वर्षों से भी अधिक समय तक उनका यह काम दबा पड़ा रहा और लगभग अज्ञात रहा हालांकि तब तक उनके कार्य के मुख्य क्षेत्रों के बारे में समूचे विश्व को जानकारी हो चुकी थी। अभी महज पिछले 25 वर्षों से उनके कथ्य की लोकप्रियता व्यापक रूप से छात्रों में बढ़ने लगी है और भारत की समस्याओं से संबंधित वर्तमान चिंतन को तेजी से प्रभावित करने लगी है। आज इतिहास संबंधी आधुनिक अनुसंधान उनके दृष्टिकोण की मुख्य रूपरेखा की काफी पुष्टि कर रहा है।

1 भारत पर मार्क्स के विचार

तरह वर्ष पूर्व इंग्लैंड के एक प्रमुख समाजवादी लेखक ने, तथापि यह विचार व्यक्त किया कि 'भारत की समस्या का मार्क्सवाद की घिसीपिटी स्थापनाओं के आधार पर अध्ययन करने का प्रयास समाजवाद के विकास में गंभीर बौद्धिक योगदान नहीं है बल्कि एक दिमागी कसरत है।' (हराल्ड लास्की कम्युनिज्म, 1927, पृष्ठ 194)

मार्क्स ने अपने चिंतन तथा कार्य का एक उल्लेखनीय अंश निरंतर भारत का अध्ययन करने में लगाया था, इस बात की जानकारी का अभाव पश्चिमी यूरोप के समाजवादी चिंतन की सीमाओं का एक विशिष्ट उदाहरण है। दरअसल भारत के बारे में 1853 में धारावाहिक रूप से लिखे गए मार्क्स के प्रसिद्ध लेखों की गिनती उनके उन लेखों में की जाती है जो हर दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है और उनमें जिन मसलों को उठाया गया है उनके संबंध में आधुनिक चिंतन की शुरुआत ही इन लेखों से होती है। मार्क्स के लेखों का यदि पूरी तरह अध्ययन करें तो पता चलेगा कि किस प्रकार उन्होंने एशियाई अर्थव्यवस्था (विशेष रूप से भारत तथा चीन के संदर्भ में) की खास खास बातों पर लगातार बहुत ध्यान दिया है। किस तरह उन्होंने इनपर यूरोपीय पूंजीवाद के संघात के प्रभावों का अध्ययन किया और इस बात पर ध्यान दिया कि विश्व के भावी विकास के लिए तथा साथ ही भारतीय एवं चीनी जनता के उद्धार के लिए उससे क्या नतीजे निकाले जा सकते हैं। उन्होंने भारत की समस्याओं के अध्ययन पर कितना ध्यान दिया था इसका उदाहरण 'पूंजी' में तकरीबन 50 बार भारत के उल्लेख से पता चल जाता है। मार्क्स और एंगेल्स के बीच

को उठाए और जब जनता का मतलब ब्रिटिश जनता था, उस समय आलोचना जीवित और पूर्ण जानकारी पर आधारित होती थी और राजनीतिक अपेक्षाओं को ध्यान में लाए बिना फैसला दिया जाता था। इधर के वर्षों में, सभी भारतीय मसलों पर काफी हद तक और निस्संदेह स्वाभाविक तौर पर प्रशासन के दृष्टिकोण से विचार करने की प्रवृत्ति पाई गई है 'क्या इससे सरकार का काम ज्यादा आसान और ज्यादा शांतिपूर्व ढंग से होगा ?' आज के लेखक का अनिवार्य रूप से अपने लोगों से बाहर भी एक संसार है जहां लोग एकाग्रता से दंग सुन रहे हैं और जो उसके अपने लोगों के समान ही संवेदनशील हैं और आक्रमण करने में भी उतने ही फुर्तीले हैं। 'जो हमारे साथ नहीं है वह हमारे खिलाफ है।' किसी की बातें सुन लेने, यहां तक कि छिपकर सुनने वाली जनता, विश्वासभाजन न होने को यह ज्ञान निरंतर मौन सेंसरशिप का काम करता है जिससे ब्रिटिश भारतीय इतिहास वर्तमान विद्वता में निकृष्टतम धब्बा बन गया है।' (ई० थामसन और जी० टी० गैरार्ट राइज ऐंड फुलफिलमेंट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, 1934, पृष्ठ 665)

अपने वर्तमान उद्देश्यों के लिए हम भारत में ब्रिटिश शासन के इतिवृत्त के किसी ब्यौरे का और उन रूढ़ तथ्यों का जिसका अध्ययन किसी भी वर्तमान स्तरीय पुस्तक में किया जा सकता है अनुसरण करने नहीं जा रहे हैं। इसके लाभप्रद विवेचन के लिए अलग से एक पुस्तक लिखने की जरूरत होगी। हमारा मतलब यहां महज विकास की कुछ निर्णायक शक्तियों को, जो वर्तमान स्थिति और उसकी समस्याओं के मूल में हैं, प्रदर्शित करना है।

अतीत तो अतीत ही है। यदि ईमानदारी से कहा जाए तो भारत में ब्रिटिश शासन का इतिहास मानवधक इतिहास नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इंग्लैंड के लोगों को उस इतिहास के कुछ तथ्यों से अवगत होना चाहिए (जिन्हें विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों से प्रायः अलग रखा गया है।) ताकि वे अपने आपको साम्राज्यवादी पूर्वग्रह से मुक्त कर सकें और साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि भारतीयों को उनसे अवगत होना चाहिए ताकि वे भारतीय आजादी के लिए अपने को दृढ़प्रतिज्ञ सैनिक के रूप में लैस कर सकें। लेकिन अतीत में जीने से या राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार कार्य को विगत दिनों के अन्यायों और शिकायतों तक केंद्रित रखने से कुछ भी हासिल नहीं होगा। अतीत के अत्याचारी और अत्याचार से पीड़ित लोग काफी पहले ही मर चुके हैं एक गवर्नर जनरल की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार यदि भारतीय बुनकरों की हड्डियां से 1834 में भारत के मैदान सफेद हो गए थे तो आज गवर्नर जनरल की हड्डियां भी अपने खानदानी मकबरे में किसी बेहतर स्थिति में नहीं हैं। आज का ज्वलंत प्रश्न है मौजूदा उत्पीडन और मुक्ति का मार्ग। अतीत

से हमारा सरोकार बस इतना ही है कि हम उन गतिशील शक्तियो को सामने लाए जो आज भी जिंदा है।

आधुनिक समाजवाद के सस्थापक कार्ल मार्क्स ने सबसे पहले इस गतिशील दृष्टिकोण के साथ भारतीय इतिहास का अध्ययन किया, उन्होंने ही सबसे पहले समाज को सचालित करने वाली उन शक्तियो पर वैज्ञानिक प्रणाली की तेज रोशनी डाली, जिनके कारण ब्रिटिश शासनकाल से पहले और बाद मे भारत का विकास हुआ, उन्होने ही सबसे पहले साफ साफ शब्दो मे भारत म ब्रिटिश शासन की विनाशकारी भूमिका और भविष्य के लिए इसके पुनरुद्धारक क्रातिकारी महत्व को समान रूप से समझाया। उन्होने इस काय को, जो मानवता के भविष्य के लिए किए गए उनके कार्यों मे सबसे महत्वपूर्ण है, 19वी सदी के मध्य में पूरा किया। 50 वर्षों से भी अधिक समय तक उनका यह काम दबा पडा रहा और लगभग अज्ञात रहा हालाकि तब तक उनके काय के मुख्य क्षेत्रो क बारे म समूचे विश्व को जानकारी हो चुकी थी। अभी महज पिछले 25 वर्षो से उनके कथ्य की लोक-प्रियता व्यापक रूप से छात्रो मे बढने लगी है और भारत की समस्याओ से सबधित वत मान चिंतन को तेजी से प्रभावित करने लगी है। आज इतिहास सबधी आधुनिक अनु-सधान उनके दृष्टिकोण की मुख्य रूपरेखा की काफी पुष्टि कर रहा है।

1 भारत पर मार्क्स के विचार

तेरह वष पूव इग्लैंड के एक प्रमुख समाजवादी लेखक ने तथापि, यह विचार व्यक्त किया कि 'भारत की समस्या का मार्क्सवाद की घिसीपिटी स्थापनाओ के आधार पर अध्ययन करने का प्रयास समाजवाद के विकास मे गभीर बौद्धिक योगदान नही है बल्कि एक दिमागी कसरत है।' (हराल्ड लास्की कम्युनिज्म, 1927, पृष्ठ 194)

मार्क्स ने अपने चिंतन तथा काय का एक उल्लेखनीय अश निरतर भारत का अध्ययन करने म लगाया था, इस बात की जानकारी का अभाव पश्चिमी यूरोप के समाजवादी चिंतन की सीमाओ का एक विशिष्ट उदाहरण है। दरअस्ल भारत के बारे म 1853 मे धारावाहिक रूप से लिखे गए मार्क्स के प्रसिद्ध लेखो की गिनती उनके उन लेखो म की जाती है जो हर दृष्टि से अत्यत समृद्ध है और उनमे जिन मसलो को उठाया गया है उनके सबध मे आधुनिक चिंतन की शुरुआत ही इन लेखो से होती है। मार्क्स के लेखो का यदि पूरी तरह अध्ययन करें तो पता चलेगा कि किस प्रकार उन्होंने एशियाई अथव्यवस्था (विशेष रूप से भारत तथा चीन के सदभ म) की खास खास बातो पर लगातार बेहद ध्यान दिया है। किस तरह उन्होंने इनपर यूरोपीय पूजीवाद के सघात के प्रभावो का अध्ययन किया और इस बात पर ध्यान दिया कि विश्व के भावी विकास के लिए तथा साथ ही भारतीय एव चीनी जनता के उद्धार के लिए उनमे क्या नतीजे निकाले जा सकते हैं। उन्होने भारत की समस्याओ के अध्ययन पर कितना ध्यान दिया था इसका उदाहरण 'पूजी' म तकरीबन 50 बार भारत के उल्लेख से पता चल जाता है। मार्क्स और एगेल्स के बीच

पत्र व्यवहार म ता इसस भी अधिक बार भारत की चर्चा हुई है।

कम्युनिस्ट घोषणापत्र (जिसम माक्स और एगल्स न इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया था कि पूजीवादी उत्पादन क विकास के लिए भारतीय और चीनी बाजारो के खुल जाने का कितना महत्व है) जारी करन क तथा 1848 की क्रातिकारी लहर क दब जान के फौरन बाद माक्स न अपना सारा ध्यान इसकी हार के बुनियादी कारणा की तलाश म लगा दिया। उन्हान पाया कि इसका सबसे बडा कारण पूजीवाद का यूरोप से बाहर एशिया, आस्ट्रेलिया और कलीफोर्निया म फैल जाना था। इस चितन धारा की और भी तीव्र अभिव्यक्ति 1858 क एक पत्र म हुई है जिसका उल्लख 1852 मे ही एगेल्स क नाम लिखे गए एक पत्र म किया गया है

> हम इस बात से इकार नही कर सकते कि बुर्जुआ समाज एक बार फिर सोलहवी सदी म रह रहा है। मुझे आशा है कि जिस प्रकार पहली सोलहवी सदी न पूजीवाद का जन्म दिया, उसी प्रकार यह दूसरी सालहवी शताब्दी उसकी कब्र खोदेगी। बुर्जुआ समाज का विशेष काय अपनी मुख्य रूपरेखा म किसी भी कीमत पर विश्व बाजार की स्थापना करना और इस आधार पर उत्पादन को सगठित करना है। चूकि दुनिया गोल है इसलिए कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया के उपनिवेश बन जान तथा चीन और जापान म बाजार कायम हो जाने से यह प्रक्रिया पूरी हो गई लगती है। अब हमारे सामने गभीर सवाल यह है यूरोप म क्राति होन ही वाली है और शुरू से ही उसका स्वरूप समाजवादी होगा। लेकिन चूकि दुनिया के कही बडे भाग मे अब भी बुर्जुआ समाज की गतिविधियो का प्रभुत्व है इसलिए क्या इस छोटे से हिस्से मे अनिवाय रूप से क्राति कुचल नही दी जाएगी? (माक्स का पत्र एगेल्स के नाम, 8 अक्तूबर 1858)

माक्स ने 19वी सदी के छठे दशक मे ही यह समझ लिया था कि पूजीवाद के विकास के लिए तथा यूरोप मे समाजवादी क्राति के लिए यूरोप के बाहर पूजीवाद के प्रसार का क्या महत्व है लेकिन यूरोपीय समाजवाद के प्रमुख लोगा ने अभी हाल के वर्षो मे इसे धीरे धीरे महसूस करना शुरू किया है।

1852 मे, जब ईस्ट इडिया कपनी का अधिकारपत्र अतिम बार नवीनीकरण के लिए ससद मे पेश किया गया, माक्स ने 'न्यूयाक डेली ट्रिब्यून' के लिए भारत के बारे म लगातार आठ लेख लिखे। इन लेखा को, पूजी म उल्लिखित प्रसगा का और एगल्स के साथ पत्राचार मे आए सदर्भो को देखने से भारत के बारे मे माक्स के चितन के सार तत्व का पता चलता है।

2 भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का छिन्न-भिन्न होना

माक्स का विश्लेषण 'एशियाई अथव्यवस्था' की विशेषताओ से शुरू होता है जिसको सबसे पहले पूजीवाद के सघात ने समाप्त किया था। जून 1853 मे एगेल्स ने माक्स को लिखा कि, 'समस्त पूरब को समझने की कुजी यह है कि वहा जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व नही है।' लेकिन जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व का न होना यूरोपीय अथव्यवस्था के आदिम प्रारभिक स्वरूप से मूलत भिन्न नही है, यह भिन्नता बाद के विकास से पैदा हुई।

> इधर लोगो के बीच एक बेतुकी धारणा फैली है कि अपने आदिम स्वरूप मे सामूहिक सपत्ति स्लाव लोगो या यहा तक कि केवल रूसियो की ही विशिष्टता है। यह आदिम स्वरूप रोमन, ट्यूटन और केल्ट लोगो मे था जिसे हम सिद्ध कर सकते है और इसके अनेक उदाहरण भारत म आज भी मिल सकते है हालाकि अब वे अशत बरबाद हो चुके है। सामूहिक स्वामित्व के एशियाई और खासतौर से भारतीय स्वरूपो का बारीकी से अध्ययन करने पर पता चलेगा कि किस प्रकार आदिम साम्यवाद के विभिन्न रूपो से इसके विघटन के विभिन्न रूप विकसित हुए। इस प्रकार मिसाल के तौर पर हम पाएगे कि रोमन और ट्यूटन मे निजी सपत्ति के जो विविध बुनियादी स्वरूप थे, उनका सबध भारतीय साम्यवाद के विभिन्न रूपो से है। (माक्स दि क्रिटिक आफ पोलिटिकल इकोनामी, अध्याय 1)

फिर क्यो नही पूरब मे भी, पश्चिम की ही तरह आदिम साम्यवाद से भूसपत्ति और सामतवाद का विकास हुआ? एगेल्स का कहना है कि इसका उत्तर हमे वहा की जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियो म मिलता है

> यह कैसे हुआ कि पूरब के लोग भूसपत्ति और सामतवाद की अवस्था तक नही पहुचे? मेरे विचार से इसका मुख्य कारण वहा की जलवायु है जिसके साथ वहा की खास तरह की मिट्टी की स्थितिया जुडी ह। इस सिलसिले मे विशेष रूप से, वे बडे रेगिस्तानी इलाके भी काफी महत्वपूर्ण है जो सहारा से लेकर अरब, ईरान, भारत और तातार प्रदेश से होते हुए एशिया क सबसे ऊचे पठारो तक फैले हुए हैं। यहा खेती की पहली शत सिचाई के प्राकृतिक नही बल्कि कृत्रिम साधनो का होना है और यह काम या तो कम्यूनो के जिम्मे या प्रातीय अथवा केंद्रीय सरकार के जिम्मे होता है। (एगेल्स का पत्र माक्स के नाम 6 जून 1853)

खेती की परिस्थितिया, भूमि पर निजी स्वामित्व कायम करने के अनुकूल नही थी। इसी

से पानी बाटता है, ब्राह्मण धार्मिक कृत्यो का सचालन कराता है, अध्यापक बच्चो को बालू मे लिखना-पढना सिखाता है ज्योतिषी गाव के लोगो को बुवाई और कटाई के लिए तथा कृषि सबधी अन्य कार्यों के लिए शुभ दिन की जानकारी देता है लोहार खेती के औजार बनाते है और उनकी मरम्मत करते है, कुम्हार गाव के सभी लोगो के लिए बरतन बनाता है। इसके अलावा गाव मे एक नाई, कपडे साफ करने के लिए धोबी, एक सुनार भी होता है। कही कही किसी किसी समुदाय मे कुम्हार सुनार का भी काम करता है और कही पाठशाला के अध्यापक का भी। इन दजन भर लोगो का खर्च गाव के लोग चलाते है। यदि आबादी बढी तो पुराने ढाचे के आधार पर, खाली जमीन पर एक नया समुदाय स्थापित हो जाता है

इन आत्मनिभर समूहो म उत्पादन का बहुत सरल सगठन है। इन समुदायो से निरतर एक ही तरह के समुदायो का निर्माण होता रहता है और यदि कोई समुदाय दुघटनावश नष्ट हो जाता है तो उसी स्थान पर उसी नाम से वैसा ही दूसरा समुदाय जन्म ले लेता है। इन समुदायो म उत्पादन की सरलता ही वह मुख्य बात है जिसके कारण एशियाई समाजो म कभी कोई परिवतन होता नही दिखाई देता। इस अपरिवतनशीलता के एकदम विपरीत एशियाई राज्यो का लगातार विघटन और निर्माण होता रहता है तथा राजवशो मे परिवतन का सिलसिला जारी रहता है। राजनीतिक क्षितिज पर घुमडते तूफानी बादल से समाज के आर्थिक तत्वो का ढाचा अछूता रह जाता है। (मार्क्स 'पूजी', खड 1, अध्याय 15, अनुभाग 4)

यही वह परपरागत भारतीय अथव्यवस्था थी जिसकी बुनियाद को विदेशी पूजीवाद के प्रतिनिधि ब्रिटिश शासन ने छिन्न भिन्न कर दिया। अगरेजो से पहले जिन शक्तियो ने भारत पर विजय हासिल की थी उनम और अगरेजो मे यही फक था कि पहले के विदेशी विजेताओ ने जहा भारत के आर्थिक आधार को ज्यो का त्यो रहने दिया और अत म उसम घुलमिल गए वहा ब्रिटिश विजेताओ ने उस आधार को छिन्न भिन्न कर दिया और वे ऐसी विदेशी शक्ति के रूप म बने रहे जिसम सत्ता का सचालन बाहर से होता था और भारत से नजराने की वसूली करके बाहर भेजा जाता था। भारत मे विदशी पूजीवाद की विजय और यूरोप मे पूजीवाद की विजय के बीच भी यह अतर है कि यहा ध्वसात्मक प्रक्रिया के साथ साथ उसी के अनुरूप नई शक्तियो का विकास नही हुआ। भारत की जनता ने महसूस किया है कि 'उसकी पुरानी दुनिया तो उजड चुकी थी पर नई दुनिया का कही पता नही था और इसलिए ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीय जनता के दुख-दद के साथ एक 'खास तरह का विषाद' जुड गया।

इसमे कोई सदेह नही कि यह हिंदुस्तान पर अब तक पडी तमाम विपत्तियो स

कारण यहा खास तरह की 'एशियाई अथव्यवस्था' का जन्म हुआ जो नीचे गावो के स्तर पर तो आदिम साम्यवाद के अवशेषो को अपने साथ लिए हुए थी और ऊपर केंद्रीय शासन की निरकुशता थी जिसका काम युद्ध और लूटपाट के साथ साथ सिंचाई और सावजनिक निर्माण के कार्यो का प्रबध करना था।

इसलिए भारत को समझने के लिए वहा की ग्राम व्यवस्था को समझना जरूरी है। ग्राम व्यवस्था का उत्कृष्ट वणन माक्स ने 'पूजी' मे किया है

> वे छोटे और अत्यत प्राचीन भारतीय समुदाय, जिनमे से कुछ तो आज तक चले आ रहे ह जमीन की सामूहिक मिलकियत कृषि और दस्तकारी के मेल, और एक अपरिवतनीय श्रम विभाजन पर आधारित है जो किसी नए समूह की शुरुआत होने पर बनी-बनाई योजना के रूप मे काम आता है। सौ से लेकर कई हजार एकड तक मे फैले ये समूह अपने आप म ठोस और पूण होते है तथा अपनी जरूरत की सभी चीजो का उत्पादन कर लेते है। इनके द्वारा तैयार किए गए सामानो का मुख्य भाग समुदाय क सीधे इस्तमाल के काम आता है और बाजार मे बेचे जान वाले माल का रूप नही लेता। इसलिए भारतीय समाज मे, कुल मिलाकर, यहा उत्पादन माल के विनिमय से पैदा श्रम विभाजन से स्वतत्र है। उत्पादन का केवल वह हिस्सा जो उपभोग से बच रहता है, बाजार म बिकने के लिए जाता है और वह अतिरिक्त हिस्सा भी तब तक बाजार मे बिकने नहीं जाता जब तक कि उसका एक अश राज्य के हाथो मे नही पहुच जाता। सदियो से उत्पादन का एक निश्चित हिस्सा लगान के रूप मे, जो जिन्स की शक्ल मे होता है राज्य को द दिया जाता है।
>
> भारत के अलग अलग हिस्सो मे इन प्राचीन समुदायो के विधान भी अलग अलग हैं। इनमे से जो सबसे सरल विधान है उसके अतगत सभी लोग मिलकर खेत जोतते ह और उसम पैदा फसल को आपस म बाट लेते है। इसके साथ ही प्रत्येक परिवार म कताई और बुनाइ का काम सहायक उद्योग के रूप म होता है। इस प्रकार एक तरफ एक ही तरह के काम म लगे लोग होत ह और दूसरी तरफ गाव का 'मुखिया' होता है जो जज, पुलिस और टैक्स वसूल करने वाले का काम एक साथ करता है एक पटवारी होता है जो खेती-बाडी का हिसाब रखता है और इसमे सबधित सभी बाते अपन पास दज करता रहता है एक और अधिकारी होता है जो अपराधियो का दड देता है, गाव से गुजरने वाले अजनबियो की रक्षा करता है तथा उन्ह दूसरे गाव तक सुरक्षित ढग से छोड आता है। पहरेदार पडोस के गावो मे गाव की रक्षा करता है। एक दूसरा अधिकारी सिंचाई के लिए सावजनिक तालाबो

से पानी बाटता है, ब्राह्मण धार्मिक कृत्यो का सचालन कराता है, अध्यापक बच्चो को बालू मे लिखना-पढना सिखाता है ज्योतिषी गाव के लोगो को बुवाई और कटाई के लिए तथा कृषि सबधी अय कार्यो के लिए शुभ दिन की जानकारी देता है लोहार खेती के औजार बनाते है और उनकी मरम्मत करते है, कुम्हार गाव के सभी लोगो के लिए बरतन बनाता है । इसके अलावा गाव म एक नाई कपडे साफ करन के लिए धोबी एव सुनार भी होता है । कही कही किसी किसी समुदाय म कुम्हार सुनार का भी काम करता है और कही पाठशाला के अध्यापक का भी । इन दजन भर लोगो का खच गाव के लोग चलात है । यदि आबादी बढी तो पुराने ढाचे के आधार पर, खाली जमीन पर एक नया समुदाय स्थापित हो जाता है

इन आत्मनिभर समूहो म उत्पादन का बहुत सरल सगठन है । इन समुदाया से निरतर एक ही तरह के समुदायो का निर्माण होता रहता है और यदि कोई समुदाय दुघटनावश नष्ट हो जाता है तो उसी स्थान पर उसी नाम से वैसा ही दूसरा समुदाय जन्म ले लेता है । इन समुदाया म उत्पादन की सरलता ही वह मुख्य बात है जिसके कारण एशियाई समाजा म कभी कोई परिवतन होता नही दिखाई देता । इस अपरिवतनशीलता के एकदम विपरीत एशियाई राज्यो का लगातार विघटन और निर्माण होता रहता है तथा राजवशा म परिवतन का सिलसिला जारी रहता है । राजनीतिक क्षितिज पर घुमडते तूफानी बादल से समाज के आर्थिक तत्वा का ढाचा अछूता रह जाता है । (मार्क्स पूजी, खड 1 अध्याय 15, अनुभाग 4)

यही वह परपरागत भारतीय अथव्यवस्था थी जिसकी बुनियाद को विदशी पूजीवाद के प्रतिनिधि ब्रिटिश शासन न छिन्न भिन्न कर दिया । अगरेजो स पहल जिन शक्तिया ने भारत पर विजय हासिल की थी, उनम और अगरजो म यही फक था कि पहल क विदेशी विजेताओ ने जहा भारत के आर्थिक आधार को ज्या का त्या रहन दिया और अत मे उसम घुलमिल गए वहा ब्रिटिश विजेताओ न उस आधार का छिन-भिन्न कर दिया और व ऐसी विदशी शक्ति के रूप म बने रह जिसम सत्ता का सचालन बाहर से होता था और भारत से नजराने की वसूली करके बाहर भेजा जाता था । भारत म विदेशी पूजीवाद की विजय और यूरोप म पूजीवाद की विजय क बीच भी यह अतर है कि यहा ध्वसात्मक प्रक्रिया क साथ साथ उसी के अनुरूप नई शक्तिया का विकास नही हुआ । भारत की जनता न महसूस किया है कि उसकी पुरानी दुनिया ता उजड चुकी थी पर नई दुनिया का कही पता नही था और इसलिए ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीय जनता के दुख-दद के साथ एक 'खास तरह का विषाद जुड गया ।

इसम कोई सन्दह नही कि यह हिंदुस्तान पर अब तक पडी तमाम विपत्तिया स

बुनियादी तौर पर यह भिन्न और ज्यादा गभीर है। मेरा इशारा यूरोप की उस तानाशाही की तरफ नही है जो ब्रिटिश ईस्ट इडिया कपनी द्वारा एशियाई तानाशाही पर डाल दी गई और दोनो के मेल से ऐसा विकराल रूप *निर्मित हुआ जो सालसेट के मदिरो की भयावह दैवी पिशाच मूर्तियो* से भी ज्यादा विस्मित करने वाला था

हिंदुस्तान म कितनी ही वार गृहयुद्ध छिडे, विदेशी आक्रमण हुए, क्रातिया हुइ, विदेशियो ने वार वार देश को जीता अकाल पडे लेकिन ये घटनाए भले ही सतही तौर पर आश्चयजनक रूप से जटिल लगें और वडी तेजी से घटित होने वाली तथा विनाशकारी लगें लेकिन वे सतह से ज्यादा नीचे तक प्रभावित नही कर पाती थीं। इग्लैंड ने भारतीय समाज के समूचे ढाचे को तोड दिया है और उसके पुनर्निर्माण के अभी तक काई आसार नही दिखाई दे रहे है। पुरानी दुनिया का इस तरह उजड जाना और नई दुनिया का कही पता न चलना, हिंदुस्तानिया के वतमान दुख-दद के साथ एक खास तरह का विषाद जोड देता है और ब्रिटिश शासित हिंदुस्तान को उसकी समस्त प्राचीन परपराओ तथा उसके सपूण विगत इतिहास से काट देता है। (माक्स दि ब्रिटिश रूल इन इडिया, ''न्यूयाक डेली' ट्रिब्यून, 25 जून 1853)

3 भारत मे ब्रिटिश शासन की विनाशकारी भूमिका

माक्स ने वडी सावधानी और मनोयोग के साथ इस वात का अध्ययन किया था कि ब्रिटिश शासन की यह विनाशकारी भूमिका किस प्रकार पूरी हुई। इसके लिए उन्होने 1813 तक ईस्ट इडिया कपनी के एकाधिकार के प्रारभिक काल तथा 1813 के बाद की अवधि के बीच के अतर को जिसमे यह इजारेदारी समाप्त हो गई और औद्योगिक पूजीवादी माल ने भारत पर धावा वोलकर अपना काम पूरा कर लिया, बडे साफ तौर पर स्पष्ट किया है।

शुरू की अवधि मे विनाश के प्रारभिक कदम इस प्रकार उठाए गए पहले तो कपनी ने वहुत वडे पैमाने पर भारत को लूटा। ('18वी सदी के दौरान जो धन-दौलत भारत से इग्लड भेजी गई वह अपेक्षाकृत कम महत्वपूण व्यापार वाणिज्य के जरिए नही भेजी गई थी। वह भारत के सीधे शोषण के जरिए और वेतहाशा लूट खसोट के जरिए इग्लड भेजी गई थी।') दूसर, कपनी न सिचाई और सावजनिक निर्माण कार्यों की उपेक्षा शुरू की। पहल की सरकारें इन वातो की आर पूरा ध्यान देती थी और उन्हे उपेक्षित नही रहने दती थी तीसरे, कपनी ने जमीदारी की अगरेजी प्रथा, जमीन पर निजी मिलकियत, तथा जमीन को वेचने और हस्तातरित करन की प्रणाली शुरू कर दी और इग्लैंड का समूचा फौजदारी कानून यहा लागू कर दिया, चौथे, भारतीय माल पर मी... ध लगाकर या उसर

आयात पर भारी चुगी लगाकर पहले इग्लड मे और फिर यूरोप मे उन्हे जाने से रोक दिया गया।

फिर भी इन बातो से 'मरणातक चोट' नही पहुची। यह चोट 19वी सदी के पूजीवाद के युग म पडी।

ईस्ट इडिया कपनी की इजारेदारी का घनिष्ठ सबध इग्लैड के कुलीन तत्र (धनिक वग) के साथ था जिसने ह्विग क्राति के साथ अतिम तौर पर अपनी सत्ता कायम कर ली

> सही अर्थो मे ईस्ट इडिया कपनी की शुरुआत अधिक से अधिक 1702 ई० से मानी जानी चाहिए। इसी वष विभिन्न समितिया, जो ईस्ट इडिया के साथ व्यापार के एकाधिकार का दावा करती थी, एक साथ मिल गईं और उन्होने एक कपनी का गठन किया। उस समय तक असली ईस्ट इडिया कपनी का अस्तित्व ही कई बार खतरे मे पड चुका था—एक बार क्रामवेल के सरक्षित राज्य म उसे कई वर्षो के लिए काय करने से वचित कर दिया गया था और एक बार विलियम-3 के शासनकाल मे ससद के हस्तक्षेप से उसके बिलकुल समाप्त हो जाने का खतरा पैदा हो गया था।
>
> ससद ने ईस्ट इडिया कपनी के अस्तित्व को उस डच राजा के आधिपत्य के समय स्वीकार किया जब ह्विग दलवाले ब्रिटिश साम्राज्य को राजस्व देने वाले किसान बन चुके थे, बैंक आफ इग्लैड का जन्म हो चुका था इग्लैड म देशी उद्यागो की रक्षा की प्रणाली बाकायदा शुरू हो चुकी थी और यूरोप मे निश्चित रूप से शक्ति सतुलन स्थापित हो चुका था। ऊपरी तौर से दिखाई पडने वाली स्वतत्रता का वह युग ही, दरअस्ल उन एकाधिकारो का युग था जिसकी स्थापना एलिजाबेथ और चाल्स प्रथम के शासनकाल मे शाही अधिकारपत्रो द्वारा नही होती थी, बल्कि जिनको ससद की स्वीकृति से अधिकार दिया गया था और जिनका राष्ट्रीयकरण किया गया था।
> (माक्स 'दि ईस्ट इडिया कपनी, इट्स हिस्ट्री ऐंड आउटकम' न्यूयाक डेली ट्रिब्यून 11 जुलाई 1853)

इस इजारेदारी के खिलाफ इग्लैड के औद्योगिक माल निर्माताओ ने लगातार आदोलन किया। उन्होंने भारतीय माल को भारत म न आने देने की माग की और उन्हे अपने इस प्रयास मे सफलता भी मिल गई। इसके अलावा इग्लैंड के उन व्यापारियो ने भी विरोध किया जो भारतीय माल के लाभप्रद व्यापार से बहिष्कृत हो गए थे। इसी सघष का परिणाम था कि इडिया बिल के सवाल पर 1783 मे फाक्स की सरकार का पतन हुआ। इस बिल का उद्देश्य कपनी के निदेशको और मालिको के अधिकरणो (कोर्ट्स आफ

डायरेक्टस ऐंड प्रोप्राइटस) को समाप्त कर देना था। इसी सघर्ष के फलस्वरूप 1786 से लेकर 1795 तक हस्टिग्ज के विरुद्ध महाभियोग के मामले को लेकर लबी लडाई चली। लेकिन औद्योगिक क्रांति के पूरी हान और उसके द्वारा इग्लैंड के कारखानेदार पूजीवाद को सामने लाने के बाद ही 1813 म कपनी की इजारेदारी टूट गयी और टूटन की यह प्रक्रिया 1833 तक पूरी हो गई।

भारत का आर्थिक ढाचा भी 1813 के बाद ही निश्चित तौर पर उस समय टूटा जब इग्लैंड के औद्योगिक सामानो ने भारतीय बाजार पर धावा बोल दिया। भारत के आर्थिक ढाचे के टूटने का प्रभाव 19वी सदी के पूर्वार्ध पर क्या पडा इसका विवरण मार्क्स ने ठोस तथ्यो के साथ पश किया है। 1780 मे 1850 के बीच भारत म ब्रिटन से जो माल आया उसकी कीमत 386 152 पौंड म बढकर 8,024 000 पौंड हो गई अर्थात ब्रिटन द्वारा अन्य देशो को निर्यात किए गए कुल माल का 32वा भाग पहले भारत आता था, पर अब कुल निर्यात का आठवा हिस्सा भारत पहुचने लगा। 1850 म ब्रिटन के सूती कपडा उद्योग का जो माल विदेशो को निर्यात किया जाता था, उसका चौथाई हिस्सा अकेले भारत पहुचता था। उस समय ब्रिटेन की आबादी का आठवा हिस्सा इस उद्योग म लगा हुआ था और इस उद्योग से ब्रिटेन की कुल राष्ट्रीय आय को बारहवा हिस्सा मिलता था

> 1818 से 1836 के बीच ग्रेट ब्रिटेन से भारत को धागे का जो निर्यात किया गया उसकी वृद्धि का अनुपात 1 और 5,200 का था। 1824 म ब्रिटन न भारत को मुश्किल से 6,000,000 गज मलमल भेजा था पर 1837 म इसने 64 000,000 गज से भी अधिक मलमल का निर्यात किया। लेकिन इसके साथ ही ढाका की आबादी 150 000 से घटकर 20 000 हो गई। इसका सबस बुरा परिणाम उन नगरो का पतन था जो अपन कपडो के लिए सुविख्यात थे। ब्रिटिश भाप और विज्ञान न समूचे हिंदुस्तान म कृषि उद्योग और कारखाना उद्योग की एकता को जड स उखाड फेका।
> (मार्क्स 'दि ब्रिटिश रूल इन इडिया,' न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून 10 जून 1853)

> सूती कपडो के निर्माण के लिए ब्रिटेन ने जो प्रणाली सगठित की उसका भारत पर बहुत गभीर असर पडा। 1834 35 मे गवनर जनरल ने अपनी रिपोर्ट मे कहा कि 'इनका दुख-दर्द व्यापार के समूचे इतिहास मे अतुलनीय है। कपडा बुनकरो की अस्थियो से भारत की धरती सफेद हो गई है।'
> (मार्क्स 'पूजी,' खड 1, अध्याय 15, अनुभाग 5)

ग्राम व्यवस्था का निर्माण 'कृषि और उद्योग सबधी व्यवसाय की घरेलू एकता' पर आधारित था। 'करघा और चर्खा पुराने भारतीय समाज की धुरी थे' लेकिन 'अगरेज घुसपैठियो ने भारत के करघे को तोड डाला और चर्खे को नष्ट कर दिया।' इस प्रकार ब्रिटेन ने एक

महानतम और यदि सच सच कहे तो एसी सामाजिक क्राति कर डाली जैसी एशिया मे पहले कभी नही सुनी गई थी। इस क्राति ने न केवल पुराने औद्योगिक नगरो को नष्ट कर डाला और उन नगरो मे रहने वाले लोगो को गावो मे खदेड दिया बल्कि गावो के आर्थिक जीवन का सतुलन भी बिगाड दिया। यही से खेती पर भीषण दबाव शुरु हुआ जो आज तक निरतर बढता जा रहा है। इसके साथ ही अत्यत बेरहमी के साथ किसानो से अधिक से अधिक कर वसूला गया और बदले मे उनकी खेती मे आवश्यक विस्तार के लिए उन्हे कुछ भी नही दिया गया जिससे कृषि के क्षेत्र मे विकास रुक गया। (1850 51 मे लगान के रूप म वसूले गए 19,300,000 पौंड मे से 166,390 पौंड या कुल राशि का मात्र 0 8 प्रतिशत किसी तरह के सार्वजनिक निमाण पर व्यय किया गया।)

> इस लगान के श्रम की स्थितियो के लिए गभीर खतरा पैदा करन वाले आयाम हो सकते हैं। यह उत्पादन के विस्तार को कमोवेश असभव बना सकती है और प्रत्यक्षत उत्पादन मे लगे लोगो को रोटी कपडा चलाने के न्यूनतम भौतिक साधनो तक घसीट कर ला सकती है। यह खासतौर से उस स्थिति म होता है जब इस रूप का परिचय तथा शोषण किसी विजयी औद्योगिक देश द्वारा होता है, जैसा भारत के साथ इग्लैड कर रहा है। (माक्स 'पूजी', खड 3, अध्याय XLVII, अनुभाग 3)

भारत से ब्रिटेन द्वारा जबरन वसूले गए 'नजराने' का अनुमान माक्स ने निम्न शब्दो मे व्यक्त किया है

> भारत को अच्छी सरकार' के लिए नजराने के रूप मे, तथा ब्रिटिश पूजी पर ब्याज और लाभाश आदि के रूप म 50 लाख पौंड देना है। इसमे वह राशि नही जोडी गई है जो ब्रिटिश अधिकारी प्रतिवप अपने वेतन मे से बचाकर घर भेजते हैं या अगरेज सौदागर मुनाफे के नाम पर घर भेजते है ताकि उसे इग्लैड म व्यवसाय म लगाया जा सके। (माक्स पूजी', खड 3, अध्याय 35, अनुभाग 4)

क्या माक्स भारत की ग्रामीण व्यवस्था के पतन और भारतीय समाज के पुरान आधार के ध्वस पर आसू बहाते है ? माक्स ने हर देश की तरह यहा भी हुई बुर्जुआ सामाजिक क्राति के फलस्वरूप जनता की असीम यत्रणा को देखा। जनता का कष्ट भारत मे और भी बडे पैमाने पर देखने को मिला क्याकि यहा जो बुर्जुआ सामाजिक क्राति हुई वह ऊपर बताई गई परिस्थितिया के तहत हुई। लेकिन उन्होने उस ग्राम व्यवस्था के बेहद प्रतिक्रियावादी चरित्र को भी देखा और मानव जाति की प्रगति के लिए उस व्यवस्था के ध्वस की अपरिहाय आवश्यकता को भी महसूस किया। माक्स ने उन 'रमणीय ग्राम समुदायो' मे मानवीयता के अपकर्ष का बडे जोरदार शब्दो म वणन किया है। माक्स के शब्द आज भी

उन लोगो के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं जो लोग यूरोप की तरह भारत मे भी आगे की बजाय पीछे की ओर निगाह घुमाए रहते हैं और ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष का तरीका यह मानते है कि चर्खा और करघावाले उस भारत को फिर जीवित किया जाए जो अगरेजो के आने से पहले था

> उन लाखो करोडो उद्यमी, पितृसत्तात्मक एव निरीह सामाजिक सगठनो की इकाइयो का बिखरना और नष्ट हो जाना, दुख के सागर मे उनका फेंक दिया जाना तथा उनके अलग अलग सदस्यो का अपनी प्राचीन सभ्यता और जीवन निर्वाह के अपने पुश्तैनी साधनो से हाथ धो बैठना किसी भी मनुष्य की भावनाओ को रुग्ण बना सकता है जो लाजिमी भी है। फिर भी हमे यह नही भूलना चाहिए कि ऊपर से निरीह दिखाई देने वाले इन रमणीक ग्राम समुदायो ने, सदा से ही पूर्व की निरकुश तानाशाही के लिए ठोस आधार का काम किया, हमे यह नही भूलना चाहिए कि उन्होंने मानव मस्तिष्क को उसकी सपूर्ण गरिमा और ऐतिहासिक शक्तियो से वंचित करके अत्यत सकीर्ण दायरो मे कैद रखा, उसे अधविश्वास का आसान साधन और पुरानी रीति रिवाजो का गुलाम बना रखा।
>
> हमे उस बर्बर स्वार्थपरता को नही भूलना चाहिए जो जमीन के एक मामूली से टुकडे पर अपना सारा ध्यान केंद्रित किए हुए अनेक साम्राज्यो के विनाश को और अवर्णनीय अत्याचारो के अपराध कर्म को चुपचाप देखती रही, जिसने बडे बडे नगरो मे लोगो का कत्लेआम देखा और इसे एक स्वाभाविक घटना से ज्यादा महत्व नही दिया और जो स्वय भी हर उस आक्रमणकारी का निरीह शिकार बनती रही जिसने उसकी ओर तनिक ध्यान भी नही दिया।
>
> हमे यह नही भूलना चाहिए कि इस अशोभनीय, निश्चल और निष्क्रिय जीवन ने इस अकर्मण्य अस्तित्व ने अपने से भिन्न, विनाश की जगली, निरुद्देश्य और उच्छृंखल शक्तियो को उत्पन्न कर दिया था और नरहत्या तक को हिंदुस्तान की एक धार्मिक प्रथा बना दिया था।
>
> हम यह नही भूलना चाहिए कि ये छोटे छोटे समुदाय जातपात के भेदभाव तथा दासप्रथा से विषाक्त हो चुके थे। उन्होंने परिस्थितियो के स्वामी के रूप म मनुष्य का विकास करने के बजाय उसे परिस्थितियो का दास बना दिया था, उन्होंने स्वय विकास करने वाली सामाजिक व्यवस्था को अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियति का रूप दे दिया था और इस प्रकार उन्होने प्रकृति की ऐसी उपासना का जन्म द दिया था जो अपन आप मे नृशस थी। इसकी

> अधोगति का पता इस तथ्य से ही चल जाता है कि मनुष्य, जो प्रकृति का शासक है, बानर हनुमान और शबला गाय के सामने श्रद्धा स घुटने टेकने लगा। (मार्क्स 'दि ब्रिटिश रूल इन इडिया')

इसलिए, यद्यपि मार्क्स ने भारत मे अगरेजो की आर्थिक नीति को 'सुअरपन' कहा है (14 जून 1853 को एगेल्स के नाम लिखे पत्र मे) लेकिन साथ ही वह अगरेजो की जीत को 'इतिहास का अनभिप्रेत साधन' मानते है

> यह सच है कि हिंदुस्तान मे एक सामाजिक क्राति लाने मे इग्लैंड अपन निकृष्टतम स्वार्थों से ही प्रेरित होकर काम कर रहा था और अपने इन घटिया हितो की पूर्ति का उसका तरीका मूर्खतापूर्ण था, लेकिन सवाल यह नही है। सवाल यह है कि क्या मानवजाति एशिया की सामाजिक अवस्था मे कोई बुनियादी क्राति लाए बिना अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है ? यदि नही, तो इग्लैंड ने चाह कितने भी अपराध क्यो न किए हो, इस क्राति को सपन्न करने मे उसने इतिहास के अनभिप्रेत साधन का काम किया है।
>
> (वही)

4 भारत मे ब्रिटिश शासन की 'पुनरुज्जीवनकारी' भूमिका

मार्क्स का कहना है कि इग्लैंड को 'भारत मे दो भूमिकाए निभानी थी, एक ध्वसात्मक और दूसरी पुर्ननिर्माणात्मक, जिसके अतगत प्राचीन एशियाई समाज को नष्ट करना था और एशिया मे पश्चिमी समाज के भौतिकवादी आधार तैयार करने थे।' जहा तक, उसके ध्वसात्मक पक्ष की बात है उसे मुख्य रूप से देखा जा सकता था, तो भी पुनर्जीवन देने वाला उसका काम शुरू हो गया था।

> अगरेज ही ऐसे थे जो अपेक्षाकृत श्रेष्ठ थे और इसलिए हिंदू सभ्यता के लिए अगम्य थे। उन्होंने देशज समुदायो मे फूट डालकर, देशज उद्योगो को नष्ट कर और देशज समाज की सभी उन्नत और महान चीजो को गिरा कर इस सभ्यता का विध्वस किया। भारत मे उनके शासन के बारे मे इतिहास के पन्ने जो कुछ बताते है उनसे इस विध्वसकारी भूमिका का ही पता चलता है। उनके निर्माणात्मक कार्यों की झलक इन ध्वसावशेषो के अबार से मुश्किल से ही मिलती है। फिर भी अब यह काम शुरू हो गया है। (मार्क्स 'दि फ्यूचर रिजल्टस आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया', न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून, 8 अगस्त 1853)

मार्क्स ने पुनर्जीवन दने वाली इस भूमिका की शुरुआत किन चीजो म देखी ? इस सदभ मे उन्होने कई सकेत प्रस्तुत किए है

1 राजनीतिक एकता मुगल बादशाहो के शासनकाल म स्थापित एकता स कही अधिक दृढ और व्यापक एकता' जो निश्चित रूप से 'इलक्ट्रिक टेलीग्राफ द्वारा और मजबूत तथा स्थाई बनेगी',

2 देशी सेना' (यह बात 1857 के विद्रोह के पहले कही गई थी। विद्रोह के बाद यह सेना भग कर दी गई। ब्रिटिश सैनिको की सख्या मे जानबूझकर वृद्धि कर दी गई और उनकी सख्या समूची सेना की एक तिहाई हा गई। इसके साथ ही ब्रिटिश सैनिक नियत्रण और मजबूत हो गया),

3 'एशियाई समाज मे पहली बार समाचारपत्रो की स्वतत्रता की शुरुआत' (मार्क्स का यह कथन 1835 से 1873 के बीच की अवधि का है। 1835 म भारत मे समाचारपत्रो की स्वतत्रता की घोषणा की गई थी पर 1873 स ब्रिटिश सरकार न इस स्वतत्रता के विरुद्ध एक के बाद एक 'प्रेस ऐक्ट' बनाए और इस पतनोन्मुख साम्राज्यवादी शासन के आधुनिक युग मे तो उसने इस स्वतत्रता के विरुद्ध अपने को निरतर मजबूत किया है),

4 एशियाई समाज की एक बडी कमी अर्थात जमीन पर निजी मिलकियत' की स्थापना,

5 अगरेजो द्वारा बेमन से और बहुत छोटे पैमाने पर ही सही, भारतीयो के एक शिक्षित वग का तैयार होना, जिसे शासन का सचालन करने की आवश्यक जानकारी थी और जो यूरोपीय विज्ञान से अनुप्राणित था',

6 भाप से चलन वाले जहाजो के जरिए यूरोप के साथ नियमित और शीघ्रगामी सचार सबध की स्थापना।

इन सबस ज्यादा महत्वपूण बात थी भारत के औद्योगिक पूजीवादी शोषण का अवश्य भावी परिणाम। भारत के बाजार को विकसित करने के लिए यह जरूरी था कि 'भारत का रूपातरण एक उत्पादक दश के रूप म' किया जाए, अर्थात उसे बाहर स बनाए जान वाले तैयार सामान के बदल म निर्यात करन के लिए कच्चे माल के स्रोत क रूप म विक सित किया जाए। इसके लिए उन्ह भारत म रेलो, सडको और सिंचाई के साधनो का विकास करना जरूरी हो गया। जिस समय मार्क्स ने य बाते लिखी थी, अभी यह दौर शुरू ही हुआ था। इस नए विकास के नतीजो को ध्यान मे रखकर ही मार्क्स न भारत क

सबध म अपनी सर्वाधिक चर्चित और सुविख्यात भविष्यवाणी की थी

> मैं जानता हू कि ब्रिटिश उद्योगपति महज इसी उद्देश्य से रेलें बनवा रहे है ताकि वे कम खर्चे म अधिक कपास और दूसरे कच्चे माल अपने उद्योग धधा के लिए निकाल सकें। लेकिन एक बार यदि आप किसी देश के सचार साधनो में मशीनो का इस्तमाल शुरु कर देत है और यदि उस देश म कोयला और लोहा भी उपलब्ध है तो फिर आप उस देश को मशीनो का निर्माण करने से नही रोक सकते। यह सभव नही है कि आप किसी विशाल देश म रला का जाल बिछाए और उन औद्योगिक प्रक्रियाआ को वहा न शुरू होने दें जो रेल यातायात की तात्कालिक और दैनिक आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए आवश्यक होती ह, इसका नतीजा यह निश्चित रूप से होगा कि उद्योग की जिन शाखाओ का रेल से कोई सीधा सबध नही है उनमे भी मशीनो का इस्तेमाल होने लगे। इसलिए रेल व्यवस्था से हिंदुस्तान मे आधुनिक उद्योगधधो की शुरुआत हो गई है रेल व्यवस्था स उत्पन्न य उद्योगधधे कई पुश्तो से चले आ रह उस श्रम विभाजन को भग कर देंगे जिस पर भारत की वणव्यवस्था टिकी हुई है जो भारत की प्रगति और उसकी ताकत के रास्ते मे सबसे बडी रुकावट है। (मार्क्स 'दि फ्यूचर रिजल्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया')

क्या इसका अथ यह है कि मार्क्स ने साम्राज्यवाद का भारत मे एक प्रगतिशील शक्ति का दर्जा दिया जिसम भारतीय जनता को आजाद करने और उसे सामाजिक प्रगति के रास्ते पर ले जाने की क्षमता थी ? नही, मार्क्स की धारणा इसके एकदम विपरीत थी। जब मार्क्स न भारत मे अगरेजो के पूजीवादी शासन की 'पुनर्जीवन देने वाली' भूमिका की चर्चा की थी तो उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे यह भी बता दिया था कि वह साम्राज्यवाद की महज इस भूमिका का उल्लेख कर रहे है कि उसने नई प्रगति के लिए भौतिक परिस्थितिया तैयार कर दी हैं लेकिन यह नई प्रगति स्वय भारतीय जनता ही कर सकती थी और वह भी इस शत पर कि या तो वह स्वय मुक्ति प्राप्त करे या ब्रिटन मे औद्योगिक मजदूर वग की विजय के फलस्वरूप, जो भारतीय जनता को भी आजाद करेगी, वह साम्राज्यवादी शासन से मुक्त हो। जब तक ऐसा नही होता भारत मे साम्राज्यवाद द्वारा लाई गई सभी भौतिक उपलब्धिया भारतीय जनता की स्थितियो के लिए न तो कोई फायदा पहुचाएगी और न उनम कोई विकास होगा।

> सभव है कि इग्लैंड का सपूण पूजीपति वग, यह करने पर मजबूर हो जाए लेकिन वह आम जनता की सामाजिक स्थिति मे भौतिक दृष्टि से न तो कोई सुधार करेगा और न आम जनता को मुक्ति ही दिलाएगा। यह बात केवल उत्पादक शक्ति के विकास पर ही नही बल्कि जनता द्वारा उनके विनियोग पर

भी निभर है। यह पूजीपति वग दोनो के लिए भौतिक परिसर निर्धारित करने म विफल नही होगा, यह मानी हुई बात है। क्या पूजीपति वग न इससे ज्यादा कभी कुछ किया है ? क्या उसने अलग अलग व्यक्तियो और जनता को रक्तपात और गदगी, दुख और अपमान के बीच घसीटे बगैर कभी किसी प्रगति को प्रभावित किया है ?

अगरेज पूजीपति वग ने हिंदुस्तानियो के बीच समाज के जिन नए तत्वो के बीज बिखेरे है हिंदुस्तान की जनता उनके फल तब तक नही चख सकेगी जब तक या तो स्वय ब्रिटेन म वतमान शासक वग को हटाकर औद्योगिक मजदूर वग (सवहारा) सत्ता न सभाल ले या हिंदुस्तानी खुद इतने शक्तिशाली न हो जाए कि अगरेजो की गुलामी के जुए को एकदम उतार फेंकें।

(वही)

इसके साथ भारतीय क्राति की सभावना के सदभ मे और उपनिवेशो की गुलाम जनता की मुक्ति की आवश्यकता के सदभ मे 1882 मे एगेल्स के वक्तव्य की तुलना की जा सकती है

भारत शायद, और जिसकी वस्तुत काफी सभावना है, क्राति सपन्न करेगा और चूकि अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील सवहारा किसी औपनिवेशिक युद्ध का सचालन नही कर सकता इसलिए इसकी पूरी सभावना रखने की आवश्यकता है। बेशक इसे बेशुमार विध्वसो के बीच से गुजरना होगा लेकिन सभी क्रातियो के साथ इस तरह की बातें अविच्छिन्न रूप से जुडी हैं। क्राति की घटना अन्य स्थानो मे मसलन अल्जीरिया और मिस्र म भी हो सकती है। और हमारे लिए निश्चित रूप से यह सर्वोत्तम चीज होगी।
(काउत्सकी के नाम एगल्स का पत्र, 12 सितबर 1882)

यह ध्यान देन की बात है कि 19वी सदी के मध्य तक भारतीय स्थिति का मावस द्वारा किया गया विश्लेषण तीन मुख्य बातो पर आधारित है। इनम पहली बात है भारत में अगरेजो की विनाशकारी भूमिका, पुराने समाज को नेस्तनाबूद करना, दूसरे, पूजीवाद के मुक्त व्यापारवाले युग मे भारत म ब्रिटिश शासनकाल की पुनर्जीवन देने वाली भूमिका, भविष्य के नए समाज के लिए भौतिक परिसरो का निर्धारण किया जाना, तीसरे, राजनीतिक रूपातरण की आवश्यकता को व्यावहारिक निष्कष के रूप म मान लिया जाना जिससे एक नए समाज की स्थापना के लिए भारतीय जनता साम्राज्यवादी शासन से अपने को मुक्त कर ले।

समूचे विश्व मे पूजीवाद की ही तरह आज भारत म साम्राज्यवाद अपनी वस्तुगत प्रगति

शील या पुनर्जीवन देने वाली भूमिका को, जो पूजीवाद के स्वतत्र व्यापार वाले युग के अनुरूप था, काफी पहले निभा चुका है और अब जबरदस्त प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप मे भारत मे इसका स्थान है। यह भारतीय प्रतिक्रियावाद के अन्य रूपो को सहारा दे रहा है। इस प्रकार वह दिन अब आ गया है जब मार्क्स द्वारा निर्देशित राजनीतिक रूपातरण के कार्य को ही अपना प्रमुख कार्य बना लिया जाए।

5

भारत मे ब्रिटिश शासन का पुराना आधार

'उस हिंसा और लूट की कोई सीमा नही है जिसे भारत मे ब्रिटिश शासन के नाम से जाना जाता है।—लेनिन इन्फ्लेमेबल मैटीरियल इन वर्ल्ड पालिटिक्स' 1908

भारत के बारे मे मार्क्स को लिखे 90 वर्ष से अधिक समय गुजर चुका है। इस दौरान काफी व्यापक परिवर्तन हुए है। इसके बावजूद मार्क्स के ऐतिहासिक विश्लेषण का मुख्य साराश आज की स्थितियो पर भी लागू होता है और तबसे आज तक की घटनाओ के अनुभव ने भारत के भविष्य के बारे मे मार्क्स के दृष्टिकोण की (19वी सदी म भारत के बारे म जितने लोगो ने लिखा उनम मार्क्स का विश्लेषण अतुलनीय है) पुष्टि तो की ही है साथ ही उनके द्वारा निर्धारित राजनीतिक निष्कर्षों की पुष्टि की प्रक्रिया भी आज देखी जा सकती है।

आज हम मार्क्स के विश्लेषण को आगे बढा सकते है और उसे भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा भारतीय जनता की शक्तियो, दोनों के विकास के समूचे युग पर लागू कर सकते है।

भारत म साम्राज्यवादी शासन के इस इतिहास मे तीन मुख्य युग सामने आते हैं। पहला युग व्यापारिक पूजी का युग है जिसका प्रतिनिधित्व ईस्ट इडिया कपनी ने किया। इस व्यवस्था का साधारण स्वरूप 18वी सदी के अत तक चला। दूसरा युग औद्योगिक पूजी का युग है जिसने 19वी सदी म भारत के शोषण का एक नया आधार कायम किया। तीसरा युग महाजनी पूजी का आधुनिक युग है जिसने पुराने अवशेषो पर भारत के शोषण

की अपने ढग की खास प्रणाली विकसित की और जो सबसे पहले 19वी सदी क अतिम वर्षो म शुरू हुई और इधर हाल के वर्षो मे पूरी तरह विकसित हुई।

मावम ने भारत के सदभ मे शुरू के दो युगो, व्यापारिक पूजी और औद्योगिक पूजी के युग, का विश्लेपण किया। हमे अब इस विश्लेपण को महाजनी पूजी के आधुनिक युग और भारत मे इसकी नीति तक ले जाना है।

इसलिए हम शुरू की दो अवस्थाओ पर सरसरी तौर पर विचार कर सकते है, ये दोनो अवस्थाए वतमान प्रणाली के लिए आधार कायम करने तथा वतमान अवस्था तक के घटनाक्रमो को समझने की दृष्टि से अत्यत महत्त्वपूण ह। इसके बाद ही हम आज के युग की घटनाओ पर मुख्य रूप स अपना ध्यान केंद्रित कर सकते है।

1 भारत की लूट

आमतौर से ईस्ट इडिया कपनी का युग 1600 ई० से, जब उसे पहला चाटर (सरकारी अधिकारपत्र) मिला था, 1858 ई० तक, जब यह अतिम रूप से सम्राट के अधीन चला गया, माना जाता है। दरअसल, भारत पर इसके प्रभुत्व का मुख्य काल 18वी सदी का उत्तराध था।

हालाकि प्रारभिक तिजारती गोदामो की स्थापना 17वी शताब्दी मे ही हो गई थी (1612 मे सूरत मे, 1639 मे फोट सेंट जाज, मद्रास मे, बबई ने 1669 से और फोट विलियम, कलकत्ता ने 1696 मे कपनी को पट्टा दिया) फिर भी नई ईस्ट इडिया कपनी को, जिसने बाद मे भारत पर विजय हासिल की, पहला अधिकारपत्र 1698 ई० म मिला और वह 1708 तक अपना सगठित रूप नही बना सकी। इस प्रकार भारत पर विजय हासिल करन वाली ईस्ट इडिया कपनी उस कुलीनतत्र की एक अद्भुत रचना थी जिसने ह्विग क्राति के जरिए इग्लैंड पर अपनी जकड मजबूत कर ली थी।

18वी सदी के मध्य से इस कपनी ने भारत म अपनी प्रादेशिक सत्ता कायम करनी शुरू की। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद 18वी सदी म आतरिक सघर्षो से भारत तबाह हो गया था और वहा आतरिक विभ्रम का दौर चल रहा था (कुछ मामलो मे इसकी तुलना इग्लड मे वाम आफ राजेज (गुलाबो के युद्धो) या जमनी के 20 वर्षीय युद्ध से की जा सकती है) यह स्थिति पुरानी व्यवस्था के विघटन और विकास की सामान्य प्रक्रिया मे प्रगामी व्यापार, जहाजरानी तथा भारतीय समाज मे उत्पादन हितो के आधार पर पूजी-पति वग की सत्ता के उदय के लिए आवश्यक थी। फिर भी इस नाजुक अवधि के दौरान, अपने उत्तम तकनीकी और सैनिक उपकरणो तथा सामाजिक आर्थिक सबद्धता के साथ यूरोप के और भी अधिक विकसित पूजीपति वग ने जो धावा बोला उससे विकास की यह सामान्य प्रक्रिया विफल हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरानी व्यवस्था के

विघटन के समय भारत में आकस्मिक रूप से पूंजीपति वर्ग का जो शासन कायम हुआ, वह पुरानी व्यवस्था की खोल के अंदर तैयार हो रहे भारतीय पूंजीपति वर्ग का नहीं बल्कि विदेशी पूंजीपति वर्ग का शासन था। इसने पुराने समाज पर खुद को जबरदस्ती आरोपित कर दिया और भारत के उभरते पूंजीपति वर्ग को भ्रूणावस्था में ही नष्ट कर दिया। भारत के विकास के त्रासदी यही है जिसने बाद में विदेशी पूंजीपति वर्ग के लाभ के लिए निष्फल या विकृत सामाजिक विकास का रूप ले लिया।

18वीं सदी के भारत की खास बात विभ्रम और संक्रमण के इस नाजुक युग ने ही विदेशी हमलावरों को अपने प्रभुत्व क्षेत्र कायम करने के लिए संघर्ष और षडयंत्र का अवसर दिया। एक दूसरे के खिलाफ छिड़े इस युद्ध में, पूंजीपतियों की सर्वाधिक विकसित शक्ति के प्रतिनिधि ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग को, सफलता मिली। 18वीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल की विजय के साथ भारत में प्रादेशिक सत्ता स्थापित की गई हालांकि यह शुरू शुरू में नाममात्र के लिए पुराने रूपों के तहत थी। 19वीं सदी की शुरुआत होते होते भारत में सर्वोच्च सत्ता के रूप में इसका मजबूती से प्रसार हो गया।

1858 तक कंपनी विधिवत काम संभालती रही। फिर भी, नए विजित क्षेत्रों के शासक के रूप में ब्रिटिश राज्य की प्रभुसत्ता लार्ड नार्थ के 1773 के रेगुलेटिंग ऐक्ट और 1784 के पिट्स ऐक्ट के बाद से ही स्थापित हो चुकी थी। इन दोनों अधिनियमों ने क्रमश गवर्नर जनरल, उनकी कौंसिल एवं एक सर्वोच्च न्यायालय तथा भारतीय मामलों के विदेश मंत्री और लंदन में बोर्ड आफ कंट्रोल की स्थापना की। 1813 में कंपनी की इजारेदारी की समाप्ति के साथ ही (सिवाय चीन व्यापार के जो 1833 में समाप्त हुआ) इसकी विशिष्ट आर्थिक भूमिका भी समाप्त हो गई। इसकी दोहरी प्रणाली का आडंबर 19वीं सदी के पूर्वार्ध के दौरान तब तक चलता रहा जब तक 1857 के विद्रोह ने इसके दिवालिया और अविकसित स्वरूप का भंडाफोड़ नहीं कर दिया। इसके बाद के वर्ष में कंपनी को अंतिम रूप से भंग कर दिया गया।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभुत्व और भारत में इसके विशेष शोषण का निर्णायक दौर आधुनिक पूंजीवाद की भ्रूणावस्था अर्थात 18वीं सदी का उत्तरार्ध था। उस शोषण का चरित्र औद्योगिक पूंजी द्वारा किए गए बाद के 19वीं सदी के शोषण के चरित्र से भिन्न है और इसके लिए अलग से विश्लेषण की जरूरत है।

भारत के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार का मूल उद्देश्य ठीक वही था जो व्यापारिक पूंजी की इजारेदारी कंपनियों का होता है अर्थात समुद्रपार के किसी देश के माल और उत्पादनों के व्यापार पर एकाधिकार कायम करके मुनाफा कमाना। इसका मुख्य लक्ष्य ब्रिटिश माल के लिए बाजार तलाश करना नहीं था बल्कि उसका प्रयत्न भारत और पूर्वी द्वीप समूह (ईस्ट इंडीज) के सामान (खासतौर से मसाले और सूती तथा रेशमी सामान)

की सप्लाई पर कब्जा करना था क्योकि इग्लैंड और यूरोप मे इन चीजो की बडी माग थी और हर बार पूरब के देशो की सफल यात्रा के बाद काफी लाभ कमाया जा सकता था।

फिर भी, कपनी के सामने शुरू से ही एक समस्या थी। इन सामानो को व्यापार के जरिए भारत से प्राप्त करने के लिए यह जरूरी था कि बदले मे भारत को कुछ दिया जाए। 17वीं सदी के प्रारभ मे विकास की जिस अवस्था तक इग्लैंड पहुच सका था उसमे भारत का देने के लिए कोई भी ऐसी चीज उसके पास नही थी जिसकी उत्तमता और तकनीकी स्तर के मामले मे भारतीय सामान से तुलना की जा सके। उसके पास एक उद्योग विकसित अवस्था मे था, ऊन उद्योग, लेकिन ऊनी सामान भारत के किसी काम का न था। इसलिए भारत मे माल खरीदने के लिए अगरेजो को बहुमूल्य धातुए बाहर लानी पडती थी

> पूरब के साथ व्यापार करने मे असली यह कठिनाई थी कि यूरोप के पास वे चीजें बहुत कम थी जिसकी पूरब को जरूरत थी मसलन, दरबारो क लिए विलासिता का कुछ सामान, सीसा, ताबा, पारा और टीन मूगा और हाथी दात।
> चादी ही एक ऐसी चीज थी जो भारत ले सकता था। इसलिए माल खरीदने के लिए मुख्यतया चादी ही निकालनी पडी। (एल० सी० ए० नावेल्स 'इकोनामिक डेवलपमेंट आफ दि ओवरसीज इपायर,' पृष्ठ 73)

इसलिए शुरू के दिना मे ईस्ट इडिया कपनी को वष मे 30 000 पौंड तक मूल्य के चादी, सोना और विदेशी सिक्को के निर्यात का विशेष अधिकार दिया गया। लेकिन व्यापारिक पूजीवाद की समूची प्रणाली के लिए यह बहुत दुखद और असगत बात थी क्योकि उन दिना इन बहुमूल्य धातुओ को ही देश की एकमात्र वास्तविक सपत्ति समझा जाता था और व्यापार का अनिवाय उद्देश्य यह माना जाता था कि देश मे बाहर से बहुमूल्य धातुए आए अर्थात वास्तविक सपत्ति मे वृद्धि हो।

शुरू से ही ईस्ट इडिया कपनी के, 'साहसिक' सौदागर इस समस्या को हल करने का जोर शोर से प्रयास कर रहे थे और इस बात की कोशिश मे लगे थे कि बिना कुछ पैसा दिए या बहुत कम राशि देकर भारत का माल ले लिया जाए। शुरू मे उन्होंने जो तरीके निकाले उनमे से एक तरीका था घुमा फिराकर व्यापार करना। इसके अतगत वे खासतौर से अफ्रीका और अमरीका के अपने उपनिवेशो से लूट खसोट के जरिए जो माल इकट्ठा करते थे उससे भारत मे अपने रहने का खर्चा निकाल लेत थे क्योकि अभी भारत मे सीधे सीधे लूट खसोट करने की उनमे ताकत नही थी

> भारत के साथ इग्लड का व्यापार दरअसल यह खोज निकालने की दौड थी
> कि भारत को कौन सी चीज चाहिए और इस सिलसिले मे वेस्ट इडीज और स्पानी

सारा छल कपट फीका पड जाता है। कपनी के गुमाश्तो और उनकी साजिश का साथ देने वाले जाचनदारो (कपडे की जाच करने वाले) द्वारा जो दाम तय किया जाता है वह बाजारो या खुली दर पर बिकने वाल इसी तरह के कपडो की तुलना म 15 प्रतिशत और कही कही तो 40 प्रतिशत कम होता है। (विलियम बोल्ट्स 'कसिडरेशस आन इडियन अफेयस' 1772 पृष्ठ 191-94)

इस प्रकार 'व्यापार' के नाम पर व्यापार कम और लूट ज्या'ा थी।

लेकिन जब 1765 म कपनी को बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी या नागरिक प्रशासन मिलने के साथ ही मालगुजारी वसूलने का काम मिल गया तब व्यापार के मुनाफे क अलावा सीधी लूट का एक ऐसा रास्ता खुल गया जिसका कोई ओर छोर नही था। इसके बाद व्यापक पैमाने पर पूरी बेशर्मी के साथ जो लूटपाट शुरू हुई उसन 18वी सदी के उत्तराध म कपनी प्रशासन को इतिहास का एक अथहीन शब्द बना दिया। हाउस आफ कामन्स के 1784 के प्रस्ताव के अनुसार

ससदीय जाच के नतीजो से पता चला कि ईस्ट इडिया कपनी अपने उद्देश्यो म चाहे वे राजनीतिक हो या व्यापारिक, पूरी तरह भ्रष्ट और विकृत पाई गई, उसने हर क्षेत्र म तीव्रतर विरोध बढाते हुए लूटमार के मकसद की पूर्ति के लिए राजकीय अधिकार पत्र द्वारा प्रदत्त युद्ध और शाति के अधिकारा का दुरुपयोग किया है। शाति सबधी लगभग सभी सधियो के जरिए उन्होने जनता के विश्वास को अनेक बार आघात ही पहुचाया है। जो देश एक समय अपार समृद्ध थे उ'ह इस कपनी न असमथता, अपक्प और जनशू'यता की स्थिति मे पहुचा दिया।

इसके साथ ही अपनी भूमिका क बारे म कपनी की खुद की राय भी देखी जा सकती है जो उसने 1858 म ससद म प्रस्तुत याचिका म व्यक्त की थी (इसे जान स्टुअट मिल नामक पाखडी परोपदेशक ने लिखा था)

जिस सरकार के वे एक हिस्सा है वह अपने इरादो मे पवित्रतम ही नही है बल्कि उसने परोपकारिता के जो काम किए है वह मानव जाति के लिए अब तक किए गए कार्यों म बमिसाल है।

इस दावे के विपरीत सर जाज कानवल लीविस ने 1858 म ससद म एलान किया

मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हू कि इस धरती पर आज तक कोई भी सभ्य सरकार इतनी भ्रष्ट, इतनी विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नही पाई

> अमरीका मे गुलामो की बिक्री से प्राप्त चादी अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। (नावेल्स पूर्वोद्धृत पुस्तक, पृष्ठ 74)

लेकिन जल्दी ही, 18वी सदी के मध्य तक, जैसे जैसे, भारत पर कपनी का प्रभुत्व स्थापित होने लगा, विनिमय मे अपना पलडा भारी रखने के लिए तथा कम से कम पैसे देकर अधिक से अधिक माल हडपने के लिए कपनी द्वारा बल प्रयोग के तरीके भी अधिक से अधिक इस्तेमाल किए जाने लगे। व्यापार और लूट के बीच की विभाजन रेखा, जो शुरू से ही बहुत साफ साफ कभी नही खीची गई थी (शुरू के इन 'साहसिक' सौदागरो ने बहुधा व्यापार और डकैती के बीच कोई भेद नही रखा), अब धुधली पडने लगी थी। व्यक्तिगत उत्पादनकर्ताओ—चाहे वे बुनकर हो या किसान, की तुलना मे कपनी का सौदागर हमेशा ऐसी अनुकूल स्थिति मे होता था कि वह अपनी शर्तें उनपर थोप सके। वह अब इस लायक हो गया था कि विनिमय की समानता के सभी ढोग छोडकर ताकत के बल पर अपने पक्ष मे सौदेबाजी कर सके। 1762 तक ऐसी हालत हो गई कि बगाल के नवाब को बहुत निरीह बनकर कपनी के एजेटो की शिकायत कपनी के सामने करनी पडी

> वे रयाता (किसानो), व्यापारियो आदि से जबरदस्ती एक चौथाई कीमत देकर उनका माल और उनके उत्पादन हडप रहे है और किसानो आदि को मारपीट कर तथा उनका दमन करके वे अपनी एक रुपये की चीज 5 रुपये मे बेच रहे है। (अगरेज गवनर के नाम बगाल के नवाब का ज्ञापनपत्र, मई 1762)

इसी प्रकार एक अगरेज सौदागर विलियम बाल्टस ने 1772 मे प्रकाशित 'कसिडरेशस आन इडियन अफेयस' मे इस प्रक्रिया का निम्नलिखित वणन किया था

> अगरेज अपने बनिया और काले गुमाश्ता के जरिए मनमाने ढग से यह तय कर देते है कि माल तैयार करने वाला हर निर्माता उन्हे कितना माल देगा और बदले मे उसे कितनी कीमत मिलेगी गरीब बुनकर की मजूरी का आमतौर पर जरूरी नही समझा जाता है, जहा तक गुमाश्तों की बात है कपनी की लागत पर काम देते समय उनसे कपनी की मर्जीवाली शर्तों पर दस्तखत करा लिया जाता है। यदि कोई बुनकर वह दाम लेने से इकार कर देता था जो कपनी देती थी तो उसके दोनो हाथ बाध दिए जाते थे और कोडे लगाकर उन्हे भगा दिया जाता था आमतौर से इस तरह के अनेक बुनकरो का नाम कपनी के रजिस्टर मे गुमाश्ता के रूप मे दर्ज है उन्हे गुलामो की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान भेजा जाता है और उन्हे किसी दूसरे के लिए काम करने की इजाजत नही दी जाती है। इस विभाग मे जितना छल कपट होता था वह कल्पना से परे है, लेकिन गरीब बुनकरो के साथ जितनी ठगी की जाती है उसके सामने यह

> सारा छल कपट फीका पड जाता है। कपनी के गुमाश्तो और उनकी साजिश का साथ देने वाले जाचनदारो (कपडे की जाच करने वाले) द्वारा जो दाम तय किया जाता है वह बाजारो या खुली दर पर बिकने वाले इसी तरह क कपडो की तुलना म 15 प्रतिशत और कही कही तो 40 प्रतिशत कम होता है। (विलियम वोल्टस 'कसिडरेशस आन इडियन अफेयस' 1772 पृष्ठ 191 94)

इस प्रकार 'व्यापार' के नाम पर व्यापार कम और लूट ज्यादा थी।

लेकिन जब 1765 म कपनी को बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी या नागरिक प्रशासन मिलने के साथ ही मालगुजारी वसूलने का काम मिल गया तब व्यापार क मुनाफे क अलावा सीधी लूट का एक ऐसा रास्ता खुल गया जिसका कोई ओर छोर नही था। इसके बाद व्यापक पैमाने पर पूरी बेशर्मी के साथ जो लूटपाट शुरू हुई उसन 18वी सदी के उत्तराध म कपनी प्रशासन को इतिहास का एक अथहीन शब्द बना दिया। हाउस आफ कामस के 1784 के प्रस्ताव के अनुसार

> ससदीय जाच के नतीजा से पता चला कि ईस्ट इडिया कपनी अपन उद्देश्यो म चाहे व राजनीतिक हो या व्यापारिक, पूरी तरह भ्रष्ट और विकृत पाई गई, उसने हर क्षेत्र म तीव्रतर विरोध बढाते हुए, लूटमार के मकसद की पूर्ति के लिए राजकीय अधिकार पत्र द्वारा प्रदत्त युद्ध और शाति के अधिकारो का, दुरुपयोग किया है। शाति सबधी लगभग सभी सधियो के जरिए उन्होने जनता के विश्वास को अनेक बार आघात ही पहुचाया है। जो देश एक समय अपार समृद्ध थे उन्ह इस कपनी न असमथता, अपकष और जनशून्यता की स्थिति म पहुचा दिया।

इसके साथ ही अपनी भूमिका क बारे मे कपनी की खुद की राय भी देखी जा सकती है जो उसने 1858 म ससद म प्रस्तुत याचिका म व्यक्त की थी (इसे जान स्टुअट मिल नामक पाखडी परोपदेशक ने लिखा था)

> जिस सरकार के वे एक हिस्सा है, वह अपने इरादो म पवित्रतम ही नही है बल्कि उसने परोपकारिता के जो काम किए हैं वह मानव जाति क लिए अब तक किए गए कार्यो मे बेमिसाल है।

इस दावे के विपरीत सर जाज कानवल लीविस ने 1858 म ससद म एलान किया

> मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हू कि इस धरती पर आज तक कोई भी सभ्य सरकार इतनी भ्रष्ट इतनी विश्वासघाती और इतनी लुटेरी नही पाई

> गई जितनी 1765 से 1784 तक की ईस्ट इडिया कपनी की सरकार थी। (हाउस आफ काम्स मे सर जार्ज कार्नवल लीविस का बयान, 12 फरवरी 1858)

क्लाइव ने 1772 मे ससद मे अपने भाषण के दौरान ईस्ट इडिया कपनी के बारे मे (उसके कर्मचारियो के बारे मे ही नही जिन्होने कपनी की लूट के अलावा खुद भी निजी तौर पर लूटपाट मे हिस्सा लिया था) अपने विचार व्यक्त किए जिसमे उन्होने कहा था

> कपनी ने एक ऐसा साम्राज्य कायम कर लिया है जो फ्रास और रूस को छोडकर यूरोप के किसी भी साम्राज्य से ज्यादा विस्तृत है। उसने 40 लाख स्टर्लिंग की मालगुजारी अर्जित की है और इसीके अनुपात म व्यापार किया है। यह मानना स्वाभाविक है कि इस तरह का उद्देश्य, प्रशासन का सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट करने के योग्य है क्या उन्होने इसपर विचार किया ? नही, उन्होने ऐसा नही किया। उन्होने उसे कोई ठोस और वास्तविक समझने के बजाय दक्षिणी सागर के बुलबुले की तरह समझा। उन्होने भविष्य की कोई चिता न कर वर्तमान के अलावा किसी चीज पर ध्यान नही दिया उन्होने कहा आज जो मिल रहा है वह ले लें—कल की देखी जाएगी। उन्होने रोटियो और मछलियो के तात्कालिक बटवारे के अलावा और किसी चीज के बारे म नही सोचा। (हाउस हाफ काम्स मे क्लाइव का भाषण, 30 मार्च, 1772)

बगाल तथा अन्य विजित क्षेत्रो म नागरिक सत्ता स्थापित करने के बाद, ईस्ट इडिया कपनी ने जो व्यवस्था कायम की उसका क्या स्वरूप था ? 1765 म क्लाइव ने कपनी के डायरेक्टरो के नाम एक खत लिखकर बडे सहज और स्पष्ट रूप म बताया है कि प्रशासन अपने हाथ म लेने के लिए कपनी के पास एकमात्र योग्यता यह होनी चाहिए कि वह मुनाफे के रूप म एक निश्चित राशि इग्लैंड भेजे। क्लाइव ने हिसाब करके यह राशि बता भी दी थी। इन बातो से साफ पता चलता है कि बाद के वर्षों मे लोकोपकार का जो ढाचा खडा किया गया था वह कितना परस्पर विरोधी था

> जहा तक मैं समझता हू इस अधिग्रहण और बदवान आदि पर पहले से चल आ रहे आपके कब्जे के द्वारा आगामी वर्षों म मिलने वाला राजस्व 250 लाख सिक्का रुपया से कम नही होगा। भविष्य मे इस राशि म कम से कम 20 से 30 लाख की वृद्धि होगी। शाति के दिनो म सैनिक और असैनिक व्यय 60 लाख रुपये से अधिक नही हो सकता, नवाब के भत्ते पहले ही कम करके 42 लाख रुपये और राजा (मुगल सम्राट) के नजराने 26 लाख रुपये कर दिए गए है। इस प्रकार कपनी को 122 लाख सिक्का रुपये या 1,650 900 पौंड स्टर्लिंग का विशुद्ध लाभ बच रहेगा। (ईस्ट इडिया कपनी के डायरेक्टरो के नाम क्लाइव का पत्र 30 सितबर 1765)

क्लाइव का यह पत्र इतना सीधा सीधा और व्यापारिक किस्म का है मानो किसी व्यापारी का बहीखाता हो। जनता से कर के रूप म जितना धन वसूला जाता है उसका एक चौथाई हिस्सा सरकार के कामकाज के लिए पर्याप्त समझा जाता है, एक चौथाई हिस्सा स्थानीय राजाओ (नवाब और मुगल शासक) के दावो की पूर्ति के लिए आवश्यक होता है, राजस्व का शेष आधा हिस्सा, जो अनुमानत 15 लाख पौड है, विशुद्ध लाभ' है। बाटमले का व्यवसायी की सरकार' का सपना जितनी पूर्णता के साथ यहा साकार हुआ वह अभूतपूर्व है।

1773 म पार्लियामेंट म एक रिपोर्ट पेश की गई। इसम कपनी के प्रशासन के प्रथम छ वर्षों के दौरान बगाल के सदभ म आय और व्यय का विवरण दिया गया है जिससे पता चलता है कि ये नतीजे निर्धारित उद्देश्यो के कितने अनुरूप थे। इसमे प्राप्त कुल राजस्व 13,066,761 पौंड और कुल व्यय 9 027,609 पौड दिखाया गया है जिससे 4,037,152 पौंड के विशुद्ध लाभ का पता है। इस प्रकार बगाल मे राजस्व से हुई आय लगभग एक तिहाई भाग 'शुद्ध लाभ' के रूप मे देश से बाहर भेजा गया।

लेकिन कुछ नजराना इतना ही नही था। कपनी के अफसरो न व्यक्तिगत तौर पर बेशुमार दौलत कमाई। स्वय क्लाइव जब भारत आया था तो उसके पास कुछ भी नही था लेकिन यहा से लौटने के समय तक उसके पास तकरीबन ढाई लाख पौड तो थे ही साथ ही वह एक जागीर भी बना गया था जिससे उसे 27 000 पौंड प्रति वर्ष की आमदनी होती थी। उसने स्वय यह बताया था कि दो वर्षों म 100,000 पौड कमाए गए है।' कुल मुनाफे का काफी हद तक सही अनुमान निर्यात और आयात के आकडो से लगाया जा सकता है। गवनर वेरल्स्ट की रिपोर्ट के अनुसार 1766 से 1768 यानी तीन वर्षों के दौरान 6,311,250 पौड का निर्यात किया गया जबकि आयात केवल 624 375 पौंड का किया गया। इस प्रकार देश का शासन सभालने वाली, नई तरह की इस व्यापारिक कपनी ने जितना माल देश के अदर मगाया उसका दस गुना देश स बाहर भेजा।

इस तरह ईस्ट इडिया कपनी के सौदागरो का सबसे प्यारा सपना पूरा हो गया। यह सपना था भारत को कुछ दिए बगैर यहा की सपत्ति लूट ले जाना। क्लाइव की कौसिल का एक सदस्य एल० स्क्रैफ्टन 1763 म ही यह देखकर फूला नही समाया था कि प्लासी के युद्ध के बाद लूटपाट की प्रारभिक अवस्थाओ के बाद, तीन वर्षों तक 'एक भी औंस सोना चादी भेजे बगैर' समूचे भारत का व्यापार चलाना सभव हो गया था

इन शानदार सफलताओ मे देश को लगभग 30 लाख की धनराशि मिली है, क्योकि यदि ठीक ढग से कहा जाए तो सूबा से प्राप्त होने वाली लगभग सपूर्ण राशि अतत इग्लैंड ही पहुचती है। अपने शेयर के जरिए या कलकत्ता मे अपने खजाने म हुडियो और रसीदो के भुगतान के जरिए कपनी के हाथो म इतनी बडी

> सपत्ति आ गई कि वह एक औंस भी सोना चादी बाहर भेजे बगैर लगातार तीन वर्षों तक सपूर्ण भारत का (चीनी को छोडकर) व्यापार चलाती रही। विदेशी कपनियो के जरिए भी काफी बडी राशि बाहर भेजी गई। वे इस तरह के बाहरी देशो के साथ व्यापार सतुलन मे हमारा पलडा भारी कर देती है। (एल० स्क्रैफ्टन 'रिफ्लेकशस आन दि गवनमेट आफ इदोस्तान,' 1763)

बगाल से हुई आमदनी के जिस हिस्से को इग्लैंड भेजा गया उसके लिए जिस विकृत शब्दावली का इस्तेमाल किया गया वह बहुत सोच विचार के बाद तय की गई थी, उसे कपनी की 'लागत पूजी' कहा गया। इस प्रणाली के बारे में हाउस आफ कामन्स की प्रवर समिति ने 1783 मे कहा

> बगाल से हुई आय के एक निश्चित भाग को कई वर्षो से इग्लैंड निर्यात किए जाने वाले सामानो की खरीद से अलग रखा जाता है और इसे लागत पूजी कहा जाता है। बहुधा इस राशि की विपुलता के आधार पर ही कपनी के मुख्य कमचारियो की योग्यता का अनुमान लगाया जाता है, और भारत की इस असहायता के मुख्य कारण को सामान्यतौर पर उसकी सपदा और समृद्धि का पैमाना माना जाता है—लेकिन उस देश के साथ लाभप्रद व्यापार के कारण नही बल्कि नजराने के भुगतान के कारण ही उसका ऊपर से दिखाई देने वाला रमणीय और मोहक रूप बना रहा है—
>
> बगाल और इग्लैंड के बीच परस्पर व्यवहार (क्योकि यह व्यापार नहीं है) का लेखा जोखा करने पर राजस्व से प्राप्त आय से पूजी निवेश की प्रणाली के घातक प्रभाव बेहद स्पष्टता के साथ दिखाई देते हैं। उस दृष्टि मे देखें तो, जहा तक कपनी का सवाल है देश से जितना भी सामान बाहर भेजा जाता था वह किसी ऐसी प्रणाली पर आधारित नही था जिसके अतगत निर्यातित सामान के बदले कोई सामान भारत भी पहुचाया जाए। इन सामानो के बदले मे कोई भुगतान भी नही किया जाता था। ('हाउस आफ कामन्स की प्रवर समिति की नवी रिपोर्ट,' 1783, पृष्ठ 54–55)

बगाल के लोगो पर इस व्यवस्था का क्या असर हुआ इसकी आसानी से कल्पना की जा सकती है। लूट से होने वाली आय को दिनोदिन तेजी के साथ बढाने की माग की जाती थी जिसके परिणामस्वरूप भूमि से प्राप्त होने वाले राजस्व या मालगुजारी मे भीषण वृद्धि की गई और इसकी वसूली के रूप मे किसानो के पास से बीज के लिए रखे गए अनाज तथा उनके बैल छीन लिए जाते थे। 1764–65 मे बगाल के अतिम भारतीय शासक के शासनकाल के अतिम वर्ष मे 817,000 पौंड की मालगुजारी वसूल की गई। कपनी प्रशासन के प्रथम वर्ष 1765–66 मे बगाल से प्राप्त मालगुजारी 1,470 000 थी। 1771 72

तक यह राशि बढ़कर 2,341,000 पौंड और 1775-76 तक 2,818,000 पौंड हो गई। 1793 म जब लाड कानवालिस ने इस्तमरारी बदोवस्त लागू किया तो उन्होने यह राशि 3,400,000 पौंड निर्धारित कर दी।

उस समय के सभी प्रेक्षको का यही कहना है कि इस प्रक्रिया से कुछ ही वर्षो के अदर देश तबाह और बरबाद हो गया, इसके परिणामस्वरूप जो अकाल पडा उसमे आबादी का एक तिहाई हिस्सा खत्म हो गया और देश का एक तिहाई भाग 'केवल जगली जानवरो से भरे जगल' के रूप मे बदल गया।

1769 मे मुर्शिदाबाद म कपनी के रेजिडेंट बचेर ने कपनी को यह रिपोर्ट दी थी

> किसी भी अगरेज के लिए यह सोच पाना बडा कठिन होगा कि कपनी को दीवानी मिलने के बाद से इस देश की जनता की हालत बदतर हो गई और इस सच्चाई मे सदेह नही किया जा सकता---यह खूबसूरत देश जो अत्यत निरकुश और नानाशाह शासन व्यवस्था के अधीन भी फलता फूलता रहा था, अब विनाश के कगार पर खडा है जबकि आज प्रशासन मे अगरेजो का सचमुच काफी बडा हिस्सा है---
>
> मुझे वे दिन अच्छी तरह याद हैं जब इस देश म व्यापार पर कोई रोक-टोक नही थी और यह देश निरतर फल फूल रहा था लेकिन आज मैं इसकी वर्तमान तबाह हालत का चिता के साथ देख रहा हू। मुझे पक्का यकीन है कि इस तबाही का कारण मुख्यतया वह इजारेदारी है जो कपनी के नाम पर देश के लगभग सभी उत्पादको न बाद के वर्षों म कायम कर ली।

इस तबाह हालत के बाद 1770 म बगाल म ऐसा अकाल पडा जिसे कपनी की सरकारी रिपोर्ट म 'वर्णनातीत' कहा गया। किसी जमाने म पूर्णिया का सूबा धन धान्य से परिपूर्ण था पर उसकी एक तिहाई से अधिक आबादी इस अकाल म समाप्त हो गई है। अन्य हिस्सो मे भी बरबादी का यही आलम है। इस अकाल मे अनुमानत एक करोड व्यक्तियो की मृत्यु हुई। फिर भी अकाल के दौरान मालगुजारी न केवल कडाई और निर्दयता के साथ वसूली गई बल्कि वह और बढा दी गई। 12 फरवरी 1771 को कपनी की कलकत्ता कौंसिल ने अपनी रिपोर्ट म कहा 'इस अकाल की भयकरता और अकाल के फलस्वरूप लोगो की सख्या मे भारी कमी के बावजूद मौजूदा साल के लिए बगाल और बिहार सूबो के भुगतान मे कुछ वृद्धि की गई है।' यह किस प्रकार सपन्न किया गया इसके बारे म वारेन हेस्टिंग्ज की 1772 की कडी टिप्पणी देखी जा सकती है

> इस सूबे की कम से कम एक तिहाई आबादी के खत्म हो जाने तथा इसके

> फलस्वरूप खेती म कमी आ जाने के बावजूद 1771 म जितनी मालगुजारी वसूली गई वह 1768 से भी ज्यादा थी स्वभावतया यह आशा की जाती थी कि इस महाविपत्ति के जैसे दुष्परिणाम हुए ह उसे देखते हुए मालगुजारी भी कम हो जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ क्योंकि मालगुजारी का पुराना स्तर कडाई के साथ कायम रखा गया। (वारन हेस्टिंग्ज रिपोर्ट टु दि कोर्ट आफ डायरेक्टस 3 नवबर 1772)

पद्रह वर्षों बाद ससद सदस्य विलियम फुलटन ने अपने विवरण म कपनी प्रशासन क 20 वर्षों बाद बगाल के रूपातरण का चित्र प्रस्तुत किया

> बीते दिनो म बगाल के गाव विभिन्न जातियों के लोगो से भरे-पूरे थे और पूव मे वाणिज्य, धन सपदा तथा उद्योग के भडार थे
>
> लेकिन हमारे कुशासन न 20 वर्षों की अल्पावधि म ही इन गावो के अनक हिस्सो को बजर का रूप दे दिया। खेतो मे अब खेती नही की जाती, बडे बडे इलाको म झाडिया उगी पडी ह, किसान लुट चुके हैं, औद्योगिक निर्माताओ का दमन किया जा चुका है, बार बार अकाल पडे हैं, और फलस्वरूप जनसख्या का ह्रास हुआ है। (विलियम फुल्लटन, ससद सदस्य ए व्यू आफ दि इगलिश इटरेस्टस इन इडिया, 1787)

बक ने अपनी अलकारपूण भाषा म भर्त्सना करत हुए कहा कि 'यदि आज हम भारत छोडकर भागना पडे तो हमारे शासनकाल के शमनाक वर्षों की कहानी कहने के लिए जो चीजें बच रहेगी उनसे यही पता चलेगा कि यहा का शासन किसी भी अथ म ओराग उटाग या चीते के शासन से बेहतर नही था।'

1789 म इस कथन की गूज उस समय फिर सुनाई पडी जब तत्कालीन गवनर जनरल लाड कानवालिस ने यह रिपोट दी

> मैं दावे के साथ यह कह सकता हू कि हिंदुस्तान म कपनी शासित क्षेत्र का एक तिहाई इलाका अब जगल बन गया है जहा केवल जगली जानवर बसते है।
> (लाड कानवालिस, 18 सितबर 1789 का कायवृत्त)

2 भारत और औद्योगिक क्राति

18वी सदी के उत्तराध म भारत की लूट से जो कुछ हासिल हुआ उसी के आधार पर आधुनिक इग्लैंड का निर्माण हुआ।

18वी सदी के मध्य तक इग्लड अभी मुख्यतया कृषिप्रधान देश ही था। 1750 ई० तक म उत्तरी क्षेत्रो म कुल आबादी का एक तिहाई हिस्सा रहता था, ग्लासेस्टरशायर की आबादी लकाशायर की तुलना म ज्यादा घनी थी (ए० टायनबी, 'दि इडस्ट्रियल रेवोल्यूशन,' पृष्ठ 9-10)। उन दिना ऊनी उद्योग मुख्य उद्योग था, बेन के 'हिस्ट्री आफ दि काटन मैनुफैक्चर' (पृष्ठ 112), के अनुसार ऊनी माल का निर्यात कुल निर्यात का एक तिहाई या एक चौथाई था। अपनी पुस्तक म बेन ने लिखा है कि '1760 ई० तक सूती कपडे बनाने के लिए जो मशीनें इस्तेमाल की जाती थी, वे लगभग उतनी ही साधारण थी जितनी भारत मे इस्तेमाल की जाने वाली मशीने।' (पृष्ठ 115)

सामाजिक दृष्टि से, जहा तक वर्गों के विभाजन, सर्वहारा वर्ग की उत्पत्ति और पूजीपति वर्ग के सुदृढ शासन का सबध है, औद्योगिक पूजीवाद की दिशा म प्रगति के लिए जमीन तैयार हो चुकी थी। उसका व्यापारिक आधार तैयार हो गया था। लेकिन औद्योगिक पूजीवाद की अवस्था तक पहुचने के लिए यह आवश्यक था कि 18वी सदी के मध्य तक के इग्लैंड मे सचित पूजी की तुलना म और भी बडे पैमाने पर पूजी इकटठी हो जाए।

फिर 1757 मे पलासी का युद्ध छिड गया और भारत की सपदा अविकल रूप से इग्लैंड पहुचने लगी।

इसके तत्काल बाद, एक के बाद एक अनेक बडे आविष्कार हुए जिनस औद्योगिक क्राति की शुरुआत हुई। 1764 मे हारग्रीव्ज न कताई की मशीन (स्पिनिग-जेनी) का आविष्कार किया, 1765 मे जेम्स वाट ने भाप से चलने वाला इजन बनाया और 1969 म इस इजन को पेटेंट कराया, 1769 मे आकराइट ने वाटर फ्रेम तैयार किया और 1775 म उसने रुई की धुनाई, खिचाई और कताई की मशीनो को पेटेंट कराया, 1779 म क्रापटन का म्यूल तैयार हुआ और 1785 म काटराइट ने पावरलूम का आविष्कार किया। 1788 म लोहा गलाने की भट्टियों म भाप के इजन का इस्तेमाल किया गया।

इन वर्षों मे हुए तमाम आविष्कारो से पता चलता है कि इन मशीनो के इस्तेमाल के लिए सामाजिक परिस्थितिया तैयार हो चुकी थी। पहले के आविष्कारो का लाभप्रद ढग से इस्तेमाल नही हुआ था '1733 मे के ने अपनी फ्लाई शटल' मशीन को पटेंट कराया और 1738 म व्याट न जल शक्ति से चलन वाली रोलर स्पिनिंग मशीन को पटट कराया, लेकिन एसा लगता है कि इन आविष्कारो म से कोई भी काम म नही लाया गया।' (जी० एच० पेरीज 'दि इडस्ट्रियल हिस्ट्री आफ माडन इग्लैंड,' पृष्ठ 16)

इग्लैंड क औद्योगिक इतिहास के आधिकारिक विद्वान डा० कनिघम न अपनी पुस्तक 'ग्रोथ आफ इगलिश इडस्ट्री ऐंड कामस इन माडन टाइम्स' मे बताया है कि आविष्कारों

के इस युग का विकास महज 'आविष्कारशील प्रतिभा के कुछ खास और रहस्यपूर्ण प्रस्फुटन' पर ही नही निभर करता था बल्कि इससे सबद्ध तथ्य यह था कि इग्लैंड म उस समय तक इतनी पूजी जमा हो चुकी थी कि इन आविष्कारा का बडे पैमाने पर उपयोग करना सभव हो गया था

> आविष्कारो और नई खोजो को देखने से बहुधा ऐसा लगता है जैसे ये आकस्मिक हो, 18वी सदी मे लोग नए यत्र समूहो को मौलिक प्रतिभा के एक विशेष और रहस्यपूर्ण प्रस्फुटन का परिणाम मानते है। लेकिन यदि यह कहा जाए कि आकराइट और वाट इस मामले म भाग्यशाली थे कि उनके लिए परिस्थितिया पूरी तरह परिपक्व हो चुकी थी, तो इसका मतलब उनकी योग्यता को घटाकर देखना नही है। विलियम ली और डोडो डगले के समय से ही अनक प्रवीण लोग रहे है लेकिन उनके जमाने की परिस्थितिया उनकी सफलता के लिए प्रतिकूल थी।
>
> महगे साधनो या काफी खर्चीली प्रक्रियाओ की शुरुआत ने काफी ताकत बढा दिया है। कितना भी कर्मठ व्यक्ति क्यो न हो, जब तक उसके पास काफी पूजी न हो और उसकी पहुच के अदर व्यापक बाजार न हो, वह इस दिशा मे प्रयास नही कर सकता। 18वी सदी मे ये परिस्थितिया ज्यादा से ज्यादा सुलभ हो रही थी। बैंक आफ इग्लैंड तथा अन्य बैंका की स्थापना न पूजी के निमाण को काफी बल दिया और किसी समथ व्यक्ति के लिए अब यह काफी हद तक सभव हो गया था कि अपने व्यवसाय के प्रबध को विकसित करने म महगे साधनो का इस्तेमाल करे। ऐसा पहले कभी नही हुआ था। (डब्ल्यू० कनिघम ग्रोथ आफ इगलिश इडस्ट्री ऐंड कामस इन माडन टाइम्स,' पृष्ठ 610)

फिर भी, 1694 म बैंक आफ इग्लैंड की स्थापना मात्र से पूजी का प्रारभिक सचय नहीं हो सका। 18वी सदी के मध्य तक बैंकिग पूजी और चल पूजी कम थी। फिर 18वी सदी के उत्तराध म अचानक पूजी का सचय कैसे हाने लगा ? माक्स न बताया है कि किस प्रकार पूजीवाद के विकास की प्राथमिक अवस्थाओ तथा उसके बाद के विकास की तरह ही आधुनिक विश्व म पूजी का सचय, और सब बातो से ज्यादा उपनिवेशा की लूट, मैक्सिको और दक्षिण अमरीका की चादी, गुलामो की तिजारत और भारत की लूटपाट से हुआ है। (आग्येर का कहना है कि यदि विश्व मे मुद्रा का प्रवेश एक गाल पर ज म जात खून के धब्बे से हुआ है तो पूजी का ज म सर से पैर तक एक एक रोम छिद्र खून और गदगी से तरबतर हुआ है। पूजी', खड 1, अध्याय 31)। और 18वी सदी म इग्लैंड म अचानक बडे पैमान पर जो पूजी इकट्ठी हुई वह, अधिकाशत, भारत की लूट से इकट्ठा पूजी थी।

बैंक आफ इग्लैंड की स्थापना के बाद 60 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद भी इसके पास सबसे छोटा नोट बीस पौड का था। यह नोट इतना बडा था कि इसका प्रसारण आसानी से नही हो पाता था और लबाड स्ट्रीट से आगे तक शायद ही यह कभी गया हो। 1790 ई० मे लिखते समय बक ने बताया था कि 1750 मे जब वह इग्लैंड पहुचे थे ता विभिन्न प्रातो मे 'बारह बैंकरा की दुकाने' 'ट्वल्व बैंकर्स शाप्स' नही थी हालाकि उस समय (1790 म) ये दुकानें हर उस कस्बे म थी जहा बाजार थे। इस प्रकार बगाल से जो चादी इग्लैंड पहुची उसन मुद्रा की मात्रा ही नही बढाई बल्कि इसकी गति भी तेज की क्योकि तत्काल 1759 ई० म बैंक न दस और पद्रह पौंड के नोट जारी किए और प्राइवेट फर्मो ने देश मे कागज की बाढ ला दी। (ब्रुकएडम्स 'दि ला आफ सिविलाइजेशस ऐंड डिके', पृष्ठ 263 64)

भारत की सचित निधि की बाढ ने, देश की नकद पूजी मे उल्लेखनीय वृद्धि करके न केवल उसकी ऊर्जा को बढाया बल्कि उसकी गति को लचीला बनाया और उसम तेजी ला दी। प्लासी के युद्ध के शीघ्र ही बाद बगाल से लूटी गई सपत्ति लदन पहुचने लगी और इसके प्रभाव भी उसी समय दिखाई देने लगे। सभी आधिकारिक विद्वान इस बात पर एकमत हैं कि 19वी सदी को सभी पूववर्ती सदिया से अलग करने वाली महान घटना, अर्थात 'औद्योगिक क्राति', की शुरुआत 1760 ई० से हुई। बेस के अनुसार 1760 से पहले लकाशायर मे सूती कपडा बनाने के लिए जो मशीन इस्तेमाल की जाती थी वह लगभग उतनी ही साधारण थी जितनी भारत मे इस्तेमाल की जान वाली मशीन, जबकि 1750 के आसपास के वर्षो म ईंधन के काम के लिए जगलो का नष्ट कर दिए जाने से इग्लैंड का लोहा उद्योग पूरी तरह पतन की स्थिति मे पहुच गया था। उस समय देश मे इस्तेमाल होने वाला पाच म से चार हिस्सा कोयला स्वीडन से आता था।

प्लासी की लडाई 1757 म हुई और इसके बाद जितनी तेजी से परिवर्तन हुए उसकी कोई मिसाल नही है। 1760 मे फ्लाइग शटल का निर्माण हुआ और प्रगलन के काम म लकडी की जगह पर कोयले का इस्तेमाल होन लगा। 1764 म हारग्रीव्ज से स्पिनिग जेनी का आविष्कार किया, 1776 म क्राम्पटन ने म्यूल बनाया, 1785 मे कार्टराइट ने पावरलूम का पटेंट कराया और इन सबम महत्वपूर्ण काम 1768 मे जेम्स वाट द्वारा भाप से चलन वाला इजन (स्टीम इजन) का आविष्कार था। ऊर्जा के केंद्रीकरण के लिए जितनी भी खोजें हुई थी उनम यह सबसे पक्की खोज थी। लेकिन हालाकि इन मशीनो न समय की गति का तेजी प्रदान करने के माध्यम का काम किया लेकिन ये वाछित तेजी नहीं प्रदान कर सकी। आविष्कार अपन आप मे निष्क्रिय

> किस्म के होते है। इनम म अनेक बहुत महत्वपूण आविष्कार सचालन के लिए आवश्यक पर्याप्त शक्ति एकत्र होने के इतजार म शताब्दियो तक बेकार पडे रहे। यह शक्ति हमेशा मुद्रा के रूप म और ऐसी मुद्रा के रूप म होनी चाहिए जो कही जमा न हो बल्कि गति मे हो। भारत की सचित निधि के इस देश मे आने से पहले और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न ऋण के विस्तार से पहल किसी ऐसी शक्ति का अस्तित्व नही था जिसे पर्याप्त कहा जा सके और यदि जेम्स वाट अपन समय से 50 वष पहले हुए होते तो अपने आविष्कार के साथ न जाने कब खत्म हो गए होते। सभवत जबसे दुनिया की शुरुआत हुई है किसी पूजी निवेश म इतना जबरदस्त मुनाफा कभी नही हुआ जितना मुनाफा भारत की लूट म इग्लैंड को हुआ क्योकि लगभग 50 वर्षो तक ग्रेट ब्रिटेन को किसी भी प्रतियोगी का सामना नही करना पडा। 1694 से प्लासी के युद्ध (1757) तक विकास की रफ्तार अपेक्षाकृत धीमी रही। 1760 और 1815 के बीच विकास की रफ्तार काफी तेज और आश्चयजनक थी। (वही, पष्ठ 259-60)

इस प्रकार भारत की लूट सचय का गुप्त स्रोत थी जिसने इग्लैंड म औद्योगिक क्राति को सभव बनाने मे अत्यत महत्वपूण भूमिका अदा की।

लेकिन जब एक बार भारत की लूट की मदद से इग्लैड मे औद्योगिक क्राति पूरी हो गई तो कारखाना मे बने हुए ढेरो माल के लिए उपयुक्त बाजार ढूढने का नया काम शुरू हुआ। इससे आर्थिक प्रणाली मे एक क्राति जरूरी हो गई जो व्यापारिक पूजीवाद के सिद्धातो से लेकर स्वतत्र व्यापार वाले पूजीवाद के सिद्धातो तक सीमित थी। और इसने बदले मे औपनिवेशिक व्यवस्था की पूरी पद्धति म तब्दीली ला दी।

नई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यह जरूरी था कि भारत मे पुरानी इजारेदारी की जगह एक स्वतत्र बाजार का निर्माण किया जाए। यह जरूरी हो गया कि भारत को सूती कपडे का निर्यात करने वाले देश की स्थिति से हटाकर सूती वस्त्रा के आयात करने वाल देश के रूप मे बदल दिया जाए। इसका अथ यह हुआ कि भारत की अथव्यवस्था मे एक क्राति हो। साथ ही इसका मतलब यह भी था कि ईस्ट इडिया कपनी की पुरानी व्यवस्था को पूरी तरह से बदल दिया जाए। भारत के शोषण के तरीको म रूपातरण की जरूरत महसूस की गई और इस रूपातरण का स्वरूप ऐसा माना गया जिसकी रचना कपनी के इजारेदारा के निहित स्वार्थो के जबरदस्त प्रतिरोध के बावजूद की गई।

इस परिवतन के लिए रास्ता तैयार करने की दिशा म शुरू के कदम 18वीं सदी के अतिम पद्रह वर्षो मे पहले ही उठा लिए गए थे।

यह बात बहुत स्पष्ट थी कि कारगर ढग से शोषण जारी रखने के लिए ईस्ट इडिया कपनी और उसके कमचारियो द्वारा लूटपाट का जो अराजक और विनाशकारी तरीका अपनाया जाता था वह परिवतन किए बगैर जारी नही रह सकता था। कपनी की बेहूदा और मूखतापूण लालची प्रवृत्ति शोषण के आधार को नष्ट कर रही थी। यह ठीक उसी प्रकार था जिस प्रकार इग्लैंड म कुछ वर्षों बाद लकाशायर के निर्माताओ की असीम लालची प्रवृत्ति ने जनता की नौ पीढियो को एक ही बार म नष्ट कर दिया। जिस प्रकार भविष्य म होने वाले शोषण के हित म पूजीपति वग की ओर से राज्य द्वारा की गई काय-वाही के जरिए निर्माताओ की लालची प्रवृत्ति पर रोक लगाई गई, उसी प्रकार 18वी सदी के अतिम 25 वर्षों म राज्य के केंद्रीय अवयवो से अनुरोध किया गया कि वे भारत मे कपनी के काय सचालन को व्यवस्थित करें। यहा भी इस आक्रमण का सचालन प्रति-द्वद्वी हितो ने ही किया था। ईस्ट इडिया कपनी के एकाधिकार के खिलाफ अलग अलग जितने भी हित थे वे सब एकजुट हो गए थे और उन्होने कपनी के खिलाफ धावा बोल दिया था। इस आक्रमण के फलस्वरूप इस अवधि म ईस्ट इडिया कपनी के कुप्रशासन के विरोध म व्यापक स्तर पर जो साहित्य आया वह सपूणता, प्रामाणिकता और विवेचन की दष्टि से किसी भी युग म साम्राज्यवाद का भडाफोड करने वाले साहित्य म बेमिसाल था।

अगरेज निर्माता पहले ही 18वी सदी के प्रारभ मे ईस्ट इडिया कपनी के खिलाफ अभियान छेड चुके थे क्योकि उन्ह भारत म बने अच्छे किस्म के कपडो के आयात के कारण बाजार म एक खतरनाक ढग की प्रतियोगिता का सामना करना पड रहा था। 1720 ई० तक उन्हे एक काम म सफलता मिल गई, उन्होने भारतीय सिल्क के कपडा और सूती कपडो के इग्लैंड आने पर पूरी रोक लगवा दी और सूती कपडे से बने प्रत्येक भारतीय सामान पर भारी सीमा शुल्क लगवा दी। कपनी द्वारा भारतीय माल का व्यापार एक गोदाम व्यापार की तरह था। यह माल इग्लड के बदरगाहो से यूरोप को भेजा जाता था।

लेकिन 18वी सदी के अतिम 25 वर्षों से जो नया आक्रमण शुरू हुआ वह भारत म ईस्ट इडिया कपनी के समूचे भ्रष्ट एकाधिकारी प्रशासन के विरुद्ध था। इस प्रहार को न केवल इग्लैंड के उदीयमान औद्योगिक निर्माताओ का समथन प्राप्त था बल्कि वे शक्तिशाली व्यापारी भी उसका समथन कर रहे थे जिनका ईस्ट इडिया कपनी की इजारेदारी म कोई हिस्सा नही था। यह प्रहार नए विकासशील औद्योगिक पूजीवाद के आने की पूव सूचना थी। उसकी माग थी कि भारत के बाजार मे सबको अपना माल भेजने की छूट होनी चाहिए और व्यक्तिगत स्तर पर भ्रष्टाचार और लूट मार के कारण वहा के बाजार का शोषण करने के रास्ते म उत्पन्न रुकावटें दूर की जानी चाहिए।

यह बात काफी महत्वपूण है कि कपनी के खिलाफ इस आक्रमण की शुरआत 1776 म ऐडम स्मिथ ने की थी जो स्वतत्र व्यापार के क्लासिकी अथशास्त्र के जनक और नए युग के अग्रदूत माने जाते हैं। 1776 म प्रकाशित उनकी पुस्तक 'वल्थ आफ नेशन्स' का राज-

नेताओं की नई पीढ़ी ने जिसका नेतृत्व पिट ने किया था, अपना धर्मग्रंथ बना लिया था। इस पुस्तक में ऐडम स्मिथ ने ईस्ट इंडिया कंपनी के समूचे आधार पर निर्ममता से आक्रमण किया था और पुस्तक का एक खंड (सेक्शन I) इसके लिए दिया। अपनी पक्की शास्त्रीय शैली में उन्होंने लिखा

> ऐसी खास किस्म की कंपनियां हर मामले में गड़बड़ी पैदा करती हैं। जिन देशों में यह काम कर रही होती हैं उनके लिए ये हमेशा ही कमोबेश असुविधा पैदा करती है और जिन देशों को इन कंपनियों के शासन के अंतर्गत रहने का दुर्भाग्य मिला है उनका तो विनाश ही हो जाता है।
>
> ईस्ट इंडिया कंपनी को यदि प्रभुसत्ता संपन्न मानें तो उसका हित इसी में है कि उनके भारतीय प्रदेश में यूरोप से जो सामान जाते हैं वे यथासंभव सस्ती दर पर बेचे जाएं और वहां से जो भारतीय सामान मंगाए जाएं उनकी कीमत काफी अच्छी रखी जाए या यथासंभव महंगी दर पर बेचे जाएं। लेकिन इसकी उलटी स्थिति का अर्थ व्यापारी के रूप में उनके हितों की रक्षा करना होगा। जहां तक प्रभुसत्ता संपन्न होने की बात है उनके हित ठीक वही हैं जो उस देश के हैं जिस पर उनका शासन है। लेकिन यदि व्यापारी के हित के रूप में देखें तो यह हित पहली स्थिति के एकदम विपरीत मालूम होंगे।
>
> यह एक खास तरह की सरकार है जिसमें प्रशासन का प्रत्येक सदस्य देश से बाहर जाना चाहता है और फलस्वरूप जितनी जल्दी संभव हो पाता है वह सरकार के साथ अपना हिसाब किताब बराबर कर लेता है। वह जैसे ही अपनी सारी संपत्ति के साथ देश छोड़कर जाता है, उसका उस देश के साथ सारा लगाव खत्म हो जाता है भले ही वह देश भूकंप से क्यों न तहस नहस हो रहा हो। (ऐडम स्मिथ 'वैल्थ आफ नेशंस', चौथा भाग, अध्याय 7)
>
> प्रायः कोई धनी व्यक्ति, और कभी कभी साधारण व्यक्ति भी, महज इसलिए भारत के स्टाक में हजार पौंड का शेयर खरीदना चाहता है ताकि पोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स में वोट देने का अधिकार उसे मिल जाए और इसी के आधार पर वह अपने को प्रभावशाली बना ले। हालांकि इससे वह भारत की लूट में कोई हिस्सा नहीं लेता लेकिन लुटेरों की नियुक्ति में उसकी हिस्सेदारी हो जाती है बशर्ते वह अपने इस प्रभाव का उपभोग कुछ वर्षों तक और अपने कुछ मित्रों के लिए कर सके। ऐसा करने में वह लाभांश की परवाह शायद ही कभी करता हो या शायद ही कभी यह सोचता हो कि जिस स्टाक पर उसका वोट आधारित है उसका मूल्य क्या है। महान साम्राज्य की समृद्धि के बारे में, जिसके प्रशासन में वोट का अधिकार मिलने से उसकी हिस्सेदारी पैदा होती

> है, वह शायद ही कभी सोचता हो। आज तक कोई एमी प्रभुसत्ता देखने मे नही आई अथवा देखने मे नही आएगी जो अपनी जनता के सुख दु ख के प्रति इतनी ज्यादा उदासीन हो, अपने शासित प्रदेश के विकास या बरबादी के प्रति इतनी लापरवाह, अपने प्रशासन के गौरव या अपमान के प्रति इतनी निश्चित हो। (वही, पाचवा भाग, अध्याय 1)

यहा हम ईस्ट इडिया कपनी के व्यापारिक आधार के प्रति उभरते हुए निर्माताओ के विरोध की आवाज तथा पुरानी प्रणाली के ऊपर औद्योगिक पूजीवाद की विजय के पूर्वाभास से परिचित होते है।

1782-83 मे ईस्ट इडिया कपनी के पुराने आधार का विरोध और उस आधार मे परिवतन की माग का जायजा हमे हाउस आफ कामस की प्रवर समिति की बैठको की कायवाही से मिलता है। 1783 मे फाक्स ने इडिया बिल पेश किया जिसका उद्देश्य डायरेक्टरो और प्रोपराइटरो के कोटो को समाप्त करके ससद द्वारा उनकी जगह पर कुछ कमिश्नरो की नियुक्ति करना था। कपनी ने इस बिल का विरोध किया और यह बिल पारित नही हो सका। नतीजा यह हुआ कि फोक्स की सरकार को इस्तीफा देना पडा और उसकी जगह पर पिट ने अपनी सरकार बनाई जो अगल बीस वर्षों तक सत्तारूढ रही। यह इतिहास का एक नाजुक मोड था और इस स्थल पर पता चला कि भारत इग्लैंड की राजनीति का महत्वपूण बिंदु बन गया है। 1784 मे पिट ने इडिया एक्ट पश किया जिसमे हालाकि जटिल दाहरी व्यवस्था का विकल्प पश करके फाक्स के प्रस्ताव के साथ समझौता किया गया था, फिर भी उसम राज्य द्वारा सीधे नियत्रण के उसी बुनियादी सिद्धात को स्थापित किया गया था। यह बिल हेस्टिग्ज तथा कपनी के विरोध के बावजूद पारित हो गया। 1786 मे लाड कानवालिस को गवनर जनरल बनाकर भारत भेजा गया ताकि वह प्रशासन म जबरदस्त परिवतनो को लागू कर सकें। 1778 मे वारेन हेस्टिग्ज पर, जो 1772 से 1785 तक गवनर और गवनर जनरल के रूप मे काम कर चुके थे, भ्रष्टाचार और कुप्रशासन का आरोप लगाकर मुकदमा चलाया गया था। यह मुकदमा वस्तुत एक सरकारी कदम था जिसको सीधे तौर पर पिट के फैसले से ऐसा करने का अधिकार मिला था और इस काम के लिए पिट को फाक्स, बक और शेरीडान जैसे प्रमुख सासदो का समथन प्राप्त था। यह मुकदमा व्यक्ति के खिलाफ इतना नही, जितना कि एक व्यवस्था के खिलाफ था।

इस आक्रमण के तेज होने के काम मे फ्रास की क्राति जैसी महत्वपूण विश्वव्यापी समस्याओ से बाधा पहुची। इसने पिट के प्रशासन के सुधारवादी दौर को समाप्त कर दिया और इग्लड के पूजीपति वग को विश्व की प्रतिक्रातिकारी शक्तियो के नेता के रूप म दुनिया के सामने पेश कर दिया। बक ने भारत म अत्याचार और कुप्रशासन की जबरदस्त भत्सना का रास्ता छोड दिया हालाकि अपनी इन्ही भत्सनाओ के कारण वे उदारवादी तत्वो की

प्रशसा हासिल कर सके थे। अब वे और भी तीव्रता के साथ फ्रास मे मुक्ति के लिए लड रही जनता की भत्सना करने लगे और ऐसा करके उन्ह यूरोप के सम्राटो और महाराजाओ की प्रशसा प्राप्त हुई। यह एक दिलचस्प बात है कि भारत म गवनर की कौंसिल के सदस्य फिलिप फ्रासिस न जिन्होंने कौसिल म हेस्टिग्ज के खिलाफ लडाई छेडी थी और हेस्टिग्ज पर मुकदमा चलाने के लिए बक को आवश्यक सामग्री प्रदान की थी, फ्रास की क्राति के सदभ म प्रतिक्रियावादी भूमिका निभाने के लिए बक का एक बहुत ही कठोर पत्र लिखा। हेस्टिग्ज पर मुकदमा सात वर्षों तक चला और 1795 म हेस्टिग्ज का सभी आरोपो से बरी करते हुए यह मुकदमा समाप्त हो गया। पिट स्वतत्र व्यापार की दिशा म अपनी प्रारभिक योजनाओ से हटकर फ्रास के युद्ध को सुरक्षा देन की प्रणाली म विश्वास करने लगे। 1813 म फ्रास के युद्ध के समाप्त होने और औद्योगिक पूजी के मजबूती से स्थापित होन के साथ ही भारत का मसला नए सिरे से उठाया गया और नई अवस्था की दिशा मे निर्णायक कदम उठाया गया।

लाड कानवालिस ने गवनर जनरल की हैसियत से प्रशासन मे नए सिरे से सुधार किए ताकि अलग अलग व्यक्तियो द्वारा मनमानी लूट और भ्रष्टाचार के तरीके की जगह पर अच्छे वेतन पान वाले सरकारी अफसरो की नियुक्ति की जा सके। उन्होंने मनमाने ढग से लगातार बढती जा रही मालगुजारी को समाप्त करने की कोशिश की ताकि देश को वीरान बनने से बचाया जा सके और शोषण के आधार को समाप्त किया जा सके। इस कोशिश मे उन्होंने बगाल के लिए इस्तमरारी बदोबस्त लागू किया जिससे ब्रिटिश राज के सामाजिक आधार के रूप म जमीदारो के नए वग का जन्म हुआ और इस वग से सरकार को स्थाई तौर पर एक निश्चित रकम मिलने लगी।

इन सारे उपायो का उद्देश्य सुधार करना था। दरअसल इन उपायो के जरिए समूचे पूजीपति वग के हित मे भारत का अधिक वैज्ञानिक ढग से शोषण करने के लिए आधार तैयार किया गया था। इन परिवतनो न औद्योगिक पूजी द्वारा शोषण के नए चरण का माग प्रशस्त किया ताकि भारत की समूची अथव्यवस्था के शोषण को जो पहले बहुत अव्यवस्थित ढग से लूटपाट के जरिए किया जाता था अब एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप दिया जा सके।

3 उद्योग के क्षेत्र मे तबाही

1813 मे उद्योगपतियो तथा अन्य व्यापारियो का हमला अतत सफल हो गया और भारत के व्यापार पर ईस्ट इडिया कपनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। इसलिए कहा जा सकता है कि भारत म औद्योगिक पूजीवादी शोषण का नया दौर 1813 से शुरू हो गया।

1813 से पहले भारत के साथ अपेक्षाकृत व्यापार होता 1883 मे

प्रकाशित अपनी पुस्तक 'एक्सपेंशन आफ इग्लैंड' मे, 19वी सदी मे हुए रूपातरण को रेखाकित किया है

> मक कुलाच ने ऐडम स्मिथ के अपने सस्करण मे भारत के बारे म टिप्पणी करते हुए बताया है कि 1811 के आसपास, अर्थात कपनी के एकाधिकार के समय भारत और इग्लैंड के बीच व्यापार नगण्य था जो इग्लड और जर्सी या आइल आफ मैन के बीच हो रहे व्यापार से थोडा ही अधिक महत्वपूण था
>
> लेकिन आज जर्सी या आइल आफ मैन के बजाय भारत के साथ अपने व्यापार की तुलना मे हम अमरीका या फ्रास के साथ अपने व्यापार से करते ह— इग्लैंड का माल आयात करने मे अमरीका के बाद अब भारत का स्थान है और फ्राम तथा अय देशो का स्थान भारत के बाद आता है। (जे० आर० सीले 'एक्सपेंशन आफ इग्लैंड,' 1883, पृ० 299)

इसी प्रकार 1812 मे कपनी की आधिकारिक रिपोट मे स्पष्ट शब्दा मे बताया गया है कि उन दिनो भारत का महत्व इग्लैंड के माल की मडी के रूप म नही बल्कि लूटपाट या कर नजराने आदि के साधन के रूप मे था

> इस देश के लिए उस विशाल साम्राज्य के महत्व का आकलन इस बात से नही किया जाना चाहिए कि इस देश के निर्माता भारतवासियो द्वारा अपने माल के उपभोग से कितना फायदा उठाते है बल्कि इस बात से किया जाना चाहिए कि उससे राज्य की धन सपत्ति मे प्रतिवष कितनी बडी वृद्धि होती है। (1812 के लिए ईस्ट इडिया कपनी की रिपोट जिस प्रसाद न अपनी पुस्तक 'सम एसपैक्ट्स आफ इडियाज फारेन ट्रेड' म पृष्ठ 49 पर उद्धत किया है।)

सरकारी आदेशपत्र के नवीकरण और एकाधिकार की समाप्ति से पूव 1813 की ससदीय जाच की कायवाही से पता चलता है कि उस समय की चिंतन धारा किस तरह बदल गई थी और उसकी दिशा ब्रिटेन के नए उभरते हुए मशीन उद्योग के लिए बाजार के रूप म भारत का विकास करन पर केंद्रित थी। यह भी ध्यान देन याग्य है कि किस प्रकार पुरातन विचारधारा के वारेन हस्टिग्ज जैसे प्रतिनिधियो ने इस सभावना मे इकार किया था कि भारत का एक मडी के रूप मे विकास हो सकता है।

जिस समय यह जाच काय सपन्न किया गया, ब्रिटेन जाने वाले भारतीय सूती वस्त्र पर 78 प्रतिशत शुल्क लगता था। यदि य निषेधात्मक शुल्क नही होते तो अपन प्रारभिक दौर म ब्रिटिश कपडा उद्योग का विकास नहीं हो पाता।

> प्रमाणो मे यह बताया गया था (1813 मे) कि इस अवधि तक भारत मे बने सूती और रेशमी कपडो को इग्लैड मे बने कपडो की तुलना म 50 प्रतिशत से 60 प्रतिशत कम कीमत पर ब्रिटिश बाजार मे बचकर मुनाफा कमाया जा सकता था। फलस्वरूप यह जरूरी हो गया था कि इग्लैड में बने कपडो का उनके मूल्य पर 70 प्रतिशत और 80 प्रतिशत शुल्क या सुनिश्चित निषेध लगाकर बचाया जाए। यदि ऐसा नही होता, यदि ऐसे निषेधात्मक शुल्को और सरकारी आदेशो का अस्तित्व नही होता तो पैस्ले और मानचेस्टर के कारखाने शुरु में ही ठप हो जाते और भाप की शक्ति से भी शायद ही दुबारा चालू हो पाते। इनका निर्माण भारतीय निर्माताओ के बलिदान से हुआ।
> (एच० एच० विल्सन हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया,' खड 1, पृष्ठ 385)

ब्रिटिश सूती कपडा उद्योग को विकसित करने के लिए भारतीय निर्माताओ पर लगाए गए सीमा शुल्क में भेदभाव का सिलसिला 19वी सदी के पूर्वार्ध में शुरु हुआ। 1840 की ससदीय जाच में यह बताया गया कि भारत जाने वाले ब्रिटिश सूती और रेशमी सामानो पर जहा 3 5 प्रतिशत और ऊनी सामानो पर 2 प्रतिशत कर देना पडता है वही ब्रिटेन आने वाले सूती कपडा पर 10 प्रतिशत, रेशमी कपडा पर 20 प्रतिशत और ऊनी कपडो पर 30 प्रतिशत कर लगाया जाता है।

इस प्रकार भारतीय मडी में ब्रिटिश निर्माताओ का प्रभुत्व कायम करने और भारतीय कारखाना उद्योग को नष्ट करने में मशीन उद्योग की तकनीकी श्रेष्ठता का ही हाथ नही था बल्कि एकतरफा स्वतत्र व्यापार (ब्रिटिश सामानो का भारत में एकदम नि शुल्क प्रवेश या लगभग नि शुल्क प्रवेश, लेकिन ब्रिटन के बाजार में भारतीय माल जाने पर सीमा शुल्क लगाया जाना तथा नौ सचालन कानूना यानी नेवीगेशन ऐक्टस के जरिए यूरोपीय देशो या अन्य देशो के साथ भारत के व्यापार पर रोक लगाना) के लिए सरकार की ओर से दी गई प्रत्यक्ष सहायता का भी हाथ था।

19वी सदी के पूर्वार्ध मे यह प्रक्रिया निर्णायक रूप से जारी रही हालाकि इसके प्रभाव समूची 19वी शताब्दी यहा तक कि 20वी शताब्दी मे भी देखे गए। ब्रिटिश निर्माताओ की इस प्रगति के साथ साथ निर्माताओ की अवनति चलती रही।

1814 और 1835 के बीच इग्लैड मे बने सूती कपडे की भारत मे खपत 10 लाख गज स कुछ कम से बढ्कर 5 करोड 10 लाख गज से भी अधिक हो गई। इसी अवधि म ब्रिटेन क बाजार मे जाने वाले भारतीय सूती कपडे के कटपीसो की सख्या साढे बारह लाख से घट कर 3 लाख 6 हजार हो गई और 1844 तक तो यह सख्या महज 63,000 ही रह गई।

मूल्या म व्याप्त विषमता भी कम चौकान वाली नही है। 1815 और 1832 क बीच

निर्यात किए गए भारतीय सूती कपडे का मूल्य 13 लाख पौड से घटकर 1 लाख पौड हो गया अर्थात सत्रह वर्षो मे व्यापार म 12/13 का नुकसान हुआ। इसी अवधि मे ब्रिटन से भारत म आए सूती कपडे का मूल्य 26,000 पाड से बढकर 400,000 पौड हो गया अर्थात 17 गुनी वृद्धि हुई। 1850 तक स्थिति ऐसी हो गई कि भारत जो कई सौ वर्षों से समूची दुनिया को अपना कपडा भेजता आ रहा था वह निर्यात किए जाने वाली कुल ब्रिटिश सूती कपडे का एक चौथाई हिस्सा अपने यहा मगाने लगा।

इग्लैड के मशीन से बने कपडो ने जहा भारत के बुनकरो को बरबाद किया वही दूसरी तरफ मशीन के बने सूत ने भारत के सूत कातने वालो को उजाड दिया। 1818 से 1836 के बीच भारत म इग्लैड के बने सूत का निर्यात 5200 गुना हो गया।

यही हालत रेशमी कपडो, ऊनी कपडो, लोहे बतन, काच और कागज के मामले म भी देखी जा सकती है।

भारत के उद्योग धधो के इस व्यापक विनाश का देश की अथव्यवस्था पर क्या प्रभाव पडा होगा, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती ह। इग्लैड मे हाथ के करघे से काम करने वाले पुराने बुनकरो की तबाही के साथ साथ नए मशीन उद्योग का विकास भी हुआ था। लेकिन भारत मे, लाखो शिल्पियो और कारीगरो की तबाही के साथ विकल्प के रूप मे किसी नए उद्योग का विकास नही हुआ। पुराने और घनी आबादीवाले औद्योगिक नगर ढाका, मुर्शिदाबाद (जिसे क्लाइव ने 1757 म 'लदन जितना ही विस्तृत, उतनी ही अधिक आबादीवाला और उतना ही समृद्ध' कहा था), सूरत आदि 'ब्रिटेन की कृपा' से देखते ही दखते ऐसे उजाड हो गए कि भीषणतम युद्ध होने पर या विदेशी विजेताओ के शिकार हान पर भी उनकी वैसी दशा नही होती। सर चाल्स ट्रेवेलन ने 1840 मे ससदीय जाच का बताया कि ढाका शहर की आबादी 150 000 से घटकर 30 000 या 40 000 हो गई और एक जमाने मे भारत का मैनचेस्टर समझा जाने वाला यह शहर अब तेजी से जगल बनता जा रहा है और मलेरिया का शिकार हो रहा है। अत्यत समृद्ध नगर से घटकर इसकी स्थिति अब अत्यत गरीब और छोटे नगर की हो गई है। निस्सन्देह उसकी भयकर दुगति हुई है।' ब्रिटिश साम्राज्य से प्रारभिक इतिहासकार माटगोमरी मार्टिन ने इसी जाच के दौरान बताया कि सूरत, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा अन्य स्थानो की बरबादी, जहा दशी निर्माता उत्पादन मे लगे थे, अत्यत दुखद यथाथ है जिसपर विचार किया जाना चाहिए। मैं नही समझता कि व्यापार का कोई उचित तौर तरीका है। मेरे विचार म यह कमजोर के विरुद्ध मजबूत की शक्ति का प्रयोग है।' 1890 में सर हनरी काटन न लिखा 'आज से सौ से भी कम वष पहले ढाका का कुल व्यापार अनुमानत 1 करोड रुपय का था और यहा की आबादी 200 000 थी। 1787 मे 30 लाख रुपये मूल्य की ढाका की मलमल इग्लैड भेजी गयी 1817 म यह बिलकुल बद हो गया। अगम्य और औद्योगिक आबादी को रोजगार दन वाली कताई और बुनाई की कला अब लुप्त हो गई। जो परिवार पहले

काफी समृद्ध थे उन्हें अब मजबूर होकर शहरो को छोडना पडा है और गावो म जाकर अपनी जीविका का कोई प्रबध करना पडा है पतन की यह स्थिति ढाका मे ही नही बल्कि सभी जिलो मे है। ऐसा कोई भी वष नही बीतता जब कमिश्नर और जिला के अधिकारी इस बात की ओर सरकार का ध्यान न आकर्षित करते हो कि देश के सभी हिस्सा म उद्योगधधो से रोजी रोटी चलाने वाला वग कगाल होता जा रहा है।'

1911 की जनगणना रिपोट से पता चलता है कि यह प्रक्रिया उस समय भी जारी थी। उदाहरण के लिए 1911 की रिपोट से पता चलता है कि सूती वस्त्र म लग कम चारियो की सख्या मे पूववर्ती 10 वर्षो मे 6 प्रतिशत की कमी आई है, यह कमी उस समय तक सूती वस्त्र निर्माण के क्रमश विस्तार के बावजूद आई है। इस कमी का श्रेय 'हाथ से सूत की बुनाई का काम लगभग पूरी तरह समाप्त हो जाने' को है।

1911 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार खाल, चमडा और धातु के काम मे लग लोगो की सख्या मे 6 प्रतिशत की कमी आई हालाकि इसके साथ धातु व्यापारियो की सख्या म 6 गुनी वृद्धि हुई। इसका कारण साफतौर पर बताया गया कि

> धातुकर्मिया की सख्या मे कमी और इसके साथ ही धातु व्यापारियो की सख्या मे वद्धि का कारण मुख्यत यह था कि देश मे बने पीतल और ताबा के बतना की जगह पर यूरोप से आयात किए गए कलईदार बतन और अल्यूमिनियम के सामान का इस्तेमाल होने लगा। ('सेसस आफ इडिया रिपाट,' 1911)

लाहा और इस्पात उद्याग के क्षेत्र म भी यही स्थिति देखने को मिली

> जिन जिन क्षेत्रो म रेलें पहुच सकती थी वहा वहा सस्ता विदेशी लोहा और इस्पात पहुच गया जिससे लोहा गलाने वाला देशी उद्योग व्यवहारत समाप्त ही हो गया। फिर भी इस प्रायद्वीप के दूरवर्ती इलाको मे इसका आज भी चलन है। ('इपीरियल गजेटियर आफ इडिया,' 1907, खड 3 पृष्ठ 145)

> भारत मे इस्पात का इस्तेमाल हथियार बनाने, सजावट के सामान तैयार करने और औजार बनाने म किया जाता था तथा इससे अत्यत उच्च कोटि के सामान तैयार किए जाते थे। पुराने हथियारो का कोई मुकाबला नही है और कहा जाता है कि दमिश्क की मशहूर तलवारें जिस इस्पात से ढालकर बनाई गई थी वह हैदराबाद (भारत) से भेजा गया था। दिल्ली का मशहूर लौह स्तभ कुतुब स्तभ का वजन 6 टन से अधिक है और उस पर अकित स्मृति लेख की रचना 415 ई० पू० की है। कोई भी आज तक यह नहीं समझ पाया कि उस समय इतनी बडी ढलाई कैसे सभव हो सकी। लोहा गलाने वाली

> भट्टिया के भारत भर मे जो अवशेष मिलत ह वे मूलत वैसे ही हे जैसे आधुनिक काल से पूव के यूरोप मे थे
>
> अगडिया या लोहा गलाने वानी जाति दूर दूर तक फैली थी और अनक जिलो मे कच्चा लोहा बनाने वालो के लिए लोहार शब्द इस्तेमाल किया जाता था। लेकिन सस्ते ढग से तैयार किए गए यूरोपीय लोह ने उनका लगभग सारा व्यापार छीन लिया है और अधिकाश अगडिया अब अकुशल मजदूर बनकर रह गए ह। आज से सवा सौ वष पहले डा० फ्रासिस बुकानन को इस तरह के अनेक लोहा गलाने वाले मिले थे। (डी० एच० बुकानन डेवलपमेट आफ कैपिटलिस्ट एटरप्राइज इन इडिया,' 1934, पृष्ठ 274)

केवल पुराने औद्योगिक नगर और केंद्र ही विनष्ट नही हुए और उनकी आबादी उजडकर गावो मे भर गई और गावा मे ज्यादा भीडभाड हो गई वल्कि सबसे बडी बात यह हुई कि गाव की पुरानी अथव्यवस्था तथा कृषि एव घरेल उद्योग की एकता के आधार पर मरणातक प्रहार हुआ। शहरो और गावो दोनो स्थाना मे रहने वाले लाखो शिल्पियो और कारीगरो, कातनेवालो, बुनकरो, कुम्हारो और लोहा गलाने वालो, लोहारो क सामने खेती करने के सिवा और कोई विकल्प नही बच रहा। इस प्रकार भारत, जो कृषि और उद्योग की मिलीजुली पद्धतिवाला देश था अब जबरन ब्रिटन क कारखानेवाले पूजीवाद का कृषीय उपनिवेश बना दिया गया। ब्रिटिश शासनकाल के इन्ही दिनो से और ब्रिटिश राज के प्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप भारत मे खेती पर वह घातक दबाव शुरु होता है जिसे सरकारी दस्तावेजो मे बडी सहजता के साथ पुराने भारतीय समाज की एक स्वाभाविक घटना का नाम दिया जाता है और जिसे अनान और सतही लोगो द्वारा 'अत्यधिक आबादी' के लक्षणो के रूप म प्रस्तुत किया जाता ह। दरअस्ल, कृषि पर भारी सख्या म लोगो की निभरता ब्रिटिश शासन काल के दौरान ही बढी जो केवल 19वी सदी मे ही नही बल्कि 20वी सदी म भी निरतर बढती जा रही है। इसकी पुष्टि जनगणना के आकडो को देखने से हो जाती है (1891 से 1921 के बीच कृषि पर निभर आबादी 61 प्रतिशत से बढकर 73 प्रतिशत हो गई, इन आकडों का विस्तार से अध्ययन करने के लिए अध्याय 7 देखे)।

1840 मे ही माटगोमरी मार्टिन ने पूर्वोद्धृत ससदीय जाच समिति के सामने इस खतरे के प्रति चेतावनी दी थी कि ब्रिटिश सरकार भारत को 'इग्लैंड के कृषि फाम के रूप मे' तब्दील करने की कोशिश कर रही है

> मैं यह नही मानता कि भारत एक कृषिप्रधान देश है, भारत जितना कृषिप्रधान दश है उतना उद्योगप्रधान भी ह और जो उसे कृषिप्रधान देश की स्थिति तक लाना चाहत है वे सभ्यता के पैमान पर उसका स्थान नीचे लान की कोशिश करत है। मैं नही मानता कि भारत इग्लैंड का कृषि फाम बनगा, भारत एक शिल्पकर्मी

> देश है, विभिन्न कोटि के उसके उत्पादनों का युगों से अस्तित्व रहा है और कोई भी देश ईमानदारी से चलकर उसका मुकाबला नहीं कर सकता है—अब उसे कृषिप्रधान देश के दर्जे पर ला देना भारत के साथ अन्याय करना होगा।

1829 से ईस्ट इंडिया कंपनी ने, जो व्यापार के एकाधिकार से वंचित हो गई थी और इसलिए जिसकी दिलचस्पी व्यापार के बजाय अब मालगुजारी में ज्यादा हो गई थी, भारत में चल रही 'व्यापारिक क्रांति' का अत्यंत निराशाजनक चित्र प्रस्तुत किया। गवर्नर जनरल लार्ड विलियम कैवेंडिश बैंटिक के 30 मई 1929 के कार्य विवरण से इसका पता चलता है जिसमें कोर्ट आफ डायरेक्टर्स का दृष्टिकोण दिया गया है

> कोर्ट की सहानुभूति व्यापार परिषद (बोर्ड आफ ट्रेड) की उस रिपोर्ट से काफी बढ़ गई है जिसमें व्यापारिक क्रांति के प्रभावों की निराशाजनक तस्वीर पेश की गई है। इसकी वजह से भारत में विभिन्न वर्गों के लोगों को इस समय इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है जिसकी व्यापार के इतिहास में कोई मिसाल नहीं है।

लेकिन कारखानेदारों के हित आगे बढ़ते जाने के लिए कृतसंकल्प थे। 1840 में संसदीय जांच में मैक्लेसफील्ड के एक निर्माता श्री कोप ने कहा 'मैं निश्चित रूप से भारतीय मजदूरों की स्थिति पर रहम खाता हूं लेकिन साथ ही मुझे भारतीय मजदूर के परिवार से ज्यादा चिंता अपने परिवार की है। चूंकि भारतीय मजदूर के परिवार की स्थिति मुझसे बदतर है इसलिए उनके लिए मैं अपने परिवार की सुख सुविधाओं की बलि चढ़ा दूं, मेरे ख्याल में यह गलत है।'

भारत के लिए औद्योगिक पूंजीपतियों की नीति बड़ी साफ थी भारत को ब्रिटिश पूंजीवाद का कृषिप्रधान उपनिवेश बनाना कच्चे माल की यहां से सप्लाई करना और तैयार माल को भारत में बेचना। इस नीति का 1840 में मैनचेस्टर चैंबर आफ कामर्स के अध्यक्ष थामस बैजले ने अपने लक्ष्य के रूप में काफी स्पष्ट कर दिया था

> भारत एक विशाल देश है और यहां की आबादी इतने बड़े पैमाने पर ब्रिटिश माल खरीदा करेगी जिसकी कोई सीमा नहीं होगी। भारतीय व्यापार के संबंध में हमारे सामने समूची समस्या यह है कि हम जो माल वहां भेजने को तैयार हैं उसकी कीमत क्या भारत के लोग अपने धरती के उत्पादनों में अदा कर सकते हैं?

यहां भारत के नए युग के शोषण का जो हिसाब लगाया गया है वह उतना ही स्पष्ट और बिना लाग-लपेट के है जितना 75 वर्ष पहले क्लाइव ने भारत के पुराने युग के शोषण का हिसाब लगाया था, जिसे पहले ही उद्धृत किया जा चुका है।

भारत के बाजार को विकसित करने के लिए यह आवश्यक था कि उत्पादन को बढाया जाए और भारत से होने वाले कच्चे माल के निर्यात मे वृद्धि की जाए। ब्रिटिश नीति ने अब इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखकर पैंतरा बदला

> शुरू के 50 वर्षों मे इग्लैंड के लिए भारत के महत्व का कारण यह था कि इग्लैंड की औद्योगिक क्राति के लिए आवश्यक कच्चे माल, चमडा, तेल रग, पटसन और कपास की सप्लाई करता था और साथ ही इग्लड के उत्पादनकर्ताओ के लिए लोहे और कपास का तेजी से बढता हुआ बाजार भी प्रदान करता था। (एल० सी० ए० नावेल्स इकनामिक डेवलपमेट आफ दि आवरसीज एपायर,' पृष्ठ 305)

अगरेजो की नीति के एक नए चरण मे प्रवेश करने का सकेत 1833 मे उसी समय मिल गया जब अगरेजो को इस बात की अनुमति दी गई कि वे भारत म जमीन खरीद सकते है और बागान लगा सकते है। उसी वष वैस्ट इडीज मे गुलामी की प्रथा समाप्त कर दी गई थी। उसके तत्काल बाद भारत मे बागानो की यह नई प्रणाली जारी करना एक झीने पर्दे के आवरण मे गुलामी क अलावा और कुछ नही था। यह बात भी काफी महत्वपूण है कि भारत मे शुरू शुरू म जिन लोगो ने बागानो का काम शुरू किया उनमे से अधिकाश वैस्ट इडीज के गुलामो के मालिक थे (वैस्ट इडीज से अनुभवी बागान मालिक यहा लाए गए इस क्षेत्र मे उजड्ड किस्म के बागान मालिको ने प्रवश किया जिनमे से कुछ अमरीका मे गुलामो के मालिक थे और वे अपने साथ दुर्भाग्यपूण आदतें और तौर तरीके लाए।' बुकानन 'डेवलपमेट आफ कैपिटलिस्ट एटरप्राइज इन इडिया,' पृष्ठ 36-37)। इसके भयकर परिणाम 1860 मे नील आयोग (इडीगो कमीशन) के सामने उद्घाटित हुए। आज दस लाख से भी अधिक मजदूर चाय, रबड और काफी के बागानो म लगे हुए है अर्थात कपडा मिलो कोयला खानो, इजीनियरिंग, लोहा और इस्पात उद्योगो के बाद मजदूरो की लगभग दो तिहाई सख्या बागानो मे काम करती है।

अर्थात तीस गुना वृद्धि हुई। 1849 मे 68 हजार पौंड के पटसन का निर्यात किया गया था जो 1914 मे बढकर 86 लाख पौंड हो गया अर्थात 126 गुना वृद्धि हुई।

इससे भी ज्यादा महत्वपूण बात यह थी कि उस भारत से अधिक से अधिक माल बाहर भेजा जाने लगा जहा लोग खुद भूख से ग्रस्त थे। 1849 में 8 लाख 58 हजार पौंड की कीमत का अनाज बाहर भेजा गया, इसमे मुख्यतया चावल और गेहू बाहर भेजा गया था। 1858 तक 38 लाख पौंड की कीमत का अनाज बाहर गया जो 1877 म बढकर 79 लाख पौंड, 1901 म 93 लाख पौड और 1914 मे 1 करोड 93 लाख पौंड हो गया अर्थात इसमे 22 गुना वृद्धि हुई।

इसके साथ साथ 19वी सदी के उत्तराध मे अकालो की सख्या और भयावहता म भी जबरदस्त वृद्धि हुई। 19वी सदी के पूर्वाध मे सात बार अकाल पडे थे जिनमे अनुमानत 15 लाख लोग मौत के शिकार हुए थे। 19वी सदी के उत्तराध मे 24 बार अकाल पडा (1851 से 1875 के बीच 6 बार और 1876 से 1900 के बीच 18 बार) जिनम सरकारी आकडो के अनुसार अनुमानत 2 करोड से भी अधिक लोगो की मृत्यु हुई। मोट तौर पर कहा जाए तो 19वी सदी के अतिम तीस वर्षो मे अकाल और खाद्यानो की जितनी कमी हुई वह एक सौ वष पहले की तुलना मे चार गुना अधिक और चार गुना ज्यादा व्यापक थी।' (डब्ल्यू० डिगबी० प्रासपेरस ब्रिटिश इडिया,' 1901) डब्ल्यू० एस लिली न अपनी पुस्तक इण्डिया ऐड इट्स प्राब्लम्स' मे सरकारी अनुमानों के आधार पर अकाल से होने वाली मृत्यु के निम्न आकडे दिए ह

वर्ष	अकाल से होने वाली मौतो की सख्या
1800-25	1,000,000
1825-50	400,000
1850-75	5,000 000
1875-1900	15,000,000

1878 म एक अकाल आयोग का गठन किया गया जिसका उद्देश्य बढते हुए अकाल की समस्या पर विचार करना था। आयोग की रिपोट 1880 मे प्रकाशित हुई और इसम बताया गया कि भारत म अकालो के विनाशकारी परिणामा का एक मुख्य कारण और राहत पहुचाने क काम म सबस बडी कठिनाई यह है कि यहा की विशाल जनता प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निभर है और यहा कोई ऐसा उद्योग नहीं है जिसके सहारे आबादी का उल्लेख नीय हिस्सा अपना काम चला सके।

भारत क लागा की गरीबी और खाद्यान्ना के सकट के समय उत्पन्न खतरे की जड में

> महत्वपूर्ण बात वह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है जिसमे आबादी का अधिकाश भाग महज खेती पर निर्भर है। साथ ही वर्तमान बुराइयो को दूर करने के लिए ऐसा कोई भी उपाय पूरी तरह प्रभावकारी नही हो सकता जिसमें लोगो के लिए विभिन्न किस्म के धधे जारी करना शामिल न हो। इसका कारण यह है कि आबादी का अतिरिक्त हिस्सा जो आज खेती मे लगा हुआ है उसे वहा से हटाने के लिए उद्योग धधो म या इसी तरह के किसी रोजगार में लगाने की जरूरत है। (इडियन फेमिन कमीशन रिपोर्ट, 1880)

इन शब्दो के साथ औद्योगिक पूजी ने भारत मे अपने कारनामो पर खुद ही फैसला दे दिया।

पाद टिप्पणी

1 इस अध्याय की अधिकाश सामग्री के लिए आर० सी० दत्त की पुस्तक इकनोमिक हिस्टी आफ इडिया अडर अर्ली ब्रिटिश रूल (1901) और 'इकनोमिक हिस्ट्री आफ इडिया इन दि विक्टोरियन एज' (1903) के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त किया जाना चाहिए। ये पुस्तकें 19वा सदी के अत तक के विकास के बारे मे सर्वाधिक आधिकारिक अध्ययन प्रस्तुत करती हैं।

6

भारत मे आधुनिक साम्राज्यवाद

प्रशासन और शोषण यहा साथ साथ चलते हैं
1905 मे लाड कजन का वक्तव्य।

1914-18 के युद्ध के बाद से आमतौर पर यह धारणा बन गई कि भारत मे साम्राज्यवा एक ऐसी नई अवस्था मे पहुच चुका है जा अपने पूववर्ती काल से लगभग एकदम भिन्न है।

राजनीतिक क्षेत्र मे, यह समझा जाता है कि पुरानी निरकुशता की समाप्ति 1917 की घोषणा के साथ हो गई जिसने 'साम्राज्यवाद के एक अभिन्न अग के रूप मे भारत म उत्तरदायी सरकार की स्थापना' के नए लक्ष्य का वादा किया था, और बाद के इतिहास को ब्रिटिश कैबीनेट मिशन की 16 मई 1946 की घोषणा के जरिए इस लक्ष्य की पूण प्राप्ति की दिशा मे एक के बाद एक साविधानिक सुधारो के द्वारा क्रमिक विकास (जनता के विरोध और असहयोग के दौर से विकृत) के इतिहास के रूप म देखा गया।

यह समझा जाता है कि आर्थिक क्षेत्र मे भारत के औद्योगिक विकास के लिए पुराने अहस्तक्षेपपूण विरोध ने एक नए दष्टिकोण को स्थान दिया जो ब्रिटिश शासन की प्रोत्साहनकारी देखरेख के अतगत तथा ब्रिटिश पूजी के साथ भारत को एक आधुनिक औद्योगिक देश के रूप मे बदल रहा है। 1918 के बाद के वर्षों के तथ्यो की बारीकी से जाच करने से पता चलेगा कि ये तथ्य साम्राज्यवाद के ह्रासामुख दिनो म उसकी प्रगतिशील तस्वीर खीचने मे असमथ है।

निस्सदेह, भारत के पुराने मुक्त व्यापारवाले औद्योगिक पूजीवादी शोषण स एक नया रूपातरण हुआ है। लेकिन परिवतन की निर्णायक शुरआत दरअस्ल, 1914 के युद्ध के

द्वारा नही हुई, सरसरी तौर पर देखने से यह लग सकता है कि इसने पुराने और नए के बीच की खाई को और चौडा कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध और उसके दूरगामी प्रभाव परिवतन की उस प्रक्रिया के बीच मे आ टपके जो 20वी सदी के शुरू के 15 वर्षों मे जारी थी। यह परिवतन मुक्त व्यापारवाली औद्योगिक पूजीवादी अवस्था की महाजनी पूजी और भारत मे इसके शासन के सक्रमण द्वारा हुआ। इस सक्रमण की आधारशिला पहले ही रखी जा चुकी थी।

1914 के युद्ध ने समूचे घटनाक्रम को तेज कर दिया और उन्ह आगे बढा दिया, साथ ही पूजीवाद के आम सकट को खोलकर उसने एक के बाद एक ऐसे राजनीतिक जन आदोलनो की शुरुआत की जिनसे भारत इसके पहले अपरिचित था। इस दोहरी प्रक्रिया से आधुनिक काल के भारत का विशिष्ट चरित्र उभरता है। इसी के साथ इस काल के भारत न महाजनी पूजी के शासन के सभी लक्षणा को देखा जो इसके प्रारभिक दौर मे अधूरे रूप मे विद्यमान थे। इसके सबके साथ ही, जनप्रहार की एक लहर चल पडी जिसने साम्राज्यवादी प्रभुत्व की नीव को हिला दिया। इन दो सचालक शक्तियो ने आज नए भारत की रचना की है।

भारत म जो सावैधानिक सुधार हो रहे है वे काई आज की खोज नही है। य 1861 के कौंसिल्स ऐक्ट (ई० ए० ह्रान ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल सिस्टम आफ ब्रिटिश इडिया' मे बताया है कि इस ऐक्ट ने 'ब्रिटिश भारत मे प्रतिनिधि सस्थाआ के आरभिक बीज बोए थे) 1865 और 1882 मे म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के विकास, 1892 के कौंसिल्स ऐक्ट और 1909 के मोरले मिंटो सुधारो के समय से निरतर विकसित हुए है। आधुनिक युग की शुरुआत आमतौर से 1917 की घोषणा से मानी जाती है पर इसकी वास्तविक शुरुआत 1914 के एकदम पहले के वर्षों मे मारले मिंटा सुधारो के साथ ही हो गई थी। इसने सत्ता की वास्तविकता को बनाए रखने के साथ साथ बहुप्रचारित उदार सुधारो और रियायतो (बल प्रयोग के साथ साथ) की प्रक्रिया का श्रीगणेश किया। यह सही है कि मोटागु चेम्सफोर्ड रिपोट ने अपनी खुद की प्रगति का महत्व जतलाने के लिए मोरले मिंटो सुधारो की निंदा करने और उनका महत्व कम आकन की कोशिश की (उस क्षण के उत्साह मे उनके लिए बडे बडे दावे किए गए), लेकिन द्वितत्र की उसकी खुद की पद्धतियो की भी उसके उत्तराधिकारियो द्वारा कम निंदा नही की गई। यह सभी मानते है कि प्रारभिक योजना ने स्वशासन नही प्रदान किया, लेकिन यह आलाचना बाद की योजनाओ पर भी लागू होती है। 1918 के बाद के वर्षों को ब्रिटिश जनता के सामने भले ही इस रूप म पश किया गया हो जिसम सत्ता द्वारा रियायते दी जाने की बात शामिल हो लेकिन भारतीय जनता के सामने एक दूसरी ही तस्वीर थी। इस दौर के बारे म बताया गया है कि रियायता के साथ साथ व्यापक और घोर दमन का सिलसिला जारी रहा, अभूतपूव पैमाने पर गिरफ्तारिया हुइ, व्यापक स्तर पर हिंसा हुई और जगह जगह गोलिया चली तथा निषेधात्मक कानून लागू किए गए।

इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र म नए दौर के प्रारभिक सकेतो की तलाश 20वी सदी के शुरु के वर्षो म की जा सकती है। 1905 मे ही लार्ड कर्जन ने उद्योग और वाणिज्य के नए विभाग की स्थापना की और 1907 म पहला औद्योगिक सम्मेलन आयोजित किया गया। भारतीय कपडा मिल उद्योग का विकास 1914 के बाद के बीस वर्षो की तुलना म 1914 के पहले के बीस वर्षो मे अपेक्षाकृत ही नही बल्कि पूरी तरह तेज रहा। उद्योगीकरण के लक्ष्यो के सदभ मे नीति म परिवतन की घोषणाए पहले की अपेक्षा उस समय से ज्यादा महत्वपूण रही और सीमाशुल्क सबधी नई नीति का निर्माण भी 1918 के बाद के वर्षो मे हुआ। लेकिन यह सभी मानते है कि आवश्यकताओ और सभावनाओ की तुलना मे इनके परिणाम बहुद अपर्याप्त थे और उत्पादन सबधी विकास मे बाधा पहुचानेवाले विरोध जारी ही नही रहे बल्कि नए रूपो म ये और तेज हुए।

आधुनिक काल का मुख्य रूपातरण वह राजनीतिक रूपातरण है जो स्वतत्रता के सघष म भारतीय जनता द्वारा नए चरण तक प्रगति के द्वारा हुआ है। जो भी हो, इस प्रगति की उपलब्धि साम्राज्यवाद के विरोध मे हुई है।

भारत मे साम्राज्यवादी शासन के आधुनिक काल का सचालन करने वाली शक्तियो के विश्लेषण के लिए औद्योगिक पूजी के युग से महाजनी पूजी के युग मे सक्रमण को अच्छी तरह समझना होगा। इस काल को समझने के लिए इस प्रक्रिया और इसके परिणामो को समझना सबसे जरूरी है।

1 महाजनी पूजी मे सक्रमण

19वी सदी म औद्योगिक पूजी जिन खास खास तरीको से भारत का शोषण करती थी उनमे सीधी लूट के तरीके समाप्त नही हो गए थे। वे भी जारी थे लेकिन उनका रूप बदल गया था।

नजराना, 19वी सदी के मध्य तक सरकारी प्रवक्ता इसे खुलेआम नजराना ही कहते थे, अथवा लाखो पौंड की जो सपत्ति प्रतिवष इग्लैड भेजी जाती थी, उसका सिलसिला जारी रहा, उसे गृह शुल्क के अतगत तथा व्यक्तिगत तौर पर भेजा जाता रहा। व्यापार के विकास के साथ साथ धन भेजे जाने की क्रिया मे भी 19वी सदी के दौरान तेजी से वृद्धि हुई। भेजी जाने वाली इस राशि के बदले मे भारत को कोई माल नही मिलता था (सिवाय यथानुपात उस मामूली राशि के जो सरकारी भडारा के लिए इग्लैड से आती थी।) 20वी सदी म इसमे और भी वृद्धि हुई हालाकि व्यापार मे अपेक्षाकृत गिरावट आई।

1848 म वेस्ट इडीज और ईस्ट इडीज म चीनी और काफी की खेती के बारे म हाउस आफ कामस की प्रवर समिति के सामने ईस्ट इडिया कपनी के एक डायरेक्टर कनल साइक्स ने अनुमान लगाया था कि नजराने (यह शब्द उन्होने स्वय इस्तमाल किया था)

की राशि के रूप मे प्रतिवप 35 लाख पौड दिया जाता है भारत इस नजरान का बोझ तभी बर्दाश्त कर सकता है जब आयात की तुलना म निर्यात अधिक हो।' इसी प्रकार भारत के एक व्यापारी एन० एलेक्जेंडर ने इसी समिति के सामन बताया कि '1847 तक भारत लगभग 60 लाख पौंड का आयात और लगभग 90 लाख पौड का निर्यात करता था। आयान और निर्यान के बीच का यह अतर ही वह नजराना है जो कपनी को मिलता था और जो लगभग चालीस लाख पौड होता था।'

1851 से 1901 के बीच शासन करने वाले अधिकारियो द्वारा गृह शुल्क' के नाम पर इग्लैंड भेजी गई कुल राशि म सात गुना वृद्धि हुई और यह 25 लाख पौड से बढकर 1 करोड 73 लाख पौंड हो गई जिसम से केवल 20 लाख पौड से सामान आदि खरीदे गए थे। इस आकडे मे वह राशि नही शामिल की गई है जो सरकारी अफसरो ने व्यक्तिगत तौर से भेजी थी। 1913-14 तक यह राशि बढकर 1 करोड 94 लाख पौड हो गई जिसम से केवल 15 लाख पौंड का सामान आदि खरीदा गया था। 1933-34 तक सरकारी खाते के अनुसार इग्लैड मे खर्च की गई कुल राशि 2 करोड 75 लाख पौंड थी जिसमे से केवल 15 लाख पौड सामान वगैरह की खरीद मे खर्च हुआ था (1914 मे रुपये की विनिमय दर एक शिलिंग चार पैंस थी जिसे 1933 मे बदलकर एक शिलिंग 6 पैंस कर दिया गया जिसस इसका भुगतान करन के लिए आवश्यक रुपय की सख्या भारत मे कम हो गई लेकिन भारत के मूल्य स्तर मे गिरावट आने से इसका काफी प्रति सतुलन हो गया। 1914 मे मूल्य स्तर 147 था जो 1933 म कम होकर 121 हो गया। इससे 1914 के मूल्य के अनुसार भारत पर 3 करोड पौंड का बोझ पड गया।)

1851 मे 1901 के बीच भारत से होने वाले निर्यात (पण्य और खजानो का) मे तीन गुना वृद्धि हुई और यह 33 लाख पौड से बढकर 1 करोड 10 लाख पौड हो गया (पण्यो मे 72 लाख पौंड से 2 करोड 74 लाख पौंड तक की वृद्धि हुई)। लेकिन 20वी सदी मे निर्यात म बडी तेजी से वृद्धि हुई। 1901 से 1913-14 के बीच यह 1 करोड 10 लाख पौंड से बढकर 1 करोड 42 लाख पौड हो गई। फिर भी 1913-14 का वप औसत से नीचे ही था। युद्ध से पहले के 5 वर्षों अर्थात 1909-10 से लेकर 1913 14 का औसत देखा जाए तो निर्यात म कुल वार्षिक आधिक्य 2 करोड 25 लाख पौंड था। इस 1901 के स्तर का दुगना मान सकते है (देखे 'रिपोर्ट आफ दि इडियन फिस्कल कमीशन', 1922, पृष्ठ 20)।

1933-34 तक भारत से किया गया कुल निर्यात 6 करोड 97 लाख पौंड तक पहुच गया जिसम से 2 करोड 68 लाख पौंड के पण्य और 4 करोड 29 लाख पौंड के खजाने भेजे गए। यह अतिम राशि जो असाधारण रूप से अधिक है इस बात का सकेत देती है कि सकट के समय स्टर्लिंग की सहायता के लिए भारत से सोना भेजा गया। यदि बेहतर ढग से तुलना करने के लिए 1931-32 से 1935-36 के पाच वर्षों की अवधि का औसत लें तो

यह राशि 5 करोड़ 92 लाख पौंड आएगी जो युद्ध पूर्व के पांच वर्षों की अवधि (1910-14) की लगभग तीन गुना अधिक और 1901 के स्तर की पांच गुना से भी अधिक होगी।

यदि 19वीं सदी के मध्य से शुरू हुए नजराने की राशि में वृद्धि का, जो भारत से इंग्लैंड भेजी गई (जिसमें भारतीय निर्यात और आयात के बीच मूल्य स्तर में अंतर के जरिए होने वाले शोषण का कोई उल्लेख नहीं है) कोई चार्ट तैयार करें तो पहली ही झलक में यह साफ-साफ पता चल जाएगा कि आधुनिक युग में इंग्लैंड ने भारत के शोषण में कितनी प्रगति की है, हालांकि यह आज भी अपनी सारी कारगुजारियों के एक अंश से ज्यादा की जानकारी नहीं देता है।

भारत से इंग्लैंड जाने वाले नजराने में वृद्धि (लाख पौंड में)

	1851	1901	1913-14	1933-34
गृह शुल्क	25	1 73	1 94	2 75
भारतीय निर्यात में अधिकता	33	1 10	1 42	6 97

अथवा व्यापार संबंधों का और संतुलित चित्र पेश करने के लिए पांच वर्ष की अवधि का खाका देख सकते हैं

पांच वर्ष की अवधि का वार्षिक औसत (लाख पौंड में)

	1851-55	1897-1901	1909-10 से 1913-14 तक	1931-32 से 1935 36 तक
भारतीय निर्यात में अधिकता	43	1 53	2 25	5 92

इस तालिका से पता चलता है कि भारत से इंग्लैंड जाने वाली धन संपत्ति में तेजी से वृद्धि हुई। इससे शोषण के रूप और तरीके में परिवर्तन की झलक मिलती है।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत से इंग्लैंड जाने वाले नजराने की राशि में जबरदस्त वृद्धि और बीसवीं सदी में इस वृद्धि के जारी रहने के पीछे, दरअस्ल, जो बात छिपी है वह यह है कि शोषण के एक नए रूप का जन्म हो चुका था जिसकी 19वीं सदी के स्वतंत्र व्यापारवाले औद्योगिक पूंजीवाद से शुरुआत हुई थी लेकिन जो महाजनी पूंजी द्वारा भारत के शोषण के 20वीं सदी की नई अवस्था में विकसित हो रहा था।

19वीं सदी के स्वतंत्र व्यापार पर आधारित औद्योगिक पूंजीवाद की आवश्यकताओं ने अंगरेजों को इस बात पर मजबूर किया कि वे भारत में अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करें। एक तो इस बात की आवश्यकता थी कि अब कंपनी को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जाए और उसके स्थान पर ब्रिटिश सरकार का सीधा प्रशासन लागू किया जाए जो

ब्रिटन के सपूण पूजीपति वग का प्रतिनिधित्व करे। इस लक्ष्य की प्राप्ति कुछ अशो म 1833 के सरकारी आदेशपत्र से हुई और 1858 म यह काम पूरी तरह सपन्न हो गया।

दूसरे, भारत को व्यापारिक घुसपैठ के लिए पूरी तरह खोल देना आवश्यक था। इसके लिए जरूरी था कि रेल लाइनो का जाल देश भर म बिछा दिया जाए, सडको का विकास किया जाए, सिंचाई की ओर ध्यान दिया जाए जिसकी ब्रिटिश राज म पूरी तरह उपक्षा की गई थी, विद्युत सचालित टेलीग्राफ प्रणाली की शुरुआत की जाए और देश भर म एक जैसी डाक व्यवस्था कायम हो, क्लर्कों और मातहत कमचारियो की भरती के लिए सीमित अश म अगरेजी ढग की शिक्षा शुरू की जाए और यूरोप के ढग की बैंक व्यवस्था शुरू की जाए।

इस सबका अथ यह हुआ कि सावजनिक निर्माण कार्यों के सदभ मे एशिया म किसी सरकार द्वारा अत्यत प्रारभिक कार्यों की सौ वर्षों तक उपक्षा करने के बाद अब शोषण की आवश्यकताओ न, बेहद एकतरफा और असतुलित ढग से ही सही एक ऐसी शुरुआत के लिए सरकार को मजबूर किया (औद्योगिक विकास का गला घोट कर और उसे निष्फल बना कर) जिसका उद्देश्य जनता के लिए अत्यत दु सह आर्थिक शर्तों पर विदेशी घुसपैठ के लिए महज व्यापारिक और सामरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करना था।

रेल व्यवस्था के बारे मे, 1853 म लाड डलहौजी की मशहूर टिप्पणी ने बडे पैमाने पर रेल व्यवस्था के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। इस टिप्पणी मे बडे साफ शब्दो मे व्यापारिक उद्देश्य निर्धारित किए गए थे और बताया गया था कि ब्रिटिश माल के लिए भारत को बाजार के रूप मे विकसित करन के लिए तथा कच्चे माल के स्रोत रूप मे भारत का इस्तेमाल करने के लिए रेल व्यवस्था मजबूत करना बहुत जरूरी है

> मुझे पूरा यकीन है कि इसकी स्थापना से भारत को जो व्यापारिक और सामाजिक लाभ मिलेंगे उनकी गिनती नही की जा सकती इग्लैंड को कपास की अत्यधिक जरूरत है जिसे भारत कुछ अश मे पैदा करता है और यदि उसके दूरदराज क्षेत्रो से जहाजो मे लाद कर भेजने के लिए बदरगाहो तक पहुचान की उचित व्यवस्था कर दी जाए तो वह अच्छे किस्म की कपास पर्याप्त मात्रा मे पैदा कर सकता है। जैसा हमने देखा है व्यापार की जितनी ही सुविधा दी गई है उतनी ही बडी मात्रा मे भारत के तमाम बाजारो मे इग्लैंड के सामानो की माग बढी है दुनिया के इस हिस्से म हमारे लिए नए नए बाजार तैयार हो रहे है और हमारे माल की जो कीमत इन बाजारो मे निर्धारित हो रही है उनका अनुमान चतुर से चतुर दूरदर्शी व्यक्ति भी नही लगा सकता। (लाड डलहौजी, गवनर जनरल, 1848-56, रेल व्यवस्था पर टिप्पणी, 1853)

लेकिन सक्रिय विस्तार और खासतौर से रेल निर्माण की इस क्रिया ने, जो भारत में व्यापारिक घुसपैठ के लिए औद्योगिक पूंजी की आवश्यकताओं से पैदा हुई थी (साथ ही लोहा इस्पात और इंजीनियरिंग सामानों के बाजार के लिए उत्पन्न जरूरत), कुछ अवश्यंभावी परिणाम हुए। इसने एक नए दौर की नींव रखी, और वह था भारत में ब्रिटिश पूंजी निवेश का दौर। अब यहां अंगरेजों ने अपनी पूंजी लगानी शुरू कर दी।

साम्राज्यवादी विस्तार के सामान्य नियम के अंतर्गत इस प्रक्रिया को पूंजी का निर्यात कहा जाएगा। लेकिन जहां तक भारत की बात है, यहां जो कुछ हुआ उसे यदि पूंजी का निर्यात कहेंगे तो यह वास्तविकता से आंखें मूंदना होगा। जिसे पूंजी का वास्तविक निर्यात कहा जाता है वह यहां बहुत कम हुआ। 1914 तक की पूरी अवधि में केवल 1856 से लेकर 1862 तक के सात वर्ष ही ऐसे हैं जब निर्यात से आयात अधिक रहा वरना सामान्यत निर्यात ही अधिक रहता था। इन सात वर्षों में जितनी कीमत का माल भारत से इंग्लैंड गया उससे 2 करोड 25 लाख पौंड ज्यादा कीमत का माल इंग्लैंड से भारत आया। यह कोई बहुत बडी राशि नहीं थी क्योंकि अतत भारत में लगी हुई ब्रिटिश पूंजी 1914 तक 50 करोड पौंड के लगभग हो गई थी। समूची अवधि में ब्रिटेन से भारत को पूंजी का जो निर्यात हुआ वह भारत से इंग्लैंड को भेजे गए नजराने की तुलना में इतना अधिक था कि वह उसका प्रति सतुलन बनाए रख सकता था। और यह भी ऐसे समय जब पूंजी का व्यापार में लगाया जा रहा हो। इस प्रकार भारत में लगाई गई ब्रिटिश पूंजी का प्रबंध वस्तुत भारतीय जनता की लूट से भारत में एकत्र करके किया गया था और फिर उसे ब्रिटेन की ओर से भारत की जनता पर कर्ज के रूप में दर्ज कर लिया गया था। इसपर तभी से भारत को ब्याज और लाभांश देना पड रहा है।

भारत में ब्रिटिश पूंजीनिवेश का केंद्र सार्वजनिक ऋण था। यही वह प्रिय तरीका था जिसे ब्रिटेन के अल्पतंत्र ने अपनी जकड मजबूत करने के लिए अपनाया था। 1858 में जब ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में सत्ता ली तो ईस्ट इंडिया कंपनी से सात करोड पौंड का कर्ज भी उत्तराधिकार में मिला। दरअस्ल, जैसाकि भारतीय लेखकों ने हिसाब लगाया है ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत से नजराने के रूप में 15 करोड पौंड से भी अधिक की राशि निकाली थी जो भारत से बाहर, अफगानिस्तान चीन और अन्य देशों में ब्रिटेन द्वारा छेडे गए युद्ध के खर्चों के अतिरिक्त है। यदि सही ढंग से हिसाब किया जाता तो इंग्लैंड पर भारत का ही कर्ज निकलता। लेकिन ब्रिटिश सरकार के हिसाब में भारत ही कर्जदार रहा और उसपर यह कर्ज तेजी से बढता गया।

रुपये हो गई जिसे दो भागो मे बाट दिया गया 7 अरब 9 करोड 90 लाख रुपये (53 करोड 24 लाख पौंड) भारतीय ऋण और 4 अरब 69 करोड 10 लाख रुपये (35 करोड 18 लाख पौंड) स्टर्लिंग ऋण या ब्रिटिश ऋण। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष शासनकाल मे लगभग 75 वर्षों मे ऋण की राशि मे 12 गुना से भी अधिक की वृद्धि हुई।

विशेष महत्वपूर्ण बात यह थी कि इग्लैंड का स्टर्लिंग ऋण तेजी से बढ रहा था। 1856 तक यानी कपनी के शासनकाल की समाप्ति तक वह ऋण 40 लाख पौंड से कम ही था। 1860 तक इसमे तेजी से वृद्धि हुई और यह 3 करोड पौंड हो गया, 1880 तक 7 करोड 10 लाख, 1900 तक 13 करोड 30 लाख 1913 तक 17 करोड 70 लाख और 1939 तक 35 करोड 58 लाख पौंड हो गया।

इस ऋण का कारण एक तो युद्ध आदि के वे खर्च थे जो भारत से वसूल किए जाते थे और दूसरा, सरकार द्वारा शुरू की गई रेल और सार्वजनिक निर्माण योजनाओ की लागत। शुरू के 7 करोड पौंड का कर्ज मुख्यत लार्ड डलहौजी के युद्धो, प्रथम अफगान युद्धो, सिख युद्धो और 1857 के विद्रोह को कुचलने मे हुए खर्च के कारण था। बाद के 7 करोड पौंड का, जिसके द्वारा 18 वर्षों मे ब्रिटिश सरकार ने ऋण की राशि दुगनी कर दी, एक हिस्से 2 करोड 40 लाख पौंड को रेल निर्माण और सिंचाई कार्यो पर खर्च किया गया। कर्ज का शेष भाग इस कारण बढा था क्योकि ब्रिटिश सरकार उन प्रत्येक कल्पनीय खर्चों के लिए भारत के मद से पैसा लेती थी जिसका भारत से या भारत मे ब्रिटिश शासन से सबध हो या न हो। यहा तक लदन मे टर्की के सुल्तान को दावत देने, चीन और फारस के साथ ब्रिटेन के राजनयिक एव वाणिज्यिक सबध स्थापित करने, अबीसीनिया मे युद्ध छेडने या भूमध्य सागर के जहाजी बेडे का खर्च उठाने मे भारत पर ही कर्ज का बोझ लादा जाता था।

> भारत के मत्थे आसानी से मढ दिए जाने वाले खर्चे बडे हास्यास्पद लगते थे। विद्रोह के फलस्वरूप हुए खर्चे हो या ब्रिटिश राज्य के नाम कपनी के अधिकारो के हस्तातरण की कीमत, चीन और अबीसीनिया मे एक साथ जारी युद्ध के खर्च हो या लदन मे सरकारी कामकाज के लिए ऐसी कोई भी चीज खरीदी गई हो जिसका भारत से दूर दूर तक कोई सबध न हो, इडिया आफिस मे सफाई का काम करने वाली महिला की तनख्वाह हो या उन जहाजो का खर्च हो जो पानी मे उतार तो दिए गए हो लेकिन जिन्होने युद्ध मे हिस्सा न लिया हो अथवा भारतीय सैनिक टुकडियो के छ महीने के प्रशिक्षण का खर्च हो, इन सभी कामो का खर्च उस रैयत के खाते से वसूला जाता था जिसका कोई प्रतिनिधित्व नही था। टर्की के सुल्तान ने 1868 मे लदन की राजकीय यात्रा की और उनके लिए राजकीय नृत्य की व्यवस्था इडिया आफिस मे की गई तथा इसपर

जितना पैसा खच हुआ वह पैसा भारत से वसूला गया। 1870 से पहले तक भारतीय खजाने से जिन कामो के लिए पैसा निकाला गया उनमे ईलिंग मे पागलखाना खोलने, जजीबार के दल के सदस्यो को उपहार देने, चीन और फारस में ग्रेट ब्रिटन के राजनयिक और वाणिज्य सबध स्थापित करने, भूमध्य सागर में स्थित जगी बेडे के स्थाई खच का एक अश वसूलने और इग्लैड से भारत तक तार सेवा स्थापित करने का समूचा खच शामिल है। इसलिए कोई आश्चय नही कि शाही प्रशासन के शुरू के 13 वर्षो के दौरान भारतीय राजस्व मे 3 करोड 30 लाख पौड से 5 करोड 20 लाख पाड प्रति वष की वृद्धि हुई और 1866 से 1870 तक घाटे के रूप मे 1 करोड 15 लाख पौड की राशि दज की गई। 1857 से 1860 के बीच घरेलू ऋण के रूप में 3 करोड पौंड की राशि अकित की गई और इसमे तेजी से वृद्धि हुई जबकि ब्रिटिश राजनेताओ को मितव्ययता के लिए भारतीय हिसाब-किताब में विवेकपूण जोड तोड के जरिए वित्तीय मामलो में कुशल होने के लिए ख्याति मिली। (एल० एच० जेक्स 'दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपीटल,' पृष्ठ 223 24)

राज्य की मदद से रेल पथ निर्माण का विकास और यह काय करने के लिए निजी कप नियो को दी गई गारटी तथा साथ ही सीधे राज्य द्वारा रेलवे निर्माण से इस ऋण म बहुत अधिक वृद्धि हुई। जो प्रणाली अपनाई गई थी उसके अतगत रेल निर्माण के लिए ब्रिटेन का पूजीपति जितनी भी पूजी लगाता था उसपर सरकार से पाच प्रतिशत ब्याज की गारटी मिलती थी। जाहिर है इस प्रणाली ने बेहद फिजूलखर्ची को बढावा दिया। 1872 तक शुरू के छ हजार मील मे जो रेल लाइन बिछाई गई उसपर 10 करोड पौंड का खच आया। इसका अथ यह हुआ कि प्रत्येक मील मे रेल लाइन बिछाने म 16 हजार पौंड से अधिक की राशि खच हुई। 1872 म रेलवे के आय व्यय के भूतपूव सरकारी आडीटर ने भारतीय वित्त के बारे मे ससदीय समिति को बताया कि 'आपस म एक तरह की ऐसी समझदारी थी कि उनके काम को बडी बारीकी से नियत्रित नही किया जाएगा जब तक सारा हिसाब किताब सौंप नही दिया गया खच किए गए पैसा के बारे मे कोई जानकारी नही मालूम थी।' इसी समिति के सामने भारत के भूतपूव वित्तमत्री डब्ल्यू० एन० मैंस ने बताया कि 'बडे पैमाने पर पैस की फिजूलखर्ची हुई और ठेकेदारा का मितव्ययता का कोई इरादा नही था। सारा पैसा अगरेज पूजीपतिया द्वारा लगाया जाता था और जब तक उन पूजीपतिया का भारत के राजस्व पर पाच प्रतिशत की गारटी थी उनके लिए यह सोचना बेकार था कि जो पैसा वे लगा रहे हैं वह हुगली नदी मे फेंका जा रहा है या उसका इस्तेमाल ईंट और गारे म किया जा रहा है मुझे ऐसा लगता है कि जितनी फिजूलखर्ची यहा हो रही है उतनी पहले कही भी देखने म नहा आई थी।'

19वी सदी के अत तक रेल निमाण पर 22 करोड 60 लाख पौंड खच किया गया था

जिनमें रेलवे की लागत का दूर 4 करोड़ पौंड का नुकसान भी हुआ था। यह सारा नुकसान भारतीय बजट पर डाला गया। 20वीं सदी में रेलों से मुनाफा कमाया जाने लगा और 1943-44 तक कुल रेल निर्माण काल में लगा स्टर्लिंग सूद जो लगभग 1 करोड़ पौंड प्रति वर्ष था (1933-34 में 9 करोड़ 70 लाख पौंड) भारत से इंग्लैंड भेज दिया गया।

रेल निर्माण और चाय, कॉफी तथा रबड़ बागानों एवं कुछ छोटे मोटे उद्योगों के विकास के साथ साथ 19वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन के पूंजीपति भी तेजी से अपनी निजी पूंजी भारत में लगाने लगे।

इसी अवधि में ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार के प्रतिबंधों के समाप्त होने पर अंग्रेजों ने भारत में अपने निजी बैंक भी खोले। 1876 में प्रेसीडेंसी बैंक एक्ट ने तीन प्रेसीडेंसी बैंकों को सरकारी संरक्षण के अधीन ला दिया जिन्हें बाद में 1921 में बहुत बड़े बैंक इंपीरियल बैंक आफ इंडिया में मिला दिया गया। विनिमय बैंकों ने जिनके मुख्यालय भारत से बाहर थे भारत में अपना काम प्रेसीडेंसी बैंकों के साथ मिलकर करना शुरू किया। प्रेसीडेंसी बैंक ब्रिटिश नियंत्रण के अधीन वित्त वाणिज्य और उद्योग पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए थे। विनिमय बैंकों (इनके मुख्य कार्यालय भारत से बाहर थे) में चार्टर्ड बैंक आफ इंडिया आस्ट्रेलिया एंड चाइना जिसे 1853 में चार्टर (सरकारी आज्ञा) मिला था मर्केंटाइल बैंक आफ इंडिया जो उसी वर्ष प्राप्त अधिकार पत्र के बल से निकला था, 1861 में शुरू नेशनल बैंक आफ इंडिया और 1867 में शुरू हांगकांग एंड शंघाई बैंकिंग कारपोरेशन (विनिमय बैंकों में चार बड़े बैंक) प्रमुख थे। भारत के ज्वाइंट स्टाक बैंकों ने इन विनिमय बैंकों के प्रभुत्व के खिलाफ आगे बढ़ने की कोशिश की लेकिन चूंकि विदेशी बैंकों को कई तरह के लाभ प्राप्त थे इसलिए उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। 1913 तक विदेशी बैंकों के पास (प्रेसीडेंसी बैंकों और विनिमय बैंकों) बैंकों की कुल जमा राशि का तीन चौथाई हिस्सा था जबकि भारतीय ज्वाइंट स्टाक बैंकों के खाते में एक चौथाई से भी कम हिस्सा आ सका था।

1909-10 में सर जार्ज पैश ने अनुमान लगाया था कि भारत और लंका में कुल 36 करोड़ 50 लाख पौंड की ब्रिटिश पूंजी लगी हुई है (इसमें कंपनियों की पूंजी को छोड़कर निजी पूंजी को शामिल नहीं किया गया है। कंपनियों की पूंजी का तत्काल कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है)। सर जार्ज पैश ने 1911 में रायल स्टेटिस्टिकल सोसायटी के सामने एक लेख पढ़ा था जिसमें उन्होंने यह बात कही थी और एक आंकड़ा प्रस्तुत किया था (जनरल आफ दि रायल स्टटिस्टिकल सोसायटी, खंड 74, भाग 1, 2 जनवरी 1911, पृष्ठ 186)

पृष्ठ 160 की तालिका से यह देखा जा सकता है कि भारत में ब्रिटिश पूंजी निवेश की प्रक्रिया या तथाकथित 'पूंजी के निर्यात' का यह मतलब नहीं था कि भारत में आधुनिक

उद्योग का विकास हो गया था। 1914 के युद्ध के पहले भारत म जितनी ब्रिटिश पूजी लगी थी उसका 97 प्रतिशत भाग सरकारी कामो, यातायात, बागानो और बैंको म लगा हुआ था। कहन का तात्पय यह है कि पूजी का अधिकाश ऐस कामो म लगा था जिनसे अगरजो

	लाख पौंडों मे
सरकारी और म्यूनिसिपल	1825
रेले	1365
बागान (चाय काफी, रबड)	242
ट्राम वे	41
खानें	35
बैंक	34
तेल	32
व्यापारिक और औद्योगिक	25
वित्त भूमि और पूजीनिवेश	18
विविध	33

को भारत म अपना व्यापार फैलाने और कच्चे मालो के स्रोत तथा ब्रिटिश माल क बाजार के रूप म उसका शोषण करने मे मदद मिलती थी। इन कामो का औद्योगिक विकास से किसी भी तरह का सबध नही था।

सर जाज पैश ने जो अनुमान लगाया था वह निस्सदेह एक रूढ अनुमान था जिसम उन बातो को परे रख दिया गया था जिनकी जानकारी सभव नही थी। 1914 से पहले भारत मे ब्रिटिश पूजी निवेश क बारे म जो अन्य अनुमान लगाए गए थ उनके अनुसार ऐसी कुल पूजी 45 करोड पौड (एच० ई० हावड न 1911 म 'इडिया ऐंड दि गोल्ड स्टडड', में उल्लेख किया है), और 47 5 करोड पौड (20 फरवरी 1909 म इकोनामिस्ट म प्रकाशित एक लेख अवर इवेस्टमटस एब्राड' के अनुसार) थी।

2 महाजनी पूजी और भारत

इस प्रकार सामान्यत भारत के महाजनी पूजीवादी शोषण के लिए प्रथम विश्वयुद्ध स पहले ही जमीन तैयार हो गई थी पर यह अपने पूण स्वरूप मे बाद क वर्षों म ही आ सका।

1909-10 म भारत म लगाई गई पूजी की सरचना का सर जाज पैश ने विश्लेषण किया जिससे पता चलता है कि पहल स ही मौजूद औद्योगिक पूजीवाद और व्यापार के जरिए भारत के शोषण की परिस्थितियो से उत्पन्न ब्रिटिश महाजनी पूजी द्वारा भारत के शोषण का नया आधार शुरू से ही व्यापार की प्रक्रिया का सहायक था। उसने इस प्रक्रिया का

स्थान कभी नही ग्रहण किया। फिर भी इसकी मात्रा मे जो परिवर्तन हुआ वह आधुनिक युग के लिए काफी महत्वपूर्ण है।

19वी सदी मे उद्योग के क्षेत्र मे अगरेजो का जो एकाधिकार कायम हो गया था और विश्व बाजार मे उनका जो दबदबा बन गया था वह 1875 के बाद कमजोर पडने लगा। विश्व के अन्य हिस्सो मे भी नए अमरीकी और यूरोपीय प्रतिद्वद्वियो के सामने उनका पतन दिखाई पडने लगा। भारत मे इस अवनति की रफ्तार अपेक्षाकृत धीमी रही क्योकि यहा राजनीतिक प्रभुसत्ता के जरिए अगरेजो ने अपनी पकड काफी मजबूत कर ली थी। यहा तक कि 1914 के युद्ध तक ब्रिटेन का लगभग दो तिहाई भारतीय बाजार पर *अधिकार बना था जबकि शेष एक तिहाई हिस्सा विश्व के अन्य देशो को मिला था।* इसके बावजूद 1875 के बाद से उनका व्यापार भारत मे भी धीरे धीरे किंतु निरतर कमजोर पडने लगा।

1874 से 1879 तक के पाच वर्षो मे भारत मे जो कुल माल विदेशो से आया था उसका 82 प्रतिशत हिस्सा ब्रिटेन से आया था। इसके अलावा कुल माल का 11 प्रतिशत हिस्सा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य हिस्सो स आया था। इस प्रकार विश्व के अ य देशो के लिए भारतीय बाजार का 1/14 से भी कम हिस्सा बच रहा था। 1884 89 तक ब्रिटन का हिस्सा 82 प्रतिशत से घटकर 79 प्रतिशत हो गया। 1899-1904 तक यह 66 प्रतिशत और 1909-14 तक 63 प्रतिशत हो गया।

लेकिन साथ ही लगाई गई पूजी पर मुनाफे म और घरेलू खच की राशि म तेजी से वृद्धि होने लगी। 1913 14 मे भारत और ब्रिटेन के बीच 11 करोड 70 लाख का व्यापार हुआ। जिन सामानो का व्यापार किया गया, चाहे वे ब्रिटन से आयात किए गए हो या भारत से, उन सब पर 10 प्रतिशत व्यापारिक लाभ की दर से 1 करोड 20 लाख पौंड का मुनाफा हुआ। यदि इसमे भारत को भेजे गए सभी ब्रिटिश सामानो पर निर्माताओ के मुनाफे के रूप म और 10 प्रतिशत जोडे (7 करोड 80 लाख पौड पर 80 लाख पौंड) तथा जहाज कपनिया के मालिको की आय के रूप मे 80 लाख पौड जोडें (1913 के व्यापार बोड की एक जाच म अनुमान लगाया गया था कि 1913 म जहाजरानी से ब्रिटेन को जा कुल *9 कराट 40 लाख पौड की आय हुई थी उसमे भारत का हिस्सा केवल 9* प्रतिशत था), तो पता चलेगा कि अगरेज व्यापारियो, निमाताओ और जहाज कपनिया को 1913 म भारत स अधिक से अधिक कुल 2 करोड 80 लाख पौड का मुनाफा हुआ था।

लेकिन एच०ई० हावड के 'इडिया ऐंड दि गोल्ड स्टडड' के अनुसार 1911 तक भारत मे कुल ब्रिटिश पूजी 45 करोड पौंड थी जो 1914 के युद्ध के अवसर पर 50 करोड पौंड से भी अधिक हो गई थी। यदि इस पूजी पर औसत ब्याज की दर महज 5 प्रतिशत ही

रखी जाए तो भी उससे ढाई करोड पौंड की आमदनी होगी। इसमे पूजी के उन सभी वर्गों से होने वाली आय और मुनाफा जोडना होगा जिसका प्रतिनिधित्व भारत म काम करने वाली गैर-व्यापारिक कपनिया करती थी (बागानो, कोयला खाना, पटसन आदि उद्योग प्राय 50 प्रतिशत तक लाभाश के रूप मे भुगतान करते थे)। इसके अलावा उसमे बैंको के कमीशनो विनिमय के सौदो और बैंको एव बीमा कपनियो से होने वाली आमदनियो को जोडना होगा, इसे यदि कम से कम डेढ करोड पौड माना जाए और आय मे जोडा जाए तो कुल मिलाकर 4 करोड पौंड की आय होती थी। इसके साथ साथ ऋण पर ब्याज की राशि के अतिरिक्त घरेलू खच 1913-14 तक 90 लाख पौंड हो गया था। इस प्रकार पूजी निवेश पर मुनाफे और प्रत्यक्ष नजराने के रूप म जाने वाली कुल राशि लगभग 5 करोड पौड हो गई थी।

तुलनात्मक अध्ययन के लिए इस तरह के किसी भी अनुमान का बहुत सीमित महत्व है। लेकिन यह स्पष्ट है कि 1914 तक भारत के साथ व्यापार करने वाली कपनियो, निर्माताओ और जहाज कपनियो को कुल मिलाकर जितना लाभ होता था उससे कही ज्यादा बडी राशि यहा लगी हुई ब्रिटिश पूजी के मुनाफे तथा सीधे नजराने के रूप म इग्लड चली जाती थी। इससे यह पता चलता है कि बीसवी सदी म महाजनी पूजी द्वारा भारत का शोषण ही इस देश की लूट का मुख्य स्वरूप बन गया था।

1914 18 के युद्ध ने और उसके बाद के वर्षों ने इस प्रक्रिया को बहुत तेज किया। भारत के बाजार म ब्रिटेन का हिस्सा दो तिहाई से घटकर एक तिहाई से थोडा ही अधिक रह गया। सीमा शुल्को और ब्रिटेन के सामानो के प्रति अभिरुचि के बावजूद जापान, अमरीका और अतत नवीकृत जमन सामानो की प्रतियोगिता तेजी से सामने आई। भारतीय औद्योगिक उत्पादन ने खासतौर से हल्के उद्योग के क्षेत्र मे काफी प्रगति की है हालाकि उसे महत्वपूण अवरोधो और वित्तीय कठिनाइयो का सामना करना पडा, सरकार की तरफ से भी उसे सदा निरुत्साहित किया गया। औद्योगिक उत्पादन की शुरुआत 1914 के पहले ही हो गई थी जो युद्ध के बाद के वर्षों मे और भी अप्रत्यक्ष रूप म जारी रहा।

1913 मे 1931-32 के बीच ब्रिटन द्वारा भारतीय सामानो का आयात 64 प्रतिशत स घटकर 35 प्रतिशत हो गया। बाद के वर्षों मे ओटावा के अधिमान्य उपाया न 1934 35 तक आयात की मात्रा 40 6 प्रतिशत कर दी लेकिन 1935-36 तक यह फिर 38 8 प्रतिशत और 1936-37 तक 38 5 प्रतिशत हा गयी। जापान का अश 1913 14 म 2 6 प्रतिशत था जो 1935-36 म बढकर 16 3 प्रतिशत हो गया, इसी अवधि मे जमनी का अश 6 9 प्रतिशत से बढकर 9 2 प्रतिशत हा गया और अमरीका का अश 2 6 प्रतिशत से बढकर 6 7 प्रतिशत हो गया ('इकोनामिस्ट' 13 फरवरी 1937)।

अभी हाल क वर्षों म प्रशासन की दृष्टि से 1937 से वर्मा को अलग किए जाने से सरकारी आकडे प्रभावित हुए है। भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार द्वारा प्रतिवर्ष जारी 'रिव्यू आफ दि ट्रेड आफ इडिया' के अनुसार भारतीय बाजार (वर्मा को छोडकर) का अश निम्न रहा

भारतीय सामान के आयात का अनुपात
(प्रतिशत)

	1935-36	1937-38	1939 40
ब्रिटेन	31 7	29 9	25 2
बर्मा	17 5	14 9	19 0
जापान	13 0	12 8	11 7
जर्मनी	7 9	8 8	4 0
अमरीका	5 6	7 4	9 0

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत के व्यापार म अनेक परिवर्तन हुए। शत्रु देशो के साथ व्यापार ठप हो जाने से अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और ईरान, अरब, ईराक, टर्की, मिस्र आदि जैसे मध्य पूर्वी देशो के साथ भारत के व्यापार म उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 'रिव्यू आफ दि ट्रेड आफ इडिया इन 1942-43' ने निम्न आकडे प्रस्तुत किए 1942-43 मे भारतीय सामानो के आयात म ब्रिटेन का अश 26 8 प्रतिशत था (1939-40 म 25 2 प्रतिशत) अमरीका का अश 17 3 प्रतिशत (1939-40 म 9 0 प्रतिशत) कनाडा का अश 5 0 प्रतिशत (1939 40 म 0 8 प्रतिशत), आस्ट्रेलिया का अश 2 9 प्रतिशत (1939-40 म 1 4 प्रतिशत), और मध्यपूर्व के देशो (मिस्र को छोडकर) का अश 20 2 प्रतिशत (1939-40 मे 2 9 प्रतिशत) था, मिस्र का अश 1942-43 म 7 4 प्रतिशत था।

ब्रिटेन का अश अब भी सबस ज्यादा था। यह अपने सभी मुख्य प्रतियोगियो के मिले जुल अश स भी ज्यादा था। लेकिन इस सबस बडे अश म तजी से रुकावट पैदा होने लगी थी और अपना बडा हिस्सा बनाए रखन क लिए ब्रिटेन भारतीय और विदेशी प्रतियोगियो के विरुद्ध हताशा म जबरदस्त कदम उठाने लगा था। 1936 से भारत (यहा तक कि बर्मा सहित) ब्रिटेन क सामानो का मुख्य ग्राहक नही बना रहा जबकि पिछले सौ वर्षों से वह ब्रिटेन का प्रमुख ग्राहक था। 1937 म ब्रिटेन का सामान खरीदने वालो म भारत का दूसरा स्थान और 1938 म तीसरा स्थान हो गया।

भारत के बाजारो म ब्रिटेन के सामानो की मौजूदगी म जबरदस्त कमी आई जो 1818 क बाद तजी से शुरू हो चुकी थी। इसस पता चलता है कि सूती कपडा के निर्यात क जरिए 19वी सदी म ब्रिटेन भारत का जो औद्योगिक पूजीवादी शोषण करता था वह विनाश-कारी प्रभावो के साथ लडखडाकर ढह पडा। उद्योग और व्यापार क बारे म वाकफूर समिति न अपनी रिपोर्ट म बताया कि 1913 से 1923 क बीच भारत द्वारा ब्रिटिश सूती

कपडो के निर्यात मे 57 प्रतिशत की कमी आई। 1913 म भारत ब्रिटन से 3 अरब 5 करोड 70 लाख गज कपडा मगाता था जो लकाशायर द्वारा कुल 7 अरब, 7 करोड, 50 लाख गज कपडे के निर्यात का लगभग आधा हिस्सा था। 1928 तक यह कम हाकर 1 अरब, 45 करोड, 20 लाख गज और 1939-40 तक 14 करोड, 40 लाख गज हो गया। 1942 43 के दौरान ब्रिटेन से कुल 1 करोड 10 लाख गज कपडे का आयात किया गया।

लेकिन जहा एक तरफ शोषण का पुराना आधार नष्ट हो रहा था, वहा दूसरी ओर महाजनी पूजी के शोषण से होन वाले मुनाफो का नया आधार लगातार तयार होता जा रहा था और व्यापक होता जा रहा था। ववई के चैंबर आफ कामस के भूतपूव सचिव श्री सायेर ने 'फाइनेंशियल टाइम्स' मे अपना अनुमान पेश किया कि यदि बडे घिसेपिटे ढग से देखा जाए तो 1929 तक भारत मे कुल ब्रिटिश पूजी 57 करोड, 30 लाख पौं लगी थी और ज्यादा सभावना है कि यह राशि 70 करोड पौंड थी। उनके हिसाब स वितरण के आकडे निम्न थे

सरकारी स्टर्लिंग ऋण	26 करोड, 10 लाख पौंड
गारटीशुदा रेलवे ऋण	12 करोड पौड
5 प्रतिशत युद्ध ऋण	1 करोड, 70 लाख पौंड
भारत म पजीकृत कपनियो मे लगी पूजी	7 करोड, 50 लाख पौंड
भारत से बाहर पजीकृत कपनियो मे लगी पूजी	10 करोड पौंड

भारत म काम करने वाली कपनिया के लिए 17 करोड 50 लाख पौंड की राशि का लगभग निश्चित रूप से कम आकी गई राशि बताया गया और कहा गया कि जितनी पूजी लगाई गई थी उस कुल पूजी का यदि 70 करोड पौड कह तो 'वह सभवत बहुत अधिक नही होगी।' उन्होन आगे कहा

> भारत म दाव पर लगी हमारी पूजी के महत्व का सभवत विशेषज्ञा की एक सीमित सख्या द्वारा पूरी तरह समझा गया है। अधिकाश लोगो को इसकी अधिकता या विविधता की सही जानकारी नही है। कितनी पूजी लगाई गई है और कितनी सवा दी जा रही है इसके बारे म वास्तविक रूप स व्यापार म लगे अनेक सौदागरो, वैंकरा और निर्माताओ तक का भी सभवत अनुमान लगाना कठिन हागा। विदशी पूजी भारत म इतने रूपो म प्रवेश करती है कि इस सिलसिले म कोई भी हिसाब लगाना एक अटकलबाजी ही होगी। ('फाइनशियल टाइम्स,' 9 जनवरी 1930)

ब्रिटिश एमासिएटेड चैंबर आफ कामस इन इडिया द्वारा 1933 के लिए अभी एक्स्म हाल म लगाया गया अनुमान 1 अरब पौंड का है इसम 37 करोड, 90 लाख पौंड सरकारी

स्टर्लिंग ऋण है 50 करोड पौड उन कपनियो का प्रतिनिधित्व करता है जिनका पजी करण तो भारत से बाहर हुआ है पर जो भारत मे काम करती ह और शेष राशि भारत मे पजीकृत कपनियो मे लगी पूजी तथा विविध कार्यों मे लगी है।[1]

विश्व भर म ब्रिटन की अनुमानत 4 अरब पौड की पूजी लगी हुई है और यह 1 अरब पौड समूची ब्रिटिश पूजी निवेश के एक चौथाई हिस्से का निरूपित करता है। 1911 मे जब सर जाज पैश ने अपना अनुमान पेश किया था तब उन्होंने बताया था कि भारत मे जो ब्रिटिश पूजी लगी हुई है वह समूचे विश्व म लगी ब्रिटिश पूजी के 11 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है। इस राशि के 1/9 से 1/4 होते, 11 प्रतिशत से बढकर 25 प्रतिशत होने से हम आज भारत के लिए ब्रिटिश महाजनी पूजी के बढत महत्व को नाप सकते ह और इससे भारत म ब्रिटिश वित्तीय हिता की रक्षा के विशेष उपायो से लैस आधुनिक साम्राज्यवादी नीति के रहस्य को समझ सकते है।

शोषण के आधुनिक साम्राज्यवादी तरीको द्वारा प्रति वप भारत से नजराने के रूप में इग्लैड जाने वाली राशि का मूल्य क्या है? भारतीय अथशास्त्रियो शाह और खभाता ने 1924 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक वेल्थ ऐंड टैक्सेबुल कैपेसिटी आफ इडिया' मे इसका अनुमान लगाने का प्रयास किया था। वप 1921-22 के लिए उपलब्ध आकडो के आधार पर उन्होंने हिसाब लगाया और निम्न नतीजे निकाले (1921-22 में 1 शिलिंग 4 पैस के वतमान औसत विनिमय पर स्टर्लिंग के बराबर की राशि को उनके रुपये के अनुमान में जोड दिया गया है)

भारत से ब्रिटेन तथा अन्य देशो को जाने वाला वार्षिक नजराना
(1921-22)

	लाख रुपयो मे	लाख पौंडो मे
राजनीतिक कामो के लिए कटौती या गृह शुल्क	5000	333
भारत मे पजीकृत विदेशी पूजी पर ब्याज	6000	400
विदेशी कपनियो को दिया गया माल और यात्री भाडा	4163	277
बैंकिंग कमीशनो पर भुगतान	1500	100
भारत में विदेशी व्यापारियो और व्यवसाय में लगे लोगो का मुनाफा आदि	5325	355
	21988	1465

दो अरब 20 करोड रुपये या लगभग 15 करोड पौंड की मोटे तौर पर जोडी गई यह राशि अनुमान लगाने के समय ब्रिटेन की आबादी के प्रति व्यक्ति 3 पौंड से भी अधिक के बराबर या ब्रिटेन मे सुपर टैक्स देने वाले प्रत्येक के लिए लगभग 1700 पौंड प्रतिवर्ष के बराबर है ।

1921-22 के अत्यत उच्च स्तर से कीमतो में गिरावट के बाद कुल नजराने की राशि का अभी हाल ही मे अनुमान लगाने का प्रयास किया गया । यह प्रयास श्री एम० विश्वश्वरया ने 1934 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक 'प्लैंड इकोनामी फार इडिया' में किया है । अपने विश्लेषण के जरिये उन्होने निम्न निष्कर्ष निकाले (1 शिलिंग 6 पैंस के वतमान विनिमय दर पर स्टर्लिंग के बराबर की राशि को रुपये में दिए गए उनके अनुमान में जोड दिया गया है)

	लाख रुपयो मे	लाख पौंडों मे
ब्रिटिश और विदेशी जहाजरानी सेवा	3500	260
विदेशी बैंको को भुगतान करने योग्य मुद्रा विनिमय तथा अन्य कमीशन	2100	160
भारतीय उद्योगो म लगे ब्रिटन की नागरिकता वाले व्यक्तियो के व्यापारिक लाभ और वेतन आदि	4000	300
भारत मे लगी ब्रिटिश पूजी पर ब्याज	6500	490
	16100	1210

यह अनुमान पेंशन तथा अन्य घरेलू खर्चों के लिए सरकारी तौर पर इग्लैंड भेजी गई राशि और भारत के साथ व्यापार सबध रखने वाले गैरब्रिटिश नागरिको की देय राशि के अतिरिक्त है । 1933-34 मे ऋण पर ब्याज के अतिरिक्त घरेलू खच की राशि से इसमें 1 करोड 40 लाख पौंड की और वृद्धि हो गई और इस प्रकार कुल योग 13 करोड 50 लाख पौंड हो गया । चूकि भारत मे मूल्यो का सूचक अक 1921 में 236 से घटकर 1933 में 121 हो गया, इसलिए ऐसा लगता है कि यदि सही सही अनुमान लगाया जाए तो यह योग दस वर्ष की तुलना में उल्लेखनीय वृद्धि को निरूपित करेगा । फिर भी तमाम सामानो के बारे में ठीक ठीक आकडे उपलब्ध न होने के कारण इन अनुमानो से एक स्थूल सकेत ही मिलता है ।

भारत द्वारा ब्रिटेन भेजे जाने वाले वार्षिक नजराने के बारे में ताजा अनुमान लारेंस क० रोजीगर ने अपनी रिपोर्ट 'इडिपेंडेस फार कोलोनियल एशिया—दि कास्ट टु दि वेस्टन वल्ड' में प्रस्तुत किया है । यह रिपोर्ट 1945 में अमरीका की 'फारेन पालिसी एसोसिएशन' द्वारा जारी की गई थी । इसके अनुसार इग्लैंड भारत से प्रतिवर्ष 13 करोड, 50 लाख पौंड

नजराने के रूप मे पाता है जिसके अतगत निम्न चीज शामिल है

	लाख पौंडों मे
67 करोड की लगाई गई पूजी पर ब्याज की ब्रिटिश दर 6-7-8 प्रतिशत के हिसाब से ब्याज	460
घरेलू खच के मद में व्यापार	330
जहाजरानी	300
भारत में नौकरी कर रहे ब्रिटिश जनो द्वारा भेजी गई राशि	60
कुल योग	1150

('हिंदुस्तान स्टैंडड,' कलकत्ता, 5 जुलाई 1945)

जिन कारणो का एकदम सही सही हिसाब नही लगाया जा सकता उनके कारण इस हिसाब में घटती बढती की पूरी पूरी गुजाइश रखते हुए अनिवाय रूप से यही नतीजा निकलता है कि आधुनिक युग मे भारत का बीते युग की तुलना मे कही अधिक तीव्रता के साथ शोषण हुआ है। अनुमान लगाया गया था कि ब्रिटिश सम्राट द्वारा भारत की सत्ता सभालने से पहले के 75 वर्षों में, भारत से कुल 15 करोड पौंड नजराने के रूप मे इग्लैंड गया। आधुनिक युग में, युद्ध से पूव 20 वर्षों के दौरान इग्लैंड ने भारत से प्रतिवष अनुमानत 13 करोड, 50 लाख पौड से लेकर 15 करोड पौंड तक नजराने के रूप में वसूला। महाजनी पूजीवाद की स्थितियो के अतगत भारत के इस तीव्र होते गए शोषण की वजह से ही आज भारत में इतना गभीर राजनीतिक सकट और साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह पैदा हो गया है।

3 उद्योगीकरण की समस्या

कभी कभी यह विचार व्यक्त किया जाता है कि भारत में ब्रिटिश शासन के आधुनिक महाजनी पूजी वाले युग ने, खासतौर से 1914-18 के युद्ध के बाद से जबरदस्त शोषण के बावजूद स्वतत्र व्यापारवाले, औद्योगिक पूजीवादी प्रभुत्ववाले पूववर्ती पतन के स्थान पर किसी न किसी तरह उद्योगीकरण और आर्थिक विकास को बढावा दिया। आधुनिक साम्राज्यवादी प्रचार ने, जो भारत को विश्व के प्रमुख औद्योगिक देश' के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश करता है (1922 में ब्रिटिश सरकार ने जेनेवा में इसका जबरदस्त दावा किया। यह दावा बेहद सदिग्ध आकडो पर आधारित था और इसका उद्देश्य अतर्राष्ट्रीय श्रम कायालय की सचालन समिति में ब्रिटेन के लिए अतिरिक्त स्थान बनाना था), इस विचार को बढावा दिया है और भारत मे औद्योगिक विकास के प्रति सिद्धात रूप मे एक शुभचितक दृष्टिकोण अपनाने की घोषणा की है।

तथ्यो की छानबीन से पता चलता है कि इस विचार का दूर दूर तक कोई औचित्य नही

है। आधुनिक युग म 1914 के युद्ध से पहले और खासतौर से युद्ध के बाद भारत में एक सीमा तक औद्योगिक विकास हुआ है लेकिन इस विकास की तुलना किसी भी तरह बडे गैरयूरोपीय देशो में इसी काल में हुए विकास के साथ नही की जा सकती। भारत में जो भी औद्योगिक विकास हुआ है वह, दरअस्ल आर्थिक तथा राजनीतिक दोनो ही क्षेत्रो में ब्रिटिश महाजनी पूजी क जबरदस्त विरोध का सामना करके और उससे सघर्ष करके हुआ है। यह विकास असतुलित और एकतरफा विकास है जो मुख्यतया हल्के उद्योग क्षेत्र में हुआ, निर्णायक भूमिका अदा करने वाले भारी उद्योग में बहुत मामूली विकास हुआ। जैसा कि पहले अध्याय में की गई प्रारभिक जाच से सकेत मिलता है, यह कहना आज भी असभव है कि भारत में सामान्यत उद्योगीकरण की कोई प्रक्रिया घटित हुई है।

1914 तक साम्राज्यवाद, भारत में औद्योगिक विकास का खुले तौर पर और साफ साफ विरोध करता था। 1914 तक भारत के बारे में ब्रिटिश नीति उसी प्रवृत्ति से सचालित हो रही थी जिस प्रवृत्ति न स्वतत्रता के युद्ध से पूर्व अमरीका के प्रति ब्रिटिश सबधो को सचालित किया था और जिसने अमरीकी उपनिवेशो में इस्पात भट्टिया स्थापित करने पर पूरी तरह प्रतिबध लगा दिया था (ऐडम स्मिथ 'वेल्थ आफ नेशस,' खड 4 7,2)। सर वेलेटाइन किरोल ने सरकारी तौर पर 'विशुद्ध भारतीय उद्यम के प्रति ईर्ष्या' के बारे में 1922 में लिखा

> भारतीय औद्योगिक विकास के बारे मे अतीत के हमारे काम हमेशा कोई बहुत सराहनीय नही रहे है और युद्ध के कारण पडने वाला दबाव था जिसने विशुद्ध भारतीय उद्योग के प्रति यदि ईर्ष्या नही तो अलगाव की पुरानी प्रवृत्ति को त्यागने के लिए मजबूर किया। (सर वेलेटाइन किरोल का 2 अप्रैल, 1922 के 'आब्जवर' मे प्रकाशित लेख)

इसी प्रकार सरकार की 1921 की वार्षिक रिपोर्ट मे कहा गया

> युद्ध से कुछ समय पूर्व महत्वपूर्ण कारखानो और सरकारी आर्थिक सहायता के जरिए भारतीय उद्योगो को बढावा देने के लिए किए गए कुछ प्रयासो को व्हाइटहाल की ओर से बडे कारगर ढग से निरुत्साहित किया गया। ('मारल ऐड मैटीरियल प्रोग्रेस आफ इडिया,' 1921 पृष्ठ 144)

सर जान हीवेट न 1937 म कहा

> तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा का मसला सरकार और जनता के सामने पिछले 20 वर्षों से भी अधिक समय मे है। शायद ही कोई और विषय हो जिस पर इतना कुछ लिखा या कहा गया हो लेकिन काम बहुत कम किया गया हो।

(यूनाइटड प्राविसेज के लेफ्टिनेट गवनर सर जान हीवेट का भारतीय औद्योगिक सम्मेलन मे भाषण, 1907)

1921 की सरकारी रिपोट म, भारतीय औद्योगिक विकास को 'व्हाइटहाल की ओर से कारगर ढग' से निरुत्साहित 'किए जाने के उल्लेख के फलस्वरूप 1905 म लाड कजन की पहल पर वाणिज्य और उद्योग विभाग की स्थापना हुई और 1908 मे मद्रास सरकार द्वारा उद्योगो के लिए एक डायरेक्टर की नियुक्ति की गई। मद्रास के उद्योग विभाग के कार्यों का 'स्थानीय यूरोपीय व्यापारिक समुदाय ने विरोध शुरु किया। इनका कहना था कि यह निजी उद्योग के लिए गभीर खतरा है और राज्य द्वारा सरकार के दायरे से बाहर के क्षेत्र म किया गया अनुचित हस्तक्षेप है' (इडियन इडस्ट्रियल कमीशन रिपोट, पृष्ठ 70)। 1910 म सेक्रेटरी आफ स्टेट लाड मारले ने एक अभिशसी विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर करके व्हाइटहाल के प्रतिबध को प्रयोगात्मक रूप दे दिया

> सूबे म नए उद्योगो की स्थापना के प्रयासो का जो ब्यौरा मद्रास सरकार ने भेजा है, उसकी मैंने जाच की है। इनके नतीजा से काफी श्रम और पटुता का पता चलता है फिर भी इनका स्वरूप ऐसा नही है जिसे देखत हुए इस दिशा मे राज्य द्वारा किए प्रयास की उपयोगिता के बारे मे सदेह न किया जा सके बशर्ते ये औद्योगिक निर्देशो तक स्वय को कडाई से सीमित रखें और व्यापारिक जाखिम से बचे रहे मुझे आपत्ति औद्योगिक सूचना का ब्यूरो स्थापित करने से या सूचना के ऐसे केंद्र से नए उद्योगो, तरीको या उपकरणो के बारे मे सलाह प्रचारित करने से नही है, लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि निजी उद्योग मे दखलदाजी के इरादे से कुछ न किया जाए।
> (लाड मारले, 29 जुलाई 1910 की विज्ञप्ति)

इस विज्ञप्ति के 'घातक प्रभाव' को इडियन इडस्ट्रियल कमीशन रिपोट (पृष्ठ 4) ने दर्ज किया।

भारतीय औद्योगिक विकास को हतोत्साहित करने का काम महज प्रशासनिक सक्रियता तक या निष्क्रियता तक ही सीमित नही रहा बल्कि इसने अपने माफिक सीमाशुल्क नीति भी तैयार की। 19वी सदी के सातवें और आठवें दशक म जब भारतीय कपडा उद्योग अपनी कमजोर स्थिति स तरक्की करने लगा तो तत्काल ही इग्लैंड मे इस बात के लिए आदोलन शुरू हो गया कि आयात किए जाने वाले सामानो पर चुगी समाप्त की जाए, यह चुगी सूती कपडे के सामान पर भी लगती थी। 1874 म मैनचेस्टर मे चैंबर आफ कामस ने इस आशय का एक ज्ञापन दिया और 1877 म हाउस आफ कामन्स न एक प्रस्ताव पारित किया। भारत सरकार को यह प्रस्ताव भेजते हुए लाड साल्सबरी ने इसके मकसद को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया क्योकि उन्होने प्रस्ताव भेजते समय इस तथ्य पर चिता व्यक्त की कि पाच और

मिले अब काम शुरू ही करने वाली है, और यह अनुमान लगाया गया है कि मार्च 1877 के अंत तक भारत में 1, 231, 284 तकले चलन लगेंगे' (लार्ड सालसबरी का पत्र—गवर्नर जनरल के नाम, 30 अगस्त 1877)। तदनुसार 1879 में मोटे सूती कपड़ो पर जहां प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता था, आयात शुल्क समाप्त कर दिया गया और 1882 में नमक और शराब को छोड़कर सभी सामानों पर आयात शुल्क समाप्त कर दिया गया। 1894 में जब वित्तीय जरूरतों ने सूती कपड़ा सहित अन्य सामानों पर आयात शुल्क फिर से लगाने को बाध्य किया तो मिल के बने सभी भारतीय कपड़ो पर उत्पादन शुल्क थोपने का तरीका ढूंढ निकाला गया। यह ऐसा कर था जो किसी भी देश के आर्थिक इतिहास में बेमिसाल है। 1896 में यह उत्पादन शुल्क 3.5 प्रतिशत तय किया गया जो 1917 तक पूरी तरह लागू रहा। 1917 में आयात शुल्क को 3.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 7.5 प्रतिशत किए जाने पर इसका प्रभाव आंशिक रूप से कम हुआ और 1925 में जाकर यह पूरी तरह समाप्त किया गया (दरअस्ल यह मिल मजदूरों की हड़ताल के दबाव से हुआ)।

इन परिस्थितियों में 1914 तक औद्योगिक विकास बेहद धीमा रहा। 1914 तक फैक्टरीज ऐक्ट के अंतर्गत औद्योगिक मजदूरों की संख्या महज 9,51,000 थी। जो विकास हुआ वह मुख्यत: कपास और जूट उद्योग तक ही सीमित रहा। कपास उद्योग में भारतीय पूंजी अपने को आगे बढ़ाने का प्रयास कर रही थी और पटसन उद्योग में ब्रिटिश पूंजी की कोशिश यह थी कि ब्रिटेन के पटसन मजदूरों की मांगों के विरोध में एक फायदेमंद हथियार के रूप में वे भारत में उपलब्ध मजदूरों का इस्तेमाल कर सकें जो सस्ते दर पर काम कर देते हैं। इंजीनियरिंग के क्षेत्र में केवल मरम्मत करने के लिए स्थापित कारखानों का और वह भी मुख्यतया रेलवे के लिए काम करने वाले कारखानों का अस्तित्व था। लोहा और इस्पात की शुरुआत 1914 के युद्ध के अवसर पर ही हो सकी, लेकिन मशीनों का उत्पादन अब भी शुरू नहीं हुआ था।

प्रथम विश्वयुद्ध के साथ ही सरकार ने अपनी नीति में पूरी तरह परिवर्तन की घोषणा की। सरकारी स्तर पर आर्थिक क्षेत्र में उद्योगीकरण की नीति का लक्ष्य बनाने की घोषणा की गई, ठीक वैसे ही जैसे राजनीतिक क्षेत्र में उत्तरदायित्वपूर्ण प्रशासन की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया था। नई नीति की घोषणा पहली बार भारत के वाइसराय लार्ड हार्डिंग ने 1915 में की

> यह दिनोदिन स्पष्ट होता जा रहा है कि युद्ध के बाद भारत की औद्योगिक क्षमता को बढ़ाने के लिए एक निश्चित और आत्मचेतन नीति को जारी रखना होगा नहीं तो भारत विदेशों के निर्माताओं के उत्पादनों का अंबार इकट्ठा करने की एक जगह बनकर रह जाएगा। जैसे जैसे यह बात साफ होती जा रही है कि बड़े देशों का राजनीतिक भविष्य उनकी आर्थिक स्थिति पर

टिका हुआ है वैस वैसे वाहरी दश अपन लिए बाजार की तलाश की होड म तजी स लगे हुए है। इस समस्या क प्रति भारतीय जनता एकमत है और इसको नजरअदाज नही किया जा सकता

युद्ध के बाद भारत अपने को इस बात का अधिकारी पाएगा कि वह अधिक से अधिक सहायता की माग कर सके ताकि जहा तक परिस्थितिया अनुमति दें उसे एक औद्योगिक देश के रूप म उचित स्थान प्राप्त हो सकगा। (भारत के सचिव के नाम लाड हार्डिंग का पत्र 26 नववर 1915)

इसके बाद 1916 म इस्टीटयूट आफ माइनिंग इजीनियस के अध्यक्ष सर थामस हालैंड के सभापतित्व म भारतीय औद्योगिक आयोग का गठन हुआ जिसने 1918 म अपनी रिपोट दी। भारतीय साविधानिक सुधारो के बारे में 1918 की मोटागू—चैंम्सफोड रिपोट में भी यही लक्ष्य निर्धारित किया गया था

सभी तरह स औद्योगिक विकास के लिए एक अग्रगामी नीति की अत्यत आवश्यकता है। ऐसा भारतीय अथव्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने क लिए ही नही वल्कि भारत की जनता की आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए भी जरूरी है आर्थिक और सैनिक दोना आधारो पर शाही हितो की भी यह माग है कि भारत की प्राकृतिक सपदा का अव से बहतर इस्तेमाल किया जाए। हम शक्ति के उस आवेग का अदाजा नही लगा सकते जो एक औद्योगिक भारत ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को प्रदान करेगा। (मोंटागू चैंम्सफोड रिपोट, पृष्ठ 267)

नीति में इस घोषित परिवतन के कारणो की उत्पत्ति युद्ध की परिस्थितिया से हुई थी और इसे सरकारी वयानो के जरिए बहुत साफ तौर पर देखा जा सकता है। इन कारणो को तीन वर्गों में बाटा जा सकता है।

सबसे पहले सैनिक और सामरिक कारण थे। युद्ध की परिस्थितियो ने, सचार और आपूर्ति व्यवस्था के नष्ट हो जान तथा मैसोपोटामिया की अपकीर्तियो ने भारतीय साम्राज्य की पुरानी पद्धति और पूव में ब्रिटेन की समूची सामरिक स्थिति की कमजोरी को एकदम नगा करके सामने रख दिया। इसके कारण भारत में आधुनिक उद्योग के सर्वाधिक प्रारभिक आधार को विकसित करने में विफलता मिली जिसका नतीजा यह हुआ कि लबी दूरी की समुद्रपारीय सप्लाई पर महत्वपूण जरूरतो के लिए निभर होना पडा। ब्रिटिश शासको पर इस स्थिति का कितना जबरदस्त प्रभाव पडा इसका जायजा हमें मौंटागू चैंम्सफोड रिपोट म मिल जाता है जिसमे भारत के आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर जोर देते हुए बताया गया है कि भारत 'युद्ध के पूर्वी रगमच का आधार वन सकता है।

> समुद्री सचार व्यवस्था के अस्थाई तौर पर भग होने की सभावना के कारण हमें युद्ध के पूर्वी क्षेत्रो मे सुरक्षात्मक कार्यवाहिया करने के लिए गोला बारूद के आधार के रूप में भारत पर निर्भर रहने के लिए मजबूर होना पडेगा। आज के युग मे औद्योगिक दृष्टि से किसी विकसित समुदाय के उत्पादन मात्रा में नही किंतु अपने स्वरूप में इस सीमा तक युद्ध के हथियारो स मेल खाते हैं कि भारत के प्राकृतिक साधनो का विकास करना लगभग एक सैनिक आवश्यकता बन गया है।

दूसरे कारण वे थे जो आर्थिक होड से पैदा हुए थे। भारतीय बाजार पर अगरेजो द्वारा स्थापित एकाधिकार को विदेशी प्रतियोगियो ने ध्वस्त करना शुरू कर दिया था। इसके साथ ही युद्ध की आवश्यकताओ से उत्पन्न ब्रिटिश औद्योगिक स्थिति के कमजोर होन से इस बात का खतरा पैदा हो गया था कि युद्ध के बाद अन्य देशो का भारत में तेजी से प्रवेश होने लगेगा और ब्रिटेन के हाथ से भारत का बाजार निकल जाएगा। जैसा लार्ड हार्डिंग ने बताया था, खतरा इस बात का है कि भारत 'विदेशी निर्माताओ के सामानो का अबार लगाने की जगह' बन जाएगा। इसे रोकने के लिए सीमा शुल्क की प्रणाली से दो मकसद हल होंगे। एक तो उसस जिस हद तक विदेशी उद्योगपतियो के देश मे घुसने के बजाय खुद भारत के अदर उद्योग धधा का विकास होता था, उस हद तक अगरेजो के लिए इस बात की सभावना थी कि अपने आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व के कारण व अतत ब्रिटिश पूजी के लिए मुनाफा निकाल सके। लेकिन यदि भारत के बाजार पर किसी स्वतत्र विदेशी पूजीवादी शक्ति का कब्जा हो जाता तो इसकी कोई गुजाइश नही रहती। दूसरे, सीमा शुल्क की व्यवस्था यदि एक बार हो जाती है तो इस बात के लिए भी रास्ता तैयार हो जाएगा कि ब्रिटेन से आने वाले माल पर शुल्क कम कराके अगरेज भारत के बाजार पर फिर से कब्जा कर लें।

तीसरे, अदरूनी राजनीतिक कारण थे। युद्ध के दौरान और युद्ध के बाद के अशात वर्षों मे भारत पर अपना नियत्रण बनाए रखने के लिए अगरेजो के लिए यह जरूरी हो गया था कि वे भारत के पूजीपति वर्ग का सहयोग प्राप्त करे और इसके लिए यह आवश्यक था कि वे यहा के पूजीपति वर्ग को कुछ आर्थिक तथा राजनीतिक सुविधाए दें तथा सुविधाए देने का वायदा करे। जैसाकि लार्ड हार्डिंग ने बडी ईमानदारी के साथ सकेत किया था कि 'भारतीय जनता के रुख को नजरअदाज नही किया जा सकता।'

नीति म परिवर्तन के लिए रक्षात्मक शुल्क व्यवस्था के विकास का तरीका अपनाया गया। इस दिशा मे पहले कदम के रूप मे सूती कपडे के सामान पर सीमा शुल्क बढा दिया गया और 1917 म यह 7 5 प्रतिशत से बढाकर 1921 मे 11 प्रतिशत कर दिया गया जबकि उत्पादन कर केवल 3 5 प्रतिशत रहने दिया गया और उसे भी 1925 म पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। विदेशो से आयात किए गए सामानो पर लगने वाले

कर का भी बढा दिया गया और इसे 1921 म 11 प्रतिशत से बढाकर 1922 म 15 प्रतिशत कर दिया गया। 1921 म एक वित्तीय आयोग गठित किया गया जिसन प्रत्यक्ष मामले मे पूरी छानबीन करने के बाद 'भेदभावपूर्ण सरक्षण' के पक्ष म अपनी रिपोट दी जबकि पाच भारतीय सदस्यो की असहमति टिप्पणी ने पूरा पूरा सरक्षण दिए जाने का समथन किया। आयोग ने यह रिपोट 1922 मे प्रस्तुत की थी। इस रिपोट मे सीमा शुल्क बोड की स्थापना की सिफारिश की गई थी 1923 मे बोड की स्थापना हो गई। बोड के सामने जो पहला महत्वपूर्ण मसला विचाराथ आया वह था लोहा और इस्पात उद्योग का मसला। 1924 म लोहा और इस्पात उद्योग को 33 1/3 प्रतिशत की दर स सरक्षण मिला और साथ ही ग्रैच्युटी की प्रणाली भी शुरू की गई।

इस समय भारतीय औद्योगिक पूजीपतियो को इस बात की बहुत आशा हो गई थी कि सरकार अब उद्योगो के विकास म मदद करन की नीति का पालन करेगी। यह स्वराज पार्टी अथवा भारतीय प्रगतिशील पूजीवाद की पार्टी का युग था जिसन 1923 म राष्ट्रीय काग्रेस मे गाधीवादी नतृत्व म चलने वाली 'असहयोग' की नीतियो को विफल किया था, और 1923-26 के वर्षों म उस पार्टी की अपनी नीतियो का दबदबा बना था। इस नीति के अतगत पहले तो कौसिलो म घुसने की बात शामिल थी ताकि अदर स लडाई चलाई जाए और फिर सम्मानीय सहयोग' पर अमल किया जाए। लेकिन आने वाले वर्षों म इन आशाओ पर जबरदस्त कुठाराघात होना था।

4 उद्योगीकरण के मार्ग मे बाधाए

1914-18 के युद्ध के बाद औद्योगिक विकास को सरकार से जो मदद मिली उसकी चरम सीमा यह थी कि 1924 म उसने लोहा और इस्पात उद्योग का सरक्षण और आर्थिक सहायता दी। इसके बाद यह देखा जा सकता है कि सरकारी मदद कम होती गई।

भारतीय औद्योगिक आयोग न उद्योगो से सबधित एक शाही विभाग खोलने की व्यापक योजना बनाई थी जिसके अतगत प्रत्यक प्रात म काम करने वाल प्रातीय विभागो का जाल बिछा दिया जाए। लेकिन इस योजना का कोई फल सामने नही आया। केंद्रीय सगठन की कभी स्थापना नही हो पाई जबकि प्रातीय विभागो को शिक्षा विभाग की तरह हस्तातरित' विषयो की सूची मे शामिल कर लिया गया। इसका अथ यह था कि उनका अपना खच चलाने के लिए पैसा का अभाव रह और इसके फलस्वरूप जो झझट पैदा हो उसकी समूची जिम्मेदारी भारतीय मत्रियो के सर पर थोप दी जाए। 1934 तक जो उपलब्धिया हुई थी उनका विवरण किसी गहरी विद्वान प्रेक्षक ने बडी कुशलता मे पश किया है

> दुर्भाग्यवश केंद्रीय सगठन की स्थापना आज तक नही हो पाई और 1919 के सविधानिक सुधारो के साथ प्रातीय सगठन को शिक्षा के साथ हस्तातरित

> विषय बनाकर रख दिया और इस प्रकार इसे स्थानीय सरकार के हाथो म सौंप दिया जो चुने गए विधानसभा सदस्यो के प्रति जिम्मेदार है। यह भी दुर्भाग्य की बात है कि चूंकि उपलब्ध धनराशि एकदम अपर्याप्त है इसलिए बहुत महत्वपूर्ण नीतिया नही शुरू की जा सकती। इसके अलावा उद्योग को बढावा देने के लिए जरूरी है कि सरकार की दूरगामी एकीकृत नीति हो जिसका सबध केवल कच्चे माल और उत्पादन के तरीको से नही बल्कि बाजार की व्यवस्था से भी हो। दरअस्ल इसे शिक्षा सबधी नीति और राष्ट्रीय महत्व की लगभग सभी बातो से जोडा जाना चाहिए। इसम सदेह है कि भारत म स्थापित केवल प्रातीय कार्यालयो का कोई उल्लेखनीय प्रभाव हो पाएगा। (डी० एच० बुकानन दि डेवलपमेंट आफ कैपिटिलिस्ट एटरप्राइज इन इडिया,' 1934, पृष्ठ 463-64)

अभी हाल मे औद्योगिक सूचना और अनुसधान सबधी केंद्रीय ब्यूरो' की स्थापना हुई है जिसे तीन वर्षों के लिए 37,500 पौंड की राशि निर्धारित की गई है। यह एलान किया गया कि यह ब्यूरो मुख्यतया रेशम के कपडे तैयार करने और हथकरघा के वस्त्र बनाने पर ध्यान देगा।

> अब तक घोषित व्यावहारिक परिणामो के अनुसार औद्योगिक सूचना और अनुसधान सबधी एक केंद्रीय ब्यूरो जल्दी ही काम शुरू करने वाला है जिसपर अगले तीन वर्षों मे पाच लाख रुपये (37 500 पौंड) खर्च किए जाएगे। यह ब्यूरो रेशम के कपडो और हथकरघा वस्तुओ की बुनाई पर ध्यान देगा। भारी उद्योगो को जो आज की सबसे बडी जरूरत है, एकदम अछूता छोड दिया गया है और देश के आर्थिक विकास के लिए तैयार किए गए व्यापक प्रस्तावो को यदि उनका कही अस्तित्व है तो, अपरिभाषित रखा गया है और वह रहस्य के आवरण म लिपटा पडा है। (सर एम० विश्वेश्वरैया प्लाड इकोनोमी फार इडिया' 1936, पृष्ठ 247)

1924 म लोहा और इस्पात को सरक्षात्मक शुल्को की सुविधा मिल जाने पर शुल्क बोर्ड के पास इस तरह के सरक्षण के लिए अन्य कई उद्योगो ने भी अपने प्रार्थनापत्र भेजे। अधिकाश मामलो म इन आवेदनो को मजूर नही किया गया। इन मामलो म सबसे महत्वपूर्ण मामले सीमेंट और कागज उद्योग से सबधित थे। केवल एक प्रार्थनापत्र मजूर किया गया जो माचिस उद्योग का था। इसका कारण यह था कि भारत के माचिस उद्योग म विदेशी पूजी लगी थी।

इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात थी लोहा और इस्पात की सरक्षणात्मक प्रणाली के प्रति उस समय किया गया सलूक जब 1927 म उस नवीकरण के लिए पेश किया गया।

बुनियादी शुल्को म कमी की गई और आर्थिक सहायता समाप्त कर दी गई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि एक नया सिद्धात स्थापित कर दिया गया यह ब्रिटेन से आन वाले माल पर कम शुल्क लगाने या साम्राज्य के माल पर शुल्क लगाने म रियायत बरतने का सिद्धात था।

यह बात अब शुल्क प्रणाली का मूल सिद्धात बन गई थी। 1930 तक शाही सामानो के साथ रियायत बरतने के दायरे म सूती कपड से बने सामान आ गए थे। 1932 म आटावा समझौत हुए और व्यापक तौर पर भारतीया क विरोध तथा भारतीय विधानसभा मे असतोष की भावना व्यक्त करने वाले मता के बावजूद साम्राज्य से आने वाने सामानो पर रियायत बरतने वाली प्रणाली को भारत पर थोप दिया गया। ब्रिटेन द्वारा भारतीय सामानो के आयात की मात्रा मे वृद्धि हुई और 1931-32 म यह 35 5 प्रतिशत से बढकर 1934-35 म 40 6 प्रतिशत हो गई। जापान तथा ब्रिटेन के अलावा अन्य देशो के सूती सामान पर शुल्क 50 प्रतिशत तक बढा दिया गया (1933 म जबरदस्त व्यापारिक होड के दौरान एक समय इसे बढाकर 75 प्रतिशत तक कर दिया गया) जबकि ब्रिटेन के बने सूती सामानो पर शुल्क घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया गया। 1933 म शुल्क बोड की रिपोट ने शाही सामानो क प्रति बरती जाने वाली रियायत के विरुद्ध अपना मत व्यक्त किया लेकिन इसकी अवहेलना कर दी गई।

ब्रिटिश उद्योग की प्रतियोगात्मक क्षमता का प्रत्यक्ष रूप म मदद देने के अलावा शुल्क प्रणाली ने भारत मे उद्योग के विकास पर अपना प्रभाव डालने के साथ मुख्यतया विदेशी हिता को फायदा पहुचाया और इन विदेशी हितो म सबस ज्यादा ब्रिटिश हित थे। आगे चलकर हम देखेगे कि इस सरक्षणात्मक प्रणाली का खुलकर लाभ उठाते हुए बडे विदेशी इजारेदारो ने भारत म अपने उप व्यवसाय स्थापित किए है और भारत के औद्योगिक विकास के लिए गभीर खतरा बन गए है।

20वी सदी के तीसरे दशक के प्रारभिक दिनो म लागू शुल्क प्रणाली जिसे मूलत भारतीय उद्योग को सहायता पहुचाने का एक साधन घोषित किया गया था, बाद क वर्षो म ब्रिटिश उद्योग को सहायता पहुचाने के लिए काम आने लगी। (साथ ही उसने भारत से कच्चे माल और अधनिर्मित सामानो क निर्यात के लिए अपन अनुकूल दर निधारित किए अर्थात 1914 स पूव की स्थिति की आर लौटने की कोशिश की)। इसस जाहिर होता है कि शुल्क प्रणाली के महत्व म उल्लखनीय रूपातरण हो गया। यहा तक कि प्रतिक्रियावादी कजन सरकार ने 1914 क युद्ध से पूव भारत क लिए ब्रिटिश साम्राज्य क सामाना के प्रति बरती जान वाली रियायत का विराध किया था और कहा था कि इससे भारत को विशुद्ध घाट का सामना करना पडेगा। भारत क बाजारा म ब्रिटिश निर्माताआ की ही सबसे बडी इजारेदारी कायम थी और किसी अन्य विदेशी निर्माता के विरुद्ध नही बल्कि इन ब्रिटिश निर्माताआ के ही विरुद्ध भारतीय उद्योगपतिया न सरक्षण की इच्छा जाहिर

की थी। दूसरी तरफ ब्रिटिश पूंजीवाद ने भारत में सीमा शुल्कों की इच्छा मूलत इसलि जाहिर की थी ताकि वे भारत के बाजारों को गैरब्रिटिश प्रतियोगियों के आक्रमण बचाए रख सकें। इस प्रकार यहा हितों की टकराहट थी। इस सघष की अभिव्यक्ति उ समय भारतीय विधानसभा म प्रत्यक्ष रूप से हुई जब साम्राज्यिक तरजीह की प्रणाल को और भी व्यापक बनाने वाला ओटावा समझौता और जनवरी 1935 का व्यापा समझौता 58 के विरुद्ध 66 मतों से अमान्य हो गया। ब्रिटिश सरकार ने इस मतदान क रद्द कर दिया और समझौते को लागू कर दिया। अब यह विरोध खुलकर सामने आ गय और 1916-18 का परोपकारिता' वाला वातावरण काफी पीछे छूट गया।[3]

इस प्रक्रिया को व्यापक आर्थिक क्षेत्र म देखा जा सकता है। 1914-18 के युद्ध के तत्का बाद विश्व के विभिन्न हिस्सो मे व्यापार मे जो तेजी आई थी उसका स्वरूप भारत म और जगहो से कही अधिक उग्र था। सूती कपडे और पटसन की मिलो ने जबरदस्त मुनाफा कमाया। बबई की प्रमुख कपडा मिलों ने औसतन जितने लाभाश का भुगतान किया वह 1920 मे 120 प्रतिशत था और कुछ मामलो म तो यह 200 250 और यहा तक कि 365 प्रतिशत भी देखने म आया (आर्नोपियस 'दि काटन इडस्ट्री आफ इडिया')। प्रमुख पटसन मिलो द्वारा दिया गया औसत लाभाश 140 प्रतिशत था और कहीं तो बोनस मिलाकर यह 400 प्रतिशत तक हो गया था। 1918 से 1921 तक के चार वर्षों के लिए 41 पटसन मिलो की रिपोर्टों को देखने से पता चलता है कि इन्हे कम स कम 2 करोड 29 लाख पौंड का मुनाफा हुआ। ये सभी मिलें ब्रिटिश नियत्रण के अधीन है और इनकी कुल पूजी 61 लाख पौंड है। मुनाफे की जो राशि बताई गई है उसके अति रिक्त इन मिलो ने 1 करोड 90 लाख पौड सुरक्षित कोष मे डाल दिया है। इसका अर्थ यह हुआ कि 60 लाख पौड की पूजी पर चार वर्षों मे इन्हे कुल 4 करोड 20 लाख पौं की आय हुई।

युद्ध के बाद के वर्षों मे भारत मे ब्रिटिश पूजी इस आशा के साथ तजी से आई कि वह इस जबरदस्त मुनाफे मे हिस्सा बटाएगी। पहले ही सर जाज पेश ने वष 1908 10 के लिए अनुमान लगाया था कि भारत और लका मे औसतन 1 करोड 40 लाख से 1 करोड 60 लाख पौड तक ब्रिटिश पूजी का निर्यात हुआ है, अर्थात ब्रिटेन की विदेशा म लगी कुल पूजी का 9 प्रतिशत भारत और लका म है। 1921 मे यह राशि बढकर 2 करोड 90 लाख पौंड अर्थात कुल पूजी निर्यात के एक चौथाई से अधिक भाग, 1922 म 3 करोड 60 लाख पौड अर्थात फिर एक चौथाई से अधिक भाग और 1923 म 2 करोड 50 लाख पौड अर्थात कुल पूजी निर्यात का पाचवा हिस्सा हो गई। 1920-21 और 1921 22 के दो वर्षों के दौरान निर्यात म नाममात्र की वृद्धि पाई गई। 1856 62 में अर्थात रेल निर्माण में लगाई गई पूजीवाले वर्षों के बाद पहली बार यह स्थिति पदा हुई, लेकिन इसने वस्तुत कृत्रिम रूप से रुपय की दर 2 शिलिंग तक बढा देने के सरकारी प्रयास के घातक परिणामो को आशिक तौर पर प्रतिबिबित किया। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत में

आने वाले सामाना पर अधिशुल्क लगा, भारतीय निर्यातको को तबाह होना पडा और इस मुद्रा विनिमय को बनाए रखने के निष्फल प्रयास मे सरकार के कम से कम 5 करोड 50 लाख पौंड खर्च हुए।

लेकिन 1920 और 1921 के समाप्त होते होते यह तेजी अचानक मंदी में बदल गई। सरकार की मुद्रा विनिमय नीति ने उस समय इस स्थिति को और गभीर बना दिया जब रुपये की दर को 2 शिलिंग से घटाकर अचानक 1 शिलिंग 4 पैंस पर ला दिया गया। इससे निर्यातको का भयकर तबाही का सामना करना पडा और उन्हें 3 करोड पौंड से भी अधिक का नुकसान भुगतना पडा। कई भारतीय फर्में जिनकी स्थापना युद्ध के बाद की तेजी के दिनो मे हुई थी बाद के वर्षों में दीवालिया बन गईं। यह पता चलते ही कि युद्ध के बाद की तेजी के दिनों में होने वाला असामान्य मुनाफा अब आगे जारी नही रह सकता, ब्रिटिश पूजी म कमी आने लगी। 1924 में कुल 26 लाख पौंड की ब्रिटिश पूजी भारत आई जो उस वर्ष ब्रिटेन द्वारा निर्यात की गई कुल पूंजी के 50वें हिस्से से भी कम राशि है। 1925 में भारत आने वाली पूजी 34 लाख पौंड, 1926 में 20 लाख पौंड और 1927 में 10 लाख पौड स भी कम थी अर्थात ब्रिटिश पूजी निर्यात के 1 प्रतिशत के आधे से भी कम अश भारत आया।

युद्ध से पूर्व और युद्ध के बाद के दिनो में भारत और लका में आई ब्रिटिश पूजी से सबधित निम्न आकडे काफी महत्वपूर्ण हैं (युद्धपूर्व वर्षों के आकडे सर जार्ज पैश के और युद्धोत्तर वर्षों के आकडे मिडलैंड बैंक के हैं)

ब्रिटिश पूजी का भारत और लका को निर्यात

(लाख पौंडो मे)

वार्षिक औसत	भारत और लका को	विदेशो मे निर्यात की गई कुल पूजी	भारत और लका का प्रतिशत
1908-10	147	1723	8 5
1921 23	302	1290	23 7
1925 27	21	1209	1 7
1932-34	42	1351	3 1
1934-36	10	302	3 3

युद्ध के पश्चात थोडे समय के लिए आई तेजी के बाद यह अनुपात नीचे आ गया और युद्ध से पहले के स्तर तक पहुच गया। सरकारी लेखा जोखा देखें तो भारत में पूंजीकृत कपनियो की कुल पूजी का ब्योरा भी कम महत्वपूर्ण नही है

ब्रिटिश भारत मे पजीकृत कपनियों की प्रदत्त पूजी

(बर्मा को छोडकर)

	1914-15	1924-25	1934 35	1939 40
करोड रुपया म	74 4	239 8	266 6	288 5

1914 से 1924 के दशक में यह वृद्धि 222 प्रतिशत थी या वार्षिक औसत 22 प्रतिशत था। लेकिन 1924 से 1934 तक के बाद के दशक में यह वृद्धि महज 11 प्रतिशत थी या वार्षिक औसत 1 प्रतिशत था। 1934 से 1939 के पाच वर्षों में भी वार्षिक औसत कवल 1 5 प्रतिशत था। यदि मूल्य स्तर में परिवतन की गुजाइश छोड भी दें, जिससे ये आकडे प्रभावित होते है तो भी यह विषमता महत्वपूण है और युद्ध के बाद के वर्षों म कुछ समय के लिए आई तेजी के बाद फिर आई गिरावट अपरिहाय है।

1927 म 'स्टेटिस्ट' ने 1914 के आधार को 100 मानकर भारत मे पजीकृत नई कपनियो की पूजी का एक सूचकाक जारी किया

ब्रिटिश भारत को दी गई नई पूजी

प्रतिवष	1914	1921	1922	1923	1924	1925	1926	1927
पजीकृत कपनियो की पूजी का सूचकाक	100	221	121	51	40	31	45	29

1914 के स्तर से नीचे आई जबरदस्त गिरावट पर लदन के आर्थिक पत्र ने टिप्पणी की

> जैसाकि इन अको से स्पष्ट है इसमे कोई सदेह नही कि देश के आर्थिक विकास में निश्चित रूप से बाधा पडी है। इसके लिए भारत सरकार की मुद्रा और विनिमय नीति को दोष दिए जाने से नही बचा जा सकता। ('स्टेटिस्ट,' 6 अगस्त 1927)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विश्वव्यापी अथसकट की शुरुआत से पहले ही भारत के औद्योगिक विकास मे बाधाए पडने लगी थी। तीसरे दशक के मध्य मे भारतीय फर्मों को बडे कठिन समय से गुजरना पडा। कपडा उद्योग से अलग औद्योगिक उत्पादन म भारतीय पूजीपतियो का नेतृत्व करने वाली कपनी 'टाटा आयरन ऐंड स्टील कपनी' क 100 रुपय के शेयर 1926 म घटकर 10 रुपये के शेयर हो गए और उसे मजबूर होकर 20 लाख पौंड के ऋण पत्र के लिए लदन के बाजार तक जाना पडा। ब्रिटिश महाजनी पूजी न युद्ध के बाद के प्रारभिक वर्षों मे भारतीय उद्योग पर अपनी पकड अस्थायी तौर पर ढीली कर दी थी पर इन वर्षों के दौरान उसने पकड फिर मजबूत कर दी।

भारतीय उद्योग को एक और जबरदस्त धक्का तब लगा जब 1927 म सरकार ने भारतीय रुपये का मूल्य जो युद्ध के पहले 1 शिलिंग 4 पैंस था, स्थाई तौर पर 1 शिलिंग 6 पस कर दिया। सरकार ने यह कदम भारतीय वित्त और मुद्रा पर 1926 की हिल्टन यग कमीशन की रिपोट के बाद उठाया था। सकुचन की इस नीति को भारतीय पूजीपतियो क

व्यापक विरोध के बावजूद जारी रखा गया। भारतीय पूजीवाद के नेता सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने मुद्रा आयोग की रिपोर्ट पर अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि, 'इससे भारतीय उद्योगपतियो को ऐसी चोट पडेगी जिसे व बर्दाश्त नही कर सकते। इसका प्रहार, और वह भी जबरदस्त प्रहार उन लोगो पर होगा जो कृषि पर निभर करत है अर्थात आबादी का 4/5 भाग इसका शिकार होगा।' ठीक इसी समय वित्तीय नियत्रण, जिसपर भारतीय प्रभाव की तनिक भी सभावना नही थी वापस लेने की दिशा मे कदम उठाए गए और 1921 म स्थापित इपीरियल बैंक आफ इडिया के अलावा एक नया भारतीय रिजर्व बैंक खालने का फैसला किया गया जिसकी सिफारिश हिल्टन यग कमीशन ने की थी। अतत 1934 मे भारतीय विराध के खिलाफ लब सघष के बाद इसकी स्थापना कर ही दी गई।

पहले से ही चली आ रही इन कठिन परिस्थितिया के दौरान ही विश्व आर्थिक सकट का प्रभाव भारत पर आ पडा और इसकी चोट भारत पर किसी अन्य महत्वपूण देश की तुलना मे ज्यादा गहरी लगी क्योकि भारत प्राथमिक उत्पादन पर बेहद निभर करता था। भारत के प्राथमिक उत्पादनो का मूल्य जिसपर व्यवहारत आबादी का 4/5 हिस्सा निभर रहता था (इस मूल्य से कमजार आर्थिक विकास के लिए बाजार का भी परिचालन हाता था) घटकर आधा हो गया। 1928 29 से 1932-33 क बीच भारत से निर्यात किए गए सामानो का मूल्य 3 अरब 39 करोड रुपये से घटकर 1 अरब 35 करोड रुपया हो गया, भारत आए सामानो का मूल्य 2 अरब 60 करोड रुपये से घटकर 1 अरब 35 करोड रुपया हो गया। फिर भी भारत से इग्लैड भेजे जाने वाले नजराने की राशि, ऋण पर ब्याज और घरेलू खर्च की राशि कम होने क बजाय कीमतो के गिर जाने से दुगनी हो गई और इसे भारत से बडी निदयता के साथ वसूला गया। भारत क पास न तो यूरोप की तरह हूवर ऋण स्थगन व्यवस्था थी, न जमनी की तरह ऋण पर रोक लगाने की योजना थी और न ही ऋण अदायगी के परित्याग की ही कोई सुविधा थी जैसी सुविधा अमरीकी ऋण के मदम से ब्रिटेन को मिली थी। भारत को नजराने के रूप में अपना खजाना इग्लैंड भेजना पडा। 1931 से 1935 के बीच इग्लैंड न भारत से कम से कम 3 करोड 20 लाख औस सोना ऐठ लिया जिसका मूल्य 20 करोड 30 लाख पौंड आका गया ('इकोनामिस्ट,' 12 दिसबर 1936) अथसकट से पहले ब्रिटेन के सुरक्षित कोष मे कुल जितना सोना था यह मात्रा उससे भी अधिक थी। 1936 स 1937 के बीच भारत से 3 करोड 80 लाख पौड मूल्य का और सोना इग्लैंड भेजा गया ('इकोनामिस्ट' 2 अप्रैल 1938)। इस प्रकार 1931-37 के सात वर्षो के दौरान कुल 24 करोड 10 लाख पौंड के मूल्य का सोना इग्लैंड गया। भारत की आम जनता बैंको आदि बचत के साधनो से अनभिज्ञ होने के कारण अपनी बचत के पैसो से सोना खरीद लती थी। यह सोना देश की गरीब और किसान जनता की बचत के परपरागत तरीके का नतीजा था। वही सोना, जो भारत की निधन जनता की मामूली बचत थी, इग्लैंड पहुच गया। ब्रिटिश महाजनी पूजी ने अपना स्वण भडार भरने क लिए भारतीय सोने की बडे सुनियोजित ढग से लूट की। बैंक आफ

इटरनेशनल सैटलमेंट की रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटिश खजाने में 1932 में 3 अरब 2 करोड 10 लाख स्विस फ्राक सोना था जो 1936 के अत तक बढकर 7 अरब 91 करोड 10 लाख हो गया अर्थात चार वर्षो मे 162 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जैसाकि औद्योगिक क्राति के दिनो मे हुआ था, एक बार फिर 1933-37 मे ब्रिटिश पूजीवाद ने अपना घाटा पूरा करने का जो नया तरीका ढूढा वह भी भारत की लूट खसोट पर ही आधारित था।

1936 के अत तक 'इकोनामिस्ट इडिया सप्लीमेंट' ने 'उद्योगीकरण' की प्रगति के बारे में एक निराशाजनक चित्र पेश किया

> उद्योग पर निभर लोगो की सख्या में अब कमी आने लगी है और इन कुछ वर्षों में कुछ उद्योगो मे तो खासतौर से पटसन और सूती वस्त्र उद्योग में काम करने वालो की सख्या में बहुत कमी आई है
>
> हालाकि भारत ने अपने उद्योगो को आधुनिक बनाना शुरू कर दिया है फिर भी यह कह सकना मुश्किल है कि भारत का 'उद्योगीकरण' हो चुका है।
> ('इकोनामिस्ट, इडिया सप्लीमेंट, ए सर्वे आफ इडिया टुडे,' 12 दिसबर 1936)

5 युद्ध से पहले के बीस वर्षो का लेखा जोखा

अब हम उद्योगीकरण के लिए जोश भरे वायदो की रोशनी मे प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच के बीस वर्षों अर्थात भारतीय औद्योगिक आयोग के गठन के बाद बीस वर्षों मे हुए भारतीय आर्थिक विकास के परिणामों का जायजा लें।

इन बीस वर्षों की अवधि मे, जिसमे सोवियत सघ मे समाजवादी उद्योगीकरण की ऐसी विजय देखने को मिली जिसने यूरोप और एशिया के सभी देशो को पीछे छोड दिया, निस्सदेह भारत मे भी कुछ औद्योगिक विकास हुआ। इसने इस विकास को आगे बढाया जो ब्रिटिश सरकार के विरोध के बावजूद 1914 से पहले ही गति ले चुका था। एक के बाद एक उद्योगो ने भारत के घरेलू बाजार की ओर कदम बढाना शुरू कर दिया था। भारतीय सूती कपडा मिलो ने जिन्होने 1914 में भारत में इस्तेमाल किए गए मिल निर्मित सूती कपडो का एक चौथाई हिस्सा तैयार किया था 1934 35 तक अपना उत्पादन बढा-कर तीन चौथाई कर दिया। भारतीय इस्पात उद्योग जिसकी युद्ध से पहले बस स्थापना ही हो पाई थी, 1932-33 तक भारतीय बाजार में इस्पात की जरूरतो का लगभग तीन चौथाई हिस्सा पूरा करने लगी थी (1934 में शुल्क बोड की रिपोट के अनुसार)। फिर भी यह, धीमे औद्योगिक विकास के कारण इस्पात के मामले म भारतीय बाजार के अत्यत सीमित होने की माप का ही मुख्यतया परिचय देता है। 1935 36 म 879,000 टन इस्पात का उत्पादन हुआ जो कि एक रिकाड है फिर भी यह उत्पादन उसी वष पोलैंड म हुए इस्पात के उत्पादन से कम है (जबकि पोलैंड की आबादी भारत की आबादी के दसवें

हिस्से से भी कम है), और 1936 में जापान म हुए इस्पात के उत्पादन के छठे भाग से भी कम है और सोवियत सघ क इस्पात उत्पादन के 19वे हिस्से क बराबर है।

लेकिन किसी देश के उद्योगीकरण के लिए निर्णायक महत्व कपडा उद्योग का नही है, जिसने 1914 से पहले हर मामले म भारत में अपना आधार मजबूत बना लिया था। किसी देश के उद्योगीकरण के लिए निर्णायक भूमिका भारी उद्योगो के विकास की लोहे और इस्पात के उत्पादन की तथा मशीनो के उत्पादन की होती है। और इसी क्षेत्र मे युद्ध से पूव भारत की कमजोरी बिलकुल साफ थी। उस समय भी भारत मशीनो के मामले में अ य देशो पर पूरी तरह निभर था

हालाकि लोग बिजली स चलने वाले कारखानो में एकत्र है फिर भी इजीनियरिंग और टैक्सटाइल उद्योगा का रूप घरेलू उद्योगो का रूप ले रहा है। किसी कपडा मिल में एक के बाद एक तकले लगाने या करघे लगाने की समस्या होती है। मरम्मत करने के कारखानो का काम मूलत व्यक्तिगत स्तर का है। किसी देश में सही अर्थों में तब तब्दीली आती है जब लोहा और इस्पात उद्योग सफल होने लगत है धातु सबधी उद्योगो के विकास का अथ सही अर्थों में औद्योगिक क्राति है। इग्लड, जमनी और अमरीका इन सभी देशो ने अपने यहा कपडा उद्योग शुरू करने से पहले आधुनिक पैमाने पर लोहा और इस्पात उद्योग शुरू किया। (एल० सी० ए० नावेल्स 'इकोनामिक डेवलपमट आफ दि ओवरसीज इपायर,' पृष्ठ 443)

वास्तविक उद्योगीकरण के लिए इस आवश्यक क्रम को और भी जोरदार ढग से सोवियत सघ की महान समाजवादी औद्योगिक क्राति में देखा गया है। सोवियत सघ ने प्रथम पच वर्षीय योजना में अपना सारा ध्यान भारी उद्योग पर लगाया फिर परिणामस्वरूप, द्वितीय पचवर्षीय योजना मे उसने अपने यहा के हल्के उद्योग की प्रगति को आगे बढाया। भारत इस बात का अद्भुत उदाहरण है कि किसी पराधीन और औपनिवेशिक देश का आर्थिक विकास किस प्रकार एकदम उलटे क्रम से होता है।

यदि हम इस अवधि के दौरान उद्योग और कृषि म लग लोगो की सख्या की तुलना 1914 से पूव की सख्या से करे तो औद्योगिक विकास का निम्न स्तर और भी खुलकर सामने आ जाता है। जनगणना के आकडे देखने से पता चलता है कि 1911 से 1931 के बीच उद्योग पर निभर रहन वालो की सख्या घटी है जबकि कृषि पर निभर लोगो की सख्या म वृद्धि हुई है। उद्योग पर निभर लोगो की सख्या 1911 म 11 2 प्रतिशत थी जो 1921 म घटकर 10 49 प्रतिशत और 1931 में 10 38 प्रतिशत हो गई।

यहा तक कि सरकारी कागजो मे भी उद्योगो म काम करने वाले मजदूरो की जो सख्या

दज की गई है वह उल्लेखनीय है। इन आकडा से पता चलता है कि इनकी सख्या म वेहद गिरावट आई और उद्योगा म लगे कुल मजदूरो के अनुपात मे दखें तो इस सख्या म जबर दस्त रूप से सापेक्षिक गिरावट आई।

उद्योग धधों मे लगे मजदूरो का अनुपात (1911-31)

	1911	1921	1931	रूपातरण का प्रतिशत 1911 31
जनसख्या (करोड म)	31 5	31 9	35 3	12 1
कायरत आबादी (करोड म)	14 9	14 6	15 4	4 0
उद्योग धधो मे लगे व्यक्ति (करोड मे)	1 75	1 57	1 53	12 6
कायरत आबादी की तुलना मे उद्योगधधा मे लगे व्यक्तियो का प्रतिशत	11 7	11 0	10 0	9 1
कुल आबादी मे औद्योगिक मजदूरो का प्रतिशत	5 5	4 9	4 3	21 8

इस प्रकार 20 वर्षों मे औद्योगिक मजदूरा की सख्या मे 20 लाख से भी ज्यादा की कमी आ गई। जनसख्या मे जहा 12 प्रतिशत से भी अधिक की कमी आई कुल आबादी म औद्योगिक मजदूरो का प्रतिशत पाचवें हिस्से से भी ज्यादा कम हुआ। प्रमुख उद्योगों के बारे मे 1911 के बाद के विवरण से भी कमी की यही तस्वीर सामने आती है

प्रमुख उद्योग धधो मे मजदूरो की सख्या मे कमी

	1911	1921	1931
कपडा उद्योग	4,449,449	4,030 674	4,102 136
सिलेसिलाए कपडे और प्रसाधन सामग्री तैयार करने वाले उद्योग	3,747,755	3,403,842	3,380 824
लकडी उद्योग	1,730 920	1,581,006	1,631,723
खाद्य सामग्री तैयार करन वाले उद्योग	2 134 045	1,653,464	1,476 995
मिट्टी के बतन बनाने वाले उद्योग	1,159,168	1 085,335	1,024 830

इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हान म पहले, भारत की जो वास्तविक तस्वीर हमारे सामन आती है उसके लिए 'अनुद्योगीकरण' शब्द का ठीक ही इस्तमाल किया गया है।

इसका अथ यह हुआ कि पुराने हस्तशिल्प उद्योग का नाश हुआ है और उसके स्थान पर आधुनिक उद्योग का विकास भी नही हुआ। कारखाना उद्योग की प्रगति ने हस्तशिल्प उद्योग के विनाश की कमी पूरी नही की। विनाश की यह प्रक्रिया ही 19वी सदी की खास बात थी और यह प्रक्रिया 20वी सदी म तथा 1918 के बाद के वर्षों म जारी रही।

इसके नतीजे भी अपरिहाय है। साम्राज्यवादी शासन के अतगत भारत के 'उद्योगीकरण' की तस्वीर एक धोखा है। साम्राज्यवादी शासन के बाद के वर्षों म कृषि के काय मे बहुत बडी सख्या म लोगो का जमाव हुआ

कुछ औद्योगिक केंद्र इतने बडे है कि कारखाना की स्थापना से पूव हस्तशिल्प उद्योग द्वारा उन्ह जो सहारा मिलता था उसकी तुलना म अपेक्षाकृत छोटे समूह को कारखानो से प्रत्यक्ष सहारा मिलता है। आज भी यह देश निर्यात की तुलना म प्रतिवप काफी अधिक मात्रा म कारखाना म बने सामानो का आयात करता है। इन अनुपातो में जहा क्रमिक परिवतन हो रहा है, वही भारतीय अथव्यवस्था की आज भी यह खासियत है कि यहा से कच्चे माल का काफी निर्यात और तैयार माल का आयात हो रहा है। अपने कारखानो और अपने निम्न जीवन स्तर के बावजूद भारत आज से सौ वप पहले की तुलना में तैयार सामानो के मामले में अब भी कम आत्मनिभर है (डी० एच० बुकानन 'डेवलपमेंट आफ कैपिटलिस्ट इटरप्राइज इन इडिया,' 1934, पृष्ठ 451)

1931 में फैक्टरीज ऐक्ट के अतगत कुछ मजदूरो की सख्या 15 लाख अर्थात कायरत आबादी का 1 प्रतिशत स भी कम थी। यदि इसमें हम खदानो में काम करने वाले 2,60 000 लोगो और 8,20,000 रेल कमचारियो की सख्या जोड दे तो भी आधुनिक उद्योग में लगे 26 लाख लोगो की सख्या कुल कायरत आबादी का महज 1 5 प्रतिशत होती है।

इतना ही नही, 1914 के बाद की विकास की दर भी, जो तीव्र उद्योगीकरण की छाप से दूर ही रही, कुछ मामलो में 1914 के पहल की अवधि की तुलना में धीमी रही। पृष्ठ 184 की तालिका से फैक्टरीज ऐक्ट के अतगत मजदूरो की सख्या वृद्धि का पता चलता है (1922 तक यह ऐक्ट उन सस्थानो पर लागू होता था जिनमें काम करने वाले मजदूरो की सख्या 50 या इससे अधिक हो लेकिन 1922 से यह 20 या इससे अधिक और कही कही तो 10 या इससे अधिक मजदूरा वाले सस्थानो पर लागू होने लगा। जहा तक सख्या को प्रभावित करने का सवाल है यह परिवतन युद्धोत्तर काल के आकडो के लिए अधिक अनुकूल है और इसलिए हमारे तक को बल प्रदान करता है)

1897 से 1914 के 17 वर्षों म कारखाना मजदूरो की सख्या मे 5,30,000 की वृद्धि हुई।
1914 से 1931 के 17 वर्षों में कारखाना मजदूरो की सख्या में 4,80 000 की वृद्धि हुई।

अत्यधिक अतर्विरोधा के बीच पलते रह । साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था जनता के आर्थिक विकास का अपन शिकजे म कसकर विफल और धीमा कर दती है ।

ये अतर्विरोध न केवल इस रूप म मौजूद है जिनका भारत के औद्योगिक विकास म अपने विरोधी हिता से सीधा वैर है और जो क्रमश क्षीण होती ब्रिटिश पूजी का हर तरीके से भारतीय बाजार मे हिस्सा बनाए रखने और बढाने के लिए कृत सकल्प है बल्कि वे इस रूप में भी मौजूद हैं कि वे साम्राज्यवादी शोषण की स्थितियो के अतगत भारतीय उद्योग के लिए घरेलू बाजार की असाध्य समस्याए पैदा करते है और खेतिहर जनता को कगाल बना देते है । सीमा शुल्क प्रणाली इस अतर्विरोध को हल नही करती है बल्कि कामगर किसान समुदाय पर अतिरिक्त बोझ डालकर वह इस अतर्विरोध को और तेज कर देती है । भारत में उद्योग धधो की समस्या को खेती की समस्या से अलग करके हल नही किया जा सकता और खेती की समस्या का सबध साम्राज्यवादी शोषण के मूल आधार से है । अत में ये अतर्विरोध ब्रिटिश महाजनी पूजी की सामरिक जकड म प्रकट होते है । इस महाजनी पूजी ने सामरिक महत्व के सभी निर्णायक स्थलो पर अपना नियत्रण स्थापित करके भारतीय उद्योग को अपनी दया पर आश्रित कर दिया है ।

6 महाजनी पूजी की दमघोटू पकड

भारत के बारे में, भारत स बाहर जो बातचीत होती है उसमें उद्योगीकरण, सीमाशुल्क म रियायतो और भारत के बाजार पर दिनोदिन कमजोर होते ब्रिटिश नियत्रण पर खूब बढचढकर चर्चा की जाती है, लोगो को इस बात की कम ही जानकारी है कि भारतीय अथव्यवस्था पर ब्रिटिश महाजनी पूजी की जकड बढती जा रही है और भारतीयो की प्रगति के विरुद्ध इस जकड का बनाए रखन के लिए ब्रिटेन हर तरह के हथकडे अपना रहा है ।

भारतीय पूजी के विकास के बावजूद ब्रिटिश पूजी का बैंकिंग, वाणिज्य, मुद्रा विनिमय और बीमा, जहाजरानी, रेल व्यवस्था, चाय, कॉफी और रबर बागाना तथा पटसन उद्योग में (जहा परिमाण के हिसाब से अपेक्षाकृत विशाल भारतीय पूजी पर ब्रिटिश नियत्रण है) एकाधिकारपूण प्रभुत्व कारगर ढग से बना हुआ है । समूची राजनीतिक प्रणाली इस प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए काम कर रही है । लोहा और इस्पात उद्योग में भारतीय पूजी को ब्रिटिश पूजी से समझौता करने का मजबूर होना पडा है । यहा तक कि भारतीय पूजी के स्रोत सूती कपडा उद्योग में, 'प्रबधक एजेसी' (मनजिंग एजेसी) के जरिए ब्रिटिश पूजी का नियत्रण जितना दिखाई दता है उससे काफी अधिक है ।

मनेजिंग एजेंसी प्रणाली, भारत तथा एशिया के अन्य देशा म साम्राज्यवादी उद्योग के लिए एक खास तरह की प्रणाली है और इसका इस्तेमाल भारत के औद्योगिक विकास पर अगरेजो का प्रभुत्व बनाए रखने के लिए एक प्रधान अस्त्र के रूप म हुआ है । इस प्रणाली

कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की औसत दैनिक संख्या

वर्ष	संख्या
1897	421,000
1907	729,000
1914	951,000
1922	1,361,000
1931	1 431,000

इस प्रकार पहले की तुलना में 1914 के विकास की गति न सिर्फ धीमी रही बल्कि कुल वृद्धि भी पहले से कम हुई।

यहां तक कि सूती कपड़ा उद्योग में, जहां यह वृद्धि काफी उल्लेखनीय थी, भारत में इस बढ़ती की रफ्तार जापान या चीन की तुलना में काफी कम थी। निम्न तालिका से 1914 से 1930 के बीच भारत, जापान और चीन में तकलों की संख्या में सापेक्षिक वृद्धि का पता चलता है (बुकानन, वही, पृष्ठ 220)

बुनाई के तकलों की संख्या

	1914	1930	वृद्धि
भारत	6,397,000	8,807 000	2 410,000
जापान	2,414,000	6 837,000	4,423 000
चीन	300,000	3 699,000	3,399 000

भारत में यह वृद्धि 37 प्रतिशत रही जबकि इसी अवधि में जापान और चीन में यह वृद्धि 188 प्रतिशत रही। 1914 में जापान और चीन में जितने तकले काम करते थे उनको मिला दिया जाए तो भी भारत के तकलों की संख्या दुगुनी से अधिक थी। 1930 तक जापान और चीन ने (और चीन की काफी कुछ प्रगति जापानी नियंत्रण के अधीन हुई) भारत को एकदम पीछे छोड़ दिया।

भारत में उद्योगीकरण की इस धीमी गति के क्या कारण हैं? इस अवरुद्ध आर्थिक विकास के लिए भारत के समूचे सामाजिक ढांचे की कई बातें जिम्मेदार हैं लेकिन इसका मुख्य कारण साम्राज्यवादी प्रणाली में ही निहित है। साम्राज्यवादी व्यवस्था की समूची प्रणाली का रुख अनिवार्य रूप से स्वतंत्र औद्योगिक विकास के प्रति शत्रुतापूर्ण रहा है और इसलिए उसने भारतीय जनता की उन शक्तियों को हर तरह से नष्ट किया है जो अन्य अवरोधों पर काबू पाने में सफल हो सकती थीं। इसलिए उद्योगीकरण के सभी सपने और काय-

अत्यधिक अंतर्विरोधो के बीच पलते रह। साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था जनता के आर्थिक विकास को अपन शिकजे म कसकर विफल और धीमा कर देती है।

ये अंतर्विरोध न केवल इस रूप म मौजूद हैं जिनका भारत के औद्योगिक विकास म अपने विरोधी हितो से सीधा वैर है और जो क्रमश क्षीण होती ब्रिटिश पूजी का हर तरीके से भारतीय बाजार मे हिस्सा बनाए रखने और बढाने के लिए कृत सकल्प है बल्कि वे इस रूप में भी मौजूद हैं कि वे साम्राज्यवादी शोषण की स्थितियो के अतगत भारतीय उद्योग के लिए घरेलू बाजार की असाध्य समस्याए पैदा करते हं और खेतिहर जनता को कगाल बना देते हैं। सीमा शुल्क प्रणाली इस अंतर्विरोध को हल नही करती है बल्कि कामगर किसान समुदाय पर अतिरिक्त बोझ डालकर वह इस अंतर्विरोध को और तेज कर देती है। भारत में उद्योग धधो की समस्या का खेती की समस्या से अलग करके हल नही किया जा सकता और खेती की समस्या का सबध साम्राज्यवादी शोषण के मूल आधार से है। अत में, ये अंतर्विरोध ब्रिटिश महाजनी पूजी की सामरिक जकड म प्रकट होत है। इस महाजनी पूजी ने सामरिक महत्व के सभी निर्णायक स्थलो पर अपना नियत्रण स्थापित करके भारतीय उद्योग को अपनी दया पर आश्रित कर दिया है।

6 महाजनी पूजी की दमघोटू पकड

भारत के बारे में, भारत से बाहर जा बातचीत होती है उसमें उद्योगीकरण, सीमाशुल्क म रियायतो और भारत क बाजार पर दिनोदिन कमजोर होत ब्रिटिश नियत्रण पर खूब बढचढकर चर्चा की जाती है, लोगो को इस बात की कम ही जानकारी है कि भारतीय अथव्यवस्था पर ब्रिटिश महाजनी पूजी की जकड बढती जा रही है और भारतीयो की प्रगति के विरुद्ध इस जकड को बनाए रखने के लिए ब्रिटेन हर तरह के हथकडे अपना रहा है।

भारतीय पूजी के विकास के बावजूद ब्रिटिश पूजी का बैकिंग, वाणिज्य, मुद्रा विनिमय और बीमा, जहाजरानी, रेल व्यवस्था, चाय, काफी और रबर बागाना तथा पटसन उद्योग में (जहा परिमाण के हिसाब से अपेक्षाकृत विशाल भारतीय पूजी पर ब्रिटिश नियत्रण है) एकाधिकारपूण प्रभुत्व कारगर ढग से बना हुआ है। समूची राजनीतिक प्रणाली इस प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए काम कर रही है। लोहा और इस्पात उद्योग में भारतीय पूजी को ब्रिटिश पूजी से समझौता करने को मजबूर होना पडा है। यहा तक कि भारतीय पूजी के स्रोत सूती कपडा उद्योग मे, 'प्रबधक एजेसी' (मनेजिग एजेसी) के जरिए ब्रिटिश पूजी का नियत्रण जितना दिखाई देता है उससे काफी अधिक है।

मनेजिंग एजसी प्रणाली, भारत तथा एशिया के अन्य देशो म साम्राज्यवादी उद्योग के लिए एक खास तरह की प्रणाली है और इसका इस्तमाल भारत क औद्योगिक विकास पर अगरेजो का प्रभुत्व बनाए रखने के लिए एक प्रधान अस्त्र के रूप म हुआ है। इस प्रणाली

के जरिए अपेक्षाकृत बहुत थोडी मनेजिंग एजेंसी कपनिया विभिन्न औद्योगिक कपनिया और कलकारखाना को बढावा देती ह, उनपर नियत्रण रखती है और काफी हद तक उनके लिए पूजी इकट्ठा करती है, उनके सचालन और उत्पादन पर अपना प्रभुत्व बनाए रखती ह तथा उनम निर्मित सामान को बाजार में भेजती है। इन कपनिया के बोड आफ डायरेक्टस एक मातहत की भूमिका निभाते हैं, उनकी नाममात्र की भूमिका होती है। मुनाफे की राशि कपनियो के हिस्सेदारा को नही मिलती, उसे मैनेजिंग एजेंसिया ही हजम कर जाती ह। 1927 म सीमा शुल्क बोड सूती वस्त्र उद्योग जाच समिति के सामने दिए गए साक्ष्य के अनुसार, 1905 से 1925 के 20 वर्षों के दौरान बबई की कपडा मिलो ने मैनेजिंग एजेंटो को जो कमीशन दिया वह कुल प्रदत्त पूजी का औसतन 5 2 प्रतिशत प्रति वप था। यह राशि मैनेजिंग एजेंसी के शेयरो पर दिए गए किसी लाभाश और खरीद तथा बिक्री के जरिए मिले कमीशन के अतिरिक्त है। ऐसे भी मामले देखने मे आए है जिसम कपडा मिला को घाटा हुआ है पर साथ ही मैनेजिंग एजेंसी को उस मिल के कुल घाटे से ज्यादा कमीशन मिला है जिसकी वह देखरेख करती थी। उदाहरण के लिए 1927 म बबई की 75 कपडा मिलो को कुल 7,36,309 रुपये का घाटा हुआ लेकिन मैनेजिंग एजटो ने भत्त और कमीशन के रूप मे 30,87,477 रुपये प्राप्त किए (पी० एस० लोकनाथन 'इडस्ट्रियल आर्गेनाइजेशन इन इडिया,' 1935, पृष्ठ 168)।

मैनेजिंग एजेंसी कपनिया भारतीय और अगरेजी दोनो तरह की है, लेकिन सबसे पुरानी और सबसे मजबूत कपनिया अगरजो की है। स्वाभाविक है कि इनका सरकार और लन्दन के साथ घनिष्ठतम सबध है। ऐंड यूल ऐंड कपनी तथा जाडन ऐंड स्किनर जसी फर्में भारत मे ब्रिटिश राज के इतिहास का एक अध्याय है। बबई कपडा उद्योग के मामले म, 1927 म 'टैरिफ बोड काटन टैक्सटाइल इक्वायरी' ने बबई की कपडा मिलो से सबधित 99 प्रतिशत आकडे देकर उसके आधार पर इन शक्तियो के सबध की उल्लेखनीय तस्वीर पेश की (खड 1 पृष्ठ 258 परिशिष्ट xii, वतमान तालिका इस परिशिष्ट म उपलब्ध जानकारी के आधार पर तैयार की गई है और जून 1928 के लेबर रिसच' म प्रकाशित हुई)

बबई की कपडा मिलें

	मिलें	तकले	करघे	पूजी (करोड रुपया म)
अगरेज मैनेजिंग एजटो वाली कपनिया 9	27	1,112,114	22,121	9 89
भारतीय मैनेजिंग एजेंटो वाली कपनिया 32	56	2,360 528	51,580	9 77

इससे यह देखा जा सकता है कि अगरेज मैनेजिंग एजेंटो का जहा केवल 22 प्रतिशत कप नियो पर नियत्रण था वही उनका मिलो पर 33 प्रतिशत, तकलो पर 32 प्रतिशत, करघो

पर 30 प्रतिशत और पूजी के एक बडे हिस्से अर्थात 50 3 प्रतिशत पर नियत्रण था। यह उस उद्योग की स्थिति है जो भारतीय पूजी के विकास का प्रमुख क्षेत्र है।

बाद के वर्षों म उत्पन्न आर्थिक सकट ने मैनेजिंग एजेंसियो को मिलो पर अपना पजा जमाने और कुछ मामलो म तो भारतीय शेयर होल्डरो का स्वामित्व छीन लेने का मौका दिया। इस तथ्य को 1931 म इडियन सेंट्रल बैंकिंग इक्वायरी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट म दर्ज किया है

> हालाकि यह सही है कि जैसे सकट मे बबई को गुजरना पडा, उसमे मैनेजिंग एजेंटो को काफी घाटा सहना पडा है क्योकि वे अपने अधीन मिलो मे प्रत्यक्ष तौर पर पूजी लगाए हुए थे लेकिन कई ऐसे भी मामले सामने आए है जिनम एजेंटो ने अपने कर्ज को मिलो के नाम ऋण पत्र के रूप मे तबदील कर दिया, इसका नतीजा यह हुआ कि ये मिलें पूरी तरह इनके हाथ मे आ गई और शेयरहोल्डरो न जो पूजी इन मिलो मे लगाई थी, उनसे वे हाथ धो बैठे।
> (रिपोर्ट आफ दि सेंट्रल बैंकिंग इक्वायरी कमेटी, 1931, खड I, पृष्ठ 279)

भारतीय उद्योग पर ब्रिटिश पूजी की पकड अब भी बनी हुई है हालाकि भारत मे ब्रिटिश सपत्ति की समाप्ति के सही सही आकडे उपलब्ध नही है लेकिन, जैसाकि श्री ह्यू डाल्टन ने जुलाई 1946 मे हाउस आफ कामन्स म कहा था भारतीयो के हाथ म इसका स्थानातरण ज्यादा नही हुआ। दूसरी तरफ एकदम उल्टी प्रक्रिया अर्थात भारत म पूजी की घुसपैठ देखी जा सकती है। विदेशी कपनिया ने भारत म अपनी उप कपनिया खोल दी और भारत म इन्हे पजीकृत भी कराया। लीवर ब्रदर्स, डनलप, इपीरियल कैमिकल्स जैसी विशाल कपनिया की भारत मे अपनी सहायक कपनिया है। और 'इन्डिया लिमिटेड्स' की यह सख्या प्रतिदिन बढ रही है। भारत सरकार के वाणिज्य मत्री ने 1945 मे केंद्रीय विधान मडल के बजट अधिवशन मे कहा कि 1942-43 तक के चार वर्षों के दौरान, *ब्रिटिश भारत से बाहर पजीकृत पाच कपनियो न अपने नाम के अत म 'इडिया लिमिटेड'* जोडकर भारत मे व्यापार स्थापित किया। इसके अलावा, 1943-44 की समाप्ति तक के पाच वर्षों म 108 'इडिया लिमिटडो' ने भारत मे अपना पजीकरण कराया, इन कपनियो के अतगत हर तरह के उद्योग आते ह। जैसा प्रोफेसर वाडिया और मर्चेंट ने लिखा है, 'भारी पूजी से लग गैरभारतीय कारखानो ने माचिस, सिगरेट, साबुन, जूता, रबर, रसायन आदि का जबरदस्त उत्पादन शुरू किया और भारतीय कारखानों को नष्ट कर दिया है। इन्होने न केवल बडे उद्योगो का मुकाबला किया बल्कि हमारे (भारत के) लघु उद्योगो के लिए भी खतरा पैदा कर दिया' (वाडिया और मर्चेंट अवर इकोनामिक प्राब्लम,' 1945 पृष्ठ 466)

भारतीय उद्योग के लिए इन 'इडिया लिमिटेडो' के बढते खतरे के बारे म बबई की

औद्योगिक और आर्थिक जाच समिति ने 1940 मे प्रकाशित अपनी रिपोट म कहा

> यदि हमारी औद्योगिक नीति का लक्ष्य छोटी कपनियो की स्थापना का प्रोत्साहन देना है तो यदि इन बडी विदेशी कपनियो को बिना उचित और कारगर व दिश के खुद को स्थापित करन की अनुमति दी गई ता हम अपने लक्ष्य मे विफल हो जाएगे। (रिपोट, 1940, पृष्ठ 168)

तो भी, ब्रिटिश महाजनी पूजी की नियत्रक शक्ति के लिए सबसे महत्वपूण भूमिका विदेशी बैंकिग व्यवस्था की है जो सरकार की वित्तीय और विनिमय नीति के साथ मिलकर काम कर रही है। जब तक वित्तीय शक्ति पर ब्रिटिश एकाधिकार बना रहता है, भारत के सिवा स्वतत्र पूजीवादी विकास की बात करना एक खोखली बात के सिवा और कुछ नही है। भारत म आधुनिक बैंकिग प्रणाली का गठन चार तरह की सस्थाओ या सस्थाओ क समूहो के द्वारा हुआ है।

1 रिजव बैंक आफ इडिया, जिसकी स्थापना एक ऐक्ट के जरिए 1934 म हुई और जो 1935 से काम कर रहा है, इस व्यवस्था का सर्वोत्तम रूप है। बैंक आफ इग्लैंड की तरह इस बैंक का स्वामित्व और इसपर नियत्रण गैरसरकारी है लेकिन इसके पास मुद्रा जारी करने, मुद्रा विनिमय और सरकार की बैंकिंग तथा सरकार द्वारा भेजी गई रकम का नियमन करने और इस प्रकार बैंक आफ इग्लैंड की ही तरह कज की व्यवस्था पर नियत्रण रखन का अधिकार है। सरकार द्वारा इसके गवनर, दो उपगवनरो और पाच डाय रेक्टरो को नामजद किया जाता है लेकिन इन आठ पदाधिकारियो म से छ को ही मतदान का अधिकार प्राप्त है, सरकार के नामजद लोगो मे से इन छ लोगो के वोट के मुकाबले, गैरसरकारी रूप से चुने गए आठ डाइरेक्टरो मे से सभी का मतदान का अधिकार है। इस प्रकार कानून के जरिए इसे राजनीतिक नियत्रण से सुरक्षा प्राप्त है। 1935 म इस नए सेंट्रल बैंक की स्थापना तथा साथ ही गवनमेट आफ इडिया ऐक्ट के बनाने का उद्देश्य यह था कि यदि वैधानिक सुधारो के फलस्वरूप कुछ भारतीय प्रतिनिधि कभी केंद्रीय सर कार मे आ भी जाए तो आर्थिक सत्ता का यह दुग उनकी पहुच से परे बना रहे, या यदि 'लदन टाइम्स' (11 फरवरी 1928) के शब्दो म कहे तो वह 'उस राजनीतिक दबाव से, जिससे ऋण और मुद्रा की व्यवस्था को पूरी तरह स्वतत्र रहना चाहिए, बचा रहे।' युद्ध के दौरान जिस तरीके से रिजव बैंक आफ इडिया ने साम्राज्यवादी नीति की इच्छा के सामने घुटने टेक दिए और महज एक सरकारी विभाग के रूप मे काम किया उससे साफ पता चल जाता है कि बोड आफ डाइरेक्टस के निर्वाचित सदस्यों का बहुमत मात्र एक दिखावा है और वास्तविक नियत्रण सरकार के हाथो म निहित है। रिजव बैंक की प्रथम दस वर्षों की काय प्रणाली की समीक्षा करत हुए 'ईस्टन इकोनामिस्ट' लिखता है

> इस प्रकार रिजव बैंक ने सरकार द्वारा इसके लिए तैयार किए गए फैसलो के

तकनीकी निष्पादक का काम प्रशसनीय ढग से किया इसके कार्यों के सभी उपलब्ध प्रमाणो और विवेकपूण निष्कर्षों के आधार पर हम यह टिप्पणी करने के लिए विवश है कि रिजव बैंक के केंद्रीय बाड को अपने उत्तरदायित्व पूरी तरह नही मिले दरअस्ल सच्चाई यह है कि सरकार का इरादा बैंक का राजनीतिक नियत्रण से नही बल्कि जनता के नियत्रण से मुक्त रखना था। (ईस्टन इकोनामिस्ट, 25 मई 1945)

2 इपीरियल बैंक आफ इडिया की स्थापना 1920 के ऐक्ट के द्वारा तीन भूतपूव प्रेसीडेंसी बैंको को मिलाकर की गई थी और यह 1921 से काम कर रहा है। इसका भी स्वामित्व और नियत्रण निजी है हालाकि इसकी स्थापना कानूनी तौर पर हुई है और इसकी अधिकृत पूजी 90 लाख पौंड है। मूलत इसका गठन एक केंद्रीय बैंक की तरह किया गया था जो मुद्रा जारी करने और व्यापारिक कार्यों म सरकारी बैंक की भूमिका निभा सके। 1934 के सशोधक ऐक्ट के जरिए यह अब व्यापारिक कार्यों को जारी रखने के साथ साथ रिजव बैंक के सहयोग से काय करता है। इसकी लगभग 400 शाखाए और उपशाखाए हैं। भारत के सभी बैंको की कुल जमाराशि का एक तिहाई हिस्सा इस बक म है। 1936 मे इसके 11 डाइरेक्टर अगरेज थे और चार डायरेक्टर भारतीय।[4]

3 एक्सचेंज बैंक अथवा भारत म काम करने वाले ब्रिटिश या विदशी निजी बैंक। इन बैंको के मुख्यालय भारत से बाहर हैं और इनका स्वरूप पूरी तरह अभारतीय है।[5] ये निर्यात और आयात व्यापार मे लगी पूजी का नियत्रण करते है। 1943 मे इनकी सख्या 16 थी जिनमे सबसे महत्वपूण थे चाटड बैंक आफ इडिया, आस्ट्रेलिया ऐंड चाइना, दि मरकेंटा-इल बैंक आफ इडिया, दि नेशनल बैंक आफ इडिया, दि हागकाग ऐंड शघाई बैंकिंग कार-पारेशन और लायड बैंक। भारत के बैंको म कुछ जमाराशि का पाचवा हिस्सा इन बैंको म जमा है।

4 दि इडियन ज्वाइट स्टाक बैंक्स या भारत मे पजीकृत निजी बैंको का स्थान इस व्यवस्था म सबसे नीचे है। भारतीय पूजी केवल यही कोई भूमिका निभा पाती है लेकिन इनम से भी कुछ बैंको पर, मसलन इलाहाबाद बैंक पर जो सबसे बडे बैंको म से एक है और अब चाटर्ड बैंक आफ इडिया, आस्ट्रेलिया ऐंड चाइना से सबद्ध है, विदेशी नियत्रण कायम हो गया। इसलिए इनकी कुल शक्ति को भारतीय बैंक व्यवस्था की शक्ति नही माना जा सकता। इन बैंको को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा है और कई को असफल-ताए मिली। इनम पीपुल्स बैंक आफ इडिया, इडियन स्पैसी बैंक और एलायस बैंक आफ शिमला शामिल है। 1922 स 1928 के बीच कम से कम 100 भारतीय बैंक बद हो गए (इकोनामिस्ट, 12 अप्रैल 1930)।

बैंको के इन तीन समूहो अर्थात इपीरियल बैंक आफ इडिया (1921 से पहले तीन

प्रेसीडेंसी बैंको), एक्सचेंज बैंको और इडियन ज्वाइट स्टाक बैंको के पास 1913, 1920 और 1934 म कितनी जमा राशि थी, यह निम्न तालिका मे देखा जा सकता है

बक की जमा राशि[6]
(करोड रुपया म)

	इपीरियल बैंक आफ इडिया (या प्रेसीडेंसी बैंक्स)		एक्सचेंज बैंक्स		इडियन ज्वाइट स्टाक बैंक्स	
	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत	राशि	प्रतिशत
1913	42 4	43 5	31 0	31 8	24 1	24 7
1920	87 0	36 9	74 8	31 6	73 5	31 6
1934	74 9	33 6	71 4	32 0	76 8	34 4

यह देखा जा सकता है कि अगरेजी और विदेशी बैंका, इपीरियल बक आफ इडिया और एक्सचेंज बैंका का दबदबा कायम था। इसके अलावा इडियन ज्वाइट स्टाक बैंका का मुख्य रूप से जो विकास हुआ वह 1913 से 1920 के बीच की अवधि म हुआ, इस अवधि मे उनकी जमाराशि कुल बैंका म जमाराशि के एक चौथाई हिस्से से बढकर एक तिहाई हो गई। इसके बाद से इडियन ज्वाइट स्टाक बैंको की प्रगति बडी धीमी रही और यदि इनमे से कुछ के विदेशी नियत्रण के अधीन आ जाने की बात की अनदेखी कर दी जाए तो पता चलेगा कि भारतीय पूजी के दृष्टिकोण से इस अवधि म सभवत ह्रास की ही स्थिति रही।

	जमा राशि 1938	(करोड रुपयो मे) 1941	1942	1943
1 इपीरियल बैंक आफ इडिया	81 51	108 92	163 46	214 53
2 एक्सचेंज बैंक्स	67 20	106 73	116 85	140 19
कुल विदेशी बैंका मे जमा राशि	148 71	215 65	280 31	354 72
3 अनुसूचित बैंक	91 87	129 04	189 34	319 65
4 गैर अनुसूचित बैंक	14 94	20 05	29 01	40 23
इडियन ज्वाइट स्टाक बैंका की कुल राशि	106 81	149 09	218 35	359 ९९

युद्ध के वर्षों के दौरान भी स्थिति मे कोई खास परिवतन नही हुआ है। इसके लिए 1938 के बाद इन तीनो बैंको के समूहा मे जमा राशि की तुलना की जानी चाहिए।

पृष्ठ 190 की तालिका देखने से पता चलता है कि सम्मिलित पूजी के सभी भारतीय बैंका (इडियन ज्वाइट स्टाक बक्स) पर इपीरियल बैंक और एक्सचेंज बैंको का दबदबा था जो 1943 तक बना रहा। केवल 1943 मे जहा कही भारतीय बैंको ने अपनी स्थिति मजबूत की और उनकी जमा राशि इपीरियल और एक्सचेज बैंको की जमा राशि से लगभग 1 5 प्रतिशत अधिक हुई।

भारतीय उद्योगपतियो की सबसे जबरदस्त शिकायत यह रही है कि भारत की बैंक व्यवस्था पर ब्रिटेन के नियत्रण का इस्तेमाल भारत के औद्योगिक और स्वतत्र आर्थिक विकास को नुकसान पहुचाने के लिए और ब्रिटिश हितो को लाभ पहुचाने के लिए किया गया है। इस सिलसिले मे टी० सी० गोस्वामी के उस बयान को देखा जा सकता है जो 'एक्सटनल कैपिटल कमेटी' की रिपोट के साथ सलग्न है

> मैं इस आम धारणा को व्यक्त करना चाहूगा, जा मेरी जानकारी म पर्याप्त तथ्या पर आधारित है, कि ऋण देने के मामले मे नस्लवादी और राजनीतिक भेदभाव बरता जाता है। भारतीयो के साथ प्राय ऋण प्राप्त करने के मामले म वह सलूक नही किया जाता जो उनकी सपत्ति के आधार पर उनके साथ किया जाना चाहिए जबकि ब्रिटिश व्यापारियो को बहुधा इतना अधिक ऋण मिल जाता है जो व्यापार के सामान्य सिद्धाता के अतगत उन्ह नही मिलना चाहिए। (टी० सी० गोस्वामी 'एक्सटनल कैपिटल कमेटी' की रिपोट म सलग्न वक्तव्य, पृष्ठ 24)

इडियन सेंट्रल बैंकिग की अल्पमत (माइनारिटी) रिपोट ने इस शिकायत का समथन किया। बहुमत (मेजारिटी) रिपोट इस शिकायत पर उल्लेखनीय रूप से मौन रही और उसने 'पूरी पूरी जानकारी के अभाव में' फैसले को स्थगित करने का एलान किया

> इस तरह की कुछ शिकायतें आइ है कि कज के लिए आई दरख्वास्तो पर विचार करते समय इपीरियल बैंक आफ इडिया के अफसर नस्लवादी भेदभाव बरतत है। यह भी कहा गया है कि बैंक के गोरे मैंनेजरा के रहन सहन का जो ढग है और उनका जो सामाजिक तौर तरीका है उससे इसी बात की ज्यादा गुजाइश रहती है कि उनका भारतीयो की बजाय यूरोपीयो से ज्यादा प्रगाढ सबध होगा और इस व्यक्तिगत जानकारी तथा सबध के कारण कज चाहने वाली यूरोपीय कपनियो को भारतीय कपनिया के मुकाबले ज्यादा तरजीह मिल जाती है।
>
> आम धारणा यह भी है कि भारतीय फर्मों के मुकाबले यूरोपीय फर्मों को बैंक

> ज्यादा खुलकर कर्ज देता है और जिन भारतीय फर्मों ने बैंक से मदद ली है उनके बड़े तल्ख तजुर्बे रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि गैरभारतीय फर्मों ने जहा बैंका से पूरी पूरी मदद ली है वही भारतीय फर्मों को दी गई मदद काफी कम है और फर्म की आवश्यक जरूरता को काफी हद तक पूरा नही करती। इपीरियल बैंक आफ इडिया ने भारतीय और गैरभारतीय फर्मों को दिए गए ऋण का ब्यौरा हमारे सामने पेश किया है पर जब तक अलग अलग फर्मों के बारे म हम पूरी जानकारी नही मिल जाती, हम इस शिकायत की जाच कर पाने मे असमर्थ हैं। (मेजारिटी रिपोर्ट आफ दि इडियन सेंट्रल बैंकिंग इक्वायरी कमेटी, 1931, खड 1, पृष्ठ 271-72)

इसी प्रकार 1925 मे सरकार द्वारा गठित भारतीय आर्थिक जाच समिति के अध्यक्ष स एम० विश्वैश्वरैया ने लिखा

> भारत मे उद्योग धधे शुरू करने के माग मे जो कठिनाइया हैं उनम प्रमुख कठिनाई वित्त की है। इसका वास्तविक कारण यह है कि देश की मुद्रा शक्ति सरकार के नियत्रण मे है और, जैसाकि हमने दखा है, औद्योगिक नीतियो के मामले म सरकार भारतीय नेताओ से पूर्ण रूप से सहमत नही है। ऐसे बैंक बहुत कम हैं जिनपर भारतीय व्यापारियो का अधिकार है और बडे बैंका म से अनेक बैंक या तो सरकारी प्रभाव के अतगत है या वे ब्रिटिश और विदेशी बैंको की शाखाए हैं। (सर एम० विश्वैश्वरैया 'प्लाड इकोनामी फार इडिया,' 1934, पृष्ठ 95)

7 महाजनी पूजी और द्वितीय विश्वयुद्ध

उपरोक्त तथ्यो से यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग मे स्वतत्र भारतीय आर्थिक विकास की कीमत पर ही ब्रिटिश महाजनी पूजी का वास्तविक प्रभुत्व मजबूती के साथ बनाए रखा गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध और इसके फलस्वरूप पूर्व मे लडाई के सामानो की सप्लाई के लिए भारत को आधार बनाने की आवश्यकता और सभावना भी साम्राज्यवादी रुख म कोई तब्दीली नही लाई। युद्ध की सपूर्ण अवधि के दौरान ब्रिटिश नीति का हमेशा यही उद्देश्य रहा कि भारत का किसी भी तरह से उद्योगीकरण न होने दिया जाए। 'ईस्टर्न इकोनामिस्ट' ने 31 अगस्त 1945 को लिखा

> हम सारी चीजे बना सकते थे फिर भी हमने कुछ नही बनाया। हम किसी भी चीज की और हर चीज की महज सप्लाई करते रहे दुनिया भर की चीजा की मरम्मत करते रहे पर हमने बनाया कुछ भी नही। हमारे सामने न तो कोई योजना थी और न कोई प्रणाली। बल्कि यू कहे कि हमारे सामने जो

योजना बडे साफतौर पर थी वह थी युद्ध के बाद के वर्षो मे इस देश को उद्योगीकरण से बचाने की।

फिर भी, अनिवायत युद्ध के दौरान औद्योगिक गतिविधिया कुछ हद तक बढी। भारतीय कारखानो मे (इसमे हथियार बनाने के सभी सरकारी कारखाने आदि शामिल ह) कायरत मज्दूरो की सख्या 1939 मे 1,751,136 से बढकर 1944 म 2,520,000 हो गई। ब्रिटिश भारत मे सम्मिलित पजी की कपनियो की प्रदत्त पूजी 1939-40 में 2 अरब 88 करोड 50 लाख रुपये थी जो 1943-44 मे बढकर 3 अरब 29 करोड 20 लाख रुपये हो गई। औद्योगिक कार्यों का सूचकाक (भारत में ब्रिटिश वित्तीय हितो के साप्ताहिक मुखपत्र 'कैपिटल' द्वारा प्रतिमाह की गई गणना के अनुसार) 1939-40 में 114 0 था, जा मई 1945 में अर्थात यूरोपीय युद्ध की समाप्ति पर बढकर 120 5 हो गया। जनवरी 1945 में यह अक 132 1 हो गया और यही अधिकतम अक रहा। कुछ तरह के सामानो के उत्पादन में भी वृद्धि हुई। कागज का उत्पादन बढा, युद्ध से पूव के वर्षों में 59,000 टन कागज का उत्पादन हुआ था जो 1943 44 में बढकर 90,000 टन हो गया। (बाद में 1944 45 में इसमे गिरावट आई और यह 75,000 टन हो गया)। युद्ध के दौरान मिल मे बने कपडे का उत्पादन 3 अरब 80 करोड गज से बढकर 4 अरब 70 करोड गज हो गया (ईस्टन इकोनोमिस्ट,' 4 जनवरी 1946)। युद्ध से मिले प्रोत्साहन के फलस्वरूप रसायनो आदि के उत्पादन मे भी वृद्धि हुई। इस्पात का वार्षिक उत्पादन 1939 मे लगभग 750 000 टन था जो 1943-44 में बढकर लगभग 1,125 000 टन हो गया। विशेप किस्म के एलाय और एसिड स्टील जैसे नए तरह के इस्पात का पहली बार उत्पादन हुआ। विमानो, पानी के जहाजो आदि की मरम्मत भी कुछ हद तक की गई।

लकिन, जैसाकि भारतीय व्यापार एव उद्याग महासघ (इडियन चबस आफ कामस ऐंड इडस्ट्री) के अध्यक्ष सर बद्रीदास गोयनका न कहा है, युद्ध के दिनो में भारत मे उत्पादन में जो भी वृद्धि हुई वह 'मौजूदा कारखाना और मशीनो का बतहाशा चलाकर तथा मजदूरो से कई कई शिफ्टा में काम कराकर हुई है। युद्ध में लग अय देशो में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता के साधन स्थापित किए गए पर भारत मे, बहुत थोडे मामलो को छोडकर, सामायत ऐमा नही हुआ।' ('ईस्टन इकोनामिस्ट,' 5 माच 1946)।

युद्ध से पहले भारतीय उद्योग अप्रयुक्त क्षमता के आधिक्य से त्रस्त था। उदाहरण के लिए पटसन उद्योग मे तीन चौथाई से लेकर दो तिहाई अतिरिक्त क्षमता थी। बबई मिल मालिक सघ के एक अनुमान के अनुसार उत्पादन साधना से लैस देश की 389 कपडा मिलो मे स 22 मिलें ऐसी थी जिनम वप 1939 मे थाडा बहुत उत्पादन हाता था या जा बिलकुल बद पडी थी (पी० सी० जैन इडिया बिल्डस हर वार इकोनामी,' 1943 पृष्ठ 4)। युद्ध के दौरान पहले तो इस अतिरिक्त क्षमता का इस्तेमाल किया गया और बाद म वतमान साधना पर ज्यादा से ज्यादा बाझ डाला गया। दरअस्ल नए

उद्योगो को शुरू करने के लिए ही नही बल्कि मौजूदा उद्योगो को फिर से साधन सपन्न बनाने के लिए भी आवश्यक पूजीगत माल (कैपीटल गुड) के आयात की अनुमति नही दी गई। इसके परिणामस्वरूप जो बोझ पडा वह कुछ उदाहरणो से स्पष्ट है। उदाहरण के लिए रेल यातायात को लें। युद्ध पूव के वर्षों की तुलना मे एक यात्री गाडी ने 32 प्रतिशत ज्यादा और एक मालगाडी ने 8 5 प्रतिशत ज्यादा भार वहन किया, युद्ध पूव के दिनो मे एक इजन अपने शेड मे जाने से पहले जितनी दूरी तय करता था उससे दुगुनी से भी ज्यादा दूरी उसे तय करनी पडी। ऐसे 29 प्रतिशत इजनो और भारी सख्या म रेल डिब्बो को बिना बदले इस्तेमाल मे लाया गया जिनका कायकाल पूरा हो चुका था ('ईस्टन इकोनामिस्ट' 15 फरवरी 1946)। सूती कपडा उद्योग का ही उदाहरण लें तो हम पाएगे कि आज बुनाई करने वाली 50 प्रतिशत मशीनें ऐसी है जिन्हे बदलने की जरूरत है। ब्लो रूम मशीनो का उदाहरण ले तो पता चलेगा कि उद्योग मे आज इस्तेमाल होने वाली इन कुल मशीनो मे से 11 5 प्रतिशत मशीनें 1890 से पहले, 11 1 प्रतिशत मशीनें 1906 से 1910 के बीच, 18 6 प्रतिशत मशीनें 1921 से 1925 के बीच और 11 4 प्रतिशत मशीनें 1936 से 1940 के बीच लगाई गई थी। सूत खीचने और चलाने वाले फ्रेमो मे मे 35 5 प्रतिशत फ्रेम 1910 से पहले लगाए गए थे (वही, 7 जुलाई 1944) और इन्ही पुराने उपकरणो को युद्ध की बढती माग का सामना करना पडता था। जहाजो के लिए बदरगाह की उचित व्यवस्था न होने की झूठी दलील देकर सरकार ने इस बात की सख्त ताकीद रखी कि युद्ध के दौरान भारत म पूजीगत सामानो को नही ही भेजा जाए।

इस बात की भी कोई गभीर कोशिश नही की गई कि भारत के विशाल साधनो का इस्तेमाल किया जाए वरना युद्ध की स्थिति से निबटने के प्रयास खतरे मे पड जाएगे।' मोटरकार और जहाज निर्माण उद्योग की स्थापना नही करा दी गई—इसके लिए मशीनों के आयात की अनुमति नही दी गई और सेना के लिए इन्हे खरीद जाने की भी गारटी नही दी गई। इतना ही नही अमरीकी तकनीकी मिशन की सिफारिशो को भी (जिसने जल विद्युत परियोजना, विमान निर्माण, जहाज निर्माण, बडी लाइन के इजन बनाने आदि जैसे किसी भी बुनियादी उद्योग की स्थापना के खिलाफ साफ साफ शब्दो म और खुलकर अपना मत व्यक्त किया था) भारत सरकार ने नामजूर कर दिया।

अमरीकी तकनीकी मिशन ने देखा कि 'बबई म जहाजो की मरम्मत करने वाले एक कारखाने मे सैनिको के जूतो मे लगने के लिए इस्पात की कीलोवाले नाल बनाए जा रहे हैं और रेल रोड के लिए स्विच गीयर बन रहे हैं जबकि बदरगाह म 100 से भी अधिक जहाज छोटी-बडी मरम्मत के इतजार म खडे है' (रिपोट, पृष्ठ 3)। मिशन ने, लगभग अन्य सभी उद्योगो म सुधार की सिफारिश के अलावा, जहाजो और विमानो की भारत म उचित मरम्मत और छोटी लाइन पर चलने वाले इजनो, माल गाडियो तथा अन्य किस्म की गाडियो के निर्माण की सिफारिश की थी। मिशन ने वायदा किया था कि यह सब

तरह की आवश्यक मशीनें और तकनीकी सहायता अमरीका से दिलाएगा। उसके अनुसार

> भारत मे औद्योगिक उत्पादन के विस्तार को कम से कम आंशिक तौर पर अमरीका से पटटे पर उधार मिले सामानो पर और इस देश के तकनीशियनो की सलाह पर आधारित करना होगा। (रिपोट आफ दि अमेरिकन टेक्निकल मिशन, पृष्ठ 6)

फिर भी सरकार ने अमरीकी तकनीशियनो और तन्त्र की मदद के बावजूद उन बुनियादी सिफारिशो को मानने से इकार किया। इतना ही नही उसने रिपोट को एकदम गुप्त रखा और प्रकाशित नही होने दिया।

कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे अधिराज्या को बुनियादी उद्योग धधे स्थापित करने और अपने आर्थिक विकास का स्तर ऊचा उठाने के लिए मदद दी गई, लेकिन भारतीय अथ-व्यवस्था का वही रूप बना रहने दिया गया जो पहले से चला आ रहा था, भारी उद्योग अविकसित ही रहे।

भारत के विकास को रोकने की इस नीति के लिए मुख्यतया पूर्वी क्षेत्र की सप्लाई कौंसिल (ईस्टन ग्रुप सप्लाई कौंसिल) की सेवाओ का इस्तेमाल किया गया। इसका कार्यालय भारत मे था और इसकी स्थापना का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न देशो से लडाई के काम आने वाले सामानो को एक जगह इकट्ठा करके फिर वितरित करना था। इस सस्था के जरिए ही सरकार ने ऐसी व्यवस्था की ताकि भारत का औद्योगिक विकास न हो सके। सरकार की दलील यह थी कि ब्रिटिश साम्राज्य के मातहत देशो को एक ही चीज के उत्पादन मे नही बल्कि अलग अलग चीजो के उत्पादन मे लगना चाहिए। कौंसिल म भारतीय प्रतिनिधि के रूप मे एक सरकारी अधिकारी था और कौंसिल ने विभिन्न देशो को युद्ध सामग्री का आडर प्रेषित करने मे बहुत सोच समझकर भेदभाव बरता। कारखाना मालिको के सगठन आल इडिया मैन्युफैक्चरम आर्गेनाइजेशन' के अध्यक्ष सर एम० विश्वेश्वरैया के अनुसार

> ऐसा लगता है कि वतमान युद्ध के लिए आवश्यक सामानो का आडर ईस्टन ग्रुप सप्लाई काम म और रोजर मिशन की सलाह पर युद्ध म लगे उन विभिन्न देशा के बीच बाट दिया गया है जो ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हैं। जो इतजाम किए गए है उनके अनुसार ऐसा लगता है कि भारत के कारखानो मे और उद्योगपतिया के जिम्मे वही गिना चुना सामान बनाने का काम सौंपा गया है जिसम न तो किसी उत्तम तकनीकी कुशलता की जरूरत हो और न तकनीकी व्यवहार की। जिन सामानो के निर्माण म भारी उद्योग या श्रेष्ठ तकनीकी

कुशलता की जरूरत है उन्हें अमरीका या कनाडा और आस्ट्रेलिया से बनाने को कहा गया है। (एम० विश्वेश्वरैया 'प्रास्पैरिटी थ्रू इंडस्ट्री,' 1943, पृष्ठ 15)

ईस्टर्न ग्रुप सप्लाई कौंसिल के प्रतिगामी लक्ष्यों और कार्यप्रणाली को देखकर ब्रिटिश निहित स्वार्थ को दिसंबर 1940 में ही काफी तसल्ली हुई थी। अक्तूबर 1940 में ईस्टर्न ग्रुप सप्लाई कौंसिल का अधिवेशन हुआ जिसमें ब्रिटिश व्यापार बोर्ड के प्रतिनिधि श्री गाई लाकाक ने भी हिस्सा लिया। इसपर लंदन के 'रेलवे गजट' ने निम्न टिप्पणी की

> मिशन में व्यापार बोर्ड के प्रतिनिधि के रूप में उन्हें (गाई लाकाक) यह काम सौंपा गया था कि युद्ध की महत्वपूर्ण जरूरतों को वरीयता देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वह इस बात का जायजा लें कि इस समय युद्ध के लिए किए जा रहे उत्पादनों के विस्तार का भविष्य में ब्रिटेन के उद्योग पर क्या प्रभाव पड़ेगा—साथ ही श्री लाकाक का विचार है कि मिशन की यात्रा के फलस्वरूप ऐसी चीजों के उत्पादन को विस्तार देने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया है जो युद्ध के लिए आवश्यक नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि जैसी कि पहले आशंका थी, भारत में ब्रिटिश उद्योग के युद्धोत्तर हित ज्यादा प्रभावित नहीं होंगे। (सर एम० विश्वेश्वरैया 'रीकंस्ट्रक्शन इन पोस्ट वार इंडिया,' में उद्धृत, 1944 पृष्ठ 15)

अमरीकी तकनीकी मिशन ने यह भी सोचा कि अब सैनिक स्थिति में चूंकि परिवर्तन हो गया है 'इसलिए विदेशी कमानों की ओर से भारत सरकार द्वारा की गई खरीद के लिए कौंसिल के जरिए निकासी से अब कोई खास मकसद नहीं हल होगा।' तदनुसार, मिशन ने सिफारिश की कि 'सामानों के लिए विदेशों से भारत पहुंचे आदेशों पर सीधे भारत के सप्लाई डिपार्टमेंट को काम करना चाहिए। इसके लिए ईस्टर्न ग्रुप सप्लाई कौंसिल के जरिए पहले से कोई अनुमति लेना जरूरी नहीं है' और कहा कि इस कौंसिल को अब महज 'ऐसी एजेंसी के रूप में काम करना चाहिए जो उत्पादन और सप्लाई के बारे में सूचनाएं इकट्ठी करे और उनमें तालमेल बैठाए।' (रिपोर्ट, पृष्ठ 7)

लेकिन उपरोक्त कारणों से, भारत सरकार का जवाब, नकारात्मक था, यह काफी स्वाभाविक भी था। मिशन की रिपोर्ट पर भेजे गए अपने ज्ञापन में भारत सरकार ने कहा कि ईस्टर्न ग्रुप सप्लाई कौंसिल के संविधान के अंतर्गत कौंसिल से मांगों को निर्धारित करने की अपेक्षा की जाती है और कौंसिल अपने को इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकता।'

भारत सरकार ने न केवल भारत में बुनियादी उद्योगों के विकास को रोका बल्कि उसने

विदेशी फर्मों को सीधी मदद भी पहुचाई। उदाहरण के लिए यूनाइटेड किंगडम कामर्शियल कारपोरेशन ने युद्ध के दौरान 50 लाख पौंड की प्रदत्त पूजी से अपना काम शुरू किया और उसे विभिन्न देशो के साथ व्यापार का पूण एकाधिकार दे दिया गया। इसके अलावा भारत मे मोटर गाडियो के सयोजन तक के काम के लिए दो अमरीकी कपनियो, जनरल मोटस और फोड, के साथ लगभग पूरा पूरा अनुवध कर लिया गया।

इन सपूण वर्षों के दौरान औद्योगिक विकास होने के बजाय भारत का जितना भयकर शोषण हुआ वैसा ब्रिटिश शासन के सपूण इतिहास म कभी नही हुआ था। इस बार भारतीय जनता के ऊपर पिछले युद्धो से भी ज्यादा बोझ डाल दिया गया। नववर 1939 मे ब्रिटेन की सरकार ने अपन एजेट, भारत सरकार के साथ एक आर्थिक समझौता किया जिसमे रक्षा व्यय को आपस मे बाटने का विधान था। इस समझौते की शर्तों के अनुसार भारत मे प्रतिरक्षा व्यवस्था पर कुल जितनी राशि खच हुई, उसमे से भारत पर कितना बोझ पडा इसे स्पष्ट देखा जा सकता है

1 शाति काल की सामान्य अवस्था मे भारत का रक्षा व्यय 36 करोड 77 लाख रुपये प्रतिवप निश्चित किया गया, साथ ही,

2 कीमतो म वृद्धि के कारण इस मूल राशि मे भी वृद्धि की गई, साथ ही

3 इस तरह के युद्ध सबधी उपायो का खच, जो भारत ने अपने हित की रक्षा के लिए उठाए हो, उसे वहन करना पडा, और

4 ब्रिटेन की रक्षा के लिए विदेशो म लगे सैनिको के खच के लिए भारत को अपने हिस्से की राशि के रूप म 10 लाख रुपये की एकमुश्त रकम अदा करनी पडी।

भारत को सभी स्थल सैनिको को रखने, प्रशिक्षित करने, हथियारो से लैस करने और उनकी देखरेख करने का खच तब तक उठाना पडा जब तक वे भारत मे जमे रहे और भारतीय इलाके की रक्षा के लिए उपलब्ध रहे। जब वे विदेश रवाना हो जाते थे तो ये खर्चे ब्रिटेन की शाही सरकार से वसूले जा सकते थे और ब्रिटन की शाही सरकार आगे के उनके सारे खर्चों की जिम्मेदारी ले लेती थी।

इसके अलावा, भारत म तैनात विदेशी सैनिको को सप्लाई किए गए सभी सामान और सेवाओ का खर्चा देने पर भी ब्रिटेन सहमत हो गया। इस कारण युद्ध म जापान के शामिल होने के बाद खर्चों म तजी से वृद्धि हुई।

यह समझौता ऊपर से देखने पर बहुत निष्पक्ष और न्यायोचित लगता था और इस बात

का आभास देता था कि इसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के रक्षा व्यय को भारत के सिर मढना नही है लेकिन वास्तविकता यह थी कि यह कम खुले रूप मे भारत पर सारा बोझ डालने का साधन मात्र था।

एक ही परिवार के तीन सदस्य अर्थात ब्रिटेन की शाही सरकार, भारत सरकार और रिजव बैंक आफ इडिया, इस बात पर सहमत थे कि रिजव बैंक को ब्रिटेन की शाही सरकार की ओर से किए गए इस तरह के तथा अन्य खर्चो के बदले म भारत म अधिक से अधिक कागजी मुद्रा जारी करनी चाहिए। वे इसपर भी एकमत थे कि शाही सरकार उन जारी किए गए नोटो के बराबर की स्टर्लिंग मुद्रा को बक आफ इग्लैड के खाते म जमा करती जाए। इस प्रकार पूरा समझौता भुगतान के महज वायदा तक सीमित रह गया और भारत को जबरदस्त खच का बोझ सहना पडा। भारत की अथव्यवस्था पर इससे कितना बोझ पडा इसका पता हम भारत के रक्षा व्यय और ब्रिटिश सरकार क रक्षा व्यय को जोडकर लगा सकते है। समझौते के अतगत जिन मदो के खच को भारत का रक्षा व्यय माना गया था वह बेहद बढ गया और कुछ वर्षों म तो वह युद्ध की कुल राष्ट्रीय आय का एक तिहाई तक हो गया।

भारत का रक्षा खच
(करोड रुपयो मे)

वष	पूजी लेखा पर	राजस्व लेखा पर	कुल योग
1939-40	—	49 54	49 54
1940 41	—	73 61	73 61
1941-42	—	103 93	103 93
1942-43	52 51	214 62	267 13
1943 44	37 46	358 40	395 86
1944 45	62 83	395 49	458 32
1945-46*	14 93	376 42	391 35
कुल योग	167 73	1572 01	1739 74

(रिजर्व बैंक आफ इडिया 'रिपोट आन करेंसी ऐंड फाइनांस, 1945 46') *सशोधित अनुमान

ब्रिटेन की शाही सरकार से वसूली योग्य माना गया युद्ध [illegible] थी था।

जून 1946 तक बैंक आफ इ[illegible] भारत का दे[illegible] राशि 1 अरब

59 करोड 69 लाख पौंड या 21 अरब 29 करोड 25 लाख रुपये थी। यह बकाया राशि म अब भी बढती जा रही है।

वसूली योग्य युद्ध व्यय[8]

वप	करोड रुपयो मे
1939 40	4 00
1940 41	53 00
1941-42	194 00
1942-43	325 40
1943-44	377 87
1944-45	410 84
1945-46*	347 07
कुल याग	1712 18

(वही, पृ० 48) *सशोधित अनुमान

सपूण युद्ध काल मे इस कुल राशि को भारतीय जनता की पहुच से दूर रखा गया। स्वण या सामान किसी भी रूप म भारत इस राशि को अपन काम नही ला सकता था। बकाया राशि म निरतर वृद्धि होती गई पर भारत को एक भी पैसा नही मिला जिससे वह आव श्यक मशीनें आदि विदेशा से खरीद सकता।

भारत के मालिक की अपनी हैसियत का ब्रिटन ने भरपूर फायदा उठाया। दूसरे देशो मे इस स्टलिंग बकाया के बदले मे ब्रिटेन द्वारा लगाई गई पूजी के साथ जैसा व्यवहार रहा उसके विपरीत भारत को इस बात की भी इजाजत नही दी गई कि वह ब्रिटिश तथा अन्य विदशी पूजी को समाप्त कर दे। केवल भारत के सावजनिक ऋण (स्टलिंग) को, जो 32 करोड 34 लाख पौंड था, स्वदेश लौटाने की अनुमति दी गई, शेष 1 अरब 27 कराड 35 लाख पौड राशि अथवा वस्तुत सदियो पुराने इस ऋण की चार गुनी राशि आज भी बैंक आफ इग्लैंड म पडी है। युद्ध के बाद इस आशय के प्रस्ताव आए कि कोई बहाना बनाकर उस ऋण को नकार दिया जाए या इसे कम कर दिया जाए'। 1946 में सपन्न आग्ल अमरीकी वित्तीय समझौत में जो शर्तें निर्धारित की गई थी उनम से एक शर्त इस बारे में भी थी जिस पर दोना पक्षा के बीच सहमति हुई।

इसके अतिरिक्त साम्राज्यवादी शासको न भारत के डालर कोष को भी हजम कर लिया। युद्ध के दौरान डालर पूल अरेंजमेंट' नामक व्यवस्था की गई थी जिसके अधीन 'स्टलिंग क्षेत्र म सभी देशो को इसके लिए मजबूर किया गया कि वे अपनी डालर निधि को जो उन्हें

अपना सामान अमरीका को बेचकर प्राप्त हो सकती थी, एक जगह जमा करें। इस डालर कोष से भारत तथा अन्य देश अमरीका से सीधे कुछ नही खरीद सकते थे। इन डालरो का इस्तेमाल केवल ब्रिटिश सरकार लडाई का सामान खरीदने के लिए करती थी। यहा तक कि डालर कोष म जमा डालरो का सही आकडा भी नही प्रकट किया गया और इस राशि के बारे मे विभिन्न लोगो द्वारा जो अटकलें लगाई गई उनके बीच काफी अतर है।

अमरीका के वाणिज्य विभाग ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि 1942 से 45 के चार वर्षो के दौरान अमरीका के साथ भारत का व्यापार सतुलन उल्लेखनीय रूप से अनुकूल रहा है और यह 42 करोड 10 लाख डालर के बराबर है। श्री मनु सूबेदार के अनुसार 1 अरब 14 करोड रुपये के मूल्य का डालर अब भी भारत के खाते मे पडा है। 8 मार्च 1946 के 'ईस्टन इकोनामिस्ट' ने अनुमान लगाया कि अक्तूबर 1945 तक भारत ने ब्रिटेन के 'डालर पूल' को कम से कम 90 करोड डालर तो दिया ही होगा। लेकिन भारत सरकार के वित्तमत्री ने भारत द्वारा महज मार्च 1945 तक ब्रिटिश सरकार के डालर पूल म दी गई कुल राशि को 49 करोड 20 लाख रुपये बताया।

इस प्रकार मार्च 1945 तक यह राशि 1 अरब से 2 अरब रुपयो के बीच कुछ भी हो सकती है और इस राशि मे तब से ही वद्धि हो रही है। लेकिन इस डालर कोष को बडी सफलता पूर्वक उन पूजीगत सामानो के आयात में लगाने से बचाया गया जिनका इस्तेमाल भारत के उद्योगीकरण के लिए किया जाता। आज भी इस कोष को भारत के इस्तेमाल के लिए नही दिया जा रहा है। 1946 म अपने बजट भाषण में वित्तमत्री ने उस समय तक भी भारतीय जनता को यह बताना चाहा कि डालर पूल को बनाए रखने म उनका (भारतीयो का) हित है।

अधिक से अधिक करेंसी नोट जारी करके, युद्ध का खर्च चलाने की इस साम्राज्यवादी प्रणाली का भारतीय अर्थव्यवस्था पर गभीर प्रभाव पडा। भारत जब युद्ध की चपट से बाहर आया तब तक वह कगाल हो चुका था और आर्थिक दृष्टि से बेहद कमजोर। युद्ध का असली भार तो उस जनता पर पडा जो पहले से ही भुखमरी की स्थिति म थी।

सबसे पहले हम यह देखें कि मुद्रास्फीति का किस सीमा तक सहारा लिया गया।

रिजर्व बैंक आफ इडिया की रिपोर्टों से ली गई इस तालिका से पता चलता है कि युद्ध कालीन वर्षो के दौरान नोट जारी करने म वस्तुत 600 प्रतिशत वृद्धि हुई (और यह प्रक्रिया आज भी जारी है), जबकि औद्योगिक कार्यकलाप का सूचक अक, जो 1939-40 मे 114 0 था युद्ध के दौरान (जनवरी 1945 म) 132 5 के अधिकतम अक तक पहुच गया। इस मुद्रास्फीति के फलस्वरूप उद्योगपतियो और युद्ध ठेकेदारो ने बहुत मुनाफा कमाया।

नोटों का परिचलन

	(करोड़ रुपये में)
अगस्त 1939	17[illegible]
1939–40	[illegible]
1940–41	241 [illegible]
1941–42	[illegible]
1942–43	[illegible]
1943–44	[illegible]
1944–45	[illegible]
1945–46	116[illegible]
28 जून 1945	12[illegible]

कपड़ा उद्योग में हुए मुनाफों पर विचार करें। हालांकि समूचे भारत में कपड़ा उद्योग में जो मुनाफा हुआ, उसके आंकड़े हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं फिर भी सामान्य तौर पर बंबई की मिलों के आंकड़ों से इस मुनाफे का पर्याप्त आभास मिल जाता है। बंबई की कपड़ा मिलों ने 1941 में 6 करोड़ 04 लाख रुपये का मुनाफा कमाया जो 1940 के मुनाफे की तुलना में 2250 प्रतिशत अधिक था (वाडिया और मर्चेंट 'अवर इकोनामिक प्राब्लम', 1945 पृष्ठ 270)। बंबई की 15 प्रमुख कपड़ा मिलों ने 1940 में कुल 90 लाख, 1941 में 2 करोड़ 95 लाख 1942 में 8 करोड़ 8 लाख 1943 में 17 करोड़ 52 लाख और 1944 में 13 करोड़ 6 लाख रुपये का मुनाफा कमाया (एच० डी० पारीख 'कामर्स', 7 जुलाई 1945)

औसत विशुद्ध मुनाफों का सूचक अंक
(आधार 1939 को 100 मानकर) (प्रति उद्योग)

	1930	1940	1941	1942	1943
पटसन	100	590	617	896	926
कपास	100	73	205	313	645
चाय	100	118	211	251	302
चीनी	100	143	122	160	218
कोयला	100	88	107	95	171
इंजीनियरिंग	100	115	110	76	275
विविध	100	101	326	301	101
हर तरह के	100	137	263	250	337

(एम० एच० गोपाल [illegible] 1939, [illegible], 1944 पृष्ठ 730)

फुटकर कीमतो मे और वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए, बम्बई मे दूध का दाम 2 आना प्रति पौंड से बढकर 1 रुपये से 2 रुपये प्रति पौड तक हो गया। टमाटर की कीमत 2 आना प्रति पौंड से बढकर 10 आना प्रति पौड हो गई, आलू की कीमत 1 आना प्रति पौड से बढकर 4 आना प्रति पौंड हो गई। उत्तर प्रदेश मे, जहा गेहू काफी पैदा होता है, युद्ध से पहले गहू का मूल्य लगभग 4 रुपया प्रति मन था जो जुलाई 1946 मे बढकर 18 रुपया प्रति मन हो गया। डबलरोटी की कीमत मे भी वृद्धि हुई और युद्ध से पहले 8 औंस की रोटी की कीमत जहा 1 आना थी, 6 औंस की रोटी की कीमत ढाई आना हो गई। ड्रिल की कीमत युद्ध से पहले 7 आना प्रति पौड थी पर जून 1943 मे यह 42 आना प्रति पौड हो गई। खाद्यान्नो के मूल्य का सूचक अक सितबर 1939 म 93 था जो सितबर 1943 मे बढकर 530 हो गया।[10]

मजदूर वग के जीवन निर्वाह स्तर का सूचक अक (अधिकाशत कट्रोल दरो पर की गई गणना) घटता बढता रहा। मिसाल के तौर पर बबई के मजदूरो के लिए यह सूचक अक अगस्त 1939 म 100 से बढकर अगस्त 1944 मे 238 हो गया और फिर माच 1945 म घटकर 214 तथा फिर जुलाई 1946 मे बढकर 255 हो गया। अहमदाबाद के मजदूरो के लिए यह सूचक अक अक्तूबर 1939 मे तो 329 तक पहुच गया था, जून 1946 मे यह 297 ही रह गया।

दूसरी तरफ, मजदूरो की आय मे बडी मामूली सी वृद्धि हुई। सभी उद्योगा मे मालिको ने जीवन निर्वाह व्यय की वृद्धि के अनुपात मे महगाई भत्ता देने से इकार किया। भारत सरकार के मासिक प्रकाशन 'इडियन लेबर गजट' न जो आकडे दिए ह उन पर विश्वास तो पूरा पूरा नही किया जा सकता लेकिन उन आकडो के अनुसार कपडा उद्योग मे 1944 मे मजदूरो की कुल वार्षिक आय 100 प्रतिशत से थोडी अधिक थी, इजीनियरिंग उद्योग मे 100 प्रतिशत से कम, सरकारी आडनेन्स कारखानो मे केवल 50 प्रतिशत और खान उद्योग मे बहुत कम 24 प्रतिशत तक रही।

सबसे ज्यादा चिंता की बात तो यह थी कि मजदूरो का वेतन पहले से ही इतना था जिसमे उन्ह भुखमरी का सामना करना पडता था, अब उस वास्तविक वेतन मे भी कटौती हुई। जैसाकि हम आगे चलकर देखेंगे ग्रामीण जनता की भी स्थिति बेहतर नही थी।

इस प्रकार अन्य मित्र राष्ट्रो और अधिराज्यो के विपरीत युद्ध के बाद भारत पहले से भी ज्यादा गरीब हुआ है और इसका मुख्य कारण भारतीय अथव्यवस्था के प्रति साम्राज्यवाद का दृष्टिकोण था जिसने भारत को हमेशा एक पिछडा उपनिवेश बनाये रखना चाहा। युद्ध के कारण पडने वाले बोझ के कारण न केवल भारतीय अथव्यवस्था के निर्माण का अवसर हाथ से निकल गया बल्कि भारत को आज अत्यत गभीर औद्योगिक स्थिति का सामना करना पड रहा है।

प्रेमसागर गुप्त द्वारा की गई गणना के अनुसार बबई शहर की 69 कपडा मिलो ने, जिनम कुल प्रदत्त पूजी 13 करोड 93 लाख रुपये की थी, युद्ध के पाच वर्षो के दौरान इस पूजी का साढे छ गुना विशुद्ध मुनाफा कमाया। इन वर्षो का वार्षिक औसत 1939 के मुनाफा की तुलना मे 26 गुना से भी अधिक है।[9] विभिन्न उद्योगो मे हुए मुनाफो के पृष्ठ 201 पर दिये गये सूचकाक देखने से भी यही तस्वीर उभरती है।

यहा तक कि मुनाफो का सरकारी सूचक अक (भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार द्वारा प्रस्तुत), जो स्पष्टत कम करके बताया गया है और जिसम अधिकतम मुद्रास्फीति वाले वर्ष अर्थात 1942 तक की अवधि और इसलिए 1943 तक के मुनाफे को रखा गया है, वास्तविक प्रवृत्ति को नही छिपा सका।

मुनाफो का सूचक अक
(आधार 1928 को 100 मानकर)

	1939	1942
कपास	154 6	760 7
पटसन	13 6	49 2
चाय	96 2	219 5
कोयला	139 1	110 3
चीनी	179 4	219 8
लोहा और इस्पात	289 3	403 3
कागज	151 8	488 4
सभी उद्योगो का योग	72 4	169 4

इस समूची प्रक्रिया ने किसान मजदूर जनता पर अकथनीय कष्ट और जुल्म लाए। पूरे 6 वर्षो तक भारत की जनता को वेतन मे तरह तरह की कटौतिया, भोजन और वस्त्र के अभाव तथा देशव्यापी अकालो और गरीबी का सामना करना पडा।

भारत सरकार के आकडो के अनुसार खाद्यान्नो की थोक कीमतो का सूचक अक अगस्त 1939 मे 100 था पर अगस्त 1941 मे 122 9, अगस्त 1942 मे 163 2 और जुलाई 1943 मे 300 2 हो गया। जनवरी 1944 मे इसमे गिरावट आई और यह 233 0 हो गया लेकिन इस गिरावट का मुख्य कारण यह था कि सरकार ने जो कट्रोल कीमतें निर्धारित की थी वे बाजार की दर से कम थी। इसके बाद इस सूचक अक मे थोडी सी तब्दीली हुई और दिसबर 1945 मे यह 238 8 हो गया। दरअसल, कीमतो मे पहले से कही अधिक वृद्धि हुई क्योकि कट्रोल दर पर चीजें मुश्किल से ही उपलब्ध होती थी। देश भर मे काला बाजारी एक सामान्य बात हो गई।

फुटकर कीमतो म और वद्धि हुई। उदाहरण के लिए, बम्बई मे दूध का दाम 2 आना प्रति पौंड से बढकर 1 रुपये से 2 रुपये प्रति पौंड तक हो गया। टमाटर की कीमत 2 आना प्रति पौंड से बढकर 10 आना प्रति पौंड हो गई, आलू की कीमत 1 आना प्रति पौंड से बढकर 4 आना प्रति पाउंड हो गई। उत्तर प्रदेश मे, जहा गेहू काफी पैदा होता है, युद्ध से पहले गेहू का मूल्य लगभग 4 रुपया प्रति मन था जो जुलाई 1946 मे बढकर 18 रुपया प्रति मन हो गया। डबलरोटी की कीमत म भी वृद्धि हुई और युद्ध से पहले 8 औंस की रोटी की कीमत जहा 1 आना थी, 6 औंस की रोटी की कीमत ढाई आना हो गई। ड्रिल की कीमत युद्ध से पहले 7 आना प्रति पौंड थी पर जून 1943 मे यह 42 आना प्रति पौंड हो गई। खाद्यान्नो के मूल्य का सूचक अक सितबर 1939 मे 93 था जो सितबर 1943 मे बढकर 530 हो गया।[10]

मजदूर वग के जीवन निर्वाह स्तर का सूचक अक (अधिकाशत कटोल दरो पर की गई गणना) घटता बढता रहा। मिसाल के तौरपर बबई मे मजदूरो के लिए यह सूचक अक अगस्त 1939 मे 100 से बढकर अगस्त 1944 मे 238 हो गया और फिर माच 1945 मे घटकर 214 तथा फिर जुलाई 1946 मे बढकर 255 हो गया। अहमदाबाद के मजदूरो के लिए यह सूचक अक अक्तूबर 1939 मे तो 329 तक पहुच गया था, जून 1946 मे यह 297 ही रह गया।

दूसरी तरफ मजदूरो की आय मे बडी मामूली सी वृद्धि हुई। सभी उद्योगो म मालिको ने जीवन निर्वाह व्यय की वद्धि के अनुपात म महगाई भत्ता देने से इकार किया। भारत सरकार के मासिक प्रकाशन 'इडियन लेबर गजट' ने जो आकडे दिए है उन पर विश्वास तो पूरा पूरा नही किया जा सकता लेकिन उन आकडो के अनुसार कपडा उद्योग मे 1944 मे मजदूरो की कुल वार्षिक आय 100 प्रतिशत मे थोडी अधिक थी, इजीनियरिंग उद्योग मे 100 प्रतिशत से कम, सरकारी आडनेन्स कारखाना मे केवल 50 प्रतिशत और खान उद्योग मे बहुत कम, 24 प्रतिशत तक रही।

सबसे ज्यादा चिंता की बात तो यह थी कि मजदूरो का वेतन पहले से ही इतना था जिसमे उन्ह भुखमरी का सामना करना पडता था, अब उस वास्तविक वेतन मे भी कटौती हुई। जैसाकि हम आगे चलकर देखेंगे, ग्रामीण जनता की भी स्थिति बेहतर नही थी।

इस प्रकार अन्य मित्र राष्ट्रो और अधिराज्यो के विपरीत युद्ध के बाद भारत पहले से भी ज्यादा गरीब हुआ है और इसका मुख्य कारण भारतीय अथव्यवस्था के प्रति साम्राज्यवाद का दृष्टिकोण था जिसने भारत को हमेशा एक पिछडा उपनिवेश बनाये रखना चाहा। युद्ध के कारण पडने वाले बोझ के कारण न केवल भारतीय अथव्यवस्था के निर्माण का अवसर हाथ से निकल गया बल्कि भारत को आज अत्यत गभीर औद्योगिक स्थिति का सामना करना पड रहा है।

8 महाजनी पूजी और नई सावधानिक योजना

ब्रिटिश शासका द्वारा जितन भी सावधानिक सुधार किए गए उनका उद्देश्य यही था कि भारत म ब्रिटेन के निहित स्वार्थों को किसी तरह बना रहन दिया जाए, उनकी रक्षा की जाए तथा उनको और मजबूत बनाया जाए। 1946 मे ब्रिटिश कैबिनेट मिशन क साथ जो सबसे ताजा समझौता हुआ है, उसकी यदि जाच पडताल हो तो पता चलेगा कि भारत को औपचारिक आजादी देने का दिखावा करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद अब भी अपने आर्थिक प्रभुत्व को कायम रखन का प्रयास कर रहा है। ब्रिटिश पूजी के हितों का ज्यादा से ज्यादा पूर्ति के लिए भारत के औद्योगिक विकास का रोकन की नीति, युद्ध के बाद के वर्षो म भी जारी है लेकिन अब उसन नया रूप ग्रहण कर लिया है। इसकी अभिव्यक्ति उन व्यापार समझौता मे होती है जो ब्रिटिश भारत म और राजा महाराजाओ की भारतीय रियासतों मे सयुक्त रूप से व्यापार स्थापित करन के लिए भारतीय और ब्रिटिश उद्योगपतियो के बीच हुए ह।

1935 के इडिया एक्ट की धारा 3 से लेकर CXXI तक का उद्देश्य भारत म ब्रिटेन के निहित स्वार्थों को निश्चित रूप से कुछ आर्थिक और वित्तीय 'सरक्षण' प्रदान करना है। आर्थिक या वाणिज्यिक 'भेदभाव' को रोकने के नाम पर इन धाराओ के जरिए ब्रिटिश गवनरो को इस बात का असीमित अधिकार दिया गया कि यदि कोई भारतीय मत्रालय ब्रिटिश हिता की कीमत पर भारतीय वाणिज्य या उद्योग का पक्ष ले रहा हो तो उस रोकन के लिए कोई भी कदम उठाया जाए।

लेकिन ब्रिटिश पूजी के प्रति यह खुली तरफदारी अब ज्यादा दिन तक सभव नही है। इन 'सुरक्षा उपायो' का समाप्त करने की माग अब काफी जबरदस्त हो गई है। 4 अप्रल 1945 को केंद्रीय विधानसभा ने, श्री मनु सूबेदार के प्रस्ताव को बिना मतभेद के पारित कर दिया जिसमे माग की गई थी कि 'इडिया ऐक्ट' से इन धाराओ का निकाल दिया जाए। 2 माच 1945 को अपना प्रस्ताव पेश करते हुए श्री सूबेदार ने कहा था

> यूरोपीय फर्मा ने अपनी क्षेत्रीय सीमा से बाहर के जिन अधिकारो को भारत म चाहा है उसकी मिसाल ब्रिटिश राष्ट्रमडल के किसी भी देश की सविधि म नही मिलती।

इसके अलावा युद्ध ने अब एकदम नई परिस्थिति पैदा कर दी है। युद्ध का खच चलाने की प्रक्रिया न, जिसका बुनियादी उद्देश्य युद्ध के समूचे भार को भारत पर डाल देना था, एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि अब साम्राज्यवाद भारत के औद्योगिक विकास का पहले की तरह अर्थात उद्योगीकरण की माग को सीधे सीधे और एकदम नामजूर करके, नही रोक सकता।

भारतीय उद्योगपति आज पहले के किसी समय की तुलना मे ज्यादा ही शक्तिशाली हो चुके हैं। युद्ध के फलस्वरूप उन्हे इतना जबरदस्त मुनाफा हुआ है कि उनके पास अब उद्योगो मे लगाने के लिए बहुत ज्यादा पूजी है। परिणामस्वरूप उद्योगीकरण की माग अब काफी बढी हैं।

इस पूजी के अपने पास होने के कारण ही भारतीय उद्योगपतियो को यह विश्वास है कि उनका आधार काफी सुरक्षित है। उन्होंने भारत के लिए स्वतत्र आर्थिक योजना की भी बात सोचनी शुरू कर दी है। युद्ध के बाद के वर्षो के लिए पेश की गई अनेक गैरसरकारी योजनाओ के अलावा, बडे बडे भारतीय उद्योगपतियो ने स्वय एक योजना तैयार की है जिसे अमल म लाकर वे 15 वर्षों मे प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी करना चाहते ह। इस योजना का नाम 'भारत के लिए आर्थिक विकास की एक योजना' था। इसका आमतौर से प्रचलित नाम 'बबई योजना' है। यह योजना कितनी भी प्रतिक्रियावादी क्या न हो लेकिन इसने देश भर का ध्यान आकर्षित किया क्योकि इसमे उद्योगीकरण की उत्कट इच्छा की झलक मिलती थी। इसके अलावा, अब चूकि भारतीय उद्योगपतियो के पास अपने मुताबिक खर्च करने के लिए आवश्यक पूजी है इसलिए वे सहायता के लिए आज अमरीका तथा अन्य देशो की ओर देख रहे ह और यह काम वे ब्रिटेन से स्वतत्र होकर अपने आप कर रहे ह।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद इन परिवर्तनो को अनदेखा करने की स्थिति मे नही है। हाउस आफ कामन्स मे एक बहस के दौरान रायल सोसायटी के सेक्रेटरी और ससद सदस्य (कजरवेटिव) श्री ए० वी० हिल ने कहा

> यदि हम साहस, उदारता और दूरदर्शिता का परिचय दें तो भारतीय उद्योग के साथ सहयोग करने का हमारे पास मौका है लेकिन यदि हमने ऐसा नही किया तो उसका अर्थ यह नही कि भारतीय उद्योग का विकास नही होगा बल्कि इसका अर्थ यह कि भारत के लोग सहायता के लिए हमारे पास आने के बजाय अमरीका के पास चले जायेंगे। (इडियन एनुअल रजिस्टर, 1944, खड 2, पृष्ठ 302)

इसलिए इन नई बातो का ध्यान मे रखते हुए ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अब भारतीय उद्योग धधो के विकास के विरोध का स्वरूप बदलना पडा। राजनीतिक क्षेत्र की ही तरह आर्थिक क्षेत्र म भी साम्राज्यवाद अब अपने को नए युग के अनुरूप ढालने लगा है। ब्रिटेन अब भारत म अपने निहित स्वार्थों को भारतीय पूजीपति वर्ग के साथ समझौता करके ही बनाए रख सकता था, भारत के उद्योगीकरण पर आक्रमण की योजना अब बाहर से नही बल्कि भीतर घुसकर तैयार की जा सकती थी। भारतीय इजारेदारो की मदद से ही भारत को ब्रिटेन के कारखानो म बने सामानो का निरापद बाजार बनाए रखा जा

सकता था। इस प्रकार भारत को तकनीकी मदद देने के बहाने जिसकी बहुत जरूरत थी, साम्राज्यवाद ने अपने आर्थिक हितों को बनाए रखने की एक नई चाल अपनाई, और यह चाल थी भारतीय उद्योगपतियों के साथ व्यापार में साझेदारी (पार्टनरशिप)। साम्राज्यवाद ने एक दूसरे पर निर्भरता और हितों की एकता का एक नया सिद्धांत प्रतिपादित किया। लेकिन जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, हाल की इन सभी घटनाओं और घोषणाओं ने हमारे सामने इस सच्चाई को एकदम खोलकर रख दिया कि संयुक्त हिस्सेदारी के जरिये साम्राज्यवाद भारत को छोड़ने के बजाय इसपर अपनी वित्तीय और आर्थिक जकड़ मजबूत करता जा रहा है, इन समझौतों के जरिये भारत में स्वतंत्र आर्थिक विकास की छूट देने की बजाय, भारत के औद्योगिक विकास का अंदर से तहस-नहस करने की योजना बन रही है और कोई रूप ग्रहण कर रही है।

नई साम्राज्यवादी नीति की व्यवस्था करते हुए भारत सरकार के भूतपूर्व वित्त सदस्य सर आर्किबाल्ड रोलैंडस ने भारत से विदाई के अवसर पर कहा कि दोनों देशों के राजनीतिक संबंध भविष्य में चाहे कैसे भी क्यों न रहें, यह दोनों के हित में है कि 'उद्योग धंधों, व्यापार और संस्कृति के क्षेत्र में उनके संबंध पहले की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ बनाए जाएं। (कामर्स बंबई, 8 जून 1946)

लार्ड वेवेल का बयान और भी साफ था। वह ब्रिटेन के पूंजीपतियों को यह आश्वासन दे रहे थे कि 1935 के इंडिया ऐक्ट में 'व्यापारिक हितों की सुरक्षा' की जो धाराएं हैं वे हटाई नहीं जाएंगी। इसके साथ ही उन्होंने यह भी विचार व्यक्त किया कि यदि भारत और ब्रिटेन के पूंजीपति साझे में व्यापार करें तो यह भविष्य में अंग्रेजों के आर्थिक हितों की पूर्ण सुरक्षा का एक उपाय हो सकता है। कलकत्ता के एसोसिएटेड चैंबर आफ कामर्स में बोलते हुए लार्ड वेवेल ने 10 दिसंबर 1945 को कहा

> मैं नहीं सोचता कि जब तक कान्स्टीट्यूशन ऐक्ट और भारत एवं ग्रेट ब्रिटेन के बीच हुई व्यापारिक संधि में एक सामान्य संशोधन नहीं किया जाता तब तक इंडिया ऐक्ट की व्यापारिक हितों की सुरक्षा संबंधी धाराओं का पूरी तरह समाप्त किए जाने की कोई संभावना है। लेकिन भारत सरकार भारतीयों की इस सहज आकांक्षा से पूरी तरह अवगत है कि वे यथासंभव अपनी खुद की पूंजी से और अपनी देखरेख में बुनियादी उद्योग धंधों का विकास करना और उनपर नियंत्रण रखना चाहते हैं, और उनकी इस आकांक्षा की अवहेलना नहीं की जाएगी। फिर भी मैं समझता हूं कि भारत और ब्रिटेन [illegible] व्यापार के लिए सद्भाव और मैत्रीपूर्ण संबंध कानून की धाराओं की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। और इस तरह के संबंध स्थापित करके हम वर्तमान और भविष्य में [illegible] के हितों के लिए कहीं अधिक सुरक्षा दिला सकते हैं। [illegible] विश्वास है कि सद्भावपूर्ण वातावरण में ब्रिटिश और भारतीय

उद्योगो के बीच सहयोग से ही भारत का औद्योगिक विकास अत्यत तेजी से और लाभदायक ढग से सभव है। (टाइम्स आफ इडिया, 11 दिसबर 1945)

इसे आपसी सहयोग के लिए दी गई परोपकारितापूण दलील न समझा जाए इसलिए कुछ अय प्रवक्ताओ ने ब्रिटिश पूजीवाद की ओर अधिक सुनिश्चित मागें की। भारत मे ब्रिटिश वित्त व्यवस्था के मुखपत्र 'कैपिटल' ने 15 नवबर 1945 को लिखा

ब्रिटिश व्यापार का ऐसा कोई इरादा नही कि वह इस समय या बाद मे बस देश के बाहर निकल जाए भले ही कुछ लोगो की निगाहो मे इसकी भूमिका भविष्य मे एक मातहत की भूमिका हो पर वह उस देश से खदेडे जाने को तैयार नही होगा जिसकी समृद्धि म इसका जबरदस्त योगदान रहा हो।

एसोसिएटश चैबस आफ कामर्स के अध्यक्ष सर रेनविक हैडो ने 10 दिसबर 1945 का कहा

ब्रिटेन म ऐसे कई उद्योगपति हे जिन्ह यदि उचित व्यवहार का आश्वासन मिले तो वे भारत मे कारखान स्थापित करने के लिए तैयार होगे जिससे भारत का स्थाई फायदा होगा। लेकिन यह स्वाभाविक है कि वे किसी दूसरे के लगाने और खच करने के लिए पैसा देने को तैयार नही होग। कोई ऐसी एकतरफा व्यवस्था नही हो सकती जिसमे ब्रिटेन तो पूजीगत सामान और विशेषज्ञो की सुविधाए प्रदान करे और अगरेजो को भारत आकर नए उद्योग धधे शुरू करने तथा जो पहले से मौजूद है उनकी देख रेख करने के लिए हतोत्साहित किया जाए। (टाइम्स आफ इडिया, 11 दिसबर 1945)

रायल सोसायटी के सेक्रेटरी प्रो० ए० वी० हिल ने ब्रिटेन की मागो को और भी स्पष्ट शब्दो मे अभिव्यक्ति दी

चाहे जो हो, उन्ह (भारतीयो को) यह महसूस करना होगा कि ब्रिटिश उद्योग य सारी चीजें महज निस्स्वाथ भाव से नही करने जा रहा है। मैं नही समझता कि उन्हें यह आशा होगी कि ब्रिटन अपनी दक्षता और साधनो से कोई ऐसा उद्योग स्थापित करेगा जिसपर उसका मामूली सा नियत्रण होगा। यदि वे विकास करना चाहते ह तो उनकी यहा के लोगो के साथ बराबरी की हिस्सेदारी होनी चाहिए। आधे आधे की हिस्सेदारी ही उचित मालूम देती है। ('भारत ज्योति', 1 अप्रैल 1946)

और ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारतीय उद्योगपतिया को अपने साथ साझेदारी के लिए

मजबूर करने म अपने शासक होने का भरपूर लाभ उठा रहे हैं। हालाकि भारतीय उद्योग पतियो ने युद्ध के दौरान भारी मुनाफा कमाया और अपनी स्थिति अपेक्षाकृत मजबूत कर ली फिर भी अभी ब्रिटिश पूजीपतियो का ही पलडा भारी रहता है। राज्य व्यवस्था पर उनका नियत्रण है और इसलिए वे पूजीगत सामानो के आयात पर भी नियत्रण रखते हैं, उनका भारत के समूचे स्टर्लिंग सतुलन पर नियत्रण है। वे भारत के सभी बाजारो को हर तरह की उपभोक्ता सामग्रियो से पाट सकते हैं और ऐसा करने की वे कोशिश भी कर रहे है।[11] भारतीय उद्योगपतियो को अपनी शर्तो पर सहमत होने के लिए मजबूर करने मे वे अपनी इसी विशेष सुविधायुक्त स्थिति का इस्तेमाल करते है।

भारत, बर्मा और लका के लिए भूतपूर्व ब्रिटिश ट्रेड कमिश्नर सर टी० सेंसक्फ ने ब्रिटिश पूजीपतियो की एक बैठक म बोलते हुए बडे साफ शब्दो मे उन अनुकूल स्थितियो का वर्णन किया जो भारतीय व्यापारियो की तुलना मे ब्रिटिश के बडे व्यापारियो को प्राप्त है

> भारतीय व्यापार और देश की विशिष्ट जरूरता के बारे म हमारे अनुभव, बाजार मे हमारे निहित स्वार्थ, हमारे बेजोड व्यापारिक सपर्क और हमारी ख्याति जिसमे हमारी कर्जदार की स्थिति से मिला लाभ जुड जाना चाहिए को यदि पूरा पूरा महत्व दिया जाए तो निश्चय ही यह आशा की जा सकती है कि भारत एक बार फिर हमारे सामान के निर्यात का सबसे बडा बाजार हो सकता है। (बाबे क्रानिकल', 5 मार्च 1945 रेखाकन जोडा गया है)

भारतीय और ब्रिटिश पूजीपतियो के बीच कई समझौते भी सपन्न हुए। जून 1945 मे भारत की सबसे बडी इजारदार फर्मो मे से एक फर्म बिडला ब्रदर्स लिमिटेड और इग्लैंड के नफील्ड सगठन के बीच एक समझौता हुआ जिसके अतर्गत भारत मे मोटरकारो का निर्माण होना था। बिडला नफील्ड समझौते का उद्देश्य, समाचारपत्रो म छपी खबरो के अनुसार (समझौते की वास्तविक शर्ते प्रकाशित नही की गइ), भारत म सयुक्त रूप से एक कपनी स्थापित करना था। इससे नफील्ड का 25 से 30 प्रतिशत तक शेयर होना और मुनाफे तथा पटेंट की रायल्टी आदि मे अच्छा खासा हिस्सा उसे मिलता। नफील्ड सगठन को ऐसे 'तकनीकी हिस्से पुरजे सप्लाई करने और बनाने थे जिन्ह आर्थिक कारणो से भारत मे नही बनाया जा सकता था और नफील्ड के तकनीशियनो को ही इस बात का भी फैसला करना था कि कौन से उपकरण भारत मे और कौन से ब्रिटेन म बनाए जाए। (कैपिटल, 3 जनवरी 1946)।

इसी तरह का एक समझौता दिसबर 1945 म भारत की एक बडी इजारदार फर्म टाटा ग्रुप और इपीरियल कैमिकल इडस्ट्रीज के बीच हुआ। आई०सी०आई० ब्रिटेन की सबसे बडी इजारदार सस्था है और इस समझौते का उद्देश्य भारत म भारी रसायन उद्योग स्थापित

करना था। समाचारपत्रों में प्रकाशित खबरों के अनुसार इस उद्योग में 24 प्रतिशत पूंजी आई०सी०आई० की होगी और शेष हिस्सा टाटा गुट का होगा। इसके अलावा 'जब तक घरेलू इस्तेमाल में आने वाले सामानों का इतना उत्पादन नहीं होने लगता कि उससे सारी जरूरतें पूरी हो जाएं, तब तक देशी तथा आई० सी० आई० द्वारा आयातित रंग सामग्रियां को संयुक्त रूप से बाजार में बेचा जाएगा।' (ए०पी०आई० की खबर, 22 दिसंबर 1945)। और यह अवधि 15 से 20 वर्ष की बताई गई। भारतीय और ब्रिटिश व्यापारियों के बीच इसी तरह के और अनेक समझौते हो रहे हैं।

भारत के बड़े और मझोले व्यापारियों के साथ इन समझौतों के अलावा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की योजना है कि वे भारत के तानाशाही राज्यों का विकास अपने भावी मुख्य विशेष रूप से आर्थिक आधार क्षेत्र के रूप में करेंगे। वे इन भारतीय राज्यों को अधिक से अधिक ब्रिटिश पूंजी भेजना चाहते हैं, चाहे इसमें उन रियासतों के प्रशासन हिस्सा लें या न लें। अप्रैल 1945 में अपनी औद्योगिक नीति के बारे में जारी किए गए वक्तव्य में भारत सरकार ने इन राज्यों के औद्योगिक विकास के लिए एक विशेष व्यवस्था की घोषणा की थी

> यह समान रूप से स्पष्ट है कि लाइसेंस प्रणाली का संचालन ऐसा होना चाहिए जिससे भारतीय राज्यों को इस बात का आश्वासन मिले कि औद्योगिक विकास की उनकी न्यायसंगत आकांक्षा की उपेक्षा नहीं की जाएगी। ('हिंदुस्तान टाइम्स,' 23 अप्रैल, 1945)

औद्योगिक विकास पर रोक लगाने के लिए तैयार की गई 'लाइसेंस' प्रणाली का उद्देश्य यह भी है कि इस विकास के माध्यमों पर नियंत्रण रखा जाए और संभवतः भारतीय राज्यों को लाइसेंसों और पूंजीगत सामानों के निर्धारण में अधिक से अधिक तरजीह दी जाए। इन राज्यों में ही राजाओं, महाराजाओं के प्रतिक्रियावादी शासन के अधीन ब्रिटिश पूंजी को भरपूर सुरक्षा मिलनी थी।

भारत में ब्रिटिश वित्तीय हितों के मुखपत्र 'कैपिटल' ने 24 जनवरी 1946 को ब्रिटिश उद्देश्यों को बड़े साफ शब्दों में अभिव्यक्ति दी

> सभी (राज्य) अपनी सीमा के अंदर औद्योगिक उपक्रम शुरू करने के लिए बेचैन हैं और ब्रिटिश भारत में ये संभावनाएं कभी कभी इतनी क्षीण लगती हैं कि ऐसे कई अवसर आते हैं जब नई औद्योगिक परियोजनाओं के प्रवर्तक राजनीतिक उथल पुथल से दूर भाग निकलने के लिए जोरदार ढंग से प्रेरित होते हैं। इसके साथ ही पार्टी और संघ का दिन ब दिन तेज होता कोलाहल भारतीय राज्य से अपेक्षाकृत शांत वातावरण की अपेक्षा रखता है। यहां सत्तारूढ़

वग से उसकी परपरा और पृष्ठभूमि के कारण यह आशा की जा सकती है कि वह उद्योगपतियो की इस इच्छा के प्रति हमदद होगा कि उसे बाहर के अनुचित हस्तक्षेप के बिना अपना कारोबार खुद चलाने दिया जाए।

और यह आश्वासन भारत की रियासतो ने पहले ही दे रखा है। पटियाला राज्य के प्रधानमत्री और ब्रिटेन के लिए भारतीय राज्यो के औद्योगिक प्रतिनिधिमडल के नेता श्री एच०एस० मलिक ने साझेदारी के आधार पर विदेशो के विकसित उद्योगपतियो के साथ उद्योग शुरू करने की खुलेआम हिमायत की थी। श्री मलिक ने कहा

हम यह महसूस करते है कि जब आप अमरीका या इग्लैंड के किसी उद्योगपति को अपने यहा स्थान देते है और उद्योग मे उसे पूजी लगाने देते हैं तो उसकी पूजी 30 प्रतिशत या 40 प्रतिशत जो भी हो, निश्चित रूप से उद्योग की सफलता मे दिलचस्पी लेगा। मैं नही समझता कि आप जब तक उनपर पूरा पूरा विश्वास करने को तैयार नही होते, आप कुशल, अनुभवी और उन्नत उद्योगपतियो से भरपूर सहयोग की आशा किस तरह करते हैं। (टाइम्स आफ इडिया, 17 जनवरी 1946)

इडियन चेबर आफ प्रिसज के सेक्रेटरी श्री मक्बूल अहमद ने भी 'एशियाटिक रिव्यू' मे एक लेख मे लिखा रियासतो के औद्योगिक विकास मे भारत और ब्रिटेन की साझेदारी की भी काफी गुजाइश है।'

उपरोक्त तथ्यो से स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत की धरती मे अधिक से अधिक गहराई तक पैठकर भारत मे ब्रिटिश महाजनी पूजी के भविष्य को सुरक्षा दिलाने मे ही लगा है। भारतीय उद्योगपतियो के साथ समझौते के जरिए इस बात की निगरानी रखी जाती है कि भारत मे लगी ब्रिटिश पूजी सुरक्षित रहे। इसकी वाछित प्रतिक्रियाए भी स्पष्ट है। भारत मे ब्रिटिश पूजी के बारे मे बोलते हुए भारत के सर्वोच्च इजारेदार और नफील्ड समझौते के एक हिस्सेदार श्री जी०डी० बिडला ने कहा

मैं नही समझता कि इसका कभी स्वामित्वहरण होगा। ब्रिटिश फर्में अपना काम जारी रखेंगी। ('हिंदुस्तान टाइम्स', 11 अप्रैल 1946)

भारतीय रियासतो मे राजाओ के निरकुश शासन को बनाए रखकर वर्तमान पूजीनिवेश को सुरक्षित रखने की न केवल कोशिश की जा रही है बल्कि नए सिरे से ब्रिटिश पूजी की घुसपैठ की योजना बनाई जा रही है।

इन समझौतो से भारत का उद्योगीकरण किसी भी रूप मे सभव नही है। जमा बिड़ला

नफील्ड आर टाटा—आई०सी०आई० जैसे दो महत्वपूर्ण व्यापार समझौतो की शर्तों से स्पष्ट है, इन साझेदारियो के फलस्वरूप भारत मे बुनियादी भारी उद्योगो की स्थापना कभी नही होगी। एक अनिश्चित अवधि तक रसायनो का उत्पादन इग्लैंड मे होगा और भारतीय ट्रेडमार्क के तहत भारतीयो को बेचे जाएगे। इसी प्रकार ब्रिटेन मे बने उपकरणो और पुर्जों को जोडने के लिए एक वर्कशाप से अधिक भारत की हैसियत नही होगी। बिडला-नफील्ड समझौते के अतगत प्रस्तावित कारो के 'भारतीय उत्पादन' का स्वरूप हम 'हिंदुस्तान-टेन' के उत्पादन मे देख ही चुके है। इसके बारे मे खूब प्रचार किया गया कि यह 'भारत मे बनी' कार है लेकिन सचाई यह है कि इसके सारे हिस्से मौरिस के है और उन्हे भारत मे केवल जोड दिया गया है।

इस प्रकार ये समझौते भारी उद्योग, भारी इजीनियरिंग और रसायन उद्योग की स्थापना को यथासभव रोकने और सीमित करने तथा ब्रिटेन मे बने सामान के लिए भारत को एक निरापद बाजार बनाने के लिए महज एक आवरण का काम करते है। जैसा 'बाबे क्रानिकल' ने 27 दिसबर 1945 के अपने सपादकीय मे कहा था, इन समझौतो के फलस्वरूप नए तरह के निहित स्वार्थों का उदय होगा जो इस देश के तीव्र उद्योगीकरण के मार्ग मे जबरदस्त अवरोध बनेगे—और अततोगत्वा जब राष्ट्रीय सरकार बनेगी तो उसे इन स्वार्थों से निबटने मे भयकर कठिनाइयो का सामना करना पडेगा।

भारत और ब्रिटेन के इजारेदारो के बीच इस तरह के आर्थिक समझौते, जो 1945 मे बडे पमाने पर सपन्न होने लगे थे, उस सावैधानिक बातचीत की एक महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि तैयार करते हैं जिसके फलस्वरूप 1946 का राजनीतिक समझौता सपन्न हुआ।

9 भारत मे साम्राज्यवाद का परिणाम

मार्क्स ने जब ब्रिटिश शासन के बारे मे कहा था कि यह भारत मे 'एक सामाजिक क्राति का कारण बनेगा' और इग्लैंड को 'क्राति सपन्न कराने मे इतिहास के हाथों अनजाने आ गया औजार' कहा था तब उनका आशय एक दोहरी प्रक्रिया से था जैसाकि उनकी व्याख्या से स्पष्ट होता है। एक तो पुरानी समाज व्यवस्था के विनाश की प्रक्रिया। दूसरी, नई समाज व्यवस्था के लिए भौतिक आधार तैयार करने की प्रक्रिया। यह दोनो प्रक्रियाए आज भी जारी है, हालाकि बाद की प्रक्रिया से विकसित आधुनिक साम्राज्यवाद की नई मजिलो की विशेषताओ ने उनके महत्व को धुधला कर दिया है।

पुराने हस्त उद्योग के नष्ट हो जाने के परिणामो की एक झलक इस तथ्य से मिल जाती है कि औद्योगिक मजदूरो की सख्या बराबर कम होती जा रही है (युद्ध के कारण इसमे अस्थाई तौर पर व्यवधान पडा था), और आधुनिक उद्योग के धीमे विकास के कारण इस सख्या मे आज तक वृद्धि नही हुई। पुरानी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विनाश आज

अंतर्विरोधों के ऐसे दौर में पहुच चुका है जो कृषि के क्षेत्र में सामान्य संकट पैदा कर रहा है।

इसके साथ ही जैसी मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी, ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित भौतिक आधार पर आधुनिक उद्योग की प्रारंभिक शुरुआत हो चुकी है, यद्यपि इसकी रफ्तार अत्यंत धीमी है मगर यह शुरुआत हो चुकी है। और इसके फलस्वरूप भारतीय समाज में एक नया वर्ग पैदा हुआ है। यह नया वर्ग आधुनिक मशीन उद्योग में वेतनभोगी औद्योगिक मजदूरों का वर्ग है जो भावी भारत में नई समाज व्यवस्था स्थापित करने वाली रचनात्मक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

लेकिन इस प्रक्रिया के आगे जारी रहने के फलस्वरूप आज एक नई परिस्थिति पैदा हुई है जिसने उन शक्तियों को जन्म दिया है जो उस समय मौजूद नहीं थी जब मार्क्स ने यह लिखा था। आज भारत में उत्पादक शक्तियों के बड़े पैमाने पर विकसित होने और आधुनिक स्तर तक पहुचने के लिए स्थितियां परिपक्व हो गई हैं और प्रति वर्ष इसकी आवश्यकता तेज और अनिवार्य होती जा रही है। दूसरी तरफ, आधुनिक साम्राज्यवाद अब भारत के प्रारंभिक पूजीवादी प्रभुत्व के उन दिनों की तरह वस्तुगत दृष्टि से क्रांति उत्पन्न करने वाली भूमिका नहीं अदा कर पा रहा है जब वह अपने विनाशकारी प्रभावों से नई प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर रहा था और इसकी प्राप्ति के लिए प्रारंभिक भौतिक स्थितियां पैदा कर रहा था। इसके विपरीत भारत में आधुनिक साम्राज्यवाद उत्पादन शक्तियों के विकास में प्रमुख रुकावट बनकर डटा हुआ है और अपने राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभुत्व के सभी हथियारों से उत्पादक शक्तियों के विकास को निष्फल और धीमा कर रहा है। भारत में पूजीवादी शासन की क्रांतिकारी भूमिका की बात करना अब संभव नहीं है। भारत में आधुनिक साम्राज्यवाद की भूमिका पूरी तरह से प्रतिक्रियावादी भूमिका है।

पुराने प्रगामी पूजीवाद ने 19वीं सदी के पूर्वार्ध में प्राचीन भारतीय समाज के तानेबाने को छिन्न भिन्न कर दिया। यहां तक कि उसने कुछ प्रतिक्रियावादी धार्मिक और सामाजिक अवशेषों पर प्रहार का सजग नेतृत्व किया, एक के बाद एक राजाओं को इस बात के लिए विवश किया कि वे अपने डोमीनियनों को उनके समान प्रभुत्व में मिला लें, पश्चिम यूरोपीय शिक्षा और अवधारणाओं के प्रचार की पहली बार शुरुआत की और कुछ समय के लिए समाचारपत्रों की स्वतंत्रता का सिद्धांत भी प्रतिपादित किया। इस अवधि के दौरान भारतीय समाज के प्रगामी तत्वों ने अर्थात उभरते हुए मध्यवर्ग ने, जिसके प्रतिनिधि राममोहन राय थे ब्रिटिश शासन का समर्थन किया और उसके प्रयत्नों का सहारा पहचानी चाही, पतनशील प्रतिक्रियावादी तत्वों असंतुष्ट राजाओं महाराजाओं और सामंतों ने विरोध पक्ष का नेतृत्व किया जो 1857 के विद्रोह में अपनी पराकाष्ठा पर पहुचा और फिर टूट गया। उस समय कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो शोषण और दमन के

शिकार किसान वर्ग का नेतृत्व दे और उनकी आवाज को मुखरित कर। 1857 के विद्रोह को असफलता ही हाथ लगी।

1857 के विद्रोह के बाद भारत में ब्रिटिश शासन ने अपनी नीति में परिवर्तन शुरू किया। भारत म आधुनिक साम्राज्यवाद अपनी कठपुतली के रूप मे राजाओ महाराजाओ को सुरक्षा प्रदान करता है और उन्हे मजबूत बनाता है और पूरी ताकत के साथ उनकी राजनीतिक भूमिका का बढा चढाकर पेश करने की कोशिश करता है जिसकी सबसे ताजा अभिव्यक्ति कैबिनेट मिशन के फैसले मे होती है। वह प्रतिक्रियावादी सामाजिक और धार्मिक अवशेषो को बनाए रखना चाहता है और उनम सुधार के लिए प्रगतिशील भारतीय जनमत द्वारा की जाने वाली मागो के विरुद्ध वह उनकी उत्साहपूर्वक रक्षा करता है (जैसा विवाह की उम्र निर्धारित करने तथा अछूतो पर लगे प्रतिबध हटाने के प्रश्न पर हुआ)। वह दमन का व्यापक ढाचा तैयार करके बोलने और विचार व्यक्त करने पर रोक लगाता है और भारतीय जनता की सामाजिक शैक्षणिक तथा औद्योगिक प्रगति की माग म रोडे अटकाता है। अपने इन्ही लक्षणो म आज भारत म साम्राज्यवाद सामाजिक तथा राजनीतिक और उसी सीमा तक आर्थिक क्षेत्र म प्रतिक्रियावाद का मुख्य गढ बन गया है।

इसलिए आधुनिक युग म भारतीय समाज की सभी प्रगतिशील शक्तिया साम्राज्यवाद को मुख्य दुश्मन और प्रतिक्रियावाद का पोषक मानकर उसके विरुद्ध अभूतपूर्व शक्ति के साथ राष्ट्रीय आदोलन के रूप मे एकजुट हो गई है और दूसरी तरफ पतनशील प्रतिक्रियावादी शक्तिया ही आज साम्राज्यवादी शासन की सबसे वफादार समर्थक बन गई हैं।

भारत की उभरती उत्पादक शक्तिया आज साम्राज्यवाद की बेडियो और उस अविकसित आर्थिक ढाचे के विरुद्ध जी जान से लगी हैं जिसका पोषण साम्राज्यवाद करता है और जिसे वह बनाए रखे है। इस सघर्ष की अभिव्यक्ति कृषि के क्षेत्र म उत्पन्न सकट म होती है। यह सकट ही साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के दिवालियेपन का सूचक है और निर्णायक परिवर्तनो की मुख्य प्रेरक शक्ति है। भारत म तजी से आगे बढती कृषि क्राति के सकेतो को पहचानना वैसे ही सभव है जैसे जारशाही रूस म या 18वीं सदी के फ्रास म सभव था। भारत मे विकसित हो रही कृषि क्राति, साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध विकसित हो रहे राष्ट्रीय जनतात्रिक मुक्ति आदोलन के साथ मिला हुआ है, और इन दोनो की एकता ही भारतीय इतिहास के नए अध्याय की कुजी है।

इसलिए, भारत की आधुनिक राजनीतिक स्थिति और राष्ट्रीय सघर्ष की समस्याओ के अध्ययन की शुरूआत कृषि समस्या के अध्ययन के साथ ही की जा सकती है।

टिप्पणियां

1 भारत म लगी विदेशी पूजी का कोई सही आंकडा अभी उपलब्ध नही है।
'स्टेटिस्टिकल अब्स्ट्रेक्ट फार ब्रिटिश इंडिया' ने उन ज्वाइट स्टाक कपनियों का प्रदत्त पूजी 1938 39 मे 74 करोड 11 लाख पौंड बताई है जो भारत मे बाहर पजीकृत हैं लेकिन ब्रिटिश भारत म अपना काम कर रही हैं। इस राशि मे भारत सरकार का स्टलिंग ऋण और भारत में पजीकृत विदेशी कपनियो की रुपया पूजी को शामिल नही किया गया है। फिर भी 1912 के वष से तुलना करने पर पता चलता है कि 26 वर्षों की अवधि के दौरान भारत म स्टलिंग पूजी निवेश मे 66 करोड 76 लाख पौंड का वद्धि हुई है। 1918 19 के बाद से 26 करोड 80 लाख पौंड की वद्धि हुई है। 1918 19 से बकिंग और ऋण कपनियो की राशि 2 करोड 85 लाख पौंड थी जो 1938 39 में बढ़कर 9 करोड 62 लाख पौंड हो गई और व्यापारिक एव उत्पादक कपनियो की राशि इसी अवधि में 20 करोड 54 लाख पौंड से बढ़कर 34 करोड 49 लाख पौंड हो गई।

2 अक्तूबर 1922 म लीग आफ नेशस की कौंसिल के अधिवेशन मे भारत सरकार की ओर से लाड चैम्सफोड ने कहा
'भारत के इस दावे का औचित्य अभी निर्धारित करना है कि उसे प्रमुख औद्योगिक महत्व के आठ राज्यो में शामिल कर लिया जाए। उसके दावे के आधार व्यापक और सामान्य हैं और अपना औचित्य ठहराने के लिए उन्हे आंकडो का सहारा लेने की जरूरत नही। भारत के पास औद्योगिक वेतनभोगी लोगो की सख्या लगभग 2 करोड है।
उन्होने इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नही समझी कि 'औद्योगिक वेतनभोगी मजदूरों की 2 करोड की सख्या से मुख्यतया हस्तशिल्प और घरेलू उद्योग म लगे मजदूर हैं कि दस व्यक्तियो या इससे अधिक लोगो को अपने यहा नौकरी देने वाली सस्थाओ मे काम करने वाले लोगो की सख्या, 1921 की औद्योगिक जनगणना के अनुसार 26 लाख थी। इनम से लगभग 10 लाख मजदूर बागानों मे काम करने वाले थे न कि औद्योगिक इकाइयो मे काम करने वाले मजदूर। उन्होने यह भी बताने की जरूरत नही समझी कि फक्टरीज ऐक्ट के अतगत जो मजदूर आते हैं उनकी कुल सख्या महज 13 लाख थी।

3 इस सघष का और भी ज्यादा पता उन नए व्यापार समझौतो से चलता है जो भारत और ब्रिटेन के बीच माच 1939 म हुए थे। इस समझौते को भारतीय विधानसभा ने माच 1939 में 47 के मुकाबले 59 वोटों से नामजूर कर दिया था और इडियन चबस आफ कामस के महासघ की समिति ने भी इस समझौते के विरोध की घोषणा की थी। एक बार फिर विधानसभा के मत की अव हेलना का गई और ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रतिनिधियो के विरोध के बावजूद यह व्यापार समझौता थोप दिया।

4 इपीरियल बक आफ इडिया के मनेजिंग डायरेक्टर ने सट्रल बकिंग इक्वायरी कमेटी को 1930 में जो सूचना प्रेषित की थी उसके अनुसार इपीरियल बक की कुल 5 करोड 62 लाख 50 हजार रुपये की प्रदत्त पूजी म से 2 करोड 84 लाख रुपये अभारतीयो के और 2 करोड 78 लाख रुपये भारतीयो के थे (रिपोट, खड 11 पष्ठ 264)। इससे अभारतीयो' को पूण बहुमत मिल जाता है। दरअसल प्रभावशाली पदो पर स्थित कुछ अगरेज शेयरहोल्डरो की पूजी की अपेक्षाकृत कम मात्रा होने के बावजूद अगरेजो का पूरा पूरा नियत्रण था।

5 1936 मे सेंटल बक आफ इडिया ने सटल एक्सचेंज बक आफ इडिया की स्थापना की। भारतीय बैंक व्यवस्था द्वारा इस क्षेत्र म प्रवेश करने का यह पहला प्रयास था।

6 इस तालिका म प्रस्तुत आकडे रिजव बक आफ इडिया द्वारा प्रकाशित पुस्तक स्टटिस्टिकल टेबिल्स रिलेटिंग टु बक्स इन इडिया ऐंड बर्मा फार दि इयस 1942 ऐंड 1943 से लिए गए हैं।

7 इस सिलसिले में अमरीकी तकनीकी मिशन की टिप्पणी ध्यान देने योग्य है। मिशन ने अपनी रिपोर्ट के अंतिम पैराग्राफ में 'विशाल प्राकृतिक और मानव साधनों के कारण औद्योगिक उत्पादन के लिए भारत की महान क्षमताओं की तरफ ध्यान दिलाया है। मिशन यह महसूस करता है कि प्राकृतिक साधनों के इस्तेमाल को काफी विकसित किया जा सकता है और इसका विस्तार किया जा सकता है बशर्ते इस काम के लिए पर्याप्त उपकरण उपलब्ध कराए जाएं। मिशन ने भारतीय कामगरों की यांत्रिक अभिरुचि को प्रमाण सहित देखा है। इन्हें यदि उचित प्रोत्साहन दिया जाए और इनके काम की स्थितियां यदि बेहतर बना दी जाएं तो कुछ ही समय के प्रशिक्षण के बाद ये कुशल कारीगर हो सकते हैं।

8 सुदूर पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य नीति की विफलता के कारण युद्ध संबंधी व्यय का बिल बहुत ज्यादा आया। यह नीति थी उपनिवेशों की जनता को राजनीतिक सत्ता देने से इंकार करने वहां की जनता का सक्रिय समर्थन और विश्वास प्राप्त करके उन देशों के समूचे साधनों को अपने अनुकूल बनाने से इंकार की करने नीति।

9 यहां कुल मुनाफा एजेंटों के कमीशन, कार्यकारी खर्च और कर्मचारियों के वेतन की राशि को अलग करके और अवमूल्यन की गुंजाइश छोड़कर निर्धारित किया गया है।

10 पी०एस० लोकनाथन 'इंडियाज पोस्टवार रिकांस्ट्रक्शन ऐंड इट्स इंटरनेशनल आस्पक्ट्स', 1946 पृष्ठ 31

11 युद्ध जिस समय समाप्त होने जा रहा था उसके आसपास सरकार ने जो सबसे पहले कदम उठाए उनमें एक यह था कि भारतीय फर्मों के साथ युद्ध संबंधी अनुबंधों को तेजी से समाप्त कर दिया जाए और युद्ध के सामानों की सप्लाई के लिए ब्रिटेन में आर्डर दिए जाएं। मार्च 1945 में इंग्लैंड की यात्रा पर गए हैदरी मिशन ने 1945 में 20 करोड़ 60 लाख रुपये और 1946 में 48 करोड़ रुपये मूल्य के ब्रिटिश सामानों के आयात की व्यवस्था की और मुख्यतया उपभोक्ता सामग्रियों के लिए आर्डर दिए गए।

खण्ड तीन

भारत की मूल समस्या कृषि समस्या

7

कृषि के क्षेत्र में सकट

किसानो की स्थिति की वतमान अधोगति से कृषि क्राति की पूवसूचना मिलती है।—प्रोफेसर आर० मुकर्जी   लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', 1933

भारतीय किसानो की गरीबी और दुदशा विश्व की भयानकतम सच्चाइयो मे स एक है। भारत की कृषि सबधी समस्या पर हाल की सुविख्यात पुस्तक 'लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', मे प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी ने इस स्थिति का वणन निम्न शब्दो मे किया है

> कृषि पर निभर भारतीय जनता आज बेहद अपर्याप्त साधनो से काम चलाती है। यदि हम किसाना की ही खुशहाली की दृष्टि से देखें तो इन साधनो का वितरण बहुत ही अव्यवस्थित ढग से हुआ है। पिछले 50 वर्षों मे भूमि के स्वामित्व और काश्तकारी म हुए परिवतनो की यदि हम छानबीन करें तो पता चलेगा कि यह अव्यवस्थित वितरण दिनोदिन और भी बुरा होता जा रहा है। छोटी जोतवालो की आर्थिक स्थिति खराब हुई है जबकि जमीदारो और जमीन से वचित किए गए किसाना लगान वसूली करने वाले वग और खून पसीना एक करने वाले कृषि दासो के बीच जो विषमता व्याप्त है वह कृषि सबधी हमारे इतिहास के एक नाजुक दौर की सूचना देता है किसाना मे वगचेतना की एक अस्पष्ट आवाज उठने लगी है जा भारत के कुछ हिस्सो म [illegible] सकती है यह कृषि के क्षेत्र म व्याप्त [illegible] को चु[illegible] (पृष्ठ 4)

वह इस निसकप पर [illegible]

विभिन्न राजनीतिक और आर्थिक अभिरुचियों के लोग अब तेजी से यह मानने लगे हैं कि भारत की भूमि प्रणाली में परिवर्तन अवश्यंभावी है। यह विचार अब समाज के सभी वर्गों में फैल चुका है। भारी जनसंख्या के दबाव के कारण इन जोतों की संख्या इतनी कम हो गई है और इनमें इतना बिखराव आ गया है कि अब कोई न तो अपने परिवार के सभी सदस्यों के श्रम से लाभ उठा सकता है और न ही जीवन निर्वाह स्तर कम होने के कारण अपने परिवार का भरण पोषण कर सकता है। साथ ही जमींदार की भूमिका अब लगान प्राप्त करने वाले की हो गई है जबकि पहले उसकी भूमिका संपत्ति पैदा करने वाले की थी। कृषि के कार्य में उसने अब अपनी पुरानी और सम्माननीय भूमिका निभाना छोड़ दिया है। आज वह न तो कृषीय पूंजी की सप्लाई करता है और न ही खेती के कार्यों का ही संचालन करता है। जमींदार से नीचे बिचौलियों का एक वर्ग तैयार हो गया है। इन बिचौलियों ने मौजूदा भूमि प्रणाली की जटिलताओं से भरपूर लाभ उठाया है और इन्होंने वास्तविक खेतिहरों की कष्टकर स्थिति को और भी गंभीर बनाया है। यह आलोचना नहीं बल्कि तथ्यों का सारांश है। पुरानी व्यवस्था टूट चुकी है और इसके स्थान पर एक नई व्यवस्था का जन्म अनिवार्य है जो कृषि संबंधी जीवन और सामाजिक जीवन की वर्तमान स्थितियों के अनुकूल हो। (पृष्ठ 361-62)

भारत में कृषि की वर्तमान स्थिति के सभी प्रेक्षक इस सामान्य निष्कर्ष को मानते हैं। लेकिन यह प्रश्न कि कौन से परिवर्तन किए जाएं और किस प्रकार किए जाएं, एक साथ ही उन तमाम प्रश्नों को उभार देते हैं जो साम्राज्यवादियों द्वारा शासित भारत की वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक प्रणाली से जुड़े हुए हैं। क्योंकि कृषीय संबंधों के क्षेत्र में ही उस मौजूदा समाज व्यवस्था की नींव का पता लगाया जा सकता है जो साम्राज्यवादी शासन के अंतर्गत बनी हुई है और जनजीवन का गला घोट रही है। यहीं परिवर्तन की अत्यंत शक्तिशाली प्रेरक शक्तियां भी जन्म ले रही हैं और अपने को मजबूत बना रही हैं ताकि वे वर्तमान समाज व्यवस्था को समाप्त कर एक नई व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

भारत की कृषि समस्या को साम्राज्यवादी शासन के अंतर्गत देश की सामान्य अर्थव्यवस्था तथा साम्राज्यवादी शासन द्वारा संपोषित मौजूदा सामाजिक संरचना से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

1926 में कृषि संबंधी शाही आयोग की नियुक्ति हुई। आयोग ने 1928 में 800 पृष्ठों की अपनी भारी भरकम रिपोर्ट पेश की। इसमें 800 पृष्ठों के अतिरिक्त साक्ष्यों के 16 खंड भी शामिल थे। इसके विचारार्थ विषयों में 'कृषि को विकसित करने तथा ग्रामीण जनता की खुशहाली और संपन्नता में वृद्धि के लिए सुझाव प्रस्तुत करने थे'। लेकिन साथ ही

और इसत्र कारण यह जरूरी हो जाता है कि इस स्थिति म किसी तरह का परिवतन प्रस्तावित करते समय बहुत सतकता बरती जाए। इसका अद्भुत उदाहरण 1918 की माटेग्यू चेम्सफोड रिपोट है जिसके 'कडीशस इन इडिया' नामक पहले भाग मे कहा गया है

> जनता का एक प्रमुख व्यवसाय खेती है। सामान्य स्थितियो मे इग्लैंड जैसे अत्यधिक उद्योगीकृत देश मे 100 मे से 58 व्यक्ति उद्योग म और महज 8 कृषि मे लगे थे। लेकिन भारत मे प्रत्येक सौ व्यक्तियो मे से 71 व्यक्ति कृषि या चरागाह मे लग हैं—समूचे भारत म 31 करोड 50 लाख लोगो मे से 22 करोड 60 लाख आदमी धरती के सहारे जीते हैं और 20 करोड 80 लाख लोग प्रत्यक्ष रूप स अपनी या दूसरो की जमीन जोतकर या प्रत्यक्ष रूप से इनपर निर्भर रहकर अपना गुजर बसर करते है।

इसी प्रकार इग्लैंड मे सावजनिक तौर पर वितरित करने के लिए तैयार की गई 1930 की साइमन कमीशन रिपोट ने, 'दि प्रीडामिनेन्स आफ ऐग्रिकल्चर' नामक अपने पहले भाग म उपयुक्त अश को उद्धृत किया और इस आशाजनक निष्कष से अपने को खुश कर लिया कि इन कारणो स यहा परिवतन निश्चय ही बहुत धीमी गति से' होना चाहिए

> भारत के गावो मे रहने वाले एक औसत व्यक्ति अतिप्राचीन काल से तीज त्योहारो, मेलो और घरेलू समारोहो तथा अकाल और बाढ की भयावहता के सिलसिले से ग्रस्त है और इन परिस्थितियो मे सामान्य राजनीतिक मूल्याकन मे किसी भी तरह की जल्दबाजी का काम या मौसम, पानी, फसलो और मवशियो के परपरागत और मनोरजक अश से परे हटकर ग्रामीण क्षितिज के विस्तार का काम निश्चय ही बडी धीमी रफ्तार से होगा।

कृषि पर भारतीय जनता की जबरदस्त निभरता और औद्योगिक देशो म मौजूद इसकी विपरीत स्थिति का यहा जो तथ्य प्रस्तुत किया गया है वह एकदम सही है। लेकिन इन तथ्यो को प्रस्तुत करते समय उन शक्तियो पर ध्यान नही दिया जाता है जो साम्राज्यवाद की उपनिवेशवादी व्यवस्था को सचालित करती हैं और जो इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। इसी कारण जो तस्वीर सामने आती है वह गलत और गुमराह करने वाली तस्वीर होती है। इसस जो निष्कष निकाले जाते हैं वे भी गलत ही होते है क्योकि भारत म तेजी से परिवतन लाने वाली शक्तियो का विकास ही तब होगा जब कृषि के क्षेत्र म सकट तेज होगा।

साम्राज्यवादियो द्वारा पश की गई इस भौंडी तस्वीर मे हमेशा उस तथ्य को नजरअदाज किया गया है जो बताता है कि आबादी के तीन चौथाई भाग का, एकमात्र व्यवसाय के रूप म कृषि पर अत्यधिक, असतुलित और खर्चीला दबाव आधुनिक युग म सारा ले रहे

उन्ही विचारार्थ विषयो के अतर्गत उसे चेतावनी भी दी गई थी

> भूमि के स्वामित्व तथा काश्तकारी की वतमान व्यवस्था के सबध म अथवा मालगुजारी और सिंचाई शुल्का के निर्धारण के विषय म कोई सिफारिश करना आयोग के काय क्षेत्र के बाहर होगा।

यह बात तो बिलकुल वैसी ही है जैसे हैम्लेट नाटक मे से डेनमाक के राजकुमार को निकाल दिया जाए। भारत मे भूमि प्रणाली की समस्या पर विचार किए बिना कृषि की समस्या पर विचार करना असभव है। कृषि सबधी वतमान सकट के पीछे प्रारभिक बुनियादी मामले इस प्रकार है

1 अन्य आर्थिक साधनो को बद करके कृषि पर आबादी का जरूरत से ज्यादा दबाव,
2 भूमि के एकाधिकार और किसानो के ऊपर पडने वाले बोझ का प्रभाव,
3 खेती की तकनीक का निम्न स्तर और तकनीक के विकास मे उत्पन्न बाधाए,
4 ब्रिटिश शासनकाल के अधीन खेती मे ठहराव आ जाना और उसका नष्ट होते जाना,
5 किसानो की तेजी से बढती हुई निधनता, जोतो का टुकडा म बटते जाना और उनमे बिखराव आना तथा बडी सख्या मे किसानो का अपने खेता से वचित होना,
6 इनके फलस्वरूप किसानो मे वगभेदो का बढना और इसके कारण किसाना की एक बडी सख्या का भूमिहीन सवहारा की स्थिति म पहुच जाना। यह सख्या एक तिहाई से आधी तक है।

इन सारे कारणो का सर्वेक्षण करके ही समस्या के समाधान पर विचार किया जा सकता है।

1 खेती पर जरूरत से ज्यादा दबाव

जैसाकि हमे बार बार याद दिलाया जाता है, भारत एक 'ग्रामीण महादेश' है। इस तथ्य की ओर खासतौर से उन लोगो ने ध्यान दिलाया है जो सभवत इस वास्तविकता को भारत के तेज जनतात्रिक या सामाजिक विकास के माग म तथाकथित अवरोध मानकर खुश होते है।

भारत की एक बहुत बडी आबादी की कृषि पर निभरता तथा पश्चिमी यूरोप के अत्यधिक उद्योगीकृत समुदायो के बीच की विषमता को सामान्य तौर पर एक सहज घटना के रूप म चित्रित किया जाता है इससे भारतीय समाज के पिछडे स्वरूप का पता चलता है

और इसके कारण यह जरूरी हो जाता है कि इस स्थिति म किसी तरह का परिवतन प्रस्तावित करते समय बहुत सतकता बरती जाए। इसका अद्भुत उदाहरण 1918 की माटेग्यू चेम्सफोड रिपोट है जिसके 'कडीशम इन इडिया' नामक पहले भाग मे कहा गया है

> जनता का एक प्रमुख व्यवसाय खेती है। सामान्य स्थितियो म इग्लैंड जैसे अत्यधिक उद्योगीकृत देश म 100 मे से 58 व्यक्ति उद्योग मे और महज 8 कृषि मे लगे थे। लेकिन भारत मे प्रत्येक सौ व्यक्तिया मे से 71 व्यक्ति कृषि या चरागाह मे लगे हैं—समूचे भारत म 31 करोड 50 लाख लोगो म से 22 करोड 60 लाख आदमी धरती के सहारे जीते ह और 20 करोड 80 लाख लोग प्रत्यक्ष रूप से अपनी या दूसरो की जमीन जोतकर या प्रत्यक्ष रूप से इनपर निभर रहकर अपना गुजर बसर करते है।

इसी प्रकार इग्लैंड मे सावजनिक तौर पर वितरित करने के लिए तैयार की गई 1930 की साइमन कमीशन रिपोट ने, 'दि प्रीडामिनेन्स आफ ऐग्रिकल्चर' नामक अपने पहले भाग मे उपर्युक्त अश को उद्धृत किया और इस आशाजनक निष्कष से अपने को खुश कर लिया कि इन कारणो स यहा परिवतन 'निश्चय ही बहुत धीमी गति से' होना चाहिए

> भारत के गावो मे रहने वाले एक औसत व्यक्ति अतिप्राचीन काल से तीज त्यौहारो, मेलो और घरेलू समारोहो तथा अकाल और बाढ की भयावहता के सिलसिले से ग्रस्त है और इन परिस्थितियो म सामान्य राजनीतिक मूल्याकन म किसी भी तरह की जल्दबाजी का काम या मौसम, पानी, फसलो और मवेशियो के परपरागत और मनोरजक अश से परे हटकर ग्रामीण क्षितिज के विस्तार का काम निश्चय ही बडी धीमी रफ्तार से होगा।

कृषि पर भारतीय जनता की जबरदस्त निभरता और औद्योगिक देशा मे मौजूद इसकी विपरीत स्थिति का यहा जो तथ्य प्रस्तुत किया गया है वह एकदम सही है। लेकिन इन तथ्यो को प्रस्तुत करते समय उन शक्तियो पर ध्यान नही दिया जाता है जो साम्राज्यवाद की उपनिवेशवादी व्यवस्था को सचालित करती है और जो इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। इसी कारण जो तस्वीर सामने आती है वह गलत और गुमराह करने वाली तस्वीर होती है। इससे जो निष्कष निकाले जाते है वे भी गलत ही होते ह क्योकि भारत मे तेजी से परिवतन लाने वाली शक्तियो का विकास ही तब होगा जब कृषि के क्षेत्र मे सकट तेज होगा।

साम्राज्यवादिया द्वारा पश की गई इस भौडी तस्वीर म हमेशा उस तथ्य को नजरअदाज किया गया है जो बताता है कि आबादी के तीन चौथाई भाग का, एकमात्र व्यवसाय के रूप मे कृषि पर अत्यधिक, असतुलित और खर्चीला दबाव आधुनिक युग म सास ले रह

प्राचीन आदिम भारतीय समाज की कोई वंशगत विशेषता नहीं है बल्कि वह जिस पैमाने पर आज सामने है वह सीधे सीधे साम्राज्यवादी शासन का ही दुष्परिणाम है और आधुनिक युग की वास्तविकता है। कृषि पर इस असंगत निर्भरता मे ब्रिटिश शासनकाल में 'तेजी से वृद्धि' हुई है। यह उद्योग और कृषि के बीच चले आ रहे संतुलन के नष्ट होने का सूचक है और इससे यह पता चलता है कि भारत, साम्राज्यवाद का खेतिहर पुछल्ला बनकर रह गया है।

पिछले 50 वर्षों की जनगणना की यदि सरकारी रिपोर्ट देखें तो असली तस्वीर का पता चल जाता है। यह तस्वीर और भी ज्यादा साफ दिखाई दे सकती है बशर्ते इससे पहले के वर्षों के जनगणना संबंधी आंकडे मिल जाए। 19वीं सदी के शुरू के 75 वर्षों म ही भारत के उद्योग धंधो की मुख्य रूप से बरबादी हुई, पुराने आबाद औद्योगिक केंद्र उजड गए इन केंद्रो के लोगो को गावो मे खदेड दिया गया और इनकी बरबादी के साथ साथ गावो म रहने वाले लाखो दस्तकारो की जीविका भी छिन गई। इस अवधि का कोई आकडा उपलब्ध नही है, लेकिन हाल के कुछ दशको के जनगणना आकडो को देखने से पता चलता है कि यह प्रक्रिया आज भी जारी है और हमारे युग मे यह और भी तेज हुई है।

पहली जनगणना 1881 मे हुई थी। लेकिन यह बेहद अधूरी थी और इससे किसी तरह की तुलना नही की जा सकती। व्यवसायरत लोगो की सूची म दर्ज 11 करोड 50 लाख पुरुष कामगरो मे से 5 करोड 10 लाख व्यक्ति खेतिहर मजदूर थे। आधे से भी कम का यह अनुपात निश्चित रूप से काफी कम है। 1891 से 1921 तक के जो आकडे उपलब्ध हैं उनसे काफी हद तक तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इनसे निम्न तस्वीर उभरती है

कृषि पर निर्भर व्यक्तियो का प्रतिशत

1891	61 1
1901	66 5
1911	72 2
1921	73 0

1931 मे वर्गीकरण के आधार मे कुछ इस तरह की तब्दीली कर दी गई थी जिससे ऐसा लगता था कि कृषि पर निर्भर लोगो की संख्या कम होकर 65 6 प्रतिशत हो गई है। लेकिन यह परिवर्तन कागज पर ही था। '1921 से 1931 के बीच खेती और चरागाह पर निर्भर लोगों की संख्या मे ऊपरी तौर पर जो गिरावट आई है वह एक भ्रम है जो वर्गीकरण म, न कि पेशे मे परिवर्तन के कारण है 1921 से 1931 के बीच खेतीबारी म लगे लोगो की संख्या म मुश्किल से ही कमी आई है।' (ऐंस्टे 'इकानामिक डेवलपमेंट आफ इंडिया' पृष्ठ 61)। यह ध्यान देने की बात है कि इंडियन सेंट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी ने 1931 म अपनी रिपोर्ट म कहा (पृष्ठ 39)

> भारत मे खेती पर गुजर बसर करने वालो का अनुपात काफी अधिक है और इसमे लगातार वृद्धि हो रही है। 1891 म यह अनुपात 61 प्रतिशत था। 1901 मे बढकर यह 66 प्रतिशत और 1921 मे 73 प्रतिशत हो गया। 1931 म हुई जनगणना के आकडे हमारे पास उपलब्ध नही ह लेकिन यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि 1931 म इस सख्या म और भी अधिक वद्धि हुई है।

प्रोफेसर वाडिया और मर्चेंट ने भी यही निष्कष निकाला कि यदि पुरानी जनगणना के दौरान अपनाई गई वर्गीकरण पद्धति का पालन किया गया होता तो, जहा तक कृषि का सबध है, 1931 म खेती मे लग लोगो ही नही बल्कि इसपर निभर लोगो की सख्या महित यह अनुपात कुल आबादी का 75 प्रतिशत तो निश्चित रूप से होता।' ('अवर इकानोमिक प्राब्लम', पृष्ठ 86)। वर्गीकरण के सशोधित आधार पर गणना करने पर भी 1931 मे यह अनुपात 66 6 प्रतिशत है जो 1891 के अक 61 1 प्रतिशत से अधिक है।

ब्रिटिश पूजीवादी नीति की कायप्रणालियो के जरिए कृषि पर बढती हुई निभरता के कारणो पर पाचवें अध्याय के उपशीषक-3 के अतगत पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। 1911 के लिए नियुक्त जनगणना कमिश्नर ने, इन कारणो को स्पष्टत उस समय मायता दे दी, जब उन्होंने लिखा

> सस्ते यूरोपीय सामानो और बतनो क आयात ने तथा स्वय भारत म पश्चिमी ढग की अनेक फैक्टरियो की स्थापना न कमोवेश अनक ग्रामीण उद्योग धधो को विनष्ट किया है। खेती से हुई पैदावार की ऊची कीमतो को देखकर गावो के कई दस्तकारो न भी अपनी खानदानी कारीगरी छोडकर खेती का काम शुरू किया है—पुरानी ग्रामीण सरचना का जिस मात्रा मे विघटन हो रहा है, वह अलग अलग हिस्सो म उल्लेखनीय रूप से कम या अधिक है। अपेक्षाकृत विकसित सूबो म यह परिवतन सवाधिक उल्लेखनीय है। (सेंसस आफ इडिया रिपोट, 1911, खड 1, पृष्ठ 408)

1911 के बाद से उद्योग धधो के क्षेत्र म आई यह गिरावट और इसके कारण कृषि पर आज भी एकतरफा निभरता चरम सीमा पर पहुच गई है। 1911 से 1931 के बीच उद्योग धधो मे लगे लोगो की सख्या म 20 लाख से भी ज्यादा की कमी आई जबकि आबादी म 3 करोड 80 लाख की वृद्धि हुई।

उद्योग धधों पर निभर आबादी का प्रतिशत

1911	5 5
1921	4 9
1931	4 3

इन बीस वर्षों मे जहा आबादी मे 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई वही उद्योग धधो मे लगे लोगों की सख्या मे 12 प्रतिशत की कमी भी आई। इसके साथ ही कुल आबादी के अनुपात म औद्योगिक मजदूरो के प्रतिशत मे पाचवें हिस्से मे भी ज्यादा की कमी आई और 1941 म इसमे 4 2 प्रतिशत की और गिरावट आई। इससे पता चलता है कि 'अनुद्योगीकरण' की विनाशकारी प्रक्रिया लगातार जारी थी अर्थात पुराने हस्तशिल्प उद्योग का विनाश हो रहा था और उसके स्थान पर आधुनिक उद्योगो का विकास नही हो रहा था जिसके फल स्वरूप खेती पर आबादी का दबाव निरतर बढता जा रहा था।

इसके साथ ही भोजन के काम आने वाली फसलो की तुलना मे उन खाद्य फसलो की उपज मे वृद्धि हुई। 1892-93 से 1919-20 के बीच खाद्य पदार्थवाली फसलो के क्षेत्रफल म 18 करोड 70 लाख से लेकर 21 करोड एकड की अर्थात कुल 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि उन खाद्य फसलो का क्षेत्रफल 3 करोड एकड से बढकर 4 करोड 30 लाख एकड हो गया अर्थात कुल 43 प्रतिशत की वृद्धि हुई। (वाडिया और जोशी, 'वैल्थ आफ इडिया') हाल के वर्षो मे यह प्रक्रिया और भी तेजी से जारी रही। 1910 11 से 1914-15 और 1934-35 के पाच वर्षों का औसत यदि लें तो पता चलता है कि खाद्य पदार्थवाली फसलो के क्षेत्रफल मे 12 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और उन खाद्य फसलो म 54 प्रतिशत की वृद्धि हुई (आर० मुखर्जी की पुस्तक 'फूड प्लानिंग फार फोर हड्रेड मिलियस' पृष्ठ 16 पर बनी तालिका देखें)। 1934-35 से 1939-40 के दौरान उन खाद्य फसलो के क्षेत्रफल म 1 करोड 60 लाख एकड की वृद्धि की तुलना मे खाद्य फसलो के क्षेत्रफल मे वस्तुत गिरावट आई और यह 15 लाख एकड दज की गई। कपास का निर्यात 1900 1 मे 178,000 टन किया गया जो 1936-37 मे बढकर 762,133 टन हो गया। इससे पता चलता है कि 328 प्रतिशत की वृद्धि हुई (1939-40 मे यह राशि 526,411 टन थी), 1900-1 म कुल 19 करोड पौड चाय का निर्यात किया गया जो 1939 40 मे बढकर 35 करोड 90 लाख पौंड हो गया 1900-1 म 549,000 टन तिलहन का नियात किया गया जो 1938-39 मे बढकर 1,172 802 टन हो गया।

इस प्रकार ब्रिटिश पूजीवादी नीति का प्रत्यक्ष दुष्परिणाम यह है कि कृषि पर दिन व दिन अधिक से अधिक दवाव बढता गया, निर्यात के लिए उन खाद्य फसलो क उत्पादन पर निरतर जोर दिया जान लगा (साथ मे भारत की जनता की भुखमरी भी बढती गई) और इस नीति ने भारत को कच्चे माल के स्रोत तथा अपने माल की मडी बनाकर रख दिया।

लेकिन कृषि पर यह जबरदस्त दबाव और किसानो के शोषण की सामाजिक स्थितिया ही भारतीय जनता की गरीबी की बुनियाद है। भारत म ब्रिटिश पूजीवादी नीति का सीधा नतीजा यह है कि पुरानी पद्धति मे की जाने वाली खेती पर लगातार जरूरत से ज्यादा दबाव डाला गया और यही भारतीय जनता की निधनता की बुनियादी स्थिति है। 1990

के अकाल आयोग ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया था, उसने लिखा

> भारत की जनता की गरीबी और अभाव के दिनो म आसन्न खतरो की जड म जो दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति है वह यह है कि यहा की जनता का एकमात्र व्यवसाय खेती है।

आज से एक सौ वष पूव 1840 मे, चार्ल्स ट्रेवेल्यन ने हाउस आफ कामस की प्रवर समिति को बताया था

> हमने उनके उत्पादना का सफाया कर दिया, उनके पास अपनी जमीन स हुई उपज के अलावा और कुछ नही है जिस पर वे निभर कर सकें।

एक शताब्दी बाद 1928 मे कृषि के बारे मे शाही आयाग ने वही पुरानी दुखभरी कहानी दुहराई (रिपोट, पृष्ठ 433)

> जमीन पर लोगो का बढता दबाव, जीवनयापन के लिए किसी वैकल्पिक साधन का न होना, बचाव का कोई रास्ता पाने मे कठिनाई, और वह प्रारभिक युग जिसम एक कमाने वाला और दस खाने वाले होते थे, इन सारी बातो ने किसान को इस बात के लिए मजबूर कर दिया था कि जहा भी और जिस भी शत पर सभव हो वह अनाज पैदा करे।

2 कृषि पर अत्यधिक दबाव के नतीजे

कृषि पर अत्यधिक सख्या मे लोगो की निभरता का अथ यह है कि भारत की वतमान पिछडी हुई खेती का, एक बढती हुई आबादी के दिनोदिन ज्यादा होते भाग को जीविका के साधन देने पडते है।

दूसरी तरफ, जमीन के एकाधिकार तथा किसानो को अपाहिज बनाने वाले शोषण के कारण खेती का विकास मौजूदा व्यवस्था के अतगत ऐसी सीमाओ मे कैद हो गया है कि वतमान खेती आबादी की बढती हुई माग को पूरा करने म अत्यधिक असमथ हो गई है।

यही वह दुदम्य स्थिति है जिसने भारत की खेती को अपने शिकजे म कस लिया है। कृषि के क्षेत्र मे सकट की जड मे यही कारण है। इसका नतीजा हम खेती के विकास मे आए ठहराव म देख सकते है। यहा तक कि कृषि पर लदे असहनीय बाम के कारण उत्पादन के वतमान स्तर मे गिरावट के और कृषि मे जुटे लोगा की तबाह हालत के भी सकेत देखे जा सकते है।

खेती पर बढ़ते हुए अत्यधिक दबाव का अर्थ यह है कि कृषि के काम में लगे प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपलब्ध जमीन में कमी आती जा रही है। 1911 में सर थामस होल्डरनेस ने लिखा था

> संरक्षित देशी राज्यों सहित भारत की कुल आबादी साढ़े इकत्तीस करोड़ है। इस विशाल आबादी का तीन चौथाई हिस्सा कृषि पर निर्भर है। देशी राज्यों के बारे में प्राप्त विवरण चूंकि अपूर्ण है इसलिए इस बात की सही सही जानकारी नहीं है कि कुल कितनी जमीन में खेती होती है। लेकिन यदि हम यह मानकर चलें कि जो हिस्सा कृषि पर सीधे सीधे निर्भर है, उसमें प्रति व्यक्ति के हिस्से में सवा एकड़ जमीन आती है, तो ज्यादा गलत नहीं होगा
>
> भारत की जमीन न सिर्फ इस बड़ी आबादी को भोजन देती है बल्कि उसके काफी बड़े हिस्से को उन चीजों की पैदावार के लिए अलग कर दिया गया है जो देश से बाहर निर्यात के लिए बोई जाती है दरअसल यह मुख्यतया खेती से हुई उपज को बेचकर आयात के लिए अपने बिलों का भुगतान करती है और अन्य अंतर्राष्ट्रीय ऋणों का भुगतान करती है। इस प्रकार विदेशी बाजार को माल सप्लाई करने के लिए इस्तेमाल होने वाली जमीन को कृषि के काम में लगी कुल जमीन में से घटाने से जो जमीन बचती है वह भारत की कुल आबादी के बीच 2/3 एकड़ प्रति व्यक्ति से ज्यादा नहीं पड़ती। इसलिए 2/3 एकड़ प्रति व्यक्ति से जितनी पैदावार हो पाती है उसी से भारत की आबादी को भोजन और कुछ हद तक कपड़ा मिलता है। विश्व में शायद ही कोई देश हो जहां जमीन से इतना काम लिया जाता हो। (सर थामस होल्डरनेस, 'पीपुल्स और प्राब्लम्स आफ इंडिया', 1911 पृष्ठ 139)

1917 में बंबई के कृषि निदेशक, डा० हैराल्ड एच० मान ने पूना के एक खास गांव की जांच के परिणाम प्रकाशित किए। जांच के दौरान उन्होंने देखा कि 1771 में औसत जोत 10 एकड़ थी। 1818 में यह 17½ एकड़ थी। 1820-40 में यह घटकर 14 एकड़ हो गई और 1914-15 में महज 7 एकड़ रह गई। उन्होंने जांच के दौरान पाया कि 81 प्रतिशत जोतें अत्यंत अनुकूल परिस्थितियों में भी अपनी मिल्कियत नहीं बनाए रख सकी।' उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला

> इससे यह जाहिर है कि पिछले 60 या 70 वर्षों में जमीन की जोतों का स्वरूप बदल गया है। ब्रिटिश शासन से पहले के दिनों में और ब्रिटिश शासनकाल के प्रारंभिक दिनों में जोतों का आकार आमतौर से ठीक ठाक था। अधिकांश मामलों में यह 9 या 10 एकड़ से अधिक था और 2 एकड़ से कम की व्यक्तिगत जोतें शायद ही कहीं थीं। अब जोतों की संख्या दुगुनी से भी ज्यादा हो गई है और इन

> जोता मे से 81 प्रतिशत जोतो का आकार 10 एकड से कम है जबकि कम से कम 60 प्रतिशत जोतें 5 एकड से भी कम की हैं। (डाक्टर एच० एच० मान 'लैंड ऐंड लेबर इन ए डक्न विलेज,' खड 1, 1917, पृष्ठ 46)

अन्य सूबो के लिए भी इसी तरह के नतीजे मिले हैं। श्री कीटिंग ने विचार व्यक्त किया है कि बबई प्रेसीडेंसी की कृषीय जोतें काफी बडे पैमाने पर ऐसी स्थिति मे पहुच गई है जिसमे उनकी कारगर ढग से खेती असभव है,' और डा० स्लेटर की खोज के अनुसार 'मद्रास के कुछ हिस्सो मे इसी तरह की स्थितिया मौजूद हैं। अन्य सूबा म स्थितिया काफी हद तक ऐसी ही है।' (एग्रीकल्चरल कमीशन रिपोर्ट, पृष्ठ 132)

1921 की जनगणना के अनुसार प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की सख्या एकड में इस प्रकार है

मद्रास	4 9	वर्मा	5 6
सयुक्त प्रात	2 5	पजाव	9 2
आसाम	3 0	मध्य प्रात और बरार	8 5
विहार और उडीसा	3 1	बवई	12 2
बगाल	3 1		

ये औसत सख्याए है जिनमे बहुसख्यक की अत्यधिक कमी को अल्पसख्यक की बडी बडी जोतो से अशत छिपाया गया है।

'सोशल ऐंड इकानामिक सर्वे आफ ए कोकण विलेज', (प्रातीय सहकारिता सस्थान, बबई द्वारा प्रकाशित, रूरल इकानामिक सीरीज, सख्या-3) के नतीजो से पता चलता है कि 192 एकड की कृपियोग्य भूमिवाले एक गाव म ऐसे 24 व्यक्तिया के पास 113 एकड जमीन या औसतन प्रति व्यक्ति 4 71 एकड जमीन थी जो खेती नही करते थे जबकि 28 खेतिहरो के पास कुल 78 एकड या प्रति व्यक्ति 2 85 एकड जमीन थी।

मलाबार के एक गाव के आर्थिक जीवन, 'इकानामिक लाइफ इन ए मलाबार विलेज' (मद्रास विश्वविद्यालय के अथशास्त्र सीरीज न० 2 द्वारा प्रकाशित) के सर्वेक्षण से पता चलता है कि उक्त गाव म 34 प्रतिशत जोतें 1 एकड से कम की थी।

स्थाई अधिकारविहीन कृपको के सबध मे अर्थात कृपको की बहुसख्या के सबध म कृषि सबधी आयोग की रिपोर्ट के अनुसार (पृ० 133)

> सूबे के आकडा मे केवल पजाव के आकडे उपलब्ध हैं जिनसे यह पता चलता है कि 22 5 प्रतिशत किसान एक एकड या इससे कम मे खेती करते है, 15 4 प्रतिशत किसान एक से ढाई एकड जमीन मे, 17 9 प्रतिशत किसान ढाई से पाच एकड जमीन मे और 20,5 प्रतिशत किसान 5 से 10 एकड जमीन मे

> खेती करते ह । बम्बई को छोडकर जिसके नतीजे सभवत काफी हद तक पजाब जैसे होगे और बर्मा को छोडकर जहा यह औसत अपेक्षाकृत काफी अधिक होगा, अन्य सभी सूबो मे प्रति कृषक औसत जमीन काफी कम है।

इस प्रकार अपेक्षाकृत अधिक 'समृद्ध' पजाब मे भी (जो अन्य सूबो की अपेक्षा कम समय तक ब्रिटिश शासन के अधीन रहा है), आबादी का एक तिहाई से अधिक भाग ढाई एकड से कम मे और आधे से अधिक भाग 5 एकड से कम मे खेती करता है।

बगाल मे, 1921 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार प्रति कार्यरत किसान द्वारा जोती गई जमीन 2 2 एकड थी। 1921 की बगाल जनगणना रिपोर्ट ने लिखा कि 'ये आकडे खुद ही कृषको की गरीबी के बारे मे बताते ह।'

ये ऐसे तथ्य है जिनके महत्व को नकारा नही जा सकता। इनसे जमीन के लिए एक पुरानी और निरतर बढने वाली भयकर भूख का पता चलता है। ये सारे तथ्य केवल एक दिशा की ओर सकेत करते है और यह सकेत ठीक वैसा ही है जैसा रूस के कृषीय इतिहास ने इस तरह के तथ्यो से सकेत दिया था।

3 खेती मे ठहराव और गिरावट

क्या जमीन के लिए इस पुरानी और बढती हुई भूख का अर्थ यह है कि हमारे सामने आबादी की तुलना मे, प्रकृति द्वारा अनिवार्य रूप से थोपी गई भूमि की कमी की समस्या है? स्थिति इससे एकदम विपरीत है। आजकल व्यापक रूप से फैली हुई इस धारणा के बावजूद यदि तथ्यो की जाच करे तो पता चलेगा कि स्थिति कुछ और ही है (प्रमाण के लिए देखें अध्याय 2, उपशीर्षक 3)।

समस्या यह नही है कि भारत में भूमि की बेहद कमी है। जो कमी महसूस होती है उसका कारण प्रथमत यह है कि प्रतिबधो और विकास की उपेक्षा की वजह से उपलब्ध कृषियोग्य जमीन का पूरा पूरा उपयोग नही किया जाता। दूसरे, यह कमी इस कारण पैदा हुई है कि जिस जमीन मे खेती होती है उसमे उत्पादन का स्तर बहुत गिरा हुआ है। इसकी वजह है वतमान समाज व्यवस्था का दुदम्य बोझ जिसने कृषि को अपाहिज बना दिया है और तकनीकी विकास तथा व्यापक सगठन के माग म आन वाली बाधाएँ।

अनुमान लगाया गया है कि तकनीक के छोटे पैमाने पर इस्तेमाल के बावजूद, भारत म उपलब्ध समूची कृषियोग्य भूमि म यदि भूमि सुधार और सिंचाई के आवश्यक उपाय काम म लाए जाए तो 44 करोड 70 लाख लोगो की जीविका चल सकती है। यह सख्या वतमान आबादी म 7 करोड अधिक की सख्या है। (आर० मुखर्जी 'फूड प्लानिंग फार फोर हड्रेड मिलियस' पृष्ठ 26)।

भारतीय अथशास्त्री आर० के० दास का अनुमान है कि कृषियोग्य उपलब्ध भूमि का 70 प्रतिशत भाग बेकार जाता है और उत्पादन सबधी कार्यों के लिए केवल 30 प्रतिशत भाग का इस्तमाल होता है

वस्तुत जितनी जमीन मे फसल बोई जाती है वह कुल मिलाकर 22 करोड 80 लाख एकड है जो कृषियोग्य समूची भूमि का 53 प्रतिशत है। लेकिन जिन खेतो मे एक बार से अधिक फसल बोई गई है, उन्हे यदि प्रत्येक फसल के लिए अलग खेत मानें तो कुल जमीन, जिसमे खेती की जाती है 26 करोड 20 लाख एकड होती है। यहा की जलवायु का शुक्रिया अदा करना चाहिए जिसमे कृषियोग्य भूमि के उल्लेखनीय हिस्से मे साल मे दो से अधिक फसल बोई जा सकती ह। लेकिन दूसरी तरफ कुल जमीन का एक हिस्सा ऐसा है जिसमे एक वार से अधिक फसल नही बोई जा सकती और कुछ खेत तो ऐसे भी है जिनमे आने वाले कुछ वर्षों म एक भी फसल नही बोई जा सकती। इसलिए यह माना जा सकता है कि औसतन कुल कृषियोग्य भूमि मे साल मे दो फसलें बोई जा सकती है। इस प्रकार क्षमतायुक्त कृषियोग्य भूमि लगभग 86 करोड 40 लाख एकड है जिसम से केवल 26 करोड 20 लाख एकड या 30 प्रतिशत भूमि का उत्पादन काय के लिए इस्तेमाल होता है और 60 करोड 20 लाख एकड या 70 प्रतिशत बेकार पडी रहती है। (आर० के० दास दि इडस्ट्रियल एफिसिएसी आफ इडिया', 1930, पृष्ठ 13)

वस्तुत वतमान मदी के प्रभाव के कारण लगी रोक से पहल तक, पिछले 25 वर्षों म, खेती की जाने वाली मौजूदा भूमि का क्षेत्रफल आबादी की तुलना मे अधिक तेजी से बढा। निम्न तालिका से इसका सकेत मिलता है

खेती की गई जमीन और जनसख्या का सूचक अक

	जनसख्या	बोई गई कुल जमीन	खाद्यान्नवाली जमीन
युद्धपूव का औसत			
(1910-11 से 1914-15)	100	100	100
1930 31	107	118 6	113 9
1934-35	120	117 2	112 4

(आर० मुखर्जी 'फूड प्लानिंग फार फोर हड्रेड मिलियस', पृष्ठ 16-17)

इस प्रकार 1910-14 मे 1930-31 के बीच जनसख्या म सात प्रतिशत की वृद्धि हुई लेकिन खेती करने वाली जमीन म 18 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इधर हाल के वर्षों म युद्ध के

फलस्वरूप आई मंदी के कारण कृषियोग्य भूमि के क्षेत्र मे बेहद कमी के अशुभ संकेत मिले है और खाद्यान्नोवाले क्षेत्र म ता और भी ज्यादा कमी हुई है। किंतु इन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि कृषियोग्य भूमि का एक बहुत बडा हिस्सा एसा है जिसपर अभी खेती नही की जा रही है। मौजूदा आकडा से यह तस्वीर और साफ होती है

ब्रिटिश भारत का कृषीय क्षेत्र, 1939-40
(बर्मा को छोडकर)

	एकड करोड में
सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त कुल भूमि का क्षेत्रफल	51 27
जगलवाली भूमि	6 81
खेती के लिए अनुपलब्ध भूमि	8 93
बजर के अलावा कृषियोग्य बेकार पडी भूमि	9 72
बजर भूमि	4 73
फसल बोई गई कुल जमीन	20 99

('स्टटिस्टिकल ऐब्स्ट्रेक्ट फार ब्रिटिश इडिया')

इस प्रकार कृषियोग्य कुल 35 करोड 50 लाख एकड जमीन के महज 59 प्रतिशत हिस्से मे फसल बोई गई है जबकि 13 2 प्रतिशत जमीन बजर पडी है और खेती लायक कम स कम 27 3 प्रतिशत जमीन बेकार पडी है। यह भी ध्यान देन की बात है कि सरकारी तौर पर कुल जमीन के छठे हिस्से से भी अधिक भाग के बारे म कहा गया है कि यह जमीन 'कृषि के लिए उपलब्ध नही है' लेकिन कृषि सबधी आयाग की रिपाट म यह कहना पडा (पृष्ठ 605) कि यह विश्वास करना कठिन है कि कृषि के लिए अनुपलब्ध खान म जिस जमीन को डाला गया है वह या ता उपलब्ध नही है या खेती के लिए उपयुक्त नही है।' इसीलिए यह विश्वास करन के पर्याप्त कारण हैं कि कृषियाग्य वह जमीन जिसपर खेती नहा की गई है, सरकारी आकडे से 27 3 प्रतिशत से भी ज्यादा है और एक तिहाई के करीब भी हो सकती है।

इस विशाल जमीन का, जो 'बजर नही थी और कृषियोग्य होने के बावजूद बेकार पडी थी' क्या स्वरूप है और क्या कारण है कि उसपर खेती नही की गई ? यह जानना जरूरी है कि विभिन्न प्राता मे इस जमीन की मात्रा अलग अलग थी। यहा तक कि सबसे ज्यादा आबादीवाले और सबसे अधिक विकसित प्रातो बगाल, मद्रास या सयुक्त प्रात मे बजर का छोडकर कृषियाग्य बेकार भूमि की मात्रा काफी अधिक थी। बगाल म यह 18 प्रतिशत मद्रास म 21 प्रतिशत और सयुक्त प्रात म 20 3 प्रतिशत थी। इस सवाल का जवाब मर

जेम्स केर्ड की रिपोट मे 1879 म ही दे दिया गया था। यह रिपोट अकाल आयाग के बारे म थी और इमे भारत के मामलो के मत्री को सौंपा गया था

> भारत म उपलब्ध अच्छी जमीन के लगभग पूरे हिस्से पर दखल किया जा चुका है। देश के विभिन्न हिस्सो मे ऐसी बहुत सी अच्छी जमीन बेकार पडी है जिसपर जगल लगे हुए है और जिसे साफ करके तथा सुधार करके खेती के याग्य बनाया जा सकता है लेकिन इस काम को पूरा करने के लिए पूजी की जरूरत है और जनता के पास ऐसे कामो म लगाने के लिए पूजी नही है। (सर जेम्स केड की रिपोट भारतीय मामलो के मत्री के नाम, 31 अक्तूबर 1879)

ऐसी बात नही है कि इस जमीन मे खेती नही की जा सकती थी। लेकिन यहा के किसान बेहद गरीब है उनके पास यदि एक औस भी अतिरिक्त राशि आती है ता उससे ज्यादा जबरन वसूल ली जाती है जिसकी वजह से किसाना का एक विशाल जनसख्या जीवनयापन के स्तर से भी निम्न स्तर पर अपनी गुजर कर रहा है। यही कारण है कि इस काय को पूरा करने के लिए उनके पास कोई साधन नही है। यह काय महज सरकार की सहायता से सामूहिक सगठन के जरिए और समुदाय के अतिरिक्त साधनों को उत्पादन के इस महत्वपूण विस्तार काय म लगाकर ही पूरा किया जा सकता है। सरकार न अपनी इस जिम्मेदारी को कभी महसूस नही किया और इसी स्थल पर आकर वतमान सरकारी और सामाजिक व्यवस्था की असाधारण विफलता की अभिव्यक्ति होती है। इम व्यवस्था ने ब्रिटिश शासनकाल से पहले की सरकारो द्वारा सावजनिक निर्माण और सिचाई के कार्यों की देखरेख करने मे पूरी तरह उपेक्षा की और किसानो से जबरदस्ती उनकी सपत्ति वसूल कर उनके हाथ से खेती का काम छीन लिया। इसके साथ ही अभी हाल के वर्षो मे भूमिसुधार और सिचाई कार्यों की जो शुरुआत की गई है वह इसकी सभावनाओ और आवश्यकताओ की तुलना मे नगण्य है।

शुरू मे सरकार ने सिचाई तथा सावजनिक निर्माण कार्यों के प्रति उपेक्षा का जो रवैया अपनाया उसके लिए उसे काफी कुख्याति प्राप्त हो चुकी है और माक्स न तो इसका बहुत पहले ही उल्लेख किया था

> एशिया मे अति प्राचीन काल से सामान्यतया सरकार के तीन विभाग काम करते हैं पहला वित्त विभाग अर्थात घरेलू स्तर पर लूटपाट करन वाला विभाग, दूसरा युद्ध विभाग अर्थात विदेशो के स्तर पर लूटपाट करने वाला विभाग और अतिम सावजनिक निर्माण विभाग भारत मे अगरेजों ने अपने पूववर्ती शासको से वित्त और युद्ध विभाग तो ले लिया लकिन उन्होने सावजनिक निर्माण विभाग की पूरी तरह उपेक्षा की। इसलिए कृषि के क्षेत्र म काफी गिरावट आई

क्योंकि ब्रिटिश शासकों के मुक्त प्रतिस्पर्धा, अहस्तक्षेप और स्वच्छंदता के सिद्धांत के आधार पर कृषि का काम नहीं चल सकता था। (कार्ल मार्क्स 'दि ब्रिटिश रूल इन इंडिया,' न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून, 25 जून 1853)

1838 में एक प्रेक्षक (जी० थाम्सन 'इंडिया ऐंड दि कालोनीज,' 1838) ने लिखा था कि देश की सेवा के लिए और जनता की भलाई के लिए हिंदू या मुसलमान सरकारों ने जिन सड़कों तालाबों और नहरों का निर्माण किया था उनकी हालत आज जीर्ण शीर्ण हो गई है आज स्थिति यह है कि सिंचाई के साधनों के अभाव में जनता को अकाल का सामना करना पड़ रहा है।' भारत में आधुनिक सिंचाई काय के पथप्रदर्शक सर आर्थर काटन ने 1854 में अपनी पुस्तक 'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया' में जो कुछ लिखा वह मार्क्स से भी ज्यादा तीखा है

समूचे भारत में सार्वजनिक निर्माण कार्य की लगभग पूरी तरह उपेक्षा की गई है यहा का नारा बस यही रहा है कि कुछ मत करो, कुछ मत करने दो और कुछ करने की जरूरत नहीं है, हर तरह का घाटा उठाओ, जनता को अकाल से मरने दो, लाखों लोगों को पानी और सड़क के लिए पैसा वसूल कर कंगाल बना दो (लेफ्टिनेंट कर्नल काटन 'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया,' 1854, पृष्ठ 272)

माटगुमरी मार्टिन ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'दि इंडियन इंपायर' (1858) में लिखा है कि पुरानी ईस्ट इंडिया कंपनी ने 'विकास कार्य शुरू तो नहीं ही किए, उसने उन पुराने निर्माण कार्यों की मरम्मत की भी उपेक्षा की जिससे उसे राजस्व प्राप्त होता था।' निश्चय ही यह उपेक्षा ब्रिटेन के अंदर समकालीन ब्रिटिश अप्रवर्धित व्यापार की तुलना में उल्लेखनीय रूप से और भी ज्यादा तेज हुई। जैसा जान ब्राइट ने 24 जून 1858 को हाउस आफ कामंस में कहा 'अकेले मानचेस्टर शहर ने अपने निवासियों को केवल पानी की सप्लाई पर जो राशि खर्च की है वह राशि ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अपने विशाल डोमीनियन में 1834 से 1848 के 14 वर्षों के दौरान सार्वजनिक निर्माण के प्रत्येक काम पर खर्च की गई राशि से कहीं ज्यादा है।'

यहां तक कि 1900 तक सरकार ने रेल व्यवस्था के निर्माण पर अपने कोष से 22 करोड़ 50 लाख पौंड खर्च किए ताकि भारत में ब्रिटिश व्यापार की घुसपैठ हो सके लेकिन इस अवधि तक कृषि जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य के लिए आवश्यक नहरों के निर्माण पर केवल ढाई करोड़ पौंड खर्च किए गए। यह राशि रेल व्यवस्था पर खर्च की गई राशि का नवां हिस्सा है।

इससे पहले कि हम यह मानें कि यह उपेक्षा अतीत में ही बरती गई और वर्तमान युग में

अब इन चीजो पर ध्यान दिया जा रहा है, यहा 1930 म बगाल सिंचाई विभाग समिति की हाल की एक रिपोट का उल्लेख करना काफी प्रासगिक होगा

> प्रत्येक जिले मे नाव के जरिए सामान का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचाने के लिए जो नहरें बनाई गई है उनमे समय बीतने के साथ ही पानी सूखता जा रहा है और वह दलदल का रूप ले रहा है। पूर्वी बगाल म नहरें और नदिया ही वहा की सडकें और राजमाग है। इस प्रात के लोगो के आर्थिक जीवन के लिए इनका कितना महत्व है इसका अदाजा लगाया जा सकता है। (पृष्ठ 6)
>
> मध्य बगाल आज एक पतनशील भूभाग बन गया है। यहा बडे पैमाने पर मलेरिया का खतरा है जनसख्या मे तेजी से कमी आ रही है और जमीन की उत्पादन क्षमता नष्ट हा रही है। बेशक यह कहा जा सकता है कि गिरावट की यह स्थिति अब इतना आग बढ चुकी है कि इसपर रोक नही लगाई जा सकती और अब यह क्षेत्र लाजमी तौर पर धीरे धीरे दलदल और जगल मे बदल जाएगा। (पृष्ठ 11)
>
> जहा तक छोटे मोटे रास्ता के रखरखाव और उनको फिर से शुरू करने की बात है व्यावहारिक रूप से कुछ भी नही किया गया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि इस सूबे के कुछ हिस्सो म नहरें सूख गई हैं, नावो का चलना वष म कुछ ही महीनो तक हो पाता है और फसल को बाजार म तभी भेजा जा सकता है जब बरसात के पानी से नहरें इस लायक हो जाए कि नावो के जरिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाया जा सके। (पृष्ठ 11) (बगाल की सिंचाई विभाग समिति की रिपोट, 1930)

जल विज्ञान (हाइड्रोलिक्स) के प्रमुख इजीनियर सर विलियम विलकाक्स ने बगाल की सिंचाई व्यवस्था के पतन पर अपना जो निणय दिया था वह भी कम महत्वपूण नही है

> विख्यात हाइड्रोलिक इजीनियर सर विलियम विलकाक्स का नाम मिस्र और मैसोपोटामिया मे किए गए विशाल सिंचाई कार्यों के साथ जुडा हुआ है। उन्होने हाल ही म बगाल की स्थिति की छानबीन की। अपनी खोज के द्वारा उन्होंने पता लगाया कि डेल्टा क्षेत्र की असख्य विनाशकारी छोटी नदिया निरतर अपना माग बदल रही है और यह मूलत नहरे थी जिन्ह अगरेजी शासनकाल ने खतरनाक नदियो का रूप दे दिया। पहले इन नहरा से गगा की बाढ का पानी इधर उधर बट जाता था और इससे खेतो की उचित ढग से सिंचाई हा जाती थी। इन्ही नहरा के कारण बगाल की समृद्धि इस सीमा तक बढ गई थी कि 18वी सदी के प्रारभिक दिनो मे ईस्ट इडिया कपनी के सौदागरो की लालच भरी निगाहे

इसकी तरफ आकर्षित हुई इस बुनियादी नहर व्यवस्था को विकसित करने और इसका इस्तेमाल करने की कोई कोशिश कभी नही की गई उल्टे रेलवे के तटबधो को क्रमश ताड दिया गया जिससे नहरो का पूरी तरह विनाश हो गया। गगा के पानी के साथ दोमट मिट्टी तमाम इलाको मे पहुचती थी जिससे जमीन की उत्पादन क्षमता बढती थी लेकिन इन इलाको को गगा के जल से अलग थलग कर दिया गया और वे धीरे धीरे बजर तथा अनुवर होते गए। कुछ अन्य इलाकों मे पानी की निकासी का उचित प्रबध न होने से काफी बडे पैमाने पर पानी एक ही जगह इकट्ठा होने लगा जिससे अनिवार्य रूप से मलेरिया फैल गया। इसके अलावा गगा के ढालू बहाव के लिए उचित तटबधो के निर्माण की कोई कोशिश नही की गई जिसका नतीजा यह हुआ कि प्रति वर्ष बडे पैमाने पर मिट्टी के कटाव से अनेक गाव, पेड पौधे और खडी फसलवाले खेत गगा की गोद मे समाने लगे।

सर विलियम विलकाक्स ने आधुनिक प्रशासको और अधिकारियो की कटु आलोचना की है। उनका आरोप है कि ये लोग तकनीकी सहायता के लिए किसी भी विशेषज्ञ को कभी भी बुला सकते थे और सलाह ले सकते थे लेकिन उन्होंने इस विनाशकारी स्थिति से छुटकारा दिलाने के लिए कुछ भी नहीं किया। इसका नतीजा यह हुआ कि हर दशक मे स्थिति बदतर होती गई। (जी० इमरसन 'वायसलेस मिलियस' 1931, पृष्ठ 240-41)

सर विलियम विलकाक्स का समूचा बयान उनकी पुस्तक 'लेक्चस आन दि एनसिएंट सिस्टम आफ इरिगेशन इन बगाल ऐंड इट्स ऐप्लीकेशन टू माडन प्राब्लम्स' (कलकत्ता यूनिवर्सिटी रीडरशिप लेक्चर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1930) मे मिल सकता है। इसके साथ ही उस विवाद के अश भी मिल जाएगे जो बगाल मे सिचाई के बारे मे सर विलियम विलकाक्स के लेक्चर पर बगाल के सिचाई विभाग के भूतपूर्व चीफ इजीनियर सी० ऐडम्स विलियम्स सी० आई० ई० ने उठाए थे। साथ म श्री विलयम्स द्वारा उठाए गए मुद्दो पर सर विलियम विलकाक्स का जवाब भी उपलब्ध हो जाएगा। (बगाल सक्रेटेरियट बुक डिपाटमेट, 1931)

इस प्रकार जो लापरवाही और उदासीनता बरती गई है वह किसी भी अथ म ब्रिटिश शासनकाल के पिछले डेढ सौ वर्षों के इतिहास की बात नही है बल्कि वह आज के युग म भी जारी है। 1930 की एक सरकारी रिपोट की शब्दावली म यह तो मौजूदा कृषियोग्य भूमि पर अत्यधिक दबाव बढन और भूमि की बेहद कमी की स्थिति म 'जमीन फसल पैदा करने की अपनी क्षमता खोती जा रही है।' 1789 मे लाड कानवालिस ने अपनी रिपोट म कहा था कि ईस्ट इडिया कपनी द्वारा शासित प्रदश का अधिकाश 'जगली जानवरो से भरे हुए जगल के रूप म' तबदील होता जा रहा है। 1930 म मध्य बगाल के बार म सरकारी समिति की एक रिपाट म कहा गया है कि 'निश्चय ही यह स्थिति हो सकती है कि समूची

स्थिति मे इस सीमा तक गिरावट आ गई है कि अब इसमे सुधार नही किया जा सकता और यह भूभाग धीरे धीरे दलदल और जगल का रूप लेने के लिए अभिशप्त है।

लेकिन भारत के किसानो की अत्यधिक सख्या को अपनी फसलें महज कृषियोग्य भूमि के 59 प्रतिशत हिस्से तक ही सीमित नही करना होगा। कृषियोग्य भूमि के इस सीमित क्षेत्र के अदर भी यहा की सामाजिक स्थितिया, किसानो को अपाहिज बना देने वाला बोझ, उनकी भयकर गरीबी और आदिकालीन तकनीक जिसे विकसित करने का कोई साधन उनके पास नही छोडा गया, का अर्थ यह है कि भारत मे अन्य देशो की तुलना मे खेती करने वालो की अधिक जरूरत है। उत्पादन का स्तर किसी भी देश की तुलना मे बहुत कम है।

यदि हम भारत मे हुई चावल और गेहू की उपज की तुलना चीन, जापान या अमरीका की पैदावार से करें तो हमे महत्वपूर्ण विषमता दिखाई देगी

प्रति एकड मे हुई उपज (क्विटल मे)

	भारत	चीन	जापान	अमरीका
चावल	16 5	25 6	30 7	16 8
गेहू	8 1	9 7	13 5	9 9

('प्राब्लम्स आफ दि पैसिफिक' 1931, पृष्ठ 70)

राष्ट्रसघ (लीग आफ नेशस) के आकडा के आधार पर की गई तुलना भी उपलब्ध है

प्रति एकड मे हुई उपज (पौंड मे)

	चावल	गेहू
भारत	1,357	652
जापान	2 767	1,508
मिस्र	2,356	1,688
अमरीका	2,112	973
इटली	4,601	1,241
जर्मनी		1,740
ब्रिटेन		1,812

(स्टेटिस्टिकल इयर बुक आफ दि लीग आफ नेशस', 1932 33)

खेत मे काम करने वाले मजदूरो की सख्या को ध्यान मे रखें तो यह विषमता और भी

उल्लेखनीय है । भारत म प्रत्येक 2 6 एकड भूमि पर खेती के काम म एक व्यक्ति लगा है जबकि ब्रिटेन म 17 3 एकड और जमनी मे 5 4 एकड भूमि पर एक व्यक्ति खेती करता है । श्रम की इस भयकर बरबादी से पता चलता है कि कृषि पर आबादी का कितना जबरदस्त दबाव है और जिस तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है वह कितनी पिछडी हुई है । पैदावार मे अन्य देशो की तुलना मे जो कमी है वह प्राकृतिक रूप स यहा की मिट्टी की कम उत्पादकता के कारण नही है

> कहा यह जाता है कि भारत की मिट्टी अपनी प्रकृति से ही कम उपजाऊ है । यह बात सही नही है । यहा की मिट्टी को कम उपजाऊ बनाया गया है । यहा की विशाल नदी उपत्यकाए एक जमाने म दुनिया के सबसे उवर प्रदेश रह होगे । डेनमाक और जमनी म जमीन का एक बहुत बडा हिस्सा बुनियादी तौर पर रेतीला बजर हिस्सा है जहा केवल घासपात और कटीली झाडिया पैदा होती हैं । (इडियन सेंट्रल बैंकिंग इक्वायरी कमेटी रिपोट, एनक्लोजर XIII, पृष्ठ 700 । ए० पा० मैकडोगल का ज्ञापन, 19 माच 1931)

इसी ज्ञापन में निम्न बात कही गई है

> यदि प्रति एकड उत्पादन को फ्रास के उत्पादन के बराबर बढा दिया जाए तो देश की सपदा मे 669,000,000 पौंड की वद्धि हो जाएगी । यदि इस उत्पादन को ब्रिटेन के बराबर बढा दिया जाए तो इसमे प्रति वप 1,000,000,000 पौंड की वृद्धि हो जाएगी । फिर भी इग्लैंड किसी भी मायने मे अत्यधिक खेतिहर देश नही है । इस राशि मे भारत की जमीन के उस हिस्से को ध्यान मे नही रखा गया है जिसमे साल म दो फसलें तैयार होती ह । भारत को जो यह लाभ प्राप्त है उसस सूखे से होने वाली किसी क्षति की पूर्ति मान ली जानी चाहिए डेनमाक में गेहू की उपज के सदभ में देखें तो बढी हुई सपदा प्रतिवप 1,500 000 000 पौंड होनी चाहिए । इसलिए यह कहना गलत है कि भारत की ग्रामीण जनता की गरीबी के लिए यहा की मिट्टी जिम्मेदार है ।

खेती का मौजूदा उत्पादन न सिफ आज बहुत निम्न स्तर पर है बल्कि इस बात क प्रमाण हैं कि खेती की उत्पादन क्षमता म बराबर गिरावट आई है । उपर्युक्त उद्धत मकडोगल ज्ञापन म बताया गया है कि यहा की मिट्टी की उत्पादकता इसलिए कम होती गई क्योंकि 'बिना खाद डाले लगातार खेती की गई और इधन की जगह पर खाद का इस्तेमाल करक खाद की बरबादी की गई' (जगल सबधी कडे कानूनो क दुष्परिणामो की इसम झलक मिलती है) । ज्ञापन म यह भी रेखाकित किया गया है कि पश्चिमी देशो म फसलों क डठल और भूस का इस्तेमाल खाद के रूप म किया जाता है जबकि भारत म सारा का सारा भूसा जानवरो को खिला दिया जाता है' (इससे चरागाहो की सुविधा न होने का

झलक मिलती है)। भारत का किसान गाय का गोबर जलान क काम मे लाता है और उसकी इस क्रिया को प्राय एक विचित्र तथा बरबादी करन वाली आदत मान लिया जाता है। इस सदभ मे कृषि सबधी आयोग की रिपोट मे प्रस्तुत निष्कष ध्यान देने योग्य है। इसम कहा गया है कि जगली लकडी या कोयले के इस्तेमाल पर लगाए गए प्रतिबधा तथा रेल द्वारा परिवहन के लिए ऊची दरो के कारण भारतीय किसान फिलहाल ईंधन के रूप मे गोबर का ही इस्तेमाल करता है क्योकि यही उसे आसानी स सुलभ हो पाता है (पृष्ठ 264)। इस स्थिति का कोई समाधान नही प्रस्तुत किया गया है जिससे अनिवाय रूप से मिट्टी की उत्पादकता मे गिरावट आती जा रही है। बगाल के बारे म इस रिपोट म कहा गया है

> खाद के अभाव म मेतिहर भूमि की उवरता मे तेजी से गिरावट आ रही है। विभिन्न फसलो की पैदावार दिनादिन कम होती जा रही ह। (बगाल प्राविसियल बैकिग इक्वायरी कमेटी रिपोट, 1930, पृष्ठ 21)

इस कथन के समथन मे कुछ आकडे दिए गए है

बगाल मे प्रति एकड मे औसत उपज (पौंड मे)

निम्न सन मे समाप्त होने वाले 5 वष	जाडा			
	गेहू	चावल	चना	सरसो और तिलहन
1906 07	801	1,234	881	492
1911-12	861	983	881	492
1916-17	698	1,036	867	460
1921-22	688	1,029	826	485
1926-27	721	1,022	811	483
20 वर्षों मे आई कमी	80	212	70	9

भारत सरकार के एक विशिष्ट अधिकारी डब्ल्यू० बनस सी० आई० ई० ने भी समूचे भारत के लिए कुछ इसी तरह के आकडे पेश किए थे तालिका पृष्ठ 236 पर)

गेहू की उपज के बारे मे भी बिगडती हुई स्थिति का पता चलता है। 1909-13 में गेहू की पैदावार औसतन प्रति एकड 724 पौंड थी जो 1924-33 में घटकर 636 पौंड हो गई। (वही, पृ० 57)

चावल की औसत उपज
(प्रति एकड पौंड मे)

1914-15	से	1918-19	का	औसत	982
1926-27	से	1930-31	का	औसत	851
1931-32	से	1935-36	का	औसत	829
1938-39					728

('टैक्नोलाजीकल पासिबिलिटीज आफ ऐग्रीकल्चरल डेवलपमेंट इन इडिया, 1944 पृष्ठ 55)

इस प्रकार यदि हम केवल वतमान परिस्थितियो को देखें और समूची अथव्यवस्था के सदभ में भारत मे कृषि की पैदावार की प्रवृत्तियों पर ही विचार करें तथा बढ़त हुए सामाजिक अतर्विरोधो को फिलहाल दरकिनार कर दें तो भी हर दृष्टिकोण से यह जाहिर हो जाता है कि भारत की खेती का सकट दिनोदिन बढता जा रहा है।

इस बढत हुए सकट के कारणो की तलाश हम प्राकृतिक दशाओ मे नही बल्कि सामाजिक सबधो के क्षेत्र मे करनी चाहिए। बिलकुल हाल के अनुभवो से पता चलता है कि दभपूण और अदूरदर्शितापूण ढग से हमेशा किसानो को यही उपदेश देने की काशिश की गई है कि वे पिछडे हुए है और इस बात की कोशिश नही की गई कि उनके शोषण को रोकन के लिए कुछ किया जाए या खेती के उनके तरीके विकसित करने के लिए प्रयास किए जाए। इन किसानो के पास न तो कोई साधन है जिससे वे उन्नत तकनीकी पद्धतिया अपना सकें और न तो भूमि की पटटेदारी की मौजूदा स्थितियो मे इन बातो की कोई सभावना ही है।

निश्चय ही वतमान स्थितियो और सीमाओ के भीतर भारतीय किसानो की कुशलता और साधनसपन्नता की परख विशेषज्ञो ने की है। 1889 मे सरकार ने रायल एग्रीकल्चरल सोसायटी के कसल्टिंग कैमिस्ट जे० ए० वोल्कर को इस बात के लिए नियुक्त किया कि वह भारतीय कृषि की तकनीक की जाच करें और उसमे विकास मे सुझाव दें। उनकी जाच की रिपोट दो वष बाद प्रकाशित हुई। यह भारतीय कृषि के बारे म एक असाधारण कृति है। इसमे उन्होंने लिखा

> एक मुद्दे पर कोई असहमति नही हो सकती, और वह यह है कि इग्लैंड म और कभी कभी भारत मे भी यह जो धारणा व्यक्त की जाती है कि भारतीय कृषि कुल मिलाकर आदिकालीन और पिछडी हुई है तथा इसम सुधार करने के कोई उपाय नहीं किए गए हैं पूरी तरह भ्रातिपूण है। यदि उसकी फसल अच्छी रही तो भारतीय रैयत या किसान उतना ही अच्छा है जितना ब्रिटेन

का औसत किसान और कुछ मामलो मे तो वह ब्रिटिश किसान से भी ज्यादा अच्छी स्थिति मे है। लेकिन यदि फसल खराब हो गई तो केवल यही कहा जा सकता है कि इस स्थिति के लिए सुधार की सुविधाओ का न होना काफी हद तक जिम्मेदार है। सुधार की सुविधाओ का यहा जितना अभाव है उतना शायद ही किसी और देश मे हो। इसके अलावा कठिनाइयो के मुकाबले मे यहा का किसान जितने धैय और बिना शिकायत के सघप करता है उतना कोई दूसरा नही।

हमारे ब्रिटिश किसानो को मेरे इस कथन पर आश्चय नही होना चाहिए क्योकि यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि भारत के रहने वाले गेहू की खेती इग्लैंड द्वारा गेहू की खेती किए जाने से सैकडो वष पहले से करते आ रहे हैं। इसलिए इस बात की सभावना नही है कि उनके तौर तरीके मे अधिक विकास की क्षमता है तो भी अधिक फसल पैदा करन मे जो चीज उन्हे बाधा पहुचा रही है वह है वे सीमित साधन जो उनकी पहुच म हैं उदाहरण के लिए पानी या खाद की सप्लाई।

लेकिन कृषि कम के साधारण कार्यो को यदि देखें तो हमे इस तरह के दृष्टात इतने बेहतर ढग से और कही नही मिलेंगे जहा लोग इतने कायदे से अपने खेत को छोटे छोटे घासपात से साफ रखते हो, सिंचाई के इतने अच्छे उपकरण इस्तेमाल मे लाते हो, मिट्टी और उसकी क्षमता की इतनी अच्छी जानकारी रखते हो, बोने और काटने के ठीक ठीक समय के बारे मे जानते हो। ये सारे गुण भारतीय कृषि में ही मिलेंगे। यह विशेपताए किसी सर्वोत्तम स्थिति की भारतीय कृषि की विशेपताए नही है बल्कि साधारण स्तर पर यह चीजें मिल जाएगी। यह भी अद्भुत है कि फसलो को हेरफेर कर बोने की उन्ह काफी जानकारी है और दो फसलो का मिलाकर बोने का तरीका उन्हे बखूबी मालूम है। निश्चय ही कम से कम मैंने तो इतनी सावधान खेती किसी और देश में नही देखी थी जहा खेती में पूरी मुस्तैदी बरतन के साथ साथ कठोर परिश्रम, फसल का सरक्षण और साधन की उवरता पर इतना जोर दिया जाता हो। भारत की अपनी यात्रा के दौरान मैं कई स्थानो पर रुका और ये सारी खूबिया मैंने वहा देखी। (डाक्टर जे० ए० वोल्कर 'रिपोट आन दि इम्प्रूवमेंट आफ इडियन ऐग्रीकल्चर' 1891)

भारतीय कृषि के बढते हुए सकट का कारण न तो प्राकृतिक परिस्थितिया हैं और न ही किसानो की कुशलता अथवा साधनसपन्नता का अभाव है। जिन सीमाओ के अतगत उन्ह काम करना पडता है उन्ह यदि देखें तो यह कहना गलत होगा कि भारतीय किसान की गरीबी का कारण उनका तथाकथित पिछडापन है जिसकी वजह स उनका विकास

नहीं हो पा रहा है। वस्तुत इस सकट का कारण साम्राज्यवाद है और साथ ही साम्राज्य बाद द्वारा पोषित वे सामाजिक सबध है जिनकी वजह से कृषि पर आबादी का दबाव बढता जा रहा है कृषि के विकास में गतिरोध पैदा हो गया है, उसमें गिरावट आने लगी है अधिकाश किसानो को दिनोदिन परेशान रहना पडता है और आधा पेट खाकर किसी तरह गुजर बसर करना पडता है। साम्राज्यवादी शासन और इससे उत्पन्न सामाजिक सबधों के कारण ही आज ऐसी परिस्थितिया पैदा हो रही है जिनका एकमात्र परिणाम और समाधान दूरगामी प्रभावयुक्त क्राति ही हो सकती है। कृषि के क्षेत्र में इन सामाजिक सबधो पर विचार किया जाना अत्यत आवश्यक है क्योकि इनसे ही हमें कृषीय सकट दूर करने की प्रेरक शक्तियो का पता चलेगा।
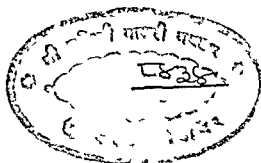
8
किसानो पर बोझ

'कृषीय प्रणाली अब ध्वस्त हो चुकी है और समाज का नया सगठन अवश्यभावी है।'— 1933 मे जवाहरलाल नेहरू का कथन।

मौजूदा शासन के अतगत कृषि पर आबादी के अत्यधिक दबाव, कृषि का निम्न स्तर, कृषि के क्षेत्र म ठहराव और गिरावट के रूप म खेती की पैदावार म जो सकट दिखाई पडता है वह खेती के सामाजिक सबधो के आतरिक सकट की बाहरी अभिव्यक्ति मात्र है। साम्राज्यवादी परिस्थितियो म किसानो के शोषण की ऐसी जबरदस्त प्रणाली विकसित हुई है जिसकी मिसाल किसी और देश म नही मिल सकती। साम्राज्यवादी प्रभुत्व और शोषण के रक्षात्मक कवच के भीतर कई तरह का पूरक परोपजीवितावाद विकसित हुआ है जो समूची व्यवस्था पर निभर है और व्यवस्था का अभिन्न अग है। इसके परिणामस्वरूप जो प्रक्रिया सामन आती है उससे न केवल किसानो पर बढते हुए बोझ, उनकी गरीबी और कज के बोझ से उनके दबे होन का ही पता चलता है बल्कि वर्गों के बीच बढते हुए भेदभाव और बडे पैमाने पर किसानो का उनके खेतो से बेदखल किए जाने का भी पता चलता है। जमीन से बेदखल किसान एक ऐसी स्थिति मे पहुच गए हैं जो कृषि दास प्रथा के काफी करीब है या वे दिन ब दिन बढती हुई भूमिहीन सर्वहारा की एक सेना की शक्ल अख्तियार कर रहे है। यही वह प्रक्रिया है जो आने वाले तूफान की सूचना दे रही है।

1 जमीन की इजारेदारी

ब्रिटिश शासनकाल से पहले भारत म जो परपरागत भूमि व्यवस्था कायम थी उसम जमीन पर किसानो का हक था और सरकार को फसल का एक हिस्सा मिल जाता था। 'भारत

की धरती पर जनजाति का या उसके उपविभागो का स्वामित्व था। इसमे ग्रामीण समाज कबीला या गाव म बसे बिरादरी के अन्य लोगों की मिल्कियत थी, जमीन कभी राजा की सपत्ति नही समझी गई' (आर० मुखर्जी 'लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', 1933, पृष्ठ 16)। 'चाहे सामती व्यवस्था हो या शाही योजना, जमीन पर किसानो को छोडकर कभी किसी अन्य का स्वामित्व नही रहा' (वही, पृष्ठ 36)।

'राजा का हिस्सा' अथवा राजा को दी जाने वाली मात्रा हिंदू राजाओ के शासनकाल म छठे भाग से लेकर बारहवें भाग तक हुआ करती थी। युद्ध के काल मे उपज की यह राशि एक चौथाई तक की जा सकती थी। मनु ने अपनी सहिता मे कहा था

> जिस प्रकार जोक, बछडा और मधुमक्खी अपना आहार ग्रहण करते है उसी प्रकार राजा को अपने राज्य से मामूली कर ग्रहण करना चाहिए। राजा को मवेशियो और स्वण की बढी हुई राशि का पाचवा हिस्सा तथा फसल का आठवा, छठवा या बारहवा अश प्राप्त करना चाहिए। फिर भी एक क्षत्रिय राजा जो युद्ध के दिनो मे फसल का एक चौथाई अश तक ग्रहण करता है वह यदि अपनी सामथ्य भर अपनी प्रजा की रक्षा करता है तो किसी प्रकार के दोषारोपण से मुक्त है।

मुगल बादशाहो ने अपना साम्राज्य स्थापित करने के बाद इस राशि को बढाकर एक तिहाई कर दिया था। अकबर ने इस प्रकार का कानून बनाया था

> पुराने बीते दिना मे हिंदुस्तान के सम्राट भूमि की पैदावार का छठा हिस्सा नजराना और कर के रूप मे वसूलते थे। शहशाह ने तय किया है कि सामान्य तौर पर बोए गए खेत की उपज का एक तिहाई हिस्सा राजस्व के रूप मे प्राप्त किया जाए।

मुगल साम्राज्य के विघटन के दिनो मे वे लोग, जिनके जिम्मे कर की वसूली का काम सौपा गया था और जिन्होने अपन को खुद ही अधसामती सरदारा या स्वतत्र सरदारों का दर्जा दे दिया था, नजराने की इस राशि को क्रमश बढाने लगे और इस राशि को एक तिहाई से बढाकर आधा तक कर दिया।

नव मुगल साम्राज्य के अवशेषो पर अगरजो न अपने साम्राज्य की स्थापना की तो उन्होने जमीन की आय से सरकारी कोष को समृद्ध करने की पुरानी पद्धति भी अपना ली लेकिन इसके साथ ही उन्होने इस प्रणाली का स्वरूप बदल दिया और ऐसा करके उन्होने भारत की भूमि व्यवस्था का रूपातरण कर दिया। जिस समय उन्होने शासन सभाला उस समय तक भारत का पुराना शासन प्रबध अस्तव्यस्त हो चुका था और पतन की दिशा म बढ रहा था। उन दिनो किसाना स जबरन बहुत अधिक धन वसूला जाता था और उन्हें हर तरह

से लूट लिया जाता था। फिर भी गाव की सामुदायिक व्यवस्था और जमीन के साथ उसका परपरागत सबध उस समय तक भी टूटा नही था और नजरान के रूप मे किसानो को राज्य को जो कुछ देना पडता था वह सालाना पैदावार का एक हिस्सा ही होता था। (नजराने की राशि सामान्य तौर पर पैदावार के रूप मे और कभी कभी नकदी के रूप मे दी जाती थी।) उस समय तक पैदावार चाहे कम हो या ज्यादा प्रतिवर्ष एक निश्चित जोत के आधार पर निश्चित मालगुजारी देने की प्रणाली अभी नही शुरू हुई थी।

अराजकता के दिनो मे किसानो से जितनी निदयता के साथ नजराना वसूला जाता था उसे नए विजेताओ ने कर वसूलने का सामान्य ढग समझा। समकालीन लेखको की रचनाओ से पता चलता है कि शुरू म नए शासको म पहले से ज्यादा सपत्ति वसूलने की प्रवत्ति काम कर रही थी अथवा यह हो सकता है कि कर वसूलने की अपक्षाकृत अधिक कुशल व्यवस्था के कारण किसानो का पहले मे ज्यादा शोपण होने लगा था। डा० बुकानन ने 19वी सदी के प्रारभिक दिनो मे कपनी की ओर से एक सर्वेक्षण किया था जो सरकारी तौर पर इतनी सावधानी के साथ की गई पहली जाच थी। उन्होंने अपनी पुस्तक 'स्टेटिस्टिकल सर्वे' मे लिखा कि वसूली की यह नई प्रणाली अत्यत दुस्सह है। उन्होंने 1800 ई० मे दक्षिण भारत का और 1807-14 ई० मे उत्तर भारत का सर्वेक्षण पूरा किया। फिर उन्होने बगाल के दिनाजपुर जिले के सदभ मे लिखा

> ग्रामवासियो ने अपने आरोपो मे बताया कि हालाकि मुगल शासको के अधिकारियो द्वारा उनसे प्राय जबरदस्ती सपत्ति वसूल ली जाती है और सभी अवसरो पर उन्हे बहद अपमानित किया जाता है फिर भी जब उनके ऊपर काफी राशि बकाया रूप मे जमा हो जाती है और उनकी जमीन बेच दी जाती है उस समय वे इन तकलीफो को बरदाश्त कर लेते है। यह एक ऐसा चलन है जिससे वे बच नही सकते। इसके अलावा अधिकाश अवसरो पर घूसखोरी का काफी बोलबाला है और उनका आरोप है कि आज वे घूस के रूप मे जितना कुछ देते है वस्तुत उसका आधा हिस्सा भी व पहले नही देते थे। (डा० फ्रासिस बुकानन 'स्टेटिस्टिकल सर्वे' खड IV, हाउस आफ कामस की प्रवर समिति की पाचवी रिपोर्ट मे उद्धृत, 1872)

1826 मे बिशप हेबर ने लिखा

> मेरा विचार है कि करारोपण की वतमान दर से मूल देशवासी अथवा अगरेज कोई भी सपन्न नही हो सकता है। एक व्यक्ति जो कुछ पैदा करता है उसके आधे हिस्से की सरकार माग करती है हिंदुस्तान (उत्तर भारत) मे मैंने राजा के अधिकारियो म सामान्य तौर मे यह भावना देखी और कुछ परिस्थितियो के कारण मैं स्वय भी उनकी इस भावना से सहमत हू कि कपनी के सूबो म रहने वाली

किसान जनता कुल मिलाकर देशी राजाओ की रियासतो म रहने वाली जनता की तुलना मे अधिक गरीब अधिक परेशान और अधिक बुरी हालत मे है। साथ ही यहा मद्रास मे, जहा की मिट्टी सामान्य तौर पर उवर नही है यह अतर और भी साफ दिखाई देता है। वास्तविकता यह है कि किसी भी देशी रियासत का शासक उतनी मालगुजारी की माग नही करता है जितनी कि हम करते है। (बिशप हेबर मेमायस ऐंड कोरसपोडेंस', 1830, खड II, पृष्ठ 413)

थापसन और गैरट नामक इतिहासकारो ने लिखा

विद्रोह से पूव कर निर्धारण का इतिहास 'आर्थिक लगान' की वसूली के लिए किए गए असफल प्रयासो की शृखला का इतिहास है। इस आर्थिक लगान को बहुधा 'कुल उत्पादन माना जाता था। जिन खेतो से बगाल को राजस्व की प्राप्ति होती थी उनकी नीलामी का उद्देश्य 'कुल उत्पादन' का अधिक से अधिक हिस्सा प्राप्त करना था। इस प्रणाली की विफलता के कारण ही स्थाई बदोबस्त लागू किया गया। मद्रास और बबई म शुरू म जो राशि निर्धारित की गई थी वह आमतौर से अनुमानित 'कुल उत्पादन' का 4/5 भाग थी। यह राशि बहुत अधिक थी। इसी तरह उत्तर पश्चिम सूबो के लिए कर निर्धारण का पहला प्रयास विफल हो गया और इस प्रयास को 1842 मे तिलाजलि दे दी गई इसमे कोई सन्देह नही कि 19वी सदी के शुरू के 25 वर्षों के दौरान जो जबरदस्त कर निधारण थोपा गया, उससे मद्रास और बबई सूबो को काफी तकलीफ उठानी पडी। यहा तक कि पजाब म जहा ब्रिटिश निर्धारणो ने सिखो की पुरानी मागो म कमी कर दी, ऐसा लगता है कि नकद भुगतानो और वसूली म कठोरता से किसानो के हित को सामान्य तौर पर ठेस पहुची। (एच० कलवट वेल्थ ऐंड वलफेयर आफ दि पजाब', पृष्ठ 122), (थापसन ऐंड गैरट 'राइज ऐंड फुलफिलमट आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया' पृष्ठ 427)

1921 मे डा० हेरारड मान ने दक्कन के एक गाव का दूसरी बार सर्वेक्षण किया। उन्होने अगरेजो के शासन स पहले और अगरेजो के शासन के बाद के दिनो म ली जाने वाली मालगुजारी म जबरदस्त अतर पाया

अगरेजो की विजय के बाद स्थिति पूरी तरह बदल गई। 1823 म 2 121 रुपये की मालगुजारी वसूल की गई और गाव का खच 1817 क खच का आधा रह गया। (मान और कानिटकर 'लड ऐंड लेबर इन ए दक्कन विलेज', खड II, 1921 पृष्ठ 38)

1844 स 1874 तक के तीस वर्षों म भू राजस्व निर्धारण की राशि पूरे गाव क लिए

1,161 रुपया या 9 आना 8 पाई प्रति एकड थी। 1874 से 1904 के तीस वर्षों के दौरान यह राशि 1,467 रुपया या 11 आना 4 पाई प्रति एकड थी। 1915 मे नए सिरे से यह राशि निर्धारित की गई और इसे बढाकर 1,581 रुपया या 12 आना 2 पाई प्रति एकड कर दिया गया।[1] 1917 म डाक्टर मान ने दकन के एक गाव के अपने पहले सर्वेक्षण मे देखा कि कुल राजस्व की राशि समय समय पर बढाई गई है, यह राशि 1829-30 मे 889 रुपये थी जो 1849-50 म बढाकर 1,115 रुपये और 1914-15 मे बढाकर 1,660 रुपये कर दी गई।

बगाल मे मुगल शासका के प्रतिनिधियो के शासन के अतिम वष अर्थात 1764-65 में वहा मालगुजारी के रूप मे 818,000 पौंड की राशि वसूल की गई। 1765-66 म अर्थात ईस्ट इडिया कपनी द्वारा बगाल का वित्तीय प्रशासन अपने हाथ मे लिए जाने के पहले वष मे यह राशि बढाकर 1,470 000 पौंड कर दी गई। 1793 म जब बगाल में स्थाई (इस्तमरारी) बदोबस्त लागू किया गया तो यह राशि 3,091,000 पौंड हो चुकी थी।

कपनी अपने पूरे राज्य से जो मालगुजारी वसूलती थी वह 1800-01 मे 42 लाख पौंड थी (यह वृद्धि मुख्यतया इलाका बढने से हुई थी लेकिन साथ ही मालगुजारी की बढी हुई दर भी इस वृद्धि के लिए जिम्मेदार थी) और 1857-58 तक जब ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन कपनी के हाथा से अपने हाथो म ले लिया तो यह राशि बढकर 1 करोड 53 लाख पौंड हो गई। ब्रिटिश सरकार के प्रत्यक्ष शासन के दौरान मालगुजारी की राशि 1900-01 म 1 करोड 75 लाख पौंड और 1911-12 मे 2 करोड पौंड हो गई। 1936 37 म यह राशि 2 करोड 39 लाख पौंड हो गई थी।

आधुनिक काल मे भू राजस्व निर्धारण के आकडो को देखने से पता चलता है कि ब्रिटिश शासनकाल के प्रारभिक दिनो के मुकाबले बाद म उपज का पहले से कम भाग किसान से लिया जाने लगा था (इस गणना का सामान्य आधार लगान पर कुल उत्पादन का आधा हिस्सा माना जाता था, मुखर्जी लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', पृष्ठ 202)। लेकिन उस समय तक शोषण के दूसर तरीको मे भी इसी अनुपात मे वृद्धि हुई और उन्होंने पहले से ज्यादा उल्लेखनीय भूमिका निभानी शुरू कर दी थी। उन्होंने सरकार द्वारा मालगुजारी प्रत्यक्षत वसूलने की भूमिका त्याग दी और इसके लिए जो रास्ते अपनाए गए वे थे जमींदारी प्रथा का विकास, लगान की बढी हुई राशि, व्यापार के क्षेत्र मे घुसपैठ, उपभोक्ता सामानो पर बढे हुए अतिरिक्त कर तथा दिनोदिन बढता कज। मुख्य रूप मे मालगुजारी पर टिके साधारण नजराने ने भारतीय अथव्यवस्था मे घुसे हुए अनेक परोपजीवियो सहित आधुनिक महाजनी पूजी द्वारा किए जा रहे शोषण के स्वरूप को स्थान दिया।

इसके अलावा भू राजस्व के निर्धारण का स्तर आज के युग मे भी प्रत्येक सशोधन के बाद

निरंतर बढ़ता जा रहा है। इसका नतीजा यह होता है कि प्रत्येक संशोधन के बाद किसानों पर जबरदस्त बोझ पड जाता है जिससे विद्रोह आंदोलन जन्म लेते हैं। 1928 में बारदोली में कांग्रेस के नेतृत्व में 87 हजार किसानों का आंदोलन हुआ जिसने बढ़ी हुई मालगुजारी का सफल विरोध किया और सरकार को यह मानने पर मजबूर किया कि यह संशोधन अन्यायपूर्ण है और मालगुजारी की निर्धारित राशि कम की जानी चाहिए।[3] आर० मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'लैंड प्राब्लम्स आफ इंडिया' (पृष्ठ 206) में लिखा है कि 'मद्रास, बंबई और संयुक्त प्रांत में खासतौर से मालगुजारी की राशि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी है।' उनका कहना है कि 1890-91 से 1918-19 के बीच भू राजस्व 24 करोड़ रुपये से बढ़कर 33 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। उन्होंने आगे लिखा है

> इन 30 वर्षों के दौरान खेती से होने वाली आय में जहां मोटे तौर पर 30, 60 और 23 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई वहीं संयुक्त प्रांत, मद्रास और बंबई के लिए भू राजस्व की राशि में क्रमश 57, 22 6 और 15 5 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। इन सूबों में गैरआर्थिक जोतोंवाले किसानों का बहुमत है और भू राजस्व में हुई इस वृद्धि से तथा नकद रूप में इसके विनिमय और फसल काटने के समय इसकी वसूली से इन किसानों की आर्थिक स्थिति को बहुत धक्का लगा। (पृष्ठ 345)

2 भूमि व्यवस्था का रूपांतरण

शुरू के वर्षों में मालगुजारी की दर में जो वास्तविक वृद्धि हुई उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण था भारत पर अंगरेजों के शासन के बाद यहां की भूमि व्यवस्था में एक क्रांतिकारी परिवर्तन। इस क्रांति की दिशा में पहला कदम मालगुजारी निर्धारण की प्रणाली और भूमि के स्वामित्व का पंजीकरण था जिसमें ब्रिटेन की आर्थिक और कानूनी धारणाओं ने भारत की परंपरागत आर्थिक संस्थाओं और धारणाओं को हटाकर उनका स्थान ले लिया अथवा उन पर अपने को थोप दिया। ये दोनों धारणाएं एक दूसरे से काफी भिन्न थीं। पहले परंपरा थी कि सालभर की उपज का एक अंश 'राजा का हिस्सा' होता था जो संयुक्त मिल्कियत वाले किसानों या गांव का स्वयं प्रबंध करने वाले ग्रामीण समुदाय द्वारा नजराने या कर के रूप में शासक को दिया जाता था। 'राजा का हिस्सा' भी वार्षिक पैदावार के घटने बढ़ने के साथ घटता बढ़ता रहता था। अंगरेजों ने इस परंपरा को समाप्त कर, मालगुजारी के रूप में एक निश्चित रकम लेना शुरू किया। यह राशि जमीन के हिसाब से तय कर दी जाती थी और साल में फसल कम हुई हो या ज्यादा, यह निर्धारित राशि देनी ही पड़ती थी। अधिकांश मामलों में, यह मालगुजारी अलग अलग व्यक्तियों पर लगाई गई थी। ये लोग या तो खुद खेती करते थे या सरकार द्वारा नियुक्त किए गए जमींदार थे। शुरू के दिनों में सरकारी प्रशासकों द्वारा और शुरू के सरकारी दस्तावेजों में इस राशि को आमतौर से 'लगान' कहा जाता था। इससे पता चलता है कि वस्तुतः किसान अब सीधे राज्य का या राज्य द्वारा नियुक्त जमींदार का

काश्तकार बन गया हालाकि इस सबके बावजूद उसके कुछ मालिकाना तथा परपरागत अधिकार भी होते थे। इस सारी प्रक्रिया को भारत मे इग्लैड के ढग की जमीदारी प्रथा (भारत मे इस तरह की व्यवस्था की अतीत मे कोई मिसाल नही है। कर देने वाले पुराने किसानो के आधार पर नए वग की रचना की जा रही है), व्यक्तिगत जोतो की प्रणाली, जमीन को बधक रखने तथा बेचने की प्रणाली और वहा की पूजीवादी कानून व्यवस्था जारी करके पूरा कर दिया गया। भारत की अथव्यवस्था के लिए यह नई व्यवस्था बिलकुल अजनबी थी और इस व्यवस्था का प्रशासन एक ऐसी विदेशी नौकरशाही करती थी जो कानून बनाने (विधानाग) उसे लागू करने (कार्याग) और न्याय करने (न्यायाग) का काम स्वय करती थी। इस रूपातरण से अगरेज विजेताओ ने व्यवहारत भूमि पर पूरा पूरा अधिकार कर लिया और किसानो को ऐसे काश्तकार का दर्जा दे दिया जिन्हे लगान का भुगतान न करने पर जमीन से बेदखल किया जा सके या उस जमीन को स्वय द्वारा नामजद किए गए जमीदार के नाम लिखा जा सके। ये जमीदार भी सरकार की इच्छा से ही जमीन के मालिक थे और लगान न देने पर उन्हे भी जमीन से बेदखल किया जा सकता था। पुराने जमाने मे अपना प्रबध सचालन स्वय करने वाले ग्रामीण समुदाय को उसके आर्थिक कार्यो और प्रशासनिक भूमिका से वचित कर दिया गया। जो जमीन पहले गाव मे साझे की जमीन समझी जाती थी उसे अलग अलग लोगो म बाट दिया गया।

इस प्रकार औपनिवेशिक प्रणाली की विशिष्ट प्रक्रिया वस्तुत बहुत बेरहमी के साथ भारत म पूरी की गई—भारत की जनता को उसकी जमीन से बेदखल कर दिया गया हालाकि इस प्रक्रिया को और भी जटिल कानूनी रूपो की भूलभुलैया द्वारा अशत ढका गया जो आज डेढ सौ वर्षो के बाद एक दूसरे मे उलझी प्रणालियो, काश्तकारियो, परिपाटियो और अधिकारो का अभेद्य जगल बन गई है। किसान पहले जमीन के मालिक थे, अब उनकी मिल्कियत छीन ली गई और वे लगान देकर दूसरे की जमीन पर खेती करने वाले काश्तकार बन गए। इसके साथ ही बधक रखने और कजदार होने की तकलीफें जिनका उनकी अधिकाश जोतो को सामना करना पडता है, वे भुगत रहे है। यह प्रक्रिया जब और आगे बढी तो किसानो का एक बढता हुआ हिस्सा पिछले सौ वर्षों म और खासतौर से पिछले पचास वर्षो मे भूमिहीन मजदूर बन गया अर्थात खेतिहर सर्वहारा का एक नया वग तैयार हो गया जो आज खेती पर निभर एक तिहाई आबादी से बढकर आधी आबादी तक पहुच गया है।

दरअस्ल माक्स ने इसी रूपातरण के प्रारभिक चरण का उल्लेख किया था जब उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया था कि प्राचीन ग्रामीण समुदायो का विघटन बुर्जुआ व्यापारिक घुसपैठ की अप्रत्यक्ष कार्यवाहियो और मशीन निर्मित सामानो के भारत म प्रवेश के कारण ही नही बल्कि इसलिए भी हुआ क्योकि अगरेज विजेताओ ने 'शासको और जमीदारो के रूप म प्रत्यक्षत राजनीतिक और आर्थिक सत्ता' का प्रयोग किया। यह

स्थिति चीन मे इस तरह के समाज के विघटन की प्रक्रिया की तुलना म ज्यादा तीव्र है क्योकि वहा 'अगरेजो की ओर से किसी प्रत्यक्ष राजनीतिक सत्ता का समथन नही था'

> भारत और चीन के साथ अगरेजा के सबधो मे यह बात बहुत स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कि वाणिज्य व्यापार के क्षयकारी प्रभाव के विरोध मे पूव पूजीवादी राष्ट्रीय उत्पादन प्रणाली की आतरिक मजबूती और सघियोजन ने काफी अवरोध प्रस्तुत किए। सामान्य तौर पर यहा की उत्पादन प्रणाली का आधार छोटे पैमाने की कृषि और घरेलू उद्योगो की एकता से निर्मित है। भारत मे इन चीजा के साथ साथ कम्यून जैसे कुछ सगठन हैं जिनका जमीन पर साझे का स्वामित्व है। भारत म अगरेजो ने इन छाटे छोट आर्थिक सगठनो को ध्वस्त करने के लिए शासको और जमीदारो के रूप म अपनी प्रत्यक्ष राजनीतिक और आर्थिक दोनों ताकतो का एक साथ इस्तेमाल किया।

इसके आगे उन्हाने अपनी पादटिप्पणी मे लिखा

> यदि किसी देश के इतिहास को लें तो यह भारत मे अगरेजो के प्रबध सचालन का इतिहास है जो अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे असफल और सही अर्थों म बेतुके (और व्यवहार मे कुख्यात) प्रयोगो का एक सिलसिला है। अगरेजो ने बगाल म बडे पैमाने पर इग्लैंड की जमीदारी प्रथा की भौंडी नकल की, दक्षिण पूव भारत मे उन्होंन छोटे छोटे खेता क आवटन की नकल की और उत्तर पश्चिम म उन्होंने भारतीय गाव के कम्यून (पचायती समाज) को, जिसमें जमीन सबकी साझे की सपत्ति हुआ करती थी अपनी सामथ्य पर उन्होंन इस तरह बदल डालने का प्रयास किया कि वह खुद ही मजाक बनकर रह जाए। (कालमाक्स कपिटल', खड III XX, पृष्ठ 392-93)

3 जमीदारी प्रथा की शुरुआत

पश्चिमी विजेताओ ने भारत म जमीन का बदोबस्त सबसे पहले इस तरह करने की कोशिश की कि इग्लैंड की जमीदारी प्रथा थोडे परिष्कृत रूप में वहा लागू कर दी गई। 1793 में लाड कानवालिस न बगाल, बिहार और उडीसा तथा बाद में उत्तरी मद्रास के कुछ इलाको के लिए जो विख्यात इस्तमरारी बदोबस्त (स्थाई भूमि बदोबस्त) लागू किया उसका असली स्वरूप यही था। इन प्रातो में पहले से मौजूद जमीदार वस्तुत जमीन के मालिक नही थे बल्कि कर या मालगुजारी वसूलने वाले सरकारी कमचारी थे जिन्हे इन प्रातो के पुराने शासको ने कमीशन पर मालगुजारी वसूलन के लिए नियुक्त किया था (अधिकृत रूप से उन्हे ढाई प्रतिशत कमीशन मिलता था हालाकि व्यवहार में वे लूट खसोट कर कुछ अधिक पैसे पा जात थे)। अगरेज सरकार न इन जमीदारों को हमेशा के लिए जमीन का मालिक बना दिया और स्थाई तौर पर एक ऐसी राशि तय

कर दी जो व सरकार को दे सके। यह राशि किसानो की कुल मौजूदा भुगतान राशि के 10/11 की दर से जोड़ी गई और 11वें हिस्से को जमींदार द्वारा भुगतान करने के लिए छोड़ दिया गया।

उस जमाने मे समझौते की ये शर्तें जमीदारा और काश्तकारो के लिए बहुत कष्टकर और सरकार के लिए बहुत फायदेमद थी। सरकार न यह निर्धारित किया कि बगाल के जमीदार प्रतिवर्ष 30 लाख पौंड किसानों से वसूल करक सरकारी कोष को दिया करेंगे। पुराने राजाओ के शासनकाल मे सरकार के लिए जमीदार जो वसूली करते थे उससे यह राशि बहुत ज्यादा थी। बहुत से जमीदार लगान की वसूली में अपनी पारिवारिक परपरा के अनुसार किसानो पर कुछ रहम दिखाते थे और कडाई के साथ नही पेश आते थे। वे मालगुजारी की इस निर्धारित राशि के बोझ को नही उठा सके और उनकी जमीदारी बडी बेरहमी के साथ सरकार द्वारा नीलाम कर दी गई। पुराने जमीदारो मे कुछ भले किस्म के लोग थे जिन्होने हमेशा यह समझा था कि उनकी देख रेख मे रहने वाली किसान जनता के प्रति उनका कुछ दायित्व है ऐसे जमीदारो की बरबादी की अनेक ददनाक कहानिया सुनने को मिलती है। चूकि ये जमीदार अपने नाम निर्धारित राशि को सरकारी कोष म जमा करने मे सफल नही हो सके इसलिए उन्हे बेरहमी के साथ निकाल बाहर किया गया। धूर्त और धनलोलुप व्यापारियो का एक ऐसा वग सामने आया जिसने इन जमीदारियो को खरीद लिया। ये किसानो से एक एक पाई वसूलने के लिए हर तरह का हथकडा अपनाते थे। 'भद्र मालिका के नए वर्ग' का यही स्वरूप था और इस्तमरारी बदोबस्त का उद्देश्य भी ऐसे ही वग तैयार करना था। 1802 म मिदनापुर के कलक्टर द्वारा पेश की गई रिपोट में कहा गया था

> जमीन की बिक्री और जब्ती की प्रणाली ने बगाल के अधिकाश बडे बडे जमीदारों को बहुत थोडे वर्षों के अदर एकदम गरीब और भिखारी बना दिया।
> इसने बगाल की भू सपत्ति में सभवत इतना बडा परिवतन किया जितना किसी भी युग में या किसी भी देश में इतने कम समय में महज आतरिक कानून के जरिए नही किया गया होगा।

लेकिन साथ ही इस प्रणाली ने एक और दिशा ले ली जिसके बारे में सरकार ने पहले कभी कल्पना भी नही की थी। मुद्रा का मूल्य गिर जाने और जमीदारा द्वारा किसानो से लगान में वसूल की जाने वाली राशि के बढाने के साथ साथ इस लूट में सरकार का हिस्सा, जो स्थाई तौर पर 30 लाख पौंड तय हो चुका था बराबर कम होता गया जबकि जमीदारो का हिस्सा दिनादिन बढता गया। आज स्थिति यह है कि बगाल म स्थाई बदोबस्त के अतगत वसूली जाने वाली कुछ मालगुजारी अनुमानत 1 करोड 20 लाख पौंड है जिसका एक चौथाई हिस्सा सरकार के पास और तीन चौथाई हिस्सा जमींदार के पास जाता है।[3]

इस स्थिति व साफ हो जाने के बाद से स्थाई बदोबस्त पर आज हर तरफ मे प्रहार किया जाने लगा है और इसकी भत्सना हो रही है। यह भत्सना जमीदारो को छोडकर किसानो और समूची भारतीय जनता द्वारा ही नही की जा रही है, बल्कि साम्राज्यवादियो ने भी इसकी निंदा की है। इस बदोबस्त मे सशोधन करने के लिए एक मजबूत आदोलन छिडा हुआ है (स्थाई बदोबस्त पर साम्राज्यवादियो द्वारा किए जा रहे समकालीन प्रहार की तीव्रता का उदाहरण 'आक्सफोड हिस्ट्री आफ इडिया' के पृष्ठ 561-70 पर की गई जबर दस्त भत्सना म देखा जा सकता है)। साम्राज्यवाद के आधुनिक समथक यह सफाई देने की कोशिश करते ह कि यह समूचा बदोबस्त अनजान म और गलती से हो गया था और यह गलती इसलिए हुई क्योकि इस तथ्य की जानकारी नही थी कि यहा के जमीदार लोग जमीन के मालिक नही थे। एस्टे ने अपनी मशहूर पुस्तक 'इकोनोमिक डेवलपमट आफ इडिया' (पृष्ठ 98) मे ऐसा ही लिखा है

> शुरू मे भारत की जटिल प्रणाली कपनी के कमचारियो के लिए एक बद किताब की तरह थी। उन्होंने जमीदारो की खोज शुरू की बाद मे यह पता चला कि अधिकाश मामलो म ये जमीदार जमीन के मालिक नही थे उस समय कपनी के कमचारियो को 'जमीदार' शब्द का वही अथ समझ मे आया जिस अथ म यह शब्द इग्लड म जमीन के मालिको के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

लेकिन यह परीकथा मूखतापूण है। उन दिनो के दस्तावेजो को देखने स यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि लाड कानवालिस और तत्कालीन राजनताओ के दिमाग में यह बात पूरी तरह स्पष्ट थी कि वे जमीदारो का एक नया वग पैदा कर रह है और उन्ह यह भी पता था कि ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य क्या है।

स्थाई जमीदारी बदोबस्त का उद्देश्य इग्लैड के ढग पर जमीदारो का एक ऐसा नया वग तैयार करना था जो अगरेजी राज के लिए सामाजिक आधार का काम करे। अगरेजो ने यह महसूस किया कि उनकी सख्या काफी कम है और उन्ह एक विशाल आबादी पर अपना आधिपत्य कायम रखना है इसलिए अपनी सत्ता बनाए रखन के लिए एक सामाजिक आधार तैयार करना अत्यत आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने एक ऐसा नया वग पैदा किया जो लूट खसोट का एक हिस्सा पाकर अपने निहित स्वाथ को अगरेजी राज के बने रहने के साथ जोड ले। उस ज्ञापन में जिसमें लाड कानवालिस न अपनी नीति की वकालत की थी यह साफ साफ कहा था कि वह इस बात के प्रति पूरी तरह सजग है कि वह एक नया वग पैदा कर रह हैं और ऐसे अधिकारो की स्थापना कर रहे हैं जिनका जमीदारों के पुराने अधिकारो से कोई सबध नही है। उन्होन कहा कि मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हू कि जमीदारो के अधिकार का दावा पूरा न होने पर जनता के हित के लिए उन्हे या अन्य लोगो को सपत्ति का अधिकार देना जरूरी होगा।' सर रिचाड टैंपुल ने अपनी पुस्तक 'मैन ऐंड इवेंट्स आफ माई टाइम इन इडिया' (पृष्ठ 30) में लिखा है कि

लाड कानवालिस का स्थाई बदोबस्त 'एक ऐसा उपाय था जो बगाल की जनता के बीच इग्लैंड की जमीदारी से सबधित सस्थाओ को स्वाभाविक बनाने मे कारगर साबित हुआ।' लाड विलियम बैंटिक ने, जो 1828 से 1835 तक भारत के गवनर जनरल थे, अपने कायकाल के दौरान एक भाषण में स्थाई बदोबस्त के बारे में बडे साफ साफ शब्दो में कहा कि यह क्राति को रोकने के लिए बचाव का काम करेगा

> यदि जबरदस्त जनविद्रोहो या क्राति का मुकाबला करने के लिए सुरक्षा की जरूरत है तो मैं यह कहना चाहूगा कि कई मामलो में और कई महत्वपूण बातो में असफल होने के बावजूद स्थाई बदोबस्त का कम से कम यह एक बहुत बडा फायदा है कि उसने धनी भूस्वामियो का एक विशाल सगठन खडा किया जो तहेदिल से यह चाहते है कि अगरेजी राज बना रहे और जिनका जनता पर पूरी तरह दबदबा कायम है। (8 नवबर 1829 को दिया गया लाड विलियम बैंटिक के भाषण का अश। यह ए० बी० कीथ की पुस्तक 'स्पीचेज ऐंड डाक्यूमेंटस आन इडियन पालिसी 1750-1921', खड 1, पृष्ठ 215 पर पुन प्रकाशित किया गया है।)

भारत में जमीदारी प्रथा के साथ ब्रिटिश शासन का गठबधन आज भी जारी है। यह मुख्यतया अगरेजो द्वारा अपना सामाजिक आधार तैयार करने के लिए किया गया था और यह आज ब्रिटिश शासनकाल को ऐसे विकट अतर्विरोधो में उलझा रहा है जो जमीदारी प्रथा के पतन के साथ साथ ब्रिटिश राज के पतन की भी तैयारी कर रहे है। जैसे जैसे भारत की जनता की आजादी की लडाई तेज होती जा रही है प्रत्येक सूबे में जमीदारो की लैंड होल्डस फेडरेशन, लैंड ओनर एसोसिएशन जैसी विभिन्न सस्थाए ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी अटूट निष्ठा की घोषणा करने में लगी हुई हैं। 1925 में बगाल लैंड ओनर एसोसिएशन के अध्यक्ष ने वाइसराय को जो अभिनदनपत्र दिया वह इस सदभ में एक अच्छा उदाहरण है। इसमें कहा गया था

> महामहिम इस बात का भरोसा कर सकते हैं कि जमीदार लोग सरकार का पूरा पूरा समथन करेंगे और पूरी निष्ठा के साथ सरकार की सहायता करेंगे।

1938 में पहला आल इडिया लैंड होल्डस कार्फ्रेंस (जमीदारो का सम्मेलन) आयोजित की गई जो सभी जमीदारो का मिलाजुला सगठन स्थापित करने की तैयारी के लिए आयोजित हुई थी। इस सम्मेलन की खास बात मेमनसिंह के महाराजा का अध्यक्षीय भाषण था जिसमे उन्होने घोषित किया था कि 'यदि हमें एक वग के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो हमारा कतव्य है कि हम सरकार के हाथ मजबूत करें।' 1935 के सविधान मे इस बात का विशेष प्रावधान किया गया कि प्रातीय विधानसभाओ और सघीय विधानसभाओ में जमीदारो को प्रतिनिधित्व दिया जाए।

लेकिन स्थाई बदोबस्त के सिलसिले मे हुई भूला को दोहराया नही गया। इसके बाद जमीदारी से सबधित जो बदोबस्त किए गए उन सबको 'अस्थाई' रखा गया अर्थात समय समय पर जमीन का नए सिरे से बदोबस्त होता था ताकि सरकार को अपनी जरूरत के मुताबिक मालगुजारी बढाते रहने का अवसर मिले।

स्थाई बदोबस्त के बाद जो वष शुरू हाते ह उनमे अनेक जिलो मे विकल्प के रूप म एक नया तरीका अपनाने की कोशिश की गई और इसकी शुरुआत मद्रास से की गई। इस बदोबस्त की खास बात यह थी कि सरकार को किसानो के साथ सीधे सीधे कोई बदोबस्त करना चाहिए जो स्थाई नही, अस्थाई हो अथात जिसमे हमेशा कुछ वर्षो के अतर पर सशोधन किया जा सके और इस प्रकार लूट क धन को किसी बिचौलिये मे बाटन की बजाय पूरा का पूरा स्वय हडप लिया जाए और स्थाई बदोबस्त की बुराइयो से बचा जाए। इस प्रणाली का रैयतवारी बदोबस्त नाम दिया गया और इसे सबसे पहले मद्रास मे शुरू किया गया। रैयतवारी बदोबस्त के साथ सर थामस मुनरो का नाम खासतौर से जुडा हुआ है क्योकि 1807 की जमीदारी प्रणाली के विरोध मे उन्होंने सबसे पहले मद्रास के गवनर की हसियत से 1820 मे मद्रास के अधिकतर हिस्सो के लिए सामान्य बदोबस्त के रूप म यह व्यवस्था जारी की थी। यह व्यवस्था बाद मे अन्य कई सूबो मे लागू की गई और आज यह व्यवस्था ब्रिटिश भारत के आधे से अधिक हिस्से मे लागू है।

हालाकि रैयतवारी बदोबस्त के बारे मे यह दलील दी गई थी कि यह भूमि व्यवस्था भारतीय सस्थाओ के काफी समान है परतु वास्तविकता यह थी कि यह बदोबस्त जमीदारी प्रथा से किसी भी मामले मे कम घातक नही था। इसका कारण यह था कि इस प्रणाली के अतगत किसानो से अलग अलग समझौता कर लिया जाता था और मालगुजारी का निर्धारण वास्तविक उपज की मात्रा के आधार पर न करके जमीन के क्षेत्रफल के आधार पर किया जाता था। असल म, मद्रास के बोड आफ रवेन्यू ने इस नई प्रथा का काफी दिना तक डटकर विरोध किया और उसने चाहा कि हर गाव की आबादी के साथ सामूहिक बदोबस्त किया जाए जिसे मौजावारी बदोबस्त कहा जाता था। लेकिन बोड का अपने इन प्रयासो म सफलता नही मिली। 1818 मे रैयतवारी व्यवस्था की आलोचना करत हुए उन्होंने जा ज्ञापन दिया वह देखने योग्य है

> हम देखते हैं कि विदेशी विजेताओ का एक छोटा सा गिरोह एक ऐस विशाल भूभाग पर अधिकार जमा लेता है जिसम रहने वाले लोग विभिन्न राष्ट्रीयताओ के है और जिनकी भाषा, रीति रिवाज तथा आदतें विजेताओ की आदता से एकदम भिन्न हैं। इन लागा का नए विजित क्षेत्रा के सही साधना का और यहा के बाशिन्दो की जमीन की काश्त की वास्तविक प्रकृति का कोई ज्ञान नहीं है। इन लागा ने विजय हासिल करन के साथ ही एक एसी ख्याली योजना चालनी शुरू कर दी जैसी यूरोप के अत्यत सभ्य देशो म भी मिलनी मुश्किल है।

इन्होंने जमीन का लगान निर्धारित किया और यह लगान प्रत्येक प्रांत, जिले या गांव के लिए नहीं बल्कि उनके आधिपत्य वाले प्रदेश में पड़ने वाले हर अलग अलग खेतों पर लगाया गया।

हम देखते हैं कि इस तथाकथित विकास के नाम पर अनजाने में ही उन्होंने पुराने बंधनों को समाप्त कर दिया और उन प्रथाओं को खत्म कर दिया जिन्होंने प्रत्येक हिंदू गांव की जनता को एक सूत्र में बांध रखा था। इसके साथ ही कृषि संबंधी कानून के जरिए उस जमीन पर से ग्रामीणों का अधिकार समाप्त कर दिया जिसपर सदियों से ग्रामीण समाज का सामूहिक स्वामित्व था। उन्होंने घोषणा की कि वे प्रत्येक खेत के लिए उनकी मांगें सीमित कर देंगे लेकिन वास्तविकता यह थी कि इस तरह की सीमा निर्धारित करके और एक ऐसी अधिकतम सीमा की घोषणा करके जिसे प्राप्त करना संभव नहीं था तथा अपने से पूर्ववर्ती मुस्लिम सरकार की तरह जनता पर मनमाने कर का निर्धारण करके उन्होंने किसानों को जबरदस्ती खेत जोतने के लिए मजबूर किया। यदि किसानों ने खेत जोतने से इंकार किया और गांव छोड़ने की कोशिश की तो वे उन्हें जबरन वापस घसीट लाए, उनकी मांगों को तब तक टालते रहे जब तक फसलें पककर तैयार नहीं हो गईं। इसके बाद जितना भी वे वसूल सकते थे, उतना उन्होंने वसूल लिया और बैलों तथा अनाज के दानों (बीज के लिए) के अलावा किसानों के पास कुछ भी नहीं छोड़ा। यह कहना ज्यादा सही होगा कि उन्होंने किसानों को उनके बैल और बीज के लिए थोड़ा अनाज देने का अनुग्रह किया। इस प्रकार उन्होंने इन किसानों को खेतीबारी के ऐसे काम में लगा दिया जिसमें वे सारी मेहनत इन विजेताओं के लिए करते रहें न कि अपने लिए। (मद्रास बोर्ड आफ रेवेन्यू की 5 जनवरी 1918 की रिपोर्ट का विवरण)

वहां के अधिकारियों ने सामूहिक समझौते के पक्ष में तर्क दिए और इस तथ्य को मान्यता देने की बात कही कि 'ये जमीनें युगों युगों से ग्रामीण समुदाय के सामूहिक स्वामित्व के अधीन हैं,' लेकिन उनके तर्कों को अनसुना कर दिया गया। लंदन के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने रैयतवारी प्रथा के पक्ष में फैसला लिया था उस समय के दस्तावेज की शब्दावली में कहें तो 'किसानों को निजी मिल्कियत का वरदान देने' का फैसला किया और उनके निर्देशों से लैस होकर थामस मुनरो लंदन से वापस आए ताकि वे इस प्रथा को सामान्य समझौते के रूप में लागू करें।

इस प्रकार ब्रिटिश भारत में जमीन की काश्तकारी को परंपरागत रूप में तीन मुख्य वर्गों में रखा गया। तीनों वर्गों की व्यवस्था में लोगों को जमीन पर अधिकार की प्राप्ति ब्रिटिश सरकार से होती थी क्योंकि उसका दावा था कि देश की समूची जमीन का सर्वोच्च स्वामित्व उसके पास है।

एक तो, बगाल, बिहार और उत्तरी मद्रास के कुछ हिस्सो मे स्थाई जमीदारी बदोबस्त था जिसके अतगत ब्रिटिश भारत की कुल 19 प्रतिशत जमीन पडती थी। दूसरा, अस्थाई जमीदारी बदोबस्त जिसम सयुक्त प्रात और मध्य प्रात का अधिकाश तथा बगाल, बबई और पजाब के कुछ हिस्से शामिल थे (यह या तो अलग अलग लोगो के साथ किया गया था या समूह के मालिको के साथ था जैसाकि पजाब मे आजमाए गए तथाकथित साझा बदोबस्त के मामले मे था)। इस व्यवस्था के अतगत 30 प्रतिशत क्षेत्र आता था। तीसरा, रैयतवारी बदोबस्त जिसके अतगत 51 प्रतिशत क्षेत्र था। यह बदोबस्त बबई, मद्रास क अधिकाश इलाको, बरार, सिंध, असम तथा अन्य हिस्सा म लागू था।

इससे यह नही समझना चाहिए कि ब्रिटिश भारत के केवल 49 प्रतिशत इलाका म ही जमीदारी प्रथा थी। व्यवहार म, जमीन को बटाई पर उठाकर तथा सूदखोर महाजना एव अन्य लोगो द्वारा असली किसान को उसकी जमीन से बेदखल करके और खुद उस हथिया कर रैयतवारी इलाको मे भी जमीदारी प्रथा बडे व्यापक रूप मे और बडी तजी से फैल गई थी। मुमकिन है कि इस प्रथा को शुरू करते समय असली किसान के साथ सीधे बदोबस्त करने का इरादा रहा हो पर अब तक इन सबधो मे काफी परिवतन हो चुका है। अनुमान लगाया गया है कि 'मद्रास और बबई मे 30 प्रतिशत से अधिक जमीन ऐसी है जिसे काश्तकार खुद नही जोतते है' (मुखर्जी 'लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', पृष्ठ 329), 1901 स 1921 के बीच मद्रास मे, गैरखेतिहर भूस्वामियो की सख्या, प्रति हजार 19 से बढकर 49 हो गई, जबकि खेतिहर भूस्वामियो की सख्या प्रति हजार 484 से घटकर 381 हो गई, खेतिहर काश्तकारा की सख्या प्रति हजार 151 से बढकर 225 हो गई। 1921 क लिए की गई पजाब की जनगणना रिपोट देखने से पता चलता है कि कृषीय भूमि से मिलने वाले लगान पर जीविका चलाने वालो की सख्या 1911 म 626 000 थी, जो 1921 म बढ कर 1,009,000 हो गई। 1891 से 1921 के बीच सयुक्त प्रात म ऐसे लोगा की सख्या 46 प्रतिशत तक बढ गई जिनकी आय का मुख्य स्रोत कृषीय लगान था। मध्य प्रात और बरार मे इसी अवधि म लगान प्राप्त करने वालो की सख्या मे 52 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

भारत भर म जमीदारी प्रथा का इस तरह फैलना और आधुनिक युग म इसका अधिकतम तजी से बढना इस बात का प्रतीक है कि किसानो को तजी से उनकी जमीन से बेदखल किया जा रहा है और छोटे बडे धनवान लोग उद्योग धधो मे पूजी लगान का कोई कारगर उपाय न देखकर खेती म पूजी लगाने की कोशिश म लगे हैं। काफी बडे बडे इलाको में शिकमी दर शिकमी एक शृखला तैयार हो गई है ('कुछ इलाकों म तो छोट छोटे जमीदारो की सख्या म जबरदस्त वृद्धि हुई है। कही कही तो जमीन जोतन वाल काश्तकार तथा जमीदार के बीच पचास या इससे भी अधिक मध्यस्थ स्वामी उत्पन्न किए गए हैं। साइमन रिपोट खड I, पृष्ठ 340)

इसका परिणाम यह हुआ है कि सरकार न किसानो की रक्षा के लिए काश्तकारो म

सबधित जो कानून बनाए हैं, वे केवल छोटे दर्जे के जमीदारा तक ही पहुचे है और वास्तविक किसानो की ज्यादातर सख्या यदि भूमिहीन मजदूर की स्थिति म नही तो ऐसी अधिकारहीन स्थिति मे तो पहुच ही गई है जिनका सरकार और बडे मुफ्तखोरो के अतिरिक्त ऐसे तमाम बिचौलियो द्वारा बेरहमी के साथ शोषण किया जा रहा है जो काम कुछ नही करत और किसानो की मेहनत पर ऐश करते है। यह प्रक्रिया जिसने जमीदारी प्रथा की असगतियो को चरम सीमा पर पहुचा दिया है, इस बात की अभिव्यक्ति है कि भारत मे खेती का सकट दिनोदिन गभीर होता जा रहा है।

4 किसानो की दरिद्रता

इन स्थितियो के नतीजे के रूप मे, भारत मे कृषि सबधो की जो तस्वीर हमारे सामन उभरती है वह बहुत उग्र और निरतर बढते हुए वर्गभेदो की तस्वीर है। 1931 की जनगणना के आकडे देखने से भारत की खेती मे वर्ग विभाजन के निम्न स्वरूप का पता चलता है

लगान वसूलने वाले ऐसे भूस्वामी जो खेती नही करते	4,150,000
खेती करने वाले भूस्वामी और दूसरो की जमीन जोतने वाले किसान	65 495,000
खेत मजदूर	33,523,000

इस वर्गीकरण का बहुत सीमित महत्व है क्योकि 'खेती करने वाले भूस्वामी और दूसरे की जमीन जोतने वाले किसान' के नाम से जो सामान्य वर्गीकरण किया गया है उससे जोतो के क्षेत्र पर कोई रोशनी नही पडती और फलस्वरूप बडे किसान मझोले किसान और गरीब किसान के बीच भेद नही हो पाता। खासतौर से इस वर्गीकरण से यह नही मालूम हो पाता कि उन किसानो की कितनी बडी सख्या है जिनके पास गैरआर्थिक जोतें है, जिनकी हालत मजदूरो जैसी हो गई है और जिन्हे मेहनत मजदूरी करके किसी तरह अपनी रोटी चलानी पडती है। व्यवहार मे छोटे शिकमी किसान और मजदूर म बडा मामूली फर्क रह जाता है। इसलिए किसानो की हालत की सही तस्वीर की जानकारी के लिए हमे जनगणना के आकडो के साथ साथ सरकारी और गैरसरकारी स्तर पर की गई क्षेत्रीय तथा स्थानीय जाच पडताल के नतीजो को भी देखना चाहिए।

वर्गीकरण की प्रणाली म परिवर्तनो के कारण जनगणना के पुराने आकडा के साथ तुलना भी नही हो पाती। 1921 की जनगणना से पता चलता है कि खेती से जीविका चलाने वालो की सख्या 22 करोड 10 लाख थी जो 1931 म 10 करोड 30 लाख हो गई। इनम परिवार के आश्रितो की सख्या भी शामिल है। इसलिए यह जरूरी है कि पुरानी जनगणना म 'वास्तविक कामगरो' की सख्या अर्थात 10 करोड को 1931 की सख्या अर्थात 10 करोड 30 लाख के साथ ध्यान म रखें ताकि मोटे तौर पर ही सही तुलना तो की

जा सके। वर्गीकरण की प्रणाली मे और परिवतन करके इस तुलना को भी नियमाः बना दिया गया है। बाद के वर्गीकरण मे उन सब लागो का अलग कर दिया गया जिनः खेती के पेशे को अन्य पशा का पूरक माना जाता था। इसके अलावा खेती के काम मः मदद देने वाली महिलाओ को, जो किसानो की सबधी थी और जिनकी सख्या 70 लाख होती थी घरेलू काम' के वग म डाल दिया गया। इस प्रकार खेती के काम म लग लागो की सख्या मे गिरावट आन का भ्रामक चित्र पेश किया गया (जैसाकि पृष्ठ 188 89 म पहले ही बताया जा चुका है)। फिर भी, बाद का परिवतन जो निष्कष निकाले जाते हैं उनके सामान्य प्रभाव को मजबूत ही करता है। इस आधार पर किए गए तुलनात्मक अध्ययन से निम्न नतीजे निकलते है

	1921 लाख मे	1931 लाख म
खेती न करने वाले जमीदार	37	41
किसान (भूस्वामी या काश्तकार)	746	655
खेत मजदूर	217	335

इन आकडो के जरिए खासतौर से दूसरे वग के सबध म काई विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन नही किया जा सकता। ऐसा क्यो नही सभव है, इसके कारण पहले ही बताए जा चुके हैं। लेकिन यहा, निस्सदेह एक सामान्य प्रवृत्ति का पता चलता है, जिस हम खेती न करने वाले जमीदारो की सख्या मे हुई वद्धि (1911 के आकडे के अनुसार यह सख्या 28 लाख थी) तथा भूमिहीन खेत मजदूरो की सख्या मे हुई जबरदस्त वृद्धि म दख सकते है। मद्रास के बारे मे और विस्तृत आकडे लिए जा सकते है

मद्रास मे कृषि के क्षेत्र मे वग विभाजन
(कृषीय आबादी का प्रति हजार)

	1901	1911	1921	1931
काम न करने वाले भूस्वामी	19	23	49	34
काम न करने वाले काश्तकार	1	4	28	16
काम करने वाले भूस्वामी	481	426	381	390
काम करने वाले काश्तकार	151	207	225	120
खेत मजदूर	345	340	317	429

(1901-21 के आकडे जनगणना रिपार्टो पर आधारित है और पी० पी० पिल्ल की पुस्तक इकानामिक कडीशस इन इडिया' के पृष्ठ 114 पर इनका उल्लेख है, 1931 के आकडे, मद्रास की 1931 की जनगणना रिपोट से लिए गए हैं।)

1901 से 1931 के तीस वर्षों मे ऐसे लोगो की सख्या बढकर ढाई गुनी हो गई है जो काम नही करते और लगान वसूलते है (प्रति हजार 20 से बढकर 50), खेती करने वाले भूस्वामियो या काश्तकारो की सख्या में एक चौथाई तक की कमी हुई है (प्रति हजार 625 से घटकर 510), भूमिहीन मजदूरो की सख्या जो पहले कुल आबादी का एक तिहाई थी, अब आबादी की लगभग आधी हो गई (प्रति हजार 345 से बढकर 429)।

बगाल में हमें निम्न स्थिति का पता चलता है (जनगणना परिणामो पर आधारित)

	1921	1931	परिवर्तन
खेती न करने वाले जमीदार या लगान वसूलने वाले	390 ‘62	633,834	+61%
खेती करने वाले भूस्वामी और काश्तकार	9,274,924	6,079,717	—50%
मजदूर	1,805,502	2,718 939	+34%

यहा भी इन आकडो से कोई तुलनात्मक अध्ययन नही किया जा सकता क्योकि वर्गीकरण मे परिवतन कर दिया गया है जिससे कुल कृषीय आबादी में 20 लाख तक की गिरावट का एक भ्रम पैदा होता है। लेकिन इससे खेती न करने वाले पर लगान वसूलने वाले लोगो और भूमिहीन खेत मजदूरो की सख्या में आनुपातिक वृद्धि की वास्तविकता सिद्ध होती है।

ऐसे लोगों की सख्या में जो लगान तो वसूलते हैं पर खेती नही करते, आश्चयजनक वृद्धि हुई है। देश के विभिन्न हिस्सो से मिले साक्ष्यो से इसकी पुष्टि होती है। पिछले अध्याय में इसका उल्लेख हो चुका है। इससे पता चलता है कि किसानो को कितने बडे पैमाने पर जमीन से बेदखल किया गया था।

भूमिहीन खेत मजदूरो की सख्या बढने की बात इससे भी अधिक महत्वपूण है। 1842 में सर थामस मुनरो ने जनगणना कमिश्नर की हैसियत से कहा कि भारत में एक भी भूमिहीन किसान नही है (यह निश्चित रूप से एक गलत बयान था लेकिन इससे सकेत मिलता है कि भूमिहीन किसानो की सख्या ऐसी नही मानी गई थी जिसका हिसाब रखने की जरूरत हो)। 1882 की जनगणना में अनुमान लगाया गया कि खेती के काम में 75 लाख 'भूमिहीन दिन मजदूर' लगे है। 1921 की जनगणना के समय खेत मजदूरो की सख्या 2 करोड 10 लाख थी जो खेती में लगे लोगो की आबादी का पाचवा हिस्सा थी। 1931 की जनगणना से पता चला कि यह सख्या 3 करोड 30 लाख हो गई जो खेती में लगे लोगो की आबादी का एक तिहाई है। तब से यह अनुमान लगाया गया है कि वतमान वास्तविक अनुपात लगभग आधा है[1] (जैसाकि 1938 में बगाल विधानसभा में काश्तकारी

कानून में सशोधन सबधी बहसो में देखा गया, मद्रास के बारे में ऊपर उद्धृत आकडे भी इसी बात का सकेत देते है) ।

इन खेत मजदूरो की मजदूरी के सदभ में निम्नाकित तालिका काफी महत्वपूर्ण है

	1842	1852	1862	1872	1911	1922
खेत मजदूर की दैनिक मजदूरी, बिना भोजन के (आनो में)	1	1½	2	3	4	4 से 6
चावल का मूल्य (सेर प्रति रुपया)	40	30	27	23	15	5

(आर० मुखर्जी लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', पृष्ठ 222)

इस प्रकार, इस दौरान खेत मजदूरो की नकद मजदूरी में जहा चार से लेकर छ गुनी वृद्धि हुई, वही चावल का मूल्य आठ गुना बढ गया। कहने का अथ यह है कि प्रगति' के इन 80 वर्षो के दौरान, वास्तविक मजदूरी में एक चौथाई से आधे तक की गिरावट आई है। 1934 के पचवार्षिक मजदूरी सर्वेक्षण (क्विनक्वेनियल वेज सर्वे) की रिपोट के अनुसार 1934 में औसत दैनिक मजदूरी 3 आना या 3 पैस थी। 326 गावो में दैनिक मजदूरी डेढ आना या डेढ पैस थी।

इस मापदड के और नीचे उतरने पर, यदि और नीचे आना सभव हो तो हम कृषि गमना बगार साहूकारो की गुलामी, मजदूरी से वचित भूमिहीन मजदूरो के उस अधकारपूर्ण क्षेत्र म पहुच जाते है जो भारत के सभी हिस्सो म मौजूद है, जिसके बारे म आकडे मौन है।

> भारत मे आर्थिक सीढी के सबसे निचल हिस्से म वे स्थाई खेतिहर मजदूर आते है जिन्हे शायद ही कभी नकद मजदूरी मिलती हो जिनकी स्थिति पूर्ण दास या आशिक दास की है। भारत के अनक भागो म यह प्रथा प्रचलित है कि जमीदार मालगुजार या साधारण कृषक लगभग हमेशा ही अपने नौकर को कज दे देता है जो उस कर्ज को चुकाने म असमथ हो जाता है और इस प्रकार नौकर पर चलती जाती मजबूरी हो जाती है जो पीढी दर पीढी चलती रहती है।
>
> बबई प्रेजीडेंसी म स्वाला और काली लोग है जो कमोबेश बधुआ गुलाम मजदूर

है। इनमें से अधिकाश के परिवार के सदस्य, पिछली कई पीढ़ियो से अपने मालिकों के परिवार की सेवा एकदम गुलाम की तरह कर रह है

मद्रास के दक्षिण पश्चिम म इझवा, चेरुमा, पुलेया और होलिया लोग है। ये सब वस्तुत गुलाम है। पूर्वी तटवर्ती प्रदेश मे जमीन पर सबसे मजबूत पकड ब्राह्मणो की है और खेतिहर मजदूरों का एक बडा हिस्सा पारिया लोगो का है जो प्राय पाडियाल होते है। पाडियाल खेतिहर गुलामो की एक जाति है जो कर्ज के कारण किसी जमीदार की पुश्तैनी गुलामी की जकड म फस गए— यह कर्ज कभी चुकता नही हो सका बल्कि एक पुश्त से दूसरे पुश्त पर चढता चला गया और देनदार जब अपनी जमीन किसी के हाथ बेचता था या मरता था तो पडियाल लोगो का भी जमीन के साथ ही नए मालिक के पास स्थानातरण हो जाता था

खेतिहर मजदूरो का सबसे निकृष्ट रूप बिहार के कामिया लोगो म दिखाई देता है। ये लोग बधुआ मजदूर ह जो लिए गए कर्ज पर चढ रहे सूद के बदले म अपने मालिक के लिए नीच से नीच कम करने के लिए मजबूर है। (आर० मुखर्जी 'लैंड प्राब्लम्स आफ इडिया', पष्ठ 225-29)

अनेक इलाको म ये खेतिहर गुलाम और साहूकारो के दास आदिवासी जातियो के लोग हैं। लेकिन जिसकी जमीन छिन गई है और जो कर्ज के कारण साहूकार की गुलामी म जकडा गया है या जो बटाई पर खेती करने के लिए मजबूर है उस किसान की हालत भी कानूनी खेतिहर गुलाम से कोई बहुत अच्छी नही है।

इनसे काफी हद तक मिलती जुलती स्थिति बागान मजदूरो की है। चाय, काफी और रबर के बडे बडे बागानो म 10 लाख से भी अधिक मजदूर काम करत है और इन बागानो मे से 90 प्रतिशत से अधिक पर यूरोपीय कपनियो का स्वामित्व है। इन मजदूरो की मेहनत से बागान मालिक काफी मुनाफा कमा रहे हैं। इन बागानो म देश भर से मजदूर भरती किए गए है। मजदूर इन बागानो म अपने परिवार के साथ रहत है जिनपर बागान मालिको का पूरा पूरा नियत्रण है। मजदूरो के परिवार क सदस्यो को अत्यत बुनियादी नागरिक अधिकार भी प्राप्त नही हैं। पुरुषो, महिलाओ और बच्चो के श्रम का अत्यत कम मूल्य पर शोषण किया जाता है। हालाकि हाल के वर्षो म कठोर श्रम वाल अनुबध विधिवत समाप्त कर दिए गए है और 1930 की ह्विटले रिपोर्ट के बाद कई कानून लागू किए गए है लेकिन अब भी यहा काम करने वाल मजदूर बडे कारगर ढग से अपन मालिको की मरजी से बधे हैं। इन मजदूरो का काफी लबी अवधि के लिए यहा तक कि जीवन भर के लिए मालिको की गुलामी करनी पडती है।

किसानो को कगाल बनाए जाने का पता भूमिहीन मजदूरो की सख्या म निरतर वृद्धि से चलता है। इनकी सख्या कृषि मे लगी कुल आबादी का एक तिहाई या कही कही ½ तक है। दरअस्ल गैरआर्थिक जोतो के मालिक किसानो, शिकमी देने वाले काश्तकारो और आरक्षित काश्तकारो के बहुमत की स्थिति मे भी खेतिहर मजदूरो से बहुत फक नही है और दोनो के बीच का भेद बहुत अस्पष्ट है। 1930 मे मद्रास बैंकिंग इक्वायरी रिपोट ने लिखा

> खेता मे काम करने वाले नौकरो और शिकमी किसानो के बीच कोई स्पष्ट रेखा खीचना हमारे लिए काफी कठिन है। शिकमी की प्रथा म ऐसा कम ही होता है कि किराए का भुगतान मुद्रा मे किया जाता हो। यह प्रथा आमतौर से बटाई के आधार पर चलती है। जमीदार को फसल का 40 से 60 प्रतिशत और कही कही 80 प्रतिशत हिस्सा मिलता है तथा शेष अश काश्तकार प्राप्त करता है। आमतौर से काश्तकार साल दर साल इन्ही शर्तो पर कठोर परिश्रम करता रहता है, जमीदार से कज लेता रहता है और जमीदार ही उसे बीज तथा हल बैल देता है। दूसरी तरफ, खेत पर काम करने वाला नौकर जमीदार से बीज और हल बैल प्राप्त करता है, छोटी मोटी जरूरता के लिए समय समय पर उस जमीदार से अग्रिम धनराशि मिल जाती है और फसल तैयार होने पर उसे फसल का कुछ हिस्सा मिल जाता है। कुछ मामलो म इन नौकरा को अनाज की एक निश्चित मात्रा के साथ साथ थोडी नकद राशि भी मिल सकती है। मुमकिन है कि कोई काश्तकार अपने बीज और हल बैल से खेती करे लेकिन व्यवहार म इन दोनो के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नही है, और एसी हालत मे जब जमीदार अनुपस्थित हो तो यह हमेशा स्पष्ट नही रहता है कि वास्तविक किसान शिकमी काश्तकार है या खेती पर काम करन वाला नौकर।

1927 म एन० एम० जोशी ने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के समक्ष अपना यह अनुमान प्रस्तुत किया था कि दश भर म खेतिहर मजदूरा की सख्या ढाई करोड है और 5 करोड लोग एसे है जो आशिक तौर पर खेत मजदूर है। इस प्रकार बहुसख्यक भारतीय किसाना की स्थिति छोटे किसान की बजाय ग्रामीण सवहारा के ज्यादा करीब है।

साम्राज्यवादिया क आत्मसतोष का महत्वपूण दस्तावज 1930 की साइमन कमीशन रिपोट न दो वष पूव की कृषि आयोग रिपोट को दुहरात हुए एलान किया था

> आज भी सही अर्थों म खेतिहर वही व्यक्ति है जिसके पास एक जोडा बैल है और जो अपने परिवार की मदद से तथा कभी कभी किराए पर मजदूर लगाकर कुछ एकड जमीन जोत लेता है। (साइमन रिपोट खड 1, पृष्ठ 18)

मौजूदा सच्चाइयो के सदभ मे यह तस्वीर कितनी काल्पनिक है, यह यहा प्रस्तुत तथ्यो से देखा जा सकता है। 1927 मे कृषि आयोग के समक्ष दिए गए साक्ष्य म, बबई के एक जिले का विश्लेषण दिया गया था। इस जिले का क्षेत्रफल 10 लाख एकड था और इसे 'अन्य अनेक जिलो की तुलना मे अत्यधिक खुशहाल' घोषित किया गया था। 1917 से 1922 के महज पाच वर्षों के जोतो के अनुपात म जो परिवतन आया वह इस प्रकार था (खड II, साक्ष्य का प्रथम भाग, पृष्ठ 292)

जोतों की सख्या

जोत एकड मे	1917	1922	कमी या वृद्धि (प्रतिशत)
5 से कम	6,?72	6 446	+2 6
5 से 15	17,909	19,130	+6 8
15 से 25	11,908	12,018	+0 9
25 से 100	15,532	15,020	—3 3
100 मे 500	1,234	1,117	—9 5
500 से अधिक	20	19	—5 0

गवाह ने, जो सरकारी अधिकारी था, टिप्पणी की

> इन आकडा को, जो केवल पाच वर्षों की अवधि के है देखने से मुझे ऐसा लगता है कि 15 एकड तक की जोता म खेती करने वाले किसाना की सख्या म उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। लेकिन 15 एकड का यह क्षेत्र कुछ जमीनो को छोडकर ऐसा क्षेत्र नही है जिसम दो बैला से खेती करने पर कोई फायदा हो 25-100 एकड की जोतो म भी गिरावट आई है जिसका अथ यह है कि अपेक्षाकृत समृद्ध खेतिहर वग की जो थोडी पूजी के साथ अपने को स्थापित करने म भाग्यशाली साबित हो, सख्या मे कमी आई है।

इस प्रकार 1922 तक कुल खेतिहर जोतदारो का आधा हिस्सा (भूमिहीन मजदूरा की विशाल सख्या को छोडकर) ऐसा था जिसके पास इस तरह की जोतें नही थी जिसमे वह दो बैलो से खेती करके लाभ कमा सके। इनकी सख्या तजी से बढ रही थी।

किसानो की वास्तविक स्थिति के किसी भी सर्वेक्षण से जोता के आकार के महत्वपूण मसले के बारे म जानकारी मिल सकती है। इस सदभ मे इस अध्याय के दूसरे भाग म कुछ सूचनाए दी गई है। पुरानी जनगणना की शब्दावली मे 'साधारण किसानो' (चाह वे खेत के मालिक हो या काश्तकार) और भूमिहीन मजदूरो के बीच जो भेद किया गया है उससे वास्तविक स्थिति का बहुत कम सकेत मिलता है। सही स्थिति का पता उस भेद भाव से चल सकता है जो भूमिहीन मजदूरो की विशाल सख्या और गैरआर्थिक जोतो वाले

किसानो तथा आर्थिक जोतो वाले किसाना की भी छोटी सख्या के बीच किया जाता है। इस छोटी सख्या को भले ही 'अपेक्षाकृत समृद्ध खेतिहर' और लगान वसूलने वाल गर खेतिहर किसानो के वग मे क्यो न रखा जाए।

बगाल मालगुजारी आयोग (बगाल लैंड रेवेन्यू कमीशन, फ्लाउड कमीशन) के सामने जो गवाहिया पेश हुई थी उनमे आमतौर पर यह विचार प्रकट किया गया था कि एक औसत परिवार के लिए अपना पूरा खच चलाने के लिए कम से कम पाच एकड जमीन की जरूरत है। लेकिन आयोग को जाच के दौरान पता चला कि बगाल के लगभग तीन चौथाई किसान परिवारा के पास पाच एकड से कम जमीन है और 57 2 प्रतिशत जोतो का क्षत्र तीन एकड से भी कम है।

डा० हैराल्ड एच० मान द्वारा किए गए महत्त्वपूण सर्वेक्षण 'लाइफ एड लेबर इन ए दक्कन विलेज' से इस स्थिति पर और अधिक रोशनी पडती है। डा० मान बवइ म कृषि निदशक थे और 1914-15 मे उन्हाने दक्कन के एक गाव की स्थितिया की व्यापक तौर पर जाच पडताल की। यह जाच पडताल वास्तविक स्थितिया, खेती, फसल जमीन की जोतो ऋण और परिवार के आय व्यय के बारे मे की गई विशुद्ध वैज्ञानिक जाच थी जो दक्कन के एक 'गैर उपजाऊ' गाव को सामने रखकर की गई थी। यह पहला मौका था जब इतन व्यापक और सर्वांगीण रूप से कोई जाच की गई हो। इसके परिणाम बेहद चौंका देने वा थे (खुद लेखक के शब्दो म ये परिणाम अप्रत्याशित अत्यधिक निराशाजनक थ)। य परिणाम इतने आश्चयजनक थ कि इनकी आलोचना की गई और कहा गया कि जिस गाव का सर्वेक्षण किया गया है उसके नतीजो को सवमान्य नही माना जा सकता। इस खाज की वैज्ञानिकता की आलोचना सभव नही थी। इसके वाद डा० मान ने अपनी जाच क लि एक दूसरा गाव लिया और 1921 म उन्होन इस गाव का जो अध्ययन प्रकाशित किया उसम भी लगभग वही निष्कष निकले और इस वार के निष्कष पहल की अपक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूण थे तब से देश के अनेक हिस्सा मे इस तरह के सर्वेक्षण किए गए हैं जिनस आमतौर पर इन निष्कर्षों की सत्यता की पुष्टि हुई है।

जिस पहल गाव का उन्होंने सर्वेक्षण किया था उसम देखा गया कि 81 प्रतिशत जातें ऐसा थी जिनके द्वारा अत्यत अनुकूल परिस्थितिया म भी उनके मालिका का खच नहीं चल सकता था। 156 जोतो के विभाजन म निम्न तस्वीर उभर कर सामन आई

30 एकड म अधिक	2
20-30 एकड	9
10-20 एकड	18
5 10 एकड	34
1 5 एकड	71
1 एकड से कम	22

भारतीय रयत के जीवनस्तर के अनुकूल तथा पश्चिमी दक्कन के इस गांव में अधिकांशतः उपलब्ध अच्छी सूखी जमीन की आर्थिक जोत लगभग 10 से 15 एकड़ होगी, कीटिंग के इस अनुमान का अनुसरण करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यदि प्रत्येक जोत को एक ही खंड में रखा जाए तो भी यह जाहिर है कि एक बड़े हिस्से (81 प्रतिशत) का क्षेत्र इससे कम है।' रैयत के जीवनस्तर के न्यूनतम आर्थिक राशि के अनुमान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया। इस जीवनस्तर के अंतर्गत शामिल खाने और पहनने की चीजें घटिया से घटिया हैं और कृत्रिम प्रकाश जैसे आराम की भी गुंजाइश नहीं है। कुल 103 परिवारों की जांच से वह इस नतीजे पर पहुंचे कि 103 में से केवल 8 परिवार ऐसे थे जो अपनी जोतों के आधार पर 'सुदृढ़ आर्थिक स्थिति' में थे, उन परिवारों की संख्या 28 थी जो अपनी जमीन होने के बावजूद बाहर काम करके अपनी स्थिति ठीक बनाए रख सके थे, लेकिन अपनी जोत से पूरी पूरी आय करने के साथ साथ बाहर भी काम करने के बावजूद 'डावांडोल' आर्थिक स्थितिवाले परिवारों की संख्या 67 थी अर्थात ऐसे परिवारों की संख्या 65 प्रतिशत थी। फिर भी जहां तक इस पहले गांव की बात है, इसके पड़ोस में हथियार बनाने का एक बड़ा कारखाना था जिसमें कुल आबादी के 30 प्रतिशत हिस्से को रोजगार मिल जाता था और इस सीमा तक स्थितियां कोई प्रातिनिधिक स्थितियां नहीं थीं।

दूसरे गांव में, जिसके आसपास कोई कारखाना या औद्योगिक केंद्र नहीं था, 85 प्रतिशत परिवारों की आर्थिक स्थिति काफी 'डावांडोल' पाई गई। इस गांव में जहां न्यूनतम आर्थिक जोत लगभग 20 एकड़ थी, 77 प्रतिशत जोतें इस स्तर से नीचे थीं। यहां के 147 परिवारों में, पहले वर्ग में 10 परिवार आते थे जो अपनी जोतों के आधार पर अपनी 'सुदृढ़ आर्थिक स्थिति' बनाए रख सकते थे, दूसरे वर्ग में 12 व्यक्ति थे जो अपनी जमीन के साथ साथ बाहर काम करके अपनी स्थिति ठीक रख सकते थे और 125 व्यक्ति अथवा 85 प्रतिशत लोग ऐसे थे जो अपनी जमीन से पूरी पूरी आय करने के अलावा बाहर भी काम करते थे और फिर भी उनकी आर्थिक स्थिति 'डावांडोल' थी। इस अंतिम वर्ग में कुल 732 लोगों की आबादी में से 664 व्यक्ति आते थे, अर्थात आबादी के 91 प्रतिशत लोग इस 'डावांडोल' आर्थिक स्थिति में थे।

सर्वाधिक न्यूनतम स्तर से भी नीचे रहने वाली यह विशाल संख्या किस पर अपना जीवन निर्वाह कर पाती है? वे अपना काम नहीं चला सकते। नतीजा यह होता है कि वे अनिवार्य रूप से कर्ज के गड्ढे में दिनोदिन डूबते जाते हैं, अपनी जमीन से हाथ धो बैठते हैं और भूमिहीन खेत मजदूरों की फौज का एक हिस्सा बन जाते हैं। जांच से पता चला कि गांवों पर कर्ज की जबरदस्त पकड़ है जो दिनोदिन सख्त होती जा रही है। सर्वेक्षण किए गए पहले गांव की कुल वार्षिक आय 8,338 रुपये थी जबकि कर्ज की राशि 2,515 रुपये थी। इस समय गांवों पर कर्ज का असह्य बोझ है जो गांव के कुल पूंजीगत मूल्य का 12 प्रतिशत है और जमीन से जितनी आय होती है उसका 24.5 प्रतिशत ऋण के भुगतान

मे जाता है' (पृष्ठ 152)। इस सर्वेक्षण से पता चला कि जमीन से कुल आय 15,807 रुपए की हुई जबकि ऋण की भुगतान के रूप मे 6755 रुपये अदा किए गए। अर्थात जमीन से हुई आय का $\frac{2}{5}$ भाग सूदखोर महाजन के पास गया।

अपने सर्वेक्षण के अत मे डा० मान ने सामान्य निष्कर्ष के रूप मे लिखा

> ऐसा लगता है कि यदि हमारी खोजबीन और गणनाए गाव के जीवन की कोई सही तस्वीर पेश करती है तो औसतन भोजन मिलता है, कर्ज के बोझ से वे पहले से ज्यादा दब जाते है और वर्तमान आबादी तथा खेती के वर्तमान साधनो से वे वास्तविक आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त करने मे प्रत्यक्षत पहले से भी कम समर्थ है।

5 कर्ज का बोझ

जैसे जैसे किसान की कठिनाइया बढती जाती हैं, वैसे वैसे उसके ऊपर कर्ज का बोझ भी ज्यादा बढता जाता है और उसकी कठिनाइयो मे वृद्धि होती जाती है। इस तरह वह एक दुश्चक्र मे फस जाता है जिसकी अतिम परिणति यह होती है कि वह अपनी जमीन से बेदखल कर दिया जाता है। इस प्रकार कर्ज के बोझ का बढते जाना, और इससे जुडी प्रक्रियाओ यानी गैरखेतिहरो के हाथो जमीन का गिरवी रखने, बेचने या हस्तातरण करने का सिलसिला ही वह प्रमुख मापदड है जिससे इस कृषि के क्षेत्र मे व्याप्त सकट को नाप सकते है। साइमन कमीशन रिपोर्ट (खड 1, पृष्ठ 16) के अनुसार 'किसानो की विशाल सख्या सूदखोर से मिले ऋण पर गुजारा करती है।'

ब्रिटिश राज के साथ साथ किसानो पर कर्ज का बोझ भी बढता गया है और यह प्रश्न एक बहुत आवश्यक और व्यापक बन गया है यह बात सभी लोग स्वीकार करते हैं। 1911 मे सर एडवर्ड मैक्लागन ने लिखा

> बहुत पहले से यह माना जाता है कि कर्ज के बोझ से दबा होना भारत के लिए कोई नई स्थिति नही है। मुनरो, एलफिन्स्टन और अन्य लोगो ने अपनी पुस्तको मे स्पष्ट कर दिया है कि हमारे शासन की शुरुआत से पहले भी काफी लोग कर्ज से दबे थे। लेकिन यह भी माना गया है कि हमारे शासनकाल मे और खासतौर से पिछले 50 वर्षों मे लोगो के कर्जदार होने की दर मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। समय समय पर मिली रिपोर्टों से वार्षिक बिक्री तथा गिरवी रखने से सबधित आकडो को देखने से साफ पता चलता है कि पिछले 50 वर्षों मे कर्ज की राशि मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। (1911 मे सर एडवर्ड मैकलागन का कथन जो सेट्रल बैंकिंग इक्वायरी कमेटी की 1931 की रिपोर्ट मे पृष्ठ 55 पर उद्धृत है।)

1880 में ही अकाल आयोग ने कहा था

> जिन लोगों के पास जमीन है उनका एक तिहाई हिस्सा गंभीर और विकट रूप से कर्ज में डूबा हुआ है और कम से कम इतनी ही संख्या में अन्य लोग कर्ज के बोझ में लदे हैं हालांकि उनमें इस कर्ज से उबरने की क्षमता भी है।

तब से कर्ज का यह बोझ तेजी से बढ़ा है। 1928 में कृषि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा

> इसकी काफी अधिक संभावना है कि कुल ग्रामीण ऋण में वर्तमान शताब्दी में ही वृद्धि हुई है। क्या जनता की बढ़ती हुई परिसंपत्ति और ऋण का अनुपात एक ही स्तर पर बना हुआ है ? और पुराने किसानों की तुलना में समृद्ध किसानों पर यह बोझ भारी है या हल्का ? इन सवालों का, उपलब्ध प्रमाणों से कोई जवाब नहीं मिलता। (रिपोर्ट आफ दि ऐग्रीकल्चरल कमीशन, 1928, पृष्ठ 441)

कर्ज में वृद्धि के इस तथ्य की पुष्टि 1931 में सेंट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी से होती है

> कृषीय ऋणग्रस्तता के परिमाण में वृद्धि हुई है या कमी, इस प्रश्न पर आम धारणा यही है कि पिछली सदी के दौरान इसके परिमाण में वृद्धि हुई है। (रिपोर्ट आफ दि सेंट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी, 1931, पृष्ठ 55)

उस समय (1931) ग्रामीण ऋण के बारे में समिति ने अनुमान लगाया था कि यह 900 करोड़ रुपये या 67 करोड़ 50 लाख पौंड था। लेकिन उसके बाद से, आर्थिक संकट पैदा होने और कृषीय दाम गिरने से ऋण की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई और हाल के अनुमानों से पता चलता है कि यह राशि बढ़कर दुगनी हो गई। (पृष्ठ 262 देखें)

ब्रिटिश शासन के दौरान और खासतौर से आधुनिक काल में ऋणग्रस्तता के इतनी तेजी से बढ़ने के क्या कारण हैं ? समस्या को गंभीरता से न लेने वाले लेखकों तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के समर्थक लेखक आज भी इस ऋणग्रस्तता को किसानों की 'अदूरदर्शिता' और फिजूलखर्ची' का नतीजा साबित करने की कोशिश कर रहे हैं। इसके साथ ही उनका कहना है कि शादी ब्याह, मृत्यु के बाद का क्रिया कर्म इस तरह के दकियानूस सामाजिक समारोहों या मुकदमेबाजी पर पैसा खर्च करने की आदत ही उनकी ऋणग्रस्तता की जड़ है। लेकिन ठोस यथार्थों से इस विश्लेषण की पुष्टि नहीं होती। पहले ही 1875 में दक्कन रायट्स कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था

> शादी विवाह तथा अन्य समारोहो पर होने वाले खच को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया गया है इन अवसरा पर किया जान वाला खच उसके (रैयत के) कुल खच मे कुछ महत्वपूण जरूर होता है लेकिन उसकी कजदारी का यही कारण है, ऐसा मुझे बहुत कम लगता है।

बगाल की प्रातीय बैंकिंग जाच समिति का कहना है कि 'गावो की हालत की गहरी जाच पडताल' के फलस्वरूप, यह नतीजा निकलता है कि उपर्युक्त आरोप गलत है। उदाहरण के लिए बोगरा जिले के करीमपुर गाव मे, जहा 52 परिवार ऋण के बोझ से दबे थे, 1928 29 के एक वष के दौरान, जिन कामा के लिए कज दिया गया वे इस प्रकार थे

	रुपयों मे
पुराने कर्जों की अदायगी	389
मवेशियो की खरीद सहित पूजी के और स्थाई विकास के लिए	1,087
जमीन की मालगुजारी और लगान के लिए	573
खेती के लिए	435
सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए	150
मुकदमेबाजी के लिए	15
अन्य कार्यों के लिए	66
कुल योग	2,715

सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए या मुकदमेबाजी के लिए कज की जो राशि ली गई वह कुल राशि का केवल 16वा भाग थी। केवल दूसरे मद की राशि ऐसी है जिसे किसी अर्थ मे उत्पादक ऋण कहा जा सकता है। यह कुल राशि का 2/5 है और इससे पता चलता है कि किसाना के पास पूजी की कमी ह। शेष राशि जा कुल राशि की आधी से अधिक है इसलिए ली गई ताकि जमीन की मालगुजारी, लगान, कर्जों की अदायगी और मौजूदा खेती की अत्यावश्यक जरूरता का पूरा किया जा सके।

1933-34 मे बगाल म, दक्षिण पश्चिम बीरभूम मे एक जाच की गई और उसम भी इसी तरह के नतीजे सामने आए। यहा 6 गावा के 426 परिवारा म से 234 परिवार अथात 55 प्रतिशत परिवार कज स ग्रस्त पाए गए, इनपर 53,799 रुपये का कज था अर्थात औसतन प्रति परिवार 230 रुपये (17 पौंड 5 शिलिंग) का कज था। कज लेने के निम्न कारण ज्ञात हुए

> कज की मुख्य मद, जो मोटे तौर पर एक चौथाई है, लगान के भुगतान के लिए ली गई, पुराने कज और लगान की मिलीजुली राशि कुल राशि की एक तिहाई है, पूजी क विकास के लिए कुल राशि का एक चौथाई से भी कम अश खच किया गया, सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए निधारित राशि दूसरे उदाहरण की तुलना मे [illegible] फिर भी

	रुपया	प्रतिशत
लगान देने के लिए	13,007	24 2
पूंजी के विकास के लिए	12,736	23 7
सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए	12 021	22 3
पुराने कर्जों की अदायगी के लिए	4,503	8 4
खेती मे होने वाले खर्च के लिए	2,423	4 5
मुकदमेबाजी के लिए	708	1 3
अन्य कार्यों के लिए	8,401	15 6

(एस० बोस 'ए सर्वे आफ रूरल इनडेटनेस इन साउथ वेस्ट बीरभूम, बगाल, इन 1933-34,' इंडियन जर्नल आफ स्टैटिस्टिक्स, सितंबर 1937)
यह पाचवें हिस्से मे थोडी ही अधिक रही। कर्ज का मुख्य अश आर्थिक जरूरतो के लिए लगाया गया, इसका महज एक मामूली हिस्सा उत्पादक ऋण है।

इस प्रकार भारतीय किसानो के ऋण लेने के आर्थिक कारण है और जमीन की मालगुजारी तथा लगान के बोझ के जरिए होने वाले उनके शोषण से इनका गहरा सबध है। उपर्युक्त समिति के शब्दो मे 'ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण सामान्य तौर पर कृषक वर्ग की गरीबी है।' बबई के राजस्व विभाग के एक अधिकारी सर टी० होप ने 1879 मे दक्कन के खेतिहरो के लिए राहत बिल (दक्कन ऐग्रीकल्चररिस्ट्स रिलीफ बिल) पेश करते हुए अपने भाषण मे कहा था 'किसानो पर लदे हुए कर्ज के बोझ का एक कारण हमारी मालगुजारी व्यवस्था भी है।' दक्कन खेतिहर राहत ऐक्ट की कार्यप्रणाली के बारे मे 1892 के आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा कि 'यह निर्विवाद है कि दक्कन के किसानो के नए नए कर्जों से लदने मे वर्तमान प्रणाली की सख्ती एक मुख्य कारण है।' एक ऐसी प्रणाली जो फसल के अच्छी या बुरी होने अथवा आर्थिक परिवर्तनो को ध्यान मे रखे बिना 30 वर्षों के लिए एक जैसी मालगुजारी की रकम निर्धारित कर रही हो, उससे भले ही मालगुजारी वसूलने वाले अधिकारी को या अपना बजट तैयार करने वाले सरकारी राजनेता को सहूलियत हो पर जहा तक देश की जनता का सवाल है, जिसे अपनी बेहद अनिश्चित आय मे से मालगुजारी के रूप मे एक निश्चित रकम दे देनी है, वह फसल न होने वाले वर्षों मे बरबाद हो जाती है और उसे अनिवार्यत सूदखोर महाजन की गिरफ्त मे आना पडता है। अत्यत बुरी स्थितियो मे मालगुजारी मे माफी दे देने या अनिच्छापूर्वक वसूली को स्थगित कर देने से यह प्रक्रिया नही रुक सकती। उपर्युक्त आयोग ने पूना जिले के अनेक गावों से इस बात के प्रमाण इकट्ठे किए कि जमीन की मालगुजारी का किस प्रकार भुगतान होता है। गावों से मिले जवाबो का यहा सार प्रस्तुत किया जा रहा है जो स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है

वैवड मालगुजारी देने के लिए किसान को कर्ज लेना पडता है।

शादी विवाह तथा अन्य समारोहो पर होने वा
महत्व दिया गया है इन अवसरा पर किय
(रैयत के) कुल खर्च मे कुछ महत्वपूण जरू
का यही कारण है ऐसा मुझे बहुत कम लगत

बगाल की प्रातीय बैंकिंग जाच समिति का कहना
पडताल' के फलस्वरूप, यह नतीजा निकलता है
के लिए बौगरा जिले के करीमपुर गाव म, जह
1928 29 के एक वष के दौरान, जिन कामो के

पुराने कर्जों की अदायगी	
मवेशियो की खरीद सहित पूजी के और स्थाई	
जमीन की मालगुजारी और लगान के लिए	
खेती के लिए	
सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए	
मुकदमेबाजी के लिए	
अन्य कार्यों के लिए	
कुल योग	

सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिए या मुक
वह कुल राशि का केवल 16वा भाग थी। केव
अथ मे उत्पादक ऋण कहा जा सकता है। यह मु
है कि किसानो के पास पूजी की कमी है। शेष रा
इसलिए ली गई ताकि जमीन की मालगुजारी, ल
की अत्यावश्यक जरूरतो को पूरा किया जा सके
1933-34 मे बगाल मे, दक्षिण पश्चिम वीरभूम
तरह के नतीजे सामने आए। यहा 6 गावो के 426
प्रतिशत परिवार कज से ग्रस्त पाए गए, इनपर 53
प्रति परिवार 230 रुपय (17 पौड 5 शिलिंग) क
ज्ञात हुए

कज की मुख्य मद जो मोट तौर पर एक चौथाई है
पुराने कर्ज और लगान की मिलीजुली राशि कुल र
के लिए कुल राशि का एक चौथाई से भी कम अ
धार्मिक कार्यों के लिए निर्धारित राशि दूसरे उदाह

इसका कारण यह है कि महाजन की मदद के बिना न केवल मालगुजारी ही नहीं जमा हो सकती बल्कि बहुधा महाजन सूद पर रुपया देने के अलावा अनाज की खरीद और बिक्री भी करता है। फसल कटने के समय किसानों की उपज पर उसका एक तरह से एकाधिकार रहता है, प्राय वह किसानों को बुआई के समय किसानों को बीज और हल बैल आदि देता है। किसानों के पास इतनी योग्यता तो होती नहीं कि वे महाजन का बहीखाता देख कर इस बात की जाच करें कि उन्होंने कितना पैसा दिया या लिया और कितना लिखा गया है इसलिए वे दिन ब दिन महाजन के चगुल म फसते जाते हैं। इस प्रकार सूदखोर महाजन गाव का तानाशाह बन जाता है। जैसे जैसे किसानों की जमीन उसके हाथ मे आती जाती है वैसे वैसे वह यह प्रक्रिया और आगे बढाता जाता है। फिर किसान खेत मजदूर बन जाते है या उस महाजन के खेतों को बटाई पर जोतने लगते है और जो कुछ वे पैदा करते है उसका एक बडा हिस्सा वे लगान और सूद के रूप म महाजन को देते जाते है। फिर सूदखोर महाजन गाव की अर्थव्यवस्था मे छोटे किसानो को अपना मजदूर बना लेता है। सभव है कि शुरू शुरू म किसानो का गुस्सा महाजन पर हो क्योकि प्रत्यक्ष रूप मे वही सारे अत्याचार और दुखदर्द का कारण मालूम देता है। शातिपूर्ण और सदियो से तकलीफ उठाने वाले भारतीय किसानो के द्वारा भी महाजनो की हत्याओ की जो छुटपुट खबरें आती है उनसे इस प्रक्रिया का पता चलता है लेकिन जल्दी ही उन किसानो को यह पता चल जाता है कि इन महाजनो के पीछे ब्रिटिश राज की समूची शक्ति काम कर रही है। सूदखोर महाजन, महाजनी पूजी द्वारा किए जा रहे शोषण के समूचे रचनातत्र का एक ऐसा पुर्जा है जो एकदम उस जगह काम करता है जहा उत्पादन होता है।

जैसे जैसे साहूकार की ज्यादतिया बढती जाती है, सरकार सामान्य तौर पर शोषण के हितों को ध्यान म रखकर ही, कुछ ऐसे उपाय करने की कोशिशे कर रही है जिससे महाजन इस सोने के अडे देने वाली मुर्गी यानी किसान वर्ग को खत्म ही न कर दे। सूद की दर को कम करने के लिए और किसानो के हाथ से जमीन का निकलना रोकने के लिए सरकार ने विशेष कानूनो का अबार लगा दिया है। लेकिन उसे स्वय यह मानना पडा है कि ये कानून असफल साबित हुए है (ग्रामीण ऋणग्रस्तता को रोकने के इरादे से बनाए गए कानूनो का जो अनुभव है उसके सदर्भ म कृषि आयोग की रिपोर्ट का 'कानून की विफलता' पृष्ठ 436-37 अध्याय देखें)। इसका प्रमाण यह है कि किसानो पर कर्ज का बोझ दिनादिन बढता जा रहा है और इस बढोतरी पर कोई अकुश नही है।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान कर्जदारी और इसकी वृद्धि की समूची समस्या की काफी विस्तार से एम० एल० डार्लिंग ने अपनी पुस्तक 'दि पजाब पीजेंट इन प्रास्परिटी ऐंड डेट' मे छानबीन की है। यह पुस्तक सबसे पहले 1925 म प्रकाशित हुई थी। अपनी बाद की पुस्तका 'रस्टिकस लोक्विटर' (1930) और 'विजडम ऐंड वेस्ट इन ए पजाब विलेज' (1934) म भी उन्होंने इस समस्या का काफी विवेचन किया है। इसम हालाकि अमतौर पर लेखक का दृष्टिकोण पक्षसमर्थक है फिर भी इससे तथ्यो की जानकारी तो हो ही जाती

पिपलगाव	अच्छी फसल के दिना म भी थान्य कज लना पडता है।
देउलगाव	कुछ मामलो मे कज लेना पडता ह।
कनगाव	मालगुजारी की वसूली के समय शायद ही कभी फसल पककर तयार होती हो इसलिए उसे कज लना पडता है।
नदगाव	यदि बारिश ठीक से नही हुई तो खडी ज्वार की जमानत पर उस ऋण लेना पडता है।
ढोड	खडी फसलो की जमानत पर कर्ज लेते है।
गिरिम	साख पर उधार लिया जाता है या साख न होने की अवस्था म खडी फसले बच दी जाती ह।
सोनवाडी	यदि बचत से और मवशिया को बचने स जो पैसे मिलते है उनस माल गुजारी न दी जा पाए तो कज लेना पडता है।
बघाना	खडी फसलो पर ऋण लेकर मालगुजारी की पहली किस्त अदा की जाती है। यदि फसल न हो तो जमीन को गिरवी रख दिया जाता है या वेच दिया जाता है।
मोरगोना	इसी प्रकार।
अबी	इसी प्रकार।
तारदोली	खडी फसलो पर कज लेकर पहली किस्त चुकाई जाती है। यदि फसल नही हो तो सूद पर कज लिया जाता है।
कुसीगाव	इसी प्रकार।

1900 मे प्रकाशित 'दि ग्रेट फेमिन' मे वागान नैश ने आयोग की रिपोट से ऊपर लिखी तालिका का साराश प्रस्तुत करते हुए कहा था 'अपनी बबई यात्रा के दौरान इस बात से पूरी तरह सहमत हो गया हू कि सरकारी अधिकारी, सूदखार महाजना को मालगुजारी के भुगतान के लिए एक मुख्य सहारा मानत है।'

भारतीय समाज में सूदखोर महाजन और कज कोई नई चीज नही है। लेकिन पूजीवादी शोपण और खासतौर से साम्राज्यवाद के युग मे सूदखोर महाजन की भूमिका न नए नए आयाम ग्रहण किए है और उसका महत्व बढा है। पहले के जमाने मे कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत जमानत पर ही महाजन से पैसा ले सकता था और इसलिए महाजन का कारोबार काफी अनिश्चित और जोखिम भरा होता था, व्यवहार म उसका लनदन गाव के फैसले के अधीन होता था। पुराने कानून के अनुसार कज देन वाला व्यक्ति कज लन वाले व्यक्ति की जमीन पर कब्जा नही कर सकता था। ब्रिटिश शासनकाल म य सारी स्थिति बदल गइ। ब्रिटिश कानूनी प्रणाली ने महाजन को कजदार की कुर्की करन और जमीन का हस्तातरण करन का अधिकार दकर सूदखार महाजनो को स्वण अवसर प्रदान किया और इनकी मदद के लिए पुलिस और कानून की पूरी ताकत उनके पीछ लगा दी। इस प्रकार सूदखोर महाजन पूजीवादी शोपण की समूची व्यवस्था की धुरी बन गया।

इसका कारण यह है कि महाजन की मदद के बिना न केवल मालगुजारी ही नहीं जमा हो सकती बल्कि बहुधा महाजन सूद पर रुपया देने के अलावा अनाज की खरीद और बिक्री भी करता है। फसल कटने के समय किसानों की उपज पर उसका एक तरह से एकाधिकार रहता है, प्राय वह किसानों को बुआई के समय किसानों को बीज और हल बैल आदि देता है। किसानों के पास इतनी योग्यता तो होती नहीं कि वे महाजन का बहीखाता देखकर इस बात की जाच करें कि उन्होंने कितना पैसा दिया या लिया और कितना लिखा गया है इसलिए वे दिन व दिन महाजन के चंगुल में फसते जाते हैं। इस प्रकार सूदखोर महाजन गाव का तानाशाह बन जाता है। जैसे जैसे किसानों की जमीन उसके हाथ में आती जाती है वस वैसे वह यह प्रक्रिया और आगे बढ़ाता जाता है। फिर किसान खेत मजदूर बन जाते हैं या उस महाजन के खेतों को बटाई पर जोतने लगते हैं और जो कुछ वे पैदा करते हैं उसका एक बड़ा हिस्सा वे लगान और सूद के रूप में महाजन को देते जाते हैं। फिर सूदखोर महाजन गाव की अर्थव्यवस्था में छोटे किसानों को अपना मजदूर बना लेता है। सभव है कि शुरू शुरू में किसानों का गुस्सा महाजन पर हो क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में वही सारे अत्याचार और दुखदर्द का कारण मालूम देता है। शातिपूर्ण और सदियों से तकलीफ उठाने वाले भारतीय किसानों के द्वारा भी महाजनों की हत्याओं की जो छुटपुट खबरें आती है उनसे इस प्रक्रिया का पता चलता है लेकिन जल्दी ही उन किसानों को यह पता चल जाता है कि इन महाजनों के पीछे ब्रिटिश राज की समूची शक्ति काम कर रही है। सूदखोर महाजन, महाजनी पूजी द्वारा किए जा रहे शोषण के समूचे रचनातत्र का एक ऐसा पुर्जा है जो एकदम उस जगह काम करता है जहा उत्पादन होता है।

जैसे जैसे साहूकार की ज्यादतिया बढ़ती जाती है, सरकार सामान्य तौर पर शोषण के हितों को ध्यान में रखकर ही, कुछ ऐसे उपाय करने की कोशिशें कर रही है जिससे महाजन इस सोने के अंडे देने वाली मुर्गी यानी किसान वर्ग को खत्म ही न कर दें। सूद की दर को कम करने के लिए और किसानों के हाथ में जमीन का निकलना रोकने के लिए सरकार ने विशेष कानूनों का अंबार लगा दिया है। लेकिन उसे स्वय यह मानना पड़ा है कि ये कानून असफल साबित हुए हैं (ग्रामीण ऋणग्रस्तता को रोकने के इरादे से बनाए गए कानूनों का जो अनुभव है उसके सदर्भ में कृषि आयोग की रिपोर्ट का 'कानून की विफलता' पृष्ठ 436-37 अध्याय देखें)। इसका प्रमाण यह है कि किसानों पर कर्ज का बोझ दिनादिन बढ़ता जा रहा है और इस बढ़ोतरी पर कोई अंकुश नहीं है।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान कर्जदारी और इसकी वृद्धि की समूची समस्या की काफी विस्तार से एम० एल० डार्लिंग ने अपनी पुस्तक 'दि पंजाब पीजेंट इन प्रास्परिटी ऐंड डेट' में छानबीन की है। यह पुस्तक सबसे पहले 1925 में प्रकाशित हुई थी। अपनी बाद की पुस्तकों 'रस्टिकस लाक्विटर' (1930) और 'विजडम ऐंड वेस्ट इन ए पंजाब विलेज' (1934) में भी उन्होंने इस समस्या का काफी विवेचन किया है। इसमें हालांकि आमतौर पर लेखक का दृष्टिकोण पक्षसमर्थक है फिर भी इससे तथ्यों की जानकारी तो हो ही जाती

है। अपनी पहली पुस्तक म उन्होंने बताया है कि किस प्रकार अगरेजो द्वारा भारत पर शासन स्थापित करने के बाद से पजाब म लोगो पर कज निरतर लदता गया है

> सिखो के शासनकाल म खेतो का रेहन रखा जाना मुश्किल था लेकिन अगरेजो के आने के बाद प्रत्येक गाव म लोगो के खेत रेहन रखे जाने लगे और 1878 तक इस सूबे का सात प्रतिशत रेहन हो चुका था
>
> 1880 तक किसान भूस्वामी और महाजन के बीच का असमान सघष सूदखोर महाजन की विजय के साथ समाप्त हो गया इसके बाद 30 वर्षों तक महाजन अपनी पराकाष्ठा पर रहा और इस दौरान इन महाजनो की समृद्धि बढती रही और इनकी सख्या मे यहा तक वृद्धि हुई कि बैंकरो और महाजनों की सख्या जहा (उनके आश्रितो सहित) 1868 मे 53,263 थी, 1911 मे बढकर 193,890 हो गई। (एम० एल० डार्लिंग 'दि पजाब पीजेंट इन प्रास्पेरिटी एँड डेट', पृष्ठ 208)

डार्लिंग महोदय की धारणा थी कि 1911 तक सूदखोर महाजन अपनी 'पराकाष्ठा' पर पहुच गया था और 1927 मे कृषि आयोग के समक्ष अपने साक्ष्य म उन्होंने बडी आशा के साथ यह सकेत किया था कि, 'पजाब म दो जिलो को छोडकर हर कही सूदखोर महाजन क्रमश अपने व्यापार मे कमी कर रहा है और इस कमी का मुख्य कारण है सहकारिता आदोलन का विकास, किसान कजदारो को कानूनी सरक्षण दिया जाना और कृपक सूद खोरो का जन्म।' (रिपोट, पृष्ठ 442)। लेकिन 1930 मे अपनी दूसरी पुस्तक 'रेस्टिक्स लोकिटर' के प्रकाशित होने तक एक आशावादी लहजे के बावजूद, उन्हे एक बार फिर आगाह करना पडा था

> भूमि हस्तातरण कानून (लैंड एलिएनेशन ऐक्ट) के बावजूद इस बात का खतरा है कि किसानो को एक बार फिर बडे पैमाने पर जमीन से बेदखल किया जाए। पश्चिमी पजाब मे, जहा बडे जमीदार इस कानून का फायदा उठाकर किसानो की कीमत पर अपनी जमीनें बढाने म लगे है इस आशका के सकेत पहले ही मिल चुके है। (पृष्ठ 326)

1935 तक पजाब के भूराजस्व अधिकारियो ने अपनी रिपोट म कहा था

> ग्रामीण इलाको मे कृपक सूदखोर प्रत्यक्ष रूप से अपने को मजबूत बना रहे हैं। (पजाब भूराजस्व प्रशासन की रिपोट, 1935, पृष्ठ 6)

1919 म की गई जाच मे डार्लिंग महोदय इस नतीजे पर पहुचे थे कि केवल 17 प्रतिशत

भूस्वामी ऋणमुक्त थे और औसत ऋण की राशि कम से कम 463 रुपये अर्थात जमीन की मालगुजारी की रकम की 12 गुना थी।

बगाल म फरीदपुर जिले के आकडो से कर्जदारी की वृद्धि का जबरदस्त उदाहरण मिलता है। 1906 म, जे० सी० जैक ने जो बाद म कलकत्ता के हाईकोर्ट के जज हो गए थे, इस जिले की जाच की थी और इस जाच के परिणाम बाद म 'इकानामिक लाइफ इन ए बगाल डिस्ट्रिक्ट' (1916) मे प्रकाशित हुए थे। इन परिणामो से पता चला था कि उस समय फरीदपुर म 55 प्रतिशत परिवार कर्ज से मुक्त थे। 1933-34 म यानी 25 वर्षों बाद बगाल के बोर्ड आफ इक्वायरी ने उसी जिले म फिर जाच की और यह नतीजा निकाला कि उस समय फरीदपुर के केवल 16 9 प्रतिशत परिवार कर्ज से मुक्त थे।

6 तीन तरह का बोझ

इस प्रकार किसान खेतिहर यदि वह भूमिहीन सर्वहारा की श्रेणी म अब तक भी नही तो, आज तीन तरह के बोझ के नीचे दबा है। अतिरिक्त राशि का उपभोग करने वाले तीन तत्व है। वे उस अल्प राशि म स अपना हिस्सा वसूलन के लिए दबाव डालते ह जो उस किसान ने अपनी थोडी सी जमीन और अत्यत सीमित साधनो के द्वारा पैदा की है और जिसके लिए उपज की यह अल्प राशि खुद ही इतनी कम है कि वह अपनी और अपने परिवार की छोटी से छोटी जरूरतें भी पूरी नही कर सकता।

जमीन की मालगुजारी के लिए सरकार के दावे सब पर समान रूप स अपना असर डालत है और इसी प्रकार अप्रत्यक्ष करो का बोझ इन किसानो की छोटी से छोटी खरीद को भी प्रभावित करता है (साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे इस बात पर आसू बहाए थे कि 'भारतीय गावों की आत्मनिर्भरता न नमक, मिट्टी का तल और शराब जैसी छोटी मोटी चीजो पर लगन वाल गृह आबकारी कर के दायर का सीमित कर दिया है। इन चीजों के लिए ग्रामीण इलाके बाहरी सप्लाई पर निर्भर करते है।' यहा तक कि नमक पर, जो गरीबो की सबसे बुनियादी जरूरत है लगाया गया कर 1939 40 म कम से कम 81 लाख पौंड अर्थात मालगुजारी के 2/5वें हिस्से तक पहुच गया।

सरकार की मालगुजारी क अतिरिक्त जमीदार द्वारा लगाए गए लगान का बोझ किसानो के बहुमत पर पडता है, ऐसा इसलिए है क्योकि ब्रिटिश भारत के कुल क्षेत्रफल का आधा हिस्सा जमीदारी प्रणाली के अतर्गत है और इसके अतिरिक्त रयतवारी प्रणाली के अतगत पडन वाले क्षेत्र का कम से कम एक तिहाई हिस्सा काश्तकारो के अधीन है।

सूद के लिए महाजन क दावे काफी बडी सख्या को प्रभावित करत है। डार्लिंग महोदय के आकडो और फरीदपुर के उदाहरण को देखे तो यह राशि 4/5 तक पहुचती है।

इस प्रकार कुल पैदावार का कितना हिस्सा किसान से छीन लिया गया ? उसकी रोजी रोटी चलाने के लिए कितना हिस्सा उसके पास छोड दिया गया ? भारतीय कृषि के इस बुनियादी प्रश्न के बारे मे कोई आकडे उपलब्ध नहीं हैं। यहा तक कि इस बात की भी कोई कोशिश नही की गई कि किसानो द्वारा जमीन की मालगुजारी के अलावा लगान के रूप मे कितनी राशि दी जाती है इसका पता लगाया जाए। कर्ज पर किसानो को कितना सूद देना पडता है, यह जानने की कोशिश नही की गई। ठीक ठीक सूचना के अभाव म केंद्रीय बैंकिग इक्वायरी कमेटी के अल्पमत की रिपोट म सामान्य अनुमान लगाने की कोशिश की गई है (पृष्ठ 36 37)। अपने अनुमान मे समिति ने मालगुजारी की राशि को 35 करोड रुपये मानकर गणना शुरू की। इसने सभवत बहुत घिसेपिटे तरीके से कर्ज पर लगने वाली सूद की राशि को मालगुजारी की 35 करोड रुपये की राशि का तीन गुना अर्थात 1 अरब रुपये निर्धारित किया। इसी प्रकार मालगुजारी के अलावा लगान की कुल राशि को मालगुजारी की राशि का डेढ गुना मान लिया। इस प्रकार किसानो पर जो कुल बोझ पडता है वह मालगुजारी की राशि का लगभग पाच गुना है। फिर भी जैसा कि रिपोट से सकेत मिलता है यह निश्चित रूप से कुल राशि को घटाकर देखना हुआ। बिचौलियो द्वारा लिए गए लगान की राशि को मालगुजारी का डेढ गुना अधिक मानना उस बिल पर आधारित है जो मद्रास मे जारी किया गया लेकिन किसानो की स्थितिया को सुधारने के लिए जिसे लागू नही किया गया। निश्चित तौर पर बगाल म यह वास्तविक राशि (जहा लगान की कुल राशि मालगुजारी की राशि की कम स कम चार गुना और सभवत छ गुना है) और सभवत अन्य स्थानो पर और भी ज्यादा होने की आशका है। इस रिपोट म यह धारणा व्यक्त की गई है कि जहा कही भी बिचौलिये मौजूद हैं वहा किसानो पर पडने वाला बोझ एक और डेढ के अनुपात से कही ज्यादा है हालाकि जमीन और उत्पादकता के लिहाज से स्थान स्थान पर और अलग अलग व्यक्तियो के लिए अलग अलग स्थितिया होगी ही। कर्ज पर दी जाने वाली सूद की दर कुल 9 अरब रुपये पर एक अरब रुपय अथात 11 प्रतिशत जोडी गई है जो निश्चित रूप से बहुत कम है। आमतौर से गाव का सूदखोर महाजन प्रतिमाह एक रुपये पर एक आना (कभी कभी डेढ आना) सूद लेता है अर्थात सलाना सूद की दर 75 प्रतिशत हुई। इसलिए वास्तविक बोझ उस राशि से निश्चित रूप से काफी अधिक होगा जो इस अनुमान मे शामिल की गई है। यदि नमक पर लगने वाले कर का बोझ जोड दिया जाए तो भी यह अनुमान 2 अरब रुपया सालाना अथवा 20 रुपय प्रति किसान के नजदीक पहुच जाता है। इसके मुकाबले हमारे सामने केंद्रीय बैंकिग इक्वायरी कमेटी की बहुमत रिपोट द्वारा प्रस्तुत अनुमान ही है जिसमे कहा गया है कि 'ब्रिटिश भारत म एक किसान की औसत आमदनी लगभग 42 रुपये सालाना या 3 पौंड सालाना से ज्यादा नही है।' (पृष्ठ 39)

शोषण की एक सही झलक एस० एस० सुब्रह्मण्यम की कृति 'स्टडी आफ ए साउथ इडियन विलेज' (काग्रेस पोलिटिकल ऐंड इकोनामिक स्टडीज सख्या 2 1936) म मिलती है। त्रिचनापल्ली जिले म नरूर नाम का एक गाव है। इसकी आबादी 6200 है। इस गाव की

अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया गया और यहा के निवासियों की सभी स्रोतों से होने वाली कुल आय, कुल खर्च और उपभोग के लिए बची राशि का सही सही विवरण प्रस्तुत किया गया। शोषण की सीमा की झलक यहा बहुत साफ तौर पर देखी जा सकती है क्योंकि यहा जमीन पर जिनका स्वामित्व है वे गाव से बाहर रहते हैं और यहा के लोगो को जिनसे कर्ज पर रुपया मिला है वे भी गाव से बाहर हैं। इस प्रकार लगान और सूद के रूप में काफी बडी राशि गाव से बाहर चली जाती है जो गाव की कुल आय में से निकली हुई रकम का बहुत साफ साफ चित्र प्रस्तुत करती है।

इस जाच से कौन से नतीजे सामने आए? बाजार भाव पर यदि सारे उत्पादन का मूल्याकन करें तो कृषि से हुई कुल आय 344,000 रुपये होती है। खेती के काम में खर्च राशि को यदि घटा दें (इसमें मजदूरी की राशि शामिल नहीं है और गाव के अदर मजदूरी के रूप में जो पैसे दिए गए हैं उसे अलग करके देखें) तो कृषि से हुई कुल आय 212,000 रुपये निकलती है। अकृषीय स्रोतों से हुई कुल आय (बाहर कमाई गई मजदूरी, सरकारी कर्मचारियों के वेतन और पेंशनें, पूजी पर लगा सूद आदि छोडकर) 24,000 रुपये होती है और इस प्रकार सभी स्रोतों से हुई कुल आय की राशि 2,36,000 है।

इसके मुकाबले गाव से बाहर जाने वाली निम्न राशियों पर ध्यान दिया गया जमीन की मालगुजारी, सिंचाई तथा अन्य खर्चे 30,000 रुपये, गाव से बाहर रहने वाले भूस्वामियों को दिया गया लगान 70,000 रुपये, कर्ज पर दिया गया सूद (8 प्रतिशत की कम से कम दर पर जोडी गई राशि) 40,000 रुपये, ताडी आदि की दुकानों के लिए सरकार को दिया जाने वाला किराया, पेड का कर और पेड के मालिक को दिया जाने वाला किराया 12,000 रुपये। इस प्रकार सरकारी राजस्व, टैक्स, किराया और सूद के रूप में दी जाने वाली कुल राशि 1,52,000 रुपये हुई। 4 हजार रुपये की राशि को छोटे मोटे कामों के लिए बाहर जाने वाली राशि मान लें तो गाव से कुल 1,56,000 रुपये का भुगतान हुआ है उसमें से गाव के लिए केवल 80 000 रुपये बचे रहते हैं अर्थात प्रति व्यक्ति मात्र 13 रुपये बचत है।

यह देखा जा सकता है कि इस गाव का प्रत्येक निवासी औसतन 38 रुपये या 2 पौंड 17 शिलिंग प्रति वर्ष कमाता है। कर वसूलने वाले अधिकारी, जमीदार और सूदखोर महाजन द्वारा अपना हिस्सा वसूल लेने के बाद उसके पास 13 रुपये या 19 शिलिंग से भी कम की राशि बचती है जिसमें उसे सालभर का अपना खर्च चलाना होता है। इस प्रकार कुल कमाई का दो तिहाई हिस्सा उससे ले लिया जाता है और एक तिहाई हिस्सा उसके पास बचा रहता है।

कुल आय में से दो तिहाई से भी अधिक भाग जमीन की मालगुजारी और उत्पादन कर सूद के भुगतान और गाव से बाहर रहने वाले भूस्वामियों के लगान के रूप में गाव से

बाहर चला जाता है।' इस विस्तृत अध्ययन के बाद यही निष्कर्ष निकला था जिसका महज सारांश प्रस्तुत किया गया है। महान फ्रांसीसी क्रांति के पहले फ्रांस के किसानों की स्थिति का वर्णन करते हुए कार्लाइल ने लिखा था

> विधवा मा अपने बच्चों की भूख शांत करने के लिए जड़ें इकट्ठा कर रही है और अपने शानदार होटल के बरामदे में नजाकत के साथ आराम करते हुए इत्र लगाए हुए भद्र पुरुष के पास एक ऐसी कीमियागीरी है जिससे वह विधवा मा से हर तीसरी जड़ छीन लेगा और अपनी इस हरकत को नाम देगा लगान और कानून।

आज के ब्रिटिश भारत में इससे भी ज्यादा रहस्यमय कीमियागीरी देखी गई है। यहा किसान के पास तीन में से केवल एक जड़ छोड़ी जाती है और शेष दो जड़ें भद्र पुरुष के पास पहुंच जाती है।

पाद टिप्पणिया

1 जमीन की मालगुजारी निर्धारण की उनकी तालिका जो 17वीं सदी से शुरू होती है, काफी दिलचस्प है

एक भारतीय गाव में भूराजस्व में वृद्धि

वर्ष	भूराजस्व (रुपये)	निर्धारित क्षेत्र (एकड़)
1698	301	1 963
1727	620	2 000
1730	1 173	2 000
1770	1 632	2,003
1785	552	1 954
1790	66	1 954
1803	1 009	1 931
1808	818	1 954
1817	792	1 954
1823 (ब्रिटिश राज के बाद)	2 121	2 059
1844 74	1 161	2,059
1874 1904	1,467	2,271
1915	1 581	2,271

2 बारदोली में कर के बारे में हुई हड़ताल की सफलता पर [illegible] ने जो [illegible] यह काफी महत्वपूर्ण है। [illegible] की शिकायतों के औचित्य पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया गया है [illegible] यह शिकायत की गई है कि सभी तरह के कर निर्धारण के औचित्य को चुनौती देने के लिए यह एक अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया गया है
इस भूभाग (बारदोली) में जिस [illegible] कर निर्धारण की सामान्य प्रक्रिया के दौरान [illegible] किया गया था। मालगुजारी की नई मांग के विरुद्ध [illegible] ने आवाज उठाई थी और इसके परिणामस्वरूप [illegible] सरकार को [illegible] । इस मामले में [illegible]

था लेकिन इसका वास्तविक महत्व यह है कि इसने एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया। भविष्य में अब जो निर्धारण किए जाएंगे उनपर राजनीतिक बहस की काफी संभावना है।
(डब्ल्यू० एच० मूरलैंड सी० एस० आई० सी० आई० ई० 'पीजेंटस लैंडहोल्डर्स ऐंड दि स्टेट इन माडर्न इंडिया, 1932 पृष्ठ 166)

3 लगान की कुल राशि में अनुचित और गरकानूनी वसूली द्वारा वृद्धि की गई। 1937 में बंगाल विधान सभा के दूसरे अधिवेशन के दौरान, जब काश्तकारी कानून पर बहस चल रही थी तीन अलग अलग वक्ताओं ने बंगाल के लिए लगान की कुल राशि 29 करोड रुपये (17 करोड वैधानिक और 12 करोड अवैधानिक) 30 करोड रुपये (20 करोड वैधानिक और 10 करोड अवैधानिक), और 26 करोड रुपये (20 करोड वैधानिक और 6 करोड अवैधानिक) निर्धारित किया था। ये आकलन पूर्णयोग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें लगभग 2 करोड पौंड की अवैधानिक वसूली भी शामिल है।

4 1939 में उत्तर बिहार में खिरहार नामक गांव की दशा की जांच की गई जिससे यह निष्कर्ष निकला कि 'सबसे बड़ी संख्या यहां भूमिहीन मजदूरों की है। ऐसे लोगों के 760 परिवार हैं जिनमें 5023 लोग रहते हैं और जो गांव की कुल आबादी का 72 प्रतिशत है। (एस० सरकार इकानामिक कंडीशंस आफ ए विलेज इन नार्थ बिहार, इंडियन जर्नल आफ इकानामिक्स, जुलाई 1939)

इसके साथ ही भारत की औपनिवेशिक स्थिति के कारण 'अनुद्योगीकरण' की क्रिया भी जारी रहती है। यह स्थिति अन्य बातों को प्रभावित करती है और उन्हें गंभीर भी बनाती है। दूसरी विशेषता है खेती के विकास में ठहराव और गिरावट आ जाना, जमीन की उपज कम होना, श्रम की बरबादी होना, कृषि योग्य जमीन को खेती के काम में लाने में विफल होना, वर्तमान कृषि योग्य जमीन का विकास न करना। इसके फलस्वरूप कुछ समय बाद खेती की उपज में गिरावट आने लगती है और खेती के लिए कुल उपलब्ध जमीन में कमी आने लगती है। तीसरी विशेषता है जमीन के लिए किसानों की भूख का बढ़ते जाना, जोतों का आकार निरंतर कम होते जाना, जोतों का छोटे छोटे टुकड़ों में बंटते जाना और ऐसी जोतों का अनुपात बढ़ते जाना जिनके बल पर किसान के लिए अपनी आजीविका चलाना मुश्किल होता है। आज ज्यादातर जोतें इसी तरह की हैं।

चौथी विशेषता है जमींदारी प्रथा का विस्तार होना, तरह तरह के शिकमी दर शिकमी का बंटते जाना, ऐसे लोगों की संख्या में वृद्धि होना जो खेती नहीं करते लेकिन लगान वसूलते हैं। इस प्रकार अधिकांश किसानों की जमीनें इन भूस्वामियों के हाथों में जाने लगती हैं। पांचवीं विशेषता यह है कि उन किसानों पर कर्ज का दबाव बढ़ता जाता है जिनके पास अब भी कुछ जमीन है। अभी एकदम हाल के वर्षों में किसानों पर बेहद कर्ज चढ़ गया है। छठी विशेषता है कर्ज के बदले में किसानों की जमीनों का सूदखोर महाजनों और सट्टेबाजों के हाथ में पहुंचते जाना। इसका परिणाम हम जमींदारी प्रथा के विकास में और भूमिहीन सर्वहारा की संख्या में वृद्धि में देखते हैं। सातवीं विशेषता यह है कि उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप खेतिहर सर्वहारा की संख्या में तेजी से वृद्धि होती जाती है। *1921 से 1931 के दस वर्षों के अंदर इनकी संख्या खेती में लगे कुल व्यक्तियों के पांचवें हिस्से* से बढ़कर तीसरे हिस्से तक पहुंच गई। 1931 के बाद से तो स्थिति यह हो गई कि खेती में लगे कुल व्यक्तियों की आधी संख्या के बराबर खेतिहर सर्वहारा अस्तित्व में आ गए।

यह सभी लोग मानते हैं कि ऋणग्रस्तता के कारण ही जमीन की बेदखली की यह प्रक्रिया पूरी हुई। 1892 में ही खेतिहरों के लिए बनाए गए राहत कानून की कार्यप्रणाली की जांच के लिए गठित दक्कन आयोग ने बड़ी घबड़ाहट के साथ लिखा था कि 'भारत जैसे कृषिप्रधान देश में जमीन का हस्तांतरण कठोरता से लगान वसूलने वाले ऐसे बाहरी लोगों को किया जा रहा है जो जमीन के विकास के लिए कुछ भी नहीं करते हैं।' आयोग ने भूस्वामियों के नए वर्ग के बारे में अपना मत प्रकट किया कि 'किसी गैरजिम्मेदार जमींदार की शक्तियों का इस्तेमाल करने के लिए ये दुनिया में संभवतः सबसे कम उपयुक्त हैं। एक जमींदार के रूप में उनकी मूल प्रवृत्ति एक सूदखोर की है जो अपने काश्तकार पर, जो उनका कर्जदार भी है, बड़ी से बड़ी शर्तें थोपते हैं और प्रायः उनसे लगभग गुलामों जैसा व्यवहार करते हैं।' 1928 में कृषि आयोग ने स्वीकार किया कि 'किसानों को लगता है कि कर्जे के बिना उनका काम नहीं चल सकता और इस धारणा से सूदखोरों को असीम अधिकार मिल जाता है। आम किसान लोग अपनी जमीन का सूदखोर के हाथों में जाने

किसान क्राति

अब जागो, वीर किसानो जागो, कृष्ण का ही तुम पथ गहो,
अब चार लुटेरे अपने घर म घुस आये हैं, मत सोओ
अब जागो, वीर किसानो जागो, कृष्ण का ही तुम पथ गहो,
जब जब वैसाख महीने म अपनी फसलें काटें किसान
तब जब्त करें बौहरे जमीन और फसलें लूट जमीदार
एक दिन को भी है चैन नही
मिहनत तेरी जो फल लाती सब आख सामने लुट जात,
वे नही छोडते एक दाना जो बन पाये तेरा आहार।
अब जागो वीर किसानो जागो, कृष्ण का ही तुम पथ गहो
—गतोकी शर्मा, मथुरा जिला के भूमिहीन किसान अध्यक्ष प्रांतीय
परीक्षावाद, मई 1938

इस विश्लेषण के आधार पर अब संक्षेप म यह बताया जा सकता है कि संकट किन विशेषताओं के साथ बढ़ रहा है। कृषि संकट के कारणों और का विकास समूचे ब्रिटिश शासन के दौरान हुआ है और आज ये सारे पराकाष्ठा पर पहुच रही है।

1 कृषि क्षेत्र मे संकट का विकास

पहली विशेषता है राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था म खेती की स्थिति का [illegible]। [illegible] पर आबादी का [illegible] [illegible] और [illegible]

रुपये थी, 1931-32 मे वस्तुत 33 करोड रुपये निर्धारित की गई जो 1933 34 मे 30 करोड रुपये हो गई। कहने का तात्पय यह है कि इस राशि म 9 प्रतिशत से अधिक की कमी आई जो अधिकाश मामला मे मालगुजारी का भुगतान करने की अक्षमता और जमीन छोड देने के कारण थी।

1934 की बगाल जूट जाच समिति की रिपोट मे दिए गए अनुमान को 1920-21 और 1932-33 के बीच क्रयशक्ति म हुई कमी और वृद्धि के सदभ मे देखें तो बगाल के किसानो की असहाय स्थिति का पता लगाया जा सकता ह। इन आकडा के अनुसार बगाल मे विक्रीयोग्य फसलो के कुल मूल्य मे 1920-21 से 1929-30 के बीच मे काफी गिरावट आई। इन वस्तुओ का औसत वार्षिक मूल्य 1920-21 से 1929-30 के दशक म 72 करोड 40 लाख रुपय था जो 1932-33 मे 32 करोड 70 लाख रुपये हो गया। इसके साथ ही मौद्रिक देयता मे 27 करोड 90 लाख से बढकर 28 करोड 30 लाख रुपय हो गई। इसका अथ यह हुआ कि किसानो की 'स्वतत्र क्रय शक्ति' 44 करोड 50 लाख रुपये से घटकर 4 करोड 40 लाख रुपय हो गई। इसी अवधि म कलकत्ता म मूल्या का सूचक अक औसतन 223 से घटकर 129 हो गया अर्थात 44 प्रतिशत की गिरावट आई जबकि 'स्वतत्र क्रयशक्ति' मे 90 प्रतिशत की कमी आई।

यही वह दौर था जब भारतीया की परपरागत बचत अर्थात सोने के आभूषणो को किसानो से छीन लिया गया ताकि दीवालियेपन का निवारण किया जाए और भारत से जाने वाले वार्षिक नजराने को बनाए रखा जाए। ऐसा इसलिए करना पडा क्योकि माल के निर्यात से यह घाटा पूरा नही हो रहा था। 1931 से 1937 के बीच कम से कम 24 करोड 10 लाख पौंड का सोना भारत से वसूल कर बाहर भेजा गया। लेकिन इस 'जब्त किए गए' सोने से केवल एक वग लाभ उठा सका और आने वाली मुसीबतें एक सीमित अवधि तक ही टाली जा सकी।

सयुक्त प्रात म उन काश्तकारो द्वारा जो लगान नही दे सके काफी बडी सख्या मे भूमि का परित्याग किया गया। यह सख्या 1931 मे 71,430 थी। 2,56 284 लोगो से जबरन मालगुजारी वसूलने का आदेश जारी किया गया। हमने पहले ही देखा है कि किस प्रकार 1930 मे बगाल मे सिचाई सबधी समिति ने अपनी रिपोट मे कहा था कि 'कृषि के क्षेत्र से जमीन निकलती जा रही है।'

1934 35 तक स्थिति यह हो गई कि कृषि सबधी आकडो से यह पता चलने लगा कि कृषि क्षेत्र मे 50 लाख एकड से भी ज्यादा की कमी आई। 1933-34 म कुल 23 करोड 32 लाख एकड जमीन मे फसलें बोई गई थी। 1934-35 म यह सख्या 22 करोड 69 लाख एकड हो गई अर्थात 5,266 000 एकड की कमी आई। खाद्यान्नोवाली भूमि के क्षेत्र म 5,589 000 एकड की कमी आई।

से जाना भाग्यवादी ढग से स्वीकार कर लेते ह और उसकी सर्वोच्च स्थिति निर्विरोध बनी रहती है'(पृ० 435)। प्रसगवश, जमीन हडपने वाले इन सूदखोरो के प्रति सरकारी आयोगो ने बडी ईमानदारी के साथ जो रोष प्रकट किया है उसमे इन आयोगो ने यह कही नही कहा है कि सूदखोरो की शक्ति के पीछे सरकार द्वारा मिल रहा कानूनी समर्थन है। सरकार द्वारा मालगुजारी की जबरन वसूली के कारण ही किसानो ने सबसे पहले अपनी जमीन किसी सूदखोर महाजन को दी। 1931 म केंद्रीय बैंकिग जाच समिति ने इस सामान्य धारणा को स्थान दिया

> ऋणग्रस्तता का परिणाम अततोगत्वा यह होता है कि खेतिहर वग अपनी जमीन का हस्तातरण गैरखेतिहर सूदखोर के नाम कर देता है जिससे एक ऐसे भूमिहीन सवहारा (मजदूर) का वग पैदा होता है जिसकी आर्थिक स्थिति काफी कमजोर होती है। कहा जाता है कि इससे खेती की क्षमता म कमी आती है क्योकि सूदखोर महाजन इस जमीन को ऐसी दर पर शिकमी चढा देता है कि किसान को अच्छी फसल पैदा करन का कोई लाभ नही दिखाई देता। (केंद्रीय बैंकिग जाच समिति की रिपोट, पृष्ठ 59)

1931 की जनगणना रिपोट ने निष्कष निकाला कि, 'गैरखेतिहर भूस्वामियो के पास जमीन इकट्ठी होते जाने की आशका है।' (सेंसस आफ इडिया, 1931, खड I, भाग I पृष्ठ 288)

लेकिन खेती मे गिरावट आने, किसानो की जमीन छिनने और उनम वग विभेद के बढने की यह समूची प्रक्रिया विश्वव्यापी अथसकट के कारण, कृषीय उत्पादन की कीमतो म गिरावट आने के कारण और तत्पश्चात दूसरे महायुद्ध तथा देशव्यापी अकाल के कारण काफी आगे बढ गई है और बहुत तेजी से बढ रही है।

व्यापारिक आसूचना और साख्यिकी (कामशियल इटेलिजेंस ऐंड स्टेटिस्टिक्स) के महा निदेशक द्वारा प्रकाशित आकडो से इस गिरावट की सीमा का अनुमान लगाया जा सकता है। 1928-29 म मदी का दौर शुरू होन से पहले के वष मे, फसल कटने के समय के औसत दामो को आधार मानने पर खेती से लगभग 10 अरब 34 करोड रुपये मूल्य की पैदावार हुई थी। 1933-34 मे केवल 4 अरब 73 करोड की पैदावार हुई। इससे पता चलता है कि पैदावार मे 55 प्रतिशत की गिरावट आई।

अचानक आय आधी हो जाने स उन किसानो को, जो पहले से असहाय स्थिति म थे, कितनी दुदशा का सामना करना पडा होगा इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। रुपये के रूप म उन्हे जो भुगतान करना पडता था उसपर रियायत उन्हे नही मिल पाती थी। इसके विपरीत जमीन की मालगुजारी, जो 1928-29 म 33 करोड 10 लाख

रुपये थी, 1931-32 म वस्तुत 33 करोड रुपय निर्धारित की गई जो 1933 34 म 30 करोड रुपये हो गई। कहने का तात्पय यह है कि इस राशि म 9 प्रतिशत से अधिक की कमी आई जो अधिकाश मामला मे मालगुजारी का भुगतान करने की अक्षमता और जमीन छोड देने के कारण थी।

1934 की बगाल जूट जाच समिति की रिपोट म दिए गए अनुमान को 1920 21 और 1932-33 के बीच क्रयशक्ति म हुई कमी और वृद्धि के सदभ म देखें तो बगाल के किसानो की असहाय स्थिति का पता लगाया जा सकता है। इन आकडो के अनुमार बगाल म विक्रीयोग्य फसलो के कुल मूल्य म 1920 21 से 1929-30 के बीच मे काफी गिरावट आई। इन वस्तुओं का औसत वार्षिक मूल्य 1920-21 से 1929-30 के दशक मे 72 करोड 40 लाख रुपये था जो 1932-33 मे 32 करोड 70 लाख रुपये हो गया। इसके साथ ही मौद्रिक देयता मे 27 करोड 90 लाख से बढकर 28 करोड 30 लाख रुपय हो गई। इसका अर्थ यह हुआ कि किसानो की 'स्वतत्र क्रय शक्ति' 44 करोड 50 लाख रुपये से घटकर 4 करोड 40 लाख रुपये हो गई। इसी अवधि मे कलकत्ता मे मूल्यो का सूचक अक औसतन 223 से घटकर 129 हो गया अर्थात 44 प्रतिशत की गिरावट आई जबकि 'स्वतत्र क्रयशक्ति' मे 90 प्रतिशत की कमी आई।

यही वह दौर था जब भारतीयो की परपरागत बचत अर्थात सोने के आभूषणो को किसानो से छीन लिया गया ताकि दीवालियपन का निवारण किया जाए और भारत से जाने वाले वार्षिक नजराने को बनाए रखा जाए। ऐसा इसलिए करना पडा क्योकि माल के निर्यात से यह घाटा पूरा नही हो रहा था। 1931 से 1937 के बीच कम से कम 24 करोड 10 लाख पौंड का सोना भारत से वसूल कर बाहर भेजा गया। लेकिन इस 'जब्त किए गए' सोने से केवल एक वग लाभ उठा सका और आने वाली मुसीबतें एक सीमित अवधि तक ही टाली जा सकी।

सयुक्त प्रात म उन काश्तकारो द्वारा जो लगान नही दे सके काफी बडी सख्या मे भूमि का परित्याग किया गया। यह सख्या 1931 मे 71,430 थी। 2,56 284 लोगो से जबरन मालगुजारी वसूलने का आदेश जारी किया गया। हमने पहले ही देखा है कि किस प्रकार 1930 मे बगाल मे सिचाई सबधी समिति ने अपनी रिपोट म कहा था कि कृषि के क्षेत्र से जमीन निकलती जा रही है।'

1934-35 तक स्थिति यह हो गई कि कृषि सबधी आकडो से यह पता चलने लगा कि कृषि क्षेत्र में 50 लाख एकड से भी ज्यादा की कमी आई। 1933-34 मे कुल 23 करोड 32 लाख एकड जमीन म फसले बोई गई थी। 1934-35 मे यह सख्या 22 करोड 69 लाख एकड हो गई अर्थात 5,266 000 एकड की कमी आई। खाद्यान्नवाली भूमि के क्षेत्र म 5 589 000 एकड की कमी आई।

1934 के बाद मूल्य वृद्धि की स्थिति में मामूली सा सुधार हुआ लेकिन इससे आर्थिक मंदी की स्थिति मे कोई तब्दीली नही आई और विध्वंस के प्रभावो पर भी काबू नहीं पाया जा सका। एंस्टे ने अपनी पुस्तक 'इकोनामिक डेवलपमेंट आफ इंडिया' में लिखा कि '1934 के बाद से जनता का कष्ट और भी गभीर हुआ होगा'।

किसानो की आय आधी होने से कर्ज का भार दुगना हो गया। अनिवार्य रूप से इसका यह अर्थ हुआ कि कर्ज म वृद्धि हुई जो अब अनुमानत 1931 के स्तर से दुगनी हो गई। 1921 में अनुमान लगाया गया कि कुल कृषीय ऋण 40 करोड पौंड था (देखें एम० एल० डार्लिंग की पुस्तक 'दि पंजाब पीजेंट इन प्रास्परिटी ऐंड डेट')। 1931 म केंद्रीय बैकिंग जाच समिति ने अपनी रिपोर्ट मे अनुमान लगाया कि यह राशि 9 अरब रुपये या 67 करोड 50 लाख पौंड थी। 1937 मे रिजर्व बैंक आफ इंडिया के कृषीय ऋण विभाग (ऐग्रीकल्चरल क्रेडिट डिपार्टमेंट) ने अनुमान लगाया कि यह राशि 18 अरब रुपये या 1 अरब 35 करोड पौंड थी।

यह राशि 1921-31 के दस वर्षों मे 40 करोड पौंड से बढकर 67 करोड 50 लाख पौंड और 1931-37 के 6 वर्षों में 67 करोड 50 लाख से बढकर 1 अरब 35 करोड पौंड हो गई। इस अवधि के दौरान किसानो पर ऋण की इस राशि को यदि आधार मानें तो इससे पता चलता है कि कृषि के क्षेत्र मे संकट दिन ब दिन गहरा होता जा रहा था।

भारतीय कृषीय अर्थव्यवस्था का दीवालियापन उस समय अपने नग्न रूप मे सामने आ गया जब द्वितीय विश्वयुद्ध मे जापान के शामिल होने के साथ ही बर्मा से चावल का आयात बंद कर दिया गया। इससे तत्काल ही अनाज की कमी की स्थिति पैदा हो गई और भारत म कीमतें तेजी से बढने लगी। इस स्थिति पर काबू पाया जा सकता था। इसके लिए सबसे पहले काश्तकारो पर बोझ कम करके और उन्हे सिंचाई तथा अन्य आवश्यक सुविधाएं देकर अनाज का उत्पादन बढाने का जबरदस्त अभियान छेडना चाहिए था। दूसरे, कीमतो पर काबू पाया जा सकता था और सभी खाद्यान्नो की राशनिंग की जा सकती थी। तीसरे, जमींदारो और व्यापारियो द्वारा की जा रही जमाखोरी और कालाबाजारी को कारगर ढंग से रोका जा सकता था लेकिन ये सारे कदम उठाने के बजाय साम्राज्यवादी सरकार ने जो आम जनता का शोषण करके युद्ध को आर्थिक मदद पहुचाने के लिए कृतसंकल्प थी, मुद्रास्फीति और मूल्यवृद्धि पर भरोसा किया तथा स्वयं सेना के लिए अनाज की सप्लाई के लिए जमाखोरो का सहारा लिया। उसने इस बात की तनिक भी परवाह नही की कि जनता के बीच खाद्यान्नो का समान वितरण करने की व्यवस्था की जाए। इसका नतीजा यह हुआ कि हालांकि 1943 म महज 14 लाख टन अनाज की ही कमी थी (जो भारत की कुल जरूरत का बहुत मामूली अंश है) लेकिन देश के अनेक हिस्सो म जबरदस्त अकाल पडा जिससे भारी संख्या म मौतें हुइं।

प्रोफेसर के० पी० चट्टोपाध्याय द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार केवल बगाल म अकाल मे मरने वालो की सख्या 35 लाख थी। यहा तक कि अकाल की जाच के लिए गठित सरकारी आयोग ने भी मरने वाला की सख्या 15 लाख बताई थी।

अकाल के बाद भयकर महामारी फैली और सितबर 1944 तक विभिन्न बीमारियो से 12 लाख व्यक्तियो की बगाल म मृत्यु हुई (भवानी सेन रूरल बगाल इन रूइस' पृष्ठ 18)।

यह अकाल 'मानवनिर्मित' अकाल था। बगाल म दरअस्ल, केवल 6 हफ्ते के राशन की कमी थी और बाहर से अनाज मगाकर तथा खाद्यान्नो का लोगो के बीच समान वितरण करके इस कमी को आसानी से दूर किया जा सकता था। लेकिन बगाल की एक तिहाई से भी अधिक जनता अकाल की चपेट म आ गई। अनाज का समूचा भडार जमीदारो और व्यापारियो द्वारा दबा लिया गया और भ्रष्ट नौकरशाही न इन भडारो को जमाखोरो के हाथो से बाहर निकालने की कोशिश के बजाय इनकी कीमते बढाने म मदद पहुचाई और करोडो लोगो की जिदगी के साथ खिलवाड किया। जनवरी 1942 मे कलकत्ता म चावल का मूल्य 6 रुपये प्रति मन था जो नवबर 1942 म 11 रुपये, फरवरी अप्रैल 1943 मे 24 रुपये, मई मे 30 रुपये, जुलाई म 35 रुपये, अगस्त मे 38 रुपये, और अक्तूबर 1943 मे 40 रुपये तक पहुच गया। मुफस्सिल जिलो म चावल की कीमत 50 रुपये से लेकर 100 रुपये प्रति मन तक हो गई। अकाल के दौरान चावल हमेशा उपलब्ध था और असीमित मात्रा मे उपलब्ध था लेकिन उसका मूल्य 100 रुपये प्रति मन था। इसके फलस्वरूप बडे व्यापारियो ने इस अकाल के दौरान काला बाजार के जरिये 1 अरब 50 करोड रुपये तक का अतिरिक्त मुनाफा कमाया (वही पृष्ठ 1)।

अकाल की मार सबसे पहले बगाल के 75 प्रतिशत किसान परिवारो पर पडी जिनके पास 5 एकड से भी कम जमीन थी और जो अनाज की अपनी जरूरतें इस जमीन से पूरी नही कर सकते थे। मई 1943 तक इन 75 प्रतिशत परिवारो के पास खाने के लिए कुछ भी नही बचा और सारा अनाज 'जोतदारो और व्यापारियो तथा सरकारी एजेंटो और कारखाना मालिको के पास जमा हो गया' (वही, पृष्ठ 4)। अकाल ने सबसे पहले सबसे गरीब तबके को अपना निशाना बनाया और फिर धीरे धीरे इसका असर मझोले किसानों पर भी पडने लगा। जो किसान जितना ही गरीब था उसे उतनी ही जल्दी अपना सारा सामान बेच देना पडा, वह असहाय हो गया और मौत की गोद मे जा पहुचा। जैसाकि प्रोफेसर पी० सी० महलनवीस तथा भारतीय सांख्यिकी संस्थान के अन्य लोगो ने एक सर्वेक्षण के बाद बताया

> वस्तुत अकाल के पहले प्रत्येक परिवार के हिसाब से धान के खेतो का सब डिवीजनो म जो वर्गीकरण किया गया था वह मोटे तौर पर अकाल की स्थितियो के प्रभाव की मात्रा के समानातर पाया गया। ('ए सैंपुल सर्वे आफ आफ्टर

इफैक्टम आफ दि बगाल फेमिन आफ 1943', पृष्ठ 3, साक्ष्य, खड 7, भाग 4, 1946)

इस अकाल के फलस्वरूप किसान जनता की गरीबी और बढी और जमीन का अधिक से अधिक हिस्सा धनी जमीदारो और सूदखोर महाजनो के पास इकट्ठा होता गया।

इस सर्वेक्षण के अनुसार अप्रैल 1943 से अप्रैल 1944 के एक वर्ष के अकाल के दौरान लगभग 15 लाख 90 हजार परिवारो ने (अकाल से पहले जिनके पास धान के खेत थे उनकी एक चौथाई सख्या) या तो अपने धान के खेत बिलकुल ही बेच दिए या रेहन रख दिए। इनमे से 2 लाख 60 हजार परिवारो को पूरी तरह अपनी जोतों से हाथ धोना पडा और इस प्रकार वे भूमिहीन मजदूर की स्थिति म पहुच गए। 6 लाख 60 हजार परिवारो ने अपने खेत का कुछ हिस्सा बेचा और 6 लाख 70 हजार परिवारो ने अपने धान के खेत रेहन रखे। इनमे से अधिक से अधिक एक प्रतिशत किसानों को अपनी जमीन वापस मिल सकी। अन्य किसानो को कानूनी उपायों से भी जमीन वापस नहीं मिली ('रूरल बगाल इन रूइस', पृष्ठ 6)। अकाल के दौरान 7 लाख 10 हजार एकड धान के खेत बेचे गए थे जिनम से गाव द्वारा केवल 20 हजार एकड वापस खरीदे गए। मोटे तौर पर कहें तो 4 लाख 20 हजार एकड खेत पर बाहरी लोगों का कब्जा हो गया जो सभवत शहर मे रहने वाले गैरखेतिहार व्यक्ति थे ('सैंपुल सर्वे', पृष्ठ iv)।

बिक्री की प्रक्रिया इस बार जमीन तक ही सीमित न रही। जनता का सपूर्ण जीवन छिन्न भिन्न हो गया। मा बाप अपन छोटे छोटे बच्चो को इस आशा मे सडक के किनारे फेंकने को मजबूर हो गए कि कोई उन्हे उठाकर ले जाएगा और उन्हे खाना खिला देगा। पतियो ने मजबूरी मे अपनी पत्निया को छोड दिया और सारे परिवार को भाग्य के सहारे छोड दिया। महिलाए अपना शरीर बेचने पर मजबूर हुईं और वे चकलाघरो मे पहुच गइ। अनुमान लगाया गया है कि कलकत्ता म आए 1 लाख 25 हजार निराश्रितो म से लगभग 30 हजार जवान औरतो ने वेश्यावृत्ति अपना ली ताकि वे किसी तरह सास लेती रह सकें।

हजारो लाखो की सख्या मे लोग अनाथ हो गए। एक सर्वेक्षण के अनुसार मई 1944 म बगाल म कुल निराश्रितो की सख्या 10 लाख 80 हजार थी जिनमे से 4 लाख 80 हजार व्यक्ति महज युद्ध और अकाल के कारण इस हालत म पहुचे थे वही पृष्ठ 5)। उन लोगों की सख्या 60 लाख थी जो पूरी तरह निराश्रय तो नही हुए थे लेकिन अत्यधिक निधन थे ('रूरल बगाल इन रूइस', पृष्ठ 16)।

गाव की समूची अथव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। अकाल के दौरान जिन लोगों पर सबसे जबरदस्त मार पडी थ गाव क दस्तकार और कारीगर थे जिनम मछुआरे, मोची, लुहार,

कुम्हार और जुलाहे आदि थे। वस्तुत सबसे पहले इन्ही पर अकाल की मार पडी और ये पूरी तरह कगाल हो गए। यहा तक कि जो लोग पहली चोट को बर्दाश्त कर गए वे भी कगाली की हालत की तरफ बढ रहे हैं। गाव के दस्तकारो के लिए पुनर्वास का काम बहुत कठिन हो गया है। उनकी जरूरत की सभी चीजे मसलन धागा, लोहा, जाल चमडा इत्यादि कालाबाजार म पहुच गया है। किसानो के पास खेत जोतन के लिए बैल नही है। बगाल के गावो मे रहने वाले 3 लाख अर्थात 8 5 प्रतिशत परिवारो के पास अब कोई मवेशी नही है जबकि अकाल पडने से पहले इनके पास काफी सख्या मे मवेशी थे। इस एक वष के दौरान 20 प्रतिशत बैल या तो मर गए या गैरखेतिहर लोगो के हाथो मे पहुच गए।

कजदार परिवारो की सख्या मे भी तेजी से वृद्धि हुई। किसान समिति के कायकर्ताओ ने निम्नलिखित आकडे एकत्र किए थे जिनसे अकाल से सर्वाधिक बुरी तरह ग्रस्त इलाकों म रहने वाले परिवारो की ऋणग्रस्तता मे वृद्धि का पता चलता है

	कर्ज मे डूबे परिवारों का प्रतिशत	
	1943	1944
किसान परिवार	43	66
विभिन्न दस्तकार	27	56
विविध	17	46

(वही, पृष्ठ 12)

आज स्थिति यह है कि किसानो की एक बहुत बडी सख्या के पास न तो जमीन है, न बीज है, न मवेशी हैं और न ही अपनी जरूरत की चीजे खरीदन के लिए पैसा है। इसके साथ ही बार बार रोग के आक्रमण के कारण अनेक स्वस्थ व्यक्ति पूरी तरह अक्षम हो गए हैं। वस्तुत 'सपत्तिवान किसान आज गाव के समृद्ध किसान अथवा जोतदार पर निभर कर रहा है ताकि उसे जमीन, मवेशी, खली और बीज मिल सके। जमीन पाने के लिए और मवेशियो तथा बीज की व्यवस्था के लिए उसे अपने को किसी भी शर्त पर बेचना पडता है। यदि वह ऐसा न करे तो वह एक मजदूर की हैसियत म पहुच जाएगा। (वही, पृष्ठ 10)

बगाल म जो कुछ हुआ वह उस सकट का उग्रतम रूप था जो समूचे देश पर छा रहा था। युद्ध के समय म हुई मूल्यवृद्धि से किसान जनता कही भी लाभ न उठा सकी। केवल मझौले किसानो का एक बहुत मामूली तबका अपना कुछ कर्ज उतार सका। लेकिन आम जनता कर्ज के बोझ के नीचे दिनोदिन दबती गई और इस प्रकार जमीन उसके हाथ से निकल गई। हाल ही म मद्रास सरकार ने डाक्टर बी० बी० नायडू की देखरेख मे युद्ध के दौरान गावो मे कर्ज की स्थिति का एक सर्वेक्षण कराया। इस जाच के बाद जो विभिन्न आकडे सामने आए उनम कोई सही तस्वीर नही मिल पाती है वे जो तस्वीर पेश करते हैं वह

पूरी तरह पक्षपातपूर्ण है और इसमें जमींदारों के पक्ष को काफी महत्व दिया गया है। लेकिन इस जाच के जरिये भी वास्तविक प्रवृत्ति को छिपाया नही जा सका अर्थात यह बात सामने आ गई कि युद्ध के फलस्वरूप छोटे भूस्वामियों, काश्तकारों और खेतिहर मजदूरो के कर्ज मे जबरदस्त वृद्धि हुई है।

जितने दिनो तक युद्ध चलता रहा किसानो से जमीन की बेदखली की प्रक्रिया भी भयकर रूप से जारी रही। इसकी वजह से भारत अभाव, भुखमरी और अकाल की स्थिति में पहुच गया। अकाल के तीन वर्षों के अदर, 1946 मे भारत के सामने एक बार फिर वह स्थिति आ गई है जब खाद्यान्न की कमी के बारे म अनुमान लगाया गया है कि 60 लाख टन अनाज कम है और आबादी का एक चौथाई हिस्सा विनाश की आशका से ग्रस्त है।

2 किसान क्राति की आवश्यकता

इस प्रकार भारतीय किसान के सामने जो सबसे महत्वपूर्ण समस्या पैदा हो गई है वह उनके अस्तित्व की है और इस समस्या का समाधान अनिवार्य रूप से उन्हे ढूढना है। क्या मौजूदा शासन व्यवस्था के तहत, मौजूदा भूमि व्यवस्था और इसपर आधारित साम्राज्य वादी शासन के तहत कोई हल ढूढा जा सकता है ? जाहिर है और इसे सभी लोग मानते है कि कुछ बहुत बुनियादी परिवर्तन आवश्यक है जो जमीन की काश्तकारी के समूचे आधार को और जमीन के वितरण की मौजूदा प्रणाली को बदल डालें। खेती की तकनीक मे तब्दीली करना भी इतना ही महत्वपूर्ण है। फ्लाउड कमीशन को दिए गए एक ज्ञापन मे बगाल प्रातीय किसान सभा ने कहा था

> स्थाई बदोबस्त ने जमीदारो को असीमित अधिकार दे दिए है और इसने बदले मे इस प्रणाली को अपने जबरदस्त दबाव के तहत एकाधिकार और यातना का रूप दे दिया है हमारा अनुभव हमे बताता है कि स्थाई बदोबस्त एक ऐसा कठोर ढाचा तैयार करता है जिसमे कोई भी व्यावहारिक सुधार काम नही कर सकता। वैधानिक सुधार की बात को भले ही विधान की पुस्तिका म स्थान दे दिया जाए पर जमीदार वर्ग के पास जो अधिकार है उनसे वह निरर्थक किया जा सकता है यही वह प्रणाली है जो अपने विभिन्न प्रतिनिधियो, जमीदारो सूदखोर महाजनो और पुलिस के जरिए उत्पीडित किसानो के दिमाग मे यह बात डालने की कोशिश करती रहती है कि वे अपनी जमीन छोडकर चले जाए। इन परिस्थितियो म यदि स्थाई बदोबस्त व्यवस्था को समाप्त करने की माग की जाती है तो यह किसी गडबड सोच का नतीजा नही है बल्कि इस माग के पीछे एक गहरी समझदारी है और वह यह है कि जमीन की काश्तकारी प्रणाली म कोई सुधार करना असभव है। (ज्ञापन, पृष्ठ 4-5)

जमींदारी प्रथा समाप्त होनी ही चाहिए। जैसा हमने भारत म देखा है जमींदारी प्रथा

उस विदेशी सरकार की एक कृत्रिम देन है जो पश्चिमी संस्थाओ को यहा आरोपित करना चाहती है और जिसकी यहा की जनता की परपराओ म कोई जड नही है। इसका नतीजा यह है कि यहा की जमीदारी प्रथा किसी भी देश के मुकाबले बिलकुल ही कर्तव्यहीन है, यहा तक कि वह किसान के लिए भी भूमि के विकास या सरक्षण के काम म अपनी आवश्यक भूमिका नही निभाती। उलटे, वह अपनी अदूरदर्शितापूर्ण बहुत अधिक मागो से भूमि का गलत इस्तेमाल और इसकी बरबादी करती है। यह किसानो पर विशुद्ध रूप से परोपजीविता का दावा है और जहा बडी जमीदारिया है वहा जमीदार प्राय अपना एक नुमाइदा नियुक्त कर देता है जो छोटे जमीदार की भूमिका निभाता है और फिर बिचौलिये जमीदार के कारण परोपजीविता म और वृद्धि होती है। किसानो की पहले से ही अपर्याप्त उपज पर इन परोपजीवियो के दावे के लिए कोई जगह नही है। जो कुछ भी पैदा किया जाता है उससे पहले, जीवन यापन की आवश्यकताए फिर सामाजिक आवश्यकताए और अत मे कृषि के विकास की आवश्यकताए पूरी की जानी चाहिए।

यही बात महाजनी प्रथा और कर्ज के पहाड के बारे मे भी सच है। कर्ज की राशि मे जबरदस्त कमी और फिर इसे रद्द कर देना एकदम जरूरी है। लेकिन केवल इतना कर देने से कोई फायदा नही होगा या अस्थाई तौर पर ही थोडी राहत मिल सकेगी यदि इसके साथ साथ कर्जदारी को रोकने के लिए या महाजनो की भूमिका के विकल्प म कोई अन्य सगठन न तैयार किया गया। इसका अर्थ सबसे पहले तो यह हुआ कि किसानो पर किए जाने वाले अत्यधिक दावे समाप्त किए जाए और आर्थिक जोतो को सगठित किया जाए और दूसरे, जब तक कोई सामूहिक सगठन न तैयार हो जाए जो अनत कर्ज की जरूरतो का स्थान ले ले तब तक सस्ती दर पर ऋण की सुविधा होनी चाहिए।

यह मानना पडेगा कि लगान की माफी और लगान की राशि म कमी तथा ऋण मे कमी और ऋण पर लगने वाले ब्याज की दर म कमी के अस्थाई और आशिक उपाय तत्काल सभव हैं और काग्रेस सरकारो द्वारा विभिन्न प्रातो म कही कम और कही अधिक उपाय किए जा रहे हैं पर समस्या के बुनियादी हल के लिए पूरी भूमि व्यवस्था का पुनर्सगठन जरूरी है। लगभग 30 लाख छोटे और अधीनस्थ जमीदारो के एक बडे वर्ग के अस्तित्व ने, जो स्वय बहुत गरीब हैं और जिनकी जातें लगभग उतनी ही हैं जितनी कि शहर मे रहने वाले किसी अल्प वेतनभोगी व्यक्ति की 'वृद्धावस्था की पेंशन' होती है जमीदारी प्रथा की समूची प्रणाली को जटिल बना दिया है। इसके फलस्वरूप लगान मे कमी करने का कोई भी उपाय ऐसा होना चाहिए जिससे इस बात की निश्चितता रहे कि मुख्य भार बडे जमीदारो पर पडेगा। यह सुझाव दिया गया है कि श्रेणीगत कृषीय आय कर (वर्तमान आय कर व्यवस्था म कृषीय आय पर कर नही लगता और इस प्रकार एक तरफ तो जमीदार आय कर देने से मुक्त हो जाता है और दूसरी तरफ उद्योग धधो पर अधिकाधिक बोझ पड जाता है) की व्यवस्था की जाए जिसमे बडे जमीदारो पर कर की ऊची म ऊची दर लगाई जाए और छोटे जमीदारो को कर से मुक्त रखा जाए तो इस लक्ष्य को

प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी, राज्य की आय बढ़ाकर या लोकशासन अथवा कांग्रेस सरकार के जरिए खेती के विकास के लिए काफी पैसा जारी कराकर भी किसानो पर बोझ कम करने की तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति तब तक नही की जा सकती जब तक इस तरह प्राप्त की गई राशि का इस्तेमाल जमीन की मालगुजारी कम करने और इसके साथ ही अनिवार्य रूप से लगान की राशि म कमी करने के लिए न की जाए। तदनुसार जमीदारी प्रथा की बुराइयो से और व्यवस्थित ढग से निबटने का काम व्यापक आर्थिक पुनर्गठन के कार्यक्रम का एक हिस्सा होना चाहिए जो छोटी जोतावाले विस्थापित किसानो और उन लाखो लोगो के लिए जो निश्चय ही खेती के क्षेत्र म अत्यधिक भीड होने से अपने व्यवसाय से अलग हो चुके ह, जीवनयापन का कोई वैकल्पिक साधन प्रस्तुत करे। इसलिए खेती के विकास और उद्योग धधो के विकास के लिए किए जान वाले उपायो म एकता जरूरी है।

बुनियादी समस्या महज जमीदारी प्रथा की समस्या नहीं है बल्कि वर्तमान भूमि व्यवस्था और जोतो के वितरण का पुनर्गठित करने की व्यवस्था है। गैरआर्थिक जोतो तथा खेतो के छोटे छोटे टुकडो मे बटे होने की खामियो को दूर करने के लिए जोतो का पुनर्वितरण बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था। उदाहरण के लिए जब यह स्मरण किया जाता है कि बबई प्रेसीडेंसी मे 48 प्रतिशत खेत 5 एकड से भी कम क्षेत्र के है और फिर भी उनका कुल योग समूचे क्षेत्रफल के 2 4 प्रतिशत से अधिक नही है उसी समय यह महसूस किया गया था कि पुनर्वितरण का काम कितना जरूरी है (कृषि आयोग का साक्ष्य, खड II, भाग 1, पृष्ठ 76)। फिर भी इस तरह के पुनर्वितरण का काम जिसम निश्चित रूप स सख्या के दावो की तरफ से व्यक्तिगत निहित स्वार्थों को नुकसान पहुचाना है, किसी विदेशी सरकार की नौकरशाही नही पूरा कर सकती है चाहे वह इसके लिए कितनी भी इच्छुक क्यो न हो। यह काम केवल किसानो के पहल और उनकी कार्यवाही के जरिए हो सकता है और यह काम ऐसी सरकार के नेतृत्व के अतर्गत हो सकता है जो उन किसानो का प्रतिनिधित्व करे और उनके हितो के लिए सघर्ष करे।

फिर भी कृषि सबधी विकास की समूची समस्या से निपटने के लिए भूमि का पुनर्वितरण केवल पहला कदम है। इसके लिए सबसे जरूरी यह है कि कृषि म तकनीक का आधुनिक स्तर तक लाया जाए, खेती के काम मे मशीनो का इस्तेमाल किया जाए और खेती के लायक जमीन के जो इलाके बजर पडे हैं उन्ह खेती योग्य बनाया जाए। इस सदर्भ मे केंद्रीय बैंकिंग जाच समिति (इनक्लोजर 13, पृष्ठ 700) के उस अनुमान को उद्धृत करना प्रासगिक होगा जिसमे कहा गया था कि यदि प्रति एकड उपज को उस स्तर तक उठा दिया जाए जिस स्तर पर इग्लैंड म उपज होती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति वर्ष सपत्ति मे एक अरब पौंड की तत्काल वृद्धि हो जाएगी। इसी प्रकार यदि उपज का स्तर डेनमार्क मे गहू के उत्पादन के स्तर तक पहुचा दिया जाए तो प्रति वर्ष सपत्ति म कुल वृद्धि 1 अरब 50 करोड पौंड की होगी (अर्थात 1933-34 मे हुई फसलो के कुल मूल्य

हित महाजनी पूजी द्वारा भारतीय जनता के शोषण के साथ जुडे हुए है ताकि भारत एक पिछडा हुआ कृषीय उपनिवेश बना रहे। इन हालातो मे साम्राज्यवाद के लिए खेती की समस्या को हल करने का प्रयत्न करना असभव है।

स्वय साम्राज्यवादियो ने भी यह स्वीकार किया है कि अत्यत आवश्यक कृषीय समस्या को हल करने मे साम्राज्यवाद असफल साबित हुआ है। इस सदभ मे 1927 म भारतीय कृषि की जाच के लिए गठित शाही आयोग के विचाराथ विषयो का प्रतीकात्मक महत्व है। इस आयोग का गठन अगरेजो द्वारा शासन स्थापित करने के 170 वर्षो बाद किया गया। आयोग की स्थापना का उद्देश्य 'ब्रिटिश भारत मे कृषीय और ग्रामीण अथव्यवस्था की समस्याओ पर विचार करना था लेकिन आयोग को भूमि व्यवस्था पर हाथ भी नही लगाने दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि इसकी छोटी मोटी सिफारिशें अनिवाय रूप से सीमित महत्व की सिफारिशे बनकर रह गई जो व्यवहार मे पूरी तरह बअसर साबित हुइ। इस रिपोट और साक्ष्य के 17 खडो मे दफना दिया गया। कृषि के क्षेत्र म बढते हुए सकट को किसी सीमा तक रोकने के लिए इसम कृषि सबधी स्थितिया के प्रमाण का भडार था लेकिन इस रिपोट के तैयार होने के बाद से खेती की समस्या बडी तजी स उग्र रूप लेती गई है।

खेती की समस्या के सदभ म साम्राज्यवाद की नपुसकता का प्रमाण उसके दिवालियेपन का व्यवहारिक लेखा जोखा प्रस्तुत करता है। अभी हाल के वर्षो म बहुत सीमित क्षेत्र म कृषि सबधी शोध सस्थाओ और केंद्रो की व्यवस्था की गई है (इपीरियल ऐग्रीकल्चरल रिसच इस्टीट्यूट की स्थापना तभी सभव हो सकी जब शिकागो के एक लखपती व्यक्ति ने भारी धनराशि दान मे दी, 1936 37 म कृषि सबधी विभागो पर केंद्रीय और प्रातीय सरकारो द्वारा कुल 22 लाख 50 हजार पौंड खच किया गया जो कुल बजट का 1 4 प्रतिशत था। लेकिन इस तरह के सस्थान और केंद्र किसान जनता को व्यवहार रूप म तब तक सहायता नही पहुचा सकत जब तक उनके पास तकनीकी विकास के लिए साधन नही उपलब्ध होत और जब तक वह शोषण नही बद होता जो उन्हे अधभुखमरी, गुलामी और अज्ञानता की सवाधिक पिछडी स्थितियो म कैद किए हुए हैं।

कृषि सबधी आयोग की रिपोट म (पृष्ठ 436-37) इस बात का पहले ही उल्लेख किया गया है कि कजदारी के विकास पर रोक लगाने के लिए खेतिहरो की सहायता के लिए कानून सबधी जो विभिन्न उपाय किए गए व असफल साबित हुए। इसी प्रकार काश्तकारो की सुरक्षा के लिए काश्तकारी सबधी कानून बनाने के लिए किए गए विभिन्न प्रयासो को जमीदारी व्यवस्था के तेजी स विस्तार को रोकने म तथा शिकमी की प्रणाली और जबरदस्त लगान वसूली का तरीका रोकने म सफलता नही मिली। सुविधा प्राप्त अधिकृत काश्तकार बहुधा खुद ही छोटे जमीदार की भूमिका निभाने लगते है और उप काश्तकारो का शोषण करने लगते है जिन्हे कोई सरक्षण नही प्राप्त है।

जैसा पहले ही बताया गया है (देखें पृष्ठ 176-78) पुरानी सिंचाई व्यवस्था की भरपूर उपेक्षा और अतत बरबादी के बाद 19वी सदी के मध्य से ब्रिटिश सरकार ने सिंचाई की व्यवस्था के सबध म जो थोडा बहुत काम किया है उसे बहुधा कृषि के क्षेत्र म बहुत बडी उपलब्धि का नाम दिया जाता है। लेकिन ब्रिटिश भारत मे कुल बोए गए क्षेत्र का 23 प्रतिशत हिस्सा ही आज भी सिंचाई की सुविधा पा सका है (1939 40 म 24 करोड 50 लाख एकड म से केवल 5 करोड 50 लाख एकड ही सिंचित क्षेत्र था)। सरकार की सिंचाई व्यवस्था से केवल 10 प्रतिशत जमीन को ही लाभ मिलता है (1939 40 म ढाई लाख एकड जमीन)। इसके अलावा भारतीय रियासतो म लगभग 15 लाख एकड म सिंचाई होती थी और इस प्रकार कुल सिंचित क्षेत्र 6 करोड 55 लाख एकड हुआ। सिंचाई के लिए काफी पैसा लिया जाता है और यही कारण है कि यह सुविधा गरीब किसानो के लिए नही है। इससे किसानो पर और भी बोझ बढ जाता है। सरकार की सिंचाई व्यवस्था ने 1918-21 मे कुल 7 8 प्रतिशत का मुनाफा कमाया और यहा तक कि 1935-36 म भी उसने 5 7 प्रतिशत का विशुद्ध मुनाफा कमाया।

खेती के क्षेत्र म जो दुर्व्यवस्था है उसको अतिम तौर से समाप्त करने के लिए सरकार ने रामबाण के रूप मे सरकारी विभाग के अतगत सहकारी ऋण समितियो के आधार पर कृषीय सहयोग को विकसित और पोषित किया। सहयोग म सरकार ने जो यह विशेष दिलचस्पी दिखाई उसके मूल म कौन से उद्देश्य काम कर रहे थे और कौन सी आशाए थी इसे डार्लिंग महोदय ने अपनी ताजा पुस्तक म बडी कुशलता के साथ समझाया है। लगान और जमीदारी न देने के लिए काग्रेस ने जो आदोलन किया था उसका उल्लेख करते हुए श्री डार्लिंग ने लिखा है कि पजाब का एक जिला मूर्खतापूर्ण प्रचार स ग्रस्त हो गया है,' और उन्होने टिप्पणी की कि 'यह महत्वपूर्ण बात है कि इन गावो म से केवल एक म सहकारी समिति थी।' उन्होने आगे कहा

> इस तरह के आदोलनो का सबसे अच्छा प्रतिकारक है —सहयोग और इसम कोई सदेह नही किया जा सकता कि पिछले वर्ष सूबे म जो 20 हजार समितिया काम कर रही थी उनका गाव पर एक उपशामक असर था और उन्होने कानून भग करने की घटनाओ को आमतौर से फैलने से रोका। इस तरह की घटनाओ से अनेक नगर परेशान हो चुके हैं। (एम० एल० डार्लिंग 'रस्टीकस लोक्वीटर इन दि पजाब विलेज' 1934 पृष्ठ 83 84)

दुर्भाग्यवश खेतिहरो को ऋण देने के लिए जो सहकारिता आरभ की गई उससे गरीब किसान लाभान्वित हो सके हैं क्योकि उनके पास इसकी सदस्यता के लिए आवश्यक साधन नही हैं। इसका लाभ मुख्यत मझोले किसानो को मिलता है जो पहले ही से अच्छी स्थिति म है और जिन्हे अदालतो मे निगाह रखने की जरूरत है।

हम जो पैमाना इस्तेमाल करेंगे उसके एक सिरे पर ऐसे लोग हैं जो अच्छे खाते पीते है और जो स्वय को सदस्य बनाकर असीमित देयता का खतरा अपने ऊपर मोल लेना नही चाहते। दूसरे सिरे पर ऐसे व्यक्ति है जो इतने गरीब है कि उन्ह सदस्यता नही मिल सकती। इसलिए यह मानना उचित नही होगा कि सहकारिता आदोलन म लगी आबादी औसत कृषि आबादी का प्रतिनिधित्व करती है।' (बगाल प्रातीय बैंकिंग जाच समिति की रिपोट, पृष्ठ 69)

एक और बडी कठिनाई यह है कि निधनतम जिलो मे, जहा किसाना को सहायता की सबसे ज्यादा आवश्यकता है ऋण समितियो का कोई इस्तेमाल नही है। इन समितियो के बेकार पडे रहन से बेहतर यह है कि वे उन किसाना को कज दें जो जमीन के टुकडे टुकडे होने या अन्य कठिनाइया की वजह से अपनी जोतो का भुगतान करने मे स्थाई तौर पर अक्षम ह। इस प्रकार मुख्यतया अत्यत समृद्ध इलाको म ही ऋण समितिया कामयाब हुई है। (एस्टे इकोनामिक डेवलपमेंट आफ इडिया, पृष्ठ 202)

यह मौजूदा स्थितिया म कृषि सबधी सहयोग का क्षेत्र अत्यत सीमित होने के कारण है। 1939 40 म ब्रिटिश भारत मे कृपीय सहकारी समितिया के सदस्यो की कुल सख्या 4,098,426 थी जो गावो मे रहने वाली कुल आबादी का 1 6 प्रतिशत थी। ग्रामीण इलाको मे रहने वाले परिवारो के अनुपात के बारे मे कृषि आयोग की रिपोट म निम्न तालिका दी गई थी (पष्ठ 447)

कृपीय सहकारी समितिया के सदस्या और ग्रामीण इलाका म रहने वाले परिवारो का अनुपात

	प्रतिशत
बगाल	3 8
बबई	8 7
मध्य प्रात	2 3
मद्रास	7 9
पजाब	10 2
सयुक्त प्रात	1 8

रिपोर्ट मे की गई टिप्पणी के अनुसार, यह देखा गया कि पजाब, बबई और मद्रास को छोडकर, प्रमुख सूबो म यह आदोलन गावो म रहने वाली आबादी के एक छोटे हिस्से तक ही पहुच सका है। इन अनुपातो से प्राप्त स्तर का पता चलता है (यह ध्यान देने की बात है कि बगाल और सयुक्त प्रात जैसे सर्वाधिक अभावग्रस्त सूबो म, जहा सबसे ज्यादा गरीबी है, यह अनुपात काफी कम है) और यह जानकारी मिलती है कि जब तक वतमान अस मथता और बाप बने रहग, तब तक कृपीय सहकारिता से यह आशा नही की जा सकती कि इससे किसाना की समस्याए हल होगी।

साम्राज्यवाद के समथको के लेखो मे भी अब यह काफी खुलकर आने लगी है कि भारतीय कृषि की समस्या को अर्थात भारतीय जनता की अत्यावश्यक जीवन समस्या को हल करने के लिए, एक बुनियादी पुनगठन की जरूरत है जो भूमि प्रणाली की जड तक पहुचे। वे अब यह भी मानने लगे ह कि इस तरह के पुनगठन की कोशिश साम्राज्यवादियो द्वारा नहीं की जा सकती बल्कि यह काम केवल भारतीय जनता ही एक जिम्मेदार सरकार के तहत पूरा कर सकती है

> राजनीतिज्ञो और अधिकारियो न भी ग्रामीण जीवन के सुधार की अत्यावश्यक जरूरत को स्वीकार किया है लकिन इस दिशा म किए गए खास खास उपाय बहुधा या तो अपर्याप्त साबित हुए है या इनके लिए क्रांतिकारी परिवतनो की जरूरत है जिसके लिए भारत के स्वायत्त होन तक प्रतीक्षा करनी होगी। (थाम्पसन और गैरट 'राइज ऐड फुलफिलमट आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया' 1934, पृष्ठ 648)

> यह सुझाव दिया गया है कि इसका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि एक एक करके खास खास इलाको को लिया जाए और हर तरह के पारिवारिक तथा कानूनी अधिकारो सहित वहा की समूची व्यवस्था को 'दुरुस्त' किया जाए। (इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अथशास्त्र विभाग की बुलेटिन सख्या 9, 1918 म एच० स्टैनले जेवोस का लेख 'दि कमालिडेशन आफ ऐग्रीकल्चरल होल्डिंग्स इन दि यूनाइटेड प्राविसेज,')। फिर भी यह तब तक पूरी तरह अव्यावहारिक लगता है जब तक एक जिम्मेदार सरकार न कायम हो जाए। (एस्टे 'दि इकोनामिक डेवलपमेट आफ इडिया' 1936, पृष्ठ 101)

> हालाकि यह सच है कि यदि ज्ञात विकसित साधनो का बडे पैमाने पर इस्तेमाल किया जाए तो कृषि की पैदावार म क्रांति लाने के लिए यह पर्याप्त होगा लेकिन इसमे सदेह है कि उन बुनियादी कठिनाइयो को निकट भविष्य म समाप्त किया जा सकेगा जो अतीत म विकास की प्रक्रिया तेज करने म बाधा पहुचाती थी। ऐसा इसलिए क्योकि किसी भी आवश्यक सुधार के दौरान धार्मिक तथा सामाजिक सस्थाओ और रीति रिवाजो मे एक अश तक हस्तक्षेप करना पडेगा और यह काम ऐसी सरकार नही कर सकती जिसे जनता का भरपूर विश्वास और समथन न प्राप्त हो। (वही, पृष्ठ 177)

इस दृष्टिकोण का आधार जिस सिद्धात पर टिका है वह निस्सदेह ठीक है भले ही इन भाष्यकारो द्वारा जो तक पश किया जाता है वह मौजूदा स्थिति म किसी बुनियादी सुधार के काम को विलबित करने और अस्वीकार करन के लिए पश किया जाता हो ('निश्चित

तौर पर इतजार करना होगा,' 'पूरी तरह अव्यावहारिक है बशर्ते ,' 'निकट भविष्य मे सदिग्ध है ')।

भारतीय कृषि मे अर्थात भारत की अर्थव्यवस्था और यहा के लोगो के जीवन मे जिन महान परिवर्तनो की आवश्यकता है और जिनकी जरूरतो को प्रत्येक पक्ष स्वीकार करता है, ऐसे वे परिवतन केवल भारतीय जनता ही एक ऐसी सरकार के नेतृत्व मे ला सकती है जिसका चुनाव स्वय उसने किया हो, जिसमे उसका विश्वास हो, जो खुद जनता की स्वतत्र क्रियाशीलता और सहयोग प्राप्त कर सकती हो।[1] इसीलिए कृषि के क्षेत्र मे पुनगठन का काम, जो अब बहुत जरूरी है, राष्ट्रीय मुक्ति और जनतात्रिक स्वतत्रता के काम से जुडा है। किसान क्राति का सबध जनतात्रिक क्राति से है।

4 किसान आदोलन का विकास

हाल के कुछ वर्षो मे किसान आदोलन का जो विकास हुआ है, वह इस परिस्थिति म भारत की एक सबसे महत्वपूण घटना है। जब से भारत मे अगरेजो का शासन स्थापित हुआ तब से समय समय पर किसान असतोप और किसान विद्रोह की घटनाए सामने आई और इनकी सख्या मे बराबर वद्धि होती गई। प्रारभ मे किसानो का यह असतोष और गुस्सा आदिम और स्वत स्फूर्त रूप मे अलग अलग सूदखोर महाजनो और जमीदारो से बदला लेने तथा हिंसा का प्रयोग करने की छुटपुट कायवाहियो का रूप लेता रहा। 1852 म बबई सरकार को भेजी गई एक रिपोट में सर जाज विगनट ने लिखा था

> हमारी प्रेसीडेसी के दो विरोधी छोरो पर गाव के सूदखोर महाजनो की उनके कजदारो द्वारा हत्या की गई है जिनके बारे म मेरी आशका यह है कि इन घटनाओ को कजदारो पर दमन के फलस्वरूप की गई कायवाही मात्र न समझा जाए। यह एक ऐसा उदाहरण है जिससे पता चलता है कि हमारी खेतिहर आबादी और सूदखोर महाजनो के बीच आमतौर पर जो सबध बन रहा है वह कितना गभीर है। और यदि एसा है ही तो इन घटनाओ मे एक तरफ जबरदस्त दमन और दूसरी तरफ घोर पीडा का किस सीमा तक पता चलता है ? व कौन सी स्थितिया है जिनम किसानो को, जो बडे सहनशील और सदियो से चले आ रहे दुर्व्यवहार तथा अन्याय को चुपचाप झेलने वाले माने जाते है, महाजनो की गलतिया सुधारने के लिए और अपनी घृणित मृत्यु रोकने के लिए हत्या तक का सहारा लेना पडता है ? किस तरह न्याय की उनकी धारणा का नाश किया जाना चाहिए ? कानून या सरकार म उन्होने कैसे यह आशा छोड दी कि उनकी शिकायतो पर सुनवाई की जाएगी और वह कौन सी सीमा थी जहा आकर उनके धैयपूण और शात स्वभाव ने इतना गभीर कदम उठा लिया ? (सर जाज विगेट रिपोट टु इंडिया गवनमट ऑफ 1852)

समय समय पर विशाल प्रदशन हुए जिनमे 30 हजार से लेकर 40 हजार किसाना ने भाग लिया, इनके साप्ताहिक समाचारपत्रा का प्रकाशन शुरू हुआ, इनके लिए गाने लिखे गए और पर्चे तैयार किए गए। किसानो की शिक्षा के लिए स्कूलो की शुरुआत हुई। इससे सावित होता है कि किसानो का आदोलन काफी मजबूत और ठोस होता जा रहा था। काग्रेस मत्रिमडला पर इस बात के लिए जबरदस्त दवाव डाले जा रह थे कि वे सुधार के उपाय अमल मे लाए। इन सरकारा पर जमीदारो के प्रभाव को कम करन की भी कोशिशें जारी रही।

अखिल भारतीय किसान सभा का चौथा अधिवेशन अप्रैल 1939 म गया म हुआ। इस समय तक सगठन के सदस्यो की सख्या 8 लाख तक पहुच गई थी। इस अधिवशन म पारित राजनीतिक प्रस्ताव मे घोषणा की गई

> पिछले वष भारत के किसानो मे चमत्कारी जागृति और उनकी सगठनात्मक शक्ति के विकास का प्रमाण मिला ह। देश के सामान्य जनतात्रिक आदोलन म किसाना ने पहले से कही अधिक बडे पैमाने पर हिस्सा लिया है। इतना ही नही उन्होन चेतना के स्तर को भी प्राप्त कर लिया है जो उन्ह उनके वग से परिचित कराती है और यह वग सामतो और साम्राज्यवादिया के निमम शोषण के खिलाफ अपना अस्तित्व बनाए रखने की जी तोड कोशिश मे लगा है। इसलिए उनके वग सगठनों मे निरतर वृद्धि हुई है और इस शोषण के खिलाफ उनका सगठन इतने ऊचे स्तर तक उठा है कि विभिन्न आशिक सघर्षों म उन्ह हिस्सा लेना पडा ह और इस प्रकार उनमे एक नई राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई है। उन्होन उन शक्तिया क स्वरूप को समझ लिया है जिसके विरुद्ध वे सघष कर रह है और अब व यह जान चुके हैं कि उनकी गरीबी और शोपण की समाप्ति के लिए सही तरीका कौन सा है। देश की अन्य साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो के साथ मिलकर की गई कायवाहिया न अब उनकी दृष्टि को सीमित नही रखा है। व इस नतीजे पर पहुचे ह कि राज व रोज के सघष की तकमगत परिणति साम्राज्यवाद पर जबरदस्त आक्रमण और साम्राज्यवाद की समाप्ति म ही होनी चाहिए। इसके साथ ही एक किसान क्राति आवश्यक है जो उन्ह जमीन दगी, राज्य और उनके बीच बिचौलियों द्वारा किए जा रह हर तरह के शोपण को समाप्त करेगी, कज के बोझ से उन्हें मुक्त करेगी और उनके परिश्रम का पूरा पूरा फल उन्ह प्राप्त हो सकगा।

> दूसरे, पिछला वप प्रातीय सरकारो द्वारा किसाना को दी गई छोटी मोटी राहता का वप रहा। ये राहतें बेहद अपर्याप्त थी और निहित स्वार्थों न इनके माग म बडी बडी रुकावटें डाली जिनका मुकाबला करना पडा। इससे यह स्पष्ट रूप स पता चलता है कि बुनियादी किसान समस्याओ को हल करने म प्रातीय स्वायत्तता बिलकुल ही असमथ ह। इन बाता न प्रातीय स्वायत्तता के खोखलेपन

को पूरी तरह सामने ला दिया। सगठन को आज यह घोषित करते हुए गर्व हो रहा है कि भारत के किसान अपने को सामती साम्राज्यवादी शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए और इस काम को पहले के मुकाबले और तेजी से करने के लिए कृतसंकल्प हैं।

किसान सगठन यह घोषणा करता है कि समय आ गया है जब देश की सयुक्त शक्तिया कांग्रेस राज्यों की जनता, किसानों, मजदूरों और सामान्य जनों तथा सगठनों के साथ मिलकर साम्राज्यवादी प्रभुत्व के गुलाम सविधान पर आक्रमण करने, पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता को प्राप्त करने और भारतीय जनता के जनतात्रिक राज्य की स्थापना के लिए आगे आए जिसमें अतत किसान मजदूर राज कायम किया जा सके।

गया के इस अधिवेशन के कुछ ही महीनों के अदर विश्वयुद्ध छिड गया। इसके बाद 'भारत रक्षा अधिनियम' के अतर्गत भारतीय जनता पर दमन का एक जबरदस्त दौर चला। मजदूरों और किसान आदोलनों के नेताओं की देश भर में व्यापक गिरफ्तारिया हुईं और बिना मुकदमा चलाए उन्हें जेलों में डाल दिया गया। लेकिन तमाम दमन के बावजूद किसानों ने देश भर में साम्राज्यवादी सामती व्यवस्था के विरुद्ध अपना जबरदस्त सघर्ष जारी रखा। पजाब में लाहौर और अमृतसर के किसानों ने जमीन की मालगुजारी कम करने की माग को लेकर बडे बडे जुलूस निकाले और प्रदर्शन किए। 5 हजार से भी अधिक किसानों को, जिनमें सैकडों महिलाए भी शामिल थी, जेलों में ठूस दिया गया। उनकी कुछ मांगें छ महीने बाद आशिक तौर पर मान ली गइं और तब आदोलन समाप्त हुआ लेकिन इससे पहले इन बदी किसानों में से चार की मृत्यु जेल के अदर हो गई। बिहार, आध्रप्रदेश, बगाल, मध्य प्रात, सयुक्त प्रात, मालाबार, सिध और सुरमा घाटी में किसानों ने मनमानी कर वसूली तथा जबरन बेदखली आदि के खिलाफ जबरदस्त सघर्ष चलाया। मार्च 1940 में पलास में अखिल भारतीय किसान सभा का पाचवा अधिवेशन हुआ जिसमें पारित प्रस्ताव में घोषणा की गई

सभा का यह विश्वास और भी दृढ हुआ है कि भारत के किसान, जिनकी शाति में सबसे बडी बाजी लगी हुई है, देश के मजदूरों के साथ मिलकर स्वतत्रता के सघर्ष में हरावल दस्ते का काम करेंगे, विदेशी सरकार की सत्ता को चुनौती देंगे तथा देश के ससाधनों का देश से बाहर भेजे जाने का विरोध करेंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसानों को चाहिए कि वे अपने रोज ब रोज के सघर्ष को अपनी किसान सभाओं के नेतृत्व के तहत चलाए और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सघर्ष के साथ साथ भारतीय राजाओं और महाराजाओं, जमींदारों तथा साहूकारों के विरुद्ध भी जोरदार सघर्ष चलाए क्योंकि ब्रिटिश सरकार के ये ही आधार स्तभ हैं। दिनोदिन तेज होते और व्यापक क्षेत्रों में फैलते इन सघर्षों को शीघ्र ही देशव्यापी

> कर और लगान न देने के आदोलन का रूप ले लेना चाहिए ताकि साम्राज्यवाद के इन परोपजीवियो की आर्थिक सत्ता समाप्त हो जाए और भारत मे ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक सत्ता की नीव हिल उठे ।

1942-45 की अवधि पूरे किसान आदोलन के लिए बडी परीक्षा की थी। अगस्त 1942 मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा राष्ट्रीय आदोलन पर निमम आक्रमण किया गया, कांग्रेस नेताओ की गिरफ्तारिया हुई और इसके बाद दमन का एक जबरदस्त दौर चला। इसके साथ ही देश की अर्थव्यवस्था बुरी तरह चरमरा गई। जमीदारो, व्यापारियो, जमाखोरो और कालाबाजारियो ने भ्रष्ट नौकरशाही के साथ साठ गाठ करके करोडो लोगो के जीवन के साथ भयकर खिलवाड किया। बडे पैमाने पर गावो की किसान जनता अकाल और विनाश की चपेट मे आ गई, बगाल में गरीब निर्धन किसान मक्खियो की तरह मारे गए।

इस प्रकार सगठित किसान आदोलन के कधो पर एक बहुत बडी जिम्मेदारी आ पडी। इस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए अखिल भारतीय किसान सभा और उसकी प्रातीय शाखाओ ने राष्ट्रीय नेताओ की रिहाई के लिए तथा एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए दृढतापूर्वक आदोलन चलाया, सरकारी दमनचक्र का बहादुरी से सामना किया, युद्ध के लिए जबरन की जा रही धन की वसूली के खिलाफ सघर्ष किया और अधिक अन्न पैदा करने के लिए तथा प्रत्येक गाव मे नौकरशाहो, जमाखोरो और कालाबाजारियो के इरादो को नेस्तनाबूद करने के लिए आत्मसहायता आदोलन को सगठित किया।

यह समूचा दौर भारतीय किसानो की शानदार उपलब्धियो से भरा है। आध्र प्रदेश मे हजारो एकड बजर जमीन को खेती के योग्य बनाया गया। किसानो ने आपस मे एकजुटता कायम की बडे बडे बाध बनाए और विशाल भूभागो को बाढ की बरबादी से बचाया। बगाल मे भयकर अकाल के दिनो मे भी अधिकाश गावो मे किसानो ने घूम घूम कर अनाज इकट्ठा किया और गाव की अतिरिक्त खाद्य सामग्री को उन अभावग्रस्त इलाको मे भेजा जहा उनके किसान भाई भूख से मर रहे थे। अखिल भारतीय किसान सभा के नेतृत्व में एक देशव्यापी अभियान छेडा गया जिसका उद्देश्य भयकर अकाल से बगाल की जनता को राहत पहुचाना था। इस अवसर पर देश भर के किसान उठ खडे हुए और उन्होंने बगाल की सहायता के लिए बडे पैमाने पर अनाज और धन इकट्ठा किया। स्वय अपने सूबो के अदर किसानो ने अनाज समितिया कायम की, चोरबाजारियों का भडाफोड किया और अनाज के छिपे हुए गोदामो का पता लगाया तथा जरूरतमदो के बीच अनाज का वितरण किया। सरकार के स्थानीय अधिकारियो की तरफ से दमन आदि की हर कार्यवाही का अपूर्व साहस और विश्वास के साथ मुकाबला किया गया।

देश की आजादी के लिए और सामान्य आदमी के अधिकारो के लिए निरतर सघर्ष करते

के कारण तथा जनता को अनाज सुलभ कराने के लिए अखिल भारतीय किसान सभा अधिकाधिक शक्तिशाली और लोकप्रिय संगठन बन गई। 1942 में उसके सदस्यों की संख्या 225,781 थी जो 1944 में 553,427 हो गई और 1945 में 829,686 तक पहुंच गई। युद्ध समाप्त होने पर भारत की गरीब किसान जनता में जागरण की नई लहर आई। लगातार गहराते अन्न संकट ने, आवश्यक उपभोक्ता सामग्रियों की कमी और मूल्यवृद्धि ने तथा सरकारी जुल्म और गांवों में जमींदारों के दमन ने किसानों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अधिक से अधिक जुझारू कदम उठाने के लिए प्रेरित किया है। एक तरफ किसान यह मांग कर रहे हैं कि जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए तत्काल कानून बनाए जाएं और दूसरी तरफ वे खुद भी किसान सभा के नेतृत्व में जमींदारों की बंजर जमीन पर कब्जा करने के काम में पहल कर रहे हैं। इसके साथ ही वे बेदखली तथा लगान वृद्धि की जमींदारों की कोशिशों का जबरदस्त मुकाबला कर रहे हैं।

पाद टिप्पणी

1. कृषि संबंधी आयोग की रिपोर्ट में एक दिलचस्प बयान शामिल है जिसका महत्व निस्सन्देह इसके लेखकों द्वारा सोचे गए महत्व से कहीं ज्यादा है
जहां पर पांच लाख गांवों की समस्या का मामला है, यह बात बहुत साफ है कि सरकारी संगठन उन गांवों में प्रत्येक व्यक्ति से मिलने की आशा नहीं कर सकता। ऐसा संभव बनाने के लिए जनता को खुद अपनी सहायता करने के लिए संगठित होना चाहिए और उनके स्थानीय संगठनों को बड़े संघों के रूप में उस समय तक बने रहना चाहिए जब तक सरकार की तरफ से कोई ऐसी व्यवस्था न तैयार कर ली जाए जो प्रत्येक गांव में उन संदेशों को पहुंचा सके जो विभिन्न विशेषज्ञ विभाग पहुंचाना चाहते हैं। (पृष्ठ 468)
यह टिप्पणी काफी सही है यद्यपि इसके लेखकों का ऐसा कोई इरादा नहीं था। उनका मकसद वास्तविक तथ्यों को केवल पेश कर देना था लेकिन इसमें भावी ग्राम सोवियतों के सिद्धांत का एक बुनियादी तत्व भी निहित है।

खण्ड चार

भारतीय जनता का आदोलन

10

भारतीय राष्ट्रवाद का उदय

ज्योंही गदर का खतरा सामने आता है भले ही यह गदर का रूप ले, राष्ट्रीयता की सार्वभौमिक भावना की अभिव्यक्ति का ही रूप ले, उस क्षण अपने साम्राज्य को बनाए रखने की समस्त आशाओं पर पानी फिर जाता है यो उसे सुरक्षित रखने की हमारी इच्छा भी समाप्त हो जानी चाहिए।—जे० आर० सीले दि एक्सपैंशन आफ इंग्लैंड 1883

इससे पहले के अध्यायों में हमने मुख्यत इतिहास के विषय के रूप में भारतीय जनता की दुखद स्थिति का वर्णन किया है। अब हमारे सामने अपेक्षाकृत एक अधिक सुखद दृश्य है और वह है इतिहास के कर्ता के रूप में भारतीय जनता की भूमिका। पूर्ववर्ती विवेचन ने उस स्थिति को और उन शक्तियों को हमारे सामने अनावृत करके रखने का प्रयास किया है जो भारतीय जनता के मुक्ति आंदोलन को तेज करने की तैयारी कर रही हैं और उसे अनिवार्य बना रही हैं। अपनी पहली अवस्थाओं में यह आंदोलन अनिवार्यत विदेशी शासन से मुक्ति के लिए राष्ट्रीय जनतांत्रिक संघर्ष का स्वरूप ग्रहण करता है और इसके साथ ही यह संघर्ष जमींदारों और सूदखोरों के शोषण से मुक्ति के लिए किसानों द्वारा चलाए जा रहे संघर्ष के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ता है।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास उस राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की प्रगामी चेतना और जन आधार का इतिहास है जिसकी शुरुआत उदीयमान बुर्जुआ और व्यवसाई वर्ग के थोड़े से लोगों ने अपने अत्यधिक सीमित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की थी और इतिहास की प्रक्रिया के दौरान, जो अब कहीं जाकर अपने पूर्णस्वरूप और अपनी उपलब्धियों तक पहुंच रहा है तथा और भी दूरगामी सामाजिक मुक्ति के लिए रास्ता तैयार कर रहा है।

1 एकता और अनेकता

साम्राज्यवाद के समर्थक शुरू शुरू के दिनों म एक विशेष प्रश्न किया करते थे जिसे व आज भी बहुधा दुहराते है हालाकि अलग अलग अवस्थाओ मे इस प्रश्न का स्वरूप बदला हुआ होता है। उनका प्रश्न है कि क्या भारत की जनता जैसी कोई चीज है? क्या उप-महाद्वीप जैसे विस्तारवाली विशाल भारतभूमि पर जातपात की दीवारो तथा भाषा एव अन्य दूसरे कारणो से अनेक टुकडो म बट विभिन्न नस्लो और धर्मों के लोगो के विविधता-पूर्ण जमघट को, जिसके सामाजिक और सास्कृतिक स्तर भी व्यापक तौर पर भिन्न हैं एक 'राष्ट्र' माना जा सकता है या कभी वह एक 'राष्ट्र' बन सकता है? क्या यह बिलकुल ही बदली हुई परिस्थितियो मे पश्चिमी अवधारणाओ का स्थानातरण नही है? क्या ऐसा नही है कि भारत म जो एकमात्र एकता है वह ब्रिटिश शासन के जरिए थोपी गई एकता है?

इस बुनियादी प्रश्न के प्रति जो दृष्टिकोण है वह कई अवस्थाओ से गुजरा है। पुराने मत के साम्राज्यवादियो ने भारतीय राष्ट्र की प्रत्येक धारणा को तिरस्कारपूर्ण ढग स ठुकरा दिया और इसे कल्पनामात्र कहा। 20वी सदी म राष्ट्रीय आदोलन की बढती हुई शक्ति को देखते हुए भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व को कम स कम साम्राज्यवादियो के उदार मताव लबियो द्वारा व्यापक मान्यता मिली। फिर यह दलील दी जाने लगी कि भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व को मान्यता दिए जाने जैसी स्थितियो का विकास ब्रिटिश शासन की देन है और लोगो के मन म अगरेजो के उदारतावादी आदर्शों क घर कर जाने का नतीजा है। अभी बिलकुल हाल के वर्षों म भारत की अधिकाधिक जनता म राजनीतिक जागरूकता के पैदा न होने और उनके बहुराष्ट्रीय चरित्र के बढते हुए सकेत ने इस प्रश्न को एक नया आयाम दिया है। इस पहलू को, जिसे ठीक ही समझा जाता है कि यह किसी भी अर्थ मे भारत की एकता के प्रतिकूल नही है 'पाकिस्तान' के इस विशेष प्रचार अभियान द्वारा तोडा मरोडा गया है जिसम हिंदुओ और मुसलमानो को 'दो राष्ट्र' के सिद्धात के साथ जोडा गया है। बेशक, साम्राज्यवाद के समर्थकों ने इस बाद की दलील का पूरा पूरा लाभ उठाया है।

राष्ट्रवादी आदोलन की बढती शक्ति के सामने पुराने मत के साम्राज्यवादियो द्वारा दिए गए जवाब ने उनके सशकित सहज आत्मविश्वास को फीका कर दिया था। 1888 म सर जान स्ट्रेची ने बडे दृढ शब्दो मे घोषणा की थी 'भारत जैसी कोई चीज न तो है और न कभी होगी।' यह घोषणा करते समय उनकी मुद्रा कुछ वैसी ही थी जैसी किसी जिराफ का बहादुरी के साथ मुकाबला करते समय चिडियाघर के किसान की होती है

> भारत के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए पहली और अत्यावश्यक बात है यह जानना कि भारत जैसी कोई चीज या कोई देश न तो है और न कभी होगा

> जिसमें यूरोपीय विचारों के अनुसार भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता जैसी कोई एकता हो। जिसके बारे में हम इतना कुछ सुनते हैं वैसा न तो कोई भारतीय राष्ट्र है और न कहीं 'भारत की जनता' है। (सर जान स्ट्रेची इडिया, इटस ऐडमिनिस्ट्रेशन ऐंड प्रोग्रैस, 1888, पृष्ठ 5)

सर जान सीले की भी धारणा यही थी

> भारत को एक राष्ट्र मानने की धारणा उस भद्दी भूल पर आधारित है जिसको राजनीतिशास्त्र मुख्यतया दूर करना चाहता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नहीं है बल्कि यह यूरोप या अफ्रीका की तरह मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी एक राष्ट्र या एक भाषा की सीमारेखा को नहीं बल्कि अनेक राष्ट्रों और अनेक भाषाओं की सीमा का अकन करता है। (सर जान सीले दि एक्सपैंशन आफ इग्लैंड, 1883, पृष्ठ 254 7)

'सम्मान क्या है ?' सर जान फलस्टाफ ने सवाल किया और खुद ही जवाब दिया, 'एक शब्द।' उस शब्द सम्मान' मे क्या है, वह सम्मान क्या है ? एक दिखावा। उसी गहन यथार्थवाद की भावना में हमारे आधुनिक सर जान महाशयों ने विदेशी शासन से मुक्ति के लिए करोड़ों भारतीयों के सघर्ष को एक' 'भद्दी भूल' साबित किया है। इसी प्रकार आस्ट्रियाई साम्राज्य के सिद्धातकारो ने अपने सतोष के लिए यह साबित कर दिया था कि इटली एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' है।

उन प्रारंभिक दिनों मे इन देशो के अस्तित्व को बड़े साफ शब्दो म नकारने की हरकतों के बावजूद राष्ट्रीय आदोलन की तीव्र धारा मे कोई रुकावट नही आई और तब बादशाह कानुते के दरबारियों ने अपनी रणनीति बदल दी। अब यह दलील दी जाने लगी है कि साम्राज्यवाद द्वारा पहले तो नकारने और बाद मे उसे समाप्त करने की असफल कोशिशों के बावजूद यदि आज भारतीय राष्ट्र जैसी कोई चीज है तो यह जाहिर है कि इसका श्रेय ब्रिटिश राज्य की उपलब्धियो को दिया जाना चाहिए जिसके कारण भारतीय राष्ट्र अस्तित्व म आया है। इस दावे का किस अश तक ऐतिहासिक औचित्य था, इस पर हम अगले अनुच्छेद मे विचार करेंगे।

समस्याओ पर आम जनता की जानकारी के लिए तथाकथित सूचनाप्रद दस्तावेज के रूप मे इसका बडे पैमाने पर वितरण किया गया था। इस अविस्मरणीय दस्तावेज के प्रारभ मे ही बडे इत्मीनान के साथ घोषणा की गई थी कि जिस 'भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन' कहा जाता है, वह वस्तुत 'भारत की विशाल आबादी के केवल एक मामूली हिस्से की अकाक्षाओ को सीधे सीधे प्रभावित करता है।' इस फैसले के पीछे कितनी कुशाग्र अत दृष्टि काम कर रही थी इसका पता इस घोषणा के फौरन बाद ही उस समय चल गया जब 1930 34 के सविनय अवज्ञा आदोलन का स्वरूप और 1937 के चुनावो के परिणाम सामने आए। इस घोषणा के बाद रिपाट मे भारत की जो रूढिगत तस्वीर पश की गई थी उसके बारे मे हालाकि लेखको न हमेशा यह दावा किया कि उनका विवेचन विशुद्ध वैज्ञानिक निष्पक्ष और वस्तुगत ह पर अपने विवेचन के जरिए वे पाठक को आतकित करना चाहते थे। अपने विवेचन मे वे कभी भारत की समस्या' की 'विशालता और कठिनाई' का वणन करत है तो कभी भारत की विशाल जनसख्या और भारत के विशाल क्षेत्रफल' का हवाला देकर पाठको को आतकित करते है, कभी '222 बोलियो' का उल्लेख करके यहा की 'भाषा की समस्या' का वणन करत है तो कभी असख्य जातियो के कारण उत्पन्न जटिलता' की चर्चा करत है, कभी 'धार्मिक क्षेत्र मे पाई जान वाली लगभग असीम विविधता' का और हिंदुओ तथा मुसलमानो के 'बुनियादी विरोध' का जिक्र करते ह तो कभी 'विभिन्न जातियो और धर्मों के रग बिरग जमघट' का चित्र पेश करते है। कभी विभिन्न नस्लो और धर्मों के जमाव' के बारे मे बताते है तो कभी तरह तरह के लोगो के जनसमूहो के समुदाय' की चर्चा करत रहते है इसी तरह के नम्रता और शिष्टता से भरे तमाम वाक्य इस खड म भर पडे है।

इस रवैये का उद्देश्य एकदम स्पष्ट है। दरअस्ल इसके जरिए उन पाठको के मन मे जो किसी पूवग्रह से ग्रस्त नही है, यह धारणा बैठाना है कि भारत म तेजी से स्वशासन स्थापित करने की योजना असभव है और साथ ही पाठक को इसी मुख्य नतीजे पर पहुचने के लिए प्रेरित किया जाता है (एच० डब्ल्यू० नेविंसन ने एक समाजवादी पत्रिका म इस रिपोट की समीक्षा की थी और पूरी सदभावना के साथ यह समीक्षा की गई थी। उनके शब्दो मे इसे देखे)

> एक ऐसे छोटे महाद्वीप के अनुकूल सविधान या सरकार के स्वरूप की रचना (न कि आलोचना) के काम म अत्यत दुस्तर कठिनाइया हैं, जिसम 560 देशी रियासतें (नाममात्र के लिए स्वतत्र) है 222 विभिन्न भाषाओवाली जातिया हैं दो प्रमुख और एक दूसर के प्रति शत्रुतापूर्ण धम हैं (अकेले ब्रिटिश भारत म 16 करोड 80 लाख हिंदू और 6 करोड मुसलमान) 1 करोड लोग ऐसे हैं जो जाति स निकाले गए हैं या 'उत्पीडित हैं और जिन्ह अछूत' कहा जाता है भारत के बारे मे जो व्यक्ति कुछ जानना चाहता है उस अपना अध्ययन शुरू करने के लिए इन ठोस तथ्यो को जानना होगा। यदि उस इनकी जानकारी

> जिसमे यूरोपीय विचारो के अनुसार भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता जैसी कोई एकता हो। जिसके बारे म हम इतना कुछ सुनते आए हैं वैसा न तो कोई भारतीय राष्ट्र है और न कही 'भारत की जनता' है। (सर जान स्ट्रेची इडिया, इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन ऐंड प्रोग्रेस, 1888, पृष्ठ 5)

सर जान सीले की भी धारणा यही थी

> भारत को एक राष्ट्र मानने की धारणा उस भद्दी भूल पर आधारित है जिसको राजनीतिशास्त्र मुख्यतया दूर करना चाहता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नही है बल्कि यह यूरोप या अफ्रीका की तरह मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी एक राष्ट्र या एक भाषा की सीमारेखा को नही बल्कि अनेक राष्ट्रो और अनेक भाषाओ की सीमा का अकन करता है। (सर जान सीले दि एक्सपैंशन आफ इग्लैंड, 1883, पृष्ठ 254-7)

'सम्मान क्या है ?' सर जान फलस्टाफ ने सवाल किया और खुद ही जवाब दिया, 'एक शब्द।' उस शब्द 'सम्मान' मे क्या है, वह सम्मान क्या है ? एक दिखावा। उसी गहन यथार्थवाद की भावना म हमारे आधुनिक 'सर जान' महाशयो ने विदेशी शासन से मुक्ति के लिए करोडो भारतीयो के सघर्ष को एक 'भद्दी भूल' साबित किया है। इसी प्रकार आस्ट्रियाई साम्राज्य के सिद्धातकारो ने अपने सतोष के लिए यह साबित कर दिया था कि इटली एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' है।

उन प्रारभिक दिनो मे इन देशो के अस्तित्व को बडे साफ शब्दो म नकारने की हरकतों के बावजूद राष्ट्रीय आदोलन की तीव्र धारा मे कोई रुकावट नही आई और तब बादशाह कानुते के दरबारियो ने अपनी रणनीति बदल दी। अब यह दलील दी जाने लगी है कि साम्राज्यवाद द्वारा पहले तो नकारने और बाद मे उसे समाप्त करने की असफल कोशिशो के बावजूद यदि आज भारतीय राष्ट्र जैसी कोई चीज है तो यह जाहिर है कि इसका श्रेय ब्रिटिश राज्य की उपलब्धियो को दिया जाना चाहिए जिसके कारण भारतीय राष्ट्र अस्तित्व मे आया है। इस दावे का किस अश तक ऐतिहासिक औचित्य था, इस पर हम अगले अनुच्छेद मे विचार करेंगे।

भारत की विविधता को अपना आधार बनाने वाली दलील आज भी बहुत प्रचलित है। इसका आशय या तो भारत राष्ट्र को नकारना होता है या इसे मान्यता देने मे बरती गई अत्यधिक धीमी रफ्तार का औचित्य ठहराना होता है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट 'सर्वेक्षण खड' मे वह आज भी अपनी पूरी तडक भडक के साथ देखी जा सकती है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट का यह खड भारत के बारे म आधुनिक ब्रिटिश साम्राज्य के दुष्प्रचार का मुख्य हिस्सा है। इसे 1930 मे प्रकाशित किया गया था और भारतीय

समस्याओ पर आम जनता की जानकारी के लिए तथाकथित सूचनाप्रद दस्तावेज के रूप मे इसका बडे पैमाने पर वितरण किया गया था। इस अविस्मरणीय दस्तावेज के प्रारभ मे ही बडे इत्मीनान के साथ घोषणा की गई थी कि जिसे 'भारत का राष्ट्रवादी आदोलन' कहा जाता है, वह वस्तुत 'भारत की विशाल आबादी के केवल एक मामूली हिस्से की अकाक्षाओ को सीधे सीधे प्रभावित करता है।' इस फैसले के पीछे कितनी कुशाग्र अतदृष्टि काम कर रही थी इसका पता इस घोषणा के फौरन बाद ही उस समय चल गया जब 1930-34 के सविनय अवज्ञा आदोलन का स्वरूप और 1937 के चुनावो के परिणाम सामने आए। इस घोषणा के बाद रिपोट म भारत की जो रूढिगत तस्वीर पेश की गई थी उसके बारे मे हालाकि लेखको ने हमेशा यह दावा किया कि उनका विवेचन विशुद्ध वैज्ञानिक निष्पक्ष और वस्तुगत है पर अपने विवेचन के जरिए व पाठक को आतकित करना चाहते थे। अपने विवेचन मे वे कभी भारत की समस्या' की 'विशालता और कठिनाई' का वणन करते है तो कभी भारत की 'विशाल जनसख्या और भारत के विशाल क्षेत्रफल' का हवाला देकर पाठका को आतकित करते हैं, कभी '222 बोलियो' का उल्लेख करके यहा की 'भाषा की समस्या' का वणन करते है तो कभी 'असख्य जातियो के कारण उत्पन्न जटिलता' की चर्चा करत है, कभी 'धार्मिक क्षेत्र मे पाई जाने वाली लगभग असीम विविधता' का और हिंदुआ तथा मुसलमानो के 'बुनियादी विरोध' का जिक्र करते है तो कभी 'विभिन्न जातियो और धर्मों के रग बिरग जमघट' का चित्र पेश करते है। कभी 'विभिन्न नस्लो और धर्मों के जमाव' के बारे म बतात ह ता कभी तरह तरह के लोगा के जनसमूहा के समुदाय' की चर्चा करत रहते है इसी तरह के नम्रता और शिष्टता से भरे तमाम वाक्य इस खड मे भरे पडे है।

इस रवैये का उद्देश्य एकदम स्पष्ट है। दरअस्ल इसके जरिए उन पाठका के मन मे जो किसी पूर्वग्रह से ग्रस्त नही है, यह धारणा बैठाना है कि भारत मे तजी से स्वशासन स्थापित करने की योजना असभव है और साथ ही पाठक को इसी मुख्य नतीजे पर पहुचने के लिए प्रेरित किया जाता है (एच० डब्ल्यू० नेविसन ने एक समाजवादी पत्रिका म इस रिपोट की समीक्षा की थी और पूरी सद्भावना के साथ यह समीक्षा की गई थी। उनके शब्दो मे इसे देखें)

> एक ऐसे छोटे महाद्वीप के अनुकूल सविधान या सरकार के स्वरूप की रचना (न कि आलोचना) के काम म अत्यत दुस्तर कठिनाइया हैं, जिसमे 560 देशी रियासतें (नाममात्र के लिए स्वतत्र) हैं, 222 विभिन्न भाषाओवाली जातिया हैं, दो प्रमुख और एक दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण धर्म हैं (अकेले ब्रिटिश भारत म 16 करोड 80 लाख हिंदू और 6 करोड मुसलमान), 1 करोड लोग ऐसे है जो जाति से निकाले गए ह या 'उत्पीडित' हैं और जिन्ह 'अछूत' कहा जाता है भारत के बारे मे जो व्यक्ति कुछ जानना चाहता है उसे अपना अध्ययन शुरू करने के लिए इन ठोस तथ्यो को जानना होगा। यदि उसे इनकी जानकारी

> जिसम यूरोपीय विचारो के अनुसार भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता जैसी कोई एकता हो। जिसके बारे म हम इतना कुछ सुनते आए हैं वैसा न तो कोई भारतीय राष्ट्र है और न कही 'भारत की जनता' है। (सर जान स्ट्रेची इडिया, इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन ऐंड प्रोग्रेस 1888, पृष्ठ 5)

सर जान सीले की भी धारणा यही थी

> भारत को एक राष्ट्र मानने की धारणा उस भद्दी भूल पर आधारित है जिसको राजनीतिशास्त्र मुख्यतया दूर करना चाहता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नही है बल्कि यह यूराप या अफ्रीका की तरह मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी एक राष्ट्र या एक भाषा की सीमारेखा को नही बल्कि अनेक राष्ट्रो और अनेक भाषाओ की सीमा का अकन करता है। (सर जान सीले दि एक्सपैंशन आफ इग्लैंड 1883, पृष्ठ 254 7)

'सम्मान क्या है ?' सर जान फलस्टाफ ने सवाल किया और खुद ही जवाब दिया, एक शब्द।' उस शब्द सम्मान' मे क्या है, वह सम्मान क्या है ? एक दिखावा। उसी गहन यथार्थवाद की भावना म हमारे आधुनिक 'सर जान' महाशया न विदेशी शासन से मुक्ति के लिए करोडो भारतीयो के सघर्ष को एक' भद्दी भूल' साबित किया है। इसी प्रकार आस्ट्रियाई साम्राज्य के सिद्धातकारा न अपने सताप के लिए यह साबित कर दिया था कि इटली एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' है।

उन प्रारभिक दिना म इन देशो के अस्तित्व को बडे साफ शब्दा म नकारने की हरकतो के बावजूद राष्ट्रीय आदोलन की तीव्र धारा मे कोई रुकावट नही आई और तब बादशाह कानुते के दरबारियो ने अपनी रणनीति बदल दी। अब यह दलील दी जाने लगी है कि साम्राज्यवाद द्वारा पहले तो नकारने और बाद म उसे समाप्त करने की असफल कोशिश के बावजूद यदि आज भारतीय राष्ट्र जैसी कोई चीज है तो यह जाहिर है कि इसका श्रेय ब्रिटिश राज्य की उपलब्धियो को दिया जाना चाहिए जिसके कारण भारतीय राष्ट्र अस्तित्व मे आया है। इस दावे का किस अश तक ऐतिहासिक औचित्य था, इस पर हम अगले अनुच्छेद मे विचार करेंगे।

भारत की विविधता को अपना आधार बनाने वाली दलील आज भी बहुत प्रचलित है। इसका आशय या तो भारत राष्ट्र को नकारना होता है या इसे मान्यता देने मे बरती गई अत्यधिक धीमी रफ्तार का औचित्य ठहराना होता है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट सर्वेक्षण खड' मे वह आज भी अपनी पूरी तडक भडक के साथ देखी जा सकती है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट का यह खड भारत के बारे म आधुनिक ब्रिटिश साम्राज्य के दुष्प्रचार का मुख्य हिस्सा है। इसे 1930 म प्रकाशित किया गया था और भारतीय

समस्याओ पर आम जनता की जानकारी के लिए तथाकथित सूचनाप्रद दस्तावेज के रूप मे इसका बडे पैमाने पर वितरण किया गया था। इस अविस्मरणीय दस्तावेज के प्रारभ मे ही बडे इत्मीनान के साथ घोषणा की गई थी कि जिसे 'भारत का राष्ट्रवादी आदोलन' कहा जाता है वह वस्तुत भारत की विशाल आबादी के केवल एक मामूली हिस्से की अकाक्षाओ को सीधे सीधे प्रभावित करता है।' इस फैसले के पीछे कितनी कुशाग्र अत दृष्टि काम कर रही थी इसका पता इस घोषणा के फौरन बाद ही उस समय चल गया जब 1930-34 के सविनय अवज्ञा आदोलन का स्वरूप और 1937 के चुनावो के परिणाम सामने आए। इस घोषणा के बाद रिपोट म भारत की जो रूढिगत तस्वीर पेश की गई थी उसके बारे म हालाकि लेखको न हमेशा यह दावा किया कि उनका विवेचन विशुद्ध वैज्ञानिक निष्पक्ष और वस्तुगत है पर अपने विवेचन के जरिए वे पाठक को आतकित करना चाहते थे। अपने विवेचन म व कभी भारत की 'समस्या' की विशालता और कठिनाई' का वणन करत है तो कभी भारत की 'विशाल जनसख्या और भारत के विशाल क्षेत्रफल' का हवाला देकर पाठको को आतकित करते है, कभी '222 बोलियो' का उल्लेख करके यहा की 'भाषा की समस्या' का वणन करते है तो कभी 'असख्य जातिया के कारण उत्पन्न जटिलता' की चर्चा करत है, कभी 'धार्मिक क्षेत्र म पाई जाने वाली लगभग असीम विविधता' का और हिंदुओ तथा मुसलमानो के 'बुनियादी विरोध' का जिक्र करत ह तो कभी 'विभिन्न जातियो और धर्मों के रग बिरग जमघट' का चित्र पश करते है। कभी 'विभिन्न नस्लो और धर्मो के जमाव' के बारे मे बतात है तो कभी तरह तरह के लोगो के जनसमूहो के समुदाय' की चर्चा करत रहत है, इसी तरह के नम्रता और शिष्टता स भरे तमाम वाक्य इस खड म भरे पडे है।

इस रवैये का उद्देश्य एकदम स्पष्ट है। दरअस्ल इसके जरिए उन पाठको के मन मे जो किसी पूवग्रह से ग्रस्त नही है, यह धारणा बैठाना है कि भारत मे तेजी से स्वशासन स्थापित करने की योजना असभव है और साथ ही पाठक को इसी मुख्य नतीजे पर पहुचन के लिए प्रेरित किया जाता है (एच० डब्ल्यू० नविसन न एक समाजवादी पत्रिका मे इस रिपोट की समीक्षा की थी और पूरी सद्भावना के साथ यह समीक्षा की गई थी। उनके शब्दो म इसे देखें)

> एक ऐसे छोटे महाद्वीप के अनुकूल सविधान या सरकार के स्वरूप की रचना (न कि आलोचना) के काम मे अत्यत दुस्तर कठिनाइया है, जिसम 560 देशी रियासतें (नाममात्र के लिए स्वतत्र) है, 222 विभिन्न भाषाओवाली जातिया है, दो प्रमुख और एक दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण धम है (अकेले ब्रिटिश भारत मे 16 करोड 80 लाख हिंदू और 6 करोड मुसलमान), 1 करोड लोग ऐसे हैं जो जाति स निकाले गए हैं या उत्पीडित' हैं और जिन्हे अछूत' कहा जाता है भारत के बारे म जो व्यक्ति कुछ जानना चाहता है उसे अपना अध्ययन शुरू करने के लिए इन ठोस तथ्यो का जानना होगा। यदि उसे इनकी जानकारी

> जिसमे यूरोपीय विचारो के अनुसार भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता जैसी कोई एकता हो। जिसके बारे मे हम इतना कुछ सुनते आए है वैसा न तो कोई भारतीय राष्ट्र है और न कही 'भारत की जनता' है। (सर जान स्ट्रेची इडिया, इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन ऐंड प्रोग्रेस, 1888, पृष्ठ 5)

सर जान सीले की भी धारणा यही थी

> भारत को एक राष्ट्र मानने की धारणा उस भद्दी भूल पर आधारित है जिसको राजनीतिशास्त्र मुख्यतया दूर करना चाहता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नही है बल्कि यह यूरोप या अफ्रीका की तरह मात्र एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी एक राष्ट्र या एक भाषा की सीमारेखा को नही बल्कि अनेक राष्ट्रो और अनेक भाषाओ की सीमा का अकन करता है। (सर जान सीले दि एक्सपैशन आफ इग्लड, 1883 पृष्ठ 254 7)

'सम्मान क्या है?' सर जान फलस्टाफ ने सवाल किया और खुद ही जवाब दिया, 'एक शब्द।' उस शब्द 'सम्मान' मे क्या है, वह सम्मान क्या है? एक दिखावा। उसी गहन यथार्थवाद की भावना मे हमारे आधुनिक 'सर जान' 'महाशयो ने विदेशी शासन से मुक्ति के लिए करोडो भारतीयो के सघर्ष को एक' भद्दी भूल' साबित किया है। इसी प्रकार आस्ट्रियाई साम्राज्य के सिद्धातकारो ने अपने सतोष के लिए यह साबित कर दिया था कि इटली एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' है।

उन प्रारभिक दिनो मे इन देशो के अस्तित्व को बडे साफ शब्दो मे नकारने की हरकतो के बावजूद राष्ट्रीय आदोलन की तीव्र धारा मे कोई रुकावट नही आई और तब बादशाह कानूत के दरबारियो ने अपनी रणनीति बदल दी। अब यह दलील दी जाने लगी है कि साम्राज्यवाद द्वारा पहले तो नकारने और बाद मे उसे समाप्त करने की असफल कोशिशो के बावजूद यदि आज भारतीय राष्ट्र जैसी कोई चीज है तो यह जाहिर है कि इसका श्रेय ब्रिटिश राज्य की उपलब्धियो को दिया जाना चाहिए जिसके कारण भारतीय राष्ट्र अस्तित्व मे आया है। इस दावे का किस अश तक ऐतिहासिक औचित्य था, इस पर हम अगले अनुच्छेद मे विचार करेगे।

भारत की विविधता का अपना आधार बनाने वाली दलील आज भी बहुत प्रचलित है। इसका आशय या तो भारत राष्ट्र को नकारना होता है या इसे मान्यता देने मे बरती गई अत्यधिक धीमी रफ्तार का औचित्य ठहराना होता है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट 'सर्वेक्षण खड' मे वह आज भी अपनी पूरी तडक भडक के साथ देखी जा सकती है। साइमन कमीशन की रिपोर्ट का यह खड भारत के बारे मे आधुनिक ब्रिटिश साम्राज्य के दुष्प्रचार का मुख्य हिस्सा है। इसे 1930 मे प्रकाशित किया गया था और भारतीय

समस्याओं पर आम जनता की जानकारी के लिए तथाकथित सूचनाप्रद दस्तावेज के रूप मे इसका बड़े पैमाने पर वितरण किया गया था। इस अविस्मरणीय दस्तावेज के प्रारभ मे ही बड़े इत्मीनान के साथ घोषणा की गई थी कि जिसे 'भारत का राष्ट्रवादी आदोलन' कहा जाता है, वह वस्तुत 'भारत की विशाल आबादी के केवल एक मामूली हिस्से की अकाक्षाओ को सीधे सीधे प्रभावित करता है।' इस फैसले के पीछे कितनी कुशाग्र अत-दृष्टि काम कर रही थी इसका पता इस घोषणा के फौरन बाद ही उस समय चल गया जब 1930 34 के सविनय अवज्ञा आदोलन का स्वरूप और 1937 के चुनावो के परिणाम सामने आए। इस घोषणा के बाद रिपोट म भारत की जो रुढिगत तस्वीर पेश की गई थी उसके बारे में हुक्कामि लखको ने हमेशा यह दावा किया कि उनका विवेचन विशुद्ध वैज्ञानिक निष्पक्ष और वस्तुगत है पर अपने विवेचन के जरिए वे पाठक का आतकित करना चाहते थे। अपने विवेचन मे वे कभी 'भारत की समस्या' की 'विशालता और कठिनाई' का वणन करत हैं तो कभी भारत की 'विशाल जनसख्या और भारत के विशाल क्षेत्रफल' का हवाला देकर पाठको को आतकित करते हैं, कभी '222 बोलियो' का उल्लेख करके यहा की 'भाषा की समस्या' का वणन करते है तो कभी 'असख्य जातियो के कारण उत्पन्न जटिलता' की चर्चा करत है, कभी 'धार्मिक क्षेत्र मे पाई जाने वाली लगभग असीम विविधता' का और हिंदुओ तथा मुसलमानो के 'बुनियादी विरोध' का जिक्र करत है तो कभी 'विभिन्न जातियो और धर्मों के रग विरग जमघट' का चित्र पेश करते है। कभी 'विभिन्न नस्लो और धर्मो के जमाव' के बारे मे बतात है तो कभी 'तरह तरह के लोगो के जनसमूहो के समुदाय' की चर्चा करत रहते है, इसी तरह के नम्रता और शिष्टता से भरे तमाम वाक्य इस खड म भरे पड़े है।

इस रवैये का उद्देश्य एकदम स्पष्ट है। दरअस्ल इसके जरिए उन पाठको के मन मे जो किसी पूवग्रह से ग्रस्त नहीं है, यह धारणा बैठाना है कि भारत म तेजी से स्वशासन स्थापित करने की योजना असभव है और साथ ही पाठक को इसी मुख्य नतीजे पर पहुचने के लिए प्रेरित किया जाता है (एच० डब्ल्यू० नेविसन ने एक समाजवादी पत्रिका में इस रिपोट की समीक्षा की थी और पूरी सद्भावना के साथ यह समीक्षा की गई थी। उनके शब्दो मे इसे देखे)

> एक ऐसे छोटे महाद्वीप के अनुकूल सविधान या सरकार के स्वरूप की रचना (न कि आलोचना) के काम म अत्यत दुस्तर कठिनाइया है, जिसम 560 देशी रियासतें (नाममात्र के लिए स्वतत्र) है, 222 विभिन्न भाषाओवाली जातिया हैं, दो प्रमुख और एक दूसरे के प्रति शत्रुतापूण धम है (अकेले ब्रिटिश भारत म 16 करोड 80 लाख हिंदू और 6 करोड मुसलमान), 1 करोड लोग एस हैं जो जाति से निकाले गए है या उत्पीडित' हैं और जिन्ह 'अछूत' कहा जाता है भारत के बारे मे जो व्यक्ति कुछ जानना चाहता है उसे अपना अध्ययन शुरु करने के लिए इन ठोस तथ्यो को जानना होगा। यदि उसे इनकी जानकारी

नही है ता उसे रिपोट का खड I पढना चाहिए। यदि वह इन्ह न तो जानता है और न पढता है तो वह बेशक चैन से पडा रहे। (एच० डब्ल्यू नेविंसन, 'न्यू लीडर' के 27 जून 1930 के अक मे साइमन कमीशन की रिपोट की समीक्षा)

भारत के बारे मे जो रवैया अख्तियार किया गया और जिस तरीके से इसे प्रचारित किया गया उस तरीके की सफलता का प्रमाण इसी से मिलता है कि एच० डब्ल्यू० नेविंसन जैसे *वामपथी हमदद भी एक 'समाजवादी' पत्रिका मे इसी तरह के नतीजे पर पहुचते है।* साइमन कमीशन के इस प्रचार का सरकारी समाचारपत्रो म ही नही बल्कि उस समय के उदारवादी श्रमिक या 'समाजवादी' सभी वामपथी समाचारपत्रो ने स्वीकार कर लिया। सभी ने इस सरकारी प्रचार को प्रत्यक्षत दिखाई पडने वाले आधार पर स्वीकार कर लिया। सचाई तो यह है कि निष्पक्षता और राजनीतिनो की तरह अवाछनीय तथ्या को *मायता देने के ढाग के बावजूद ये बातें दुष्प्रचार और नग्न प्रचार थी। ये किसी भी* हालत मे ऐसे बुनियादी 'ठोस तथ्य' नही थे जो भारत के बारे म जानकारी हासिल करने के इच्छुक व्यक्ति को जरूर जानने चाहिए।' इन तथ्यो का चयन करन मे पूरी सतकता बरती गई थी और यह सब जानबूझकर इस मकसद से किया गया था ताकि इन तथ्यो के मूल मे जो बातें है उन्ह भी तोड मरोड कर प्रस्तुत किया जाए। आज के भारत की कल्पित 'समस्याओ' के बारे मे सरकारी स्तर पर जो तस्वीर पश की गई है उसम उन सभी तथ्यो को छिपाया गया है जो भारत की मौजूदा हालत को वास्तविक तौर पर समझने के लिए जरूरी है, इसमे साम्राज्यवादिया द्वारा भारत के शोषण की सभी सचाइयो पर भारत मे ब्रिटिश महाजनी पूजी की भूमिका पर, ब्रिटिश सत्तारूढ वग द्वारा कमाए गए मुनाफे पर *शोषण के उन तरीका पर जो जनता के दुख दद के कारण ह, जनता के उभरते* सघर्षो पर (जातिगत या धार्मिक भेदभाव से निरपेक्ष रहकर) और साम्राज्यवाद द्वारा उस सघष के दमन के तरीको पर परदा डाला गया है। बुनियादी 'ठोस तथ्य' तो ये है जिनके बारे मे किसी ईमानदार समाजवादी पत्रिका या जनवादी पत्रिका को घोषणा करनी चाहिए थी कि ये हैं वे तथ्य जिन्हे भारत के बारे मे जानकारी हासिल करने के इच्छुक लोगो को अवश्य जानना चाहिए।' इसके बजाय इस रिपोट ने ('साइमन कमीशन ने अपना काम साहस के साथ और पूरी तरह किया जहा तक इस पहली रिपोट का *प्रश्न है सर जान साइमन और उनके सहयोगियो ने अपना काम जितनी समझदारी के* साथ किया उसकी प्रशसा की जानी चाहिए। मुझे इसम सदेह है कि बहद उग्र राष्ट्रवादी भी बडे बडे तथ्यो क बारे म कोई गभीर भूल निकाल पाएगे', (फेनर ब्राकवे 'न्यू लीडर', 13 जून 1930 मे) उन सभी तथ्या की बडे प्रेम और विस्तार के साथ चर्चा की जा भारत की जनता के प्रतिकूल थे और जिनसे 'फूट डालो और राज करो' की सरकारी नीति को बल मिलता था।

अमरीका के किसी नागरिक को यदि उसके देश की स्थिति के बारे म किए गए निष्पक्ष

सर्वेक्षण से सबधित ब्रिटेन की निम्न अधिकृत रिपोट पढने को मिले तो वह हैरान रह जाएगा

> अमरीकी उपमहाद्वीप की खास बात यह है कि उसकी जलवायु और भौगोलिक विशेषताए अत्यत विविधता लिए हुए हैं और इसी प्रकार वहा की जनता की जातियो और धर्मो म बडी विविधताए है। अमरीका को एक इकाई मानने की प्रचलित धारणा से कोई साधारण ब्रिटिश प्रेक्षक इस धोखे मे आ सकता है कि यहा उन विभिन्न नस्लो और धर्मों का जमाव है जिनसे मिलकर अमरीका का अस्तित्व है। अकेले न्यूयाक शहर म लगभग 100 विभिन्न राष्ट्रीयताओ के लोग रहते है। इनम से कुछ की सख्या तो इतनी अधिक है कि न्यूयाक एक साथ ही इतालवियो, यहूदियो और नीग्रो लोगो का दुनिया का सबसे बडा शहर कहा जा सकता है। इस तरह के विविध तत्वो के पास पास रहने के कारण अत्यत भयकर साप्रदायिक सघष भी हुए है। खासतौर से दक्षिणी राज्यो मे इसकी वजह से नस्लवादी दगे और हत्याए हुई हैं जिनकी पुनरावृत्ति तभी रोकी जा सकी है जब कोई ऐसी बाहरी निष्पक्ष शक्ति तैनात की गई जो कानून और व्यवस्था लागू कर सके। न्यूयाक म शिकागो के हथियारबद डाकुओ और चीनी कोठिया के प्रतिद्वद्वी गिरोहो की कुख्याति ने लोगो का ध्यान जिन मामलो से हटाया वे कम महत्वपूण नही थे मसलन ऊटा मे मोरमोस के, मिनेसोटा मे फिनलैंडवासियो के, मिसीसिपी तक मैक्सिकी आप्रवास तथा पश्चिमी तट पर जापानियो के पृथक अस्तित्व की समस्या। आदिम निवासियो की उल्लेखनीय सख्या के अस्तित्व की तो बात अलग रही।[1]

फिर भी, यही वह भावना थी जिसके अतगत साइमन कमीशन ने भारत की स्थिति के सर्वेक्षण का काम पूरा किया।

निश्चय ही अमरीकी क्राति की पूवसध्या तक अगरेज लाग अमरीकी जनता के बारे मे भी ऐसे ही विश्लेषण किया करते थे और इस बात के 'प्रमाण' दिया करते थे कि अमरीकी जनता की एकजुटता असभव है। लेकी न अपने इतिहास म इसका उल्लेख किया है

> अगरजो के वशजो के साथ भारी सख्या म डच, जमन, फ्रासीसी, स्वीडश, स्काच और आयरिश लोगो ने उपनिवेशो का एक ऐसा पचमेल चरित्र बनाया और उन्होन सरकार, धार्मिक विश्वास, व्यापारिक हित और सामाजिक रूप की इतनी किस्मो की रचना की कि क्राति से पहले तमाम लोगो को इस बात म सदेह था कि उनके बीच कोई एकता हो सकती है। (डब्ल्यू० ई० एच० लेकी 'हिस्ट्री आफ इग्लैंड इन दि एटीथ सेचुरी" खड IV, पृष्ठ 12)

और पुन ,

> एक ऐसा देश जहा बसने वाले लोगो का इतना बडा अनुपात अलग अलग देशो और अलग अलग धर्मो का हो और जो हाल म आए आप्रवासी हो, जहा अत्यत विशाल प्रदेश और अविकसित सचार साधनो के कारण उनके बीच एक दूसरे स बडा मामूली सा सपर्क कायम हो रहा हो और जहा पैसा कमाने की प्रवृत्ति आश्चर्यजनक रूप स बहुत तीव्र हो वहा इस बात की बहुत कम सभावना थी कि देशभक्ति या समुदाय की भावना उत्पन्न हो सके। (वही, पृष्ठ 34)

बर्नबी ने 1759 और 1760 म उत्तरी अमरीकी उपनिवशो की यात्रा की थी और लिखा था

> आग और पानी म भी उतनी विषमता नही है जितनी उत्तरी अमरीका क विभिन्न उपनिवशो म है—यदि मानव मस्तिष्क के बारे म मैं पूरी तरह अनभिज्ञ नही हू तो मेरा ख्याल है कि विभिन्न उपनिवशो के स्वरूप तौर तरीको धर्म, स्वार्थ म इतना फर्क है कि यदि उन्ह अकेले छोड दिया जाए तो शीघ्र ही उपमहाद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक गृहयुद्ध छिड जाएगा, जबकि रैड इडियन और नीग्रो लोग बडी आतुरता से उस अवसर के इतजार मे रहगे जब वे उन्ह पूरी तरह समाप्त कर दें।

विख्यात अमरीकी देशभक्त ओटिस ने 1765 मे लिखा

> ईश्वर न करे कि य लोग कभी अपनी मातृभूमि के प्रति कर्तव्यच्युत साबित हों। यदि कभी ऐसा दिन आया तो यह एक भयकर दृश्य की शुरुआत होगी। यदि आने वाले कल म इन उपनिवशो को अपनी जिम्मेदारी खुद सभालने का कह दिया जाए तो अमरीका रक्तपातमय वधस्थल बनकर रह जाएगा जहा सब कुछ अस्तव्यस्त होगा।

इस प्रकार आधुनिक कट्टरपथियो की य भविष्यवाणिया कि, यदि अग्रेजो ने भारत छोड दिया तो 'हत्याकाड और गडबडी की उबाऊ चीख और कोलाहल से वातावरण भर जाएगा' (चर्चिल), उसी जानी पहचानी राग की पुनरावृत्ति है। इसलिए एक राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की विजय की पूर्वसध्या मे किसी साम्राज्य के शासको की ओर से की जा रही इन स्वार्थपूर्ण भविष्यवाणियो और तथ्यो की प्रस्तुति के प्रति जनतात्रिक चेतना के लोगो को सजग रहना होगा।

बीते हुए कल के भारत मे किस सीमा तक एकता थी और किस सीमा तक विघटन था

यह प्रश्न इतिहासकारो के लिए छोडा जा सकता है। यह ध्यान देने की बात है कि आधुनिक युग के इतिहासविपयक अनुसधानकर्ता, यहा तक कि साम्राज्यवाद का समथन करने वाले इतिहासकार भी उनमे शामिल ह, अब उन बातो का समथन नही करते जो 50 वप पूव सीले और स्ट्रेचे जैसे लोगो ने कही थी। उनके कथन बेहद अपर्याप्त जानकारी पर आधारित थे।

> समस्त भारत की राजनीतिक एकता यद्यपि कभी पूरी तरह स्थापित नही हुई लेकिन वह सदियो से जनता का आदश रही है। सस्कृत भापा का साहित्य देखने से चक्रवर्ती राजाओ की सावभौम प्रभुसत्ता की धारणा का पता चलता है और इसपर अनेक अभिलेखो म जोर दिया गया है। महाभारत की कथा के अनुसार कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि मे विभिन्न राष्ट्रो के एकत्र होने की कहानी से यह पता चलता है कि समस्त भारतीय जनता, जिनम धुर दक्षिण के लोग भी शामिल थे वास्तविक बधन द्वारा एक दूसरे से बधे हुए थे—और उनकी चिताए समान रूप से सभी लोगो के लिए थी। यूरोप के लेखको ने एक तरह से यह नियम बना लिया है कि वे भारतीयो की एकता के बारे मे बताने के बजाय उनकी अनेकता के बारे मे ज्यादा बताएगे। असाधारण रूप से स्वतत्र भावनाओ के लेखक जोसेफ कनिघम इस मामले मे एक अपवाद हे। 1845 में अगरेजो के हमले के बारे मे सिखो के भय का वणन करते हुए जोसेफ कनिघम ने बहुत सही ढग से स्थितियो का निरीक्षण किया और कहा कि काबुल से लेकर असम की घाटी तक और श्रीलका द्वीप तक हिंदुस्तान एक देश माना जाता है और जनता के मस्तिष्क मे इसमे अधिराज्य के बारे मे जो धारणा है वह किसी एक अधिपति या एक नस्ल के आधिपत्य से जुडी हुई है।' इसलिए भारत आज भी और दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से एक आदश राजनीतिक एकता का उदाहरण प्रस्तुत करता है
>
> इसमे कोई सदेह नही कि भारत म एक गहरी बुनियादी एकता है जो भौगोलिक अलगाव या राजनीतिक अधिराज्य से उत्पन्न स्थितियो से ज्यादा शक्तिशाली है। यह एकता खून, रग, भापा, पोशाक, तौर तरीके और सप्रदाय जैसी असख्य विभिन्नताओ से परे है। (विनसेंट ए० स्मिथ दि आक्सफोड हिस्टरी आफ इडिया, 1919, भूमिका पृष्ठ 9-10)

इस समय जो विचारणीय विपय है उसमे सबसे महत्वपूण यह प्रश्न है कि फिलहाल भारत मे कितनी एकता है और कितनी विभिन्नताहै और तब उन विभिन्नताओ के बारे म कुछ कहना जरूरी हो जाता है जिनका साम्राज्यवादी प्रचारको ने काफी प्रचार किया है और जिनके कारण वे यह दलील देते है कि भारत के लोगो को स्वराज्य देना अभी उचित नही है तथा अगरेजी राज्य का कायम रहना यहा की जनता के लिए जरूरी है।

2 जाति, धर्म और भाषा के प्रश्न

इसमे कोई सदेह नही कि भारत की जनता को अतीत से विरासत के रूप म तमाम तरह की समस्याए भेद और असमानताए मिली है जिनपर उन्ह काबू पाना है और जो बीते हुए जमाने के अवशेष के रूप मे आज भी मौजूद है। हर देश की जनता की कुछ अपनी विशिष्ट समस्याए होती है जो उसे अपने इतिहास से विरासत म मिलती है। स्वशासन स्थापित करने का एक सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि इसी के द्वारा भारतीय जनता के प्रगतिशील नताओ को इन समस्याओ से निपटने और उन्ह हल करने का मौका मिलेगा और वे भारत की जनता को जनवादी एव सामाजिक प्रगति के रास्ते पर ले जा सकेंगे। इसका कारण यह है कि पिछले 50 वर्षो म खासतौर मे यह महसूस किया गया है कि साम्राज्यवादी पतन के आधुनिक युग मे (19वी सदी के पूर्वाध मे भारत मे ब्रिटिश शासन की वस्तुगत रूप से प्रगतिशील भूमिका की समाप्ति के साथ) छुआछूत, जातपात के भेदभाव साप्रदायिक भेदभाव निरक्षरता और इस तरह की बुराइयो क विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के प्रतिनिधियो द्वारा अधिक सक्रियता से हमला किया जा रहा है जबकि साम्राज्यवाद सुधार सबधी तमाम योजनाओ के रास्त म अडचनें डाल रहा है ताकि य बुराइया बनी रह कभी न समाप्त हो और इनकी जड गहरी होती जाए।

ऐसी नीति स्वय ही अपने को निदनीय बना देती है जो एक तरफ तो गुलाम जनता की फूट और पिछडेपन का पोषण करती हो और उसको मजबूत बनाती हो तथा दूसरी तरफ सावजनिक रूप स यह ढिढोरा पीटती हो कि इन बुराइयो से यह बात साबित हो जाती है कि वहा की जनता न तो कभी अपन अदर एकता महसूस कर सकती है और न स्वराज्य के योग्य बन सकती है।

जहा तक साप्रदायिक और धार्मिक भेदभाव का प्रश्न है जो भारत की जनता के सामने अत्यत गभीर और आवश्यक समस्या है, इस पर बाद क अध्याय म विस्तार से विवेचन की जरूरत है (देखें अध्याय 13 उपशीर्षक 2,3। इस बात क प्रमाण मिल जाएगे कि वस्तुत साप्रदायिक और धार्मिक भेदभाव को ब्रिटिश सरकार न अपनी एक सतक नीति के अतगत काफी बढावा दिया है हालाकि सरकारी तौर पर वे इससे इकार करते है। दर असल साइमन कमीशन को स्वय अपनी रिपोर्ट म यह मानना पडा कि जिन प्रदेशो म प्रत्यक्ष रूप स अगरेजो का शासन है वहा हिंदू मुसलमान के बीच वरभाव का बढना एक खास विशेषता है ('आज की भारतीय रियासतो म साप्रदायिक तनावो का अपेक्षाकृत न होना,' पृष्ठ 29) और अगरेजी राज मे इसम वृद्धि हुई है (ब्रिटिश भारत म एक पीढी पहल तक साप्रदायिक तनाव से जनजीवन की शाति भग होने का खतरा बहुत कम था लेकिन सुधारो की शुरुआत और उन सुधारो के बाद की स्थिति के पूर्वानुमानो ने हिंदुओ और मुसलमानो क बीच प्रतिस्पधा को एक नया मोड दिया,' पृष्ठ 29)। निश्चय ही साप्रदायिक समस्या तब तक पूरी तरह हल नही की जा सकती जब तक साम्राज्यवादी

शासकों को हटा नहीं दिया जाता। यही बात भारतीय रियासतों या रजवाड़ों के साथ लागू होती है। इनको पूरी तरह अंगरेजों का संरक्षण प्राप्त है। इस संरक्षण की वजह से ही इनका खर्च चलता है तथा इनका अस्तित्व बना रहता है।

जहां तक जातपात और छूत अछूत के भेदभाव का प्रश्न है इन भेदभावों के विरुद्ध कार्ल्टन क्लब और रंगभेद [प्रसंगवश, मूलतः जाति (कास्ट) शब्द का अर्थ 'रंग' होता है और इससे आर्य हमलावरों की श्रेष्ठता और विशिष्टता का पता चलता है] के प्रतिनिधियों के उग्र रोष को ब्रिटेन के उन झाडदारों द्वारा भी पूरे गुण दोष विवेचन के साथ पढ़ा जा सकता है जिनकी स्थिति एकदम भिन्न है और जिन्हें जैसा कि सभी जानते हैं, बड़े सहज ढंग से मेफेयर के भोजनकक्ष में निमंत्रित किया जाता है। अछूतों तथा उत्पीडित वर्गों पर साम्राज्यवादियों की इतनी कृपा है कि वे सदा उनकी संख्या बढ़ाते रहने का प्रयत्न करते आए हैं और हम इसकी सराहना किए बिना नहीं रह सकते। एक पीढ़ी पहले तक, जब राजनीतिक स्थिति इतनी उग्र नहीं थी इनकी संख्या आमतौर से 3 करोड़ बताई जाती थी। 1910 में वैलेंटाइन चिरोल ने अपनी पुस्तक 'इंडियन अनरेस्ट' में यह संख्या 5 करोड़ बताई। एन्स्टे की पुस्तक 'इकोनामिक डेवलपमेंट आफ इंडिया' सबसे पहले 1929 में प्रकाशित हुई और उसमें बिना किसी प्रमाण के इस संख्या को 6 करोड़ तक पहुंचा दिया गया। इस संख्या को आमतौर से सभामंचों और संसद में सबसे ज्यादा प्रभावशाली माना गया। 'माडर्न इंडिया' नाम से अर्धसरकारी निबंध संग्रह 1931 में सर जान कमिंग के संपादन में प्रकाशित हुआ जिसमें यह संख्या '3 करोड़ से 6 करोड़ तक' बताई गई। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह संख्या 4 करोड़ 20 लाख निर्धारित करने का प्रयास किया लेकिन साथ ही उसने यह भी कहा कि बंगाल संयुक्त प्रांत और बिहार तथा उड़ीसा प्रांतों में जहां 4 करोड़ 30 लाख में से 2 करोड़ 80 लाख लोग रहते हैं, 'सैद्धांतिक रूप से अस्पृश्यता और वास्तविक अगम्यता के बीच कम घनिष्ठ संबंध है और यदि खासतौर से छानबीन की जाए तो शायद यह पता चल सके कि स्कूलों, कुएं से जल लेने और ऐसे ही मामलों में समान अधिकारों से जिन्हें वंचित रखा गया है उनकी संख्या उन इलाकों के लिए उत्पीडित वर्ग की प्रस्तुत कुल संख्या से कम है।' (पृष्ठ 41) इसलिए वस्तुतः कुल संख्या विवादास्पद है।

छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व ब्रिटिश सरकार ने नहीं बल्कि प्रगतिशील राष्ट्रीय आंदोलन ने किया। वस्तुतः इस सिलसिले में उस घटना को याद किया जा सकता है जब सदियों से अछूतों के लिए वर्जित दक्षिण भारत के कुछ प्रसिद्ध मंदिरों के दरवाजे गांधी के आंदोलन की प्रेरणा से खोल दिए गए और इसके बाद अछूतों को मंदिर में घुसने से रोकने के लिए अंगरेज सरकार ने इस दलील के साथ वहां अपनी पुलिस भेजी थी कि अछूतों के मंदिर में प्रवेश से जनता की धार्मिक भावनाओं को ठेस लगेगी और सरकार का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह जनता की भावनाओं की रक्षा करे।

निश्चय ही ब्रिटिश सरकार को इस बात की फिक्र थी कि अछूतों या उत्पीडित वर्गों के लोगों की मतदाता सूची अलग से बनाई जाए और उनको अलग से अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजने की गारंटी दी जाए ताकि लोगों में और अधिक फूट पड़े तथा राष्ट्रीय कांग्रेस कमजोर पड़ जाए। इस तरह पृथक मतदाताओं की लंबी सूची में हरिजनों को जोड़ दिया गया (हालांकि व्यवहार में जो नतीजा सामने आया उसमें अलग प्रतिनिधि भेजने की बात का उल्लेखनीय सीमा तक पूना संधि की कार्यप्रणाली ने निष्प्रभावित कर दिया)। लेकिन सरकार के इस स्नेह के विषय में स्वयं अछूत लोगों का क्या विचार था इसका प्रमाण हरिजनों के महासंघ के नेता डा० अंबेडकर के उस वक्तव्य से मिल जाता है जो उन्होंने 1930 में अखिल भारतीय दलित वर्ग कांग्रेस के अध्यक्ष पद से दिया था। डा० अंबेडकर को ब्रिटिश सरकार अछूतों का नेता और उनका प्रवक्ता मानती थी। अपने भाषण में डा० अंबेडकर ने कहा था

> मुझे आशंका है कि ब्रिटिश सरकार हमारी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों का विज्ञापन इसलिए नहीं करती कि वह इन्हें दूर करना चाहती है बल्कि इसलिए करती है ताकि इसको वह भारत की राजनीतिक प्रगति को पीछे खींच ले जाने का एक बहाना बना सके। (दलित वर्गों के अखिल भारतीय अधिवेशन में डा० अंबेडकर का अध्यक्षीय भाषण, अगस्त 1930)

डा० अंबेडकर ने आगे कहा

> अंगरेजों के आने से पहले आप अछूत प्रथा के कारण घृणित स्थितियों में रह रहे थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने अछूत प्रथा समाप्त करने के लिए कुछ किया? अंगरेजों के आने से पहले आप गांव से पानी नहीं ले सकते थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने कुएं से पानी लेने का अधिकार आपको दिलाया? अंगरेजों के आने से पहले आप मंदिरों में नहीं जा सकते थे। क्या अब आप मंदिरों में जा सकते हैं? अंगरेजों के आने से पहले आप पुलिस में भरती नहीं हो सकते थे। क्या ब्रिटिश सरकार आपको पुलिस सेवा में भर्ती करती है? अंगरेजों के आने से पहले आप सेना में भरती नहीं हो सकते थे। क्या अब आप सेना में भरती हो सकते हैं? उपस्थित जनो! इन प्रश्नों में से किसी का जवाब आप हां में नहीं दे सकते। जिन लोगों ने इतने दिनों से देश का शासन संभाला है उन्हें आपके लिए कुछ करना चाहिए था। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आपकी हालत में कोई बुनियादी तब्दीली नहीं आई है। जहां तक आपकी बात है ब्रिटिश सरकार ने उन प्रथाओं को उसी रूप में स्वीकार किया है जिस रूप में उन्हें वे प्राप्त हुए। उसने बड़ी ईमानदारी के साथ उन्हें जैसा का तैसा बना रहने दिया है, ठीक उसी तरह जिस तरह किसी चीनी दर्जी का जब नमूना दिखाने के लिए एक पुराना कोट दिया गया तो उसने पुराने कोट में रफू पैबंद आदि की ही तरह नए कोट में

> भी पवद लगा दिए ताकि यह पता चले कि उसने दिए गए नमूने की ठीक ठीक नकल कर दी। आप पर किए गए अन्याय एक पुने घाव की तरह से बने रहे और उन्हें ठीक नही किया गया
>
> आपके सिवा दूसरा कोई आपके दु ख दद दूर नही कर सकता और आप भी इन्हे तब तक दूर नही कर सकते जब तक राजनीतिक सत्ता आपके हाथो म न आ जाए। जब तक अगरेज सरकार बनी रहेगी तब तक सत्ता का एक अश भी आपके हाथो म नही आएगा। केवल स्वराज के सविधान मे ही आपको अपने हाथ मे राजसत्ता लेने का मौका मिल सकता है और इसके बिना आप अपनी जनता का उद्धार नही कर सकते।

उत्पीडित वर्गों के हित और उनकी मुक्ति अनिवाय रूप से भारतीय जनता के राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन से जुडी है। जातपात की घिसटती हुई प्रथा उपदेश देने या कोसते रहने से नही दूर होगी, वह आधुनिक उद्योग और राजनीतिक जनतत्र के विकास से ही दूर होगी। नए सामाजिक सबध और समान हित पुराने बधनो का स्थान लेते जाएगे। जैसा मार्क्स ने कहा

> आधुनिक उद्योग धधे मजदूरी के उस पुश्तैनी विभाजन को समाप्त कर देंगे जिसपर भारत की वह जाति व्यवस्था आधारित है जो भारत की प्रगति म रुकावट डालती है और भारत को शक्तिशाली नही होने देती। (मार्क्स फ्यूचर रेजल्टस आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया' न्यूयाक ट्रिब्यून 8 अगस्त 1853)

मार्क्स ने 70 वर्ष पहले जो भविष्यवाणी की थी वह कितनी सच थी, इसका प्रमाण 1921 की जनगणना रिपोट से मिलता है

> जमशेदपुर जैसी जगहो म जहा आधुनिक मिस्त्रियो म काम होता है कारखान म सभी जातिया और नस्लो के लोग साथ साथ काम करत है और उन्हे अपने बगल मे काम कर रहे व्यक्ति की जाति को लेकर कोई चिंता नही रहती। (बिहार और उडीसा की जनगणना रिपोर्ट, 1921)

निस्सदेह उन विशेष असमथताओ के कारण जो अछूतो, हरिजनो या सरकारी भाषा में कहें तो अनुसूचित जातियो' को कमजोर बनाती है, बडी गभीर समस्याए पैदा हो गई है। इन्ही विशेष असमथताओं और शिकायतो ने अनुसूचित जातियों के महासघ के विकास का आधार तैयार किया है और इस सघ को कुछ इलाको म एक सीमा तक सग-ठित रूप से समथन भी मिला है। लेकिन इन समस्याओ का समाधान मजदूर आदोलन तथा जनतत्र के विकास के जरिए और इन असमथताओ के निवारण के लिए जनवादी

राष्ट्रीय आदोलन के रूप म सघप चलाकर किया जा सकता है। वर्गीय आधार पर इन गुटो का आर्थिक और राजनीतिक आदोलन चलाने के लिए पृथक्तावादी मगठन बनाकर समस्या का समाधान नही हो सकता।

जहा तक भाषाओ के भेद का सवाल है और '222 अलग अलग भाषाओ' की प्रसिद्ध उक्ति की बात है, हम एक बार फिर देखते है कि साम्राज्यवादियो ने अपने कुप्रचार के जरिए इस कठिनाई को बेहद बढाचढाकर पेश किया। जो आकडे प्रस्तुत किए उनका उद्देश्य भोलेभाले लोगो को गुमराह करना था। विभिन विशेषज्ञो ने, जो 16 से लेकर 300 तक हैं, विभिन्न अनुमान पश किए। इस विभिन्नता से ही पता चलता है कि इन अनुमानो के पीछे कौन से राजनीतिक स्वाथ थे। 1901 की जनगणना मे भाषाओ की सख्या 147 बताई गई थी। यदि हम 1921 की जनगणना रिपोट से इसकी तुलना करें जिसे साइमन कमीशन की रिपोट ने इस्तेमाल किया है ता हम दिलचस्प नतीजे पर पहुचते है। हम देखते है कि 1901 से 1921 के बीच जहा जनसख्या 29 करोड 20 लाख से बढकर 31 करोड 60 लाख हो गई (किसी नई विदेशी आबादी की वृद्धि के बिना) वहीं बाली जाने वाली भाषाए 147 से बढकर 222 हो गई (किसी नए या बहुभाषी प्रदेश के शामिल हुए बिना)। सचमुच एक ही पीढी के दौरान नई नई भाषाए पैदा करने की अदभुत क्षमता भारतीयो मे है।

लेकिन यदि थाडे और विस्तार से जाच की जाए तो '222 विभिन्न भाषाओ' की इस वीरोचित पुराण कथा पर, जिसने गैरभारतीय जनमत का इतना अधिक प्रभावित किया, और भी रोशनी पड सकती है।[3] जाच से पता चलता है कि इन '222 अलग अलग भाषाओ' म से कम से कम 134 भाषाए तिब्बती बर्मी उपवग की भाषाए है। इन 'भाषाओ' का स्वरूप क्या है? 1907 म प्रकाशित 'इपीरियल गजटियर आफ इडिया' (खड 1 पृष्ठ 390 394) म 103 हिंदी चीनी भाषाओ की पूरी सूची दी गई है जिसस इसपर प्रकाश पडता है। 103 भाषाओ की इस सूची से हम इन 'विभिन्न भाषाओ' के बोलने वालो की सख्या का पता चलता है जो, उदाहरण के लिए निम्न है

भाषा	बोलने वालो की सख्या
कबुई	4
आद्रो	1
कसुई	11
भानु	15
आका	26
ताइरोंग	12
नीरा	2

जाहिर है कि सम्प्रेषणीयता के साधन के रूप मे भाषा की जो दार्शनिक अवधारणा है उसमे हमे सशोधन करना होगा क्योकि हम देख रहे है कि आन्द्रो भाषा को केवल 1 आदमी बोलता है और नौरा नामक भाषा बोलने वालो की भी सख्या महान है, उसे दो व्यक्ति बोलते है।

यदि विस्तार से जाच करे और इस जाच का महत्व केवल इस तरह के साम्राज्यवादी कुप्रचार का भडाफोड करना ही है, तो पता चलता है कि 1 तथाकथित हिंदी चीनी परिवार की 'भाषाओ' की सख्या 1901 मे 92 से बढकर 1921 मे 145 हो गई, 2 ये 'भाषाए' भारत मे बिलकुल ही नही बोली जाती ये हिमालय और बर्मी चीनी सीमा के दूरस्थ प्रदेशो मे बोली जाती है, 3 इनमे से अधिकाश भाषाए किसी भी रूप मे 'भाषा' नही है, या तो ये थोडे लोगो द्वारा बोली जाने वाली बोलिया है या जनजातियो के नाम है, 4 इस समूह मे शामिल 103 भाषाओ' मे से 17 को 100 से भी कम व्यक्ति, 39 को 1,000 से भी कम व्यक्ति, 65 को 10,000 से भी कम व्यक्ति, 83 को 50,000 से भी कम व्यक्ति, 97 को 200 000 से भी कम व्यक्ति बोलते हैं। इस समूह की एकमात्र भाषा बर्मी है। फिर भी इस तरह की चीजो को जोडकर '222 अलग अलग भाषाओ' की सख्या थाप दी गई और इसे साम्राज्यवादियो ने प्रत्येक मच से, प्रत्येक समाचारपत्र के जरिए और ससद की प्रत्येक बहस मे प्रदर्शित किया।

इसके बाद 1931 की जनगणना मे भाषाओ की सख्या 203 ही रह गई। जाहिर है कि जिन भाषाओ को केवल एक, दो या चार व्यक्ति बोलते थे वे बेचारे इस बीच दुर्भाग्यवश मर गए और इसपर अपनी मूर्खतापूर्ण कार्यवाही के द्वारा उन लोगो ने भारतीय जनता की स्वराज्य की माग के विरुद्ध साम्राज्यवादियो की दलील को कमजोर कर दिया। 1937 मे बर्मा के भारत से अलग हो जाने के बाद भाषाओ की मृत्युसख्या और भी बढ गई क्योकि भारतीय जनता का टुकडे टुकडे मे बटा होना साबित करने के लिए जिन सैकडो भाषाओं की सूची गिनाई जाती थी उनमे से अधिकाश भाषाए (128) बर्मा की भाषाए थी। दिलचस्प बात यह है कि बर्मा को अलग करने के पक्ष मे दलील देने के लिए भाषाओ की बहुलता का अवरोध, जिसकी रचना मुख्यत बर्मा पर आधारित थी—अचानक गायब हो गया और उसके स्थान पर बर्मा मे भाषाओ की अनिवार्य एकता पर जोर दिया जाने लगा। साइमन कमीशन की रिपोर्ट ने लिखा है कि (पृष्ठ 79), 'हालाकि इस प्रात मे 128 देशी जबानें है, फिर भी समूची आबादी का 70 प्रतिशत भाग बर्मी या इससे घनिष्ठ रूप से मिलती जुलती भाषा बोलता है और इस सख्या मे लगातार वृद्धि हो रही है।' अपनी नीति के हित मे साम्राज्यवादियो के आकडे सचमुच कितने लचीले होते हैं।

भारत के लिए एक आम भाषा की समस्या का समाधान अब ढूढा जा रहा है और इसके लिए काग्रेस की अधिकाधिक राष्ट्रीय भाषा हिंदुस्तानी (लिपि के अनुसार हिंदी या उर्दू) को आधार बनाया गया है। इसे भारत की अधिकाश जनता या तो बोलती है या समझ

लेती है। गांधी ने लिखा था कि समूचे भारत मे हिंदू धर्मोपदेशक या मुसलमान मौलवी अपने धार्मिक प्रवचन हिंदी और उर्दू मे देते है और उन प्रवचनो को बिना पढी लिखी जनता भी अच्छी तरह समझ लेती है (स्पीचेज ऐंड राइटिंग', पृष्ठ 398) । इसी प्रकार भारतीय सेना मे जहा '222 अलग अलग भाषाओ' जैसी अनगल बातो के लिए कोई स्थान नही है सभी आदेश हिंदुस्तानी मे दिए जाते ह। भारत के बारे मे बहुधा यह प्रचारित किया जाता है कि अगरेजी यहा की सामान्य भाषा है लेकिन यह एक कपोल कल्पना है। 100 वर्षो की अगरेजी 'शिक्षा' के बावजूद केवल एक प्रतिशत जनता अगरेजी पढ या लिख सकती है (35 करोड लोगो मे से केवल साढे तीन लाख लोग अगरेजी पढ या लिख सकते है—1931 की जनगणना रिपोट) । इसके विपरीत 'हिंदुस्तानी का विभिन्न बोलियो मे 12 करोड से भी अधिक लोग समझते हे और यह सख्या बढती जा रही है' (जवाहरलाल नेहरू, 'इडिया ऐन्ड दि वल्ड', पृष्ठ 118) । भारत मे भाषाओ की समस्या व्यवहारत 12 या 13 भाषाओ की समस्या है (सर हरकोट बटलर ने अपनी पुस्तक माडन इडिया' मे पृष्ठ 8 पर लिखा है कि भारत मे 'कुल 12 प्रमुख भाषाए हैं।' यह पुस्तक 1932 म प्रकाशित हुई थी) । इन 12 या 13 भाषाओ मे से उत्तर भारत की 9 भाषाओ का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ सबध है कि 1921 की जनगणना रिपोट को भी यह स्वीकार करना पडा था

> इसम कोई सदेह नही कि उत्तर तथा मध्य भारत की मुख्य भाषाओ मे एक सामूहिक तत्व है जिसके कारण उन भाषाओ को बोलने वाले अपनी बालचाल म कोई खास तब्दीली किए बिना एक दूसरे की बातचीत समझ लत है। इस प्रकार भारत के बहुत बडे हिस्से के लिए समान भाषा का आधार पहले से ही तैयार है।' (सेंसस आफ इडिया, 1921, खड 1, भाग 1, पृष्ठ 199)*

साइमन कमीशन की रिपोट मे यदि इस अश को ज्यो का त्यो उद्धृत कर दिया गया होता तो यह ज्यादा ईमानदारी की बात होती लेकिन इस रिपोट के जरिए लोगो को गुमराह करने के लिए कुछ दूसरी तरह की ही बातें कही गईं।

ये विशेष मसले, जिन्हे प्राय तथाकथित ऐसी कठिन समस्याओ के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है जिन्हे भारतीय जनता की एकता स्थापित करने या स्वराज्य की दिशा मे तजी से बढने के काम मे अवरोध बताया जाता है, ऐसे हैं जिन्हे देश के राजनेताओ द्वारा हल किया जा सकता है और हल किया जाना है। उन्ही समस्याओ के कारण यहा इतने विस्तार स विवेचन करने की आवश्यकता पडी ताकि लोगो को वह आधार बताया जा सके जिसपर साम्राज्यवादियो का निरथक कुप्रचार टिका हुआ है। इसके साथ ही इस विवेचन की जरूरत इसलिए भी है ताकि भारत से बाहर रहने वाले जनवादी विचारधारा क लोगों को साम्राज्यवादी प्रचार स गुमराह होने स रोका जा सके।

साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष मे भारतीय जनता की वास्तविक एकता अपनी स्वाधीनता और अपना राजनीतिक भविष्य स्वय निर्धारित करने के उनके अधिकार के सदर्भ मे भारतीय राष्ट्र का वास्तविक अस्तित्व है या नही है, इसका प्रमाण आकडेबाजो के दफ्तरो म या ससदा के वहम कक्षो मे नही मिल सकता। यह वास्तविक कार्यक्षेत्र मे ही साबित किया जाएगा, किया जा रहा है और पिछले 25 वर्षों के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि किया जा चुका है। कारण यह है कि भारतीय जनता की अनेकता या बहु-राष्ट्रीय स्वरूप से इस बुनियादी एकता का कोई विरोध नही है। ये ऐसी समस्याए हैं जिन्ह स्वय भारतीय जनता ही हल कर सकती है और हल करेगी।

3 भारत मे राष्ट्रवाद की शुरुआत

आधुनिक युग मे भारतीय राष्ट्र की वास्तविकता से व्यवहार रूप मे अब अधिक समय तक इकार नही किया जा सकता हालाकि पुराने इकार की गूज आज भी मौजूद है। इसलिए साम्राज्यवादियो न अपनी उन दलीलो के सदभ मे जिसे वे एक पीढी पहले तक दुहराते आ रहे थे, एक अजीब भुलक्कडपन का परिचय दिया। अभी तक वे भारत को 'एक भौगोलिक अभिव्यक्ति' कहा करते थे और उसके राष्ट्रीय अस्तित्व को अत्यत हठधर्मिता-पूण ढग से मानने से इकार करते थे लेकिन अब साम्राज्यवादियो के अपेक्षाकृत अधिक चालाक प्रवक्ताओ न एक दूसरी दलील देनी शुरू कर दी है। उनका कहना है कि यदि भारतीय राष्ट्र का कही अस्तित्व है और यदि इसका अस्तित्व मानने की मजबूरी है तो इसे साम्राज्यवाद की गौरवपूण उपलब्धि कहा जाना चाहिए क्योकि उसन ही भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात किया और ब्रिटन के जनतात्रिक आदर्शों के बीज भारत मे डाले। उन्होंने यहा तक कहा कि एक तरह के उद्देश्यपूण कालदोष के कारण इसे गुरू से ही अगरेजो का वास्तविक लक्ष्य माना जाना चाहिए।

> भारत के लोगो का वह हिस्सा जिसमे राजनीतिक चेतना है—बौद्धिक रूप से हमारी सतान है। उन्होंने उन आदर्शों को आत्मसात कर लिया है जो हमने उनके सामन रखे और इसके लिए हमे उन्ह श्रेय देना चाहिए। वतमान बौद्धिक और नैतिक खलबली का अथ यह नही कि भारतीय जनता हमारी भर्त्सना कर रही है बल्कि यह हमारे काय के प्रति उनकी सराहना है। (मौंटागू—चैम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918, पृष्ठ 115)

इस प्रकार भारतीय जनता का साम्राज्यवाद विरोधी अदम्य सघर्ष नही बल्कि साम्राज्य-वादी शासको के परोपकारी कृत्य भारतीय जनता की राष्ट्रीय स्वाधीनता का पथ प्रदशन कर रहे हैं। जनता के बीच आधुनिक सुसस्कृत साम्राज्यवादी शासक अपने भाषणो स इसी तरह का चित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं। कीते दिनो मे इन शासको द्वारा जनता के बीच जो बातें कही जाती थी उन्हे अब ऊपर के सरकारी खेमा म युक्तिपूण कहा जाता है और पहल से ही पर्याप्त रूप से परेशानी पैदा करने वाली स्थिति म नीति के हिसाब स अवाछ-

नीय कहा जाता है (उदाहरण के लिए जायसन हिक्स की प्रमुख घोषणा कि हमने भारतीयों के हित के लिए भारत पर विजय नहीं हासिल की। मुझे पता है कि मिशनरी बैठकों में कहा जाता है कि हमने भारतीयों का स्तर उठाने के लिए भारत पर शासन किया। ऐसा नहीं हो सकता। हमने तलवार के जोर से भारत को जीता है और इसी के जोर से कायम इस पर शासन कायम रखेंगे। यह ब्रिटिश सामानों का सबसे अच्छा बाजार है इसलिए हम यहां बने हुए हैं।' अथवा लार्ड रदरमीर का यह कथन कि 'अनेक अधिकारियों का यह अनुमान है कि ब्रिटेन का प्रमुख व्यापार बैंकिंग और जहाजरानी व्यापार सीधे तौर पर भारत पर 20 प्रतिशत निर्भर करता है। भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रमुख आधार है। यदि हम भारत को खोते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य पहले आर्थिक रूप से और फिर राजनीतिक रूप से ढह जाएगा।')।

सरकारी वक्तव्यों के लहजे में आज के युग में कोई तब्दीली आई हो, इसका सवाल ही पैदा नहीं होता। किंतु संशयवादी को इस जिज्ञासा के लिए क्षमा किया जा सकता है। लहजे में आया यह परिवर्तन उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन का कारण नहीं अपितु उसका परिणाम है। इससे ज्यादा खतरनाक कोई बात नहीं होगी कि सरकारी वक्तव्यों के इस नए लहजे से साम्राज्यवादी नीति और शक्ति की ठोस वास्तविकताओं के प्रति या इस शक्ति को बनाए रखने के लिए साम्राज्यवादियों द्वारा प्रत्येक साधन इस्तेमाल करने के इरादे के प्रति भ्रम पैदा हो (हर साधन का मतलब मशीनगनों सहित दमन के सभी प्रचलित हथियार)। नवीनतम ब्रिटिश योजना के प्रश्न पर विचार करते समय इन वास्तविकताओं पर विचार करना जरूरी होगा।

इस तरह की दलील का व्यावहारिक महत्व स्पष्ट है। आधुनिक साम्राज्यवाद ने भारतीय राष्ट्रवाद को अपनी पोषित संतान मानने का कृपापूर्ण दावा किया है और उसका यह दावा एक पतनशील शक्ति की निरीह आत्मभ्रांति तथा आत्मपरितुष्टि कदापि नहीं है। पिछड़ी हुई जनता को राष्ट्रीय चेतना और संभाव्य स्वराज्य की भावना (जिसे मार्क्सवाद की शब्दावली में 'उपनिवेशवाद की समाप्ति' का सिद्धांत कहा जाता है) का प्रशिक्षण देने और इस दिशा में आगे बढ़ने में मदद पहुंचाने के लिए एक सभ्य बनाने वाली व्यवस्था के रूप में साम्राज्यवाद के सिद्धांत को सबसे पहले मैकडोनल्ड जैसे साम्राज्यवाद के चाकरों और गद्दार समाजवादियों के एक गुट ने पेश किया। उन्होंने बाद में साम्राज्यवाद की 'सभ्य बनाने वाली' इस भूमिका की व्यावहारिक समझदारी का परिचय भारत में अपना आतंकपूर्ण शासन कायम करके और जनतांत्रिक अधिकारों की मांग के अपराध में 60 000 भारतीयों को कैद करके दिया। साम्राज्यवाद के आधुनिक प्रवक्ताओं ने अत्यंत व्यावहारिक मकसद से इस सिद्धांत को ग्रहण किया है। इसमें निकलने वाले व्यावहारिक निष्कर्ष इस प्रकार होंगे कि उस हालत में समझदार और रचनात्मक भारतीय राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद को अपना दुश्मन मानना छोड़ देगा, वह राष्ट्रीय स्वाधीनता का आंदोलन त्यागकर इसके स्थान पर साम्राज्यवाद के साथ तालमेल बैठाना और सहयोग करना शुरू

करेगा और साम्राज्यवाद को अपना ऐसा पथप्रदर्शक तथा शिक्षक मानेगा जो भविष्य के एक कल्पित समय में, और वह भी साम्राज्यवादियों द्वारा निर्धारित समय में, भारतीय जनता को बड़े आराम के साथ धीरे धीरे एक अनिश्चित और अपरिभाषित स्वराज्य की दिशा में ले जाएगा।

क्या यह मानना सही है कि भारतीय राष्ट्रवाद ब्रिटिश शासन की संतान है और इसका परिणाम है? निस्संदेह एक अर्थ में उनका दावा सही है हालांकि यह दावा करने वाले जिस अर्थ में इस तरह के दावे करते हैं वह एकदम भिन्न है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि जापानी हमलावर चाहें तो यह दावा कर सकते हैं कि अपने आक्रमण के जरिए उन्होंने चीन की जनता में राष्ट्रीय एकता कायम कराने में मदद की और वस्तुपरक दृष्टि से देखें तो उनका यह दावा सही है। इसी तरह चूंकि आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म और विकास साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के दौरान हुआ है इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी यह दावा कर सकता है कि उसने ही इसके लिए स्थितियां तैयार कीं। इसी तरह जारशाही भी रूस में मजदूर वर्ग की विजय का सूत्रपात करने का दावा कर सकती है और चार्ल्स प्रथम इस बात का दावा कर सकता है कि उसने कामवेल की विजय के लिए परिस्थितियां तैयार कीं।

फिर भी, आधुनिक युग के साम्राज्यवाद समर्थकों का यह मतलब नहीं है। वे यह कहना चाहते हैं कि ब्रिटिश शासन की सकारात्मक उपलब्धियों ने भारत के राजनीतिक एकीकरण और आधुनिक केंद्रीकृत प्रशासन के जरिए ही नहीं (यहां उनके पक्ष में ठोस तर्क हैं) बल्कि ब्रिटिश वैधानिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को आरोपित करके और शिक्षा प्राप्त करने वाले एक मामूली अल्पमत के लिए 'अंगरेजी ढंग की' शिक्षा लागू करके अनिवार्य रूप से भारतीय राष्ट्रवाद का बीज बोया और पढ़े लिखे लोगों के बीच संसदीय सरकार तथा जनतांत्रिक स्वतंत्रता के अंगरेजी आदर्शों का आरोपित किया। इंग्लैंड के इतिहास ने लोगों को धीरे धीरे नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का पाठ पढ़ाया। अंगरेजों के राजनीतिक विचारों ने, जिन्हें बर्क और मिल ने अभिव्यक्ति दी, इस पाठ को और मजबूती से उनके दिलों में स्थान दिया। बुनियादी तौर पर कुशाग्र बुद्धिवाले और तेजी से उत्साह में आने वाले शिक्षित भारतीयों को ज्ञान का एक नया भंडार मिला।' (एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स 'ह्वाट एबाउट इंडिया?', 1928, पृ० 105)

इस दावे में किस हद तक सचाई है? आधुनिक युग की जनतांत्रिक चेतना का विकास बहुत से देशों में हो चुका है और इंग्लैंड में बहुत शुरू में हुआ था। यह कोई इंग्लैंड की ही चीज नहीं है। यह भी कथन सही नहीं है कि जनतांत्रिक क्रांति के बीज बोने के लिए किसी देश पर विदेशी प्रभुत्व होना जरूरी है। अमरीका की स्वतंत्रता की घोषणा से और उससे भी ज्यादा स्वतंत्रता, समानता और सद्भाव के आदर्शों से ओतप्रोत फ्रांस की महान क्रांति से 19वीं सदी के जनतांत्रिक आंदोलन ने जितनी प्रेरणा प्राप्त की उतनी

उसने इग्लैंड से नही की जहा सम्राट और ससद के बीच समझौता हो गया था। 20वी सदी म 1905 और 1917 की रूसी क्राति ने जनता की ओर खासतौर से एशिया तथा राष्ट्रीय स्वतत्रता की माग करने वाले सभी उपनिवेशो की गुलाम जनता के बीच जागति की लहर पैदा करने मे विशिष्ट भूमिका अदा की।

भारत मे जनता की जागृति का विकास ससार की इन्ही धाराओ के साथ साथ हुआ है और विकास के विभिन्न चरणो द्वारा इसे दिखाया जा सकता है। 19वी सदी के उत्तराध मे भारतीय राष्टवाद के जनक राममोहन राय ने जब 1830 म इग्लैंड की यात्रा की तो उन्होन तमाम असुविधाओ के बावजूद फ्रासीसी जहाज पर यात्रा करने के लिए इसलिए जोर दिया ताकि वह फ्रासीसी क्राति के सिद्धाता के प्रति अपना उत्साह प्रदर्शित कर सकें। यह घटना स्मरणीय है। राष्ट्रीय काग्रेस जिसका गठन मूलत जनता के उभरते आदोलन को रोकने के लिए और ब्रिटिश शासन की रक्षा के लिए सरकारी प्रेरणा से हुआ था, 20 वर्षो तक सोती रही और 1905 की महान जन उत्तेजना और हलचल के बाद पहली बार अपनी नीद से जगी। इसके बाद जब क्रातिकारी लहर शात हो गई तो वे फिर शातभाव से स्वामिभक्ति का माग अपनाने लगी। और जब 1917 के बाद विश्व भर मे क्रातिकारी आदोलन की लहर उठी तब वह फिर एक बार अपनी नीद से उठकर पहले से भी ज्यादा तेजी से आगे बढ चली।

इग्लैंड ने अगर मध्यस्थता न की होती तो राष्ट्रीय और जनतात्रिक स्वतत्रता के लिए सघष की इन विश्वधाराओ मे भारत कभी हिस्सा न ले पाता, यह धारणा मूखतापूण है और ऐसा केवल आत्मतुष्टि के लिए कहा जाता है। इसके विपरीत चीन का उदाहरण हमे बतलाता है कि किस प्रकार एक ऐसे देश म जहा साम्राज्यवाद पूरी तरह पहल कभी अपना प्रभुत्व स्थापित नही कर सका था राष्ट्रीय जनतात्रिक अत प्रेरणा कितनी ज्यादा शक्ति के साथ आगे बढ सकी और अपन लिए जमीन तैयार कर सकी। और इस राष्ट्रीय जनतात्रिक मुक्ति आदोलन को लगातार साम्राज्यवादी हमला और घुसपैठ के द्वारा थोपे गए अवराधो के विरुद्ध सघष करना पडा।

क्या भारत मे राष्ट्रीय आदोलन इसलिए पैदा हुआ क्योकि भारत के शिक्षित वग ने अपने मालिको से बक, मिल और मैकाले पढने की शिक्षा ली थी तथा ग्लैडस्टोन और ब्राइट जैसे वक्ताओ के ससदीय भाषण म आनद लेना सीखा था? साम्राज्यवादियो द्वारा प्रचारित कहानी कुछ इसी तरह की है। यह कहानी बहुत साधारण है और इसके समानातर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक फ्रास की स्थापना नपोलियन की इच्छा से हुई या कैथोलिक कहते हैं कि प्रोटेस्टेंट धम लूथर की व्यक्तिगत विलक्षणताओ मे पैदा हुआ। भारत का राष्ट्रीय आदोलन यहा की सामाजिक परिस्थितियो स, साम्राज्यवाद की परिस्थितियों और उसकी शोषण प्रणाली म पैदा हुआ है। वह उन सामाजिक तथा आर्थिक शक्तियो से पैदा हुआ है जो इस शोषण के कारण भारतीय समाज म उत्पन्न हो

गई है। उसके पैदा होने का कारण यह है कि भारत म पूजीपतिवर्ग का उदय हो चुका है और चाहे शिक्षा की कैसी भी व्यवस्था क्या न होती ब्रिटिश पूजीपतिवर्ग के प्रभुत्व के साथ उसकी प्रतिस्पर्धा अनिवार्य है। यदि भारत के पूजीपतिवर्ग ने केवल संस्कृत मे लिखे वेदों का अध्ययन किया होता अथवा सभी तरह की विचारधाराओ से अलग हटकर मठो मे ज्ञान प्राप्त किया होता तो निश्चय ही उसे संस्कृत वेदो म भी अपनी आजादी के सघर्ष की प्रेरणा से भरपूर सिद्धात मिल जाते।

जब मैकाले ने साम्राज्यवाद की तरफ से अगरेजी पद्धति की शिक्षा भारतीयो पर थोप दी और प्राच्यविदो को परास्त कर दिया तो उसका उद्देश्य भारतीयो म राष्ट्रीय चेतना पैदा करना नहीं था बल्कि उस चेतना को पैदा होने से रोकने के लिए उसकी जड तक खोद डालना था। इस काम के पीछे ठीक वही भावना काम कर रही थी जो पुराने रूसी साम्राज्य की विजित जातियो के लिए रूसीकरण की जारशाही पद्धति के पीछे थी। मैकाले का उद्देश्य ऐसे विनीत आज्ञाकारी लोगो का एक वर्ग तैयार करना था जो अपनी जनता से पूरी तरह कटकर अगरेजो की इच्छा की पूर्ति कर सके। जनतत्र के बीज बोने की भावना के लिए मैकाले काम कर रहा था। इस प्रश्न पर उसके विचार बहुत स्पष्ट है। मैकाले ने ही यह घोषित किया था कि 'हम पता है कि भारत के पास कभी एक स्वतत्र सरकार नही हो सकती लेकिन उसके पास दूसरे दर्जे की सर्वोत्तम चीज अर्थात एक दृढ और निष्पक्ष तानाशाही हो सकती है।' साम्राज्यवाद की समूची प्रणाली मे निहित अतर्विरोधा का ही यह परिणाम था कि शिक्षा की जो पद्धति कुशल साम्राज्यवादी प्रशासन के लिए थोपी गई थी उसी ने भारत के लोगो के लिए इग्लड के जनतात्रिक और लोकप्रिय आदोलनो तथा जनसघर्षों से और भारत मे चल रहे अत्याचारो की ही तरह के अत्याचारो से लड रहे मिल्टन, शैली तथा बायरन जैसे कवियो से प्रेरणा प्राप्त करने का भी रास्ता खोल दिया। कभी कभी तो इनका मुकाबला शासकवर्ग के उन्ही कुलीन तत्रो, पिटो, हेस्टिग्जो और वेलिगटनो से होता था जो भारत पर शासन कर रहे थे और भारत का शोषण कर रहे थे। लेकिन यह ऐसा विरोधाभास था जिसका पूर्वानुमान उस समय नही लगाया गया और तब से आज तक साम्राज्यवादियो की बाद की पीढी ने[5] जिन्होने इसके दुष्परिणामो को टालने की पूरी कोशिश की और इसके लिए भारत म पुस्तको पर सेंसरशिप बढा दी, कभी इन स्थितियो पर खेद नही प्रकट किया।

भारत म अगरेजी राज की या जिन शक्तियो ने भारत के लोगो को इच्छा या अनिच्छा पूर्वक एक राष्ट्र के साचे म ढाला है उनकी ऐतिहासिक भूमिका को कम करके दिखाने की जरूरत नही है। हमने पहले ही मार्क्स का एक उद्धरण प्रस्तुत किया है (अध्याय 4 उपशीर्षक 4) जिसमे उन्होने उस उपलब्धि के दो प्रमुख तत्वो के बारे म बताया है जिनके कारण भारत मे ब्रिटिश शासन ने 'अत्यत घृणित स्वार्थो म प्रेरित होकर अनजाने म भारत के विकास के लिए 'इतिहास के साधन' का काम किया।

भारत पर अगरेजो की विजय और अगरेजो द्वारा भारत के शोषण की सबसे पहली और महत्वपूर्ण देन या उसकी ध्वसात्मक भूमिका यह थी कि उसने भारत म पुरानी समाज-व्यवस्था का आधार निममतापूवक नष्ट कर दिया। किसी भी नई तरह की प्रगति के लिए इस आधार का नष्ट होना जरूरी था। इसका अथ यह नही है कि यदि अगरेज यहा नही आते तो यह आधार नष्ट होना असभव था। इसके विपरीत उपलब्ध स्रोतो के आधार पर हम यह धारणा बना सकते है कि जिस समय अगरेज भारत म आए उस समय यहा का परपरागत भारतीय समाज, जो सडन की स्थिति म था, समाजवादी क्राति की पहली अवस्था के कगार पर खडा काप रहा था और इस अवस्था को वह केवल अपने साधनो के बल पर पार करने वाला था। लेकिन भारतीय समाज अभी सक्रमणकालीन अव्यवस्था के दौर म ही था कि ब्रिटेन की पूणतया परिपक्व पूजीवादी क्राति ने उसे जा पकडा और भारत पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। फिर भी वास्तविक ऐतिहासिक दस्तावेजो म यही लिखा गया कि पुरानी समाज-व्यवस्था का नष्ट होना ब्रिटिश शासन की देन थी।

ब्रिटिश शासन की दूसरी देन यह थी कि उसने देश की राजनीतिक एकता के जरिए भारत मे नई समाज-व्यवस्था का भौतिक आधार तैयार किया। उसने भारत का सपक विश्व बाजार के साथ किया, आधुनिक सचार व्यवस्था खासतौर से रेल व्यवस्था और टेलीग्राफ प्रणाली की स्थापना की। इसके बाद आधुनिक उद्योगधधो की शुरुआत की और इसके लिए प्रशासनिक तथा वैज्ञानिक योग्यताओवाले आवश्यक कमचारियो को प्रशिक्षित किया। हालाकि ये सारे काम उतने पूण रूप मे नही किए गए जितने पूण रूप मे अगरेजी राज ने अपनी ध्वसात्मक भूमिका अदा की थी।

लेकिन इन दोनो कार्यो स न तो भारतीय जनता को स्वतत्रता मिल सकती थी और न उसकी हालत म कुछ सुधार हो सकता था। उन्होने इन दोनो चीजो के लिए महज एक भौतिक परिसर तैयार किया। लेकिन 'क्या पूजीपतिवग ने कभी इससे ज्यादा कुछ किया है? क्या उसने व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर लोगो को रक्तपात और गदगी दुख दद और अपमान के बीच घसीटे बिना कभी किसी प्रगति को प्रभावित किया है?'

उसके लिए तीसरा कदम उठाना अभी शेष था। उसके लिए यह जरूरी था कि भारत की जनता उत्पादन की नई शक्तियो पर अधिकार कर ले और उन्हे अपन हित म सगठित करे। जैसा माक्स ने जोर देकर कहा था यह काम भारत की जनता साम्राज्यवाद विरोधी सघष चलाकर और अगरेजो के जुए को पूरी तरह उतार फेंकने के लिए' अपनी समूची शक्ति को विकसित करके ही पूरा कर सकेगी। भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन का यह ऐतिहासिक दायित्व है। इस आदोलन का राष्ट्रीय मुक्ति का लक्ष्य भारत की सामाजिक मुक्ति की ओर पहला कदम है।

19वीं सदी के पूर्वार्ध म अर्थात ब्रिटिश शासनकाल के प्रारंभिक दिनों म अगरेज शासकों न भारत मे जो तबाही और बरबादी की और यहा के उद्योग धधो को जिस तरह नष्ट-भ्रष्ट किया उसके बावजूद उन्होंने कुछ बातो म अर्थात भारतीय समाज के दकियानूस और सामती शक्तियो के साथ सक्रियतापूर्वक लडकर इतिहास की दृष्टि से एक क्रातिकारी भूमिका अदा की। देशी रजवाडो को जबरदस्ती हडप लेने की उनकी नीति के कारण तमाम रियासतें खत्म होती जा रही थी और जो बची हुई रियासतें थीं उनके शासक चिंतित हो उठे थे। यह साहसपूर्ण सुधारों का युग था। उदाहरण के लिए उस दौर म सती प्रथा पर रोक लगा दी गई (इस काम मे भारतीय समाज के प्रगतिशील तत्वो ने पूरा पूरा सहयोग दिया), गुलामी प्रथा समाप्त कर दी गई (हालाकि यह एक रस्मी ढग की कार्यवाही साबित हुई) शिशु हत्याओ और गुडागर्दी के खिलाफ अभियान चलाया गया, पश्चिमी ढग की शिक्षा शुरू की गई और समाचारपत्रो को स्वतत्रता दी गई। प्रारभिक दिनो मे इन अगरेज शासको का रवैया बहुत कठोर था और भारत की परपरागत प्रथाओ म जितनी भी पिछडी चीजे थी उनके प्रति उनका रवैया बहुत असहानुभूतिपूर्ण था। उनकी यह दृढ धारणा थी कि 19वीं सदी की अगरेजो की पूजीवादी तथा ईसाई अवधारणाओ का समस्त मानवता की मान्यताए बन जाना चाहिए। फिर भी ये लोग उस दौर के उभर रहे पूजीपतियो की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करते थे और इस रूप म उन्होंने भारत मे सीमित ढग से काफी परिवर्तन किए। इनम सर हेनरी लारेंस जैसे लोगो को काफी सम्मान और प्यार मिला। उस दौर की सभी परपराए ब्रिटिश और भारतीयो के बीच घनिष्ठ सबधो पर आधारित है। अगरेजो के सबसे बडे शत्रु थे पुराने प्रतिक्रिया वादी शासक जिन्हे यह लगा कि अगरेज लोग चालाकी से उनका स्थान ले लेगे। उस समय भारतीय समाज के प्रगतिशील तत्वो मे राजा राममोहन राय का नाम और ब्रह्म समाज नामक उनके सुधारवादी आदोलन का उल्लेख प्रमुख रूप से आता है। इन लोगो न अगरेजो की खुलेआम प्रशसा की और उन्हे भारत की प्रगति का समर्थक माना इसलिए उनके सुधारवादी कार्यक्रमो को इन्होंने निस्सकोच रूप स पूरा समर्थन दिया और उन्हे एक नई सभ्यता के हरावल के रूप मे देखा।

1857 का विद्रोह बुनियादी तौर पर पुराने दकियानूस और सामती शक्तियों तथा पदच्युत राजाओ द्वारा अपने अधिकारो और विशेष सुविधाओ की माग के लिए किया गया विद्रोह था। विद्रोह के इस प्रतिक्रियावादी स्वरूप के कारण जनता के व्यापक समर्थन का अभाव रहा और उसे विफल हो जाना पडा। फिर भी इस विद्रोह स यह बात स्पष्ट हो गई कि सतह के नीचे नीचे जनता म बेचैनी और असतोष की कैसी भयानक आग सुलग रही है और इससे अगरेज शासको म अभूतपूर्व घबराहट पैदा हुई। लार्ड मेटकाल्फ ने, जो 1835-36 म भारत के गवर्नर जनरल थे इस दौर के बारे म पहले ही लिखा है ('पपर्स ऑफ कार्नवालिस', पृष्ठ 116 जे०एन० मारिसन की 'लारेंस आफ लखनऊ', पृष्ठ 55 पर उद्धृत) "समूची जनता हमारे विनाश पर आनद मनाएगी अथवा मनाना चाहेगी औ उन लोगो की सख्या कम नहीं है जो अपनी ताकत भर इस काम को बढ़ावा देंगे।'

1857 के बाद अगरेजो की नीति और ब्रिटिश शासन के स्वरूप म एक महत्वपूण बदलाव आया। अब अगरेजो की नीति अधिक से अधिक इस बात पर जोर देने लगी कि जनता के विरुद्ध अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए भारत के प्रतिक्रियावादी तत्वो का समथन प्राप्त किया जाए। इसके साथ ही भारत के उदीयमान पूजीपतिवग का प्रतिनिधित्व करने वाली नई प्रगतिशील शक्तिया के साथ अगरेज शासको के सबध जो पहले काफी मैत्रीपूण और घनिष्ठ थे अब सदेह, शत्रुता और उदासीनता से भर गए। इस स्थिति म यदि कभी थोडी कमी आती भी थी तो केवल उस समय जब अगरेज शासक परिस्थितियो से विवश होकर जनता के खिलाफ उनसे अस्थाई तौर पर कोई गठबधन कर लेते थे। भारतीय रियासतो को जबरदस्ती ब्रिटिश भारत म शामिल कर लेने की नीति अचानक समाप्त कर दी गई। इसके बाद से जो रियासतें शेप बची थी उनके शासका को अपनी कठपुतली बनाकर रखने की नीति का अनुसरण किया जान लगा। उन्हे 'प्रभुसत्ता सपन्न' घोपित कर दिया गया और अपना सहयोगी बताया गया तथा उनके हर तरह के भ्रष्ट सामती दमन तथा कुप्रशासन को सरक्षण ही नही दिया गया बल्कि उसे और मजबूत बनाया गया। अब रजवाडा के शासक एकदम परोपजीवी भूमिका निभान लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत का राजनीतिक मानचित्र बेतुकी छोटी छोटी जागीरो के पबदो से भर गया। बिलकुल हाल के वर्षो म इन रियासतो और रजवाडो के शासको को, जो अब पूरी तरह से साम्राज्यवादी मालिको के हाथ के भ्रष्ट औजार बन चुके है फिर एक बार भारत के साविधानिक विकास के मामले मे राष्ट्रीय स्वतत्रता की शक्तिया का विरोध करने के लिए सामने लाया गया। सामाजिक सुधार के रास्ते पर चलना भी अब बद कर दिया गया और शासकवग ने इसके स्थान पर हर प्रतिक्रियावादी धार्मिक प्रथा और रीति रिवाजो का जोरदार समथन करना शुरू किया (1891 का दि एज आफ कसेंट ऐक्ट इस बात की अवधि मे लगभग एकमात्र अपवाद है)। 1858 म महारानी विक्टोरिया न जो घापणा की उसम एक तरफ ता भारत क लोगो को अगरजो की बराबरी का दरजा देने का नाटक किया गया था (इस सदभ मे बाद के वायसराय लाड लिटन न बडे साफ शब्दा मे घापित किया कि ये दावे और ये उम्मीदें न तो कभी पूरी हो सकती है और न होगी।') और दूसरी तरफ उसम सरकार के इस फैसले पर जोर दिया गया था कि भविष्य मे ब्रिटिश सरकार 'धार्मिक विश्वास और पूजापाठ के मामलो मे कभी किसी तरह का हस्तक्षेप न करेगी।' इसके साथ ही भारतीय जनता की दकियानूस ताकतों को यह विश्वास दिलाया गया था कि भारत के प्राचीन अधिकारा, रीतिया और तौर तरीका का पूरा पूरा ध्यान रखा जाएगा।' 1876 म रायल टाइटिल्स एक्ट की घापणा हुई जिसक अतगत 1877 म महारानी विक्टोरिया का भारत की साम्राज्ञी घोपित कर दिया गया। इस सदभ म वायसराय लाड लिटन ने कहा कि यह कानून 'एक ऐसी नई नीति की सूचना दता है जिसके फलस्वरूप अब से इग्लड के राजसिंहासन का भारत क एक शक्तिशाली दर्शी अभिजात वग की आशाआ, आकाक्षाआ, उद्देश्या और हिता का प्रतिनिधि और रक्षक समझा जान लगेगा।' इस अवधि म ही अगरज शासको ने हिंदुआ और मुसलमाना को आपस म लडा ने और भारत क लोगा क अन्य छोट मोट मतभेदो से अपन हित म

इस्तेमाल करने के तरीका का अध्ययन शुरू किया और अतत उन्होंने साप्रदायिक आधार पर मतदाता सूची तैयार करने की आधुनिक पद्धति के जरिए इस मसले को भारत की राजनीति का प्रमुख मसला बना दिया। इसके साथ ही 1857 के बाद से अगरेज शासको और भारतीय समाज के प्रगतिशील तत्वों के बीच दूरी बढती गई। दोनो पक्षो के लोग इस बात पर एकमत हैं कि 1857 के बाद से ही अगरेज शासको और प्रगतिशील भारतीयो के सबधो म बुनियादी रूप से तब्दीली आ गई।

इस प्रकार ब्रिटन म और समूचे विश्व म पूजीवाद के सामान्य स्वरूप मे जो परिवतन हुआ था और पूजीवाद के उदय की प्रारभिक काल की प्रगतिशील भूमिका के स्थान पर जिस प्रकार एक अधिक प्रतिक्रियावादी और पतनशील भूमिका का सूत्रपात हो गया था, उसी प्रकार भारत मे ब्रिटिश शासन के स्वरूप मे भी परिवतन हो गया था। आधुनिक साम्राज्यवाद या पतनोन्मुख पूजीवाद की अतिम अवस्था के विकास के साथ ही उसकी यह प्रतिक्रियावादी भूमिका विशेष रूप से स्पष्ट हो गई।

दूसरी तरफ 19वी सदी के अतिम दशको मे भारत मे ब्रिटिश शासन के पूववर्ती दौर की वस्तुपरक ढग से प्रगतिशील भूमिका की समाप्ति के साथ ही भारतीय समाज म नई शक्तिया तेजी से विकसित हो रही थी। 19वी सदी के उत्तराध मे भारत का पूजीपति वग सामने आ रहा था। 1853 म बबई मे सूती कपडा बनाने का पहला कारखाना सफलतापूवक शुरू किया गया। 1880 तक इन कारखानो की सख्या 156 हो गई जिनमे 44,000 मजदूर काम कर रहे थे। 1900 तक कारखानो की सख्या 193 और मजदूरो की सख्या 161,000 हो गई थी। प्रारभ से ही सूती वस्त्रो के इन नए उद्योग मे मुख्यतया भारतीयो ने पूजी लगाई और उन्होंने ही इसका सचालन किया। अनक कठिनाइयो के बीच इसे अपने विकास के लिए माग तैयार करना पडा। इसी के साथ साथ नया शिक्षित मध्यवग भारतीय रगमच पर सामने आ रहा था जो वकीलो, डाक्टरो, अध्यापको और प्रशासको के रूप म पश्चिमी शिक्षा के सिद्धातो का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुका था। यह वग नागरिकता की 19वी सदी की जनतात्रिक धारणाओ को आगे बढा रहा था। पूजीवादी उद्योग धधों तथा पश्चिमी ढग की शिक्षा से लैस बुद्धिजीवियो के क्षेत्र मे हुई यह शुरुआत अब भी अपेक्षाकृत काफी धीमी थी। लेकिन उस नए वग ने जन्म ले लिया था जिसको आगे चलकर अनिवाय रूप से अपने से ज्यादा शक्तिशाली प्रतिद्वद्वी और अपने विकास के रास्ते म बाधक ब्रिटिश पूजीपतिवग का मुकाबला करना था और इसीलिए वह भारत की राष्ट्रीय माग को सबसे पहले स्पष्ट अभिव्यक्ति देने और देश का नेतृत्व करने के लिए बाध्य था।

भारत के इस नए पूजीपतिवग और ब्रिटिश पूजीपतिवग के बुनियादी आर्थिक सघष की अभिव्यक्ति 1882 म ही उस समय हो गई जब लकाशायर के निर्माताओ की माग पर सरकार ने भारत के विकसित हो रहे कपडा उद्योग के विरुद्ध भारत म आने वाले सूती

कपड़े पर से हर तरह का सीमा शुल्क हटा लिया। इसके तीन वर्षों बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो गई।

अंतिम बात यह है कि भारत में ब्रिटिश पूंजी के अनुप्रवेश के फलस्वरूप यहां के किसान वर्ग की गरीबी और परेशानी बढ़ रही थी और 19वीं सदी के उत्तरार्ध तक और खासतौर से इसके अंतिम 30 वर्षों के दौरान स्थिति यह हो गई कि किसान हर तरफ से निराश हो गए और जन असंतोष की घटनाएं सामने आने लगीं। हम पहले ही यह बता चुके हैं कि 19वीं सदी के पूर्वार्ध में देश में जहां 7 अकाल पड़े थे और उनमें 15 लाख आदमी मरे थे, वहां 19वीं सदी के उत्तरार्ध में 24 अकाल पड़े और उनमें 2 करोड़ 85 लाख आदमी मरे। इन 24 अकालों में से 18 अकाल 19वीं सदी के अंतिम 25 वर्षों में पड़े थे (अध्याय 5, पृष्ठ 106)। 1875 का दक्कन का किसान विद्रोह इस बढ़ते हुए असंतोष का एक खतरनाक संकेत था। सरकार को उससे कितनी चिंता हुई इसका पता इसी बात से चलता है कि उसने 1875 में दक्कन के दंगों की जांच के लिए एक आयोग नियुक्त किया जिसने गांवों की हालत की पूरी जांच की और उपद्रवों के कारणों तथा कृषि की समूची स्थिति की छानबीन की। 1875 में सरकार ने एक अकाल आयोग (फैमिन कमीशन) की नियुक्ति की। इस प्रकार 19वीं सदी का तीन चौथाई हिस्सा समाप्त होते होते भारत में वे सारी स्थितियां तैयार हो गई थीं जो 19वीं सदी के 75 वर्षों में यहां मौजूद रही थीं और जो भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत के लिए आवश्यक थीं।

4 राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म

फिर भी अपनी सीमित मूलत अभीष्ट सीमाओ के बावजूद एक राष्ट्रीय सगठन के कानूनी तौर पर अस्तित्व में आने के साथ ही अनिवार्यत ऐसी प्रवृत्तिया दिखाई देने लगी जो राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत थी। अपनी स्थापना के प्रारभिक वर्षों म ही काग्रेस के राष्ट्रीय चरित्र ने इसके स्वामिभक्ति वाले चरित्र का धुधला करना शुरू कर दिया हालाकि शुरू के दिनो में यह काम बहुत सीमित रूप में हुआ। कुछ ही वर्षों के अदर ब्रिटिश सरकार न इस सस्था पर सदेह करना शुरू कर दिया और इसके बारे म राजद्रोह' का केंद्र बनने का सदेह किया जाने लगा। घटनाक्रमा के बाद के विकास क रूप में राष्ट्रीय सघर्ष के जन आदोलन जो 1914 के युद्ध स पहले प्रारभिक अवस्था मे थ अब ज्यादा निर्णायक रूप से सामने आने लगे और इन्होंने अधिकारविरोधी जनसघर्ष का रूप ले लिया। इन सघर्षों ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता का लक्ष्य प्राप्त करने का सकल्प किया जबकि सरकार ने इन सघर्षों का नेतृत्व करने वाली सस्था यानी काग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया और इसका दमन करना चाहा। आज राष्ट्रीय काग्रेस राष्ट्रीय आदोलन म लगे करोडो सगठित जनो का मुख्य केंद्रबिंदु है और व्यापक तौर पर लोगा की यह धारणा है कि अगरेजो के जाने के बाद भारत का शासन सभालने का दावा कर सकती है।

साम्राज्यवाद के सभी बुनियादी दावा को पराजित करके काग्रेस की प्रगति का जो इतिहास रहा उसमे यही प्रमाणित होता है कि राष्ट्रीय आदोलन की शक्तिया बडी तेजी के साथ आगे बढ रही थी और साम्राज्यवाद ने उन शक्तियो को रोकने के लिए जो छोटे छोटे अवरोध तैयार किए थे उनसे इन शक्तियो का रोक सकना असभव था।

बहुधा भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारभ का 1885 म काग्रेस की नीव पडने के साथ जोडा जाता है। लेकिन सचाई यह है कि यदि इससे पहले के 50 वर्षों का अध्ययन करें तो आदोलन के अग्रदूतो की तलाश की जा सकती है।[6] उस सुधारवादी आदोलन का पहले ही जिक्र किया जा चुका है जिसकी अभिव्यक्ति 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना म हुई। 1843 मे बगाल मे ब्रिटिश इडिया सोसायटी की स्थापना हुई जिसने अपने जनता के सभी वर्गों के हिता का बढाने, उन्हे न्यायोचित अधिकार दिलाने और उन्हे खुशहाल रखने' का लक्ष्य घोषित किया। 1851 म यह सस्था ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन म शामिल हो गई जिसने 1852 म ब्रिटेन की ससद म एक याचिका भेजी जिसम घोषणा की गई थी कि 'वे यह महसूस करते है कि ग्रेट ब्रिटेन के साथ अपने सबधो से उन्हे उतना लाभ नही मिल सका है जितने की आशा करने का उन्हे हक है।' इस याचिका म मालगुजारी व्यवस्था, कारखानेदारो को हतोत्साहित किए जाने, शिक्षा और उच्च प्रशासनिक सेवाओ में भरती के प्रश्न पर अपनी शिकायतें व्यक्त की गई थी और एक ऐसी सविधान परिषद की माग की गई थी जिसका लोकप्रिय स्वरूप हो और यह ऐसी हो कि कुछ मामलो म यह जनता की भावनाओ का प्रतिनिधित्व कर।' इन प्रारभिक सगठनो का सबध उस समय भी मुख्यतया भूस्वामियो के हितो स जुडा हुआ था और जिन सस्थाओ क मेल से ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन की स्थापना हुई उनम बगाल के जमींदारो की सस्था भी [illegible]

भी शामिल थी। 1875 मे सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने इडियन एसोसिएशन की स्थापना की। यह पहला सगठन था जिसमे मध्यवग के शिक्षित लोग थे और जो बडे भूस्वामियो के प्रभुत्व के खिलाफ थे। प्रतिक्रियावादी सस्था ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन और प्रगतिशील सस्था इडियन एशोसिएशन, दोनो की शाखाए देश के विभिन्न हिस्सो मे खोली गइ। 1833 म कलकत्ता के इडियन एसोसिएशन ने पहला अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जिसम बगाल, मद्रास बबई और सयुक्त प्रात के प्रतिनिधियो ने हिस्सा लिया। 1883 के राष्ट्रीय सम्मेलन की अध्यक्षता आनदमोहन बोस ने की जो बाद मे 1898 मे राष्ट्रीय काग्रेस के अध्यक्ष बने। अपने उदघाटन भाषण मे उन्होंने घोषणा की कि यह सम्मेलन एक राष्ट्रीय ससद का पहला चरण है। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की एक अवधारणा पहले ही रूप ले चुकी थी और भारतीय प्रतिनिधियो की पहल और सक्रियता मे वह अभी परिपक्वता की स्थिति मे पहुच ही रही थी कि ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप कर दिया। इसलिए सरकार ने ऐसे किसी आदोलन की स्थापना नही की जिसका पहले स कोइ अस्तित्व या आधार नही था। वस्तुत सरकार एक ऐसे आदोलन की जिम्मेदारी लेने के लिए आग बढी जो किसी भी स्थिति मे अस्तित्व म आ रहा था और जिसका विकास सरकार की दृष्टि मे भी अवश्यभावी था।

राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना के पीछे सरकार का दृष्टिकोण यह था कि इससे आसन्न क्राति की सभावना मिट जाएगी या उसका खतरा टल जाएगा। उपलब्ध दस्तावेजो और सस्मरणो को देखने से यह बात साबित हो चुकी है हालाकि पूरा विवरण जानने के लिए तब तक इतजार करना पडेगा जब तक सग्रहालयो से वे चीजे भी बाहर न आ जाए जो अभी गुप्त रखी गई ह और जिन्ह तब तक गुप्त रखे जाने की आशका है जब तक दूसरी सरकार न आ जाए।

राष्ट्रीय काग्रेस के अधिकृत सस्थापक एक अगरेज प्रशासक श्री ए० ओ० ह्यूम थे जो 1882 तक सरकारी सेवा म रहे। सरकारी सेवा मे अवकाश प्राप्त करने के बाद उन्होने काग्रेस की स्थापना का काम शुरू किया। सरकारी अधिकारी होने क कारण ह्यूम को पुलिस की काफी विशालकाय गुप्त रिपोर्टें पढने को मिली थी जिनसे पता चलता था कि देश भर मे जन असतोष बढ रहा है और अनेक भूमिगत षड्यत्रकारी सगठन तैयार होते जा रहे है। 19वी सदी का आठवा दशक भयकर अकाल और तगी का दौर था और किसानो मे कितना असतोष बढ रहा था इसका परिचय दक्कन के किसान विद्रोह से मिल चुका था। 1877 म एक तरफ भयकर अकाल पड रहा था और दूसरी तरफ पूरी शान शौकत के साथ राज दरबार लग रहा था जिसम महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया गया। द्वितीय अफगान युद्ध भी इसी वर्ष हुआ था। असतोष का मुकाबला दमन के जरिए किया गया था। 1870 के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट क जरिए समाचारपत्रो की स्वाधीनता समाप्त कर दी गई। इसके बाद क वर्ष म आर्म्स एक्ट लागू किया गया जिसके जरिए ग्रामीणो से व हथियार भी ले लिए गए जिनसे व जगली जानवरों से

अपनी रक्षा करते थे। सार्वजनिक सभाओं का अधिकार समाप्त कर दिया गया। ह्यूम के जीवनी लेखक ने लिखा है

> सरकार ने जिन दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रियावादी उपायों से काम लिया और जिन रूसी तरीकों से पुलिस के जरिए दमन किया उन सबका यह परिणाम हुआ कि लार्ड लिटन के जमाने में भारत में कुछ ही दिनों के अंदर एक क्रांतिकारी विस्फोट होने का खतरा पैदा हो गया। यही वह समय था जब श्री ह्यूम और उनके भारतीय सलाहकारों ने इसमें हस्तक्षेप की बात सोची। (सर विलियम वेडरबर्न एलेन आक्टेवियन ह्यूम, फादर आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस (1913), पृष्ठ 101)

सर विलियम वेडरबर्न ने आगे बताया है कि इस हस्तक्षेप का उद्देश्य क्या था

> लगभग 1878 या 1879 में जब लार्ड लिटन की वायसराय की अवधि समाप्त होने वाली थी, श्री ह्यूम इस बात पर सहमत हो गए कि बढ़ते हुए असंतोष का मुकाबला करने के लिए कोई निश्चित कदम उठाना जरूरी है। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले उनके शुभचिंतकों ने उनके पास यह लिखकर भेजा था कि सरकार और भारत की भावी खुशहाली को गंभीर खतरा है, जनता को आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ेगा और बुद्धिजीवी वर्ग सरकार से अलग हो जाएगा। (वही, पृष्ठ 50)

कांग्रेस की स्थापना से पहले सरकारी आशीर्वाद के साथ जबरदस्त दमनचक्र चला। ये दोनों प्रक्रियाएं एक दूसरे की विरोधी नहीं बल्कि पूरक थीं। जब तक शक्तिशाली क्रांतिकारी आंदोलन का दमन नहीं कर दिया गया, तब तक 'जनता के बढ़ते असंतोष' को रोकने के लिए नरमदली नेताओं के नेतृत्व में कानूनी आंदोलन नहीं शुरू किया गया। दमन और समझौते का यह दोहरा या वैकल्पिक तरीका साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञों का पुराना हथियार था जिसका वे आने वाले दिनों में भी इस्तेमाल करने के लिए अभिशप्त थे। इसके जरिए एक तरफ तो रेडिकल जुझारू शक्तियों को दबाया जाता था और दूसरी तरफ 'वफादार' मध्यमवर्गी नेताओं के साथ गठबंधन किया जाता था।

वे किस तरह के प्रमाण थे जिनके आधार पर ह्यूम ने यह लिखा कि 'मुझे न तो तब तनिक भी संदेह था और न आज है कि उस समय हम सचमुच एक भयंकर क्रांति के खतरे के बीच से गुजर रहे थे।' इन बातों को श्री ह्यूम के ही शब्दों में बताना लाभप्रद होगा। उनके कागजातों में जो ज्ञापन मिला है उसमें इन बातों का उल्लेख है (ज्ञापन से लिए गए जिन अंशों को यहां दिया गया है उन्हें श्री ह्यूम के जीवनी लेखक ने उद्धृत किया, अन्य उद्धृत अंश वे हैं जिनका सारांश उस जीवनीकार ने दिया है।)

मेरा ख्याल है कि लाड लिटन के भारत छोडने से तकरीबन 15 महीनो पहले मैंने जो सबूत देखे उनसे मै इस बात पर सहमत हो गया कि हम लोग भयकर विस्फोट के आसन्न खतरे के बीच थे। मुझे सात बडी बडी जिल्दें दिखाई गईं (जो बर्मा, असम तथा कुछ छोटे भूखडो को छोडकर देश के कुछ भागो म विभाजन के मुताबिक थी) इनमे तमाम बातें दर्ज थी। उनमे देशी भाषाओं म लिखी गई किसी न किसी तरह की रिपोर्ट या समाचार का अगरेजी मे साराश या सक्षिप्त अथवा विस्तृत अनुवाद था। यह सारी सामग्री अलग अलग जिला, उप जिला, सब डिवीजनो, शहरो, कस्बो या गावो के हिसाब से दी गई थी। इसम प्रचुर मात्रा म रिपोर्ट दर्ज थी जिनके बारे मे बताया गया था कि इन जिल्दो म तीस हजार से अधिक सवाददाताओ की रिपोर्टें दर्ज थी। बहुत सी रिपोर्टों म सबसे निचले तबके के लोगो की बातचीत का ब्यौरा था' जिनसे पता चलता था कि ये लोग अपनी मौजूदा हालत से एकदम निराश हो चुके थे, वे यह मान चुके थे उन्ह भूखा मर जाना है और इसलिए वे अब 'कुछ' करना चाहते थे। वे कुछ करने जा रहे थे और कधे से कधा मिलाकर खडे थे। इस 'कुछ' करने का अर्थ था हिंसा। अन्य तमाम रिपोर्टों म पुरानी तलवारो, बदूकों और हथियारो को छिपाकर जमा करने की बात का उल्लेख था। हथियारो को जमा करने का उद्देश्य यह था कि मौका हाथ लगते ही उनसे काम लिया जाए। यह नही समझा गया था कि इन सारी बातो के फलस्वरूप शुरू म ही सरकार के खिलाफ सही अर्थों म विद्रोह हो जाएगा। अनुमान यह लगाया गया था कि पहले छिटपुट अपराध होगे, घिनौने व्यक्तियो की हत्या होगी, बको मे डाके डाले जाएगे और बाजार लूटे जाएगे।' समूची स्थिति पर विचार करने से यह अनुमान लगाया गया कि अधभुखमरी की हालत म रहने वाले अत्यंत गरीब तबके द्वारा शुरू म किए गए इन अपराधो के बाद इस तरह के अपराधो का सिलसिला चल पडेगा और कानून तथा व्यवस्था की स्थिति सामान्य तौर पर इतनी बिगड जाएगी कि अधिकारियो और भद्रजनो के बस म कुछ भी नही रह पाएगा। यह भी सोचा गया कि हर जगह छोटे छोटे गिरोह धीरे धीरे बडे होते जाएगे, ठीक वसे ही जैसे पत्तियो पर पडी पानी की बूदें जुड जुड कर बडी हो जाती है, देश के सभी अराजक तत्वो म एकजुटता आ जाएगी फिर जब इनके गिरोह काफी मजबूत हो जाएगे तब पढे लिखे वर्ग के कुछ लोग भी इनके साथ हो जाएगे। कारण चाहे उचित हो या अनुचित लकिन पढे लिखे लोग पहले से ही सरकार से असतुष्ट है और इस बात की आशका थी कि ये लोग धीरे धीरे आदोलनो का नतृत्व करने लगेंगे तथा उपद्रवो को एक निश्चित क्रम देने के बाद वे उन्हे एक राष्ट्रीय विद्रोह का रूप दे देंगे और उसका नतृत्व करने लगेंगे। (सर विलियम वडरबर्न देखें पृष्ठ 80-81)

ह्यूम ने 1885 के प्रारभिक दिनों म अनुभवी राजनीतिज्ञ वायसराय लाड डफरिन से सपर्क कायम किया और सारी स्थिति उनके सामने रखी। यह बातचीत साम्राज्यवाद के मुख्यालय

शिमला म हुई और इस बातचीत म ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नामक सस्था की स्थापना की योजना तैयार की गई। कांग्रेस क पहल अध्यक्ष श्री डब्ल्यू० सी० बनर्जी न कांग्रेस के जन्म का वणन इस प्रकार किया है

> बहुत लोगो को शायद यह पता हो कि शुरू शुरू म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जिस रूप मे स्थापना हुई और जिस प्रकार वह तब स काम करती आई है, वह वस्तुत डफरिन और आवा के मारक्विस की बनाई हुई है। उस समय वह सज्जन भारत के गवनर जनरल थे। 1884 म श्री ए० ओ० ह्यू म के मन मे यह विचार आया कि यदि देश के प्रमुख राजनीतिज्ञो को साल म एक बार एक जगह इकट्ठा किया जा सके जिसमे वे दोस्ताना लहजे म एक दूसरे क साथ सामाजिक मसलो पर विचारविमश कर तो देश का काफी हित हो सकता है। ह्यू म का विचार था कि इस बातचीत म राजनीतिक मसलो को शामिल किया जाए—
>
> लाड डफरिन न इस मामल म काफी दिलचस्पी ली और कुछ समय तक इस प्रस्ताव पर विचार करन के बाद उन्होने श्री ह्यू म से कहा कि उनके (लाड डफरिन के) विचार म यह योजना बहुत लाभप्रद नही है। उन्होन कहा कि इस देश म ऐसे लोग एकदम नही है जो ऐसे काय कर सके जो इग्लैंड म साम्राज्ञी के प्रतिपक्ष ने किए हैं—शासको और शासितो के हित म यही ठीक है कि भारतीय राजनीतिज्ञ प्रति वष एक साथ मिल-बैठकर सरकार को बताए कि प्रशासन म क्या दोष है और इसम किस तरह सुधार किया जा सकता है। उन्होने यह भी कहा कि इस तरह की बैठको की अध्यक्षता स्थानीय गवनर न करे क्योकि उनकी मौजूदगी के कारण हो सकता है कि लोग खुलकर अपनी बातें न कह। श्री ह्यू म ने लाड डफरिन की दलीलों से इत्तफाक किया और जब उन्होन कलकत्ता, बबई, मद्रास तथा देश क अन्य हिस्सों म प्रमुख राजनीतिज्ञो के सामने अपनी तथा लार्ड डफरिन की योजनाए रखीं तो सवसम्मति से लाड डफरिन की योजना स्वीकार कर ली गई और इसको व्यावहारिक रूप देने का फैसला लिया गया। लाड डफरिन ने श्री ह्यू म स यह शत मनवा ली थी कि जब तक वह भारत म रह उनका नाम गुप्त रखा जाए। (डब्ल्यू० सी० बनर्जी 'इट्रोडक्शन टु इडियन पालिटिक्स', 1898)

उदारवादी साम्राज्यवाद की परपरागत नीति का यहा साफ तौर पर पता चलता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आदोलन के प्रारभिक दिनो का जिन लोगो न अभी हाल म इतिहास लिखा है उन्होन इस घटना का इस प्रकार वणन किया है

> कांग्रेस की स्थापना के ठीक पहल देश की जैसी स्थिति थी, वैसी स्थिति 1857 के बाद पहले कभी पैदा नही हुई थी। अगरेज अधिकारियो म श्री ह्यू म ही ऐसे थे

> जिन्होंने इस आसन्न खतरे को महसूस किया और उसे टालने की कोशिश की वह शिमला गए ताकि अधिकारियों को बता सकें कि कितनी खतरनाक स्थिति पैदा हो गई है। इस बात की संभावना है कि ह्यूम की बातचीत से नए वायसराय को, जो काफी कुशल प्रशासक थे, स्थिति की गंभीरता का अंदाजा हुआ और उन्होंने कांग्रेस की स्थापना के लिए ह्यूम को अनुमति दे दी। इस अखिल भारतीय आंदोलन के लिए स्थितियां पूरी तरह परिपक्व थीं। एक ऐसे किसान विद्रोह के स्थान पर, जिसे शिक्षित वर्ग की सहानुभूति और समर्थन मिलता, इस संस्था के जरिए उभरते वर्गों को नए भारत का निर्माण करने के लिए एक राष्ट्रीय मंच मिल गया। कुल मिलाकर यह अच्छा ही हुआ कि हिंसा पर आधारित क्रांतिकारी परिस्थिति पैदा होने से एक बार फिर रोक दी गई। (एंड्रूज और मुकर्जी : राइज ऐंड ग्रोथ आफ दि कांग्रेस इन इंडिया, पृष्ठ 128-29)

महत्वपूर्ण बात यह है कि 'हिंसा पर आधारित क्रांतिकारी परिस्थिति' को पैदा होने से रोकने की जिस भूमिका का निर्वाह राष्ट्रीय कांग्रेस ने किया उसकी शुरुआत गांधी के आने से पहले ही हो चुकी थी। कांग्रेस की स्थापना के साथ ही साम्राज्यवाद ने उसके अंदर यह बीज बो दिया था और इसकी सरकारी भूमिका निर्धारित कर दी थी।

कांग्रेस की भूमिका के बारे में ह्यूम की क्या धारणा थी, यह भी जानना जरूरी है :

> हमारी अपनी हरकतों से जो विशाल और बढ़ती हुई शक्तियां यहां पैदा हो गई थीं, उनके समूचे जोश को बिना हमें कोई नुकसान पहुंचाए निकाल देने के लिए एक साधन की जरूरत थी और इस काम के लिए हमारे कांग्रेस आंदोलन से ज्यादा कारगर कोई साधन नहीं बनाया जा सकता था। (वेडरबर्न, देखें, पृष्ठ 77)

लार्ड डफरिन का मकसद यह था कि कांग्रेस के द्वारा 'वफादार' लोगों को 'उग्रपंथियों' से अलग करके सरकार की मदद के लिए एक आधार तैयार किया जाए और अपने इस उद्देश्य को उन्होंने कांग्रेस की स्थापना के एक वर्ष बाद 1886 में, शिक्षित वर्गों की मांगों के विषय में भाषण करते हुए बड़े ही साफ शब्दों में बताया था :

> भारत ऐसा देश नहीं है जिसमें यूरोप के ढंग का जनतांत्रिक आंदोलन सुरक्षा के साथ लागू कर दिया जाए। मैं खुद ही उन मांगों की सावधानीपूर्वक और गंभीरता के साथ जांच करना चाहूंगा जो विभिन्न आंदोलनों से पैदा हुई हैं, जहां तक संभव या वांछनीय हो पूरी रियायत के साथ उनसे मेल बैठाना चाहूंगा, यह घोषित करना चाहूंगा कि इन रियायतों को अगले 10 या 15 वर्षों के लिए भारतीय प्रणाली का अंतिम समझौता मान लिया जाए और जन सभाओं तथा उत्तेजना फैलाने वाले भाषणों पर रोक लगा दूंगा।

उग्रपंथियों की मांगों को यदि दरकिनार कर दिया जाए—तो अपेक्षाकृत अधिक अग्रवर्ती दल के भी लक्ष्य न तो खतरनाक है और न फालतू - यहां के जिन देशी लोगों से मेरी मुलाकात हुई है उनमें काफी लोग ऐसे हैं जो योग्य भी है और बुद्धिमान भी और जिनके निष्ठापूर्ण सहयोग पर कोई भी बिना संदेह भरोसा कर सकता है। यदि ये लोग सरकार का समर्थन करने लगेंगे तो सरकार के बहुत से ऐसे कामों का जनता में प्रचार हो जाएगा जो आज उसकी दृष्टि में विधान मंडलों में कानून बनवाकर किए जाते हैं। और यदि इन लोगों के पीछे यहां के देशी लोगों की एक पार्टी खड़ी हो जाती है तो फिर भारत सरकार आज की तरह अकेली नहीं रह जाएगी। आज तो भारत सरकार तूफानी सागर के बीच अकेली चट्टान की तरह खड़ी है और चारों दिशाओं से भयंकर लहरें आकर उसपर टूट रही हैं। (सर अल्फ्रेड लायल 'लाइफ आफ दि मारक्विस आफ डफरिन ऐंट आवा', खंड 2 पृष्ठ 151-52)

लार्ड डफरिन ने जो हिसाब लगाया था वह बहुत साफ था और शुरू के दिनों में जो नतीजे सामने आए उनसे लगा कि उन्हें अपने काम में पूरी सफलता मिल गई। कांग्रेस के पहले अधिवेशन ने साम्राज्यवाद के प्रति अपनी पूरी भक्ति का परिचय दिया। अधिवेशन में पारित नौ प्रस्तावों में केवल प्रशासन में छोटे मोटे सुधारों की मांग थी। राष्ट्रीय जनतांत्रिक मांगों से मिलती जुलती बस एक मांग थी और उसमें विधानपरिषदों में कुछ चुने हुए सदस्यों के लिए जाने की प्रार्थना की गई थी। श्री ह्यूम ने अपने शिष्यसमुदाय को किस सफलता से संचालित किया यह अधिवेशन समाप्त होने के समय की एक घटना से स्पष्ट हो जाता है। इस घटना का विवरण कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की रिपोर्ट में दिया गया है

> श्री ह्यूम ने अपने प्रति प्रकट किए गए सम्मान का जवाब देने के बाद कहा कि चूंकि जयकार का काम मुझे सौंपा गया है इसलिए मैं सोचता हूं कि देर आयद दुरुस्त आयद के सिद्धांत को मानते हुए हम सभी तीन बार ही नहीं तीन गुना तीन अर्थात नौ बार और यदि हो सके तो नौ गुना तीन अर्थात सत्ताइस बार उस महान विभूति की जय बोलें जिसके जूतों के फीते खोलने के लायक भी मैं नहीं हूं, जिसके लिए आप सब प्यारे हैं और जो आप सबको अपने बच्चों के समान समझती है अर्थात सब मिलकर बोलिए महामहिम महारानी विक्टोरिया की जय।
>
> श्री ह्यूम ने आगे क्या कहा यह नहीं सुना जा सका क्योंकि उसी समय चारों तरफ से जयजयकार होने लगी और उस शोर में वक्ता की आवाज डूब गई। उनकी इच्छानुसार लोगों ने बार बार जयजयकार की।

(एच०जी० फला दि इडियन मार्केट हिंटस टू दि ब्रिटिश एक्सपोटर दि टाइम्स ट्रेड ऐंड इजीनियरिंग इडिया सप्लीमट, अप्रल 1939)

5 भारत म पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने जो पाठयक्रम निर्धारित किए थे, उसका इस पुस्तक के लेखक ने अध्ययन किया है। यह राजनीतिक दृष्टि से अत्यत गलत अनुमान के आधार पर किया गया है। (सर अल्फ्रेड लायल जी० सी० आई० ई० वलेंटाइन चिरोल की पुस्तक इडियन अनरेस्ट 1910 की भूमिका पृष्ठ 13)

6 इन अग्रदूतो और राष्ट्रीय आदोलन की प्रारभिक अवस्थाओ का पूण विवरण सी० एफ० एड्रूज और जी० मुकर्जी की पुस्तक दि राइस ऐंड ग्रोथ आफ दि कांग्रेस इन इडिया 1938 म देखा जा सकता है।

इस तरह कांग्रेस की शुरुआत भी इजूरी में हुई (यहां भी तलब नाटक वाली जिस कल्पना शक्ती का इस्तेमाल किया गया है उसकी भी शुरुआत पूरब के नागा ने नहीं बल्कि अंगरेजों ने ही की) लेकिन वही कांग्रेस एक दिन गैरकानूनी घोषित कर दी गई। सरकार उसके सदस्यों की धरपकड़ करने लगी और उसने दिखा कि इस संस्था में नाना प्रकार लोग स्वाधीनता के संघर्ष के लिए पूरी निष्ठा के साथ आ घुसे।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय से ही कांग्रेस का जो दोहरा चरित्र सामने आया था कांग्रेस के बाद के इतिहास के लिए भी उसका बहुत महत्व था। उसकी भूमिका का यह दोरंगापन उसके समूचे इतिहास में बना रहा एक तरफ तो वह जन आंदोलन के खतरे से बचने के लिए साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करती थी और दूसरी ओर वह राष्ट्रीय संघर्ष में जनता का नेतृत्व करती थी। कांग्रेस के चरित्र का यह दोहरापन पुराने युग के नेता गोखले से लेकर नए युग के नेता गोखले के शिष्य गांधी तक के नेतृत्व के अंतर्विरोधों में मिलता है (हालांकि इन दोनों का अंतर मुख्यत जन आंदोलन की अलग अलग अवस्थाओं का अंतर है जिसके फलस्वरूप दोनों नेताओं को अलग अलग कार्य नीति अपनानी पड़ी)। यह दोहरापन भारतीय पूंजीपतिवर्ग की दोरंगी या ढुलमुल भूमिका का परिचायक है। भारत के पूंजीपति के हितों का टकराव ब्रिटिश पूंजीपतिवर्ग के हितों से होता है इसलिए वह भारतीय जनता का नेतृत्व तो करना चाहता है पर उसे सदा यह आशंका भी रहती है कि जन आंदोलन की रफ्तार कहीं इतनी तेज न हो जाए कि साम्राज्यवादियों के साथ साथ उनके भी विशेषाधिकार समाप्त कर दिए जाए। जैसे जैसे राष्ट्रीय आंदोलन का विकास जनता को आधार बनाकर होगा और आंदोलन का हित उन हितों के विरुद्ध होगा जो साम्राज्यवादी हित हैं या साम्राज्यवादियों से सहयोग करने के इच्छुक विशेषाधिकारप्राप्त वर्ग के हित हैं वैसे वैसे यह विसंगति अंतिम तौर पर हल होती जाएगी।

पाद टिप्पणियां

1 यह प्रशंसनीय परोडी आर० पेज अर्नाट ने लेबर मंथली के जुलाई 1930 अंक में 'दि साइमन कमीशन रिपोर्ट' नामक लेख में दी थी।

2 प्रस्तुत उद्धरण तथा इस तरह के अनेक उद्धरण मेजर बी०डी० बसु की पुस्तक 'रूइन आफ इंडियन ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज', कलकत्ता 1935 पृ० 254 67 पर 'कटवरी इंडिया ऐंड अमरिका आन दि ईव आफ विकमिंग फ्री' नामक दिलचस्प परिशिष्ट में दिए गए हैं।

3 सितंबर 1930 के लेबर मंथली' में प्रकाशित लेख फेक्ड इंडियन स्टैटिस्टिक्स एज इंपीरियलिस्ट प्रोपेगंडा' में विस्तृत विश्लेषण मिलेगा। उपर्युक्त तथ्यों की पूरी व्याख्या के लिए इसका संदर्भ दिया जाना चाहिए।

4 यह एक दिलचस्प बात है कि जब भी ब्रिटिश शोधकों के सामने भारतीय बाजार पर कब्जा करने का मसला आया है भाषा संबंधी समस्या जिसे राजनीतिक मकसद के लिए इतना गंभीर बताया जाता रहा है बड़ी सहज और सरल हो जाती है तमाम भाषाओं की मौजूदगी से भाषा की समस्या जितनी विराट लगती है वह दरअसल इतनी विराट नहीं है जो हल न की जा सके।

बड़े पैमाने पर असतोष की अभिव्यक्ति सामन आई। इसमे शहरा म रहन वाले निम्न पूजीपतिवग का असतोष व्यक्त हुआ लेकिन वह आम जनता तक नही पहुच सका। 1914 18 के युद्ध के बाद ही यह स्पष्ट हुआ कि राष्ट्रीय आदोलन मे किसाना और दश की नई शक्ति औद्योगिक मजदूरो अर्थात आम जनता की क्या भूमिका है। इसके बाद जनसघर्षो की दो बडी लहरें आई, पहली लहर युद्ध के तत्काल बाद के वर्षों मे और दूसरी लहर विश्वव्यापी आर्थिक मकट के बाद आइ। सघष के इस इतिहास के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद आज अपनी शुरुआत के बाद से शक्ति के सर्वोच्च बिंदु पर पहुच चुका है। राष्ट्रीय काग्रेस, 1946 के चुनावा म जबरदस्त सफलता प्राप्त करने और अधिकाश प्राता म अपनी सरकारें बनाने के बाद प्रतिनिधित्व की निर्णायक स्थिति मे पहुच चुकी है और अब उसके सामन नेतृत्व की गभीर जिम्मेदारिया है। एक बार फिर राष्ट्रीय आदालन नाजुक मोड पर आ पहुचा है। सभी प्रेक्षकों के सामने यह स्पष्ट है कि सघष के एक ऐसे नए महान युग का सूत्रपात हो रहा है जो भारत म अग्रेजी राज के लिए और भारतीय जनता के भविष्य के लिए निर्णायक साबित हो सकता है। इस मौजूदा स्थिति की समस्याओ के सदभ मे सघष की इन पुरानी मजिलो और उनके सबक का तेजी से सर्वेक्षण किया जा सकता है।

1 सघर्ष की पहली बडी लहर 1905-1910

बीस वर्षों तक राष्ट्रीय काग्रेस अपने सस्थापकों द्वारा तैयार किए गए रास्ते पर चलती रही। इन बीस वर्षों म उसक प्रस्तावों मे किसी भी रूप म स्वराज की बुनियादी माग नही की गई अर्थात किसी भी प्रकार का राष्ट्रीय दावा नही किया गया, उसकी माग केवल यही तक सीमित रही कि शासन की ब्रिटिश प्रणाली मे ही भारतीयो का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व हो। शुरू के नरमदली नेताओ का दृष्टिकोण जानने के लिए अत्यत योग्य और सबसे ज्यादा नरमदली नेता श्री रमेशचद्र दत्त का उदाहरण दिया जा सकता है। श्री दत्त 1890 मे काग्रेस के अध्यक्ष थ। उन्होंने 1901 मे 'भारत की जनता' की माग को निम्न शब्दो म रखा

> भारत की जनता अचानक होन वाले परिवर्तना और क्रातियो को पसद नही करती है। उसे नए सविधान की कोई दरकार नही। भारत के लाग पहले से ही निर्धारित कर दिए गए तरीको पर काम करना पसद करते हैं। वे मौजूदा सरकार को बहुत मजबूत बनाना चाहते है और सरकार तथा जनता के बीच सपर्क और बढाना चाहते हैं। वे चाहत है कि भारतीय मामलो के मत्रालय म सबद्ध परिषद म और वायसराय की कार्यकारिणी परिषद मे कुछ भारतीय सदस्य शामिल किए जाए जो भारतीय कृषि तथा उद्योग धधो का प्रतिनिधित्व करें। वे चाहत हैं कि प्रत्येक सूबे के लिए बनी कार्यकारिणी परिषद म भारतीय भी सदस्य की हैसियत स रह। वे चाहते है कि प्रशासन सबधी हर महत्वपूर्ण विचार विमर्श मे भारतीय

11
राष्ट्रीय सग्राम की तीन मजिले

मुझे खेद के साथ यह कहना पडता है कि इस देश की जनता को यदि राजनीतिक सकट के दौरान कोई निर्देश न दिए गए सिवाय इसक कि वे हिंसा से नफरत करे, व्यवस्था से प्यार करे और सयम का परिचय दें, 'तो इस देश म नागरिक स्वतत्रताए कभी अस्तित्व म नही आ सकेंगी।' (विलियम एवट ग्लैडस्टोन)

पिछले 50 वर्षों से भी अधिक समय मे भारतीय राष्ट्रवाद का जो विकास हुआ है उसका निरूपण करने के लिए अलग से अध्ययन की जरूरत है क्याकि इसम एक ऐसी जनता का समूचा राजनीतिक इतिहास शामिल है जो राष्ट्रीय एकता और स्वतत्रता के अपने सघर्ष की गभीरतम मजिलो से गुजरी है। फिर भी वतमान राजनीतिक स्थिति पर रोशनी डालने के तात्कालिक उद्देश्यो के लिए उस विकास और एक के बाद एक व्यक्त होन वाली प्रमुख प्रवृत्तिया की युगातरकारी घटनाओ को बारीकी स दखना होगा जिन्होंने मौजूदा आदोलन का स्वरूप निर्धारित करने म मदद की है और अपनी भूमिका निभाई है।

भारतीय राष्ट्रवाद का ऐतिहासिक विकास, सघर्ष की तीन बडी लहरा स गुजरा है। इनम से प्रत्येक लहर पहल की अपक्षा अधिक ऊची थी और प्रत्यक लहर न आदोलन पर स्थाई चिह्न छोडे तथा एक नए दौर का सूत्रपात किया। जसा हमन देखा है भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारभिक दौर ने केवल बडे पूजीपतिवग का प्रतिनिधित्व किया जिसम जमीदारो के प्रगतिशील तत्व, नए औद्योगिक पूजीपति और खुशहाल बुद्धिजीवी शामिल थ। 1914 से पहले के वर्षों मे पहली बार इस शात जल म उस समय हलचल पैदा हुई जब दश म

बड़े पैमाने पर असंतोष की अभिव्यक्ति सामने आई। इसमें शहरों में रहने वाले निम्न पूंजीपतिवर्ग का असतोष व्यक्त हुआ लेकिन वह आम जनता तक नही पहुच सका। 1914 18 के युद्ध के बाद ही यह स्पष्ट हुआ कि राष्ट्रीय आदोलन म किसानों और देश की नई शक्ति औद्योगिक मजदूरो अर्थात आम जनता की क्या भूमिका है। इसके बाद जनसघर्षों की दो बड़ी लहरें आइ, पहली लहर युद्ध के तत्काल बाद के वर्षो में और दूसरी लहर विश्वव्यापी आर्थिक सकट के बाद आई। सघष के इस इतिहास के आधार पर भारतीय राष्ट्रवाद आज अपनी शुरुआत के बाद से शक्ति के सर्वोच्च बिंदु पर पहुच चुका है। राष्ट्रीय काग्रेस, 1946 के चुनावो म जबरदस्त सफलता प्राप्त करने और अधिकाश प्रांतो में अपनी सरकारें बनाने के बाद प्रतिनिधित्व की निर्णायक स्थिति म पहुच चुकी है और अब उसके सामने नेतृत्व की गभीर जिम्मेदारिया है। एक बार फिर राष्ट्रीय आदोलन नाजुक मोड पर आ पहुचा है। सभी प्रेक्षकों के सामने यह स्पष्ट है कि सघष के एक ऐसे नए महान युग का सूत्रपात हो रहा है जो भारत म अगरजी राज के लिए और भारतीय जनता के भविष्य के लिए निर्णायक साबित हो सकता है। इस मौजूदा स्थिति की समस्याओं के सदभ मे सघष की इन पुरानी मजिलो और उनके सबक का तेजी से सर्वेक्षण किया जा सकता है।

1 सघर्ष की पहली बडी लहर 1905-1910

बीस वर्षों तक राष्ट्रीय काग्रेस अपने सस्थापकों द्वारा तैयार किए गए रास्ते पर चलती रही। इन बीस वर्षो मे उसके प्रस्तावो मे किसी भी रूप म स्वराज की बुनियादी माग नही की गई अर्थात किसी भी प्रकार का राष्ट्रीय दावा नही किया गया, उसकी माग केवल यहीं तक सीमित रही कि शासन की ब्रिटिश प्रणाली म ही भारतीयो का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व हो। शुरू के नरमदली नेताओ का दृष्टिकोण जानने के लिए अत्यत योग्य और सबसे ज्यादा नरमदली नेता श्री रमेशचद्र दत्त का उदाहरण दिया जा सकता है। श्री दत्त 1890 मे काग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होने 1901 मे 'भारत की जनता की माग' का निम्न शब्दो मे रखा

> भारत की जनता अचानक होने वाले परिवर्तनो और क्रातियो को पसद नही करती है। उसे नए सविधान की कोई दरकार नही। भारत के लोग पहले से ही निर्धारित कर दिए गए तरीकों पर काम करना पसद करते है। वे मौजूदा सरकार को बहुत मजबूत बनाना चाहते है और सरकार तथा जनता के बीच सपर्क और बढाना चाहते है। व चाहते हैं कि भारतीय मामलों के मत्रालय से सबद्ध परिषद म और वायसराय की कार्यकारिणी परिषद मे कुछ भारतीय सदस्य शामिल किए जाए जो भारतीय कृषि तथा उद्योग धधो का प्रतिनिधित्व करें। वे चाहते हैं कि प्रत्येक सूबे के लिए बनी कार्यकारिणी परिषद म भारतीय भी सदस्य की हैसियत से रहे। वे चाहते है कि प्रशासन सबधी हर महत्वपूर्ण विचार विमर्श मे भारतीय

जनता के हितों का भी प्रतिनिधित्व हो। वे चाहते थे कि साम्राज्यवाद तथा उसके विशाल सूबों का प्रशासन जनता के सहयोग से चलाया जाए।

भारत के प्रत्येक बड़े सूबे में एक विधान परिषद् है और इन परिषदों के कुछ सदस्यों का चुनाव 1892 के कानून के तहत होता है। यह प्रयोग सफल साबित हुआ है और इन विधान परिषदों का थोड़ा विस्तार कर देने से प्रशासन और मजबूत होगा तथा जनता के साथ इसका संबंध और घनिष्ठ होगा 30 जिलों और 3 करोड़ की आबादी वाले सूबे के लिए बने विधानपरिषद में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम से कम 30 तो होनी ही चाहिए। प्रत्येक जिले को महसूस होना चाहिए कि सूबे के प्रशासन में उसकी भी कोई आवाज है। (रमेशचंद्र दत्त 1901, 'दि इकानामिक हिस्ट्री आफ इंडिया,' खंड 1 की भूमिका—'इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल', पृष्ठ xviii)

इन मांगों की नरमी से इस बात की सही तौर पर अभिव्यक्ति होती है कि शुरू के दिनों के भारतीय पूंजीपतिवर्ग की क्या स्थिति थी। उन दिनों कांग्रेस बिलकुल ही उच्च पूंजीपतिवर्ग और खासतौर से उसके वैचारिक प्रतिनिधि अर्थात शिक्षित मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी। शुरू से ही इन क्षेत्रों से कांग्रेस में शामिल होने वालों की संख्या काफी उत्साहवर्धक रही। यहां तक कि प्रतिनिधियों की संख्या सीमित रखने के उपाय करने पड़े। ब्रिटेन के एक संसद सदस्य डब्ल्यू० एस० केन ने, जिन्होंने कांग्रेस के 1889 के अधिवेशन में भाग लिया था, लिखा कि, मेरे चारों तरफ जो चार हजार भद्र जन बैठे हुए हैं वे समूचे भारत के वकीलों, डाक्टरों इंजीनियरों और लेखकों में से चुने हुए लोग हैं।' शुरू के नरमदली नेताओं को अच्छी तरह पता था कि वे जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं और वे जनता के नाम पर भले ही उनकी बातें कहने की कोशिश करते रहे हों पर वे इस बात का दावा नहीं कर सकते थे कि उनकी आवाज जनता की आवाज है। शुरू के दिनों में कांग्रेस के मुख्य पथप्रदर्शक सर फीरोजशाह मेहता ने कहा था कि, 'निश्चय ही कांग्रेस जनता की आवाज नहीं है लेकिन पढ़े लिखे भारतीयों का यह कर्तव्य है कि वे जनता की शिकायतों को सामने लाएं और उनको दूर करने का सुझाव प्रस्तुत करें।'

उन दिनों के भारत का प्रारंभिक पूंजीपतिवर्ग भी अच्छी तरह जानता था कि वह अंगरेजी राज को चुनौती देने की स्थिति में नहीं है। इसके विपरीत वह अंगरेजी राज को अपना सहयोगी समझता था। वह अंगरेजी राज को अपना मुख्य दुश्मन नहीं समझता था। उसके लिए मुख्य दुश्मन थे जनता का पिछड़ापन देश में आधुनिक विकास की कमी, अज्ञान और अंधविश्वास की शक्तियां और नौकरशाही शासन व्यवस्था की कमियां जिनके कारण यह स्थिति पैदा हुई है। इन बुराइयों के विरुद्ध अपने संघर्ष में वे ब्रिटिश शासकों के सहयोग की आशा लगाए रहते थे। 1898 के कांग्रेस अधिवेशन के

अध्यक्ष श्री आनंदमोहन बोस ने कहा था कि, 'शिक्षित वर्ग इंग्लैंड का दुश्मन नहीं, दोस्त है। इंग्लैंड के सामने आज जो काम पड़े हैं उन्हें पूरा करने में भारत का शिक्षित वर्ग इंग्लैंड का सहज और आवश्यक सहयोगी है।' 1890 में सर फीरोजशाह मेहता ने कहा था कि, 'मुझे इसमें एकदम संदेह नहीं कि ब्रिटेन के राजनेता समय की पुकार को समझेंगे।' कांग्रेस के जनक दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिए गए अपने भाषण में ब्रिटेन से अपील की थी कि वह इस शक्ति को (भारतीयों के शिक्षित वर्ग को) अपने पक्ष में करने के बजाय अपना दुश्मन न बनाए।' पुराने कांग्रेस नेताओं में सबसे मशहूर वक्ता सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने कांग्रेस के आदर्शों की घोषणा करते हुए कहा था कि 'वह (कांग्रेस) सदा अंगरेजों के साथ अटूट निष्ठा के साथ काम करे क्योंकि इसका लक्ष्य भारत से ब्रिटिश शासन को समाप्त करना नहीं है बल्कि उसके आधार को और व्यापक बनाना है। उसकी आत्मा को और उदार बनाना है उसके स्वरूप को और परिष्कृत करना है और उसे राष्ट्र के स्नेह की अपरिवर्तनीय नींव पर खड़ा कर देना है।'[1]

इन घोषणाओं से जो ध्वनि निकलती है उससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि शुरू के दिनों के ये कांग्रेस नेता अंगरेज सरकार के प्रतिक्रियावादी और राष्ट्रविरोधी नौकर थे। इसके विपरीत, वे उस समय भारतीय समाज की सबसे प्रगतिशील शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। जब तक नवोदित मजदूरवर्ग पूरी तरह संगठनविहीन था और उसकी कोई आवाज नहीं थी तथा किसानवर्ग भी असंगठित और खामोश था, भारत का पूंजीपतिवर्ग ही सबसे ज्यादा प्रगतिशील और सबसे ज्यादा क्रांतिकारी शक्ति था। वह समाज सुधार का काम करता था, लोगों में जागृति फैलाता था तथा पिछड़ी और दकियानूस तमाम चीजों के खिलाफ लोगों में शिक्षा का प्रसार करने तथा उन्हें आधुनिक बनाने का काम करता था। उन्होंने मांग की थी कि भारत का तकनीकी और औद्योगिक आर्थिक विकास किया जाए।

लेकिन उनके इस काम में ब्रिटिश साम्राज्य उनकी मदद करेगा यह विश्वास और आशा झूठी साबित होने लगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इन लोगों में ज्यादा बेहतर रूप में प्रगतिशील कार्य के महत्व को समझा और महसूस किया कि साम्राज्यवादी हितों और शोषण से अनिवार्यतः इसका आगे चलकर टकराव होगा। इसलिए शुरू के दिनों में कांग्रेस को जो संरक्षण मिला था वह संदेह और शत्रुता में बदल गया। कांग्रेस की स्थापना के तीन वर्षों के अंदर ही लार्ड डफरिन ने जिनकी प्रेरणा से कांग्रेस की स्थापना हुई थी, बड़े अपमानजनक ढंग से कांग्रेस के बारे में कहा कि यह 'केवल मुट्ठी भर लोगों का' संगठन है। श्रीमती बेसेंट ने अपनी पुस्तक 'हाउ इंडिया राट फार फ्रीडम' में लिखा है कि '1887 में जब एक प्रतिनिधि ने अपने जिला अधिकारी के आदेश की अवहेलना करके कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया तो उससे 20 000 रुपये की जमानत मांगी गई कि वह शांति न भंग करे।' 1890 में सरकार ने एक सर्कुलर के जरिए सरकारी अधिकारियों को कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने से मना कर दिया। यहां तक कि उन्हें दर्शक की हैसियत में

भी भाग लेने की मनाही की गई। 1900 में लार्ड कर्जन ने भारतीय मामलों के मंत्री के पास एक पत्र में लिखा कि 'कांग्रेस अब लडखडा कर गिरने ही वाली है और मेरी बड़ी महत्वाकांक्षाओं में से एक महत्वाकांक्षा यह भी है कि भारत में रहते हुए मैं इसकी शांतिपूर्ण मौत में मदद करूं।' (रानॅल्डशे 'लाइफ आफ लार्ड कर्जन' खंड 2, पृष्ठ 151)

अतः भारतीय राष्ट्रवाद की पुरानी धारा के नेताओं के अंदर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से जो आशा पैदा हो गई थी वह अब टूट गई। नरमपंथियों के शीर्षस्थ नेता श्री गोखले ने अपने अंतिम वर्षों में बड़े क्षोभ के साथ कहा कि 'नौकरशाही बहुत साफ तौर पर और तेजी से स्वार्थी होती जा रही है और राष्ट्र की आकांक्षाओं का खुलकर विरोध कर रही है। पहले यह ऐसी नहीं थी।' ('हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस', 1935, पृष्ठ 151)

पुरानी नीति के असफल होने की बात जैसे जैसे साफ होती गई वैसे वैसे एक ऐसी नई धारा का जन्म होना अनिवार्य होता गया जो 'पुराने महारथियों' की आलोचना करे और वास्तविक कार्यक्रम की मांग करे तथा ऐसी नीति अपनाए जिसका अर्थ साम्राज्यवाद से निश्चित रूप से संबंध तोड़ लेना हो। यह नई धारा जिसका संबंध खासतौर से बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व से था, 19वीं सदी के अंतिम दशक में ही देश के सामने आ गई थी लेकिन वह तब तक कोई निर्णायक भूमिका नहीं अदा कर सकी जब तक बाद के दशक में स्थितियां पूरी तरह तैयार नहीं हो गईं। तिलक का क्षेत्र बंबई प्रेसीडेंसी में महाराष्ट्र था जहां 19वीं सदी के आठवें दशक में महत्वपूर्ण किसान विद्रोह हुआ था। तिलक के साथ साथ जिस नए नेतृत्व का उदय हुआ उनमें बंगाल में विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष तथा पंजाब में लाला लाजपतराय प्रमुख थे।

नई धारा के नेता अपने आपको 'राष्ट्रवादी' तथा 'अखंड राष्ट्रवादी' और 'कट्टर राष्ट्रवादी' भी कहते थे। व्यापक तौर पर वे 'नरमदली' नेताओं के मुकाबले 'उग्रपंथी' के रूप में जाने जाते थे। इन शब्दावलियों में यह समझ लेना गलत होगा कि उनमें मात्र इतना ही फर्क था कि एक पक्ष प्रगतिशील वामपंथी पक्ष था और दूसरा दकियानूसी विचारों वाले लोगों का दक्षिणपंथी खेमा। दरअसल उस स्थिति का एक परस्पर विरोधी चरित्र था जिससे यह पता चलता था कि राष्ट्रवादी आंदोलन का अभी भी अधकचरा विकास हुआ था।

पुराने महारथियों के मुकाबले विरोध पक्ष की शुरुआत के पीछे निश्चित यह आशा निहित थी कि साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने की नीति का परित्याग किया जाए और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक निर्णायक और दुर्धर्ष संघर्ष का रास्ता अपनाया जाए। जहां तक इस आशा का प्रश्न है वे लोग प्रगतिशील और वास्तविक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनके पीछे भारत की जनता की आकांक्षाएं थीं। अब भी

किसी ऐसे जनआंदोलन का आधार नहीं बना था जो निर्णायक संघर्ष का संभव बना सकता। इन नेताओं का प्रभाव असंतुष्ट निम्न मध्यवर्ग पर, पढ़े लिखे नौजवानों के दिलों पर और खासतौर से निर्धन छात्रों तथा बेरोजगारों की बढ़ती संख्या या अत्यंत निम्न वेतनभोगी बुद्धिजीवियों पर था। बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में इनकी स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही थी। इन्हें बराबर यह अहसास होता जा रहा था कि साम्राज्यवादी शासन के अधीन न तो इनकी प्रगति का कोई मार्ग प्रशस्त हो सकता है और न इनकी कोई इच्छा पूरी हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में निम्न मध्यवर्ग के लोगों के अंदर इतना धैर्य नहीं था कि वे उच्चवर्ग के नेताओं की उन बातों को सुनते रहें जिनमें धीरे धीरे विकास होने का आरामदायक सिद्धांत प्रस्तुत किया जाता था। सामाजिक संक्रमण और पुरानी समाज व्यवस्था के आसन्न विघटन के दौर में ऐसे तत्व जनता के असंतोष और उसकी दृढ़ क्रांतिकारी शक्ति को बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। लेकिन इनकी स्थिति ऐसी है कि जब तक ये लोग जन आंदोलनों से अपना संबंध नहीं जोड़ते तब तक ये लोग अपनी आकांक्षाएं पूरी नहीं कर सकते और ऐसी स्थिति में वे या तो जबानी विरोध व्यक्त करके अपना रोष निकाल लेते हैं या अराजकतावादी और व्यक्तिवादी काम करते हैं जिनका अंततः राजनीतिक दृष्टि से कोई लाभ नहीं होता।

यदि नए नेताओं के पास कोई आधुनिक सामाजिक या राजनीतिक दृष्टि होती तो वे यह जरूर समझते कि उनका और उनके समर्थकों का मुख्य काम है मजदूरों और किसानों के संगठन को उनके सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति संग्राम के आधार पर विकसित करना। लेकिन 20वीं सदी के पहले दशक में भारत की जो स्थिति थी उसमें इस तरह की समझदारी की अपेक्षा करने का अर्थ यह होता कि सामाजिक विकास की मौजूदा अवस्था में जैसी समझदारी होनी चाहिए उससे बढ़कर कोई अपेक्षा की जा रही है।

समाज तथा राजनीति के किसी वैज्ञानिक सिद्धांत से अनभिज्ञ होने के कारण इन नए नेताओं ने नरमदली नेताओं की समझौतावादी और प्रभावहीन नीति का कारण यह समझा कि पुराने नेताओं के अंदर 'राष्ट्रीयता का अभाव' है और उनके अंदर 'पश्चिमी रंग ढंग' की प्रवृत्तियां हैं। इसलिए नए नेताओं ने अपने प्रहार का निशाना इन प्रवृत्तियों को बनाया। इस प्रकार इन नेताओं ने नरमदली नेताओं की ठीक उन्हीं बातों की आलोचना की जो सचमुच प्रगतिशील बातें थीं। इनके मुकाबले में उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को सामाजिक रूढ़िवाद की उन प्रवृत्तियों पर खड़ा करना चाहा जो भारत में अब भी बहुत शक्तिशाली थीं। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के निर्माण के लिए कट्टर हिंदुत्व का सहारा लिया और इस मान्यता का बल दिया कि आधुनिक 'पश्चिमी सभ्यता' की तुलना में प्राचीन हिंदू या 'आर्य' सभ्यता आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ है। उन्होंने भारत के सर्वाधिक प्रगतिशील आंदोलन अर्थात राष्ट्रीय आंदोलन को पुरातनपंथी धर्म और धार्मिक अंधविश्वास की नींव पर खड़ा करना चाहा। इस युग में ही भारत में उग्रवादी राजनीति और सामाजिक

प्रतिक्रियावाद का घातक गठजोड हुआ जिसका राष्ट्रीय आदोलन के लिए वेहद विध्वस कारी परिणाम हुआ जिसके प्रभाव को नष्ट करना अब भी बहुत कठिन है।

उग्र राष्ट्रवाद का कट्टर हिंदूवाद की जबरदस्त प्रतिक्रियावादी शक्तिया के साथ गठबधन की अभिव्यक्ति 1890 म उस समय हुई जब तिलक न 'एज आफ कसेंट बिल' के खिलाफ अपना अभियान शुरू किया। इस बिल मे यह प्रावधान था कि लडकी की उम्र दस की बजाय बारह वष हा जाने के बाद ही उसका पति उसके साथ सहवास कर सकता है। इस बिल का रानाडे तथा अन्य प्रगतिशील राष्ट्रीय नेताओ ने समथन किया था। तिलक न उसके खिलाफ जबरदस्त आदोलन का नेतृत्व किया और हिंदूवाद की घोर प्रतिक्रियावादी शक्तियो की ओर से आवाज उठाई। बाद म उन्होने 'गोरक्षा समिति' का गठन किया। (हिंदुत्व के सिद्धातो के अनुसार गाय की पवित्रता की जो बात की गई है वह उस युग विशेष की जब इस मत का प्रवतन किया गया—सामाजिक आवश्यकताओ को देखत हुए सभी धार्मिक रिवाजो की तरह मूलत व्याख्येय है किंतु इससे अनुपयोगी मवेशियो को प्रोत्साहन दना आर्थिक दृष्टि से एक प्रतिक्रियावादी कदम है। इससे मवेशियो की स्थिति मे गिरावट आती है और साथ ही यह मुसलमानो के साथ सघष का एक खतरनाक स्रोत भी है क्योकि वे गाय का मास खाना अनुचित नही समझते है)। मराठो के राष्ट्रीय नायक शिवाजी की स्मृति मे ही नही बल्कि हाथी की सूड वाले देवता गणेश की स्मृति म भी धार्मिक ढग से राष्ट्रीय त्यौहार मनाए जाने लगे। बगाल म कुछ विशेष उत्साही लोगो द्वारा सहार की दवी काली की पूजा भी बडी धूमधाम से शुरू की गई।

इन धार्मिक स्वरूपो के पीछे जो राष्ट्रीय और देशभक्ति पूण उद्देश्य छिपे है उन्ह जान लेना आवश्यक है। धार्मिक कृत्यो की आड लेकर व्यापक तौर पर वार्षिक समारोह और सभाओ के जरिए राष्ट्रीय आदोलन चलाए गए। धार्मिक नामो से अनेक सस्थाए बनाई गई और युवको की जिमनास्टिक समितियो का गठन करन के लिए एक सगठन का निर्माण किया गया। जब तक राष्ट्रीय आदोलन को जन आधार नही प्राप्त था तब तक तो इन रूपा का सहारा लेने की बात समझ म आती है क्योकि तब तक सभी प्रत्यक्ष राजनीतिक सगठनो और आदोलनो का साम्राज्यवादियो द्वारा जबरदस्त दमन किया जाता था। फिर भी यहा महज यह प्रश्न नही है कि राजनीतिक प्रचार के लिए धार्मिक उत्सवो का सहारा लिया जाता था। यहा यह भी प्रश्न नही है कि किसी राजनीतिक आदोलन के विकास का ऐतिहासिक स्वरूप क्या है। इस बात पर जोर दिए जाने से कि कट्टर धार्मिकता ही राष्ट्रीय आदोलन की जान है और आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के मुकाबले प्राचीन हिंदू सभ्यता की कल्पित आध्यात्मिक श्रेष्ठता (जिसे आधुनिक मनोवैज्ञानिक निस्सदेह एक प्रतिकारी भ्राति कहेंगे) की घोषणा करन स राष्ट्रीय आदोलन और राजनीतिक चेतना के वास्तविक विकास मे अनिवायत रुकावट आई और यह कमजोर हुआ है। मुस्लिम जनमत के एक बहुत बडे हिस्से के राष्ट्रीय आदोलन से अलग रहन का एक कारण यह भी है कि आदोलन म हिंदुत्व पर बराबर जोर दिया जाता रहा।

ये अवधारणाएं भारतीय राष्ट्रवाद के बाद के विकास के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि आधुनिक युग मे गांधीवाद म य अवधारणाएं और भी परिष्कृत रूप मे प्रकट हुई है, अत इनका और भी सावधानी से विश्लेषण करना जरूरी है। इसका कारण यह है कि इन धारणाओं म इस विश्वास की अभिव्यक्ति की गई है कि भारत की आजादी का रास्ता सामाजिक विकास, तथा पुरानी कमजोरियां, आपसी फूटो और हानिप्रद परपराओ को दूर करने का रास्ता नहीं है बल्कि वह समाज को पीछे खींच ले जाने तथा अतीत के अवशेषों और तौर तरीकों को फिर से जीवित करने का रास्ता है।

हमने यह देखा है कि यह दृष्टिकोण कैसे पैदा हुआ। कट्टर राष्ट्रवादियों की दृष्टि म उच्चवर्ग के पुराने नरमदली नेताओं की दृष्टि और कार्यपद्धति 'राष्ट्रीयताविहीन' हो चुकी थी और वे ब्रिटिश पूंजीपतिवर्ग का सामाजिक जीवन और राजनीति सीख चुके थे। इस राष्ट्रीयता विहीनता या ब्रिटिश संस्कृति के प्रति आत्मसमर्पण के खिलाफ उन्होंने विद्रोह का नेतृत्व करना चाहा। लेकिन किस आधार पर व इस विद्रोह का नेतृत्व कर सके?

वस्तुत व खुद ही पूंजीवादी विचार के सकुचित दायरे मे कैद थे (उस समय तक भारत के राजनीतिक जीवन का व्यवहार रूप म समाजवाद के साथ कोई संपर्क नही हो सका था), और इसीलिए वे पूंजीवाद की कार्यपद्धति को उसके अच्छे और बुरे दोनों पक्षों को आलोचनात्मक समझ के साथ नही देख सके। फलस्वरूप वे यह नही समझ सके कि जिस तथाकथित 'ब्रिटिश' संस्कृति की व निंदा कर रहे थे वह वास्तव म पूंजीवाद की संस्कृति है, वे यह नहीं समझ सके कि जहा तक पूंजीपतिवर्ग के नेतृत्व का संबंध है, राष्ट्रीय आंदोलन अभी तक उस आधार से परे नहीं जा सका है, और व यह नही देख सके कि निर्णायक रूप स उस संस्कृति का प्रगतिशील विरोध मजदूरवर्ग ही कर सकता है। भारत म उस समय के अपने अनुभवों के आधार पर व उदीयमान मजदूरवर्ग के दृष्टिकोण और उसकी संस्कृति की कोई धारणा नही बना सके जबकि यह संस्कृति ही बुर्जुआ संस्कृति का विकल्प थी और यह संस्कृति ही बुर्जुआ संस्कृति की अच्छाइयों का ग्रहण करके और बुराइयों को छोड़कर उससे आगे बढ़ सकती थी। इसलिए जब उन्होंने विजेताओं की संस्कृति के विरोध के लिए किसी मजबूत आधार की तलाश शुरू की तो उन्हें आधार रूप म विजेताओं के आने के पहले भारत मे पूंजीवाद स पूर्व की जो संस्कृति थी बस वही दिखाई पड़ सकी।

इसलिए पतनशील और भ्रष्ट तत्वमीमांसा के वर्तमान दूषित घालमेल से छिन्न भिन्न हुई ग्रामीण अर्थव्यवस्था के टूटे अवशेषों से, एक लुप्त सभ्यता की दरबारी भव्यता के शवों स, उन्होंने हिंदू संस्कृति का, 'शोधित' हिंदू संस्कृति का सुनहरा सपना फिर से तैयार करने की कोशिश की और इसे ही आदर्श और मार्गदर्शक प्रकाश माना।

उन्होंने देखा कि ब्रिटिश पूंजीवादी संस्कृति और विचारधारा की प्रचड बाढ़ मे भारतीय

पूंजीपतिवर्ग तथा बुद्धिजीवी पूरी तरह बहे जा रहे हैं इसलिए इस स्थिति पर काबू पाने के लिए उन्होंने एक पुनर्निर्मित कमजोर हिंदू विचारधारा का सहारा लिया हालांकि वास्तविक जीवन मे इस विचारधारा का अब कोई सहज आधार नही रह गया था। अपेक्षाकृत अधिक उग्रपथी नेताओ द्वारा हर तरह के सामाजिक तथा वैज्ञानिक विकास की भर्त्सना की जाने लगी और हर तरह की पुरानी बातो को सम्मान दिया जाने लगा। यहा तक कि बुरी प्रथाओ, स्वेच्छाचारिता और अधविश्वासो को भी श्रद्धा और सम्मान दिया जाने लगा।

यही वजह थी कि जनता के ये जुझारू राष्ट्रीय नेता, जिनमे से अनेक काफी निडर और निष्ठावान थे और जो अतीत के अवशेषो से लोगो को दूर खीचकर मुक्ति और समय दारी के रास्ते पर आगे बढ़ा सकते थे, व्यवहार मे सामाजिक कुरीतियो और अध विश्वासो के समर्थक बन गए, जातपात के भेदभावो और विशेषाधिकारो की हिमायत करने लगे और काफी बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने वाली एक रहस्यवादी 'राष्ट्रीय' भावना के नाम पर उन्होंने उन सामाजिक और विचारधारात्मक पुरानी बेडियो को बनाए रखने की कोशिश की जो अगरेजो के आने से पूर्व यहा मौजूद थी।

कट्टर राष्ट्रवादियो की धारणा थी कि इसी तरीके से वे साम्राज्यवाद के विरोध के लिए एक राष्ट्रीय जनआदोलन का निर्माण कर रहे है। केवल इसी बात से यह तथ्य समझ में आता है कि क्यो तिलक जैसा बौद्धिक व्यक्ति भी बालविवाह तथा गोरक्षा के समर्थन मे आदोलन चल रहा था।

लेकिन सचाई यह थी कि यह नीति सिद्धात मे ही नही व्यवहार मे भी घातक थी। इससे न केवल लाजिमी तौर पर राजनीतिक चेतना के विकास और आदोलन के प्रति स्पष्टता मे बाधा पैदा हुई (लगभग सभी सुविख्यात उग्रवादी नेताओ मे किसी ने कम किसी ने अधिक, बाद मे या तो साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करना शुरू किया या राजनीति के प्रति सदिग्ध अन्यमनस्कता का परिचय दिया और धीरे धीरे वे ऐसी स्थिति मे आते गए कि बाद के वर्षों मे आदोलन की प्रगति से उनकी हमदर्दी खत्म हो गई), बल्कि प्रगामी शक्तिया आपस मे बट भी गइ। सामाजिक मामलो मे उग्रपथी नेताओ के प्रतिक्रियावादी कार्यक्रमो के कारण ऐसे तमाम लोग आदोलन से दूर हटते गए जो एक जुझारू राष्ट्रीय नीति का समर्थन करने को तो तैयार थे पर इतने विलक्षण नही थे कि वामपथी कार्यक्रम के स्थान पर प्रतिक्रियावादी और अलौकिक कूडा करकट स्वीकार करने लगें। यह विभाजन मोतीलाल नेहरू के मामले मे बहुत साफ तौर पर देखा गया। मोतीलाल नेहरू, एक चरित्रवान व्यक्ति थे और उग्रपथियो के विरुद्ध नरमदली नेताओ द्वारा चलाए जा रहे सघर्ष के नेताओ मे से एक थे। उनके बारे मे उनके पुत्र ने लिखा है

दृढ विचारो, ओजस्वी मनोभावो, जबरदस्त आत्माभिमान और महान इच्छाशक्ति

से युक्त होने के कारण वह (मोतीलाल नेहरू) नरमदली विचारों की प्रवृत्ति से काफी दूर थे। और फिर भी 1907 और 1908 में तथा बाद के वर्षों में निस्सदेह वह नरमदलियों में भी नरमदली थे और उग्रवादियों के काफी कटु आलोचक थे, हालाकि, मेरा ख्याल है कि वह तिलक की प्रशसा करते थे।

ऐसा क्या था ?—अपने स्पष्ट सोच से वह इस नतीजे पर पहुचे थे कि बडी जोशीली और उग्र भाषा से तब तक कुछ नही हो सकता जब तक उस भाषा के अनुकूल व्यवहार न किया जाए। उन्हे ऐसे किसी व्यवहार की सभावना नही दिखाई दी—और इसके अलावा इन आदोलनो की पृष्ठभूमि धार्मिक राष्ट्रवाद थी जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध थी। उन्होंने भारत के अतीत के पुन प्रवतन की ओर कभी नही देखा। उन्हे उन चीजो से कोई हमदर्दी न थी और वे तमाम पुराने रीति रिवाजो, जातपात के भेदभाव जैसी चीजो को प्रतिक्रियावादी समझते थे और इनसे बेहद नफरत करते थे। उन्होने पश्चिमी देशो की तरफ देखा और पश्चिम, देशो की प्रगति से काफी आकर्षण महसूस किया। उन्होने महसूस किया कि इग्लैंड के साथ साहचर्य के जरिए यह प्रगति भारत तक पहुच सकती है। सामाजिक विकास की दृष्टि से कहे तो 1907 में भारतीय राष्ट्रवाद का जो पुन प्रवतन हुआ वह निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी था। (जवाहरलाल नेहरू 'आत्मकथा', पृष्ठ 23-24)

कट्टर राष्ट्रवादियो ने हालाकि अपने तर्कों के लिए यह धार्मिक आधार तैयार कर लिया था पर व्यावहारिक सघर्ष मे वे कोई नया अस्त्र या कोई नई कार्ययोजना नही बना सके, सिवाय उस व्यक्तिवादी आतकवाद के अस्त्र के जो हर देश मे निराश किंतु नपुसक और जनआदोलन से कटे निम्नपूजीपतिवर्ग का अस्त्र रहा है। यहा भी उस अस्पष्ट धार्मिक उत्प्रेरणा और उत्तेजना ने तथा गुप्त समितियो के गठन ने बहुत कम असर दिखाया (हालाकि आतकित साम्राज्यवादियो ने उनका काफी प्रचार किया और उनके गठन पर काफी चिल्लपों की। जनता के विध्वस के साम्राज्यवादियो के अपने तरीके बेहद भयानक थे जिसकी जबरदस्त मिसाल बाद मे अमृतसर मे देखने मे आई) और तब तक उसने कोई महत्वपूर्ण भूमिका नही अदा की जब तक बाद मे आदोलन के एक नए युग की शुरुआत के लिए स्थितिया परिपक्व नही हो गईं और आतकवादी आदोलन ने सहयोगी की भूमिका नही निभाई।

1905 तक, जब आदोलन के एक नए चरण के लिए स्थितिया तैयार हो गई तब जो नया अस्त्र ढूढ निकाला गया वह उनकी तमाम धार्मिक और आध्यात्मिक अटकलबाजियो से बहुत दूर की चीज था और मूलत उसका एक आधुनिक और आर्थिक स्वरूप था—और यह अस्त्र आर्थिक बहिष्कार का अस्त्र था। आर्थिक बहिष्कार का यह अस्त्र उस युग का एकमात्र सभव प्रभावकारी अस्त्र था और इस तरीके के चुनाव मे ही आदोलन के बुर्जुआ

चरित्र का पता चलता है। निस्सदेह नरमदली नेताओं ने इस हथियार का समर्थन किया।

1905 में संघर्ष के नए दौर की शुरुआत के लिए जो शक्तियां एकजुट हुईं वे वस्तुत विकास की उस विश्वव्यापी लहर का ही प्रतिबिंब थी जो जापान के हाथों जारशाही की पराजय (आधुनिक युग में यूरोपीय शक्ति पर किसी एशियाई शक्ति की यह पहली विजय थी और भारत पर इसका जबरदस्त प्रभाव पड़ा) और पहली रूसी क्रांति की प्रारंभिक विजय के बाद विश्व में आई थी। जिस तात्कालिक मसले पर भारत में संघर्ष का सूत्रपात हुआ वह बंगाल के विभाजन (बंगभंग) का मसला था। बंगाल उन दिनों भारत में राजनीतिक प्रगति का केंद्र था और उसके विभाजन की योजना लार्ड कर्जन ने तैयार की तथा उनके उत्तराधिकारी ने इसको असली रूप दिया। इस विभाजन के विरोध में देश भर में रोष की लहर फैल गई और 7 अगस्त 1905 को विदेशी सामानों के बहिष्कार की घोषणा की गई।

इसके बाद राष्ट्रीय आंदोलन में बड़ी तेजी आई। फिर भी 1905 के कांग्रेस अधिवेशन ने इस बहिष्कार का सशर्त समर्थन किया। लेकिन 1906 में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन ने जो बुरी तरह उग्रपंथियों के प्रभाव में था, एकदम नया कार्यक्रम स्वीकार किया। इस कार्यक्रम को स्वयं कांग्रेस के पुराने जन्मदाता दादाभाई नौरोजी ने पेश किया था। इस कार्यक्रम में पहली बार घोषणा की गई कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज प्राप्त करना है जिसे इस प्रकार परिभाषित किया गया कि ब्रिटिश साम्राज्य में रहते हुए भारत को स्वयं अपना शासन चलाने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए ('ऐसी राज्य व्यवस्था जैसी अंगरेजो के अपना शासन प्रबंध स्वयं चलाने वाले उपनिवेशों में कायम है')। इस कार्यक्रम में बहिष्कार आंदोलन का समर्थन किया गया 'स्वदेशी' या देशी उद्योग धंधों को प्रोत्साहन देने का समर्थन किया गया और राष्ट्रीय शिक्षा की हिमायत की गई। कांग्रेस कार्यक्रम की अब ये चार मूलभूत बातें हो गई स्वराज, विदेशी माल का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा।

एक वर्ष बाद अर्थात 1907 में सूरत कांग्रेस के दो टुकड़े हो गए नरमदली गुट का नेतृत्व गोखले ने और उग्रपंथियों का नेतृत्व तिलक ने किया। एक घटना के आधार पर जो काफी समय तक विवादास्पद मसला रहा, यह बात बिना किसी संदेह के कही जा सकती है कि उग्रपंथियों के बढ़ते प्रभाव से नरमदली नेताओं ने डरकर बहुत मनमाने ढंग से ऐसी हरकतें की जिससे कांग्रेस के दो टुकड़े हो गए। इसके बाद 1916 में दोनों गुटों में फिर एकता हो गई लेकिन 1918 में नरमदली लोगों ने अंतत कांग्रेस को छोड़ दिया और अलग से अपना लिबरल फेडरेशन बना लिया।

आंदोलन में नई जागृति के आते ही सरकारी दमन भी काफी तेज हो गया। 1907 में

राजद्रोही सभाओं पर रोक लगाने वाला कानून, सडीशश मीटिंग्स एक्ट बनाया गया और 1910 में एक नया और सख्त प्रेस कानून बनाया गया (1878 का पुराना प्रेस कानून लार्ड रिपन के उदार शासनकाल में रद्द कर दिया गया था)। 1818 के एक कानून के आधार पर उग्रपंथी नेताओं के विरुद्ध बिना मुकदमा चलाए देशनिकाला का तरीका अपनाया गया। यह सारा काम 'उदार' भारतमंत्री लार्ड मार्ले के शासनकाल में हुआ। 1908 में तिलक को, जिनसे सरकार सबसे ज्यादा डरती थी अपने अखबार में एक लेख प्रकाशित करने के जुर्म में 6 वर्ष की सजा दी गई और उन्हें माडले में तब तक कैद रखा गया जब तक 1914 का विश्वयुद्ध नहीं छिड़ गया। तिलक की गिरफ्तारी के विरोध में बंबई के कपड़ा मिलमजदूरों ने आम हड़ताल की। भारत के सर्वहारा वर्ग द्वारा की गई यह पहली राजनीतिक कार्यवाही थी और लेनिन ने इसे भविष्य का शुभ संकेत मानकर इसका स्वागत किया। अन्य महत्वपूर्ण नेताओं को या तो सजा दी गई या देशनिकाला दे दिया गया। कुछ लोग सजा से बचने के लिए देश छोड़कर चले गए। 1906 से 1909 के बीच अकेले बंगाल में 550 राजनीतिक मुकदमे अदालतों में पड़े थे। पुलिस का दमनचक्र बड़ी तेजी से चला, अनेक सभाएं तोड़ी गईं, पंजाब में किसानों के विद्रोह का बड़ी निर्ममता-पूर्वक दमन किया गया और राष्ट्रीय गीत गाने पर स्कूली बच्चों को गिरफ्तार किया गया।

पहले ही की तरह इस बार भी दमन के साथ साथ रियायतों का सिलसिला जारी रहा ताकि नरमदली नेताओं को साथ' लिया जा सके। 1909 में प्रस्तुत मार्ले मिंटो सुधार का अत्यंत सीमित रूप था। 1892 के इंडियन कौंसिल्स एक्ट के जरिए विधानपरिषदों में भारतीय प्रतिनिधि लेने के कार्यक्रम को थोड़ा विस्तार दिया गया। अब केंद्रीय विधान-परिषद में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों के एक अल्पमत को तथा प्रांतीय विधान-परिषदों में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों के बहुमत को शामिल किया गया। ये परिषदें केवल सलाहकार संस्थाएं थीं और इनके पास कोई ठोस अधिकार नहीं थे। कांग्रेस पर अब नरमदली नेताओं का एकछत्र अधिकार हो गया और उन्होंने अंगरेज सरकार के साथ अपनी एकता व्यक्त करने के लिए इन सुधारों का लाभ उठाया, 1910 में नए वाय-सराय के आने पर कांग्रेसी नेताओं ने अपनी वफादारी से भरी भावनाएं व्यक्त की और 1911 में जब एक शाही फरमान के जरिए बंगाल के विभाजन का संशोधन किया गया तो कांग्रेस के प्रवक्ता ने एलान किया कि 'ब्रिटिश सम्राट के प्रति हरएक व्यक्ति का हृदय श्रद्धा और आदर से भरा हुआ है, हम ब्रिटिश राजनेताओं के प्रति कृतज्ञ हैं और हमारा विश्वास उनमें फिर से दृढ़ हो गया है।'

1911 में बंगभंग का संशोधन किया जाना, बहिष्कार आंदोलन की आंशिक सफलता की अभिव्यक्ति करता है। 1906 से 1911 के बीच संघर्ष की जो लहर उठी थी वह तुरंत बाद के वर्षों में अपनी शक्ति बनाए नहीं रह सकी लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन में जो स्थाई विकास हुआ था वह कभी नष्ट नहीं हुआ। 1914 से पहले के वर्षों में अपनी तमाम सीमाओं

के बावजूद उग्रपथी नेताओं ने एक महान और स्थाई काम कर डाला था, इतिहास म पहली बार भारतीयों की आजादी की माग विश्व राजनीति के मच पर एक प्रमुख प्रश्न का रूप ले चुकी थी, भारत के राजनीतिक आदोलन म पूर्ण राष्ट्रीय मुक्ति और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दृढ सकल्प के बीज रोप जा चुके थे। यही बीज आगे चलकर आम जनता के बीच अकुरित हुए।

2 सघर्ष की दूसरी बडी लहर, 1919 1922

प्रथम विश्वयुद्ध ने साम्राज्यवाद के समूचे ढाचे पर स्थाई और जबरदस्त प्रहार किया तथा 1917 और इसके बाद के वर्षों म विश्व भर मे क्राति की एक लहर चल पडी जिसके परिणामस्वरूप भारत म भी विद्रोह के रूप मे जनआदोलन का सूत्रपात हुआ।

जिस प्रकार 1905 के जागरण के द्वारा विश्वव्यापी आदोलन की अभिव्यक्ति हुई उसी प्रकार बल्कि उससे भी ज्यादा उस महान जनआदोलन द्वारा विश्वव्यापी आदोलन का सकेत मिला जिसने 1917 के बाद के वर्षों मे अगरेजी राज की नीव हिला दी। विश्व की जनता के सघर्ष के साथ भारतीय जनता के सघर्ष के विकास की एकता को समझना अत्यत आवश्यक है। ऐसा इसलिए जरूरी है क्योंकि भारत की परपरागत राजनीतिक धारा मे कुछ ऐसे भी मनोगतवादी और अलगाववादी तत्व है जो बडे बडे आदोलनो के बारे म भी यह भ्रम पैदा करते है कि इन आदोलनो को कोई व्यक्ति विशेष या दल विशेष चलाता है और इनकी सफलता या विफलता स ही आदोलन चल पाता है या बद हो जाता है। इसमे कोई सदेह नही कि 1917 के बाद के वर्षों स ही भारत म राजनीतिक आदोलन का रूपातरण शुरू हुआ और जो आदोलन समाज के इने गिने लोगो तक ही सीमित था वह आम जनता तक पहुच गया। लेकिन यह रूपातरण भारत तक ही सीमित नही रहा।

एक दशक पूर्व जापान द्वारा जारशाही रूस की पराजय के बाद 1914 के विश्वयुद्ध ने एशियावासियो के सामने इस मिथक को चकनाचूर कर दिया कि पश्चिमी साम्राज्यवाद अपराजेय है। साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच आपस म जो आत्मघाती सघर्ष छिडा उससे गुलाम देशो की करोडो जनता का हृदय इस उल्लास से भर उठा कि साम्राज्यो के दिन अब गिने चुने ही रह गए हैं।

शुरू से ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने विशेष कानूनो और अधिकारो—खास तौर से भारत रक्षा अधिनियम का निर्माण करके और क्रातिकारी गुटो के अत्यत जझारू सदस्यो को गिरफ्तार करके या नजरबद करके स्थिति पर काबू पाने के लिए बडी सख्ती से काम लिया। साम्राज्यवादी युद्ध के शुरू के वर्षों म उसे इस काम म राजनीतिक आदोलन के उच्चवर्ग ने स्वेच्छा से मदद दी। काग्रेस ने, जिसपर नरमदली नेताओ का कब्जा था, युद्ध के दौरान हुए अपने चार अधिवेशनो म स प्रत्येक अधिवेशन मे प्रस्ताव पारित करके साम्राज्यवादी युद्ध के प्रति अपनी निष्ठा और हमदर्दी की घोषणा की। 1918 म युद्ध की

समाप्ति पर दिल्ली में आयोजित अधिवेशन म ता उसन अगरेज सम्राट के प्रति निष्ठा का एक प्रस्ताव पारित किया और सम्राट का इस बात के लिए बधाई दी कि युद्ध सफलता-पूर्वक समाप्त' हो गया। बदले में सरकार ने भी कांग्रेस पर कृपा की, 1914 के कांग्रेस अधिवेशन मे मद्रास के गवनर लाड पेंटलैंड न भाग लिया। इसी प्रकार 1915 के अधिवेशन मे बबई के गवनर लाड विलिंगटन ने और 1916 के अधिवेशन म सयुक्त प्रात के गवनर सर जेम्स मेस्टन ने भाग लिया। इन अधिवेशना म सरकारी प्रतिनिधियो का बडी गरमजोशी के साथ स्वागत किया गया। युद्ध शुरू होने के समय भारत के जो प्रमुख नेता लदन मे थे उन्होंने सरकार के प्रति अपना समथन घोषित करन म बडी तेजी दिखाई। काग्रेस का एक प्रतिनिधिमडल उन दिना लदन म था जिसम लाजपत राय, जिन्ना, सिनहा आदि थे। इस प्रतिनिधि मडल ने भारतीय मामला के मत्री को एक निष्ठापूर्ण पत्र लिखकर यह विश्वास प्रकट किया कि 'साम्राज्यवाद की शीघ्र विजय के लिए भारत के राजे रजवाड़े और भारत की जनता तत्काल और स्वच्छा से अपनी पूरी सामर्थ्य भर सहयोग करेगी और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह देश के सभी साधन सम्राट को अर्पित कर देगी।' गाधी उसी समय दक्षिण अफ्रीका म लदन पहुचे थे। उन्होने सेसिल होटल म अपने सम्मान म आयोजित एक समारोह म अपन नौजवान भारतीय दोस्तो से कहा कि उन्ह 'साम्राज्य के दृष्टिकोण से सोचना चाहिए और अपने कतव्य का पालन करना चाहिए।' उन्होने अपन तथा अन्य लोगा के हस्ताक्षर सहित भारतीय मामला के मत्री के नाम एक पत्र भेजा और अपनी सेवाए अर्पित करने का वचन दिया

> हमम से तमाम लोगा ने यह उचित समझा है कि ब्रिटिश साम्राज्य के सामने उत्पन्न वतमान सकट की घडी मे जो भारतीय ब्रिटेन म रह रहे हैं और जो इस योग्य है उन्ह ब्रिटिश अधिकारियो को बिना शत अपनी सेवाए पेश करनी चाहिए। हम अपनी तरफ से और सलग्न सूची म उल्लिखित नामो की तरफ से ब्रिटिश अधिकारियो को अपनी सेवाए अर्पित करते है।

बाद म उन्होंने लदन म रहने वाले भारतीयो का एक स्वयसेवी चिकित्सा दल सगठित करने के सिलसिले म जो काम किया वह किसी से छिपा नही है। भारत वापस लौटने पर उन्होंने वायसराय के समक्ष फिर अपनी सेवाए प्रदान करने का प्रस्ताव किया और कहा कि मेसोपोटामिया के युद्ध म होने वाले घायलो को स्ट्रेचर पर लादकर अस्पताल पहुचाने के लिए वह एक दल का गठन करना चाहते है। वायसराय ने गाधी के स्वास्थ्य को देखते हुए ऐसा न करने की सलाह दी और कहा कि 'ऐसे सकट के समय भारत म उनकी मौजूदगी ही अपने आप मे किसी भी सेवा से ज्यादा महत्वपूर्ण होगी।' वायसराय न जब 1917 मे दिल्ली म एक युद्ध सम्मेलन बुलाया तो उसमे गाधी भी शरीक हुए और जुलाई 1918 म तो उन्होंने गुजरात म किसाना के बीच यह कहना शुरू किया कि फौज म होकर ही स्वराज मिल सकता है और उन्होंने रगरूटा की भरती का प्रचार किया।

अंगरेज सरकार के अधिकारियों ने नरमदली नेताओं की 'वफादारी' के इन प्रदर्शनों और वक्तव्यों का यह अर्थ लगाया कि ब्रिटिश शासनाधिकारियों के उपकारों को देखकर भारतीय नेताओं में काफी उत्साह पैदा हुआ है और वे कृतज्ञ महसूस कर रहे हैं। लेकिन सचाई यह थी कि भारतीय नेताओं ने यह सोचा था कि युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सहायता करने से भारत में स्वराज की स्थापना तेजी से हो सकेगी। इसी आशय का वक्तव्य 1922 में गांधी ने अपने मुकदमे के दौरान दिया था

> ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा करने के इन सारे प्रयत्नों के पीछे मेरा यह विश्वास था कि इस प्रकार की सेवाओं के जरिए मैं अपने देश की जनता के लिए पूर्ण समानता का स्थान प्राप्त कर सकूंगा।

बाद में इन नेताओं का मोह भंग हुआ और इसे उन्होंने स्वीकार भी किया। राजनीतिक नेतृत्व के उच्चवर्ग की इस नीति के बावजूद जनता का असंतोष, जो युद्ध के कारण काफी बढ़ गया था और भी बढ़ता गया। युद्ध का खर्च चलाने के लिए भारत की अत्यंत गरीब जनता से काफी कड़ाई के साथ पैसा वसूला गया। चीजों की कीमतों में जबरदस्त वृद्धि हुई और मुनाफाखोरों ने अंधाधुंध कमाई की जिससे लोग तबाह और बरबाद हो गए। इन सारी बातों का नतीजा यह हुआ कि युद्ध समाप्त होने पर भारत में बहुत बड़े पैमाने पर इनफ्लुएंजा फैला जिसमें एक करोड़ 40 लाख लोगों की मृत्यु हुई। जनता के बढ़ते असंतोष की अभिव्यक्ति पंजाब के गदर आंदोलन और सेना में हुए विद्रोहों में हुई। इन आंदोलनों और विद्रोहों को बड़ी बेरहमी से कुचल दिया गया और तमाम लोगों को फांसी और कैद की सजा दी गई। 1917 में इंग्लैंड के एक जज की देखरेख में रौलट कमीशन नियुक्त किया गया जिसका काम 'भारत में चल रहे क्रांतिकारी आंदोलनों से संबंधित षडयंत्रों की जांच' के बाद यह सिफारिश करना था कि इन आंदोलनों का दमन करने के लिए कौन से नए दमनात्मक कानून बनाए जाएं।

धीरे धीरे जनता का बढ़ता हुआ असंतोष राजनीतिक आंदोलन के रूप में सामने आने लगा और 1916 के बाद के वर्षों में राष्ट्रीय आंदोलन में कुछ नई प्रवृत्तियां दिखाई देने लगीं। 1916 में तिलक ने होम रूल फार इंडिया लीग अर्थात भारत में स्वराज की स्थापना का सवर्धन संस्था का गठन किया। उनके अभियान में एक अंगरेज थियोसोफिस्ट महिला श्रीमती एनी बेसेंट शामिल हुईं जो राष्ट्रीय आंदोलन को ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति 'वफादारी' के रास्ते पर खींचने की कोशिश करती थीं। श्रीमती बेसेंट ने बाद के वर्षों में असहयोग आंदोलन का सक्रिय रूप से विरोध किया। 1916 में लखनऊ में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में उग्रपंथियों और नरमदली नेताओं में फिर मेल हो गया। इससे भी ज्यादा महत्व की बात यह थी कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग (1905 में स्थापित) के बीच गठबंधन कराने की जो कोशिशें 1913 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन से शुरू हुई थीं उन कोशिशों को 1916 के अंत तक सफलता मिल गई। इस सफलता के पीछे एक

कारण यह भी था कि अग्रेजो ने टर्की के खिलाफ लडाई छेड दी जिसकी वजह से मुस्लिम जनता मे काफी रोष फैल गया था और 1915 मे मुस्लिम लीग काफ्रेंस मे यह भावना व्यक्त भी की जा चुकी थी। 1916 मे दोनो सस्थाओ के बीच लखनऊ मे एक समझौता हुआ जिसका आधार ब्रिटिश साम्राज्य के अदर रहते हुए आशिक स्वराज था (इस समझौते की खास बातें ये थी कि कौसिल मे चुने हुए सदस्यो का बहुमत हो कौसिल के अधिकार बढाए जाए और वायसराय की कार्यकारिणी के आधे सदस्य भारतीय हो)। इस समझौते को काग्रेस-लीग योजना नाम दिया गया। इसके साथ ही दोनो सस्थाओ द्वारा यह घोषणा की गई कि भारत का लक्ष्य यह है कि उस 'साम्राज्य के अदर स्वशासी डोमीनियनों जैसा बराबरी का दरजा मिले।'

जब 1917 मे रूसी क्राति के बाद विश्व की स्थिति मे तेजी के साथ परिवर्तन आया तो समूचा घटनाचक्र इससे प्रभावित हुआ और इसकी अभिव्यक्ति ब्रिटेन और भारत के सबधो मे हुई। रूसी क्राति ने राष्ट्रो के आत्मनिर्णय के सवाल को और पुराने साम्राज्यो के विघटन के मसले को इस तरह विश्व के सामने ला दिया कि दोनो पक्षो की साम्राज्यवादी शक्तिया काफी परेशानी मे पड गई। जारशाही के पतन के पाच महीनो के अदर ही ब्रिटिश सरकार ने जल्दी जल्दी एक एलान किया (इस घोषणा को माटागू घोषणा के नाम से जाना जाता है। मोंटागू उस समय भारतीय मामलो के मत्री थे लेकिन वस्तुत इस घोषणा की योजना कर्जन और चेबरलेन ने बनाई थी और उन्होने ही इसे तैयार भी किया था)। इस घोषणा के अतर्गत भारत मे ब्रिटिश शासन के लक्ष्यो की व्याख्या करते हुए कहा गया था कि अगरेजी राज्य का उद्देश्य 'स्वायत्त शासन की सस्थाओ का धीरे धीरे विकास करना है जिससे भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अभिन्न अग बने रहने के बावजूद क्रमश जिम्मेदार प्रशासन की दिशा मे बढ सके।' इसके साथ ही इस घोषणा मे यह भी वायदा किया गया था कि 'इस दिशा मे जल्द से जल्द ठोस कदम उठाए जाएगे।' ब्रिटिश सरकार ने कितनी जल्दबाजी मे यह घोषणा की थी इसका पता इस तथ्य से ही चल जाता है कि घोषणा कर देने के बाद इस बात की जाच शुरू की गई कि इस घोषणा का मकसद क्या था। इस जाच के परिणाम के आधार पर कही एक साल बाद जाकर मोंटागू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट तैयार हुई। 1919 की समाप्ति तक सुधारो को (प्रातो मे तथाकथित 'डाईआर्की' प्रथा के अनुसार अर्थात अगरेजो और भारतीय मत्रियो के बीच विभागो का बटवारा किया जाना) लागू नही किया गया। उन सुधारो पर अमल करना 1920 मे शुरू हुआ और तब तक भारत की समूची परिस्थिति मे तब्दीली आ चुकी थी।

इससे दस वर्ष पहले मार्ले मिटो योजना के साथ इस तरह के सुधारो को आशिक सफलता मिल चुकी थी और इन सुधारो के जरिए उच्च वर्ग के राष्ट्रीय खेमे मे फूट के बीज बोए जा चुके थे लेकिन इस प्रकार नरमदली नेताओ का जो समर्थन प्राप्त किया गया था उस का वर्तमान घटनाक्रमो के दौर मे कम राजनीतिक महत्व था। 1917 के अत मे कलकत्ता मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता श्रीमती बेसेंट ने की। उन्होने इस

अधिवेशन म एक प्रस्ताव पास कराया जिसमे कहा गया था कि 'एकता के सूत्र म बधी हुई भारतीय जनता की ओर से काग्रेस, महामहिम सम्राट को अत्यत निष्ठापूर्वक और सम्मान के साथ अपने गहरे प्रेम का विश्वास दिलाती है तथा यह निवेदन करती है कि भारत की जनता हर कीमत पर और हर तरह की परेशानियो के बीच रहकर भी ब्रिटिश साम्राज्य का साथ देगी।' लेकिन 1918 की गर्मियो म जब मोटागू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो बबई म काग्रेस के एक विशेष अधिवेशन म इन प्रस्तावो की भर्त्सना की गई और इन्ह काफी निराशाजनक और असतोषजनक' कहा गया। काग्रेस के इस विशेष अधिवेशन के बाद ही गाधी को छोडकर अन्य सभी नरमदली नेता काग्रेस से अलग हो गए और बाद मे उन्होने इडियन लिबरल फेडरेशन की स्थापना की जिसम बुर्जुआ वर्ग के उन्ही तत्वो का प्रतिनिधित्व था जो साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करना चाहते थे। दिसबर, 1919 तक काग्रेस ने फिर सुधारो को स्वीकार करने का प्रस्ताव पारित किया लेकिन इस बार इस मसले पर काफी मतभेद दिखाई दिया जिसमे गाधी ने श्रीमती बेसेंट के समर्थन से सहयोग के लिए सघर्ष का नेतृत्व किया और इसके विरोधी पक्ष का नेतृत्व सी० आर० दास ने किया। अतिम पारित प्रस्ताव मे सुधारो की एक बार फिर आलोचना की गई और साथ ही यह माग की गई कि आत्मनिर्णय के सिद्धात के अनुसार पूरी तौर पर उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार कायम करने के लिए जल्द से जल्द कदम उठाए जाए।' लेकिन इसके साथ साथ प्रस्ताव म गाधी द्वारा पेश किए गए इस सशोधन को भी जोड दिया गया जिसम कहा गया था कि 'जब तक ऐसे कदम नही उठाए जाते तब तक काग्रेस का यह विश्वास है कि जहा तक सभव होगा भारत की जनता इन सुधारो से इस तरह काम लेगी कि जल्द ही देश म उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना की जा सके।' 1919 की समाप्ति तक भी गाधी की धारणा सरकार के साथ सहयोग करने और सुधारो को मजूर करने की थी। उन्होने वर्ष की समाप्ति पर अपने साप्ताहिक पत्र म एक लेख म लिखा था

> सरकारी घोषणा के साथ सुधारो से सबधित जो कानून पारित हुआ है उससे पता चलता है कि अग्रेज लोग भारत के साथ न्याय करना चाहते है और इस बारे म अब हमारे सदेह दूर हो जाने चाहिए इसलिए हमारा कर्तव्य यह है कि सुधारो की अकारण आलोचना न करके चुपचाप उनके अनुसार काम करना शुरू करें ताकि इन सुधारो को सफलता मिल सके। (एम०के० गाधी 'यग इडिया', 31 दिसबर 1919)

यह घोषणा काफी महत्वपूर्ण है क्योकि इस घोषणा से पहले ही रौलट कानून बन चुके थे अमृतसर की घटना घट चुकी थी और पजाब म मार्शल ला लागू हो चुका था। कहने का तात्पर्य यह है कि यह घोषणा इन तीनो घटनाओ के बाद की घोषणा है जिनको बाद म असहयोग आदोलन शुरू करने का कारण बताया गया था। इस प्रकार यह पता चल जाता है कि जब इस घोषणा के अगले वर्ष राष्ट्रीय नेताओ ने असहयोग आदोलन

छेडने का फैसला किया उस समय इन घटनाओ से अलग कुछ और बाते भी उनके ध्यान म थी।

दरअसल काग्रेस वसे तो अब भी सरकार के साथ सहयोग कर रही थी लकिन 1919 म भारत की समूची स्थिति बिलकुल बदल गई थी और काग्रेस की सहयोग की नीति का समूचा आधार नष्ट होता जा रहा था। 1919 म समूचे देश म क्रातिकारी असतोष की व्यापक लहर देखने म आई। वष 1918 के अतिम और 1919 के शुरू के महीनो म हडतालो का एक ऐसा सिलसिला शुरू हो चुका था जैसा पहले भारत म कभी नही दखा गया था। दिसबर 1918 म बबई की मिलो से हडताल की शुरुआत हुई। जनवरी 1919 तक एक लाख 25 हजार मजदूरो ने हडताल मे भाग लिया। 1919 के शुरू के दिनो मे रौलट ऐक्ट पश किया गया और माच के महीने मे इसे लागू कर दिया गया। इस कानून का उद्देश्य यह था कि युद्ध के दौरान सरकार ने विशेष कानूनो को पारित करके दमन के जो असाधारण अधिकार अपन हाथ मे ले लिए थे उन्हे युद्ध समाप्त हो जाने और विशेष कानूनो की अवधि खत्म हो जाने के बाद भी सरकार के हाथो मे बनाए रखा जा सके ताकि उसे अदालती कायवाही किए बिना मुकदमा चलाए बिना लोगो को जेल म बद रखने का अधिकार मिल सके। रौलट ऐक्ट से जनता के बीच काफी असतोष फैला और जनता ने यह महसूस किया कि सुधारो की आड लेकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने जबरदस्त हथकडो का इस्तमाल कर रहा है। गाधी ने दक्षिण अफ्रीका के अपने अनुभवो के आधार पर रौलट कानूनो के खिलाफ अहिंसात्मक सत्याग्रह आदोलन चलाने की कोशिश की और इस उद्देश्य से उन्होने फरवरी मे सत्याग्रह लीग नामक एक सगठन की स्थापना भी कर दी। जनता से अनुरोध किया गया कि वह 6 अप्रैल को हडताल करे या सारे कामकाज ठप कर दे। हडताल की इस अपील पर जनता न जो उत्साह दिखाया उससे स्वय वे लोग आश्चय म पड गए जिन्होंने अपील की थी। माच और अप्रैल के महीनो मे देश भर म बडे बडे जुलूस निकाले गए हडतालें हुई, जनता के असतोष की अभिव्यक्ति हुई और कही कही पर जनता और पुलिस के बीच सघष हुआ तथा सरकार द्वारा किए गए हिंसात्मक दमन का जनता ने बहादुरी के साथ सामना किया। सरकारी दमन के फलस्वरूप अनेक लोग घायल भी हुए लेकिन उनका मनोबल नही टूटा। इस वष की सरकारी रिपोट म इस बात पर काफी आश्चय प्रकट किया गया है कि लोगो के बीच अचानक ऐसी एकता किस तरह बन गई और हिंदुओ तथा मुसलमानो के बीच विरोध की सारी बाते कहा चली गइ। रिपोट म कहा गया था

> इस आम उत्तेजना और उत्साह म एक खास बात यह दखी गई कि हिंदुओ और मुसलमानो के बीच भाईचारे का अभूतपूव रिश्ता कायम हो गया। नेताओ ने बहुत दिनो से हिंदू मुस्लिम एकता को राष्ट्रवादी कायक्रम का एक निश्चित अग बना रखा था। सावजनिक उत्साह क इस अवसर पर निचली जातियो म भी मतभेदो को भुला देने की शक्ति पैदा हो गई। भाईचारे के असाधारण दृश्य

> [illegible] मिला। हिंदुओं ने मुसलमानों के हाथ से खुलेआम जल ग्रहण किया और मुसलमानों ने भी ऐसा किया। जुलूसों में नारों और झंडों में हिंदू मुस्लिम एकता का स्वर गूंज उठा। यहां तक कि हिंदू नेताओं को मस्जिदों के गुंबदों से खड़े होकर भाषण देने का अवसर दिया गया। ('इंडिया इन 1919')

इसके बाद सरकार ने दमन के असाधारण तरीके इस्तेमाल किए। अमृतसर में जलियांवाला बाग की घटना इसी समय हुई जहां जनरल डायर ने चारों तरफ दीवारों से घिरी एकत्रित जनता पर 1600 गोलियां बरसाईं। जनता बिलकुल निहत्थी थी और उसके बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। इस हत्याकांड में (सरकारी आंकड़ों के अनुसार) 379 लोग मारे गए और 1200 लोग घायल हुए जिन्हें इलाज के लिए भी कहीं नहीं ले जाया गया। बाद में दिए गए बयान के अनुसार इस निहत्थी जनता पर गोली चलाने का उद्देश्य 'वहां पर मौजूद लोगों पर ही नहीं बल्कि खास तौर से पूरे पंजाब के लोगों पर सैनिक दृष्टि से नैतिक प्रभाव डालना था।' कहने का अर्थ यह है कि इस गोलीकांड का उद्देश्य समूची जनता को आतंकित करना था। भारत में उस समय दमन का कितना जबरदस्त सिलसिला चल रहा था इसका पता इसी से लगाया जा सकता है कि कांग्रेस कमेटी के नेताओं को भी इस हत्याकांड की जानकारी घटना के चार महीने के बाद हुई और लगभग आठ महीनों तक इस हत्याकांड के किसी भी समाचार को सरकार ने न तो अखबारों में छपने दिया और न उसे ब्रिटिश पार्लियामेंट तथा ब्रिटिश जनता के सामने आने दिया। आंदोलनों और कांग्रेस द्वारा घटना की जांच के लिए एक समिति का गठन कर देने के बाद ब्रिटिश सरकार ने भी कूटनीतिक कारणों से मजबूर होकर घटना की निंदा की और इसकी जांच की। लेकिन जनरल डायर को साम्राज्यवादियों से काफी प्रशंसा मिली (और उसे 20 हजार पौंड की थैली भी भेंट की गई) तथा हाउस आफ लार्ड्स ने सरकारी तौर पर उसके काम की प्रशंसा की। पंजाब में मार्शल ला लगा दिया गया। आतंक के इस शासन के दौरान वहां कितने बड़े पैमाने पर गोलीकांड हुए, कितने लोगों को फांसियां दी गईं, हवाई जहाजों से कितनी जगह बम गिराए गए और अदालतों द्वारा कितनी भयानक सजाएं दी गईं इसका पूरा पूरा हिसाब अभी तक नहीं लगाया जा सका है। बाद के वर्षों में जो जांच पड़ताल हुई उससे भी केवल अधूरी जानकारी मिल सकी।

ब्रिटिश सरकार के मत के अनुसार इस अवधि में 'आंदोलन ने निस्संदेह ब्रिटिश राज के खिलाफ संगठित विद्रोह का रूप ले लिया था' (सर वेलेंटाइन चिरोल 'इंडिया', 1926, पृष्ठ 207)। गांधी ने इस परिस्थिति से चिंता महसूस की। कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद तथा अन्य स्थानों पर जनता ने अंगरेज शासकों के खिलाफ छुटपुट रूप से हिंसा का प्रयोग किया जिस पर गांधी जी ने घोषणा की कि 'मैंने एक महान भूल की थी जिससे कुछ ऐसे लोगों को अव्यवस्था फैलाने का अवसर मिल गया जो सही अर्थों में सत्याग्रही नहीं थे और जिनका उद्देश्य अच्छा नहीं था।' फलस्वरूप गांधी ने एक हफ्ता हड़ताल चलने के बाद ही

अप्रैल के मध्य मे सत्याग्रह आदोलन रोक दिया और इस प्रकार आदोलन को ठीक ऐसे वक्त पर, बद कर दिया गया, जब वह अपने शिखर पर पहुचने ही वाला था। बाद म उन्होंने 21 जुलाई को अखबारों के नाम एक पत्र लिखकर यह बताया कि आदोलन वापस लेने का कारण यह था कि 'एक सत्याग्रही कभी सरकार को परेशान करना नही चाहता।' सत्याग्रह' का यह अनुभव आगे चलकर और भी व्यापक स्तर पर दोहराया जाने वाला था।

हम देख चुके है, दिसबर 1919 मे काग्रेस सुधारो से काम लेने का फैसला कर रही थी और गाधी इस बात के प्रचार मे लगे थे कि राष्ट्रीय आदोलन का कर्तव्य है कि 'वह चुपचाप काम करे ताकि सुधार सफल हो।' लेकिन इस तरह के सपने सच होने की स्थितिया अब नही बच रही थी। 1919 म जनता म असतोष की जो क्रातिकारी लहर उठी थी वह 1920 और 1921 मे भी बराबर आगे बढती रही और 1920 के उत्तरार्ध म शुरू हुए आर्थिक सकट से तेजी म और वृद्धि हुई। 1920 के शुरू के छ महीनो म हडतालो का काफी जोर रहा। कम से कम 200 हडताले हुइ जिनमे 15 लाख मजदूरो ने भाग लिया। 'सुधारो से चुपचाप काम लेने' की पडिताऊ सलाह का इन क्रातिकारी आदोलनो ने मखौल बना दिया। सितबर 1920 म काग्रेस के एक विशेष अधिवेशन म अध्यक्ष ने घोषणा की

> इस तथ्य से आख मूद लेने से कोई लाभ नही है कि हम एक क्रातिकारी दौर स गुजर रहे हैं हम अपने मूल स्वभाव और अपनी परपरा से क्राति के खिलाफ है। पारपरिक रूप से हम आहिस्ता चलने वाले लोग है लेकिन जब हम आगे चलने की सोच लेते हैं तो फिर बहुत तेजी से चलते है और लबे कदमो से रास्ता तय करते है। कोई भी जीवित पदार्थ अपने जीवनकाल म क्रातियो से अपने को एकदम अलग नही रख सकता। (सितबर 1920 म कलकत्ता म आयोजित राष्ट्रीय काग्रेस के विशेष अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से लाजपतराय का भाषण)

जहा तक बुनियादी मुद्दो की बात है, काग्रेस अध्यक्ष का विश्लेषण सही था। काग्रेस के प्रवक्ता की घोषणा का आशय यथावत यह था कि क्राति के इस युग म नेतृत्व के सामने यह समस्या पैदा हो गई ह कि वह उभरते आदोलनो का नेतृत्व किस तरह कर क्योकि वह स्वभाव और परपरा से क्राति के खिलाफ है।' अनेक देशो म यह देखने म आया कि युद्ध के बाद जो परिस्थितिया पैदा हुई थी और युद्ध ने जो अवसर दिए थे उनका लाभ इसलिए नही उठाया जा सका क्योकि उन देशो म राजनीतिक आदोलन इतने परिपक्व नही थे जितने होने चाहिए थे। युद्ध के बाद की भारतीय परिस्थिति का अतर्विरोध भी यही ह।

यही वह परिस्थिति थी जब 1920 म गाधी और काग्रेस नेतृत्व के प्रमुख लोगो न (इस समय तक नरम दली नेता काग्रेस छोड चुके थ) अपना मोर्चा निर्णायक रूप से बदल दिया।

उन्होंने सुधारों से सहयोग करने की बात ताक पर रख दी, उभरते जनआन्दोलनों का नेतृत्व संभालने का संकल्प किया और इस उद्देश्य के लिए 'अहिंसात्मक असहयोग' की योजना तैयार की। इसके बाद से जनसंघर्षों का नेतृत्व कांग्रेस के हाथ में आ गया लेकिन इस नेतृत्व के लिए यह कीमत चुकानी पड़ी कि संघर्ष सदा 'अहिंसात्मक' रहेगा।

सितंबर 1920 में कांग्रेस ने कलकत्ता के अपने विशेष अधिवेशन में अहिंसात्मक असहयोग की नई योजना को स्वीकार किया। इसका विरोध हुए बिना नहीं रहा पर इसको अमल में लाने के लिए गांधी और मोतीलाल नेहरू तथा जुझारू मुस्लिम नेता अली बंधुओं के बीच एक गठबंधन हुआ और कार्यान्वित किया गया। अली बंधु उस समय के काफी मजबूत आंदोलन खिलाफत आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे (यह आंदोलन वैसे तो तुर्की के साथ सेव्रेज की संधि के द्वारा किए गए अन्याय का विरोध करने के लिए था लेकिन व्यवहार में इसने मुस्लिम जनता के असंतोष को एक सूत्र में बांधने का काम किया)। प्रस्ताव में घोषणा की गई कि "महात्मा गांधी द्वारा छेड़े गए प्रगतिशील अहिंसात्मक आंदोलन को तब तक चलाया जाएगा जब तक उपर्युक्त खामियों का निराकरण नहीं कर लिया जाता और स्वराज की स्थापना नहीं हो जाती।' इस नीति को कई चरणों से गुजरना था और इसकी शुरुआत सरकार द्वारा दी गई उपाधियों को त्यागने तथा तीन तरह के बहिष्कार (विधान सभाओं, कानूनी अदालतों तथा शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार) से होने वाली थी। इसके साथ ही 'घर घर में चरखा और करघा फिर से चालू करने' की बात थी। आंदोलन के अंतिम चरण में भविष्य में किसी समय से कर न देने का अभियान शुरू करने की योजना थी। आगे चलकर यह देखा गया कि तुरंत जो कदम उठाए गए वे मध्यवर्गीय लोगों, वकीलों और छात्रों द्वारा उठाए गए कदम थे जबकि आम जनता के जिम्मे केवल 'चरखा कातने और करघा चलाने' का काम सौंपा गया। कर न देने का अभियान (जिसका अर्थ अनिवार्य रूप में लगान न देने का अभियान था) जिसमें जनता की सक्रिय भूमिका हो सकती थी, बाद के लिए टाल दिया गया।

नवंबर में नई विधानसभाओं के चुनाव का बहिष्कार किया गया और इसमें काफी सफलता मिली। इस चुनाव में दो तिहाई मतदाताओं ने भाग नहीं लिया। शिक्षा संस्थाओं के बहिष्कार को भी काफी सफलता मिली, भारी संख्या में छात्रों ने जोश के साथ असहयोग आंदोलन में हिस्सा लिया। वकीलों द्वारा किया गया बहिष्कार कम सफल रहा। मोतीलाल नेहरू और सी०आर० दास जैसे कुछ प्रमुख वकीलों ने अदालतों के बहिष्कार में भाग लिया।

दिसंबर 1920 में नागपुर में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस का नया कार्यक्रम अंतिम तौर पर पारित कर दिया गया। प्रस्ताव पर लगभग सर्वसम्मति थी। इस बार कांग्रेस के विधान में तब्दीली आई। अब उसने साम्राज्य के अधीन रहते हुए औपनिवेशिक स्वायत्त सरकार की स्थापना के अपने लक्ष्य को छोड़कर नया लक्ष्य अपनाया जो शांति

पूर्ण और वैधानिक उपायो से स्वराज प्राप्त करना' था। काग्रेस के सगठन का भी स्वरूप बदला। पहले काग्रेस का सगठन बडा ढीलाढाला था पर अब उसने अपने सगठन को काफी आधुनिक बना लिया, काग्रेस की इकाइया हर गाव और मुहल्ले म कायम की गई और 15 सदस्यो की एक स्थाई कार्यकारिणी ('कार्य समिति') बनाई गई।

गाधी द्वारा शुरू किए गए नए कार्यक्रम और नीति से राष्ट्रीय काग्रेस ने एक बहुत बडा कदम उठाया। अब काग्रेस एक ऐसी राजनीतिक पार्टी बन गई थी जो राष्ट्रीय स्वतत्रता की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जनसघर्ष का नतृत्व करने को उठ खडी हुई थी। यहा से प्रगति करते करते काग्रेस इस स्थिति (जिस देखकर प्रारभिक दिनो के उग्र राष्ट्रवादी भी हैरान हो गए) तक पहुच गई कि वह राष्ट्रीय आदोलन का मुख्य केंद्रबिंदु बन गई।

लेकिन इस नए कार्यक्रम और इस नई नीति म एक और तत्व भी था जो जनसघर्ष से अपरिचित था। यह तत्व था निम्न पूजीवादी नैतिकतापूर्ण निराधार चितन तथा सुधारवादी शातिवाद का जिसकी अभिव्यक्ति बडे मासूम लगने वाले शब्द 'अहिंसा' म हुई। गाधी ने इस शब्द का इस्तेमाल समूची धार्मिक एव दार्शनिक अवधारणा को व्यक्त करने के लिए किया। उन्होंने इस विचारधारा का प्रचार-प्रसार बडी वाकपटुता और निष्ठा के साथ किया। गाधी की विचारधारा कुछ मामलो म भारत की पुरानी निराधार चितनधारा जैसी थी पर उसका घनिष्ठ सबध ताल्सताय, थोरो और इमर्सन जसे पश्चिम के आधुनिक विचारको के चितन के साथ था। अपने जीवन के प्रारभिक वर्षों म जब गाधी विदेश म थे तब इन दार्शनिको के विचारो का काफी प्रभाव था और गाधी की विचारधारा के निर्माण म इन विचारो की महत्वपूर्ण भूमिका रही। गाधी के उन अनेक सहयोगियो ने भी अहिंसा के सिद्धात को स्वीकार किया जो गाधी की दार्शनिक अवधारणाओ से सहमत नही थे। इसकी वजह यह थी कि उन्होने सोचा कि दुश्मन के रूप म एक शक्तिशाली सशस्त्र शासक वर्ग से निहत्थी जनता की लडाई शुरू कराने के लिए अहिंसा के इस हथियार का सहारा लिया जा सकता है। लेकिन बाद की घटनाओ के अनुभवो और अहिंसा शब्द की नित नई व्याख्याओ से यह स्पष्ट हो गया कि वस्तुत ऊपर से यह शब्द बहुत निर्दोष, मानवीय और उपयोगी लगता है पर इसके पीछे न केवल अतिम सघर्ष को नकारने की बात छिपी है बल्कि तात्कालिक सघर्ष को रोकने की भी बात छिपी है क्योकि हमेशा आम जनता के हितो को बडे बुर्जुआवर्ग और जमीदारवर्ग के हितो के साथ जोडने की कोशिश की गई। भारत का बडा पूजीपतिवर्ग और जमीदारवर्ग निश्चय ही किसी भी निर्णायक जनसघर्ष के खिलाफ था। यही वह अतर्विरोध था जिसके कारण अपनी महान उपलब्धियो के बावजूद पहली बार और दस साल बाद दूसरी बार भी जब पहले से बडे पमाने पर सघर्ष छेडा गया, आदोलन को सफलता नही मिली। इसी अतर्विरोध के कारण स्वराज की प्राप्ति भी नही हो सकी जबकि नताओ ने जनता से वायदा किया था कि नई नीति अपनाने पर स्वराज की प्राप्ति शीघ्रतापूर्वक हो सकेगी।

स्वराज प्राप्ति का काम तेज करने के लिए कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध संघर्ष चलाने का जो नया जुझारू कार्यक्रम अपनाया, उससे जनआंदोलन ने और जोर पकड़ा। गांधी ने बहुत दृढ़ और निश्चित शब्दों में एक भविष्यवाणी की जिसमें उन्होंने यह अविवेकपूर्ण वायदा किया कि स्वराज की प्राप्ति 12 महीनों के अंदर हो जाएगी (यह वायदा, हालांकि, बड़ा बचकाना था फिर भी उन दिनों कुछ ऐसा उत्साहपूर्ण वातावरण था कि गांधी के अनुयायियों को इस वायदे के पूरा होने का पक्का यकीन था)। 12 महीनों की सीमा का अर्थ यह था कि 31 दिसंबर 1921 तक स्वराज मिल जाएगा। गांधी ने तो सितंबर 1921 में एक सम्मेलन में यहां तक कह डाला कि, 'यह वर्ष खत्म होने से पहले तक स्वराज प्राप्त करने के बारे में मैं इस हद तक निश्चित हूं कि यदि स्वराज नहीं मिला तो 31 दिसंबर के बाद मैं जीवित रहने की कल्पना ही नहीं कर सकता।' (सुभाषचंद्र बोस : दि इंडियन स्ट्रगल, पृष्ठ 84) लेकिन इस तिथि के बाद भी गांधी अनेक वर्षों तक सक्रिय राजनीति में रहे हालांकि उन्हें स्वराज देखने का सौभाग्य तक नहीं मिला।

गांधी ने अपनी विजय की तिथि तो स्पष्ट कर दी थी पर उनके अभियान का कार्यक्रम स्पष्ट नहीं था। 'हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस' में लिखा है :

> जनता का आकर्षण जिस चीज में था वह था सामूहिक रूप से किया जाने वाला सविनय अवज्ञा आंदोलन। यह कैसा आंदोलन था, इसका क्या रूप होगा? स्वयं गांधी ने न तो कभी इसे परिभाषित किया, न इसकी व्याख्या की और न वह खुद भी इसका कोई स्वरूप स्पष्ट कर सके। कोई कुशाग्र बुद्धि का व्यक्ति ही एक एक कदम चलने के बाद समझ सकता था कि इस आंदोलन की दिशा क्या है। यह ठीक वैसे ही था जैसे कोई राहगीर किसी घने अंधेरे जंगल में रास्ते की तलाश में तब तक भटकता रहे जब तक कहीं से कोई प्रकाश की किरण उसे न दिखाई दे। (हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस 1935 पृष्ठ 376)

सुभाष बोस ने अपनी पुस्तक 'दि इंडियन स्ट्रगल 1920-1934' में बताया है कि किस प्रकार 1921 के उन महत्वपूर्ण दिनों में उन्होंने एक नौजवान शिष्य के रूप में महात्मा गांधी से पहली बार मुलाकात की थी और घोर निराशा का अनुभव किया था। उन्होंने सारी बातों की 'स्पष्ट जानकारी' चाही थी। उन्होंने जानना चाहा था कि उनकी (गांधी की) योजना किन किन चरणों से गुजरेगी और उसे किस प्रकार कदम ब कदम बढ़ाया जाएगा जिससे अंततोगत्वा विदेशी नौकरशाही से सत्ता पर कब्जा किया जा सकेगा।' लेकिन सुभाष बोस को गांधी कोई जवाब न दे सके।

> कायनीति अपनाई जाए। (सुभाप बोस दि इडियन स्ट्रगल 1920 1934', पृष्ठ 68)

जवाहरलाल नेहरू न गाधी की दिलचम्प अम्पष्टता' के बारे मे लिखा है

> यह बात जाहिर थी कि हमारे अधिकाश नताओ की निगाह म स्वराज का अथ स्वतत्रता स काई काफी छोटी चीज थी। दिलचस्प बात यह है कि गाधी जी खुद भी इस प्रश्न पर साफ नही थ और वह दूसरो को कोई स्पष्ट समझ बनाने के लिए प्रोत्साहित नही करते थे। (जवाहरलाल नेहरू 'आत्मकथा', पृष्ठ 76)

फिर भी, नेहरू के अनुसार

> हम सब यह महसूस करत थे कि वह एक महान और अदभुत व्यक्ति है और एक तेजस्वी नेता हैं। हम उन पर पूरी तरह विश्वास करत थे और कम से कम उस समय सब कुछ करने का अधिकार हमन उन्हे दे दिया था। (वही, पृष्ठ 73)

1921 मे आदोलन की प्रगति का पता केवल इसी तथ्य से नही चलता कि लोग जोश के साथ असहयोग आदोलन का साथ द रहे थे बल्कि देश के सभी भागा म दिनोदिन बढ रहे जनसघष से भी आदोलन क विकास की जानकारी मिलती है। असम बगाल मे रेल कमचारियो न हडताल की, मेदिनीपुर म लोगो न कर न देने का अभियान चलाया दक्षिण म मलाबार मे मोपला विद्रोह हुआ और पजाब म जुझारू अकालियो ने उन महतो के खिलाफ आदोलन चलाया जिन्ह सरकार का सरक्षण प्राप्त था।

1921 के अतिम दिना मे सघष और भी तज हो गया। इन सारी स्थितिया का देखकर सरकार काफी चिंतित हो गई और इस बार उसने काफी सोच समझ कर गाधी के विरुद्ध अपने अमोघ अस्त्र का इस्तमाल किया। कनाट के ड्यूक का वप के शुरू म भारत यात्रा के लिए भेजा गया था, इस बार स्वय प्रिंस आफ वेल्स को भारत यात्रा के लिए भेजा। सरकार की यह झूठी आशा ता नही थी कि इस तरह भारत की जनता खुश हो जाएगी लेकिन रहस्यमय पूव का हर अगरेज विशेषज्ञ यह समझता था कि भारत के लोग किस चीज का सबसे ज्यादा सम्मान की दृष्टि से देखत है। सरकार प्रिंस आफ वल्स को भारत की यात्रा कराकर यह जाच करना चाहती थी कि जनता की भावनाए इस समय क्या है। सरकार ने जो आशा की थी उससे कही अधिक ही उस इस यात्रा का परिणाम देखने को मिला, लेकिन विपरीत दिशा मे। 17 नवबर को जब प्रिंस आफ वल्स भारत पधारे तो उनका स्वागत एक देशव्यापी हडताल से हुआ। जनता की नफरत का ऐसा व्यापक और सफल प्रदशन भारत मे पहले कभी नहीं हुआ था। जनता के विरोध और सरकार के जबरदस्त दमन क बीच जमकर टक्कर हुई जिस गाधी ने रोकने की कोशिश की पर उन्हें

कामयाबी नहीं मिली। नतीजा यह हुआ कि गाधी ने यह एलान किया कि स्वराज शब्द से उन्ह बदबू आने लगी है।

इसी समय से राष्ट्रीय सेवा दल (नेशनल वालटियर) का आदालन तज होन लगा। दल के स्वयसेवक अब भी 'अहिंसात्मक सहयोग' के सिद्धात के आधार पर काग्रेस या खिलाफत आदोलन के ढाचे के अधीन सगठित थ। लकिन अनेक स्वयसेवक वर्दिया पहनत थे, कवायद करते थे और विदेशी कपडो के बहिष्कार के लिए पिकेटिंग करने तथा शाति पूर्ण ढग से लोगो को समझाने के लिए एव हडताल कराने के लिए जुलूस बनाकर जाते थे।

सरकार न राष्ट्रीय सेवा दल का दमन करन के लिए अपनी पूरी ताकत लगा दी। 'स्टेट्समैन' और 'इगलिशमैन' जैसे सरकारी अखबारो न जोरशोर से यह प्रचार किया कि सेवा दल के स्वयसेवको ने कलकत्ता पर कब्जा कर लिया है और सरकार भग हो गई है। इन अखबारो ने तत्काल कायवाही करने की माग की। सरकार ने सेवा दल को गैरकानूनी सगठन घोषित कर दिया। हजारो की सख्या म गिरफ्तारिया हुई। हजारो छात्रो और कारखाना मजदूरो ने स्वयसेवको की गिरफ्तारी की वजह से रिक्त हुए स्थान को भर दिया। दिसबर की समाप्ति तक गाधी को छोडकर काग्रेस के शेष सभी महत्व-पूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए। बीस हजार राजनीतिक कदियो से जलो को भर दिया गया। अगले वष जब आदोलन अपनी चरम स्थिति पर पहुचा तो राजनीतिक बदियो की सख्या तीस हजार हो गई। लोगो म जोश का तूफान उमड पडा।

सरकार काफी चिंतित और परशान हो गई और उसके हाथ पाव फूलने लगे। उसन सोचा कि यदि सावजनिक खिलाफत की यह बीमारी शहरो स होकर गावो की करोडो आबादी के बीच पहुच गई तो ब्रिटिश शासन को कोई नही बचा सकता। उसके सारे हवाई जहाज और बारूद गोले भी 30 करोड लोगो की क्रोधाग्नि को शात नही कर सकेंगे। इस आशका स भयभीत होकर वायसराय न जेल म राजनीतिक बन्दियो स सुलह समझौता करना शुरू किया। इसके लिए उसने पडित मदनमोहन मालवीय की मध्यस्थता का सहारा लिया। वायसराय ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि वे सविनय अवज्ञा आदोलन वापस ले लें तो राष्ट्रीय सेवा दल को कानूनी सगठन के रूप म मान्यता दे दी जाएगी और राजनीतिक बन्दियो को रिहा कर दिया जाएगा। लकिन कोई समझौता नहीं हो सका।

इन्ही परिस्थितियो म, वष के अत म अहमदाबाद म काग्रस का अधिवेशन हुआ। इस समय तक गाधी ही लगभग एकमात्र नेता बच रह थ। बगाल क बहादुर नेता सी०आर० दास, जिन्हें अधिवेशन की अध्यक्षता करनी थी जल म थे इसलिए गाधी एक अगरेज पादरी को अपने साथ ले आए जिन्ह अधिवेशन की कायवाही शुरू करन स पहल काग्रस

के नाम एक धार्मिक सदेश देना था। लेकिन उन्होंने इस अवसर का फायदा उठाया और विदेशी कपड़े की होली जलाए जाने के विरुद्ध एक प्रवचन दे डाला।

अहमदाबाद काग्रेस अधिवेशन ने एक आशपूर्ण वातावरण मे अनेक प्रस्ताव पारित किए जिनमे यह घोषणा की गई थी कि जब तक स्वराज की स्थापना नही हो जाती और जनता के हाथों म शासन की बागडोर नही पहुच जाती तब तक काग्रेस अहिंसक असहयोग आदोलन और भी शक्ति के साथ जारी रखने के लिए कृतसकल्प है।' अठारह वर्ष की आयु से अधिक के सभी लोगो से अपील की गई कि वे राष्ट्रीय सेवा दल मे भरती हो और इस लक्ष्य को पूरा करने का सकल्प किया गया कि सारा ध्यान सविनय अवज्ञा आदोलन पर दिया जाएगा, भले ही यह आदोलन सावजनिक हो या व्यक्तिगत, इसका स्वरूप सुरक्षात्मक हो या आक्रामक।' इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'महात्मा गाधी को काग्रेस का एकमात्र अधिकारी' बनाकर सारे अधिकार उनके हाथ म दे दिए गए। गाधी अब काग्रेस के डिक्टेटर या एकछत्र नेता हो गए। आदोलन अपने शिखर पर था। विजय प्राप्ति के लिए उनके हाथो में समस्त अधिकार दे दिए गए। बड़े पैमाने पर सत्याग्रह छेड़ने के लिए अतिम शक्ति परीक्षा की घडी आ गई थी। सारे देश की निगाह गाधी की ओर लगी थी। लोग देख रहे थे कि वह अब क्या करते है ?

राष्ट्रीय उत्साह और आशा के इस जोशीले वातावरण म काग्रेस का केवल एक व्यक्ति ऐसा था जो तत्कालीन घटनाक्रम को देखकर चिंतित और अप्रसन्न था। वह व्यक्ति थे गाधी। उनका यह आदोलन, जिस रास्ते की उन्होंने कल्पना की थी उस रास्ते पर नही बढ रहा था। ऐसा लगता था जैसे कही कुछ गड़बड़ हो गई हो। यह तो वह रमणीय और दार्शनिक 'अहिंसात्मक' आदोलन नहीं था जिसकी उनके दिमाग म तस्वीर थी। ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने किसी दैत्य के बधन खोल दिए हो। आदोलन म गलत किस्म के लोग घुसते जा रहे थे। उतावले किस्म के लोगो ने, जिनमे खास तौर पर गाधी के मुसलमान साथी थे, यहा तक माग करनी शुरू कर दी थी कि अहिंसा' का रास्ता छोड दिया जाए। 1921 के अतिम दिनो म, जब हजारो लाखो देशभक्त सिपाही गाधी की जयजयकार करते हुए जेल जा रहे थे तब गाधी अपनी घबराहट और नफरत व्यक्त कर रहे थे और कह रहे थे कि उन्हे स्वराज शब्द से बदबू आने लगी है।

अहमदाबाद मे काग्रेस ने पीछे हटना शुरू किया। लेकिन यह क्रिया अभी खुलकर सामने नही आई क्योकि देश म आसन्न लडाइयो की आशका से तनाव था और हजारो लोग इस लड़ाई म शिरकत करने के लिए तैयार थे। लेकिन इस बात के छोटे मोटे सकेत वहा मौजूद थे कि काग्रेस पीछे हटने जा रही है। काग्रेस का अहमदाबाद अधिवेशन अपने आप म एक ऐतिहासिक अवसर था जब देश भर म व्यापक और आम सत्याग्रह के सूत्रपात की घोषणा की जा सकती थी, जनता भी इसी क्षण का इतजार कर रही थी। यही वह क्षण था जब विजय के लिए अतिम सघर्ष की रणभेरी बजाई जा सकती थी। अहमदाबाद

कांग्रेस के नाम भारत की नवगठित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने संदेश में कहा

> यदि कांग्रेस उस क्रांति का नेतृत्व करना चाहती है जो भारत को उसकी नींव से हिला रही है तो उसे केवल प्रदर्शनों और अस्थाई जोश पर ही भरोसा नहीं करना चाहिए। उसे मजदूर संघों की तात्कालिक मांगों को अपनी मांगें बना लेना चाहिए, उसे किसान सभा के कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम घोषित करना चाहिए और तब वह दिन दूर नहीं जब कांग्रेस सारी बाधाएं दूर कर ले। तब अपने भौतिक हितों के लिए सचेतन ढंग से लड़ रही समस्त जनता की विपुल शक्ति कांग्रेस के पीछे होगी। (राष्ट्रीय कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन के नाम भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, 1921)

संघर्ष शुरू करने का आवाहन अहमदाबाद अधिवेशन में नहीं किया गया। इतना ही नहीं सजग प्रेक्षकों ने गौर किया कि अहमदाबाद के प्रस्ताव में 'कर न देने' का कहीं भी जिक्र नहीं होने दिया गया है। आम सत्याग्रह का जहां जहां जिक्र आता था वहां वहां उसे बेशुमार अगर मगर की शर्तों से गोलमोल कर दिया गया था कहीं 'उचित सुरक्षा उपायों के तहत' तो कहीं 'आंदोलन के लिए जारी आवश्यक निर्देशों के अंतर्गत' और कहीं 'जनता द्वारा अहिंसा का तरीका पर्याप्त रूप से सीख लिए जाने के बाद ही' आंदोलन छेड़ने की बात थी। इसके बाद रिपब्लिकन मुस्लिम नेता मौलाना हसरत मोहानी वाली घटना हुई। उन्होंने एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें कहा गया था कि स्वराज का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है जिसमें संपूर्ण विदेशी नियंत्रण से मुक्ति मिल जाएगी। गांधी ने इस प्रस्ताव का जबरदस्त विरोध किया (इस प्रस्ताव से मुझे तकलीफ हुई है क्योंकि इसमें जिम्मेदारी की भावना का अभाव है।) और प्रस्ताव को नामंजूर करा दिया।

भारत सरकार आंखें फाड़कर अहमदाबाद की कार्यवाहियां देख रही थी। उसने उन छोटे छोटे संकेतों को पहचाना जो अहमदाबाद में अभिव्यक्त हुए थे और राहत की सांस ली। वायसराय ने लंदन स्थित भारतीय मामलों के मंत्री के पास एक तार भेजा

> बड़े दिन की छुट्टियों में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। गांधी पर बंबई के दंगों ने गहरा असर डाला था इस बात का पता उनके उस समय दिए गए भाषणों से चलता है। इन दंगों में उन्हें यह आशंका पैदा हुई कि आम सत्याग्रह शुरू करने पर काफी उग्र स्थिति पैदा हो सकती है। अधिवेशन में पारित प्रस्तावों के स्वरूप में भी इसी तथ्य का पता चलता है क्योंकि इन प्रस्तावों में न सिर्फ खिलाफत पार्टी के सर्वाधिक उग्रवादी लोगों का यह सुझाव नहीं माना गया है कि कांग्रेस का न[illegible] की नीति [illegible] बल्कि उसमें यह घोषणा करा [illegible] गयह

शुरू किया जाए कहीं पर भी कर न देने के अभियान का जिक्र नहीं है।
('टलीग्राफिक करेसपाडेंस रिगार्डिंग दि सिच्युएशन इन इंडिया', 1922)

गाधी के सामने अब कौन सा रास्ता है ? अहमदाबाद का काग्रेस अधिवेशन कोई योजना निर्धारित किए बिना समाप्त हो गया। सारी योजनाए गाधी के ऊपर छोड दी गईं। जब पेरिस चारो तरफ से घेर लिया गया था उस समय पेरिस निवासी यह कहकर अपने को आश्वस्त करते थे कि 'जनरल त्रोचू ने अवश्य ही कोई योजना तैयार की होगी।' भारतीय जनता की स्थिति भी इसी तरह की थी। एक तरफ तो वह साम्राज्यवादियो के जबरदस्त दमन का शिकार हो रही थी और दूसरी तरफ गाधी की ओर आशाभरी निगाह से देख रही थी कि वह जल्दी ही अपनी कोई योजना शुरू करेंगे।

लेकिन गाधी ने एक अजीब रवैया अपनाया। एक महीने तक वह चुपचाप इतजार करते रहे। इस बीच विभिन्न जिलो के लोगो ने गाधी को लिखा कि वे कर न देने का आदोलन जल्दी शुरू करें लेकिन गाधी ने इन लोगो को ऐसी कोई अनुमति नही दी। गुटूर जिले के लोगो ने गाधी की अनुमति के बिना ही यह आदोलन शुरू कर दिया। इसपर गाधी ने फौरन ही जिले के काग्रेस अधिकारियो को लिखा कि निर्धारित तिथि तक सारे कर जमा कर दिए जाए। इसके बाद उन्होंने एक छोटे से जिले बारदोली मे कर न देने का अपना अभियान शुरू करने का निश्चय किया। इस जिले की आबादी 87,000 अर्थात भारत की कुल आबादी का चार हजारवा हिस्सा थी। यहा गाधी ने बडी सतर्कता के साथ 'अहिंसात्मक' स्थितिया तैयार की थी। जिस समय पूरा देश गाधी के नेतृत्व की आशा लगाए बैठा था, उस समय उन्होने बारदोली जैसे छोटे इलाके मे अपने आपको सीमित कर लिया था। 1 फरवरी को उन्होने वायसराय के पास अपना अल्टीमेटम भेजा जिसमे यह कहा गया था कि यदि राजनीतिक बदियो को रिहा नही किया जाता और दमनात्मक तरीके छोडे नही जाते तो 'व्यापक स्तर पर सत्याग्रह' शुरू कर दिया जाएगा जो खास तौर से बारदोली से शुरू होगा। गाधी के इस अल्टीमेटम के कुछ ही दिनो बाद यह खबर आई कि सयुक्त प्रात (उत्तरप्रदेश) मे गुस्से से भरे किसानो ने वहा के थाने पर हमला करके उसे जला दिया है और समूचा थाना आग मे जलकर स्वाहा हो गया है। किसानो मे असतोष बढने की यह घटना भारत की क्राति के लिए निश्चय ही एक निर्णायक स्थिति का सकेत देती है लेकिन इस घटना से गाधी ने यह सोचा कि अब ज्यादा देर तक रुकने का समय नही है। उन्होंने जल्दी जल्दी 12 फरवरी को बारदोली मे काग्रेस की कार्य समिति की बैठक बुलाई और इस बैठक मे यह फैसला किया गया कि 'चौरीचौरा मे जनता की अमानवीय हरकत' को देखते हुए न सिर्फ आम सविनय अवज्ञा आदोलन को बल्कि उसके प्रचार सहित समूचे आदोलन को ही बद कर दिया जाए। यह भी फैसला किया गया कि स्वयसेवको के जुलूस निकालने, सरकारी प्रतिबध को तोडकर सभाए करने आदि गतिविधियो को रोक दिया जाए और इसके बदले चरखा शराबबदी और

शिक्षा से संबंधित 'रचनात्मक' काम किया जाए। इसका अर्थ यह हुआ कि लड़ाई रोक दी गई। पूरा आंदोलन समाप्त हो गया। खोदा पहाड़ निकली चुहिया।

बारदोली के फैसले से कांग्रेस के सभी लोग हतप्रभ रह गए, यह कहने मात्र से उनकी सही सही भावनाओं को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। अंगरेज पाठकों को समझाने के लिए यह कहा जा सकता है कि 1922 में भारत में बारदोली के फैसले का यही असर हुआ था जो 1926 में इंग्लैंड में आम हड़ताल वापस ले लेने का हुआ था।

> जिस समय जनता में उत्साह और जोश उबला पड़ रहा था ठीक उसी वक्त पीछे हटने का आदेश देना संपूर्ण राष्ट्र के लिए महान दुर्घटना थी। महात्मा गांधी के प्रमुख सहयोगियों देशबंधु दास, पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय ने, ये सब जेल में थे, आम जनता की ही तरह इस फैसले पर गहरा असंतोष व्यक्त किया। मैं उस समय देशबंधु के साथ था और मैं यह देख पा रहा था कि वह क्रोध और दुःख से व्याकुल हो रहे थे। (सुभाषचंद्र बोस 'दि इंडियन स्ट्रगल', पृष्ठ 90)

मोतीलाल नेहरू, लाजपत राय तथा अन्य नेताओं ने गांधी के फैसले के विरोध में जेल से लंबे और बड़े रोषपूर्ण पत्र भेजे लेकिन गांधी ने बड़े निश्चल भाव से यह प्रतिक्रिया व्यक्त की कि जेल में पड़े लोग 'नागरिकता की दृष्टि से मृत हो चुके हैं' और नीति के मामले में उन्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं है।

समूचा आंदोलन जिसका संगठन ही इस आधार पर हुआ था कि जनता की किसी तरह की स्वतःस्फूर्त गतिविधियों को पूरी तरह हतोत्साहित किया जाए और एक व्यक्ति के आदेशों का यंत्रवत पालन किया जाए बारदोली के फैसले से अनिवार्य रूप से एक तरह की लाचारी उलझन और पस्तहिम्मती का शिकार हो गया। जवाहरलाल नेहरू ने बारदोली के फैसले का समर्थन करते हुए यह तर्क पेश किया था कि यदि आंदोलन को रोका न जाता तो यह हाथ से निकल जाता और निश्चित रूप से सरकार के विरुद्ध हिंसा और रक्तपात का रास्ता अख्तियार कर लेता। लेकिन जवाहरलाल नेहरू को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि जिस ढंग से यह फैसला किया गया उसमे

> कुछ पस्तहिम्मती आई। यह भी संभव है कि इतने बड़े आंदोलन को अचानक रोक देने से देश में एक के बाद एक दुःखद घटनाओं का क्रम शुरू हुआ। राजनीतिक संघर्ष में छिटपुट और निरर्थक हिंसा की प्रवृत्ति तो रुक गई किंतु इस दबी हुई हिंसा को कोई रास्ता तो ढूंढना ही था और बाद के वर्षों में शायद इसने ही सांप्रदायिक दंगों को बढ़ावा दिया। (जवाहरलाल नेहरू, 'आत्मकथा', पृष्ठ 86)

आंदोलन को इस तरह अपंग बना दिए जाने के बाद सरकार ने पूरे आत्मविश्वास के साथ

हमला किया । 10 मार्च का गाधी को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे छ वर्ष कैद की सजा दी गई लेकिन इससे कही छोटा मोटा जनआदोलन भी नही हुआ। सरकार ने दो वर्ष के भीतर ही गाधी को रिहा कर दिया। इस समय तक सकट समाप्त हो चुका था।

बारदोली फैसले को लेकर और इस फैसले के बाद छ वर्षों तक राष्ट्रीय आदोलन पर इसके गभीर परिणामो के प्रश्न पर काफी बहसें हुइ। बारदोली क फैसले के पक्ष मे यह तक दिया जाता है कि इस फैसले की असली वजह केवल चौरीचौरा काड न थी जैसाकि आधिकारिक तौर पर बताया जाता है बल्कि इस फैसले का कारण कुछ और ही था जो चौरीचौरा काड से ज्यादा गभीर था। वस्तुत वह समय आ गया था जब आदोलन को रोकना जरूरी हो गया था क्योकि 'ऊपर मे हमारा आदोलन बहुत मजबूत दिखाई देता था और लगता था कि इस आदोलन को लेकर लागो मे काफी जोश है लेकिन यह अदर से टुकडे टुकडे हो रहा था' (नेहरू, आत्मकथा, पृष्ठ 85)। प्रश्न किया जा सकता है कि आदोलन किन अर्थो मे 'टुकडे टुकडे' हो रहा था।' यदि इसका अथ यह है कि आदोलन पर सुधारवादियो और शातिवादी विचारधारा के लोगो की पकड ढीली पड रही थी तो यह निस्सदेह रूप से सही है। लेकिन आदोलन के विकास के फलस्वरूप यह होना ही था और यदि ऐसा न होता तो भविष्य मे आदोलन सफल नही हो सकता था। (नेहरू ने यह मान लिया था कि सारे देश म जनविद्रोह होने पर ब्रिटिश सरकार की जीत होती जबकि सरकार को अपनी जीत का इतना विश्वास नही था)। दूसरी ओर यदि आदोलन के टुकडे टुकडे होने का अथ यह है कि जनसघष अपने उच्च स्तर से गुजर चुका था और अब वह कमजोर पडने लगा था तो यह बात निश्चय ही गलत है और बारदोली फैसले का समथन करने वाले भी इस बात का दावा नही करते थे। इसका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि स्वय भारत सरकार ने बारदोली के दुर्भाग्यपूण फैसले के तीन दिन पहले वास्तविक स्थितियो का बिलकुल दूसरा ही मूल्याकन किया था। 9 फरवरी 1922 को वायसराय ने एक तार लदन भेजा था जिसमे उन्होने लिखा था

> शहरो के निम्न वर्गो पर असहयोग आदोलन का गहरा असर पडा है कुछ क्षेत्रो मे खास तौर पर असम घाटी, सयुक्त प्रात, बिहार और उडीसा तथा बगाल मे किसानो पर भी प्रभाव पडा है। जहा तक पजाब का सवाल है, अकाली आदोलन देहात मे रहने वाली सिख जनता तक पहुच गया है। दश भर म मुसलमानो का एक बडा वग नाराज हो गया है और कुढ रहा है स्थिति काफी खतरनाक है भारत सरकार, अभी तक जैसी अव्यवस्था फैली है उससे भी गभीर अव्यवस्था का सामना करने के लिए तैयार बैठी है। सरकार इस बात को बिलकुल ही छिपाना नही चाहती कि दश की मौजूदा हालत से वह काफी चिंतित है। (9 फरवरी 1922 को भारतीय मामलो के मत्री के नाम वायसराय

का सदेश 'टेलीग्राफिक करसपाडेंस रिगार्डिग दि सिच्यूएशन इन इडिया' सी एम डी 1586 1922)

12 फरवरी को जब बारदोली के फैसले से समूचा आदोलन रोक दिया गया, उससे तीन दिन पहले भारत सरकार ने देश की स्थिति की यह तस्वीर खीची थी।[2]

गुटूर के उदाहरण से यह काफी स्पष्ट हो जाता है कि जनता कितने अनुशासित ढग से आदोलन चला रही थी और निर्णायक लडाई के लिए किस सीमा तक तैयार थी। गुटूर मे गाधी के आदेशो के बावजूद एक गलतफहमी के कारण कर न देने का आदोलन शुरू कर दिया गया था। जब तक गाधी के पास से आदोलन रोकने का आदेश नही आया तब तक गुटूर म सरकार पाच प्रतिशत भी कर वसूल नही पाई थी। काग्रेस के केंद्र से आदेश मिलने की देर थी और देश भर मे यह प्रक्रिया शुरू हो जाती तथा जनता भूमि कर और लगान देने से इकार कर देती। लेकिन इस प्रक्रिया के फलस्वरूप केवल साम्राज्यवाद का ही नही बल्कि जमीदारी प्रथा का भी नाश हो जाता।

बारदोली के फैसले के पीछे इन्ही बातो पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया गया था। इसका सबूत फैसले के मूल पाठ से ही मिल जाता है। 12 फरवरी को काय समिति द्वारा बार-दोली म जो प्रस्ताव पारित किया गया था वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसे यहां पूरा का पूरा उद्धृत कर देना उचित होगा। इस फसल का सावधानी के साथ अध्ययन करने से भारत के राष्ट्रीय आदोलन की शक्तियो और अतर्विरोधो को समझने म काफी मदद मिलेगी। बारदोली के प्रस्ताव की प्रमुख धाराए निम्न है

परिच्छेद 1 कायसमिति चौरीचौरा म उपद्रवी भीड द्वारा किए गए अमानवीय आचरण की निंदा करती है जिसम कान्स्टेबलो की निमम ढग से हत्या की गई और बिना सोचे समझे पुलिस थाने को जला दिया गया।

परिच्छेद 2 जब भी सविनय अवज्ञा आदोलन की शुरुआत की जाती है हिंसात्मक उपद्रव होन लगत हैं जिससे पता चलता है कि देश अभी पर्याप्त रूप से अहिसक नही हुआ है। इसलिए काग्रेस कायसमिति फैसला करती है कि व्यापक सविनय अवज्ञा आदोलन फिलहाल स्थगित कर दिया जाए और वह स्थानीय काग्रेस समितियो को निर्देश देती है कि वे किसानो को लगान तथा दूसरे कर अदा करने [illegible] और हर कायवाहिया बद कर दें।

परिच्छेद 3 सविनय अवज्ञा का [illegible] समय जब तक देश का वातावरण इतना [illegible] कि [illegible]

गारंटी हो जाए कि अब गोरखपुर जैसी बर्बरता या बंबई और मद्रास में क्रमश 17 नवंबर और 13 जनवरी को हुई गुंडागर्दी की घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं होगी।

परिच्छेद 5 सरकारी आदेशों का उल्लंघन करके जुलूस निकालना और सभाएं करना बंद कर देना चाहिए।

परिच्छेद 6 कार्यसमिति कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और संगठनों को सलाह देती है कि वे रयत (किसानों) को यह सूचित कर दें कि जमींदारों को लगान न देना कांग्रेस के प्रस्तावों और देश के हितों के खिलाफ है।

परिच्छेद 7 कार्यसमिति जमींदारों को इस बात का आश्वासन देती है कि कांग्रेस के आंदोलन का उद्देश्य किसी भी रूप में उनके कानूनी अधिकारों पर चोट पहुंचाना नहीं है और जहां किसानों को किसी तरह की शिकायत है वहां कार्यसमिति यही चाहेगी कि आपसी सलाह मशविरे से और समझौता वार्ता से मामले को निपटा लिया जाए।

प्रस्ताव से पता चलता है कि उसे पेश करने वालों के मन में विशुद्ध रूप से अहिंसा के सिद्धांत की प्रेरणा नहीं काम कर रही थी। यह ध्यान देने की बात है कि प्रस्ताव को कम से कम तीन परिच्छेदों में (परिच्छेद 2, 6 और 7) खास तौर पर बहुत जोर देकर और एक बहुत ही आवश्यक निर्देश के रूप में किसानों को यह सलाह दी गई है कि उन्हें जमींदारों और सरकार का लगान अदा कर देना चाहिए। यहां हिंसा या अहिंसा का कोई सवाल नहीं पैदा होता। यहां प्रश्न केवल वर्गहितों का है, शोषकों और शोषितों का है। कोई यह नहीं कह सकता कि लगान न देना 'हिंसक' कार्य है। इसके विपरीत यह विरोध प्रकट करने का सबसे शांतिपूर्ण (और सबसे क्रांतिकारी भी) तरीका है। फिर क्यों उस प्रस्ताव में जो हिंसा की भर्त्सना करने के लिए तैयार किया गया था, लगान न देने और जमींदारों के 'कानूनी अधिकारों' के सवाल पर इतना जोर दिया गया? इस सवाल का सिर्फ एक ही जवाब हो सकता है। दरअसल 'अहिंसा' की शब्दावली महज एक दिखावा है जिसकी आड़ लेकर जाने अनजाने वर्गहितों की रक्षा की जाती है और वर्ग शोषण को बनाए रखा जाता है।

गांधी के साथ जुड़े कांग्रेस के प्रमुख नेताओं ने आंदोलन को इसलिए रोक दिया था क्योंकि वे जनता में फैल रही व्यापक जागृति से डर गए थे और उनके डर की वजह यह थी क्योंकि उससे उन संपत्तिवान वर्गों के हितों के लिए खतरा पैदा हो रहा था जिनके साथ कांग्रेस के इन वरिष्ठ नेताओं का घनिष्ठ संबंध था। 1922 में राष्ट्रीय आंदोलन के टूटने का कारण 'हिंसा' या 'अहिंसा' का प्रश्न नहीं था बल्कि जनआंदोलनों के विरुद्ध वर्गहितों

का प्रश्न था। यही वह चट्टान थी जिसपर आंदोलन टुकड़े टुकड़े हुआ था। 'अहिंसा' का वास्तविक अर्थ भी यही था।

3 संघर्ष की तीसरी बड़ी लहर, 1930-34

बारदोली में राष्ट्रीय आंदोलन को जो आघात लगा उसके बाद पांच वर्षों तक आंदोलन एकदम पस्त पड़ा रहा। कांग्रेस में भी काफी पस्ती आ गई। 1924 में गांधी ने घोषणा की कि कांग्रेस एक करोड़ लोगों को सदस्य बनाने का लक्ष्य लेकर चली थी किंतु वह दो लाख से ज्यादा सदस्य नहीं बना सकी है हम राजनीतिक लोग सरकार का विरोध करने के अलावा और किसी मामले में जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते।' उस वर्ष गांधी ने 'चरखा कातने की शर्त' विधान में रखवा दी थी (इसके अंतर्गत कांग्रेस के चुने हुए संगठनों के सदस्यों को प्रति माह दो हजार गज सूत स्वयं कात कर देना था) लेकिन इसके फलस्वरूप 1925 की सर्दियों तक सदस्यों की संख्या दस हजार ही हो सकी थी। 1925 में इस शर्त को समाप्त कर दिया गया और सूत कातकर देना सदस्यों की इच्छा पर छोड़ दिया गया। 1925 में बाव क्रानिकल ने लिखा कि देश में 'गतिरोध और जड़ता की स्थिति फैली हुई है।' उसी वर्ष लाला लाजपत राय ने 'अराजकता और उलझाव' की स्थिति की बात कही। उन्होंने कहा कि 'देश की राजनीतिक स्थिति में तनिक भी आशा और उत्साह के संकेत नहीं है। जनता में भयंकर रूप से निराशा फैली हुई है। सिद्धांतो, व्यवहार राजनीतिक पार्टियों और समूची राजनीति हर चीज में एक बिखराव और विघटन की स्थिति व्याप्त है।' राष्ट्रीय आंदोलन की इस निराशाजनक स्थिति में साप्रदायिक अव्यवस्था के लक्षण देश भर में फैल सके। मुस्लिम लीग ने फिर अपने को कांग्रेस से अलग कर लिया। हिंदू महासभा मुस्लिम लीग के जवाब में अत्यंत संकीर्ण प्रतिक्रियावादी प्रचार करने लगी।

कांग्रेस के नेतृत्व के एक वर्ग ने जिसका प्रतिनिधित्व चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू कर रहे थे बारदोली फैसले के बाद एक निर्णायक मोड़ लेने की कोशिश की क्योंकि वे गांधी की नीतियों को अव्यावहारिक समझते थे। उन्होंने कांग्रेस के अंदर रहते हुए ही चुनाव लड़ने और संसदीय स्तर पर नई विधानसभाओं में संघर्ष चलाने के लिए एक नई पार्टी का गठन किया। इस पार्टी का नाम स्वराज पार्टी रखा गया। जन आंदोलनों की कमजोरी को देखते हुए चुनावों का और विधानसभाओं का बहिष्कार समाप्त करने का फैसला निस्संदेह एक प्रगतिशील कदम था। उन कांग्रेस के नपुंसक और दकियानूस नेताओं ने इसका विरोध किया जो कांग्रेस के अंदर 'अपरिवर्तनवादी' माने जाते थे। और जो गांधी के चरखा, शराबबंदी, अछूतोद्धार तथा सामाजिक सुधारों के इस तरह के अन्य 'रचनात्मक कार्यक्रम' को ही मुक्ति का एकमात्र रास्ता समझते थे। लेकिन इन लोगों में कांग्रेस के उस वर्ग को रोकने की ताकत नहीं थी जो अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकारी नीति अपनाना चाहता था। 1925 तक कांग्रेस ने स्वराज पार्टी के सामने पूरी तरह और बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। कांग्रेस में स्वराज पार्टी का बहुमत हो गया और इसके

का स्थान प्राप्त किया। निदल या लिबरल (पुरान नरमदली नेता) सदस्यो के साथ मिलकर यह किसी तरह अपना बहुमत भी बना सकती थी। चित्तरजन दास न असेंबली मे प्रवेश करन के समय ही यह घोषणा कर दी थी कि 'मेरी पार्टी यहा सहयोग करने के लिए आई है। यदि सरकार उनका सहयोग स्वीकार करेगी तो वह देखेगी कि स्वराज पार्टी के सदस्य उसके अपन आदमी ह। 1925 तक चित्तरजन दास यह कहने लगे थे कि (फरीदपुर के अपने बहुचर्चित वक्तव्य स) उन्ह सरकार म हृदय परिवतन' के सकेत दिखे ह (यह वक्तव्य कितना निरथक था इसे भारतीय मामला के तत्कालीन मत्री लाड बकिनहेड के रुख देखा जा सकता है जिन्होन उन्ही दिनो एक सावजनिक भाषण मे भारतीय राष्ट्रीयता के काल्पनिक प्रेत' की खिल्ली उडाई थी)। चित्तरजन दास ने अपने इस वक्तव्य के साथ ही कुछ शर्तों के साथ सरकार से सहयोग करन का विधिवत प्रस्ताव भी रखा था। इनमे एक शत यह भी थी कि सरकार और स्वराज पार्टी दोना मिलकर क्रातिकारी आदोलन के खिलाफ सघष चलाएग। लिबरल पार्टी के प्रवक्ताओ न इसके बाद कहा कि उनके और स्वराज पार्टी के बीच अब कोइ महत्वपूण मतभेद नही रह गया है। 1926 के वसत मे साबरमती समझौते के रूप म पदा को ग्रहण करन के बारे मे फैसला होन जा रहा था लेकिन साधारण सदस्यो के विरोध के कारण यह नही हो सका। 1926 के पतझड मे नए चुनाव हुए जिनमे मद्रास के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानो पर स्वराज पार्टी को जबरदस्त धक्का लगा।

लेकिन साम्राज्यवाद के साथ मैत्रीपूण सहयोग के जो सपने पूजीपतिवग न देखे थे, व टूटन ही थे। जैसे ही यह बात साफ हुई कि राष्ट्रीय आदोलन की शक्तिया कमजोर पड गई हैं और जनआदोलन से कट जाने के कारण स्वराज पार्टी के लोगो के सामने समझौते के लिए मिन्नतें करन के अलावा और कोई विकल्प नही रह गया है साम्राज्यवादियो ने भी अपना रुख बदल दिया और पिछले कुछ वर्षों मे उन्होने भारत के पूजीपतिवग को जो आशिक आर्थिक रियायतें दी थी उन्ह वापस लेना शुरू कर दिया। उसने अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए 1927 के मुद्रा कानून (करेंसी बिल) के जरिए एक बडा आर्थिक हमला शुरू किया। इस कानून से रुपये की कीमत एक शिलिंग 6 पैस निश्चित कर दी गई जिसका देश भर मे विरोध हुआ लेकिन इस विरोध का काई नतीजा नही निकला। इसके साथ ही 1927 के अत मे नया इस्पात सरक्षण कानून (स्टील प्रोटेक्शन बिल) बनाकर 1924 के कानून से भारत के इस्पात उद्योग को जो सरक्षण मिला था, वह समाप्त कर दिया गया और इग्लैंड आन वाले इस्पात पर चुगी कम कर दी गई। भारत के भावी सविधान का भाग्य निर्धारित करने के लिए 1927 के अत म साइमन कमीशन के गठन की घोषणा की गई। इसमे एक भी भारतीय प्रतिनिधि नही शामिल किया गया।

इस प्रकार भारत का पूजीपतिवग न चाहत हुए भी एक बार फिर इस नतीजे पर पहुचा कि साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करने की आशाए पूरी नही हो सकती और यदि उसको सफलतापूवक सौदेबाजी करन क लायक अपने को बनाना है तो एक बार फिर जनता की

शक्तियो को काम म लाना होगा और उनका समथन प्राप्त करना होगा। लेकिन दस वष पहले के मुकाबले मे आज की स्थिति ज्यादा कठिन और पेचीदा हो गई थी। इसकी वजह यह थी कि इन दस वर्षों म जनता की शक्तिया ने एक नए जीवन की दिशा म बढना शुरू कर दिया था और वे स्वतत्र रूप से तथा अपने स्पष्ट राजनीतिक उद्देश्यो के साथ देश के रगमच पर उभरने लगी थी। अब उनका सघष सक्रिय रूप से साम्राज्यवादियो के खिलाफ ही नही बल्कि भारतीय शोषको के खिलाफ भी तज होन लगा था। इस प्रकार *अब सघष का त्रिकोणात्मक स्वरूप पहल से ज्यादा स्पष्ट हो गया था। अब साम्राज्यवाद* और भारतीय जनता का अधिक गहरा सघष और भारतीय बुजुर्आवग की ढुलमुल भूमिका अधिक स्पष्ट हो गई थी। इसलिए इस बार सघर्ष की नई लहर एक नए रूप म सामन आई। इसके सकेत पहली बार 1927 के उत्तराध म दिखाई दिए थे और 1930-34 तक पूरी शक्ति के साथ उभर गए थे। यह लहर एक तरफ तो पहले से ज्यादा व्यापक जबरदस्त और टिकाऊ थी दूसरी तरफ इसका विकास रुक-रुककर और लक्ष्य के मामल म काफी ढुलमुलपन दिखाते हुए और टेढे मेढे रास्तो पर चलत हुए हुआ। बीच बीच मे कई बार सुलह समझौते की बातें होती थी और बिना किसी समझौते के अचानक सधि हो जाती थी। यह सिलसिला तब तक चला जब तक आदोलन अतिम रूप से ध्वस्त नही हो गया।

बीसवी सदी के मध्यवर्ती वर्षों म जो नया तत्व सबसे पहले प्रकट हुआ और सघष की इस नई लहर को जिस नए तत्व से प्रेरणा मिली थी वह था मजदूरवग का एक स्वतत्र शक्ति के रूप मे सामन आना। सघष की नई लहर यद्यपि मजदूरवग के नतत्व म नही उठी थी मगर प्रेरणा उसी से मिली थी। इस बीच औद्योगिक मजदूरवग न अपन सघष अत्यत वीरतापूर्वक और शक्तिशाली ढग से चलाए थे और अपने बीच से वह नतृत्व को भी जन्म देन लगा था। इसके साथ ही मजदूरवग की नई विचारधारा अर्थात समाजवाद का पहली बार एक राजनीतिक कारक के रूप म भारत मे प्रचार होन लगा था। इस नई विचारधारा का नौजवानो और भारतीय राष्ट्रवाद के वामपथी वर्गों के बीच काफी असर हुआ था और उससे उन्हे नया जीवन और शक्ति तथा व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ था। 1924 के कानपुर षडयत्र के मामले से यह बात साफ हो गई थी कि साम्राज्यवाद भी काफी सतक होकर मजदूरवग की क्रातिकारी राजनीति के पहले सकता का ही कुचल दना चाहता है। 1926 और 1927 क दौरान मजदूर किसान पार्टी (वकस पीजेंटस पार्टी) का गठन हुआ। 1928 के ट्रेड यूनियन आदोलनो और हडतालो के विकास म उसकी महत्वपूण भूमिका रही। 1929 म मजदूर हडतालो का जबरदस्त सिलसिला चला जिसम 31 647 000 काम के दिनो का नुकसान हुआ। पिछले पाच वर्षो म हुई हडतालो म कुल मिलाकर भी इतने दिन काम का नुकसान नही हुआ था। बबई के कपडा मजदूरो की नई सघषशील यूनियन गिरनी कामगर यूनियन या लाल झडा यूनियन (रड फ्लैग यूनियन) के सदस्यो की सख्या सरकारी आकडो के अनुसार साल भर के अदर 65 000 तक पहुच गई। इस भर म मजदूर यूनियनो के सदस्यो की सख्या म 70 प्रतिशत की वृद्धि हो गई। इसी वष साइमन कमिशन के विरोध म जो प्रदशन हुए उनम मजदूरवग की हिस्सेदारी

राजनीतिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। मजदूर सघ की जुझारू चेतना का तेजी से विकास हुआ और 1929 में ट्रेड यूनियन काग्रेस के अदर वामपथी गुट की जीत हुई। यही व नई शक्तिया थी जो इस बार भारतीय जनता को सघप के माग पर बढन के लिए प्रेरित कर रही थी।

घटनाक्रमो के इस विकास का प्रतिबिंब काग्रेस म भी दिखाई पडने लगा था और काग्रेस तथा राष्ट्रीय आदोलन के अदर एक नए वामपथी गुट का ज म हो गया था। 1927 के अत म जवाहरलाल नेहरू डेढ वप से भी अधिक समय तक यूरोप का दौरा करने के बाद भारत लौटे। नेहरू ने यूरोप म समाजवादी लोगो और समाजवादी विचार धारा के साथ सपक किया था। 1927 के अत मे मद्रास काग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमे खास तौर से युवको क बीच वामपथी प्रवृत्तियो की झलक मिली। मद्रास अधिवेशन म एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसम सवसम्मति से यह घोषित किया गया कि राष्ट्रीय आदोलन का लक्ष्य पूण स्वाधीनता की प्राप्ति है। (यह प्रस्ताव गाधी की अनुपस्थिति मे पारित किया गया। गाधी ने बाद मे इस प्रस्ताव की यह कहकर निदा की कि यह बहुत जल्द बाजी मे और बिना सोचे समझे किया गया है')। इससे पहले इस तरह क किसी भी प्रस्ताव का काग्रेसी नेता विरोध करते आए थे। मद्रास अधिवशन म पारित प्रस्ताव म साइमन कमिशन के बहिष्कार का निश्चय किया गया और यह भी फैसला लिया गया कि वैकल्पिक सावैधानिक योजना तैयार करने के लिए सभी दलो का एक सम्मेलन हो और उसम काग्रेस भाग ले। काग्रेस न साम्राज्यवाद विरोधी अतर्राष्ट्रीय लीग (इटरनेशनल लीग अगेंस्ट इपीरियलिज्म) से अपने को सबद्ध किया। नौजवानो और काग्रेस के अदर बढती हुई वामपथी प्रवृत्तियो के मुख्य नेता जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचद्र बोस को काग्रेस का महामत्री नियुक्त किया गया।

1927 के काग्रेस अधिवशन म वामपथ की ऊपरी तौर पर जो विजय हुई वह एक सतही विजय थी और इस विजय का कारण यह था कि उसका विरोध किसी ने नही किया था। लेकिन 1928 म एक के बाद एक घटना ने साइमन कमिशन के खिलाफ प्रदशनो की सफलता न, हडतालो की वृद्धि न और नवगठित स्वतन्त्रता लीग तथा छात्र युवक सगठनो के विकास न काग्रेस के पुरान तत्व के सामन यह स्पष्ट कर दिया कि वामपथी शक्तिया काफी तजी से बढ रही है और जल्दी ही व काग्रेस का सफाया कर सकती है। सभी दलो के सम्मलन मे पुराने नेताओ न काग्रेस क बाहर क नरमदली या प्रतिक्रियावादी नेताओ के साथ मिल कर एक वैधानिक योजना बनाई (जो नेहरू रिपोट क नाम स प्रसिद्ध है क्योकि योजना बनान वाली समिति क अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू थ)। इस योजना म यह माग की गई थी कि ब्रिटिश साम्राज्य के अदर रहत हुए उत्तरदायित्वपूण सरकार का गठन किया जाए और इस प्रकार स्वतत्रता की माग को अलग छोड दिया जाए। लकिन जनता की बढती हुई भावनाओ को देखते हुए इस बात म सदह था कि इस योजना को काग्रेस स्वीकार करगी।

सरकार को दो वर्ष का समय दिया था लेकिन अधिवेशन ने सिर्फ एक वर्ष की मोहलत देना ही मंजूर किया)। यह प्रस्ताव भी अपेक्षाकृत कम वोटों से पारित हुआ। प्रस्ताव के पक्ष में 1350 वोट पड़े जबकि सुभाषचंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू के उस वामपंथी संशोधन के पक्ष में 903 वोट पड़े जिसमें नेहरू रिपोर्ट के विपरीत पूर्ण स्वाधीनता को तात्कालिक लक्ष्य घोषित किया गया था। 1928 की घटनाओं ने यह बात साफ कर दी थी कि जनता का असंतोष अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है फिर भी आंदोलन छेड़ने में 12 महीनों की देर की गई। साम्राज्यवाद को 12 महीनें का नोटिस दे दिया गया ताकि वह अपनी तैयारी पूरी कर ले। सुभाषचंद्र बोस ने लिखा है कि कलकत्ता अधिवेशन के समझौतावादी प्रस्ताव का नतीजा यह हुआ कि बेशकीमती समय बरबाद किया गया।' ('दि इंडियन स्ट्रगल', पृष्ठ 181) इस बीच खतरे का एक संकेत भी मिल गया जब कलकत्ता के 20,000 मजदूरों ने (कांग्रेस का इतिहास में यह संख्या 50 000 बताई गई है) अधिवेशन के दौरान राष्ट्रीय स्वतंत्रता और स्वतंत्र समाजवादी भारतीय गणराज्य के नारों के साथ प्रदर्शन किया। मजदूर दो घंटे तक अधिवेशन के पंडाल पर कब्जा किए रहे। सुधारवादी नेताओं को उन्हें रास्ता देना पड़ा और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अटूट संघर्ष छेड़ने की उनकी मांग सुननी पड़ी।

12 महीनों की देर ने साम्राज्यवाद को भरपूर समय दे दिया और उसने यह अवसर हाथ से नहीं जाने दिया। मार्च 1929 में, उभरते हुए मजदूर आंदोलन के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मेरठ जैसे दूरवर्ती स्थान पर मुकदमा चलाया गया (जहां बिना जूरी के उन पर अदालती कार्यवाही की जा सके)। मुकदमा चार वर्षों तक चला और इन नेताओं को इस अवधि के दौरान जेल में रखा गया। इन वर्षों के दौरान एक के बाद एक संघर्ष की लहरें उठती रहीं लेकिन इन राजनीतिक बंदियों को सजाएं भी नहीं सुनाई गईं। मजदूर संगठनों और मजदूर किसान पार्टी के प्रमुख नेताओं के अलावा गिरफ्तार लोगों में तीन नेता अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी या राष्ट्रीय कांग्रेस की निर्वाचित कार्यकारिणी के सदस्य थे। इस प्रकार कांग्रेस के नेतृत्व में संघर्ष शुरू होने से पहले ही मजदूरवर्ग का सिर काट दिया गया और वामपंथ के अत्यंत सुलझे तथा संकल्पशील नेताओं को जिनकी सही अर्थों में जनता के बीच पैठ थी, अलग कर दिया गया। इसके साथ वायसराय ने एक सरकारी आ[illegible] सुरक्षा अ[illegible] सेफ्टी आर्डिनेंस) जारी कर दिया। इस[illegible] जातिक[illegible] कुचलना था।

कांग्रेस के अत्यंत महत्वपूर्ण अ[illegible] अवसर [illegible] पहल
गांधी का कांग्रेस का [illegible] मान [illegible] के तत्का
लीन संबंध [illegible] तथा
इंडेपेंडेंस [illegible] कर
दिया। ज[illegible]

चुके थे। अपने चयन के पक्ष मे तक पेश करते हुए गाधी ने जवाहरलाल के गुणो का बयान किया और कहा

> देशप्रेम के मामले मे वह किसी से पीछे नही हैं, वह वीर और भावप्रवण है और आज के समय मे इन गुणो की अत्यत आवश्यकता है। लेकिन सघप मे वीर और भावप्रवण होने के बावजूद उनमे एक राजनेता के विवेक का भी गुण है। उनके अदर अनुशासन की तीव्र भावना है और अपने कार्यो के जरिए उन्होने साबित कर दिया है कि उनके अदर उन निणयो को भी मानने की क्षमता है जिनसे उनकी सहमति नही है। स्वभाव से वह विनम्र है इतने व्यावहारिक हैं कि अकारण उग्रपथ का सहारा नही लेते। उनके हाथ मे देश पूरी तरह सुरक्षित है।

नरमदली नेताओ ने साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने की एक बार अतिम कोशिश की। 31 अक्तूबर 1929 को वायसराय ने एक बहुत ही अस्पष्ट वक्तव्य दिया जिसमे आगे चलकर कभी 'डोमीनियन स्टेट के लक्ष्य तक' पहुचने की बात कही गई थी। (यह एक ऐसा बयान था जिसके बारे म अगले ही दिन 'दि टाइम्स' समाचारपत्र ने लिखा कि 'इस वक्तव्य म न तो कोई वायदा था और न इससे नीति मे किसी परिवतन का सकेत मिलता है।') भारतीय नेताओ ने इस वक्तव्य के बाद ही एक सयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसे 'दिल्ली का घोषणापत्र' नाम से जाना जाता है। इस वक्तव्य मे सरकार के साथ जी जान से सहयोग करने का प्रस्ताव किया। 'हम इस वक्तव्य से प्रकट होने वाली सरकार की हार्दिक भावनाओ की प्रशसा करते हैं हम आशा करते हैं कि भारत की आवश्यकताओ के अनुरूप तैयार किए जाने वाले डोमीनियन सविधान के लिए सम्राट के प्रयासो के साथ भरपूर सहयोग कर सकेंगे।' इस वक्तव्य पर गाधी श्रीमती बेसेंट, मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य नेताओ ने हस्ताक्षर किए थे। जवाहरलाल नेहरू ने इस वक्तव्य से असहमति प्रकट की और बाद मे उन्होने इसे 'गलत और खतरनाक' बताया। उन्होने कहा कि उनसे यू ही 'हस्ताक्षर करा लिया गया था' और उनसे कहा गया कि चूकि वह काग्रेस के अध्यक्ष चुने गए है इसलिए यदि उन्होंने हस्ताक्षर नही किया तो इससे काग्रेस की एकता भग हो जाएगी। बाद मे गाधी ने उन्हे एक 'सतोष देने लायक पत्र' लिखा जिससे उनकी शकाए दूर हो गइ। दिल्ली के घोषणापत्र से ब्रिटिश साम्राज्यवादियो को काफी खुशी हुई क्योकि उन्हें लगा कि भारतीय नेता कमजोर पड गए हैं ('कल रात के वक्तव्य का अथ यह है कि जिस कायक्रम के लिए लाहौर मे काग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, उसे अब समाप्त कर दिया गया है।'—दि टाइम्स', 4 नवबर 1929)। इस वक्तव्य से कोई लाभ नही हुआ, इससे काग्रेस के सदस्यो मे और भटकाव ही आया। काग्रेस अधिवेशन से कुछ दिन पहले काग्रेसी नेताओ की वायसराय से हुई भेंट का कोई नतीजा नही निकला।

1929 के अंतिम दिनों में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें आंदोलन छेड़ने का फैसला किया गया। नेहरू रिपोर्ट में डोमीनियन कायम करने के घोषित लक्ष्य को पुराना घोषित कर दिया गया और एलान किया गया कि कांग्रेस का लक्ष्य 'पूर्ण स्वराज' रहेगा। अधिवेशन ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को यह अधिकार दिया कि वह जब भी उचित समझे, सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ दे जिसमें कर न देना भी शामिल हो।' 31 दिसंबर 1929 की आधी रात को, 1930 का वर्ष शुरू होते ही, भारतीय स्वाधीनता का तिरंगा झंडा फहराया गया (इस झंडे में पहले लाल, सफेद और हरा रंग था—बाद में लाल रंग के स्थान पर केसरिया रंग चुना गया)। 26 जनवरी 1930 को देश भर में पहला स्वाधीनता दिवस मनाया गया। जगह जगह विशाल जुलूस निकले और प्रदर्शन किए गए जिनमें पूर्ण स्वाधीनता के लिए संघर्ष का संकल्प किया गया और ऐलान किया गया कि ब्रिटिश शासन को 'अब और स्वीकार करना मनुष्य और ईश्वर दोनों के प्रति पाप करना है।' इसके साथ ही यह विश्वास प्रकट किया गया कि, 'यदि हमने स्वेच्छापूर्वक सरकार के साथ सहयोग करना और कर देना बंद कर दिया और उकसाए जाने पर भी हिंसा का सहारा नहीं लिया तो यह अमानवीय शासन निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगा।'

जो संघर्ष अब शुरू हो रहा था उसका उद्देश्य क्या था ? इस अभियान की योजना क्या थी ? वे कौन सी न्यूनतम शर्तें थीं जिन पर सरकार के साथ समझौता करने का औचित्य था ? वह कौन सा तरीका था जिससे ब्रिटिश सरकार पर इतना जबरदस्त दबाव डाला जाता कि यह 'अमानवीय शासन' समाप्त हो जाता ? शुरू में ही इन तमाम सवालों का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं था। ऊपरी तौर पर इस आंदोलन का घोषित लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति लगता था और कांग्रेस के सदस्यों तथा कांग्रेस के आवाहन पर इस आंदोलन में शामिल जनता का भी संभवतः यही ख्याल था। बेशक, मोतीलाल नेहरू ने भी अपनी मृत्यु के समय जो शब्द कहे थे (मोतीलाल नेहरू की मृत्यु गांधी इर्विन समझौते की पूर्व संध्या पर हुई) उनमें भी आंदोलन के बारे में इसी धारणा का पता चलता है 'यदि मुझे मरना ही है तो मेरी मौत स्वतंत्र भारत की गोद में हो। मेरी चिरनिद्रा की शुरुआत एक गुलाम देश में नहीं बल्कि आजाद देश में हो।'

फिर भी गांधी की धारणा यह नहीं थी। लाहौर अधिवेशन के तुरंत बाद 9 जनवरी के 'यंग इंडिया' नामक अखबार में उनका एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने कहा था कि 'स्वतंत्रता के प्रस्ताव से किसी को डरने की जरूरत नहीं है' (मार्च में वायसराय को लिखे पत्र में भी उन्होंने यही बात दुहराई थी)। 30 जनवरी को अपने अखबार यंग इंडिया में उन्होंने ग्यारह सूत्री प्रस्ताव रखा जिसमें विभिन्न सुधारों का जिक्र करते हुए कहा गया था कि यदि इन सुधारों को मान लिया गया तो सविनय अवज्ञा आंदोलन नहीं होगा (इन सुधारों में मांग की गई थी कि रुपये की कीमत 1 शिलिंग 4 पेंस हो, देश में पूर्ण शराबबंदी हो, मालगुजारी और सैनिक खर्च में कमी की जाए, विदेशी कपड़ों पर

चुगी लगाई जाए आदि)। सघर्ष की पूर्ववेला में इन ग्यारह शर्तों को प्रकाशित करके साम्राज्यवादियो के सामने यह स्पष्ट कर दिया गया था कि स्वाधीनता की माग केवल मोलभाव करने के लिए है, जिस तरह खरीद फरोख्त की बातचीत शुरू होने पर काफी मोलभाव की गुजाइश रखकर दाम बताया जाता है पर सौदा तय हो जाने पर दाम मे कमी की जा सकती है उसी प्रकार यहा भी देश की माग को खूब बढा चढाकर बताया गया है और यदि कोई समझौता होता है तो मागें कम की जा सकती हैं।

आदोलन की रणनीति भी उतनी ही अस्पष्ट थी। फरवरी 1930 मे साबरमती मे काग्रेस कमेटी की बैठक हुई जिसमे एक बार फिर आदोलन का नेतृत्व करने और उसको चलाने के सारे अधिकार 'महात्मा गाधी तथा उनके सहयोगियो के हाथो मे (न कि काग्रेस के किसी चुने गए सगठन के हाथो मे) सौंप दिए गए। ऐसा करने के पीछे यह दलील पेश की गई कि 'जिन लोगो का अहिंसा के सिद्धात मे एक धार्मिक विश्वास है, उन्ही को आदोलन की शुरुआत करनी चाहिए और उनके ही द्वारा आदोलन का सचालन होना चाहिए।' लेकिन काग्रेस के चुने हुए नेताओं द्वारा बिना किसी निर्देश के समूचा आदोलन उनके हाथो मे सौंप देने से सघर्ष कौन सा रूप लेने वाला था? लाहौर अधिवेशन की चर्चा करते हुए सुभाष बोस ने लिखा

> वामपथी खेमे की ओर से मैंने यह प्रस्ताव रखा कि काग्रेस का लक्ष्य देश मे एक समानातर सरकार की स्थापना करना होना चाहिए और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे मजदूरो, किसानो और युवको का सगठन बनाना चाहिए। यह प्रस्ताव पारित नही हुआ जिसका नतीजा यह हुआ कि काग्रेस ने अपने लक्ष्य के रूप मे पूर्ण स्वाधीनता का ध्येय तो मान लिया लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई योजना नही बनाई गई और न तो आगामी वर्ष के लिए कोई कार्यक्रम ही तैयार किया गया। अब और किस हास्यास्पद स्थिति की कल्पना की जा सकती है। (सुभाषचद्र बोस 'दि इडियन स्ट्रगल', पृष्ठ 200)

जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है

> भविष्य के बारे मे हमारे सामने अब भी कुछ स्पष्ट नही था। काग्रेस अधिवेशन मे प्रदर्शित उत्साह के बावजूद कोई यह नही जानता था कि सघर्ष के कार्यक्रम मे देश के लोग कहा तक साथ चल सकेंगे। हम जिस स्थल तक पहुच गए थे वहा से अब लौट नही सकते थे पर आगे का रास्ता हमारे लिए एकदम अज्ञात था। (जवाहरलाल नेहरू, 'आत्मकथा', पृष्ठ 202)

जो लोग आदोलन की योजना की जानकारी चाहते थे उनको फटकार बताते हुए काग्रेस

> साबरमती में जो लोग इकट्ठा हुए थे उन्होंने गांधी जी के योजना के बारे में उनसे जानकारी चाही। उनका यह पूछना ठीक ही था हालांकि विश्वयुद्ध शुरू होने से पहले किसी ने लार्ड किचनर या मार्शल फौक अथवा वान हिंडेनबर्ग से यह कभी नहीं पूछा कि उनकी योजना क्या है। उनके पास योजनाएं थीं पर उन्होंने कभी उन योजनाओं के बारे में बताया नहीं। सत्याग्रह के साथ ऐसी बात नहीं थी। हमारी योजनाएं किसी भी रूप में गोपनीय नहीं थीं लेकिन वे बहुत साफ भी नहीं थीं। हम जानते थे कि वे अपने आप अपना रास्ता उसी तरह तैयार करती जाएंगी जिस तरह कोहरे से भरी सुबह में एक तेज चलती मोटर को आगे का रास्ता धीरे धीरे एक एक गज करके अपने आप दिखाई पड़ता जाता है। सत्याग्रही अपने मस्तक पर मशाल बांध कर चलता है। उसकी रोशनी में उसे अगले कदम के लिए रास्ता मिलता जाता है। (हिस्ट्री आफ दि नेशनल कांग्रेस, पृष्ठ 628)

इस प्रकार सारी बातें इस पर निर्भर थीं कि आंदोलन के बारे में गांधी की धारणा क्या है? देश का भाग्य उनके हाथों में सौंप दिया गया था।

यह स्पष्ट है कि आंदोलन के लक्ष्य के विषय में दो विरोधी धारणाएं संभव हैं। या तो इसका उद्देश्य यह होगा कि ब्रिटिश शासन की समाप्ति और पूर्ण स्वाधीनता की स्थापना के लिए भारतीय जनता की सभी शक्तियां एक निर्णायक संघर्ष में कूद पड़ें ('कांग्रेस का इतिहास' में इस संघर्ष से संबंधित अध्याय का शीर्षक 'अंतिम दम तक संघर्ष' रखा गया है) या सरकार पर जनता का थोड़ा और सीमित दबाव डाला जाए ताकि उससे कुछ अहम शर्तें और रियायतें प्राप्त कर ली जाएं। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में निश्चय ही पहली तरह के आंदोलन की बात सोची गई थी और भारत की जनता भी यही आशा कर रही थी। लेकिन यदि यही उद्देश्य था तो इतने विशाल कार्य का सामना करने के लिए और इतने शक्तिशाली दुश्मन को मात देने के लिए यह जरूरी था कि दुश्मन द्वारा जवाबी हमला शुरू किए जाने से पहले ही भरपूर ताकत बटोरकर उस पर धावा बोल दिया जाए। कांग्रेस और मजदूर आन्दोलन की पूरी शक्ति के साथ देश में आम हड़ताल का नारा दिया जाता, कर और लगान न देने का अभियान शुरू करने के लिए समूचे किसानवर्ग का आवाहन, तथा देश भर में [illegible] और [illegible] आदि से ऐसे समानांतर सरकार कायम किया जाता आदि जरूरी था। उन दिनों देश में जैसा वातावरण था और जनता में जैसी भावनाएं थीं उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता था कि यदि इस तरह का आंदोलन आरम्भ करते और मजदूरों के साथ [illegible] जाता तो इस बात की पर्याप्त संभावना थी कि दुश्मन [illegible] सरकार [illegible] जाता [illegible] बिल्कुल कमजोर पड़ जाती ([illegible]) और आजादी हासिल कर ली जाती।

लेकिन गाधी की यह धारणा नही थी। उस समय के और बाद के प्रमाणो से यही पता चलता है कि गाधी की मुख्य समस्या इस तरह के विकास को आगे बढने से रोकने की थी। मई 1931 म प्रकाशित अपने एक लेख मे उन्होंने कहा है कि यदि अहिंसा के सिद्धात से 'रत्ती भर भी हटने से' मुझे विजय मिल जाती है तो मैं इस विजय से अपनी पराजय ज्यादा पसद करूगा 'अहिंसा से रत्ती भर भी हटने से सदेहपूर्ण सफलता के बदले मे मैं यह ज्यादा पसद करूगा कि अहिंसा पर आच न आए भले ही मैं हार क्यो न जाऊ।' (8 मई 1931 के 'दि टाइम्स' ने गाधी के मई 1931 के लेख को उद्धृत किया था।) मार्च 1930 मे गाधी ने वायसराय के नाम एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने वायसराय को बताया था कि सघर्ष के पीछे कौन सी शक्तिया हैं और यह (गाधी) उनका नेतृत्व क्यो कर रहे हैं?

> हिंसा का पक्ष मजबूत हो रहा है और इसका अनुभव भी किया जाने लगा है मेरा मकसद यह है कि ब्रिटिश शासन की सगठित हिंसा के साथ साथ हिंसा के बढते हुए पक्ष की असगठित हिंसा के खिलाफ मैं उस शक्ति का (अहिंसा का) प्रयोग शुरू करू। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने का अर्थ दोनो शक्तियो को बेलगाम छोड देना होगा। (गाधी का पत्र वायसराय के नाम, 2 मार्च 1930)

इस प्रकार क्रातिकारी लहर की उठान से ठीक पहले गाधी ने दो मोर्चों पर लडाई चलाने की घोषणा कर दी। उन्होने केवल अगरेजो के खिलाफ ही नही बल्कि देश के अदरूनी दुश्मनो के खिलाफ भी सघर्ष चलाने की घोषणा की। दो मोर्चों पर लडने की यह धारणा भारतीय पूजीपतिवर्ग की भूमिका के अनुरूप है। भारत के पूजीपतिवर्ग ने इस खतरे को महसूस किया, उसने देखा कि साम्राज्यवाद और जनआदोलन के बीच बढते सघर्ष से उसके परो तले से जमीन खिसकने लगी है। उसे मजबूरी मे सघर्ष का नेतृत्व करना पडा हालाकि इस काम मे उसे 'भयकर खतरा' (वायसराय के पत्र मे गाधी ने इसी शब्द का प्रयोग किया था) दिखाई पडा और उसके लिए आदोलन को सीमाओ मे बाधकर रखना जरूरी हो गया ('खामोश बैठने का अर्थ था दोनो शक्तियो को मनमानी करने की छूट देना')। उसके लिए यह जरूरी हो गया कि वह 'अहिंसा' की जादुई छडी से दोनो शक्तियो को मनाने की कोशिश करे। फिर भी यह 'अहिंसा' ठीक उसी तरह 'एकतरफा अहिंसा' थी जिस तरह बाद के वर्षों मे जनतात्रिक शक्तियो ने स्पेन के सदर्भ मे 'हस्तक्षेप न करने' की शरारतपूर्ण नीति का पालन किया। यह 'अहिंसा' भारतीय जनता के लिए थी न कि साम्राज्यवादियो के लिए। उन्होने जमकर हिंसा का सहारा लिया और विजय भी उन्हे ही मिली।[3]

गाधी ने सघर्ष के बारे मे अपनी धारणा के अनुरूप ही अपनी रणनीति भी तैयार की। यदि यह मानकर चला जाए कि इस रणनीति का उद्देश्य स्वतत्रता प्राप्त करना नही बल्कि दुर्जेय क्रातिकारी लहर के बीच जनआदोलन पर अपना नेतृत्व बनाए रखना और

करें, विदेशी कपडो की दूकानो पर और शराब की सरकारी दूकानो पर पिकेटिंग करें। 9 अप्रल को गाधी ने जो निर्देश जारी किए थे उनसे पता चलता है कि आदोलन के बारे मे उनकी क्या धारणा थी

> हमारा रास्ता पहले से ही हमारे लिए निश्चित किया जा चुका है। हर गाव को चाहिए कि वह गैरकानूनी नमक तैयार करे। बहनो को चाहिए कि वे शराब की दूकानो, अफीम के ठेको और विदेशी कपडे की दूकाना के सामने पिकेटिंग करें। हर घर मे बूढो और जवानो को चाहिए कि वे तकली और चरखा कातें और रोज का बुना सूत इकट्ठा करें। विदेशी कपडो की होली जलानी चाहिए। हिंदुओ को छुआछूत स दूर रहना चाहिए। हिंदू, मुसलमान, सिख, पारसी और ईसाई, सबको आपस मे मिलकर रहना चाहिए। अल्पसख्यको को सतुष्ट करने के बाद जो कुछ बचे उसी से बहुसख्यको को सतुष्ट रहना चाहिए। छात्रा को चाहिए कि वे सरकारी स्कूलो और कालेजो का बहिष्कार करें और सरकारी कमचारियो को चाहिए कि वे अपनी नौकरियो से इस्तीफा देकर जनता की सेवा म लग जाए। तब हम देखेंगे कि पूण स्वराज हमारे दरवाजे पर खडा दस्तक दे रहा है।

जनआदोलन, जो अप्रैल मे ही काफी विकसित हो चुका था, इन सरल सीधी सीमाओ को काफी दूर तक पार कर गया। देश भर मे हडतालो का सिलसिला चल पडा, जबरदस्त प्रदशन होने लगे, बगाल मे चटगाव के हथियारखाने पर छापा मारा गया, पेशावर मे विद्रोह की घटनाए हुइ जिसके फलस्वरूप पेशावर पर दस दिनो तक जनता का कब्जा रहा। जगह जगह किसाना द्वारा लगान न देने का स्वत स्फूत आदोलन शुरू हुआ। यह आदोलन खास तौर से सयुक्त प्रात म काफी तेज रहा जहा काग्रेस ने कोशिश की कि 50 प्रतिशत लगान का भुगतान करा कर समझौता करा दिया जाए पर इस कोशिश मे उसे सफलता नही मिली।

समूचे भविष्य के लिए सबसे महत्वपूण घटना पेशावर मे गढवाली सिपाहियो द्वारा की गई बगावत थी जहा स्थानीय नेताओ की गिरफ्तारी के बाद जनता के रोषपूण प्रदशन को दबाने के लिए बख्तरबद गाडिया भेजी गईं। जनता ने एक बख्तरबद गाडी को जला दिया। गाडी के भीतर जो लोग थे वे भाग खडे हुए। इसके बाद जनता पर धुआधार गोलिया चलाई गइ जिससे सैंकडो लोग मारे गए और बहुत से लोग घायल हुए। स्थिति की गभीरता को देखकर 18वी रायल गढवाल राइफल्स की दूसरी बटालिन की तीन टुकडिया भेजी गईं। मुसलमानो की भीड से निबटन के लिए हिंदू सैनिको को भेजा गया पर उन्होन भीड पर गोली चलाने के आदेश को मानने से इकार किया, अपनी कतारें ताड दी भीड मे साथ भाईचारा कायम कर लिया और अनेक सिपाहियो ने तो अपने हथियार भी जनता को सौंप दिए। इसके फौरन बाद पेशावर से सारी फौज और पुलिस हटा ली गई। 25 अप्रैल

इस पर अधिक से अधिक रोक लगाना था तो इसमें कोई शक नहीं कि गाधी की रणनीति बहुत ही कुशल और योग्य रणनीति थी। इसका पता उसी समय लग गया था जब गाधी ने अपने आदोलन का पहला लक्ष्य तैयार किया था और उसकी प्राप्ति के लिए रास्ता निर्धारित किया था। अपने लक्ष्य और तरीके के निर्धारण म उन्होंने बेहद कुशलता का परिचय दिया था। उन्होंने सरकार के नमक बनाने के एकाधिकार के खिलाफ लडाई छेडना तय किया। इस आदोलन से यह सभावना खत्म हो गई कि मजदूर वग सघष म भाग लेगा। गाधी ने अपने लगभग सभी वक्तव्यो मे यह कहा था कि भारत मे उन्हे मजदूरवग से ही काफी डर लगता था। इस आदोलन म किसाना का समथन प्राप्त करने की योग्यता थी और इस बात का कोई भय नही था कि किसान वग जमीदारा के खिलाफ सघष करगा। इसकी और भी ज्यादा गारटी के लिए गाधी ने घोषणा की कि नमक सत्याग्रह की शुरुआत वह स्वय अपने शिष्यो के एक दल के साथ करेंगे 'जहा तक मेरा सबध है, मैं चाहता हू कि यह आदोलन मैं आश्रमवासियो और उन लोगो के जरिए शुरू करू जिन्होंने आश्रम का अनुशासन स्वीकार कर लिया है और कायपद्धति मान ली है।' ('यग इडिया' मे गाधी का लेख, 27 फरवरी 1930)

इसके बाद गाधी ने अपने 78 चुन हुए शिष्यो के साथ समुद्र के किनारे किनारे डाडी यात्रा शुरू की और इसमे उन्होंने तीन बेशकीमती हफ्ते निकाल दिए। दुनिया भर के समाचारपत्रो और न्यूजरीलो के फोटोग्राफर इस यात्रा की तस्वीरें खीचते रहे, जनता से कहा गया कि वह चुपचाप इतजार करे कि आगे क्या होता है। समाचारपत्रो, सिनेमा तथा अन्य प्रचार साधनो द्वारा डाडी यात्रा को जो धुआधार प्रचार किया गया, उसे देख कर काग्रेस नेताओ ने समझा कि जनता मे जागृति पैदा करने और उसे आदोलित करने के रूप मे इस रणनीति को जबरदस्त सफलता मिली है। यह भी सच है कि इससे जनता के पिछडे तबके को जगाने मे मदद मिली लेकिन साथ ही साम्राज्यवादियो ने अपने बाद के रुख के विपरीत (जब प्रमुख वामपथी राष्ट्रवादी नेता सुभाष बोस को सघष शुरू होने के पहले, स्वतत्रता दिवस के पहले ही पकड लिया गया) डाडी यात्रा को प्रचारित करने की जो खुली छूट दे रखी थी वह किसी नासमझी या अज्ञानता के कारण नही थी। इसके विपरीत सरकार इस आदोलन के महत्व को खूब अच्छी तरह समझती थी। सरकार ने उसका प्रचार महज इसीलिए किया ताकि जनआदोलन उस दलदल म जाकर फस जाए जो गाधी ने तैयार कर दिया था।

तो भी, तीन सप्ताह समाप्त होते ही 6 अप्रैल को जब गाधी ने समुद्र तट पर काफी समारोहपूवक नमक बनाया (और वह गिरफ्तार नही किए गए) तो देश भर म जन आदोलन की ऐसी जबरदस्त लहर चल पडी कि दोनो तरफ के नेता आश्चयचकित रह गए। आदोलन के सिलसिले मे गाधी की तरफ से जो निर्देश दिए गए थ उनम बहुत ही सीमित और अपेक्षाकृत अहानिकर ढग से सविनय अवज्ञा आदोलन छेडने की बात थी। इसमें कहा गया था कि लोग नमक कानून का उल्लघन करें, विदेशी वस्त्र का बहिष्कार

करें, विदेशी कपडो की दूकानो पर और शराब की सरकारी दूकानो पर पिकेटिंग करे। 9 अप्रैल को गाधी ने जो निर्देश जारी किए थे उनसे पता चलता है कि आदोलन के बारे म उनकी क्या धारणा थी

> हमारा रास्ता पहले से ही हमारे लिए निश्चित किया जा चुका है। हर गाव को चाहिए कि वह गैरकानूनी नमक तैयार करे। बहनो को चाहिए कि वे शराब की दूकानो, अफीम के ठेको और विदेशी कपडे की दूकानो के सामने पिकेटिंग करें। हर घर मे बूढो और जवानो को चाहिए कि वे तकली और चरखा कातें और रोज का बुना सूत इकट्ठा करे। विदेशी कपडो की होली जलानी चाहिए। हिंदुओ को छुआछूत से दूर रहना चाहिए। हिंदू, मुसलमान, सिख, पारसी और ईसाई, सबको आपस मे मिलकर रहना चाहिए। अल्पसख्यको को सतुष्ट करने के बाद जो कुछ बचे उसी से बहुसख्यको को सतुष्ट रहना चाहिए। छात्रो को चाहिए कि वे सरकारी स्कूलो और कालेजो का बहिष्कार करें और सरकारी कमचारियो को चाहिए कि वे अपनी नौकरियो से इस्तीफा देकर जनता की सेवा मे लग जाए। तब हम देखेंगे कि पूण स्वराज हमारे दरवाजे पर खडा दस्तक दे रहा है।

जनआदोलन, जो अप्रैल मे ही काफी विकसित हो चुका था, इन सरल सीधी सीमाओ को काफी दूर तक पार कर गया। देश भर मे हडतालो का सिलसिला चल पडा, जबरदस्त प्रदशन होने लगे, बगाल मे चटगाव के हथियारखाने पर छापा मारा गया, पेशावर म विद्रोह की घटनाए हुइ जिसके फलस्वरूप पेशावर पर दस दिनो तक जनता का कब्जा रहा। जगह जगह किसानो द्वारा लगान न देने का स्वत स्फूत आदोलन शुरू हुआ। यह आदोलन खास तौर से सयुक्त प्रात मे काफी तेज रहा जहा काग्रेस ने कोशिश की कि 50 प्रतिशत लगान का भुगतान करा कर समझौता करा दिया जाए पर इस कोशिश मे उसे सफलता नही मिली।

समूचे भविष्य के लिए सबसे महत्वपूण घटना पेशावर मे गढवाली सिपाहिया द्वारा की गई बगावत थी जहा स्थानीय नेताओ की गिरफ्तारी के बाद जनता के रोषपूण प्रदशन को दबाने के लिए बख्तरबद गाडिया भेजी गई। जनता ने एक बख्तरबद गाडी को जला दिया। गाडी के भीतर जो लोग थे वे भाग खडे हुए। इसके बाद जनता पर धुआधार गोलिया चलाई गई जिससे सैकडों लोग मारे गए और बहुत से लोग घायल हुए। स्थिति की गभीरता को देखकर 18वी रायल गढवाल राइफल्स की दूसरी बटालिन की तीन टुकडिया भेजी गई। मुसलमानों की भीड से निबटने के लिए हिंदू सैनिको को भेजा गया पर उन्होने भीड पर गोली चलाने के आदेश को मानने से इकार किया, अपनी कतारें ताड दी, भीड के साथ भाईचारा कायम कर लिया और अनेक सिपाहिया ने तो अपने हथियार भी जनता को सौप दिए। इसके फौरन बाद पशावर से सारी फौज और पुलिस हटा ली गई। 25 अप्रैल

स 4 मई तक शहर पर जनता का कब्जा रहा। बाद मे ब्रिटिश सरकार ने हवाई टुकडियो के साथ एक शक्तिशाली फौज पेशावर पर 'फिर से कब्जा' करने के लिए भेजी। बिना किसी प्रतिरोध के सेना ने फिर से पेशावर पर अपना नियत्रण स्थापित कर लिया। गढवाली राइफल्स के 17 आदमियो का कोर्ट मार्शल हुआ और उन्हे गभीर सजाए दी गइ, एक को काले पानी की सजा, एक को 15 वर्ष का कठोर कारावास और 15 लोगो को 3 से 10 वर्ष तक की कैद की सजा दी गई।

अपने देशवासियो पर गोली न चलाने की जो मिसाल गढवाली सिपाहिया ने कायम की उसके विषय म कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि यह गाधी के सबसे प्रिय सिद्धात 'अहिंसा' का एक सफल प्रदर्शन था। लेकिन गाधी का मत यह नही था। यह एक ऐसी अहिंसा थी जिसने सचमुच अगरेजी राज्य की नीव हिला दी। गाधी इर्विन समझौते मे उल्लिखित राजबदियो की रिहाई की धारा मे गढवाली सिपाहियो को खास तौर से अलग रखा गया। 'काग्रेस का इतिहास' मे अनेक छोटी मोटी आतकवादी कार्यवाहिया का जिक्र है और इनके जरिए यह बताया गया है कि इनसे राष्ट्रीय भावना के बढने म मदद मिली। लेकिन इस पूरे इतिहास मे गढवाल राइफल्स के सैनिको के इस कार्य को कही भी स्थान नही दिया गया। गढवाली वीर इस दौरान जेलो म पडे रहे और 1937 के उत्तरार्ध म वे तब रिहा किए गए जब काग्रेसी मत्रियो ने अपने प्रभाव का इस्तमाल किया। गढवाली सिपाहियो की वीरता की कहानी को जनता ने अपने हृदय म स्थान दिया और जब आजाद भारत म लोग अनेक राजनीतिज्ञो को भूल चुके होगे, गढवाली बहादुरा का नाम गर्व और सम्मान के साथ याद किया जाता रहेगा। बाद मे गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के लिए गाधी लदन गए थे, एक फ्रासीसी पत्रकार के साथ अपनी भेटवार्ता म उन्होने बताया कि उन्होने गढवाली सिपाहियो के कार्य को क्यो नही पसन्द किया

> एक सिपाही जो गोली चलाने का आदेश मानने से इकार करता है वह आज्ञाकारिता की शपथ का उल्लघन करता है और आज्ञा भग करने के अपराध का दोषी है। मैं अफसरा और सिपाहियो से आज्ञा का उल्लघन करने को नही कह सकता। क्योकि जब मेरा शासन होगा तब सभव है कि मैं भी इन्ही अफसरा और सिपाहियो से काम लू। यदि मैं इन्हे आज्ञा उल्लघन करना सिखाऊगा तो कल वे मेरे राज्य म भी ऐसा ही कर सकते हैं। (गढवाली सैनिका के प्रश्न पर फ्रासीसी पत्रकार चार्ल्स पैत्रास के सवाला का गाधी द्वारा दिया गया जवाब, 'मोद', 20 फरवरी 1932)

बारदोली के फैसले की ही तरह यह वाक्य (जिस पर गाधी के प्रत्येक शातिवादी प्रशसक को विचार करना चाहिए) भी 'अहिंसा' के अर्थ को बहुत स्पष्ट कर देता है।

जब यह स्पष्ट हो गया कि जनआदोलन का तूफान अपने ऊपर थोपी गई सीमाओं को

ताडता जा रहा ह और गाधी की बात लोग अब कम मानने लगे है तो सरकार न, जिसने अभी तक गाधी को स्वतत्र छोड रखा था, 5 मई को उन्हे गिरफ्तार कर लिया। सरकारी 'कम्यूनिके' (विज्ञप्ति) मे गिरफ्तारी का कारण बताते हुए कहा गया

> हालाकि मिस्टर गाधी इन हिंसात्मक उपद्रवो की लगातार निंदा करते आए ह लेकिन अपने उच्छृखल अनुयायियो के खिलाफ उनकी आवाज दिनोदिन कमजोर पडती जा रही है और यह बात स्पष्ट है कि अब वह इन तत्वो का काबू मे रखने मे असमथ है गिरफ्तारी के दौरान उनके स्वास्थ्य और आराम का पूरा ध्यान रखा जाएगा।

इस गिरफ्तारी के बाद देश भर मे हडतालो की लहर चल पडी। बबई प्रेसीडेंसी के औद्योगिक नगर शोलापुर म आबादी के कुल 140,000 लोगों म से 50,000 कपडा मिल मजदूर थे। इन मजदूरो ने पुलिस को हटाकर अपना प्रशासन कायम कर लिया और शहर पर एक सप्ताह तक उनका कब्जा बना रहा। 13 मई को माशल ला लागू करके ही मजदूरो का प्रशासन समाप्त किया जा सका। 'दि टाइम्स' के सवाददाता ने 14 मई 1930 को लिखा कि 'यहा तक कि काग्रेस नेताओ का भी भीड पर कोई काबू नही रह गया था। भीड स्वय अपना शासन कायम करना चाहती थी।' पूना के समाचारपत्र 'स्टार' ने लिखा 'जनता ने प्रशासन अपने हाथो म सभाल लिया था और वे अपने कायदे कानून चलाने की कोशिश कर रह थ।' समकालीन प्रमाणो स पता चलता है कि पूरी व्यवस्था कायम हो गई थी।

साम्राज्यवादी दमन की कोई सीमा न थी। एक के बाद एक अध्यादेश जारी किए जा रहे थे जिससे स्थिति माशल ला जैसी ही हो गई थी। जून मे काग्रेस और इसके तमाम सगठना को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। सरकारी आकडो के अनुसार 1931 मे गाधी-इर्विन समझौता होन तक के एक साल से भी कम समय मे 60,000 सत्याग्रहियो का सजा दी गइ थी। यह सख्या निश्चित रूप से कम करके बताई गई है क्योकि जिन लोगो को दगा आदि करन के आरोप लगाकर पकडा गया था, उन्ह इस सख्या मे शामिल नही किया गया था। इसम केवल उन्ही लोगा की गिनती की गई थी जिन्हे सरकार राजनीतिक बदी मानती थी। राष्ट्रवादियो ने उन दिनो का जो विस्तृत विवरण तैयार किया है उसके अनुसार 90 000 लोगो को सजा दे दी गई। '1930-31 म, 10 महीने के अल्प अतराल के अदर ही 90 000 पुरुषो, महिलाओ और बच्चो को सजाए दी गई ('हिस्ट्री आफ दि नेशनल काग्रेस', पृष्ठ 876)। य सारे काम 'लेबर' सरकार के शासन काल म हुए। 27 अप्रल 1930 को प्रतिक्रियावादी पत्र 'आब्जवर' ने लिखा कि यह एक 'सुखद सयोग' है कि इस समय लेबर सरकार सत्ता मे है और यह कि भारत को ध्यान म रखते हुए अब यह एक सावजनिक आवश्यकता है कि लेबर मत्रिमडल सत्ता म बने रहने दिया जाए।'

लोगो को गिरफ्तार कर लेना दमन का सबसे हल्का रूप था। जेलो मे लोग ठसाठस भर

> कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' के स्तंभों को छोड़कर हर जगह पस्तहिम्मती छाई हुई है। इस आशय की भी अफवाह काफी फैल रही थी कि कलकत्ता और बंबई के अंगरेज व्यापारियों तथा कांग्रेसी तत्वों के बीच इस तरह की बातचीत चल रही है कि बहिष्कार तथा दूसरी अस्थाई बुराइयों को यदि थोड़ा कम कर दिया जाए तो स्थाई तौर पर राजनीतिक आत्मसमर्पण हो सकता है। यूरोपीय लोगों का मनोबल टूट रहा है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि हर जगह यूरोपीय लोगों का मनोबल टूट रहा है। कलकत्ता में इसके खिलाफ जबरदस्त जनमत है।
> ('आब्जर्वर', 6 जुलाई 1930)

अगस्त आते आते 'आब्जर्वर' का कलकत्ता स्थित संवाददाता 'वीकनेस इन बांबे' ('बंबई में कमजोरी') शीर्षक से यह लिखने लगा था

> बंबई में इस समाचार से यहां के जनमत को बड़ा धक्का लगा है कि अंगरेजों की देखरेख में चलने वाली कुछ मिलों को कांग्रेस की शर्तें मान लेनी पड़ी हैं और इसलिए एक प्रमुख नागरिक बंबई की लाइट हौस से इस्तीफा दे रहा है। योरोपियन एसोसिएशन की बंबई शाखा के ध्वस्त होने की खबर का भी यही असर हुआ है। इसने उल्लेखनीय बहुमत से साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर इसलिए राय देने से इंकार कर दिया था कि क्योंकि यह भारतीय जनमत को मान्य नहीं था। गोलमेज सम्मेलन के लिए बंबई शाखा ने अपने उम्मीदवार का नाम भी वापस ले लिया है। ('आब्जर्वर', 24 अगस्त 1930)

इस प्रकार सारी धमकियां और दमन के बावजूद साम्राज्यवादी खेमे में 'पराजय बोध' और 'पस्तहिम्मती' की हालत पैदा होने लगी थी। साम्राज्यवादियों के लिए अब यह जरूरी हो गया था कि वे किसी भी कीमत पर कोई समझौता कर लें। भारतीय जनता के संघर्ष और बलिदानों के आधार पर कांग्रेस के नेताओं का पलड़ा भारी था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के सामने अपने कल्याण का एकमात्र रास्ता यह रह गया था कि वे नरमदली राष्ट्रीय नेताओं से कुछ आशा करें। सरकार को यह पता था कि नरमदली नेता जनसंघर्ष के व्यापक स्वरूप को देखकर बहुत घबरा गए हैं। सितंबर में सैली ओक कालेज, बरमिंघम में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रोफेसर एच० जी० एलेग्जेंडर ने गांधी से भेंट की और उन्होंने गांधी के विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा

> जेल में एकांत में भी उनको इस बात का पूरा पूरा एहसास है कि इस तरह की कटुता फैल रही है और इस कारण जितनी जल्दी ईमानदारी के साथ शांति और सहयोग की भावना फिर से स्थापित हो जाए वह उतना ही उसका स्वागत करेंगे उनका प्रभाव अब भी बहुत ज्यादा है लेकिन हर दिन जो शक्तियां मजबूत होती जा रही हैं वे अपेक्षाकृत काफी खतरनाक हैं और उन पर काबू पाना

दिए गए थे और यह बात स्पष्ट थी कि गिरफ्तारियों से आदोलन को रोकना असभव था। इसलिए सरकार शारीरिक यातना के हथियार को अपना मुख्य हथियार बना रही थी। जितने बडे पमाने पर अधाधुध लाठीचार्ज हुए, लोगो को जिस बबरता से पीटा गया, निहत्थी जनता पर जिस तरह गोली चलाई गई पुरुषो और महिलाओ की जितने व्यापक ढग से हत्याए की गइ (कई मामलो म तो लोगो को गोलियो से भून दिया गया और फासी दे दी गई टैंका और बख्तरबद गाडियो का इस्तेमाल किया गया और विमानो स बम बर साए गए) उसकी तुलना किसी भी देश म हुए दमनचक्र से नहीं की जा सकती। जिन अत्यत अनुभवी पत्रकारो ने इन घटनाओ की एक झलक भी पा ली उनका दिल दहल उठा।[4] इन कार्यवाहियों पर परदा डालने क लिए खबरो पर सख्त सैंसरशिप लगा दी गई लेकिन काग्रेस ने बडी सावधानीपूवक इन तमाम घटनाओ का ब्योरा तैयार किया। उसके लिए उसने ढेर सारे प्रमाण इकट्ठे किए जिनसे पता चलता है कि कितनी बबरतापूवक दमन किया गया था।

फिर भी 1930 के दौरान आदोलन जितना शक्तिशाली हो गया था उसका अगरेजो ने अनुमान भी नही लगाया था। दमन के बावजूद आदोलन दिनोदिन बढता जा रहा था जिससे साम्राज्यवादी खेमे में आतक फैल गया था। 1930 की गमिया तक यह बात अब काफी खुलकर सामने आने लगी थी। खास तौर से ब्रिटेन का व्यापारीवग बेहद घबरा गया था क्योकि विदेशी सामानो के बहिष्कार मे सबसे बुरी तरह वही प्रभावित हुआ था। बबई के सदर्भ मे यह बात खास तौर से देखी जा सकती थी। वहा औद्योगिक मजदूरो का केंद्र था और दमन भी यहा काफी जबरदस्त था। यहा आदोलन सबसे जबरदस्त था और पुलिस द्वारा बार बार लाठीचार्ज के बावजूद लोग सडको पर कब्जा कर लेते थे। बडे बडे जुलूस निकलते थे जो काग्रेसियो के बहुत निवेदन करने पर भी पीछे नही हटते थे। इन जुलूसो मे काग्रेसी झडा के साथ साथ लाल झडे लहराते हुए देखे जाते थे, कही कही तो लाल झडा की ही भरमार रहती थी। 29 जून को 'आब्जवर' के सवाददाता ने लिखा कि कलकत्ता तथा अन्य बडे शहरो से आए लोग बबई की हालत देखकर दग रह जाते थे। 5 जुलाई के 'स्पक्टटर' मे' बबई का एक पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमे कहा गया था कि यदि यहा सेना और सशस्त्र पुलिस तैनात न की गई होती तो बबई की सरकार का एक दिन मे तख्ता पलट जाता, प्रशासन पर काग्रेस का कब्जा हो जाता और इस काम म उसे सबका समथन मिलता। 'बबई मे रहने वाले अगरेज व्यापारियो न भारतीय व्यापारियो के साथ साथ 'मिल आनस एसोसिएशन' (जिसमे एक तिहाई यूरोपीय थे) और चैंबर आफ कामस के जरिए यह माग शुरू की कि भारत को डोमीनियन राज्य के आधार पर फौरन स्वराज दे दिया जाए। बबई के टाइम्स आफ इडिया' का यह चमत्कार भी सामने आया जिसमे उसने केंद्र म जिम्मेदार ससदीय सरकार की हिमायत की थी। 6 जुलाई आते आते 'आब्जवर' ने यह चिता जाहिर करनी शुरू कर दी थी कि भारत म रहने वाले यूरोपीयो का मनोबल टूट रहा है

> कलकत्ता के 'स्टट्समैन' के स्तभो को छोडकर हर जगह पस्तहिम्मती छाई हुई है। इस आशय की भी अफवाह काफी फैल रही थी कि कलकत्ता और बबई के अगरेज व्यापारियो तथा काग्रेसी तत्वो के बीच इस तरह की बातचीत चल रही है कि बहिष्कार तथा दूसरी अस्थाई बुराइयो को यदि थोडा कम कर दिया जाए तो स्थाई तौर पर राजनीतिक आत्मसमपण हो सकता है। यूरोपीय लागो का मनोबल टूट रहा है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि हर जगह यूरोपीय लोगो का मनोबल टूट रहा है। कलकत्ता मे इसके खिलाफ जबरदस्त जनमत है। ('आब्जवर', 6 जुलाई 1930)

अगस्त आते आते 'आब्जवर' का कलकत्ता स्थित सवाददाता 'वीकनेस इन बाबे' ('बबई मे कमजोरी') शीपक से यह लिखने लगा था

> बबई के इस समाचार से यहा के जनमत को बडा धक्का लगा है कि अगरेजो की देखरेख मे चलने वाली कुछ मिलो को काग्रेस की शर्तें मान लेनी पडी है और इसलिए एक प्रमुख नागरिक बबई की लाइट होस से इस्तीफा दे रहा है। योरोपियन एसोसिएशन की बबई शाखा के ध्वस्त होने की खबर का भी यही असर हुआ ह। इसने उल्लेखनीय बहुमत से साइमन कमीशन की रिपोट पर इसलिए राय देने से इकार कर दिया था कि क्योकि यह भारतीय जनमत को मान्य नही था। गोलमेज सम्मेलन के लिए बबई शाखा ने अपने उम्मीदवार का नाम भी वापस ले लिया है। ('आब्जवर', 24 अगस्त 1930)

इस प्रकार सारी धमकियो और दमन के बावजूद साम्राज्यवादी खेमे मे 'पराजय बोध' और 'पस्तहिम्मती' की हालत पैदा होने लगी थी। साम्राज्यवादियो के लिए अब यह जरूरी हो गया था कि वे किसी भी कीमत पर कोई समझौता कर लें। भारतीय जनता के सघप और बलिदानो के आधार पर काग्रेस के नेताओ का पलडा भारी था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के सामने अपने कल्याण का एकमात्र रास्ता यह रह गया था कि वे नरम-दली राष्ट्रीय नेताओ से कुछ आशा करे। सरकार को यह पता था कि नरमदली नेता जनसघप के व्यापक स्वरूप को देखकर बहुत घबरा गए ह। सितबर मे सैली ओक कालेज, बर्मिघम मे अतर्राष्ट्रीय सबधो के प्रोफेसर एच० जी० एलेग्जेंडर ने गाधी से भेंट की और उन्होंने गाधी के विचारो को व्यक्त करते हुए लिखा

> जेल के एकात म भी उनको इस बात का पूरा पूरा एहसास है कि इस तरह की कटुता फैल रही है और इस कारण जितनी जल्दी ईमानदारी के साथ शाति और सहयोग की भावना फिर से स्थापित हो जाए वह उतना ही उसका स्वागत करेंगे उनका प्रभाव अब भी बहुत ज्यादा है लेकिन हर दिन जो शक्तिया मजबूत होती जा रही हैं वे अपक्षाकृत काफी खतरनाक हैं और उन पर काबू पाना

> मुश्किल है। (प्रोफेसर एच० जी० एलेग्जेंडर 'मिस्टर गाधीज प्रजट आउटलुक', 'इस्पैक्टटर', 3 जनवरी 1931)

इस प्रकार दोना तरफ चिंता बढ रही थी और इस दोनो ओर की चिंता तथा घबराहट के कारण समझौते की सभावना पैदा हो गई थी, लेकिन यह समझौता भारतीय जनता के खिलाफ ही होना था।

1930 के शरद मे समझौते की बातचीत शुरू हुई लेकिन कोई नतीजा नही निकला। 20 जनवरी 1931 को प्रधानमत्री की हैसियत से मैकडोनल्ड ने गोलमेज सम्मेलन मे घोषणा की

> मैं इस बात की प्रार्थना करता हू कि हमारी मेहनत से भारत उस एकमात्र वस्तु को पा जाए जिसके अभाव के कारण ही उसे अभी तक ब्रिटिश राष्ट्रमडल के अदर डोमीनियन का दर्जा नही मिल सका है भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण स्वशासी शासन की जिम्मेदारी और भार तथा गर्व और सम्मान प्राप्त हो सके।

जैसाकि बाद की घटनाओ से पता चला, भारत के सामने बडे गोलमोल शब्दो मे यह एक चारा डाला गया था और इस घोषणा के जरिए ब्रिटिश सरकार ने कोई वायदा नही किया था। इसके बाद गोलमेज सम्मेलन आगे के लिए स्थगित कर दिया गया ताकि कांग्रेस इसमे हिस्सा ले सके।

26 जनवरी को गाधी और कांग्रेस कार्यसमिति को बिना शर्त रिहा कर दिया गया और उन्हे बैठक करने की स्वतत्रता दी गई। गाधी ने एलान किया कि वह 'पूरी तरह खुला हुआ दिमाग' लेकर जेल से बाहर निकले हैं (यह किसी क्रातिकारी आदोलन के नेता के लिए जिसे एक धूर्त और बेईमान दुश्मन का मुकाबला करना हो, बडी खतरनाक स्थिति है)। इसके बाद समझौते की लबी बातचीत चली। 4 मार्च को गाधी-इर्विन समझौते पर हस्ताक्षर हो गए और आदोलन को अस्थाई तौर पर स्थगित करने की घोषणा की गई।

इर्विन-गाधी समझौते ने कांग्रेस के सघर्ष के एक भी लक्ष्य की प्राप्ति नही की (यहा तक कि नमक कर भी रद्द नही हुआ)। सविनय अवज्ञा आदोलन वापस ले लेना पडा। कांग्रेस को गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेना पडा जिसमे भाग न लेने की उसने कसम खाई थी। स्वराज की दिशा म कोई ठोस कदम नही उठाया गया। गोलमेज सम्मेलन म बातचीत के लिए यह आधार निश्चित किया गया कि 'भारतीयो के हाथो म जिम्मेदारी' सहित सघीय सविधान के आधार पर विचारविमर्श किया जाए लेकिन 'भारत के हितो की रक्षा के लिए कुछ विशेष अधिकार अगरेजो के हाथ म सुरक्षित रहेंगे।' यह तय हुआ कि अध्यादेश वापस ले लिए जाएगे और राजनीतिक बदियो को रिहा कर दिया जाएगा, लेकिन

जिन बंदियो पर 'हिंसा' या 'हिंसा के लिए भडकाने' की कार्यवाहियो का आरोप लगाया गया है अथवा आज्ञा का उल्लघन करने के आरोप म जो सैनिक बद ह उनको नही छोडा जाएगा। विदेशी सामानो के बहिष्कार की आजादी दे दी गई लेकिन इसके साथ कुछ शर्तें भी लगाई गई। इन शर्तों के अधीन बहिष्कार 'केवल ब्रिटिश सामान' का न किया जाए, किसी राजनीतिक उद्देश्य के लिए 'इस आदोलन का इस्तेमाल न हो, इस आदोलन मे पिकेटिंग का सहारा न लिया जाए जिसमे लोगो को जबरदस्ती रोका जाता हो, विरोधी प्रदशन होत हा या जनता के कामकाज मे रुकावट पैदा होती हो।' समझौते की अय धाराए भी इसी तरह की थी जिनमे अगर एक हाथ से कुछ दिया जाता था तो दूसरे हाथ से उसे छीन भी लिया जाता था। इस समझौते का अधिक से अधिक केवल यह लाभ हुआ कि जनता को विदेशी कपडो के शातिपूण बहिष्कार का अधिकार मिल गया। इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि इस समझौते की आड मे भारत के लोगो के हित के नाम पर किन लोगो का स्वार्थ काम कर रहा था।

निस्सदह इस तथ्य से राष्ट्रीय आदोलन की शक्ति का पता चलता है कि ब्रिटिश सरकार को काग्रेस के साथ सावजनिक सधि पर हस्ताक्षर करने पडे जबकि उसने शुरू म काग्रेस को एक गैरकानूनी सगठन घोषित कर दिया था और इसे ध्वस्त करने की भरपूर कोशिश की थी। शुरू शुरू मे इस बात से जनता मे खुशी और विजय की भावना काफी फैली। केवल वे लोग इन चीजो से प्रभावित नही हो सके जो राजनीतिक तौर पर काफी जागरूक थे और जिनका ख्याल था कि इस समझौते से अब तक के सारे सघष और अब तक की सारी कुर्बानियो को व्यथ कर दिया गया है। समझौते की शर्तों का अथ बहुत धीरे धीरे लोग समझ सके और उन्होने महसूस किया कि देश को कुछ भी नही मिला है। काग्रेस के लाहौर अधिवेशन म काफी जोर शोर से घोषणा की गई थी कि काग्रेस का उद्देश्य पूण-स्वराज की प्राप्ति है और इस सिलसिले मे साम्राज्यवाद के साथ किसी भी तरह का समझौता नही किया जाएगा लेकिन ये सारी बातें भुला दी गई। यहा तक कि गाधी ने काग्रेस की पीठ पीछे समझौते की जो 11 शर्तें रखी थी उन सबका भी अब कही नामो-निशान नही था, उनमे से एक भी शत नही मानी गई थी। काग्रेस की हालत अब यह हो गई थी कि जिस गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार करने का उसन फैसला किया था, अब वह उसी म भाग लेने जा रही थी जबकि यह काम बिना सघष चलाए भी वह कर सकती थी (बेशक यदि शुरू मे वह चाहती तो उसे ज्यादा प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल सकता था)।

इस प्रकार इर्विन गाधी समझौते के जरिए बारदोली के अनुभव का ही और बडे पैमाने पर दोहराया गया। एक बार फिर आदोलन को बडे रहस्यमय ढग स अचानक ठीक उस समय रोक दिया गया जब वह अपने शिखर पर पहुच रहा था ('यह कहना सरासर झूठ है कि हमारा आदोलन ध्वस्त होने वाला था, आदोलन धीमा पडने का कोई भी सकेत दिखाई नही देता था'—समझौते के अवसर पर भारत की स्थिति के बारे म 'मोद की

जनता के व्यापक आदोलन के बीच जो घातक दरार पैदा हो गई थी उसकी अभिव्यक्ति कराची अधिवेशन मे ही हो चुकी थी। सुभाषचद्र बोस ने लिखा है कि समझौते के विरोधियो को चुने हुए प्रतिनिधियो से बहुत कम समर्थन प्राप्त होता और काग्रेस के अधिवेशन मे केवल चुने हुए प्रतिनिधि मतदान मे हिस्सा ले सकते थे लेकिन आम जनता मे और खासकर नौजवानो मे काफी बडी सख्या मे लोग उनके साथ थे' ('दि इडियन स्ट्रगल', पृष्ठ 233)। काग्रेस के भीतर इन 'तमाम समर्थको' की आवाज बुलद करने वाला कोई नही था। कराची अधिवेशन मे वामपथी राष्ट्रवादिता के ध्वस्त होने की घटना से गाधी की मजबूत स्थिति का पता चलता है।

बदले मे एक प्रगतिशील सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम को स्वीकार करके वामपथी राष्ट्रवादियो को रियायत दी गई। यह कार्यक्रम मूल अधिकार' वाले प्रस्ताव के रूप मे था। उसमे काफी आधुनिक किस्म की मूल जनवादी मागो की सूची थी जिसमे प्रमुख उद्योगो और यातायात का राष्ट्रीयकरण, मजदूरो के अधिकार और कृषिव्यवस्था मे सुधार की मागें शामिल थी। यह कार्यक्रम, जिसे काग्रेस आज भी मानती है, स्वीकार करके काग्रेस ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। फिर भी इर्विन-गाधी समझौते के फलस्वरूप आत्मसमर्पण से देश को जो नुकसान हुआ था उसकी पूर्ति इस कार्यक्रम से नही हो सकती थी।

काग्रेस के बाहर युवको और मजदूरवर्ग के आदोलन ने समझौते की तीखी आलोचना की। इसकी अभिव्यक्ति युवक सगठनो और सम्मेलनो के अनेक प्रस्तावो मे हुई है और गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के लिए रवाना होने के अवसर पर गाधी के खिलाफ बबई मे मजदूरो ने जो जबरदस्त विरोध प्रदर्शन किए थे उनसे भी पता चलता है कि समझौते के बारे मे इन लोगो की क्या राय थी। 'दि टाइम्स' समाचारपत्र ने लिखा कि 10 वर्ष पहले इस तरह के प्रदर्शनो के बारे मे सोचा भी नही जा सकता था।

बडी तेजी से और लोगो के भ्रम भी टूटने लगे। 1931 मे लदन के गोलमेज सम्मेलन मे (और उच्च आध्यात्मिक विचारो वाले भक्तो की उन अनेक सभाओ मे जो गोलमेज सम्मेलन की बैठको से फुरसत पाने पर जगदगुरु गाधी का सदेश सुनने के लिए हुआ करती थी) गाधी की क्या भूमिका रही यह यदि उदघाटित न किया जाए तभी अच्छा है। पुराने जमाने मे जिस तरह रोम के सम्राट अपने देश की जनता को दिखाने के लिए विदेशो के बंदियो को पकडकर मगवाया करते थे उसी तरह ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यो के मनोरजन के लिए भारत से तरह तरह की सरकारी कठपुतलिया मगवाकर लदन मे इकट्ठा की गई थी और वे बडे ही आत्मविश्वास के साथ अपनी मूर्खता और फूट का प्रदर्शन कर रही थी। गाधी रास्ते मे मुसोलिनी से मिलते हुए भारत लौट आए। गोलमेज सम्मेलन से उन्हें कोई लाभ नही मिला। वापस लौटते समय गाधी ने रास्ते मे यह आशा व्यक्त की कि अब सघर्ष फिर से शुरू करने की आवश्यकता नही होगी। पाट गई मे

गाधी से भेंटवार्ता, 20 फरवरी 1932)। 5 माच को 'दि टाइम्स' ने लिखा कि 'इस तरह की जीत शायद ही किसी वायसराय को पहले कभी मिली हो।' 5 माच को विस्मय से भरे पत्रकारो के बीच गाधी ने समझौते का औचित्य साबित करते हुए कहा कि कांग्रेस ने विजय के लिए कभी कोशिश ही नही की थी' (गाधी स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज', पृष्ठ 778)। इस प्रकार गाधी ने निश्चय ही अपनी रणनीति की असलियत को जाहिर कर दिया था। बाद मे उन्होने अपने विचारो की और भी व्याख्या की। जून 1931 म उन्होने अपने पत्र 'यग इडिया' में लिखा कि 'फिलहाल हमे स्वराज का विधान प्राप्त करने की कोशिश छोड देनी चाहिए। हम राजनीतिक सत्ता पाए बिना भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते है।' 6 माच को उन्होने सवाददाताओ के साथ एक बातचीत म कहा था कि पूण स्वराज का असली अथ 'आतरिक अनुशासन और आत्मनियत्रण' है और किसी भी रूप मे इसका अथ यह नही है कि 'इग्लैंड के साथ सबध न रखा जाए' ('सबध रखने' की बात भी कितनी दिलचस्प है—खास तौर से जब इसका अथ तेज नोकवाली सगीन के साथ 'सबध रखना' हो)। इस प्रकार एक तरफ मकडोनल्ड ने और दूसरी तरफ गाधी ने शब्दो का आडबर फैलाकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमे आजादी जसे सरल शब्द का अथ भी गडबडा गया। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन म आजादी के उद्देश्य का बडे साफ शब्दो म परिभाषित किया गया था (ब्रिटिश प्रभुत्व और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूण स्वाधीनता') लेकिन इन दोनो सतो ने इस सीधी सी बात को कानूनी व्याख्याओ और धार्मिक सूत्रो के शब्दाडबर से इस तरह ढक दिया कि यह कहना भी मुश्किल हो गया कि बाजी किसके हाथ रही, मैकडोनल्ड के या गाधी के। ये दोनो व्यक्ति गुलामी और आत्म समपण की कठोर वास्तविकता पर आध्यात्मिक और चौंकाने वाले शब्दाडबरो का पर्दा डालने की कला म बहुत माहिर थे।

उसी महीने जल्दी जल्दी काग्रेस का कराची अधिवेशन कर इस समझौते को सवसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। अधिवेशन के सामने समझौते को पेश करने का काम जवाहरलाल नहरू को दिया गया था और उन्हे यह काम करने म 'काफी मानसिक सघष और शारीरिक कष्ट का अनुभव करना पडा था।' वह बार बार यह सोच रहे थे कि क्या इसी के लिए हमारे देश के लोगो ने इतनी बहादुरी के साथ सघष किया था? क्या हमारी तमाम वीरतापूण बातें और कामो का यही नतीजा होना था?' फिर भी उन्होने यह महसूस किया कि समझौते से अपनी असहमति प्रकट करना 'व्यक्तिगत दभ' का परिचय देना होगा। सुभाषचद्र बास ने समझौते की कडी आलोचना की थी लेकिन उन्हे लगा काग्रेस अधिवेशन म इसका विरोध करना सभव नही है क्योकि इससे राष्ट्रीय एकता भग होने का खतरा हो सकता है। जवाहरलाल नहरू के अनुसार यह समझौता 'लोकप्रिय' नही था। लेकिन काग्रेस अधिवेशन म बहुत कम आवाजें उसके खिलाफ उठी। एक प्रतिनिधि ने कहा कि यदि गाधी जी के बजाय कोई दूसरा व्यक्ति इस तरह का समझौता हमारे सामने पश करता तो हम लोग उसे उठाकर समुद्र म फेंक देते। लेकिन पूरे अधिवेशन म इस तरह के विचार अपवादस्वरूप ही आते है। काग्रेस के अनन्य तत्र और

जनता के व्यापक आदोलन के बीच जो घातक दरार पैदा हो गई थी उसकी अभिव्यक्ति कराची अधिवेशन मे ही हो चुकी थी। सुभाषचद्र बोस ने लिखा है कि समझौते के विरोधियो को 'चुने हुए प्रतिनिधियो से बहुत कम समथन प्राप्त होता और कांग्रेस के अधिवेशन मे केवल चुने हुए प्रतिनिधि मतदान मे हिस्सा ले सकते थे लेकिन आम जनता मे और खासकर नौजवानो मे काफी बडी सख्या म लोग उनके साथ थे' ('दि इडियन स्ट्रगल', पृष्ठ 233)। काग्रेस के भीतर इन 'तमाम समथकों' की आवाज बुलद करने वाला कोई नही था। कराची अधिवेशन मे वामपथी राष्ट्रवादिता के ध्वस्त होने की घटना से गाधी की मजबूत स्थिति का पता चलता है।

बदले मे एक प्रगतिशील सामाजिक और आर्थिक कायक्रम को स्वीकार करके वामपथी राष्ट्रवादियो को रियायत दी गई। यह कायक्रम 'मूल अधिकार' वाले प्रस्ताव के रूप मे था। उसमे काफी आधुनिक किस्म की मूल जनवादी मागो की सूची थी जिसमे प्रमुख उद्योगो और यातायात का राष्ट्रीयकरण, मजदूरो के अधिकार और कृषिव्यवस्था मे सुधार की मागें शामिल थी। यह कायक्रम, जिसे काग्रेस आज भी मानती है, स्वीकार करके काग्रेस ने एक महत्वपूण कदम उठाया था। फिर भी इर्विन-गाधी समझौते के फल स्वरूप आत्मसमपण से देश को जो नुकसान हुआ था उसकी पूर्ति इस कायक्रम से नही हो सकती थी।

काग्रेस के बाहर युवको और मजदूरवग के आदोलन ने समझौते की तीखी आलोचना की। इसकी अभिव्यक्ति युवक सगठनो और सम्मेलनो के अनेक प्रस्तावो मे हुई है और गोल मेज सम्मेलन मे भाग लेने के लिए रवाना होने के अवसर पर गाधी के खिलाफ बबई म मजदूरो न जो जबरदस्त विरोध प्रदशन किए थे उनसे भी पता चलता है कि समझौते के बारे म इन लोगो की क्या राय थी। 'दि टाइम्स' समाचारपत्र ने लिखा कि 10 वष पहले इस तरह के प्रदशनो के बारे मे सोचा भी नही जा सकता था।

बडी तेजी से और लोगो के भ्रम भी टूटने लगे। 1931 मे लदन के गोलमेज सम्मेलन मे (और उच्च आध्यात्मिक विचारो वाले भक्तो की उन अनेक सभाओ मे जो गोलमेज सम्मेलन की बैठको से फुरसत पाने पर जगदगुरु गाधी का सदेश सुनने के लिए हुआ करती थी) गाधी की क्या भूमिका रही यह यदि उदघाटित न किया जाए तभी अच्छा है। पुराने जमाने मे जिस तरह रोम के सम्राट अपने देश की जनता को दिखाने के लिए विदेशो से कैदियो को पकडकर मगवाया करते थे उसी तरह ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यो के मनोरजन के लिए भारत स तरह तरह की सरकारी कठपुतलिया मगवाकर लदन म इकट्ठा की गई थी और वे बडे ही आत्मविश्वास के साथ अपनी मूखता और फूट का प्रदशन कर रही थी। गाधी रास्ते म मुसोलिनी से मिलते हुए भारत लौट आए। गोलमेज सम्मेलन का उन्हे कोई लाभ नही मिला। वापस लौटते समय गाधी न रास्ते म यह आशा व्यक्त की कि अब सघष फिर स शुरू करने की आवश्यकता नही होगी। पोट सईद मे

उन्होंने इंडिया आफि न को तार भेजा कि जहा तक सभव हो सकेगा वह शाति कायम रखने का प्रयत्न करेंगे। भारत पहुचते ही उन्होंने फौरन ही इस आशय का एक प्रस्ताव तैयार कर डाला। ने किन उन्होंने इस पर ध्यान नही दिया कि ब्रिटिश सरकार कुछ और ही सोच रही थी।

कोडे का हत्था अब ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के हाथ मे था और उसने इस परिस्थिति का अधिकतम लाभ उठाने का फैसला किया। जो 'समझौता' हुआ था वह शुरू से ही एक-तरफा था, दमन बरावर जारी रहा। 1931 के अतिम दिनो म जब गाधी स्वदेश वापस आए तो अपने सहयोगियो से उन्होंने एक ददभरी कहानी सुनी। उन्होंने फौरन ही वायसराय को तार भेजकर यह निवेदन किया कि उन्हें मिलने का मौका दिया जाए। वायसराय ने उनसे मिलने से इनकार कर दिया। समझौते के बाद के 9 महीनो के प्रत्येक दिन का साम्राज्यवादियो ने भरपूर इस्तेमाल किया था (और इस बीच लदन मे एक प्रहसन का भी आयोजन कर डाला था)। इन 9 महीने की तैयारी म अगरजो न एक निर्णायक युद्ध की योजना बनाई थी। इसके लिए सर जान एडरसन को जिन्होंने आयरलैड म क्रूर दमन करने म काफी शोहरत हासिल की थी खास तौर पर बगाल का गवनर बनाकर भेजा गया। इस बार सरकार पूरी तरह तैयार बैठी थी। उसने काग्रेस का सबक सिखान की सोच ली थी। उसन तय किया था कि इस बार की लडाई मे फैसला हो जाना है और जब तक काग्रेस सरकार के सामने बिना शत आत्मसमपण नही कर दगी तब तक लडाई जारी रहेगी।

4 जनवरी 1932 को अगरेजो ने अचानक बहुत जबरदस्त आक्रमण किया। उसी दिन समझौते की वार्ते भग कर दी गइ। वायसराय न अपना एक घोषणापत्र जारी किया और गाधी को गिरफ्तार कर लिया गया। एक साथ ही कई अध्यादेश जारी कर दिए गए (1930 की तरह इस बार एक एक करके अध्यादेश नही जारी किए गए बल्कि पहले ही दिन मानो किसी पिटार से निकालकर ढेर सारे अध्यादेश लागू कर दिए गए)। देश भर मे सभी प्रमुख काग्रेसी नेताओ और सगठनकर्ताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। काग्रेस पार्टी और उसके सभी सगठनो को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया उनके अखबार बद कर दिए गए। उनके दफ्तरो पर कब्जा कर लिया गया और उनका रुपया पैसा तथा हर तरह की सपत्ति जब्त कर ली गई। यह सगठन की विजय थी।

सरकार ने यह बात स्पष्ट कर दी कि इस बार के हमले का उद्देश्य काग्रेस को पूरी तरह ध्वस्त करना है। सर सम्यूअल हार न हाउस आफ कामस म बताया कि अध्यादेश 'बहुत कठोर और जबरदस्त हैं' और इस बार लडाई 'बिना हार जीत के फैसले' वाली नही होगी। भारत सरकार के गृहमत्री सर हरी हग न कहा 'हम नसनी नियमो के आधार पर खेल के मैदान म नही उतरे हैं।' और जहा तक सरकार का सबध है इस लडाई के लिए समय की कोई सीमा नहीं। बबई सरकार के प्रवक्ता न प्रातीय विधानसभा म यह कहा कि हिन्दुस्तान पहले कर तराह नही रहने जाना।

काग्रेसी नेता इस आक्रमण से हतप्रभ रह गए। वे यह समझ ही नही सके कि गोलमेज सम्मेलन का माहौल कहा गायब हो गया। उन्होंने इस लडाई की कोई तैयारी नही की थी। 1930 मे काग्रेस आक्रामक की स्थिति मे थी। लेकिन इस बार उसे सुरक्षात्मक स्थिति की ओर धकेल दिया गया था। काग्रेसी नेताओ ने नही समझा था कि इर्विन गाधी समझौते की उन्ह क्या कीमत चुकानी पडेगी। काग्रेस कायसमिति के सदस्य डा० सैयद महमूद ने इडिया लीग के प्रतिनिधिमडल को बताया

> दुनिया को उस प्रस्ताव के बारे मे कुछ भी नही पता है जो महात्मा गाधी ने तैयार किया था और कायसमिति के सामने पेश किया था। महात्मा गाधी सहयोग करने पर आमादा थे सरकार सहयोग नही चाहती थी। अदरूनी बातों की अपनी जानकारी के आधार पर मैं यह कह सकता हू कि काग्रेस सघष के लिए तैयार नही थी। हमे यह आशा थी कि लदन से लौटने पर महात्मा जी किसी तरह शाति कायम कर लेंगे। (इडिया लीग डेलीगेशन की रिपोट, 'कडीशन आफ इडिया', 1933, पृष्ठ 27)

उन्होंने आगे यह भी कहा कि 'उन्ह और उनके सहयोगियो को निश्चित रूप स यह जानकारी है कि सरकार ने दमन की तैयारी नवबर मे ही कर ली थी जब गाधी जी लदन म थे। सरकार के इस अचानक हमले ने काग्रेस को लडखडा दिया।'

इस बार 1932 33 मे जो दमन हुआ, वह 1930 31 के दमन से कही ज्यादा जबरदस्त था। 2 मई 1932 को पडित मालवीय ने एक सावजनिक रिपोट तैयार की जिसके अनुसार पहले चार महीनो मे 80 000 लोग गिरफ्तार किए गए थे। अप्रैल 1933 म काग्रेस के गैर-कानूनी ढग से आयोजित कलकत्ता अधिवेशन मे पेश की गई इस रिपोट के अनुसार पद्रह महीना बाद अर्थात माच 1933 के अत तक गिरफ्तार किए गए लोगा की सख्या 120,000 तक पहुच गई थी। 1933 मे प्रकाशित 'कडीशन आफ इडिया' शीषक से इडिया लीग के प्रतिनिधिमडल की रिपोट से पता चलता है कि इन गिरफ्तारियो के साथ साथ सरकार की ओर से कितने बडे पैमाने पर हिंसा की गई, लोगो को कितनी शारीरिक यातनाए दी गईं, किस तरह उनपर गोलिया चलाई गईं, गावो और शहरा पर पुलिस ने किस तरह हमले किए, सामूहिक जुर्माने किए और गाव वालो की जमीन जायदाद जब्त कर ली।

सरकार ने अनुमान लगाया था कि छ हफ्ते मे लडाई का निपटारा हो जाएगा लेकिन राष्ट्रीय आदोलन इतना शक्तिशाली निकला कि प्रतिकूल परिस्थितिया के बावजूद 29 महीनो तक लडाई चलती रही और इसके बाद ही काग्रेस न अतिम रूप से आत्मसमपण किया। फिर भी यह लडाई केवल सैनिको ने लडी थी जिनको सेनापतियो का नेतृत्व नही प्राप्त था। स्थितिया ऐसी थी जिनमे सारा काम गैरकानूनी ढग से करना पडता था और जबरदस्त दमनचक्र चल रहा था। ऐसी अवस्था मे आदोलन का नतत्व करना काफी

कठिन काम था। लेकिन गाधी और काग्रेस हाई कमान ने इस काम को और आसान नही किया। उनके सारे काम ऐस थे जिनसे पता चलता था कि गाधी और हाई कमान नेतत्व की जिम्मेदारी से न केवल बच रहे थे बल्कि उसे अस्वीकार भी कर रहे थे। उनकी ओर से गोपनीयता के विरुद्ध आदेश जारी कर दिए गए (जबकि काग्रेस गैरकानूनी घोषित की जा चुकी थी) क्योकि यह काग्रेस के सिद्धाता के खिलाफ था। जमीदारो को एक प्रस्ताव द्वारा आश्वासन दिया गया कि उनके हिता के खिलाफ किसी आदोलन को स्वीकृति नही दी जाएगी। 1932 की गरमियो तक गाधी ने राष्ट्रीय सघष म दिलचस्पी लेना बिलकुल बद कर दिया और सारा समय हरिजना के हित के लिए काम करने लगे। सितबर मे उन्हाने नाटकीय 'आमरण अनशन' किया था। यह दमन के विरुद्ध न था और न ही यह अनशन जिदगी और मौत की उस लडाई को आगे बढाने के लिए किया गया था जिसमे राष्ट्रीय आदोलन पूरी तरह लगा हुआ था। इसका उद्देश्य केवल इतना ही था कि विधानसभाओ म 'दलित वर्गों' के प्रतिनिधियो को अलग से निर्वाचित करने की योजना को रोका जाए। अनशन समाप्त हो गया, वह न तो आमरण हुआ और न ही उसका उद्देश्य पूरा हुआ, बल्कि पूना का समझौता हो जाने पर अनशन समाप्त किया गया। इस समझौते के द्वारा 'दलित जातियो' के लिए सुरक्षित सीटो की सख्या दुगनी कर दी गई। इस घटना का नतीजा यह हुआ कि लोगो का ध्यान राष्ट्रीय आदोलन से हट गया जिसके नेता अब भी गाधी ही समझे जाते थे।

मई 1933 म गाधी ने एक नया अनशन शुरू किया। यह अनशन भी सरकार के खिलाफ नही था बल्कि इसका उद्देश्य देशवासियो का हृदय परिवतन करना था। गाधी ने अपन इस अनशन के बारे मे बताया कि 'इस व्रत का उद्देश्य मेरी अपनी और मेरे सहयोगियो की आत्मशुद्धि करना है ताकि हम लोग हरजिन उद्धार के लिए और अधिक सतक हो जाए।' इस वक्तव्य पर सरकार काफी प्रसन्न हुई और उन्हे बिना शत रिहा कर दिया गया ताकि यह सत पुरुष अपना शुभ काय कर सके। इसके फौरन बाद ही गाधी की सहमति से काग्रेस के कायवाहक अध्यक्ष ने छ हफ्ते के लिए सविनय अवज्ञा आदोलन स्थगित कर दिया। गाधी के शब्दो म वह तो आदोलन इसलिए नही बद किया गया था कि सरकार ने काग्रेस की कोई शत मान ली थी या इसकी कोई आशा पैदा हो गई थी बल्कि इसलिए बद किया गया था कि जब तक उनका अनशन जारी रहेगा तब तक देश 'भयकर रूप से बेचैनी की स्थिति' म रहेगा और इसलिए इस अवधि मे आदोलन रोक देना ही बेहतर होगा (भले ही सरकार अपना दमनचक्र न रोके)।[5]

जुलाई 1932 म गाधी ने वायसराय स मिलने का अनुरोध किया पर उनका यह अनुरोध नामजूर कर दिया गया। वायसराय ने कहा कि जब तक सविनय अवज्ञा आदोलन अतिम तौर पर समाप्त नही कर दिया जाता, वह नही मिल सकते। काग्रेस के नेताओ ने फैसला किया कि सामूहिक आदोलन समाप्त करके व्यक्तिगत तौर पर सविनय अवज्ञा आदोलन शुरू किया जाए। इसके साथ ही काग्रेस के कायवाहक अध्यक्ष [illegible] स के सभी सगठना

को भग कर दिया। सरकार ने इस पर जो प्रतिक्रिया व्यक्त की वह यही थी कि व्यक्तिगत सत्याग्रहियो पर दमन और तेज कर दिया गया। अगस्त मे गाधी फिर गिरफ्तार कर लिए गए लेकिन उन्होंने अनशन शुरू कर दिया और एक महीने के अदर ही उन्हे रिहा कर दिया गया। शरद मे उन्होंने घोषणा की कि अब वह राजनीति मे भाग नही लेंगे क्योंकि उनकी अतरात्मा को अब यह गवारा नही है। उन्होंने हरिजनो के उद्धार के लिए यात्रा शुरू की। इस बीच आदोलन घिसटता रहा, न तो वह समाप्त ही हुआ और न उसका नतृत्व ही मिल सका।

वह आदोलन मई 1934 मे जाकर समाप्त हुआ जो 1930 मे बडी शान के साथ शुरू हुआ था। अप्रैल के महीने मे गाधी ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमे उन्होंने आदोलन की विफलता के कारणो के बारे मे अपनी राय जाहिर की थी। उनके विचार से आदोलन की विफलता का सारा दोष जनता पर था। 'मेरे विचार से जनता अभी तक सत्याग्रह का सदेश ग्रहण नही कर पाई है क्योकि यह जनता तक पहुचते पहुचते अशुद्ध हो जाता है। मेरे लिए अब यह बात साफ हो गई है कि आध्यात्मिक अस्त्रों के इस्तेमाल का तरीका जब गैरआध्यात्मिक माध्यमो से बताया जाता है जो वे अपनी ताकत खो बैठते है तमाम लोगो के निष्क्रिय सत्याग्रह से शासको का हृदय नही पसीजा है।' जन सत्याग्रहो के स्थान पर व्यक्तिगत सत्याग्रह का तरीका अपना लेने के बावजूद जनआदोलन को नियत्रण मे रखने की समस्या का समाधान नही हो सका। इसलिए अकाट्य तर्कपद्धति के आधार पर यह नतीजा निकाला गया कि 'एक समय मे केवल एक ही योग्य व्यक्ति को सत्याग्रह करना चाहिए।' 'वर्तमान परिस्थितियो मे फिलहाल मुझे ही सत्याग्रह की जिम्मेदारी उठानी चाहिए।' गाधीवादी सिद्धात ने भारतीय जनता की मुक्ति के लिए 'अहिंसक असहयोग' का जो रास्ता निर्धारित किया था, उसका अत मे जाकर यही असगत प्रदर्शन रहा।

मई 1934 मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी को पटना मे अपना अधिवेशन करने दिया गया ताकि वह बिना शर्त सत्याग्रह आदोलन समाप्त कर दे (गाधी द्वारा सुझाए गए एक-मात्र अपवाद को छोडकर)। सरकार ने न तो कोई शर्त रखी थी और न कोई रियायत दी थी। इसके साथ साथ कमेटी ने आने वाले चुनावो को सीधे काग्रेस के नाम पर लडने के लिए कुछ फैसले भी ले लिए थे। इसके लिए पहले से ही जमीन तैयार कर ली गई थी।

जून 1934 मे सरकार ने काग्रेस पर से प्रतिबध हटा लिया पर काग्रेस की सहयोगी सस्थाओ युवक सगठनो, किसान सभाओ और उत्तर पश्चिम सीमा प्रात (सरहदी सूबा) के लाल कुर्तीधारियो के सगठनो (खुदाई खिदमतगारो) पर प्रतिबध बना रहा। जुलाई 1931 मे सरकार ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी करार दिया। अब सघर्ष का एक नया अध्याय शुरू हो रहा था।

पाद टिप्पणियां

1 ब्रिटिश संस्थाओं के प्रति इन पुराने कांग्रेसी नेताओं की प्रचुर प्रशंसा भरे रुख की विडंबना पर भी गौर किया जाना चाहिए। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने ही 1892 के कांग्रेस अधिवेशन में एलान किया था हम एक विशाल और स्वतंत्र साम्राज्य के नागरिक हैं और हम एक ऐसे उदात्त संविधान की छत्रछाया में पल रहे हैं जैसा विश्व में पहले कभी न था। अंगरेजों के अधिकार हमारे अधिकार हैं उनके विशेषाधिकार हमारे विशेषाधिकार हैं उनका संविधान हमारा संविधान है। लेकिन हमें उनसे बहिष्कृत किया गया है।

2 बाद में बंबई के तत्कालीन गवर्नर लार्ड लायड ने एक भेंट वार्ता में 1922 के संकट के बारे में सरकार का दृष्टिकोण बताया। उन्होंने सरकार के इस दृष्टिकोण की भी अभिव्यक्ति की कि गांधी द्वारा आंदोलन वापस ले लिए जाने से ही सरकार बच सकी
उन्होंने हमारे अंदर दहशत फैला दी। उनके कार्यक्रम ने हमारी जेलें भर दीं। आप लगातार लोगों को गिरफ्तार करते ही जाएं यह नहीं हो सकता और खास तौर से तब जब लोगों की तादाद 31 करोड़ 90 लाख हो। अगर लोग उनके अगले कार्यक्रम पर अमल करना शुरू कर देते और टैक्स देना बंद कर देते तो भगवान ही जानता है कि हमारी क्या हालत होती।
विश्व इतिहास में गांधी का प्रयोग अत्यंत विराट था और इसे सफलता पाने में इंच भर की देर थी। लेकिन वह लोगों के उत्साह पर काबू नहीं पा सके। लोग उग्र हो उठे और उन्होंने अपना कार्यक्रम वापस ले लिया। बाद का किस्सा आपको पता ही है, हमने उन्हें जेल में डाल दिया। (ड्रियु पियर्सन के साथ लार्ड लायड की भेंटवार्ता जिसे सी० एफ० एंड्रूज ने 3 अप्रैल 1939 के 'न्यू रिपब्लिक' में उद्धृत किया है।)

3 1930 में असहयोग आंदोलन शुरू करने का गांधी का उद्देश्य यह था कि हिंसक क्रांति को पहले से ही रोकथाम कर दी जाए और अपने इस उद्देश्य को उन्होंने अपने वक्तव्यों और पत्रों में स्पष्ट कर दिया था। उनके शिष्य सी० एफ० एंड्रूज ने ही लिखा है
उनके पत्र मुझे मिले हैं जिनमें उन्होंने अपने व्यक्तिगत कारण बताए हैं, और उन्होंने समाचारपत्रों में उन बातों पर विस्तार से प्रकाश डाला है जिनके कारण उन्हें ऐसे कदम उठाने पड़े जो ऊपर से देखने पर हताशा में उठाए गए कदम लगते हैं। मिसाल के तौर पर उन्होंने मुझे लिखा कि भारत सरकार अपनी दमनकारी नीति के जरिए निरंतर हिंसा बढ़ाती जा रही है और इसकी सीधी प्रतिक्रिया—खासतौर से 'यंग इंडिया' में व्यक्त हुई। इस तरह की स्थिति से निबटने का एकमात्र तरीका यह था कि अहिंसात्मक आंदोलन चलाकर इसकी रोकथाम की जाए और इस काम की अगुवाई वह स्वयं करते हैं, चाहे इसमें कितना भी खतरा क्यों न हो। (स्पेक्टेटर में सी० एफ० एंड्रूज का लेख, 27 सितंबर 1930)

4 14 जुलाई 1930 को विधानसभा में सरकारी तौर पर दिए गए एक प्रश्नोत्तर में बताया गया कि 1 अप्रैल से 14 जुलाई तक गोलीकांड की 24 घटनाएं हुईं। इनमें 103 लोग मारे गए और 420 घायल हुए।

5 इस फैसले के जबरदस्त प्रहार के कारण ही सुभाषचंद्र बोस और वी० पटेल ने जो उस समय भारत से बाहर थे एक घोषणापत्र जारी किया जिसमें कहा गया था कि गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित करने का जो ताजा कदम उठाया है कि वे असफल हो चुके हैं—हमारी यह स्पष्ट राय है कि राजनेता के रूप में गांधी असफल हो चुके हैं। अब वह समय आ गया है जब एक नए सिद्धांत और नई कार्यपद्धति के आधार पर कांग्रेस का आमूल पुनर्गठन किया जाए और इसके लिए एक नए नेतृत्व का होना आवश्यक है।

1934 के शरद मे गाधी ने काग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया, उनका काम फिल हाल पूरा हो चुका था। काग्रेस से अलग होते हुए उन्होने एक वक्तव्य दिया जिसमे उन्होने बताया कि, 'मुझमे और अनेक काग्रेसियो म मतभेद है और वह बढता ही जा रहा है।' यह स्पष्ट था कि काग्रेसियो के बहुमत' के लिए 'अहिंसा' कोई 'बुनियादी धम' नही था बल्कि यह एक 'नीति' थी। काग्रेस मे समाजवादी लोगो की सख्या बढ रही थी और उनका प्रभाव भी बढ रहा था। 'यदि काग्रेस मे उनका प्रभुत्व कायम हो गया जिसकी काफी सभावना है तो मैं काग्रेस मे नही रह सकता।' यह नया चरण महसूस किया जा रहा था और पुराने विचारो के लोगो को यह पसद नही था। गाधी ने काग्रेस छोड दी लेकिन वह उससे तब तक अलग नही हुए जब तक उन्होने काग्रेस के सविधान एव सगठन मे कुछ प्रतिक्रियावादी सशोधन नही करा दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रगतिशील दिशा मे काग्रेस के बढने म काफी दिक्कतें आईं। अब वे पर्दे के पीछे रहकर काग्रेस के अत्यत शक्तिशाली पथप्रदशक बन गए और इस बात के लिए तैयार बैठे रहे कि जरूरत पडने पर फिर से काग्रेस का नेतृत्व अपन हाथ मे ले लें। 1939 40 के सकट म और फिर 1942 मे उन्होने काग्रेस का नेतृत्व सीधे अपने हाथ मे ले लिया।

1930-34 में सघष की जो महान लहर उठी थी, उसके दुखद अत मे हमे एक क्षण के लिए भी यह नही भूल जाना चाहिए कि इस आदोलन की महान उपलब्धिया रही, इसने अत्यत गभीर और स्थाई महत्व के सबक दिए तथा इसके महान लाभ प्राप्त हुए। इस आदोलन के पीछे जनता की असीम श्रद्धा, निष्ठा, त्याग और समथन था और इसमे कोई सदेह नही कि यह आदोलन सफलता के काफी करीब तक पहुच गया था लेकिन इसे अस्थाई तौर पर विफलता मिली। हम यह खोज करनी चाहिए कि नेताओ के किन तरीको और उनकी किन कायपद्धतियो के कारण यह असफल हो गया। इससे हमे एक महत्वपूण सबक मिलता है जिसका हमे बार बार अध्ययन करना चाहिए ताकि भविष्य मे हम उन खामियों को दूर कर सक। असफलता के कारणो का हम इस अध्याय मे वणन कर चुके है। लेकिन उन वर्षों मे जो घटनाए घटित हुईं, उनपर राष्ट्रीय आदोलन गव कर सकता है। साम्राज्यवादियो ने इन वर्षों मे दमन के अपने आधुनिक शस्त्रागार के प्रत्येक शस्त्र का इस्तेमाल किया ताकि भारत की जनता को वह अपनी मरजी के आगे झुका ले, उनको कुचलकर रख द और आजादो की उनकी लडाई को मटियामेट कर दे लेकिन वह इस काम म विफल रहा। साम्राज्यवादियो के जबरदस्त दमन के बावजूद दो वर्षों के अदर ही राष्ट्रीय आदोलन पहले से भी ज्यादा तीव्र वेग से आगे बढ चला। यह सघष व्यथ नही गया था। सघष की भट्टी म तपकर इस आदोलन ने जनता म एक नई और अपेक्षाकृत अधिक राष्ट्रीय एकता, आत्मविश्वास, गौरव और सकल्प को जन्म दिया। आज वे ही सघष फल दे रहे है। अतिम सघष आज भी सामने है। लेकिन आज इस सघष के लिए पहले से कही अधिक जबरदस्त तयारी है।

पाद टिप्पणियां

1 ब्रिटिश संस्थाओं के प्रति इन पुराने कांग्रेसी नेताओं की प्रचुर प्रशंसा भरे रुख की विडंबना पर भी गौर किया जाना चाहिए। सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने ही 1892 के कांग्रेस अधिवेशन में एलान किया था "हम एक विशाल और स्वतंत्र साम्राज्य के नागरिक हैं और हम एक ऐसे उदात्त संविधान की छत्रछाया में पल रहे हैं जैसा विश्व में पहले कभी न था। अंगरेजों के अधिकार हमारे अधिकार हैं उनके विशेषाधिकार हमारे विशेषाधिकार हैं, उनका संविधान हमारा संविधान है। लेकिन हम उनसे बहिष्कृत किया गया है।"

2 बाद में बंबई के तत्कालीन गवर्नर लार्ड लायड ने एक भेंट वार्ता में 1922 के संकट के बारे में सरकार का दृष्टिकोण बताया। उन्होंने सरकार के इस दृष्टिकोण की भी अभिव्यक्ति की कि गांधी द्वारा आंदोलन वापस ले लिए जाने से ही सरकार बच सकी

उन्होंने हमारे अंदर दहशत फैला दी। उनके कार्यक्रम ने हमारी जेलें भर दीं। आप लगातार लोगों को गिरफ्तार करते हो जाएं यह नहीं हो सकता और खास तौर से तब जब लोगों की तादात 31 करोड़ 90 लाख हो। अगर लोग उनके अगले कार्यक्रम पर अमल करना शुरू कर देते और टैक्स देना बंद कर देते तो भगवान ही जानता है कि हमारी क्या हालत होती।

विश्व इतिहास में गांधी का प्रयोग अत्यंत विराट था और इसे सफलता पाने में इंच भर की देर थी। लेकिन वह लोगों के उत्साह पर काबू नहीं पा सके। लोग उग्र हो उठे और उन्होंने अपना कार्यक्रम वापस ले लिया। बाद का किस्सा आपको पता ही है हमने उन्हें जेल में डाल दिया। (ड्रियु पियर्सन के साथ लार्ड लायड की भेंटवार्ता जिसे सी॰ एफ॰ एंड्रूज ने 3 अप्रैल 1939 के 'न्यू रिपब्लिक' में उद्धृत किया है।)

3 1930 में असहयोग आंदोलन शुरू करने का गांधी का उद्देश्य यह था कि हिंसक क्रांति को पहले से ही रोकथाम कर दी जाए और अपने इस उद्देश्य को उन्होंने अपने वक्तव्यों और पत्रों में स्पष्ट कर दिया था। उनके शिष्य सी॰ एफ॰ एंड्रूज ने ही लिखा है

उनके पत्र मुझे मिले हैं जिनमें उन्होंने अपने व्यक्तिगत कारण बताए हैं, और उन्होंने समाचारपत्रों में उन बातों पर विस्तार से प्रकाश डाला है जिनके कारण उन्हें ऐसे कदम उठाने पड़े जो ऊपर से देखने पर हताशा में उठाए गए कदम लगते हैं। मिसाल के तौर पर उन्होंने मुझे लिखा कि भारत सरकार अपनी दमनकारी नीति के जरिए दिनोंदिन हिंसा बढ़ाता जा रहा है और इसकी तीखी प्रतिक्रिया—खासतौर से 'यंग इंडिया' में व्यक्त हुई। इस तरह की स्थिति से निबटने का एकमात्र तरीका यह था कि अहिंसात्मक आंदोलन चलाकर इसकी रोकथाम की जाए और इस काम की अगुवाई वह स्वयं करते हैं, चाहे इसमें कितना भी खतरा क्यों न हो। ('स्पेक्टेटर' में सी॰ एफ॰ एंड्रूज का लेख 27 सितंबर 1930)

4 14 जुलाई 1930 को विधानसभा में सरकारी तौर पर दिए गए एक प्रश्नोत्तर में बताया गया कि 1 अप्रैल से 14 जुलाई तक गोलीकांड की 24 घटनाएं हुईं। इनमें 103 लोग मारे गए और 420 घायल हुए।

5 इस फैसले के अप्रत्याशित प्रहार के कारण ही सुभाषचंद्र बोस और वी॰ पटेल ने जो उस समय भारत से बाहर थे, एक घोषणापत्र जारी किया जिसमें कहा गया था कि "गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित करने का जो ताजा कदम उठाया है कि वे असफल हो चुके हैं—हमारी यह स्पष्ट राय है कि राजनेता के रूप में गांधी असफल हो चुके हैं। अब वह समय आ गया है जब एक नए सिद्धांत और नई कार्यपद्धति के आधार पर कांग्रेस का आमूल पुनर्गठन किया जाए और इसके लिए एक नए नेतृत्व का होना आवश्यक है।"

12

मजदूरवर्ग का उदय और समाजवाद

भारतीय मजदूरवग अब इतना परिपक्व हो चुका है कि वह वग चेतना से पूण और राजनीतिक जनसघष चला सकता है, और ऐसी स्थिति होने के कारण भारत मे आग्ल रूसी पद्धतिया पुरानी पड चुकी है। (1908 मे लेनिन का कथन)

37 वष पूव यह सभव था कि ब्रिटेन के मजदूरवग को सगठित करके और उनमे राजनीतिक चेतना का सचार करने म समाजवाद के पक्षधर जिन ब्रिटिश नेताओ ने अग्रगामी का काय किया और जिन्होने भारतीय जनता के मित्र तथा ब्रिटिश शासन के आलोचक के रूप मे भारत की यात्रा की, वे भारत से लौटने पर भारत के बारे म ऐसी पुस्तक लिखें जिसम भारतीय मजदूरवग का न तो कही उल्लेख हो और न इस बात की ही किसी सभावना का अदाजा लगाया गया हो कि भविष्य म यहा किसी मजदूर आदोलन का अस्तित्व हो सकता है (कीर हार्डी इडिया इम्प्रेशस ऐंड सजेशस', 1909 मे प्रकाशित)। इसी प्रकार 1910 मे प्रकाशित मैकडोनल्ड की पुस्तक दि अवेकेनिंग आफ इडिया' मे हम केवल एक स्थल ऐसा मिलता है जहा यह अटकल लगाइ गई है कि भविष्य म कभी भारत का मजदूरवग किसी तरह का मजदूर सगठन' बना सकता है ये सगठन सभवत भारत की जातियो और ग्रेट ब्रिटेन के मजदूर सघो के बीच होंगे।' (पृष्ठ 179)

भारतीय घटनाओ के विकासक्रम की भावी निर्णायक प्रति यह सकीण
अधापन जानबूझकर नही था। जो वास्तवि पडी थी उन्ह
उस समय केवल वही देख सक ष्ट माक्सव के लिए
उनके महत्व को समझ सकता ये म ही ' के उदय

का स्वागत किया था और कहा था कि यह वग अब इतना परिपक्व हो चुका है कि वह वगचेतना से पूण और राजनीतिक जनसघप छेड सकता है। लेनिन के इस कथन का आधार बबई के मिल मजदूरो की वह राजनीतिक हडताल थी जो उन्होने उस वप तिलक की गिरफ्तारी के विरोध मे की थी। इस हडताल के ही आधार पर लेनिन ने यह निष्कप निकाला था कि भारत मे ब्रिटिश शासन के दिन अब लद चुके ह।

आज घटनाओ के वेग न लेनिन की इस अतदृष्टि को सही साबित कर दिया है। इन घटनाओ के प्रति अब पहले की तरह आखें बद रखना सभव नही है। भारत के राष्ट्रीय सघप के इतिहास ने अपनी एक के बाद एक नई मजिल से यह प्रदर्शित कर दिया है कि मजदूरवग की भूमिका और उसका महत्व तेजी से बढ रहा है और समाजवाद या साम्य-वाद के प्रश्न भारत मे चलने वाली राजनीतिक बहस के मुख्य प्रश्न बन गए है।

1914 से पहले के वर्षो मे मजदूर वग की यह भूमिका पृष्ठभूमि मे पडी हुई थी। उस समय तक मजदूर वग राष्ट्रीय आदोलन के आगे चलने के बजाय उसके पीछे पीछे चलता था। उन वर्षो मे मजदूर वग ने जो एकमात्र असाधारण राजनीतिक काय किया वह था तिलक का 6 वप की सजा दिए जाने के विरोध मे बबई मे आम हडताल। प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति पर भारत मे चेतना के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। यह शुरुआत 1918-21 की जबरदस्त हडताल से हुई। इस हडताल ने राष्ट्रीय क्रातिकारी लहर के लिए अग्रदूत का काम किया और इसने ही अतत काग्रेस को भी आदोलन के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप 1920 22 का असहयोग आदोलन छिडा।

इसके दस वप बाद स्थिति यह थी कि मजदूर वग ने एक सगठित और स्वतत्र शक्ति का रूप ले लिया, उसकी अपनी विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र म प्रत्यक्ष भूमिका अदा करने लगी हालाकि उसने अभी तक नेतृत्व की भूमिका नही प्राप्त की। 1928 म जबरदस्त हडतालें हुई जिनका नेतृत्व जुझारू वगचेतना से लैस सवहारावग ने किया। इसके साथ साथ युवको और निम्न पूजीपतिवग के बीच भी एक नई चेतना आई और उन्होने राष्ट्रीय सघप की नई लहर का नेतृत्व किया। 1930-34 के सघप की इस नई लहर के दौरान भारत के बुजुर्आ नताओ ने साफ साफ कहा कि उन्ह दो मोर्चो पर एक साथ सघप चलाना पड रहा है वे एक तरफ साम्राज्यवाद के खिलाफ और दूसरी तरफ नीच से उठन वाले क्रातिकारी आदोलन के खिलाफ सघप कर रह हैं। दूसरा विश्वयुद्ध छिडन के बाद से यह बात अब पहले की तुलना म और स्पष्ट हो गई है कि भारत की भावी राजनीति मे मजदूर-वग ही निर्णायक शक्ति का काम करेगा।

1 औद्योगिक मजदूरवर्ग का विकास

प्रचलित अर्थो म वह तो भारतीय मजदूरवग सख्या की दृष्टि से भारत की आबादी की तुलना मे अधिक नही है। लेकिन चूकि निर्णायक केंद्रो पर इसका जमाव है इसलिए यह

सबसे ज्यादा सुसगत, सबसे ज्यादा विकसित, सर्वाधिक कृतसकल्प और बुनियादी तौर पर आबादी का सबसे अधिक क्रातिकारी हिस्सा है।

अक्तूबर 1922 म लीग आफ नेशस की कौंसिल मे ब्रिटिश सरकार की ओर से बोलते हुए लाड चेम्सफोर्ड ने कहा था कि भारत मे 2 करोड 'औद्योगिक मजदूर' है

> भारत के इस खास दावे का औचित्य सिद्ध करना अभी शेप है कि उसे आठ प्रमुख औद्योगिक देशो मे शामिल कर लिया जाए। उसके इस दावे के व्यापक सामान्य आधार हैं और इन दावो का औचित्य ठहराने के लिए आकडो की जरूरत नही है। भारत मे औद्योगिक मजदूरी पर जीवनयापन करने वालो की सख्या काफी है जो अनुमानत 2 करोड है। इसके अलावा खेतिहर मजदूरो की एक बडी तादाद है।

विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशो की श्रेणी म भारत को स्थान दिलाने के लिए बढाचढाकर इस तरह के दावे किए गए थ जो कूटनीतिक धोखाधडी का ही एक हिस्सा था। यह जिनेवा म ब्रिटिश सरकार के हाथो मे अतिरिक्त मत दिलाने की चाल थी। मजदूरो की सख्या जो दो करोड बताई गई थी, उसमे प्रचुर सख्या दस्तकारो और घरेलू उद्योगो म लग मजदूरा की थी जिनका आधुनिक उद्योग से कोई सबध न था।

इसी प्रकार 1927-28 मे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस के जिस प्रतिनिधिमडल ने भारत की यात्रा की थी उसने अपनी रिपोट म अनुमान लगाया था कि भारत मे 'सगठनीय मजदूरो' की सख्या ढाई करोड से अधिक है। लेकिन इस ढाई करोड म से कम से कम 2 करोड 15 लाख लोग खेतिहर सवहारा थे जो किसी पूजीवादी खेती म नही लगे थे (इनमे मे 10 लाख लोग बागानो मे काम करते थे), इन्हे कभी रोजगार मिलता था कभी नही मिलता था, ये अत्यत गरीबी की हालत मे थे और प्रचलित अर्थो मे किसी मजदूर सगठन की इनकी क्षमता नही थी (हालांकि किसान आदोलन मे इनकी बडी सक्षम भूमिका हो सकती थी)। उनके विश्लेषण के अनुसार, औद्योगिक सगठनीय मजदूरो' की सख्या मात्र 35 लाख थी।

भारतीय मजदूरवग की शक्ति का अनुमान लगाने के लिए यह भेद समझ लेना जरूरी है कि भारत म सपत्तिहीन सवहारा की सख्या काफी अधिक है और आधुनिक उद्योग मे लगे मजदूरो की सख्या कम है। लेकिन यही वह वग है जो भारतीय मजदूरवग का सबस सगठित, निर्णायक, सचेतन और अग्रणी हिस्सा है।

भारतीय मजदूरवग की सख्या का कोई आकडा उपलब्ध नही है। 1931 की जनगणना रिपोट के अनुसार

भारत जैसे विशाल आबादीवाले देश के सन्दर्भ मे देखें तो सगठित श्रम मे लगे मजदूरो की सख्या असाधारण रूप से कम है और ब्रिटिश भारत के सस्थानो म काम करने वालो की औसत दैनिक सख्या, जिनपर फैक्टरीज ऐक्ट लागू होता है, केवल 1,553,169 है

1921 मे सपूण भारत मे बागानो, खानों, उद्योग और परिवहन मे काम कर रहे लोगो की सख्या 24,239,555 थी जिनमे से केवल 22,685,909 लोग ऐसे सगठित सस्थानो मे थे जिनमे 10 या 10 से अधिक कमचारी काम करते हो।

1931 मे इसी खाते मे लोगो की कुल सख्या 26,187,689 थी और यदि इस तरह के सस्थानो म काम कर रहे श्रमिको का अनुपात वही हो तो यह सख्या अब 2,901,776 हो जाएगी। औसतन रोजाना काम करने वालों की सख्या से पता चलता है कि पिछले 10 वर्षों के दौरान इस सख्या मे लगभग 30 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। इस हिसाब से यह सख्या इस समय 3,500 000 होनी चाहिए। 1931 मे भारत म सगठित मजदूरो की सख्या यदि 5,000 000 मान लें ता सभवत यह उचित सख्या होगी। (सेंसस आफ इडिया, 1931, खड 1, भाग 1, पृष्ठ 285)

व्यापक अर्थों म ले, ता भारत मे मजदूरी पर अपनी जीविका चलाने वालो की सख्या अनुमानत लगभग 6 करोड थी। भारतीय मताधिकार समिति (इडियन फ्रैंचाइज कमेटी) के अनुसार 1931 म यह सख्या 5 करोड 65 लाख थी

1921 मे खेतिहर मजदूरो की कुल सख्या 2 करोड 15 लाख बताई गई थी जबकि 1931 की जनगणना से पता चला कि यह सख्या 3 करोड 15 लाख से अधिक हो गई है। इसमे से, भारतीय मताधिकार समिति के अनुसार 2 करोड 30 लाख लाग भूमिहीन थे और समिति के अनुसार गैरखेतिहर मजदूरो की कुल सख्या 2 करोड 50 लाख थी। इस प्रकार सपूर्ण भारत मे विभिन्न धधो मे लगे लोगा की 15 करोड 40 लाख की सख्या मे से मजदूरी पर जीने वाला की सख्या 5 करोड 65 लाख आती है। कहने का तात्पय यह है कि सभी तरह के धधा मे लगी पूरी कुल आबादी का 36 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा मजदूरी करके अपनी रोटी चलाता है। (आई० एल० ओ० रिपोर्ट 1938, 'इडस्ट्रियल लेबर इन इडिया', पृष्ठ 30)

यदि औद्योगिक सर्वहारा शब्द का बहुत सकीण अर्थों मे लिया जाए और इस श्रेणी म केवल उन्ही लोगा को रखा जाए जा आधुनिक उद्योगों म लगे हैं और छाटे कारखानो मे काम करने वाले मजदूरा को छोड दिया जाए तो 1921 की जनगणना से हम पता चलता

फैक्टरीज एक्ट के आकडा मे औद्योगिक सर्वहारा की वृद्धि का ब्यौरा दिया हुआ है (इससे इस ऐक्ट के तहत निर्धारित क्षेत्र के विस्तार का भी पता चलता है)

सन	कारखानो की सख्या	रोजाना काम करने वालो की औसत सख्या
1894	815	349,810
1902	1,533	541,634
1914	2,936	950 973
1918	3,436	1,122,922
1922	5,144	1,361,002
1926	7,251	1,518,391
1930	8 148	1,528,302
1935	8,831	1,610,932
1936	9,323	1,652,147
1938	9,743	1,737,755
1939	*10,466*	*1 751,137*
1943	13,209	2 436,310
1944	14 071	2,522,753

2 मजदूरवर्ग की हालत

भारत मे मजदूरवग की स्थिति के बारे मे हमने इस पुस्तक के दूसरे अध्याय म एक सामान्य तस्वीर पेश की है। 1928 म ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रतिनिधिमडल न भारत की यात्रा के बाद जो रिपोट पेश की थी, उसके निष्कर्षों को उद्धृत करना प्रासगिक होगा

> सारी जाच पडताल से पता चलता है कि भारत के मजदूरा की एक विशाल सख्या को लगभग 1 शिलिंग प्रतिदिन से अधिक मजदूरी नही मिलती। बगाल प्रात मे औद्योगिक मजदूरो का सबसे बडा हिस्सा है और इस सूबे म जाच से यही पता लगाया जा सका है कि यहा के 60 प्रतिशत मजदूरो की अधिकतम मजदूरी 1 शिलिंग 2 पेंस प्रतिदिन से अधिक नही है। यह राशि पुरुषा के लिए कहीं कहीं सा 7 पेंस प्रतिदिन और महिलाओ तथा बच्चो के लिए 3 से 7 पेंस प्रतिदिन तक है हमारी अपनी जाचो से भी पता चला है कि इतनी ही मजदूरी मिलती है और वस्तुत दक्षिण मजदूरी के बारे मे हमे जो आकडे मिल है वे महिलाओ के लिए सवा तीन पेंस प्रतिदिन और पुरुषा के लिए 7 पेंस या इससे भी कम है। (ए० ए० परसेल और जे० हाल्सवथ, 'रिपाट आन लेबर कडीशन इन इडिया', ट्रेड यूनियन काग्रेस, 1928, पृष्ठ 10)

इसी प्रतिनिधिमडल न मजदूरो के आवास के बारे म लिखा

है कि दस या इसस ज्यादा मजदूरा से काम लेन वाले कारखानो के मजदूरा की कुल सख्या 26 लाख थी। इसके बाद कोई औद्योगिक जनगणना नही हुई लकिन ऊपर 1931 की जिस जनगणना का उल्लेख है, उसके अनुसार ऐसे मजदूरो की सख्या 35 लाख तक हो गई है। फैक्टरीज ऐक्ट प्रशासन ही सही आकडे दे सकता है। 1934 के ताजा फैक्टरीज ऐक्ट क अतगत वही कारखाने आते ह जिनम विद्युतशक्ति से मशीनें चलती हैं और जिनम बीस या उससे ज्यादा मजदूर और कही कही 10 या 10 से ज्यादा मजदूर काम करते है। इस तरह के कारखाना म 1938 म कुल 1,737,755 मजदूर काम करते थे। इस सख्या म उन 299 003 मजदूरा को जोडना पडगा जो भारतीय रियासता के 'बडे औद्योगिक सस्थानो' मे काम करते थे। इस प्रकार भारत के बडे और आधुनिक उद्योगा मे काम करने वाले मजदूरो की कुल सख्या 2,036,758 थी।

इसको आधार मानकर हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुचते है

मझोले और बडे कारखानों मे मजदूरा की सख्या

(उपयुक्त आधार पर)	2,036 758
खान मजदूर	413 458
रेल मजदूर	701,307
जल परिवहन	
(गोदी मजदूर नाविक)*	361,000
इन सब वर्गों का जोड	3,512 523

*यह 1935 की सख्या है।

यह 35 लाख मजदूर आज के भारत के विशाल आधुनिक उद्योगो मे कायरत औद्योगिक सवहारा के मूल तत्व हैं। इसमे वे मजदूर नही शामिल है जो छोटे उद्योगा म (अर्थात दस से कम मजदूरावाले उद्योगा म) काम करते है या ऐसे बडे कारखाना मे काम करत है जिनमे विद्युत शक्ति का इस्तेमाल नही होता है (जैसे सिगरेट बनान के कुछ कारखानो म जिनमे बिना पावर के मशीनें चलती है 50 से अधिक व्यक्ति काम करते है)। सगठित मजदूर आदोलन की ताकत का सही सही अदाजा लगाने की दृष्टि स हम इस सख्या म उन दस लाख स ज्यादा मजदूरा का भी जोडना पडेगा जो बागानो म काम करते हैं। बागानो म काम करने वाले मजदूर एसे मजदूर है जिन्ह काफी बडे उद्योगा म लगाकर अत्यत वैज्ञानिक ढग से दासता की बेडिया म जकड दिया जाता है। इन मजदूरा ने अशाति के दिनो म अपनी जबरदस्त जुझारू गतिविधिया का परिचय दिया है हालाकि य अभी तक हर तरह के सगठनो से कटे हुए ह और इन्हे गुलाम बनाकर बिलकुल अलग थलग रखा गया है। इसके अलावा छोट मोट उद्योगो और फैक्टरीज ऐक्ट के दायरे म न आने वाल बडे उद्योगो क मजदूरा के एक हिस्स को भी जोडना चाहिए। इस प्रकार भारत म सगठित किए जान याग्य कुल मजदूरो की सख्या 50 लाख स ज्यादा हानी चाहिए।

फैक्टरीज ऐक्ट के आकडा मे औद्योगिक सर्वहारा की वृद्धि का ब्यौरा दिया हुआ है (इससे इस ऐक्ट के तहत निर्धारित क्षेत्र के विस्तार का भी पता चलता है)

सन	कारखानो की सख्या	रोजाना काम करने वालो की औसत सख्या
1894	815	349,810
1902	1,533	541,634
1914	2,936	950,973
1918	3,436	1,122,922
1922	5 144	1,361,002
1926	7,251	1,518,391
1930	8 148	1,528,302
1935	8,831	1,610 932
1936	9,323	1,652,147
1938	9,743	1,737,755
1939	10 466	1,751,137
1943	13,209	2,436,310
1944	14 071	2 522,753

2 मजदूरवर्ग की हालत

भारत मे मजदूरवग की स्थिति के बारे म हमने इस पुस्तक के दूसरे अध्याय मे एक सामान्य तस्वीर पश की है। 1928 म ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रतिनिधिमडल ने भारत की यात्रा के बाद जो रिपोट पेश की थी, उसके निष्कर्षों को उद्धत करना प्रासगिक होगा

> सारी जाच पडताल से पता चलता है कि भारत के मजदूरो की एक विशाल सख्या को लगभग 1 शिलिंग प्रतिदिन से अधिक मजदूरी नही मिलती। बगाल प्रात म औद्योगिक मजदूरो का सबसे बडा हिस्सा है और इस सूबे मे जाच से यही पता लगाया जा सका है कि यहा के 60 प्रतिशत मजदूरो की अधिकतम मजदूरी 1 शिलिंग 2 पेंस प्रतिदिन से अधिक नही है। यह राशि पुरुषा के लिए कही कही तो 7 पेस प्रतिदिन और महिलाओ तथा बच्चो के लिए 3 से 7 पेंस प्रतिदिन तक है हमारी अपनी जाचा से भी पता चला है कि इन्हे इतनी ही मजदूरी मिलती है और वस्तुत दैनिक मजदूरी के बारे मे हम जो आकडे मिले हैं वे महिलाओ के लिए सवा तीन पेंस प्रतिदिन और पुरुषो के लिए 7 पेस या इससे भी कम है। (ए० ए० परसेल और जे० हालसवथ, 'रिपोट आन लेबर कडीशस इन इडिया', ट्रेड यूनियन काग्रेस, 1928, पृष्ठ 10)

इसी प्रतिनिधिमडल ने मजदूरो के आवास के बारे मे लिखा

हम जहा कही भी ठहरे वहा हमने मजदूरो के क्वाटरो को देखा और यदि हमने स्वय यह सब नही देखा होता तो हम यह यकीन नही होता कि ऐसी गदी जगह भी है यहा 'लाइनो' मे मकानो के समूह हैं जिनके मालिक इन मकानो के किरायेदारो से किराए के रूप मे प्रतिमाह 4 शिलिंग 6 पेंस लेते ह। मकान के नाम पर यह 9 फीट लबी और 9 फीट चौडी एक अधेरी कोठरी है जिसकी दीवालें मिटटी की है और टूटी-फूटी छत है। इसी कमरे म लोग रहते हैं, खाना बनाते है और सोते भी है। इन कमरा के सामने एक छोटा सा आगन है जिसके एक कोने मे पाखाना बना है। रहने क मकान मे कोई खिडकी नही है, केवल दरवाजे क ऊपर छत को तोडकर एक सुराख बनाया गया है जिससे रोशनी और हवा आ सकती है। इन कोठरियो के बाहर एक लबी सकरी नाली है जिसमे हर तरह का कूडा कचरा डाला जाता है और जिसपर ढेर सारी मक्खिया भिनभिनाती रहती हैं सभी कोठरियो के बाहर दोनो सिरो पर, लाइनो के बीच छोटी सी जगह है जहा खुली गलिया ह। ये गलिया कूडो के मलबो से बद हैं और इनसे भयकर बदबू आती है। जाहिर है कि इन गलियो को लोग, खास तौर से बच्चे शौचालय के रूप म इस्तेमाल करते है

हर जगह लोगो की भीड भरी है और गदगी का साम्राज्य है। इससे पता चलता है कि सबद्ध अधिकारी अपने क्तव्य की कितनी जबरदस्त उपेक्षा करते है। (वही, पृष्ठ 8 9)

यह रिपोट 11 वप पूव जारी की गई थी। तब से आज तक ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस ने अपना कोई प्रतिनिधिमडल भारत नही भेजा।

1938 मे भारतीय मजदूरो के प्रतिनिधि एस० वी० परलेकर ने जिनेवा म अतर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन के समान जा रिपोट पेश की थी उससे इधर हाल के वर्षों की तस्वीर मिलती है। इससे पता चलता है कि मजदूरा की हालत म कितनी तब्दीली आई है, या यो कह कि मजदूरो की हालत और कितनी बदतर हुई है

भारत म मजदूरो के अधिकाश को जितनी मजदूरी मिलती है उससे वे अपनी मामूली से मामूली जरूरत भी पूरी नही कर सकत। 1921 म श्री फिंडले शिराज ने बबई मजदूरो के मासिक आय व्यय की जाच के बाद बताया था कि औद्योगिक मजदूर उतना ही अनाज खाता है जितना अकाल सहिता के अतगत सरकार अकालपीडितो को देती है लेकिन बबई की जेल सहिता के अतगत कदियो को जितना भोजन दिया जाता है मजदूर को उससे कम ही अनाज मिल पाता है। उस रिपोट के प्रकाशित होन के बाद स स्थिति बदतर ही हुइ है क्योकि 1921 की आय की तुलना म आज आय म और गिरावट आई है।

1935 मे ववई सरकार न मजदूरी के सबध मे जो जाच की थी उसकी रिपोट से पता चलता है कि सगठित और प्रमुख उद्योग, सूती कपडा उद्योग म मजदूरो की हालत कितनी दयनीय है। रिपोट के अनुसार गोवाक म 18 प्रतिशत मजदूरो की मासिक आय 3 शिलिंग से 9 शिलिंग के बीच है। शोलापुर म 32 प्रतिशत मजदूरा की मासिक आय 7 शिलिंग 6 पेंस से 15 शिलिंग के बीच है और 20 प्रतिशत मजदूरो की मासिक आय 22 शिलिंग 6 पेंस से कम है। इसी प्रकार बबई शहर म 32 प्रतिशत मजदूर 22 शिलिंग 6 पेंस से 30 शिलिंग के बीच मजदूरी पाते है।

असगठित उद्योगो म, जिनकी सख्या भारत म काफी है मजदूरो की क्या हालत होगी इसकी कल्पना की जा सकती है। जमीन से किसानो को वेदखल किए जाने का काम दिन दूना रात चौगुना वढ रहा है और मिलमालिका ने इस वग के होने का लाभ उठाकर मजदूरी इतनी कम कर दी है जिससे किसी का गुजारा भी नही चल सकता। और व मजदूरी की दर को उसी सीमा तक भी बढाना नही चाहते जहा तक उद्योग की स्थिति को देखते हुए वे बढा सकते हैं

भारत के मजदूरा को बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था और मृत्यु के समय मदद मिलने की कोई व्यवस्था नही है भारत सरकार ने, बेराजगारों को कोई भत्ता देने की कोई योजना तैयार करने से लगातार इकार किया है ऐसी कई घटनाए देखने मे आई हैं जब वेरोजगारी से अपनी रक्षा के लिए मजदूरो ने आत्महत्या कर ली हो। बबई शहर की नगरपालिका की रिपोट मे भूख से हुई मौते भी दज हैं।

1931 की जनगणना रिपोट म यह बताया गया है कि भारत के सबसे बडे औद्योगिक शहर बबई म लाग जिस तरह से घरा म रहत है वह किसी भी सभ्य समाज के लिए शम की बात है। यहा 95 प्रतिशत मजदूर परिवार औसतन 110 वग फीट की खोली मे अपना जीवन बिताते हैं। बबई मे हजारा की सख्या मे ऐसे मजदूर है जो फुटपाथ पर ही अपनी जिदगी बिता रहे हैं।

	प्रति हजार पर मरने वाले बच्चों की सख्या
एक कोठरी या इससे कम मे रहने वाले परिवार	524 0
दो कमरा म रहने वाले लोग	394 5
तीन कमरो मे रहने वाले लोग	255 4
चार कमरो या इससे अधिक म रहने वाले लोग	246 5

> पृष्ठ 397 पर दिए गए आकडो से पता चलता है कि बबई मे 1933-34 मे बच्चे की शैशवावस्था मे मृत्यु दर क्या थी। बाकी आबादी के मुकाबले मजदूरो के कितने बच्चे मरते है यह देखकर हैरानी होती है
>
> तब से आज तक हालत म कोई सुधार नही हुआ है। सरकार ने ऐसा कोई उपाय नही किया जिससे मजदूरो को उतने किराए पर स्वास्थ्यप्रद मकान दिया जा सके जितना वे भुगतान कर सकते हो और इस प्रकार मृत्यु दर को या यह कहना ज्यादा सही होगा कि मजदूरो के बच्चो के नरसहार को रोका जा सके।
> (जुलाई 1938 मे जिनेवा मे आयोजित अतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे भारतीय मजदूरो के प्रतिनिधि एस० वी० परुलेकर का भाषण)

भारतीय उद्योग मे वेतन स्तरो तथा मजदूरी के बारे म सामान्य तौर पर किया गया व्यापक सर्वेक्षण 1831 की व्हिटले कमीशन रिपोर्ट मे बाहर डी० एच० बुकानन की पुस्तक 'दि डेवलपमट आफ कैपिटलिस्ट एटरप्राइज इन इडिया' (1934) के पद्रहवें अध्याय म पृष्ठ 317-60 पर मिलेगा। इस पुस्तक म लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि '1860 से 1890 के बीच भारतीय कारखाना उद्योग की वास्तविक आय म बहुत मामूली तब्दीली का आभास मिलता है', 1890 से 1914 के बीच 'कीमतो म तजी स वृद्धि हुई और मजदूरी म भी इसके अनुरूप वृद्धि हुई हालाकि यह वृद्धि कीमतो म हुई वृद्धि से कम ही रही।' इसके साथ ही विश्वयुद्ध की विभीषिका के कारण अनेक वर्षों तक मजदूरी की दर म काफी कमी रही और फिर यह तेजी स बढ़ी। लकिन यह वृद्धि बहुत असमान थी और कही कही तो ऊची कीमतो के बिलकुल अनुरूप थी।' इस प्रकार 1914-18 के युद्ध की समाप्ति तक वास्तविक मजदूरी के स्तर म कोई वृद्धि नही हुई उलटे मजदूरी के स्तर म जो परिवतन आया उसे गिरावट ही कहा जाना ठीक होगा। बाद के वर्षों म कही जाकर इसम कोई परिवतन हुआ। 'युद्ध के बाद से मजदूरी के प्रश्न को लेकर अनेक विवाद हुए और जबकि कही कही हल्की सी मदी की स्थिति देखन म आई कही कही उल्लेखनीय प्रगति के भी सकत मिले।' 'कुछ उद्योगो म खासतौर से बबई के कपडा उद्योग म मजदूरी की दर मे जो वृद्धि हुई वह जीवनयापन के खच की तुलना म काफी अधिक थी। हाल के वर्षों म जबकि कीमतो म इतनी तेजी से गिरावट आई है मजदूरी की पुरानी दर बनी रहने दी गई है। मजदूर इतना जागरूक हो गया है कि यदि उसके वेतन म कटौती की जाए तो भयकर कठिनाई का सामना करना पड़ता है।' युद्ध के कारण जो आर्थिक मदी आई थी उसम मजदूरी म कटौती के जरिए और बेरोजगारी आदि की वजह से काफी नुकसान का सामना करना पडा तो भी वास्तविक मजदूरी के क्षेत्र म जो उपलब्धियां थी और युद्ध पूव के वर्ष म जो प्रगति की गई थी वह बनाए रखी गई। इसके लिए 19?? म कानपुर के कपडा मिलमजदूरो की [illegible] का [illegible] जा सकता है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि भारत के औद्योगिक मजदूरों की वास्तविक मजदूरी म वृद्धि तभी हुई है जब उनका ट्रेड यूनियन गतिविधियो म भी वृद्धि हुई है। यह

भी देखा जाता है कि जहा जहा जिस सीमा तक मजदूर सगठनो की शक्ति थी वहा उसी के अनुसार मजदूरी भी बढी। लेकिन अत्यत पिछडे मजदूरो के वग को इससे कोई फायदा नही हुआ है।

भारत मे कहा कितनी मजदूरी मिलती है इसके बारे में सामान्यतौर पर कोई आकडे नही मिलते। इसका भी कोई ब्यौरा नही मिलता कि एक औद्योगिक केंद्र मे एक ही तरह के काम के लिए एक जैसी मजदूरी मिलती हो। ह्विटले कमीशन ने अपनी रिपोट मे 1925 से 1929 तक पाच वप की अवधि मे मजदूरो के मुआवजा कानून के अन्तगत चलने वाले मुकदमो के आकडा का अध्ययन किया था जिससे इस बात का पता चलता है कि अधकुशल औद्योगिक मजदूरो को किस दर से मजदूरी मिलती है। यहा तक कि अकुशल मजदूरा या कम वेतन पाने वाले मजदूरो के बारे मे इन मुकदमो से कुछ नही मालूम हो सकता था क्योकि ऐसे मजदूर बहुत असहाय होते है और उनमे से बहुतो को तो मुआवजा कानून की कोई जानकारी नही होती। इन मुकदमो के कागजा से प्राप्त होने वाले आकडो को सरकारी अधिकारिया ने यह कहकर पश किया था कि उनसे सगठित उद्योगो के अधकुशल मजदूरो की मजदूरी की दरो का मोटेतौर पर अनुमान लग सकता है' (इसमे बच्चा, अकुशल मजदूरा और असगठित उद्योगो के बहुत कम मजदूरी पाने वाले मजदूरो को छोड दिया गया है) इन आकडो से बहुत ही चौका देने वाली तस्वीर सामने आती है। गैरभारतीय पाठको के सामने इन आकडो को पश करने के लिए हमने रुपये की मुद्रा को अगरेजी मुद्रा मे तब्दील ही नही किया है बल्कि रुपये की कीमत एक शिलिंग 6 पेंस मान कर और इसीके आधार पर महीने की कुल राशि को साप्ताहिक राशि म बाट दिया है। इस तरह के आकडो से निम्नाकित तस्वीर सामने आती है

सगठित उद्योग मे लगे अधकुशल बालिग मजदूरो की औसत आय

	4 शि० 6 पें० से कम	4 शि० 6 पें० स 6 शि०	6 शि० से 7 शि० 9 पें०	7 शि० 9 पें० से 9 शि० 6 पें०	9 शि० 9 6 पें० से 11 शि० 3 पें०	11 शि० 3 पें० तथा इससे अधिक
सयुक्त प्रात	26	27	15	9	7	16
मद्रास	22	25	19	15	4	15
मध्य प्रात	18	38	17	8	4	15
बिहार और उडीसा	21	24	21	12	8	14
बगाल	13	18	18	15	10	26
बबई	3	10	19	23	13	23

(भारत म श्रम स्थिति के बारे में ह्विटले कमीशन की रिपोट से ली गई तालिका, पृष्ठ 204। इसे उपर्युक्त आधार पर ब्रिटिश मुद्रा के समतुल्य रखकर पेश किया गया है।)

इस प्रकार सयुक्त प्रात मे एक चौथाई से ज्यादा अधकुशल बालिग मजदूरो को प्रति सप्ताह 4 शिलिंग 6 पेंस से कम और आधे से ज्यादा को 6 शिलिंग से भी कम मजदूरी मिलती थी। मध्य प्रात मे आधे से ज्यादा अधकुशल मजदूरो को और मद्रास, बिहार तथा उडीसा मे लगभग आधे मजदूरो को 6 शिलिंग से कम मजदूरी मिलती थी। बगाल मे आधे मजदूर 7 शिलिंग 9 पेंस से कम मजदूरी प्रति सप्ताह पाते थे और यहा तक कि बबई म जहा जीवनयापन का खच अपक्षाकृत अधिक है आधे से ज्यादा मजदूर प्रति सप्ताह 9 शिलिंग 6 पेंस से कम ही मजदूरी पाते थे।

ये आकडे अपेक्षाकृत बेहतर परिस्थितियो म रहने वाले मजदूरो के है। इनसे सभी मजदूरो के बारे मे कोई आम जानकारी नही पाई जा सकती। इधर हाल के वर्षों म प्रातीय श्रम विभागो की ओर से मजदूर परिवारो के आय व्यय के बारे मे अनक जाचें की गई हैं और उनके निष्कप प्रकाशित किए गए है। इन विभागो द्वारा 1935 मे बबई म (जाच म 1932 33 की अवधि को लिया गया) 1937 मे अहमदाबाद म और 1938 मे मद्रास मे की गई जाच के नतीजे प्रकाशित किए गए। इससे पहले 1928 मे शोलापुर के बारे म इसी तरह की जाच की एक रिपोट प्रकाशित हुई थी जिसम वप 1925 की अवधि को जाच के लिए चुना गया था।

इन निष्कर्षों से पता चला कि औसतन एक परिवार की आय (किसी व्यक्ति की आय नही) बबई म 50 रुपये मासिक या 17 शिलिंग 4 पेंस प्रति सप्ताह थी, अहमदाबाद म 46 रुपये मासिक या 15 शिलिंग 11 पेंस प्रति सप्ताह शोलापुर म 40 रुपये मासिक या 13 शिलिंग 10 पेंस प्रति सप्ताह, मद्रास म सगठित उद्योगो के मजदूरो के लिए 37 रुपये मासिक या 12 शिलिंग 10 पेंस प्रति सप्ताह और असगठित उद्योगो तथा व्यवसायो मे लगे मजदूरो के लिए 20 से 27 रुपये मासिक या 7 शिलिंग से 9 शिलिंग 3 पेंस प्रति सप्ताह मजदूरी थी। बबई शोलापुर और अहमदाबाद की जाचो से पता चला कि औसतन एक परिवार मे कुल सदस्यो की सख्या चार होती है जिनमे से डेढ या दो आदमी काम करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त आकडो को एक तिहाई से लेकर आधे तक कम कर दिया जाना चाहिए। इससे जो परिणाम प्राप्त होगा वह इस प्रकार होगा बबई के लिए औसत मजदूरी 9 शिलिंग 10 पेंस प्रति सप्ताह, अहमदाबाद के लिए 9 शिलिंग 1 पेंस प्रति सप्ताह शोलापुर के लिए 7 शिलिंग 11 पेंस प्रति सप्ताह मद्रास के लिए सगठित उद्योगो के लिए 7 शिलिंग 4 पेंस और असगठित उद्योगो के लिए 4 शिलिंग से लेकर 5 शिलिंग 3 पेंस प्रति सप्ताह।

यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि निर्धारित मजदूरी म से अनेक तरह की कटौती हो जाती है। कमीशन जुर्माना, फोरमैन को दी जाने वाली रिश्वत और मजदूरो पर लदे हुए कर्जे को भयकर सूद के कारण कटौती होते होते कागज पर लिखी तनख्वाह कुछ की कुछ हो

जाती है (मजदूरों के लिए कर्जा लेना जरूरी हो जाता है क्योंकि अधिकांश मजदूरों को मासिक वेतन मिलता है और प्राय महीना खत्म हो जाने के भी दस पद्रह दिन बाद पैसे दिए जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक मजदूर को लगभग 6 सप्ताह उधार लेकर खर्च चलाना पडता है)। ह्विटले कमीशन ने अनुमान लगाया था कि 'अधिकाश औद्योगिक केंद्रों मे कम से कम दो तिहाई मजदूर या उनके परिवार ऐसे है जो कर्ज मे लदे हुए हैं और इनमे से ज्यादातर मजदूरों का कर्ज उनकी तीन महीने की तनख्वाह से ज्यादा है और कभी कभी तो कर्ज की राशि इन तीन महीनो की तनख्वाह की राशि से बहुत ज्यादा हो जाती है।' बाद की जाच पडतालो से पता चला कि ह्विटले कमीशन ने अपने अनुमान से कर्ज मे लदे मजदूरो की दो तिहाई की जो सख्या बताई थी वह वास्तविक सख्या से काफी कम है। ऊपर बबई की जिस जाच का हमने उद्धरण दिया है उसके अनुसार 75 प्रतिशत परिवार कर्ज से लदे पाए गए। मद्रास की रिपोर्ट से पता चला कि सगठित उद्योगो के 90 प्रतिशत मजदूरो पर कर्ज का बोझ था और औसतन प्रत्येक का कर्ज छ महीने की तनख्वाह से ज्यादा था।

गोदी कर्मचारियो की तनख्वाह भी काफी कम है। रेगे कमेटी (1946) द्वारा की गई जाच पडताल के अनुसार कालीन गादी म काम करने वाले कुल कर्मचारियो म से 30 5 प्रतिशत कर्मचारी प्रतिदिन एक रुपये से कम मजदूरी पाते हैं और 68 प्रतिशत कर्मचारी प्रतिदिन एक रुपये से लेकर दो रुपये तक की मजदूरी पाते हैं। सिंधिया शिपयार्ड म 82 प्रतिशत कर्मचारियो की मजदूरी प्रतिदिन एक रुपये से भी कम है।

खानो म काम करने वालो की मजदूरी खासतौर स बहुत कम है और हाल के वर्षों म उनकी मजदूरी म से जबरदस्त कटौती भी हुई है। भारत की कोयला खानो म काम करने वाले कुल मजदूरो का 4/5 हिस्सा रानीगज और झरिया की कोयला खानो म काम करता है। रानीगज की कोयला खान म 1914 से पहले खनिको की मजदूरी 6 आना या 6 पेंस प्रतिदिन थी। युद्ध के बाद इस राशि म वृद्धि हुई और 1929 तक यह राशि बढकर 13 आना या एक शिलिंग दो पेंस प्रतिदिन हो गई थी। 1936 तक यह राशि घटकर सवा सात आना या आठ पेंस प्रति दिन हो गई थी। कोयला खान मैनेजरो के राष्ट्रीय सघ के अध्यक्ष ने फरवरी 1937 मे 'मजदूरो की अत्यत दयनीय मजदूरी' के बारे मे ठीक ही कहा था। भारत म एक खनिक औसतन 131 टन कोयला प्रति वर्ष निकालता है जबकि जापान म एक खनिक प्रति वर्ष 260 टन, ब्रिटेन म 298 टन और अमरीका मे 671 टन कोयला निकालता है।

बागानो के मजदूरो की हालत तो सबसे खराब है। असम घाटी के चायबागानो म (भारत की ज्यादातर चाय असम और बगाल मे पैदा होती है) बसे मजदूरो मे पुरुषो की औसत मासिक आय 7 रुपये 13 आने, औरतो की 5 रुपये 14 आने और बच्चो की 4 ... 4 आने होती है। (शिवराव 'दि इडस्ट्रियल वर्कर इन इन्डिया, 1939, पृष्ठ 128)

राशि पुरुषों के लिए प्रति सप्ताह 2 शिलिंग 8 पेंस, महिलाओं के लिए 2 शिलिंग और बच्चो के लिए 1 शिलिंग 5 5 पेंस के बराबर है। इसके अलावा इन मजदूरो को नि शुल्क 'घर' की सुविधा और चिकित्सा की सुविधा तथा जो अन्य रियायतें मिली हुई हैं उनसे इनकी गुलामो जैसी हालत का ही सबूत मिलता है। सूरमा घाटी म मजदूरी की दर और भी कम है। रेगे कमेटी ने बताया था कि सूरमा घाटी म मासिक वेतन की जो दर है वह असम घाटी की तुलना म लगभग 2 रुपये कम है। दक्षिण भारत के बागानो म मजदूरी की दर पुरुषो के लिए 4 से 5 आना (4 5 पेंस से 5 5 पेंस) प्रतिदिन और महिलाओ के लिए 3 आना (3 5 पेंस) से भी कम है।

इतने बडे पैमाने पर शोषण करके कितना जबरदस्त मुनाफा कमाया जाता है इसके बारे मे बागानों के मालिक काफी कुख्यात है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद व्यवसाय मे आई तेजी के कारण इन मालिको का मुनाफा आसमान पर पहुच गया। 1925 मे डडी की जूट मिल मजदूर यूनियनो के प्रतिनिधिमडल ने जूट उद्योग के सदभ मे यह रिपोट दी थी

> रिजव कोषो और मुनाफे का जोडने पर पता चलेगा कि 10 साल के दौरान (1915 से 1924 तक) 30 करोड पौड का मुनाफा हिस्सेदारो को मिला है। दूसरे शब्दो मे कह तो यह जूट उद्योग म लगी हुई पूजी पर 90 प्रतिशत सालाना का लाभ है। जूट उद्योग मे 3 लाख से लेकर 3 लाख 27 हजार मजदूर काम करते हैं और उन्हे औसतन् प्रति वष 12 पौड 10 शिलिंग मजदूरी के रूप मे प्राप्त होते हैं। 3 लाख मजदूरो मे 10 वर्षो के दौरान 30 करोड पौंड का मुनाफा वसूलने का अथ यह होता है कि प्रत्येक मजदूर से साल भर मे 100 पौंड वसूले गए। मजदूरो की औसत मजदूरी चूकि 12 पौड 10 शिलिंग प्रति व्यक्ति है इससे यह पता चलता है कि मालिको का सालाना मुनाफा मजदूरो की वार्षिक मजदूरी का 8 गुना होता है। (टी० जानसन और जे० एफ० सीमे एक्सप्लायटेशन इन इडिया', पृष्ठ 5 6)

सूती कपडा उद्योग के बारे मे सीमा शुल्क बोड ने 1927 मे जाच करके एक रिपोट प्रकाशित की थी जो इस प्रकार थी

> बबई की मिलो की आमदनी और खच के हिसाब को देखकर पता चलता है कि 1920 म 35 कपनियो ने, जिनके अन्तगत 42 मिलें आती थी, अपने हिस्सेदारो को 40 प्रतिशत या उससे भी अधिक लाभाश बाटा था। इनम से 14 मिलो क स्वामित्ववाली 10 कपनियो न 100 प्रतिशत या उससे भी अधिक मुनाफा बाटा था और 2 मिलो न 200 प्रतिशत से ज्यादा लाभाश अपने शेयर होल्डरो को दिया था। 1921 म 41 कपनिया ऐसी थी जिनके अधीन 47 मिलें आती थी।

> इनम से 9 कपनियो ने, जिनका 11 मिलो पर स्वामित्व था, 100 प्रतिशत या उससे भी ज्यादा लाभाश बाटा था।

ऐसी कपनिया भी देखने मे आई हैं जिन्होने लाभाश के रूप म 365 प्रतिशत बाटा है। 1927 मे नागपुर की इप्रेस मिल ने अपनी स्वणजयती के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका मे बडे गव के साथ लिखा था

> शुरू के 20 वर्षों के लाभाश को देखने से पता चलता है कि यह औसतन 16 प्रतिशत था और विश्वयुद्ध से पहले के वर्षो मे व्यवसाय म जिस समय तेजी आई थी, हिस्सेदारो को औसतन 23 प्रतिशत का लाभाश दिया गया। युद्ध के कारण आई तेजी के वर्षो म 90 प्रतिशत से अधिक लाभाश दिया गया लेकिन उन दिनो जिस पैमाने पर मुनाफा हुआ उससे इस राशि के दिए जान का औचित्य अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। यह इच्छा श्री टाटा ने ही प्रकट की थी कि इप्रेस मिल्स को 100 प्रतिशत के लाभाश का भुगतान करना चाहिए। हालाकि टाटा की मृत्यु के बाद तक लाभाश का यह लक्ष्य प्राप्त नही किया जा सका। लेकिन इस कपनी ने अपने सस्थापक की परपराओ का कितनी सफलतापूवक निर्वाह किया इसका पता हम आसानी से चल जाता है। 1919 मे 500 रुपय के प्रत्येक साधारण शेयरो पर लाभाश 350 रुपये था लेकिन 1922 म यह राशि बढकर 525 रुपये हो गई हालाकि कपडा मिलो को काफी कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था। 1923 मे सूती कपडा व्यापार के क्षेत्र म मदी और हडतालो के कारण हुई गडबडी के बावजूद प्रत्येक साधारण शेयर पर 380 रुपये के लाभाश का भुगतान किया गया।
>
> व शेयरहोल्डर जिन्हे बोनस शेयर मिला था और जिस पर उन्हे वही लाभाश प्राप्त हुआ था, 1920 मे यह जोड सकते थे कि वास्तविक लाभाश उन्हे 458 प्रतिशत मिला है
>
> सामान्यत यह काफी दिलचस्प बात है कि 30 जून 1926 तक इप्रेस मिल ने कुल 92,214,527 रुपय का मुनाफा कमाया जो मामूली शेयरहोल्डरो की कुल पूजी का करीब 61 47 गुना होता है। इस अवधि तक कपनी मामूली हिस्सेदारो को 59 431,267 रुपय का मुनाफा बाट चुकी है। इस प्रकार मूल पूजी पर हिस्सेदारो को बाटे गए मुनाफे की दर 80 86 प्रतिशत सालाना बैठती है। इस प्रकार असली हिस्सेदार का फायदा हुआ है क्याकि वह कपनी की 500 रुपये की प्रदत्त पूजी का शेयर लेने का सौभाग्य पाता है। उसको जो 2 05 का शेयर मिला है उसमे वतमान बाजार दर के आधार पर 7838 रुपये के बराबर की राशि मिलती है और इस प्रकार लाभाश के रूप म उसे 19,810 रुपये प्राप्त

होते है। ('दि इम्प्रेस मिल्स, नागपुर, स्वणजयती, 1877 1927', पृष्ठ 90 93)

मुनाफाखोरी का यह सिलसिला अनिश्चित काल तक नही चल सका हालाकि विश्वव्यापी आर्थिक सकट पैदा होने के समय तक असाधारण रूप से ऊची दरें बनाई रखी गई। इस प्रकार 1928, 1929 और 1930 म भी इम्प्रेस मिल 28, 26 और 24 प्रतिशत का लाभाश घोषित कर रही थी। पटसन के मामले मे गौरपुर का प्रमुख कारखाना (जिसने 1918 म 250 प्रतिशत का मुनाफा अपने हिस्सेदारो म बाटा था) 1927 मे 100 प्रतिशत, 1928 मे 60 प्रतिशत और 1929 मे 50 प्रतिशत मुनाफा बाट रहा था। कोयले के क्षेत्र मे 1929 मे चार प्रमुख कपनिया 70,55,36 और 30 प्रतिशत मुनाफा बाट रही थी। चाय के मामले मे भारत मे काम कर रही 98 कपनियो ने 1928 मे औसतन 23 प्रतिशत का लाभाश घोषित किया और 1929 मे 74 कपनियो ने औसतन 20 प्रतिशत मुनाफा बाटा।

आर्थिक सकट और आर्थिक मदी ने भारतीय उद्योग पर बहुत बुरा असर डाला। मुनाफा खोरी बनाए रखने के लिए बडे पैमाने पर और बबरतापूवक विभिन्न उद्योगो मे तथा खासतौर पर वस्त्र उद्योग मे छटनी की गई और वेतन मे कटौती की गई। कपास के क्षेत्र मे 1922-23 म कुल खपत 47 लाख हड्रेड वेट थी जो 1934 मे बढकर 1 करोड 9 लाख हो गई। इसका अथ यह हुआ कि कुल खपत मे 60 प्रतिशत की वद्धि हुई जबकि रोजगार म लगे लोगो की सख्या 3 लाख 56 हजार से बढकर 4 लाख 14 हजार अर्थात 16 प्रतिशत ही हुई। 1922-23 म कारखानो म पटसन की खपत 47 लाख गाठ थी जो 1935 36 म बढकर 60 लाख गाठ हो गई अर्थात कुल खपत म 28 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि रोज गार मे लगे लोगो की सख्या 3 लाख 21 हजार से घटकर 2 लाख 78 हजार हो गई अर्थात इसमे 13 प्रतिशत की कमी हुई। 1929-30 मे रेल विभाग म काम करने वाले कमचारियो की सख्या 8 लाख 17 हजार थी जो 1936 37 म घटकर 7 लाख 10 हजार हो गई। 1921 मे 1 करोड 93 लाख टन कोयले का उत्पादन हुआ जो 1935 म बढकर 2 करोड 30 लाख टन हो गया जबकि कमचारियो की सख्या 2 लाख 5 हजार स घटकर 1 लाख 79 हजार हो गई।

युद्ध मे पहले के वर्षो म मुनाफा कमाने के स्तर, हालाकि यह 1914 18 के बाद आई अतिशय वृद्धि के बराबर न था, स भी पता चलता है कि असाधारण शोषण किया जाता था। इस प्रकार पटसन के क्षेत्र म रिलायस जूट मिल्स कपनी ने 1935 मे अपन हिस्सेदारो के बीच 35 प्रतिशत 1936 म 42 5 प्रतिशत और 1937 म 30 प्रतिशत लाभाश बाटा। सूती उद्योग मे स्वार मिल्स कपनी ने 1935 म 35 प्रतिशत 1936 म 27 5 प्रतिशत तथा 1937 म 22 5 प्रतिशत लाभाश दिया। चाय के क्षेत्र म न्यू डूअम टी कपनी ने 1935 और 1936 मे 50 प्रतिशत लाभाश बाटा, नगाईसूक टी कपनी न 1935 मे 60 प्रतिशत और 1936 म 50 प्रतिशत लाभाश बाटा तथा ईस्ट होप स्टेटम कपनी न 1935 म 23 प्रतिशत 1936 म 33 प्रतिशत और 1937 म 40 प्रतिशत लाभाश बाटा। युद्ध के दौरान इस कमी

राशि के बावजूद मुनाफे म कई गुना वृद्धि हुई (देखें छठा अध्याय, पृष्ठ 173-74)।

1914 18 के बाद के तीस वर्षों म बतहाशा मुनाफे स कमाई गई राशि करोडा पौंड म थी। इस राशि से मजदूरो की आवास व्यवस्था को दुरुस्त किया जा सकता था और सामाजिक सरक्षण तथा जन स्वास्थ्य की दिशा म ठास कदम उठाए जा सकत थे। इस सबध म कोई कदम उठाने की आवश्यकता भारत की तत्कालीन सरकार न कभी महसूस नही की। दुनिया का शायद ही ऐसा कोई दश हो जहा धनिकवग को इतनी आसानी से कर देने मे छूट्‌ दे दी जाती हो जबकि सबस निधनवग के कधा पर कर का बोझा सबस ज्यादा लाद दिया जाता हो। किसाना को मालगुजारी दैनी पडती है जबकि जमीदारा की आमदनी को आयकर से छूट दे दी गई है। मजदूरा का अप्रत्यक्ष रूप स जबरदस्त कर देने पडते हैं जबकि ऊची आमदनी वाले लोगा पर आयकर का भार बहुत हल्का रखा गया है। अप्रैल 1938 म भारत सरकार के वित्तीय सदस्य सर जेम्स ग्रिग न कहा था कि अप्रत्यक्ष करारोपण का कुल वार्षिक भार प्रत्यक्ष करारापण स आठ गुना अधिक है। 1936-37 म आयकर से हुई कुल आमदनी 1 करोड 15 लाख पौंड थी जो कुल राजस्व का 14वा भाग है और राष्ट्रीय आय का यह 1 प्रतिशत से भी कम हिस्सा है। इसकी तुलना म ब्रिटेन म आयकर, मृत्युकर तथा अधिकर से जो आय होती है वह कुल राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत से भी अधिक है।

भारत म श्रमिक और सामाजिक कानून भी कम पिछडे हुए नही हैं और कागज पर इन कानूना का जो रूप है वह व्यवहार म नही है। इसी तरह का एक कानून फैक्टरियो के बारे म है जो सबसे पहले 1881 म बना था। उस समय लकाशायर के मिलमालिक भारतीय मिल उद्योग के विकास को देखकर चिंतित हो उठे थे। कई दशको तक यह कानून सरकारी फाइला म बद पडा रहा हालाकि मजदूरो के हित के सदभ में इस कानून की बहुत सीमित भूमिका थी। इसको असली रूप इसलिए नही दिया जा सका क्योकि इसको कार्यान्वित करन की कोई व्यवस्था नही थी।

> 1905 के प्रारभिक दिनो म भारत म कारखाने की जाच प्रणाली आशिक तौर पर छिन्न भिन्न हो गई थी। उस समय एक कारखाना कानून भी था लेकिन कई मामला म यह बिलकुल बेकार था बबई शहर मे 79 कपडा मिलें थीं जिनम औसतन 1 लाख 14 हजार लोग रोजाना काम करते थे फिर भी बबई के कारखाना की जाच से सबद्ध प्रत्यक्ष अधिकारी का इन कारखानों को दखन की फुरसत नही थी। असिस्टेंट कलक्टर ही कारखाना का प्रधान निरीक्षक था। 1905 म इस पद पर 6 अलग अलग व्यक्तिया न काम किया। इन सारे व्यक्तियो को इस काम का कोई अनुभव नही था और सामान्य तौर पर अपने तमाम कामो मे व कारखान की जाच को कोई गभीर काम नही समझत थ। केवल एक इस्पैक्टर एसा था जो काटन एक्साइज ऐक्ट के अतगत तैयार सामान की निगरानी के लिए

> पूरा समय देता था। इसकी वजह यह थी कि सरकार इन सामानो के बकाया पर काफी ध्यान देती थी स्वाभाविक है कि इस तरह की व्यवस्था मे कारखाना कानून के प्रावधानो की उपेक्षा होनी ही थी। कलकत्ता मे कारखाने की जाच का काम असफल रहा और इसकी वजह से लगातार जो बुराइया पैदा हुई उनके बारे म भी सभी लोग जानते हैं। द्वितीय फैक्टरी लेबर कमीशन के सामने कलकत्ता के एक मिल मैनेजर ने बडे साफ शब्दा म यह स्वीकार किया कि उसने कारखाना कानून पर कभी ध्यान ही नही दिया। एक और मैनेजर ने, जिसके कारखाने म लगभग चार सौ बच्चे काम करत थे, बताया कि उसने कभी यह सुना ही नही था कि कारखाना कानून के अतगत बच्चा से मजदूरी कराने पर किसी तरह का प्रतिबध है। (लोवाट फ्रेजर 'इडिया अडर कर्जन ऐड आफ्टर', पृष्ठ 330-31)

यहा तक कि 1924 मे भी बबई के कलक्टर ने, जिसकी देखरेख मे उस वर्ष के लिए कारखानो की वार्षिक रिपोर्ट जारी की गई। (सयोगवश जिसमे यह बताया गया था कि व्यवहार रूप मे प्रत्येक कारखाने मे अनियमितताए है'), अपनी भूमिका म सरकार के दृष्टिकोण का इस प्रकार परिचय दिया

> फैक्टरीज ऐक्ट और इससे सबधित नियमो के पालन पर बहुत जोर देने से, मेरे विचार मे, उद्योग धधा का नुकसान पहुचेगा इस कानून की वजह से किसी विशेष काम के आने पर मालिक और कर्मचारी दोना के लिए छुट्टी के दिनो मे या ओवरटाइम घटो मे काम करना मुश्किल हो जाएगा। ऐसे मामलों म जो कर्मचारी समय से ज्यादा काम करना चाहते हैं उनसे काम लेने मे कोई नुकसान नही है उन्हे ओवरटाइम का भुगतान कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार इस विभाग की यह नीति रही है कि वह उचित छूटो की सिफारिश करे। (बबई प्रेसीडेंसी की वार्षिक कारखाना रिपोर्ट, 1924—बबई के कलक्टर की भूमिका)

वर्तमान 1934 का कारखाना कानून (फैक्टरीज ऐक्ट आफ 1934) स्थाई कारखानों के लिए अर्थात बारह महीने चलने वाले कारखानो के लिए दस घटे का दिन और 54 घटे का सप्ताह तथा सीजनल कारखानो (जो छ महीने से ज्यादा नही चलते है) के लिए 11 घटे का दिन (महिलाओ के लिए दस घटे) और 64 घटे का सप्ताह निर्धारित करता है। इस 11 घटे को अधिक से अधिक 13 घटा किया जा सकता है लेकिन इसके साथ ओवर टाइम की व्यवस्था होनी चाहिए। महिलाओ से रात मे काम लेने पर रोक है। बारह साल से कम उम्र के बच्चा को नौकरी पर नही लगाया जा सकता और 12 से 15 साल के बच्चो से दिन मे पाच घटे से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकता। इस समय को बढाकर अधिक से अधिक साढे सात घटे किया जा सकता है। इस कानून से केवल 25 लाख मजदूर प्रभावित होते है (1944)।

1935 के माइंस ऐक्ट मे जमीन के ऊपर काम करने की सीमा 10 घटे और जमीन से नीचे काम करने की सीमा 9 घटे निर्धारित की गई है। 15 साल स कम उम्र के बच्चो स नौकरी कराने पर पाबदी है। इस कानून से 2 5 लाख मजदूर प्रभावित होते है। 1937 म जमीन के नीचे खानो म महिलाओ म काम कराने पर पाबदी थी लेकिन 1943 मे एक अध्यादेश के जरिए इस पाबदी को तब तक के लिए हटा दिया गया जब तक युद्ध जारी है। रेल कमचारियो के लिए काम की निर्धारित अवधि 60 घट प्रति सप्ताह है।

1931 के इडियन पार्ट् स ऐक्ट के अनुसार 12 वष से कम उम्र के बच्चो स काम नही लिया जा सकता। इस कानून के द्वारा गोदी कमचारिया की सुरक्षा के भी सीमित उपाय प्रदान किए गए। 1934 क वकमस कपसेशन एक्ट के दायरे म लगभग 60 लाख मजदूर आत है लेकिन दडित होन के भय से इन प्रावधानो का बहुत सीमित अश मे लाभ उठाया गया। 1936 के पमेंट आफ वजेज ऐक्ट के अनुसार वेतन देने की अधिकतम अवधि एक महीना निर्धारित की गई (साप्ताहिक या पाक्षिक वेतन की बात नामजूर कर दी गई) और कहा गया कि महीना खत्म होन के एक सप्ताह के अदर वतन का भुगतान कर दिया जाना चाहिए। इसम जुर्माना करने और मनमाने ढग से कटौती करने की भी सीमा निर्धारित की गई। इन तथ्यो म यह देखा जा सकता है कि भारत म मजदूरो से सबधित कानून किस हद तक सीमित है।

> मजदूरो से सबधित सारे उन कानूनो को ध्यान में रखें जो कारखानो, खानो, बागानो, गोदियो, रलो, बदरगाहो आदि को प्रभावित करत है, तो इस बात म सदेह है कि इन कानूनो से बाहर के 70 या 80 लाख मजदूरो को भी कोई लाभ मिलता होगा। शेष मजदूर, जो औद्योगिक मजदूरो की एक और विशाल सख्या है, छोट उद्योगो म या अनियमित उद्योगो म लगे हैं। (शिवराव 'दि इडस्ट्रियल वकर इन इडिया', 1939, पृष्ठ 210)

कारखाना से सबधित प्रमुख कानून को 1944 मे व्यापक बनाया गया जिसके दायरे म केवल 2,522,753 मजदूर आत है जो भारतीय मजदूरवग का एक मामूली हिस्सा है। यहा भी इन कानूना का लागू करन की अक्षम व्यवस्था से इसकी प्रभावकारिता कम ही होती है। 1944 मे फक्टरीज ऐक्ट के तहत 14 071 कारखाने रजिस्टड थे। इनमे से केवल 11,713 कारखानो का अर्थात 83 2 प्रतिशत कारखानों का निरीक्षण किया गया। 2358 कारखाने ऐसे थे जिनका साल मे एक बार भी निरीक्षण नही किया गया और ऐसे कारखानो की भी सख्या काफी अधिक थी जिनका साल मे केवल एक बार निरीक्षण किया गया। फलस्वरूप इन कानूनों की प्रभावकारिता की कल्पना की जा सकती है। यहा तक कि इन कानूना का उल्लघन करने के जो 1,775 मामले सामने आए उनपर बहुत क जुमाना किया गया जिससे प्रत्यक्ष रूप मे कानूनो का उल्लघन करने की प्रेरणा ही ि थी। सयुक्त प्रात की एक रिपोट मे यह धारणा व्यक्त की गई (इस धारणा से

भाग से ज्यादा आमदनी होती है पर सिविल लाइस पर जितना धन खच किया जाता है वह शहर की तुलना म काफी अधिक होता है। इसकी वजह यह है कि सिविल लाइस के काफी बड इलाके के लिए अपक्षाकृत अधिक सडका की जरूरत होती है और उनकी मरम्मत तथा सफाई करनी पडती है, उनपर रोशनी का इतजाम करना पडता है तथा पानी का छिडकाव किया जाता है। यहा की जल निकासी, जल सप्लाई और सफाई की व्यवस्था ज्यादा मुकम्मल होती है। शहर के हिस्से की हमेशा ही काफी उपक्षा की जाती है और शहर का वह इलाका जा काफी निधन है बिलकुल ही उपेक्षित रहता है। इस इलाके म अच्छी सडकें गिनी चुनी होती है और यहा की अधिकाश सकरी गलियो मे न तो बिजली की उचित व्यवस्था हाती है और न जलनिकासी या सफाई का ही कोई इतजाम किया जाता है। (जवाहरलाल नेहरू, आत्मकथा ' पृष्ठ 143)

नेहरू न जमीन के मूल्य पर टैक्स लगाने की प्रणाली शुरू करना चाही ताकि सभावित सुधार किए जा सके लेकिन उनके इस काम मे फौरन ही जिलाधीश ने टाग अडा दी और कहा कि इस तरह का काई भी प्रस्ताव जमीन की काश्त से सबधित विभिन्न शर्तों या अधिनियमा के विरोध मे हो जाएगा, इस तरह के टैक्स से सबसे ज्यादा वही लोग प्रभावित हाते जिनके बडे बडे बगले सिविल लाइस म बने ह। इस प्रकार 'सुसस्कृत' ब्रिटिश राज के प्रबुद्ध सरक्षण मे भारतीय मजदूरा की गदगी भरी स्थितिया, असीम शोषण और दासता की स्थितिया का बहुत उत्साह के साथ बरकरार रखा गया। अपन साफ सुथरे और पूण रूप से सुरक्षित महलो म अगरज शासको न गदगी और यातना के साम्राज्य पर शासन किया।

हावडा और उत्तरी कलकत्ता की मजदूर बस्तियो म गदगी, दुर्गंध और सडाध का जो वातावरण है उसका काई मुकाबला नही है जूट मिला म काम करन वाले अधिकाश मजदूर इन प्राइवेट बस्तियो मे रहने के लिए मजबूर ह। बगाल म्यूनिसिपलिटीज ऐक्ट के तहत इन गदी बस्तिया के विकास का दायित्व इन बस्तिया के मालिका पर है जो इनमे रहन वाले गरीबो से अच्छा खासा पैसा वसूलत है। लेकिन निहित स्वार्थी तत्व हमेशा इस घात म रहत ह कि इन कानूनो को कभी अमल मे न आने दिया जाए। इन बस्तियो की दुदशा का वणन नही किया जा सकता, इनक बार म कहा जाता है कि य 'दुर्गंध और बीमारियो से भरी झोपडिया है जिनमे न ता काई खिडकी है और न कमरे से धुआ निकलने के लिए काई चिमनी है। इनक दरवाजे इतन नीचे हैं कि अदर घुसन के लिए लगभग घुटन के बल रेगना पडता है। इनम बिजली पानी का और सफाई का कोई इतजाम नही ह। इन बस्तिया मे पहुचन क लिए आमतौर से बदबू भरी एक सुरग से गुजरना पडता है जिसमे साल भर और खासतौर स बरसात क दिनो म मच्छरो और मक्खियो के झुड के झुड पलत और भिनभिनात रहत ह

> बगाल की दूसरी सबसे बडी नगरपालिका हावडा नगरपालिका है जहा की हालत कलकत्ता के उत्तरी उपनगरो से भी बदतर है। यहा की जमीन बहुत महगी है और उसम उपलब्ध हर फुट भर जमीन पर भी निमाण किया जा चुका है। जिन गलियो के दोनो तरफ ये बस्तिया बनाई गई है, वे अधिक से अधिक 3 फीट चौडी ह लेकिन इन गलियो के साथ साथ खुले गन्दे नाले भी है और यही स्थिति कारखाने वाले प्रत्येक इलाके की है। (शिवराव दि 'इडस्ट्रियल वकर इन इडिया', पृष्ठ 113-14)

जूट मिल के मजदूरो के जीवनयापन की यही स्थिति है। इन मजदूरो की महनत से हुए शत प्रतिशत मुनाफे का फायदा अगरेजो द्वारा सचालित कपनिया उठाती हैं। यह मुनाफा मूल पूजी से कई गुना अधिक होता है।

यह रही भारतीय मजदूर आदोलन की पृष्ठभूमि। समाजवाद और ट्रेड यूनियन की भावना से दुदशाग्रस्त स्थिति मे जीवन बिताने वाले मजदूरो के बीच पहली बार आशा और विश्वास की किरणे फूटी, मजदूरो ने पहली बार एकजुटता की ताकत का एहसास किया और उन्ह पहली बार अपने सामने एक ऐसा लक्ष्य दिखाई दिया जिसकी प्राप्ति से उनके सारे दु ख दद दूर हो सकते है।

3 मजदूर आदोलन की स्थापना

भारत मे मजदूर आदोलन की शुरुआत लगभग 50 वष पहले हुई थी लेकिन एक सगठित आदोलन के रूप मे उसका निरतर इतिहास प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही शुरू होता है। 19वी सदी के आठवें दशक मे जब देश मे कारखानो की स्थापना हो गई तब हडताल होना भी अवश्यभावी हो गया हालाकि शुरू म इसका रूप बहुत प्रारभिक और असगठित था। इस बात का उल्लेख मिलता है कि मजदूरी की दर के प्रश्न को लेकर 1877 म नागपुर की इप्रेस मिल म हडताल हुई थी। 1882 से लेकर 1890 के बीच बबई और मद्रास प्रेसीडेंसी मे हुई 25 हडतालो का उल्लेख भी मिलता है।

भारत मे मजदूर आदोलन के प्रचलित इतिहास के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इसकी शुरुआत 1884 मे बबई के मिल मजदूरो की बैठक से होती है जिसका आयोजन एन० एम० लोखडे नामक एक स्थानीय सपादक ने किया था। श्री लोखडे ने मजदूरो की मागो का एक ज्ञापन तैयार किया था जिसम काम के घटो को सीमित करने साप्ताहिक अवकाश देने, दोपहर म खाने की छुट्टी देने और घायल होन की अवस्था म मुआवजा देन की मागें शामिल थी। यह ज्ञापन इन मिल मजदूरा की तरफ से कारखानो के कमिश्नर को दिया जाना था। लोखडे न अपन को बबई मिल मजदूर एसोसिएशन का अध्यक्ष कहा था। आमतौर स इस सगठन को भारत का पहला मजदूर सगठन कहा जाता है। लोखडे साहब न बाद मे 'दीनबधु' नामक अखबार का प्रकाशन शुरू किया।

श्री लोखडे की गतिविधियो की जो जानकारी हम उपलब्ध है उसका भारतीय मजदूर आदोलन के इतिहास म महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन यह मान लेना बहुत भ्रामक बात है कि भारत म मजदूर आदोलन की शुरुआत लोखडे ने की। हम आग चलकर बार बार यह देखेंगे कि इस आदोलन का चरित्र भी काफी भ्रामक था। 'बबई मिल मजदूर एसोसिएशन' (बाबे मिल हैंडस एसोसिएशन) किसी भी अथ म मजदूर सगठन नही था। इसके न तो सदस्य थे, न कोई नियम थे और न इसका कोई कोष था।' बबई मिलमजदूरा का कोई सगठित मजदूर आदोलन नही था। यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि हालाकि श्री एन० एम० लोखडे, जिन्होने पिछले फैक्टरी आयोग म काम किया था खुद को बबई मजदूर एसोसिएशन का अध्यक्ष बताते थे लेकिन इस एसोसिएशन का कोई सगठित अस्तित्व न था। इसका एक भी सदस्य नही था। नही कोई इसका अपना कोष था और न कोई कायदा कानून था। मेरा खयाल है कि श्री लोखडे ने स्वेच्छा से ऐसे सलाहकार का काम किया था जिससे कोई भी मिलमजदूर उनसे आकर सलाह ले सके।' (रिपोट आन दि वर्किंग आफ दि फैक्टरी एक्ट इन बाबे फार 1892, पृष्ठ 15) लोखडे साहब एक ऐसे परोपकारी व्यक्ति थे जो मजदूरो की भलाई चाहते थे और इस कोशिश म रहते थे कि मजदूरा के हित मे कानून बनवाए जाए। वह मजदूरों के सगठन या मजदूरो के सघष के अग्रदूत नही थे।

भारत म मजदूर आदोलन का प्रारभिक इतिहास जानने के लिए 19वी सदी के नवें दशक और उसके बाद के वर्षों मे हुई हडतालो से सबधित दस्तावेज की जानकारी प्राप्त करना बहुत जरूरी है। हालाकि उस समय तक मजदूरो के किसी सगठन का अस्तित्व नही था फिर भी 1914 क युद्ध पूव के दशको के दौरान भारतीय औद्योगिक मजदूर की प्रारभिक वग चेतना के विकास और उनकी सगठित शक्ति के विकास को कम करके आकना गलत होगा। 1895 म बजबज जूट मिल के डायरेक्टर की रिपोट मे कहा गया था कि 'उन्हे इस बात का खेद है कि इन छ महीना के दौरान मजदूरो ने एक बार हडताल की जिसकी वजह से छ हफ्ते तक मिल को बद रखना पडा।' इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि 1895 मे अहमदाबाद म 8 हजार बुनकरो ने अहमदाबाद के मिलमालिक सघ (अहमदाबाद मिल ओनस एसोसिएशन) के खिलाफ हडताल की थी। (बाबे फैक्टरी रिपोट, 1895)

> 1880 से 1908 के बीच विभिन्न आयोगों के सामने प्रस्तुत की गई सभी गवाहियो मे यह बात कही गई कि मजदूरो की अभी तक कोई वास्तविक यूनियन नहीं है। अनेक गवाहियो म लोगो ने यह भी बताया कि बहुधा अलग अलग मिलो के मजदूर आपस मे एक साथ मिल जाते है और एक गुट के रूप म वे काफी स्वतत्र हैं। 1892 म बायलरो के इस्पेक्टर ने बताया था कि मजदूरो म एक अजीब किस्म की एकता दिखाई देती है जिसको न तो कोई खास नाम दिया जा सकता और न जिसके बारे म किसी तरह की लिखा पढी है। बबई के कलक्टर न लिखा था कि हालाकि यह एकता केवल वायवीय' है फिर भी यह काफी शक्तिशाली' है।

बंगाल की दूसरी सबसे बडी नगरपालिका हावडा नगरपालिका है जहा की हालत कलकत्ता के उत्तरी उपनगरों से भी बदतर है। यहा की जमीन बहुत महंगी है और उसमे उपलब्ध हर फुट भर जमीन पर भी निर्माण किया जा चुका है। जिन गलियो के दोनो तरफ ये बस्तिया बनाई गई है, वे अधिक से अधिक 3 फीट चौडी है लेकिन इन गलियो के साथ साथ खुले गंदे नाले भी है और यही स्थिति कारखाने वाले प्रत्येक इलाके की है। (शिवराव दि 'इंडस्ट्रियल वर्कर इन इंडिया', पृष्ठ 113-14)

जूट मिल के मजदूरो के जीवनयापन की यही स्थिति है। इन मजदूरो की मेहनत से हुए शत प्रतिशत मुनाफे का फायदा अंगरेजो द्वारा संचालित कंपनिया उठाती हैं। यह मुनाफा मूल पूंजी से कई गुना अधिक होता है।

यह रही भारतीय मजदूर आंदोलन की पृष्ठभूमि। समाजवाद और ट्रेड यूनियन की भावना से दुर्दशाग्रस्त स्थिति मे जीवन बिताने वाले मजदूरो के बीच पहली बार आशा और विश्वास की किरणें फूटी, मजदूरो ने पहली बार एकजुटता की ताकत का एहसास किया और उन्हे पहली बार अपने सामने एक ऐसा लक्ष्य दिखाई दिया जिसकी प्राप्ति से उनके सारे दुख दर्द दूर हो सकते है।

3 मजदूर आंदोलन की स्थापना

भारत मे मजदूर आंदोलन की शुरुआत लगभग 50 वर्ष पहले हुई थी लेकिन एक संगठित आंदोलन के रूप मे उसका निरंतर इतिहास प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही शुरू होता है। 19वीं सदी के आठवें दशक में जब देश मे कारखानों की स्थापना हो गई तब हड़ताल होना भी अवश्यंभावी हो गया हालांकि शुरू मे इसका रूप बहुत प्रारंभिक और असंगठित था। इस बात का उल्लेख मिलता है कि मजदूरी की दर के प्रश्न को लेकर 1877 मे नागपुर की इंप्रेस मिल में हड़ताल हुई थी। 1882 से लेकर 1890 के बीच बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी मे हुई 25 हड़तालो का उल्लेख भी मिलता है।

भारत मे मजदूर आंदोलन के प्रचलित इतिहास के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इसकी शुरुआत 1884 मे बंबई के मिल मजदूरो की बैठक से होती है जिसका आयोजन एन० एम० लोखंडे नामक एक स्थानीय संपादक ने किया था। श्री लोखंडे ने मजदूरों की मांगो का एक ज्ञापन तैयार किया था जिसमे काम के घंटो को सीमित करने साप्ताहिक अवकाश देने, दोपहर मे खाने की छुट्टी देने और घायल होने की अवस्था मे मुआवजा देने की मांगें शामिल थी। यह ज्ञापन इन मिल मजदूरो की तरफ से कारखानो के कमिश्नर को दिया जाना था। लोखंडे ने अपने को 'बंबई मिल मजदूर एसोसिएशन का अध्यक्ष' कहा था। आमतौर से इस संगठन को भारत का पहला मजदूर संगठन कहा जाता है। लोखंडे साहब ने बाद में 'दीनबंधु' नामक अखबार का प्रकाशन शुरू किया।

श्री लोखडे की गतिविधियो की जो जानकारी हम उपलब्ध है उसका भारतीय मजदूर आदोलन के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन यह मान लेना बहुत भ्रामक बात है कि भारत मे मजदूर आदोलन की शुरुआत लोखडे ने की। हम आगे चलकर बार बार यह देखेंगे कि इस आदोलन का चरित्र भी काफी भ्रामक था। बबई मिल मजदूर एसोसिएशन' (बाबे मिल हैड्स एसोसिएशन) किसी भी अर्थ म मजदूर सगठन नही था। इसके न तो सदस्य थे, न कोई नियम थे और न इसका कोई कोष था।' बबई मिलमजदूरो का कोई सगठित मजदूर आदोलन नही था। यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि हालाकि श्री एन० एम० लोखडे, जिन्होंने पिछले फैक्टरी आयोग म काम किया था, खुद को बबई मजदूर एसोसिएशन का अध्यक्ष बताते थे लेकिन इस एसोसिएशन का कोई सगठित अस्तित्व न था। इसका एक भी सदस्य नही था। नही कोई इसका अपना कोष था और न कोई कायदा कानून था। मेरा खयाल है कि श्री लोखडे ने स्वेच्छा से ऐसे सलाहकार का काम किया था जिससे कोई भी मिलमजदूर उनसे आकर सलाह ले सके।' (रिपोर्ट आन दि वर्किंग आफ दि फैक्टरी ऐक्ट इन बाबे फार 1892, पृष्ठ 15) लोखडे साहब एक ऐसे परोपकारी व्यक्ति थे जो मजदूरो की भलाई चाहते थे और इस कोशिश मे रहते थे कि मजदूरो के हित म कानून बनवाए जाए। वह मजदूरो के सगठन या मजदूरों के सघर्ष के अग्रदूत नही थे।

भारत मे मजदूर आदोलन का प्रारभिक इतिहास जानने के लिए 19वी सदी के नवें दशक और उसके बाद के वर्षों मे हुई हडतालो से सबधित दस्तावेज की जानकारी प्राप्त करना बहुत जरूरी है। हालाकि उस समय तक मजदूरो के किसी सगठन का अस्तित्व नही था फिर भी 1914 के युद्ध पूर्व के दशको के दौरान भारतीय औद्योगिक मजदूर की प्रारभिक वर्ग चेतना के विकास और उनकी सगठित शक्ति के विकास को कम करके आकना गलत होगा। 1895 म बजबज जूट मिल के डायरेक्टर की रिपोर्ट म कहा गया था कि 'उन्ह इस बात का खेद है कि इन छ महीनो के दौरान मजदूरों ने एक बार हडताल की जिसकी वजह से छ हफ्ते तक मिल को बद रखना पडा।' इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि 1895 म अहमदाबाद म 8 हजार बुनकरो न अहमदाबाद के मिलमालिक सघ (अहमदाबाद मिल ओनर्स एसोसिएशन) के खिलाफ हडताल की थी। (बाबे फैक्टरी रिपोर्ट, 1895)

> 1880 से 1908 के बीच विभिन्न आयोगो के सामन प्रस्तुत की गई सभी गवाहियों म यह बात कही गई कि मजदूरो की अभी तक कोई वास्तविक यूनियन नही है। अनेक गवाहियो म लोगो न यह भी बताया कि बहुधा अलग अलग मिलो के मजदूर आपस मे एक साथ मिल जाते है और एक गुट के रूप मे वे काफी स्वतत्र हैं। 1892 म बायलरो के इस्पैक्टर न बताया था कि 'मजदूरो म एक अजीब किस्म की एकता दिखाई देती है जिसको न तो कोई खास नाम दिया जा सकता और न जिसके बारे मे किसी तरह की लिखा पढी है। बबई के कलक्टर ने लिखा था कि हालाकि यह एकता केवल वायवीय' है फिर भी यह काफी शक्तिशाली' है।

उन्होंने सरकार को लिखा कि 'मेरा ख्याल है कि काफी अरसे से इनकी मजदूरी का एक ही स्तर पर बने रहना या मजदूरी के मामले में इनके एकाधिकार का बना रहना इसी कारण संभव हो सका है क्योंकि इनके बीच काफी एकजुटता है।' 1908 में सर सेसून डेविड ने कहा कि 'यदि मजदूरों का कोई उचित संगठन नहीं है तो भी उनकी एक आपसी समझदारी है।' बंबई प्रेसीडेंसी में उद्योगों के डायरेक्टर श्री बरचा ने कहा कि 'मालिकों की तुलना में मजदूरों की ताकत काफी अधिक है और हालांकि उनकी कोई यूनियन नहीं है लेकिन वे आपस में एकजुट हो सकते हैं'। इन वक्तव्यों में यदि किसी सीमा तक अतिशयोक्ति है तो वर्धा स्थित ब्रिटिश डिप्टी कमिश्नर ने तो अपने इस कथन से कमाल ही कर दिया कि 'चारों तरफ मजदूर हावी हो गए हैं और अब मजदूरों की बजाय मिलमालिकों की हिफाजत का इंतजाम करने की जरूरत है।' (डी० एच० बुकानन, 'दि डेवलपमेंट आफ केपिटलिस्ट एंटरप्राइज इन इंडिया', पृष्ठ 425)।

इन शब्दों से पता चलता है कि भारतीय मजदूरों की उभरती हुई वर्गचेतना को देखकर मालिकों में दहशत फैल गई थी।

1905-1909 के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की जुझारू लहर के समानांतर मजदूर आंदोलन ने भी उल्लेखनीय प्रगति की। इन वर्षों के स्वरूप का पता इससे ही चल जाता है कि काम के घंटे बढ़ाने के विरोध में बंबई के मिलमजदूरों ने हड़ताल की, रेल कर्मचारियों ने खासतौर से ईस्टर्न बंगाल स्टेट रेलवे कर्मचारियों ने कई बार गंभीर हड़तालें कीं, रेल के कारखानों में हड़तालें हुईं और कलकत्ता के गवर्नमेंट प्रेस में वहां के कर्मचारियों ने हड़ताल की। हड़तालों की यह लहर अपनी चरम सीमा पर उस समय पहुंच गई जब 1908 में तिलक को छः वर्षों की सजा दिए जाने के विरोध में बंबई के मजदूरों ने छः दिनों की सार्वजनिक राजनीतिक हड़ताल कर दी।

फिर भी अभी तक मजदूरों का कोई ठोस संगठन बनना संभव नहीं हो सका था। इसका कारण यह नहीं था कि मजदूरों की चेतना पिछड़ी हुई थी या उनमें जुझारूपन की कमी थी बल्कि इसकी वजह केवल यही थी कि भारत के मजदूर बेहद गरीब और निरक्षर थे तथा उनके पास साधनों का अभाव था। संगठन की संभावनाएं अब भी अन्य तत्वों के हाथ में थीं। 1910 में बंबई में कुछ परोपकारियों ने मजदूरों के हित के लिए एक संस्था बनाई जिसका नाम 'कामगर हितवर्धक सभा' था। इस संस्था का उद्देश्य मजदूरों और मालिकों के बीच उत्पन्न विवाद हल करने के लिए सरकार के समक्ष याचिकाएं पेश करना था। सामान्य अर्थों में 1914 से पहले मजदूर आंदोलन का विस्तार केवल यूरोपीय और आंग्ल भारतीय रेल कर्मचारियों तथा सरकारी कर्मचारियों के ऊपरी तबके तक सीमित था। इस प्रकार 1897 में 'अमलगमेटेड सोसाइटी आफ रेलवे सर्वेंट्स' नामक संस्था की स्थापना हुई जिसे कंपनीज ऐक्ट के तहत रजिस्टर्ड कराया गया। मूलतः इसका

काम आपसी लाभ तक सीमित था और हालाकि आज भी इसका अस्तित्व है (1928 मे इसने अपना नाम बदलकर नेशनल यूनियन आफ रेलवेमैन रख लिया) लेकिन भारत के मजदूर आदोलन मे इसने कोई भी भूमिका नही अदा की।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जो परिस्थितिया पदा हो गई थी और रूसी क्राति तथा इसके फलस्वरूप समूचे विश्व मे जो क्रातिकारी लहर आई थी उसने भारत के मजदूरवग को भी पूरी तरह सक्रिय बना दिया और भारत मे आधुनिक मजदूर आदोलन का सूत्रपात किया। इन बातो के साथ साथ इस नई जागृति मे आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियो ने भी भरपूर योगदान किया। युद्ध के दिनो मे चीजो की कीमतें दुगनी हो गई थी, इस मूल्यवद्धि के अनुरूप वेतन मे बढोतरी नही हुई और मिलमालिको ने बेतहाशा मुनाफा कमाया। राजनीतिक क्षेत्र मे नई मार्गे सामने आने लगी थी। देश को तुरत स्वराज्य दिए जाने के कायक्रम के आधार पर काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एकता स्थापित हो गई थी। क्रातिकारी चेतना की पहली लहरें भारत म पहुचने लगी थी।

1918 मे हडतालो का जो सिलसिला शुरु हुआ वह 1919 और 1920 मे पूरी तेजी के साथ समूचे देश मे फैल गया। 1918 के अतिम दिनो मे बबई मे सूती कपडामिलों म जबरदस्त हडताल हुई जिसके कारण औद्योगिक दृष्टि से एक महत्वपूण शहर मे समूचा उद्योग ठप हो गया। 1919 की जनवरी तक 1 लाख 25 हजार मजदूर, जो सभी मिलो का प्रतिनिधित्व करते थे, एक तरह से बिलकुल बाहर निकल आए। 1919 के वसत मे रौलट ऐक्ट के खिलाफ मजदूरो ने एक शानदार हडताल करके यह दिखा दिया कि देश का मजदूरवग राष्ट्रीय सघष म भी आगे के मोर्चे पर है। 1919 म देश भर मे हडतालो का ताता लग गया। 1919 की समाप्ति तक और 1920 के शुरु के छ महीनो मे हडतालो की लहर अपनी चरम सीमा तक पहुच गई

> इस अवधि मे जितनी हडतालें हुइ और ये हडतालें जितनी तीव्रता के साथ हुई उसका अदाजा नीचे दिए गए आकडो से लग सकता है।
>
> 4 नवबर से 2 दिसबर 1919 तक कानपुर की ऊनी मिलो के 17 हजार मजदूर हडताल मे शामिल हुए, 7 दिसबर 1919 से 9 जनवरी 1920 तक जमालपुर के 16 हजार रेल मजदूरो ने हडताल की, 1920 मे 9 जनवरी से 18 जनवरी तक कलकत्ता के 35 हजार जूट मिलमजदूरो न हडताल की, 2 जनवरी स 3 फरवरी तक बबई मे मजदूरो की आम हडताल रही जिसम 2 लाख मजदूरो ने हिस्सा लिया। 20 जनवरी से 31 जनवरी तक रगून के 20 हजार मिलमजदूरो ने काम बद रखा। 31 जनवरी को बबई मे ब्रिटिश इडिया नेवीगेशन कपनी के 10 हजार मजदूरो न हडताल की 26 जनवरी से 16 फरवरी तक शोलापुर के 16 हजार मिलमजदूरो न हडताल की, 2 फरवरी से 16 फरवरी तक इडियन मेरी टाइम वकस

के 20 हजार कमचारियो ने काम वद रखा, 24 फरवरी से 29 माच तक टाटा आयरन ऐंड स्टील के 40 हजार मजदूरों ने हडताल मे हिस्सा लिया, 9 माच को बजई के 60 हजार मिलमजदूरो ने काम वद रखा, 20 माच से 26 माच तक मद्रास के 17 हजार मिलमजदूरो न हडताल की, मई 1920 मे अहमदाबाद के 25 हजार मजदूरो ने हडताल में हिस्सा लिया। (आर०के० दास 'दि लेबर मूवमट इन इडिया', 1023, पृष्ठ 36-37)

1920 के शुरु के छ महीना मे 200 हडतालें हुई जिनमे 15 लाख मजदूरो ने हिस्सा लिया।

यही वह परिस्थितिया थीं जिनम भारत के ट्रेड यूनियन आदोलन का जन्म हुआ। प्रमुख उद्योगा और औद्योगिक केंद्रा की अधिकाश ट्रेड यूनियनें इसी दौरान बनी हालाकि कुछ अनिवाय परिस्थितिया के कारण ये सगठन स्थाई रूप से नही चल पाए। जुझारूपन के इस महान दौर मे ही आधुनिक भारत के मजदूर आदोलन का उदय हुआ।

इन वर्षों के दौरान काफी बडी सख्या मे मजदूर सगठनो की स्थापना हुई। इनमे से कुछ तो बुनियादी तौर पर महज हडताल समितिया थी। इनका उद्देश्य फौरी तौर पर सघप को चलाना होता था और य बनी रहना नही चाहती थी। मजदूरवग तो सघप के लिए तैयार रहता था लेकिन यूनियन के कार्यालय सबधी काम लाजिमी तौर पर दूसरो को ही करने थे। इसलिए शुरु के दिना म मजदूर आदोलन मे एक अतर्विरोध पैदा हो गया। इस समय तक देश म समाजवाद के आधार पर, मजदूरवग के विचारा तथा वगसघप की भावना पर आधारित कोई राजनीतिक आदोलन नही तैयार हो सका था। नतीजा यह हुआ कि दूसरे बग से 'बाहरी' तत्व या मददगार लोग विभिन्न कारणा से प्रेरित होकर मजदूरो के सगठनो की सहायता के लिए आए और इन प्रारभिक दिनो मे वस्तुत इनकी सहायता अपरिहाय भी थी लेकिन इनम मजदूर आदालन के उद्देश्या तथा आवश्यकताओ की कोई समझ नही थी। अपने साथ ये लोग मध्यवर्गीय राजनीति के विचार लेकर आए थ। उनम से कुछ भले ही परोपकार की भावना से आए रहे हो या कुछ महज अपना राज नीतिक जीवन बनाने की लालसा लेकर आए रह हो अथवा कुछ एसे लोग भी रह हा जो मजदूर आदोलन म शामिल होकर देश के राजनीतिक सघप का आग बढाना चाहते रह हा लेकिन इन सबका दृष्टिकोण एक दूसरे वग का दृष्टिकोण था और इसीलिए व वग सघप की लडाइ म जुट मजदूरो का नेतृत्व नही कर सकत थे। भारत का मजदूर आदोलन काफी दिना तक इस दुर्भाग्य का शिकार रहा और इस दुर्भाग्यपूण परिस्थिति ने मजदूरो की शानदार जुझारू भावना और बहादुरी की वृद्धि म काफी बाधा डाली और उसका असर आज भी बरकरार है।

आमतौर स यह समझा जाता है कि यहा ट्रेड यूनियन आदोलन की शुरुआत मद्रास लेबर

यूनियन से हुई जिसका गठन 1918 मे बी० पी० वाडिया ने किया था। श्री वाडिया, थियोसाफिस्ट श्रीमती बेसेंट के सहयोगी थे। भारतीय मजदूर आदोलन के वतमान इतिहास को देखते हुए यह बात कुछ भ्रामक लगती है। इस अवधि मे देश भर मे ट्रेड यूनियन बनाने की पहली कोशिशें जारी थी। इस बात के भी प्रमाण मिलते है कि 1917 मे अहमदाबाद की सूती कपडा मिलो मे ताना वाना बुनने वाले लोगो ने (वापस ने) अपनी एक यूनियन बना ली थी। लेकिन इस समय तक मगठन का आधार बहुत कमजोर था और जहा तक मजदूरवग के जुझारूपन का और उसकी क्रियाशीलता का सबध है, यह मगठन काफी कमजोर था। इसमे कोई शक नही कि मद्रास लेवर यूनियन ही ऐसा पहला मजदूर सगठन था जो काफी सुव्यवस्थित था। उसके पास काफी सदस्य थे और उनसे चदा लिया जाता था। इस पहल के लिए इसके सगठनकर्ताओ को पूरा श्रेय दिया जाना चाहिए। लेकिन अपेक्षाकृत कमजोर औद्योगिक केंद्र म (1921 से 1933 के दौरान यहा केवल 28 लाख दिन हडताल हुई थी जबकि बगाल और बबई म हडताल क्रमश 2 करोड दिन और 6 करोड दिन तक ही थी। इस पहल से पता चलता है कि यहा मजदूरो की यूनियन सयोगवश और किन्ही व्यक्तिगत कारणो से बन गई थी और भारत के मजदूर आदोलन के विकास म उसके महत्व को बहुत बढा चढाकर बताना ठीक नही होगा। इस यूनियन के सस्थापक बी० पी० वाडिया का दष्टिकोण कितना सीमित था, इसका पता एक घटना से चल जाता है। अप्रैल 1918 म श्री वाडिया की अध्यक्षता मे यूनियन की स्थापना के बाद मद्रास के मजदूरो ने अपनी कुछ मागें मालिको के सामन रखी और मागें नामजूर हो जाने के बाद उन्होने हडताल करने का प्रस्ताव रखा लेकिन वाडिया साहब ने इसका विरोध किया। उन्होने इसके लिए यह तक दिया कि मजदूरवग को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए (राष्ट्रीय आदोलन मे श्रीमती बेसेंट का भी यही रुख था)। श्री वाडिया ने 3 जुलाई 1918 को दिए गए अपन भाषण मे कहा

> यदि हडताल करके आप लोग सिर्फ मेसस बिन्नी ऐंड कपनी का नुकसान करत तो मुझे कोई एतराज न होता क्योकि यह कपनी काफी पैसे कमा रही है लेकिन हडताल से आप मित्र राष्ट्रो को नुकसान पहुचाएगे। हम अपने सैनिको के लिए कपडे तैयार करते है और आपकी हडताल से उन सैनिको के लिए असुविधा होगी। महज इसलिए कि इस मिल से सबधित कुछ यूरोपीयो और सरकार का व्यवहार ठीक नही है, हमे उन लोगो को तकलीफ मे डालन का कोई अधिकार नही है जो हमारे राजा की तरफ से लडाई लड रहे हैं। इसलिए हम हडताल नही करनी चाहिए।

वाडिया साहब हडताल को रोकने म सफल रह पर मैसस बिन्नी एड कपनी पर वाडिया के 'देशभक्तिपूर्ण' तर्कों का कोई असर न पडा और उसने तालाबदी की घोषणा कर दी। मजदूर इस हमले के लिए तैयार नही थे और उन्होंने वाडिया साहब की सलाह पर हडताल का अपना हथियार छोड ही दिया था। नतीजा यह हुआ कि उन्ह मजबूरन

अपनी मागो को फिलहाल छोड देना पडा। मद्रास म असली लडाई 1921 म हुई जब मिलो मे तालाबदी के बाद हडताल हुई। कपनी मामले को अदालत म ने गई और हाईकोट ने यूनियन पर 7000 पौंड का जुर्माना किया। कपनी ने शत रखी कि यदि वाडिया अपने का मजदूर आदोलन से अलग कर ले तो यूनियन से यह जुर्माना नही वसूला जाएगा। वाडिया को मजबूर हाकर मजदूर आदोलन से खुद को अलग कर लेना पडा। प्रारभिक दिनो म भारत के मजदूर आदोलन को कुचलने के लिए किन तरीको का इस्तेमाल किया गया, इसका यह बहुत सटीक उदाहरण है।

अन्य केंद्रो मे मजदूर सगठन की जिम्मेदारी उठान के लिए अनेक तरह के मददगार सामने आए इनमे से कुछ का मालिको के साथ घनिष्ठ सबध था। अहमदाबाद मे गाधी ने मिलमालिको की मदद से एक भिन्न मतावलबी यनियन बनाई जिसका उद्देश्य वग शाति कायम करना था और आज तक अहमदाबाद लेबर एशोसिएशन भारतीय मजदूर आदोलन से कटा हुआ है।

इन्ही दिनो 1920 मे इडियन ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना हुई। इसका पहला अधिवेशन 1920 के अक्तूबर मे बबई मे हुआ जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रीय नेता लाजपतराय न और उपाध्यक्षता जोसेफ बेप्टिस्टा ने की। अपने शुरू के वर्षो मे यह सस्था केवल उच्च वग' के नेताओ का सगठन थी और उसके बहुत से नेताओ का मजदूर आदोलन से बडा सीमित सबध था। उसकी स्थापना के पीछे जो मुख्य प्रेरणा काम कर रही थी, वह यह थी कि इस सगठन के आधार पर कुछ सदस्यो का नामजद करके जिनेवा के अतर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन मे भेजा जा सकेगा। इस आदोलन के एक पुराने नेता श्री एन० एम० जोशी ने अपनी एक पुस्तिका दि ट्रेड मूवमट इन इडिया (पृष्ठ 10) मे यह धारणा व्यक्त की है कि भारत म ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना वाशिगटन के मजदूर सम्मेलन के प्रभाव से हुई थी इससे यह बात काफी साफ हो गई कि मजदूरो का न केवल सगठन बनाना जरूरी है बल्कि उनके बीच किसी न किसी तरह का सहयोग भी स्थापित करना जरूरी है ताकि वे एक स्वर से अपनी बातें कह सक।' 1924 म इसका चौथा अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता स्वराज पार्टी के नेता चित्तरजन दास न की। अधिवशन मे दिए गए भाषणा मे प्राय वग शाति के सिद्धातो तथा मजदूरो की सामाजिक एव नतिक उन्नति की बातें होती थी और सरकार से यह माग की जाती थी कि वह मजदूरो के हित मे कानून बनाए तथा उनकी खुशहाली के उपाय कर। ट्रेड यूनियन काग्रेस के शुरू के दिनो मे मध्यवर्गी नेताओ का जो दृष्टिकोण था, उसका एक उदाहरण 1926 म छठे अधिवशन के अवसर पर अध्यक्ष पद मे दिया गया निम्न भाषण है

> बबई के केंद्रीय मजदूर बोड के विशुद्धता अभियान द्वारा किए गए अच्छे कार्यो की मैं हार्दिक सराहना करता हू यह अभियान इस उद्देश्य से शुरू किया गया था कि वह मजदूरो का बुरी आदतें छोडन म मदद दे और उन्हें ईमानदार, शातिपूण

> और सतुष्ट जीवन बिताने की प्रेरणा दे सामाजिक कार्यकर्ता मजदूर बस्तियो म जाते ह और उन्ह शराब, जुआ तथा अन्य बुराइयो के बारे मे बताते है। मजदूरो को इसी तरह की शिक्षा की जरूरत है और इसी के जरिए वे सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से बेहतर स्थिति मे आ सकते है। (मद्रास मे ट्रेड यूनियन काग्रेस के छठे अधिवेशन (1926) मे अध्यक्ष पद से वी० वी० गिरि का भाषण)

1927 मे कानपुर मे सगठन के आठवे अधिवेशन मे महामत्री ने जो रिपोर्ट पश की, उससे भी पता चलता है कि हडताल के प्रति उनका क्या दृष्टिकोण था

> जिस अवधि की यह रिपोर्ट है उसमे कार्यकारिणी ने हडताल की बिलकुल इजाजत नही दी लेकिन भारत के विभिन्न हिस्सो म और यहा के विभिन्न व्यापारो मे मजदूरो की स्थिति अत्यत गभीर होने के कारण कुछ हडतालें और तालाबदी की घटनाए हुई। इनम ट्रेड यूनियन काग्रेस के पदाधिकारियो को भी दिलचस्पी लेनी पडी। (कानपुर मे ट्रेड यूनियन काग्रेस के आठवे अधिवेशन (1927) मे महासचिव एन० एम० जोशी की रिपोर्ट)

1927 तक ट्रेड यूनियन काग्रेस का मजदूरो के सघर्ष से व्यावहारिक रूप मे बहुत सीमित सबध था। फिर भी इस सस्था ने एक एसा आधार तैयार किया जिसके कारण नवगठित ट्रेड यूनियनो के नेता पास आ सके और इसीलिए अब इसको मजदूरो के सघर्ष की हवा लगने म कुछ ही देर थी। 1927 तक ट्रेड यूनियन काग्रेस से 57 यूनियने सबद्ध हो चुकी थी जिनके सदस्यो की कुल सख्या 150,555 थी।

4 राजनीतिक जागरण

शुरू के दिनो मे भारतीय मजदूर आदोलन के नेताओ का जो चरित्र था उसके बावजूद सरकार को आने वाले दिनो मे मजदूर आदोलन के महत्व को समझने मे देर नही लगी। उसने पिछले 20 वर्षों मे भारतीय मजदूरवर्ग के आदोलन के उदय का महत्व महसूस किया था। सरकार की चिता का प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि उसने 1921 मे बगाल म औद्योगिक अशाति की जाच के लिए एक समिति नियुक्त की 1922 म बबई मे औद्योगिक विवाद समिति बनाई गई, 1919 20 म मद्रास मे सरकार को एक श्रमिक विभाग खोलना पडा और उसके बाद बबई म भी इसी तरह का एक विभाग खोला गया। 1921 मे एक ट्रेड यूनियन बिल तैयार किया गया हालाकि वह 1926 म जाकर पारित हो सका। 1921 से औद्योगिक विवादो के नियमित रूप से आकडे रखे जाने लगे। ये आकडे काफी महत्वपूर्ण हैं क्योकि इनसे आदोलन की प्रगति की तस्वीर मिलती है। (कृपया पृष्ठ 418 तालिका देखे)। औद्योगिक झगडो म काम के कुल जितने दिनो का नुकसान हुआ उनम स आधे मे अधिक दिन अकेले कपडा मिलो से सबधित हैं और आधे से ज्यादा दिन अकेले बबई म हुए विवादो मे सबधित ह।

आगे चलकर यह देखा जाएगा कि सघप की तीन प्रमुख अवस्थाए महत्वपूर्ण है। पहला चरण युद्ध के बाद आई विश्वव्यापी लहर थी जिसकी परिणति 1925 मे बबई कपडामिलों की सफल हडताल मे हुई। यह हडताल वेतन मे कटौती की धमकी के खिलाफ की गई थी और तीन महीनों के सघप के बाद मिलमालिको को यह धमकी वापस लेनी पडी। सघप का दूसरा दौर 1928-29 का है जब मजदूरो म सयुक्त रूप से राजनीतिक और औद्योगिक जागृति आई। तीसरा दौर 1937 म काग्रेस मत्रिमडल के गठन के बाद शुरू हुआ और प्रगति की यह नई शुरुआत आज भी विकासोन्मुख है।

औद्योगिक विवाद

वर्ष	हडतालो और तालाबदियों की सख्या	इनमे शामिल मजदूरो की सख्या	काम के नुकसान हुए दिनो की सख्या
1921	396	600,351	6,984 426
1922	278	433 434	3 972 727
1923	213	301 044	5 051,704
1924	133	312 462	8,730 918
1925	134	270,423	12,578,129
1926	128	186,811	1 097 478
1927	129	131,655	2,019,970
1928	203	506 851	31,647,401
1929	141	532 016	12,165,691
1930	148	196,301	2,261,731
1931	166	203 008	2,408 123
1932	118	128,099	1,922,437
1933	146	164 938	2,168,961
1934	159	220,808	4,775,559
1935	145	114,217	973 457
1936	157	169,029	2 358,062
1937	379	647,801	8 982,000
1938	399	401,075	9,198 708
1939	406	409 189	4 992 795
1940	322	452,539	7,577,281
1941	359	291,054	3 330 503
1942	694	772 653	5,779 281
1943	716	525 088	2,342 287
1944	658	550 015	3,447 306
1945	848	782,192	3 340 892
1946	1,593	1,951 756	12,678 121
1947	1 811	1 840 784	16 562 666
1948	1,639	1,332 956	7,214 456

सरकार को और सरकार द्वारा नियुक्त उन समतियो और आयोगो को जिनके जिम्मे जाच का काम दिया गया था, यह अच्छी तरह पता था कि यदि इस उभरते हुए मजदूर आदोलन ने एक बार राजनीतिक चेतना प्राप्त कर ली और यदि उसे ठोस सगठन तथा वगचेतना से लैस नेतत्व मिल गया तो यह साम्राज्यवाद के लिए एक बहुत बडा खतरा साबित हो सकता है। सरकार को मजदूरवग की सघप शक्ति का प्रमाण युद्ध के बाद के वर्षो म मिल चुका था। सरकार के सामन यह सवाल था कि मजदूर आदोलन को किस तरह किसी ऐसे रास्ते पर लगाया जाए जिससे साम्राज्यवाद के लिए कोई खतरा न रह अथवा जैसा कि सरकार की एक रिपोट म कहा गया था, सरकार की समस्या यह थी कि 'सही ढग' का ट्रेड यूनियन आदोलन कैसे स्थापित किया जाए। यह काम साम्राज्यवादी देश के मुकाबले औपनिवेशिक देश मे ज्यादा कठिन है। 1926 के ट्रेड यूनियन ऐक्ट का यही उद्देश्य था। इसके जरिए यूनियनो की राजनीतिक गतिविधियो पर खास तौर से रोक लगा दी गई थी। सरकार हमेशा इस बात के प्रति सतक रहती थी कि मजदूरवग म कही राजनीतिक जागरण के चिन्ह तो प्रकट नही हो रहे है।

फिर भी इन सारे अवराधो और शुरू के दिनो की उलझना के बावजूद मजदूरवग म समाजवादी और साम्यवादी विचारो की राजनीतिक चेतना की शुरआत हो चुकी थी जो युद्ध के बाद के वर्षों म धीरे धीरे भारत पहुचने लगी थी। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी अभी काफी कमजोर थी लेकिन उसका साहित्य 1920 से ही लोगो के बीच पहुचने लगा था। 1924 से बबई से सोशलिस्ट' नामक एक पत्र का प्रकाशन शुरू हो गया था जिसके सपादक श्री एस० ए० डागे थे। श्री डागे बाद म ट्रेड यूनियन काग्रेस के सहायक मत्री चुन गए। सरकार ने इसपर प्रहार करने मे तनिक भी देर न की। 1924 म (जिस समय इग्लड मे लेबर पार्टी की सरकार थी) चार कम्युनिस्ट नेताओ—डागे, शौकत उस्मानी, मुजफ्फर अहमद और दास गुप्त पर कानपुर षडयत्र केस के सिलसिले मे मुकदमा चलाया गया। इन चारो नताओ को चार चार वष की सजा सुना दी गई। यही भारत के राजनीतिक मजदूर आदोलन की अग्निदीक्षा थी।

जनता के बीच जो जागति पैदा हुई थी उसे दमन स रोका नही जा सका। 1926-27 तक समाजवादी विचारधारा का व्यापक प्रचार हो गया था। दश म स्थान स्थान पर मजदूर और किसान पार्टियो के रूप म मजदूरवग के राजनीतिक और समाजवादी सगठन का एक नया रूप दिखाई देने लगा था जिनम ट्रेड यूनियन आदोलन के जुझारू तत्व और काग्रेस के वामपथी कायकर्ता एक मच पर इकट्ठे हो लग थे। फरवरी 1926 म बगाल म पहली मजदूर किसान पार्टी का गठन हुआ। इसक बाद बबई, सयुक्त प्रात और पजाब म भी इस तरह की पार्टिया बनी। 1928 मे य सारी पार्टिया एक साथ मिल गइ और अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी का जन्म हुआ जिसका पहला अधिवेशन दिसबर 1928 म हुआ। मजदूरा के बीच जिस नई राजनीतिक चेतना के पहल चिह्न 1927 मे प्रकट हुए थ उसका राजनीतिक रूप इस सगठन क रूप म सामन आया। हालाकि शुरू शुरू म

अनेक उलझनो का शिकार रहा। इन तथ्यो से उन नई शक्तियो का पता चलता है जो विकासोन्मुख हुई।

1927 के वसत मे ट्रेड यूनियन काग्रेस के दिल्ली अधिवेशन (इसम ब्रिटिश पार्लियामट के कम्युनिस्ट सदस्य शापुरजी शकलतवाला भी शामिल हुए थे) और आगे चलकर इसी वष कानपुर मे आयोजित अधिवेशन म और भी स्पष्ट रूप से यह बात प्रकट हो गई कि ट्रेड यूनियन आदोलन म जुझारू नेतृत्व की चुनौती भरी आवाजें सुनाई देन लगी है। यह बात बडी तेजी से स्पष्ट हाने लगी कि भारत की अधिकाश ट्रेड यूनियनें मजदूरवग के इस नये नेतृत्व के साथ ह हालाकि ट्रेड यूनियनो का पजीकरण कराने म देर होने के कारण 1929 तक इस तथ्य को सरकारी तौर पर नही माना गया। 1927 म पहली बार बबई म 1 मई, मई दिवस के रूप मे मनाया गया और इसे मजदूर दिवस का नाम दिया गया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत के मजदूर आदोलन के इतिहास म उस नए युग का सूत्र पात हो चुका है जब वह अतराष्ट्रीय मजदूर आदालन के एक सजग अग के रूप मे काम करेगा।

1928 म मजदूर आदोलन जिस तेजी से आगे बढा और उसने जिस सक्रियता का परिचय दिया, वह लडाई के बाद के वर्षों मे पहले कभी दखने मे नही आई थी। इस प्रगति का केंद्र बवई था। पहली बार मजदूरवग के बीच से ऐसा नेतत्व उभरकर सामने आया जिसका कारखानो म काम करने वाले मजदूरा से घनिष्ठ सपक था और जिसने वगसघप के सिद्धात का अपना निदशक सिद्धात माना था और जो आर्थिक तथा राजनीतिक दोनो क्षेत्रो मे एक शक्ति की तरह काम करता था। मजदूरा न इस नेतत्व का जारदार स्वागत किया। फरवरी मे साइमन कमीशन के भारत आने पर राजनीतिक हडताला और प्रदशनो का जा सिलसिला शुरू हुआ उससे कुछ समय के लिए मजदूरवग को राष्ट्रीय आदालन के हिरावल दस्ते का स्थान मिल गया। इसकी वजह यह थी कि काग्रेस के और ट्रेड यूनियन आदोलन के सुधारवादी नेता इस बात मे सहमत नही थे कि साइमन कमीशन के खिलाफ हान वाली हडतालो और प्रदशना म मजदूरवग भी भाग ले। लेकिन मजदूरवग की सफलता से वे हैरान रह गए। बबई के अनक म्यूनिसिपल मजदूरा को इसलिए नौकरी से निकाल दिया गया क्योकि उन्हाने हडताल म भाग लिया था। दुबारा हडताल करन पर ही उन्हे फिर नौकरी पर वापस लिया गया।

ट्रेड यूनियनो के सगठन का काम काफी तजी से आगे बढा। सरकारी आकडो के अनुसार बवई म 1923-26 के तीन वर्षों के दौरान ट्रेड यूनियन के सदस्या की सख्या 48,669 से बढकर महज 59 544 ही हुई थी लेकिन 1927 तक यह सख्या 75 602, माच 1928 तक 95,321 और माच 1929 तक यह सख्या बढकर 200 325 हो गई। इन सब यूनियनो म पहले स्थान पर प्रसिद्ध गिरनी कामगर (लाल झडा) यूनियन थी। यह यूनियन बबई के मिलमजदूरो का सगठन था और इसके सदस्यो की सख्या 1928 के शुरू म केवल 324

थी लेकिन सरकार के 'लेबर गजट' मे प्रकाशित आकडो के अनुसार दिसबर 1928 मे यह सख्या 54,000 और मार्च 1929 तक 65,000 हो गई थी। इस बीच 1926 मे वनी और ट्रेड यूनियन के सुधारवादी नेता एन० एम० जोशी के नेतृत्व मे काम कर रही, बबई की पुरानी सूती कपडा मजदूर यूनियन (बाबे टेक्सटाइल लेबर यूनियन) के सदस्यो की सख्या मे कोई खास वृद्धि नही हुई। इस यूनियन को सरकार तथा मिलमालिक दोनो की ओर से बढावा दिया जा रहा था। लेबर गजट के ही आकडो के अनुसार अक्तूबर 1928 मे इस यूनियन के सदस्यो की सख्या 8,436 थी जो दिसबर 1928 म केवल 6,749 रह गई। इससे साफ पता चलता है कि मजदूरो को कौन सी यूनियन पसद थी। गिरनी कामगर यूनियन की शक्ति इस बात मे निहित थी कि उसने मिलो मे समितिया बनाई थी जिनका मजदूरो के साथ घनिष्ठ सबध था।

1928 मे हुई हडतालो म कुल 3 करोड 15 लाख काम के दिनो का नुक्सान हुआ। पिछले पाच वर्ष मे कुल मिलाकर भी इतनी बडी सख्या मे काम के दिनो का नुकसान नही हुआ था। यद्यपि हडतालो का केंद्र बबई था जहा कपडा मिल के मजदूरो ने सक्रियता दिखाई थी लेकिन यह आदोलन समूचे देश मे फैल गया था। 1928 मे औद्योगिक विवादो के 203 मामले सामने आए जिनमे से 111 मामले बबई के, 60 बगाल के, 8 बिहार तथा उडीसा के, 7 मद्रास के और 2 पजाब के थे। इनमे 110 विवाद सूती और ऊनी कपडामिलो मे हुए थे 19 जूटमिलो म, 11 इजीनियरिंग कारखानो म, 9 रेलवे तथा रेलवे कारखानो मे, और 1 कोयले की खान मे हुआ था। इन सबमे सबसे ज्यादा शानदार बबई के कपडा मिल मजदूरो की हडताल थी और भारत के इतिहास मे यह सबसे बडी हडताल थी। इस हडताल मे अप्रैल से लेकर अक्तूबर तक अर्थात छ महीने तक इन मिलो के सभी डेढ लाख मजदूरो ने सरकारी हिंसा और दमन के हर रूप का जमकर सामना किया। यह हडताल मूलत अभिनवीकरण के लिए उठाए गए कदमो और साढे सात प्रतिशत वेतन कटौती के विरुद्ध आरभ हुई थी लेकिन बाद मे इसम और भी तमाम मागें जुड गईं। शुरू मे सुधारवादी नेताओ ने इस हडताल का विरोध किया और एन० एम० जोशी ने कहा कि हम लोगो की स्थिति 'दर्शको' की है लेकिन बाद मे ये नेता भी आदोलन म खिच आए। सरकार ने आदोलन को विफल करने की तमाम कोशिशें की लेकिन उसकी सारी कोशिशें नाकामयाब हो गईं। अत मे उसने फासेट कमेटी की नियुक्ति की घोषणा की जिसने साढे सात प्रतिशत कटौती का प्रस्ताव वापस ले लिया और मजदूरो की कुछ अन्य मागें भी मान ली।

इस प्रकार 1929 का वर्ष शुरू होते होते एक नाजुक स्थिति पैदा हो गई थी। मजदूर आदोलन आर्थिक और राजनीतिक रगमच पर सबसे आगे पहुच गया था। पुराने सुधारवादी नेतृत्व को मजदूरवर्ग अपने रास्ते से हटा रहा था। 1927-28 म ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस का एक प्रतिनिधिमडल भारत आया। इस प्रतिनिधिमडल से साम्राज्यवादियो को बडी आशाए थी (ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस ने इधर भारतीय मजदूरो की स्थितियो म जो दिलचस्पी लेनी शुरू की है वह काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती है बशर्ते उससे भारत

की मजदूर यूनियनो का सगठन सुधर जाए और इन यूनियनो से साम्यवादी तत्वो का निकाल बाहर किया जाए।' (लदन टाइम्स 14 जून 1928) ब्रिटिश प्रतिनिधिमडल का उद्देश्य भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस का यूरोप की सुधारवादी ट्रेड यूनियन इटरनेशनल से सबध स्थापित करना था। लेकिन उसे इस काम मे सफलता नही मिली। इस असफलता से सरकार काफी चिंतित हुई और उसकी यह चिंता छिपी न रह सकी। जनवरी 1929 मे विधानसभा म वायसराय लार्ड इर्विन न अपने भाषण म कहा कि कम्युनिस्ट विचार धारा के खुले प्रचार से चिंताजनक स्थिति पैदा हो गई है।' उन्होंने ऐलान किया कि सरकार इसे रोकने के लिए कदम उठाएगी। सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 'इडिया इन 1928-29' शीर्षक के अतगत कहा गया है कि कम्युनिस्टो के प्रचार और प्रभाव से, विशेष रूप से कुछ बडे शहरो के औद्योगिक केंद्रो म उनके प्रचार और प्रभाव से अधिकारियो को काफी चिंता हो गई है।' इग्लैंड के उदारवादियो न भी यही चिंता दोहराई। अगस्त 1929 म 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने लिखा कि 'पिछले दो वर्षो के अनुभव ने यह बता दिया है कि कम्युनिस्टो के चक्कर म बडे बडे केंद्रो के औद्योगिक मजदूर बहुत जल्दी आ जाते है।' भारत के राष्ट्रवादी अखबारो न भी इसी तरह की चीख पुकार मचाई। मई 1929 म 'बाबे क्रानिकल' ने लिखा कि 'पिछले कई महीनो मे भारत मे होने वाले विभिन्न सम्मेलनो मे और खासतौर से किसानो तथा मजदूरो के सम्मेलनो म समाजवादी सिद्धातो का प्रचार हो रहा है।' सुधारवादी नेताओ ने अपने पैरो तले जमीन खिसकती महसूस की और माग की कि कम्युनिस्टो के खिलाफ कडी कार्यवाही की जाए। मई 1928 मे ही ट्रेड यूनियन काग्रेस की कार्यकारिणी के अध्यक्ष श्री शिवराव ने कहा था कि अब समय आ गया है जब भारत के ट्रेड यूनियन आदोलन को अपने सगठन से उन तत्वो को चुन चुन कर निकाल देना चाहिए जो शरारतपूर्ण कार्यवाहिया करते है। इस तरह की चेतावनी इसलिए भी आज बहुत जरूरी है क्योकि कुछ लोग मजदूरो को हडताल का उपदेश देने म लगे हुए है।

1929 मे सरकार ने कदम उठाए और मजदूरो के बढते आदोलन पर जबरदस्त प्रहार किया। सितबर 1928 मे सार्वजनिक सुरक्षा बिल (पब्लिक सेफ्टी बिल) असेंबली म पेश किया गया। इस बिल का उद्देश्य सरकारी तौर पर यह बताया गया था कि इससे 'भारत मे कम्युनिस्टो की गतिविधियो को रोका जाएगा।' लेकिन असेंबली ने इस बिल को नामजूर कर दिया। 1929 के वसत म वायसराय ने एक विशेष अध्यादेश के जरिए इस बिल को लागू कर दिया। इसके बाद मजदूरो की स्थिति की जाच के लिए ह्विटले कमीशन नियुक्त किया गया। बाद म ट्रेड डिस्प्यूटस ऐक्ट बनाया गया जिसका उद्देश्य मजदूरो और मालिको के विवादो को बातचीत के जरिए सुलझाने की व्यवस्था करना, दूसरो के समर्थन मे की जाने वाली हडतालो पर रोक लगाना और सार्वजनिक सेवा के उद्योगो मे हडताल करने पर प्रतिबध लगाना था। इसी समय बबई म हुए दगो की जाच के लिए एक रायट इक्वायरी कमेटी का गठन किया गया और इस कमेटी ने सिफारिश की कि 'बबई मे कम्युनिस्टो की कार्यवाहियो को रोकने के लिए सरकार को सख्त कदम उठाने चाहिए। इस समिति ने यह सवाल भी उठाया कि क्या न ट्रेड यूनियन ऐक्ट म इस तरह

की मजदूर यूनियनो का सगठन सुधर जाए और इन
निकाल बाहर किया जाए।' लदन टाइम्स, 14 जून।
उद्देश्य भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस का यूरोप की सुध
सबध स्थापित करना था। लेकिन उस इस काम म स
से सरकार काफी चिंतित हुई और उसकी यह चिता
म विधानसभा म वायसराय लार्ड इर्विन न अपन भा
धारा के खुले प्रचार से चिंताजनक स्थिति पदा हो ग
इसे रोकने के लिए कदम उठाएगी। सरकार की र
शीर्षक के अतगत कहा गया है कि कम्युनिस्टो ने
कुछ बडे शहरो के औद्योगिक कद्रो म उनके प्रचा
चिंता हो गई है।' इग्लड के उदारवादियो न भी
'मैनचेस्टर गार्जियन' ने लिखा कि पिछले दो
कम्युनिस्टो के चक्कर म बडे बडे कद्रो के और
भारत के राष्ट्रवादी अखबारो ने भी इसी त
'बाबे क्रानिकल' ने लिखा कि 'पिछले कई मही
म और खासतौर से किसानो तथा मजदूरो के
हो रहा है।' सुधारवादी नेताओ ने अपने पैरो
की कि कम्युनिस्टो के खिलाफ कडी कायवा
काग्रेस की कायकारिणी के अध्यक्ष श्री शि
जब भारत के ट्रेड यूनियन आदोलन को अप
देना चाहिए जो शरारतपूण कायवाहिया
आज बहुत जरूरी है क्योकि कुछ लोग मज

भारतीय काग्रेस कमेटी के तीन सदस्यो को भी गिरफ्तार किया गया, इनम काग्रेस के, बबई के प्रातीय सचिव भी शामिल थ। कानपुर पडयत्र केस म जिन चार लोगो को सजा दी गई थी उनम से तीन फिर इस मुकदमे की चपेट म आ गए थे। इनम तीन अगरेज भी थे। इग्लैंड के मजदूर आदोलन के ये तीन प्रतिनिधि जब भारतीय मजदूरो के साथ कटघरे मे खडे हुए और बाद मे उनके साथ सजा काटने जेल म गए तो विश्व के सामने मेहनतकशवग की अतर्राष्ट्रीय एकता का उदाहरण उपस्थित हो गया जिसने पुरानी दीवारें तोड दी और जिसने ब्रिटेन तथा भारत की जनता के भावी मैत्री सबधो के लिए एक महत्वपूण और युगातरकारी घटना का काम किया।

भारत के मजदूर आदोलन के गिरफ्तार नताओं के व्यवहार से स्पष्ट हो गया कि सगठन के अभी प्रारभिक अवस्था मे होने के बावजूद मजदूर आदोलन को अपनी भूमिका का पूरा पूरा एहसास है और उसे पता है कि इस देश मे उसे एक गौरवपूण भूमिका निभानी है। अभियुक्तो न अपने बचाव म जो बयान दिए वे भारतीय मजदूर आदोलन के अत्यत मूल्यवान दस्तावेज बने रहगे। इस तरह के वक्तव्यो से एक नए भारत की तस्वीर सामन आई

> यह ऐसा मामला है जिसका राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व है। यह काई ऐसा साधारण मामला नही जिसम पुलिस ने 31 अपराधियो के खिलाफ महज अपने कतव्य का पालन किया हो। यह वगसघष क इतिहास की एक घटना है। इसे अमल म लाने के पीछे एक निश्चित राजनीतिक नीति है। यह भारत मे स्थापित ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार द्वारा उस ताकत पर प्रहार करने की कोशिश है जो असली दुश्मन को पहचानती है, जो अततोगत्वा अपने इन दुश्मनो का तख्ता पलट देगी, जिसने इनके खिलाफ असमझौतापूण वैर का रुख अपना लिया है और जिसने देश की अपार गरीब और शोपित जनता की प्रलयकर शक्ति का प्रदशन किया है। (राधारमण मित्रा का बयान)
>
> मेरे ऊपर आरोप लगाया है कि मैंने ब्रिटेन के सम्राट के खिलाफ पडयत्र किया। मैं पूरा जोर देकर कहना चाहूगा कि मैंने ऐसा किया है। कम्युनिस्ट लोग किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ पडयत्र नही करते है। कम्युनिस्ट चूकि मेहनतकशवग की पार्टियो के सबसे प्रगतिशील हिस्से है और सिद्धात वे सामान्य सवहारा जनता के हरावल दस्ते का काम करत है तथा इस बात का दावा करते है कि वे सवहारा आदोलन के सवमान्य कायक्रमो को समझ सकते हे और उनके सचालन की प्रक्रिया तथा परिणामो का पूवज्ञान रखत ह इसलिए वे महज समाज के ढाचे के अदर मौजूद वगसघष की ठोस परिस्थितियो को सामान्य भाषा म अभिव्यक्ति देते है।
>
> यदि कोई ऐसा अपराध है जिसपर अदालत मुझे दड देना चाह तो वह यही है

पी० सी० जोशी सयुक्त प्रात की किसान मजदूर पार्टी के सचिव।
ए० ए० आल्वे गिरनी कामगर यूनियन के अध्यक्ष।
जी० आर० कासले गिरनी कामगर यूनियन क अधिकारी।
गोपाल बसाक सोशलिस्ट यूथ कांफ्रेंस क 1928 मे अध्यक्ष।
जी० एम० अधिकारी पी-एच० डी०, बबई के समाजवादी अखबार 'स्पाक' के लेखक।
एम० ए० मजीद 1920 मे खिलाफत आदोलन के साथ उन्होने भारत छोड दिया, रूस की यात्रा की और वापस आने पर गिरफ्तार कर लिए गए। कीर्ति किसान पार्टी, पजाब के सचिव और पजाब यूथ लीग के सस्थापक।
आर० एस० निबकर बाब ट्रेड्स कौंसिल और बबई प्रातीय काग्रेस कमेटी के सचिव, अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी क महासचिव, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य।
विश्वनाथ मुखर्जी सयुक्त प्रात की मजदूर किसान पार्टी के अध्यक्ष।
केदारनाथ सहगल पजाब काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष और पजाब प्रातीय काग्रेस कमेटी के वित्तीय सचिव, आल इडिया यूथ लीग के सदस्य।
राधारमण मित्रा बगाल जूट वकर्स यूनियन के सचिव।
धरनी के० गोस्वामी बगाल की मजदूर किसान पार्टी के सहायक मत्री, प्रमुख मजदूर नेता।
गौरीशकर सयुक्त प्रात की मजदूर किसान पार्टी की कायकारिणी के सदस्य।
शमसुल हुदा बगाल ट्रासपोट वकर्स यूनियन के सचिव।
शिवनाथ बनर्जी बगाल जूट वकर्स यूनियन के अध्यक्ष, इससे पहले खडगपुर रेल हडताल के सिलसिले म एक वष की सजा काट चुके हैं।
गोपेंद्र चक्रवर्ती ईस्ट इडिया रेलवे यूनियन के अधिकारी, इससे पहल खडगपुर रेल हड ताल के सिलसिले म डेढ वष की सजा काट चुके है।
सोहनसिंह जोश अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी के पहले सम्मेलन के अध्यक्ष।
एम० जी० देसाई बबई के समाजवादी पत्र 'स्पाक' के सपादक।
अयोध्याप्रसाद बगाल की मजदूर किसान पार्टी के सक्रिय सदस्य।
लक्ष्मण राव कदम म्युनिसिपल वकर्स यूनियन, झासी के सगठनकर्ता।
एच० एल० हचिसन 'यू स्पाक' के सपादक।

बाद म गिरफ्तार किए गए बत्तीसवे व्यक्ति लेस्टर हचिसन एक अगरेज पत्रकार थे जिन्होने गिरफ्तारी के बाद 'यू स्पाक' का सपादन सभाला। इनको भी मुकदमे म शामिल कर लिया गया। गिरफ्तार किए गए व्यक्तियो म ट्रेड यूनियन काग्रेस के उपाध्यक्ष, एक भूतपूव अध्यक्ष, और दो सहायक मत्री, बबई के और बगाल के प्रातीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन के मत्रीगण, गिरनी कामगर यूनियन के सभी अधिकारी, जी० आई० पी० रेल कमचारियो की यूनियन के अधिकाश पदाधिकारी तथा अनेक दूसरी यूनियनो के पदाधिकारी और बगाल, बबई तथा सयुक्त प्रात की मजदूर किसान यूनियन के अय अधिकारी थे। अखिल

भारतीय कांग्रेस कमेटी के तीन सदस्यो को भी गिरफ्तार किया गया, इनम कांग्रेस के, बबई क प्रातीय सचिव भी शामिल थ। कानपुर षडयत्र केस मे जिन चार लोगो को सजा दी गई थी उनमे से तीन फिर इस मुकदमे की चपट म आ गए थे। इनम तीन अगरेज भी थे। इग्लैंड के मजदूर आदोलन के य तीन प्रतिनिधि जब भारतीय मजदूरो के साथ कटघरे म खडे हुए और बाद म उनके साथ सजा काटने जेल मे गए तो विश्व के सामने मेहनतकशवग की अतराष्ट्रीय एकता का उदाहरण उपस्थित हो गया जिसन पुरानी दीवारें तोड दी और जिसने ब्रिटेन तथा भारत की जनता के भावी मैत्री सबधो के लिए एक महत्वपूण और युगातरकारी घटना का काम किया।

भारत के मजदूर आदोलन के गिरफ्तार नेताओ के व्यवहार से स्पष्ट हो गया कि सगठन के अभी प्रारभिक अवस्था म होने के बावजूद मजदूर आदोलन को अपनी भूमिका का पूरा पूरा एहसास है और उसे पता है कि इस देश म उसे एक गौरवपूण भूमिका निभानी है। अभियुक्तो न अपने बचाव म जो बयान दिए वे भारतीय मजदूर आदोलन के अत्यत मूल्यवान दस्तावेज बने रहगे। इस तरह के वक्तव्यो से एक नए भारत की तस्वीर सामन आई

> यह ऐसा मामला है जिसका राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व है। यह कोई ऐसा साधारण मामला नही जिसमे पुलिस न 31 अपराधियो के खिलाफ महज अपने कतव्य का पालन किया हो। यह वगसघष के इतिहास की एक घटना है। इसे अमल म लाने के पीछे एक निश्चित राजनीतिक नीति है। यह भारत मे स्थापित ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार द्वारा उस ताकत पर प्रहार करन की कोशिश है जो असली दुश्मन को पहचानती है, जो अततोगत्वा अपने इन दुश्मनो का तख्ता पलट देगी जिसने इनके खिलाफ असमझौतापूण वैर का रख अपना लिया है और जिसने देश की अपार गरीब और शोषित जनता की प्रलयकर शक्ति का प्रदशन किया है। (राधारमण मित्रा का बयान)

> मेरे ऊपर आरोप लगाया है कि मैंने ब्रिटेन के सम्राट के खिलाफ षडयत्र किया। मैं पूरा जोर दकर कहना चाहूगा कि मैंने ऐसा किया है। कम्युनिस्ट लोग किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ षडयत्र नही करते है। कम्युनिस्ट चूकि मेहनतकशवग की पार्टियो के सबसे प्रगतिशील हिस्से है और सिद्धात वे सामान्य सवहारा जनता के हरावल दस्ते का काम करते है तथा इस बात का दावा करते है कि वे सवहारा आदोलन के सवमान्य कायक्रमो को समझ सकते है और उनके सचालन की प्रक्रिया तथा परिणामो का पूवज्ञान रखत ह इसलिए वे महज समाज के ढाचे के अदर मौजूद वगसघष की ठोस परिस्थितियो को सामान्य भाषा मे अभिव्यक्ति देते ह।
>
> यदि कोई ऐसा अपराध है जिसपर अदालत मुझे दड देना चाह तो वह यही है

कि मैंने भारत को पूंजीवाद के शोषण से वंचित करना चाहा और लाखों करोड़ों उत्पीड़ितों को मुक्त करना चाहा। यदि आप मेरे ऊपर ये आरोप लगाते हैं तो मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने अपराध किया है। (धरणी गोस्वामी का बयान)

चूंकि मेरा यह लक्ष्य था कि मेहनतकशवर्ग को शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति दिलाई जाए इसलिए मेरे लिए यह एक बुनियादी काम था कि मैं खुद को कमजोर और असंगठित मजदूर संगठनों को मजबूत बनाने के काम में पूरी निष्ठा के साथ लगा हूं।

ट्रेड यूनियन आंदोलन का एक बुनियादी सिद्धांत यह है कि वह किसी उद्योग के प्रत्येक वेतनभोगी कर्मचारी को एक मंच पर इकट्ठा कर देता है और उन्हें वर्ग आधार पर संगठित करता है। यदि कोई ट्रेड यूनियन सही अर्थों में मजदूरों का संगठन होना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह मालिकों और पूंजीपतियों के वर्ग के विरुद्ध मजदूरों के आर्थिक वर्ग हितों का प्रतिनिधित्व करे। यदि कोई ट्रेड यूनियन मजदूरों को वर्ग चेतना और वर्ग एकता के बुनियादी सिद्धांत समझाने में असफल रहता है तो वह निश्चय ही अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है।
(गोपेन चक्रवर्ती का बयान)

मेरे ऊपर आरोप लगाया गया है कि मैंने युवकों के बीच काम किया और युवकों के संगठन बनाए। यह सच है, मैंने युवकों के बीच कुछ काम करने की कोशिश की। मैं भी भारत के हर युवक की तरह यह चाहता हूं कि भारत आजाद हो। मैं भी चाहता हूं कि देश को पूर्ण आजादी मिले, भारत का पूर्ण उद्योगीकरण हो तथा देश को राजनीतिक और आर्थिक आजादी मिले। आजादी की इच्छा करना और उसके लिए काम करना कभी अपराध नहीं हो सकता

भारत का नौजवान यदि खुशहाली चाहता है तो उसके सामने दो ही आदर्श हो सकते हैं, आजादी की प्राप्ति और समाजवादी समाज की स्थापना।
(गोपाल बसाक का बयान)

हम लोगों के खिलाफ दर्ज किया गया मामला कुछ ऐसा है कि किसी व्यक्ति विशेष के पक्ष में दलीलें देने का सवाल ही नहीं पैदा होता। जिस बात के पक्ष में दलील देने का प्रश्न पैदा होता है वह है पार्टी का प्रश्न, पार्टी की विचारधारा का प्रश्न, पार्टी के बने रहने के अधिकार का प्रश्न और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से संबद्ध होने या सहयोग लेने का प्रश्न अभियोग पक्ष ने कम्युनिज्म, कम्युनिस्टों और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन) पर अत्यंत घिनौने आरोप लगाए हैं। उसमें कहा गया है कि हमारा अपराध न केवल राजसत्ता

के खिलाफ है बल्कि समूचे समाज के खिलाफ है। मै इन गालियो को बेहद अपमान जनक मानता हू और कहता हू कि सही अर्थो म समूचे मानव समाज के दुश्मन वे ही लोग है, वे साम्राज्यवादियो के हथियार है और उनके दलाल है। मै पूछता हू कि सामाजिक अपराधी कौन है ? खून के प्यासे साम्राज्यवादी—जिन्होने समूचे महाद्वीप मे सगीन और गोलियो का आतक स्थापित किया है, जिन्होने रक्तपात और यातना का उपनिवेशवादी शासन स्थापित किया है, जिन्होने इस महाद्वीप की करोडो जनता को दाने दाने का मोहताज किया और गुलाम बना रखा है और जो जनता के विनाश का खतरा बन हुए है या सामाजिक अपराधी वे कम्युनिस्ट है जो समूची दुनिया की शोषित और उत्पीडित जनता की क्रातिकारी शक्ति को सगठित करने के लिए और इस शक्ति से दमन और शोषण पर आधारित सडी गली व्यवस्था को उखाड फेंकने के लिए प्रयत्नशील है जो इस व्यवस्था को समूल नष्ट करके एक नई समाज व्यवस्था कायम करना चाहते हैं, और सर्वनाश की तरफ बढ रहे मानव समाज और सभ्यता को बचाना चाहते ह ? इस मुकदमे म सामाजिक अपराधियो के आधिकारिक प्रतिनिधि अभियोग पक्ष की बेंच पर बैठे हुए ह।

जैसाकि मैंने कहा कम्युनिस्ट इटरनेशनल, (अतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आदोलन) पिछले सौ वर्षो के अतर्राष्ट्रीय मजदूर आदोलन के सहज विकास का नतीजा है। यह अपने से पहले के दो 'इटरनेशनल' की क्रातिकारी परपरा का विकास है। अपने कई दशको के सर्वहारा सघर्ष के अनुभवो पर निर्भर होकर कम्युनिस्ट इटरनेशनल आज पूजीवादी देशो म समाजवाद की स्थापना के लिए सघर्षरत क्रातिकारी मजदूर आदोलन का नेतृत्व कर रहा है, उपनिवेशो मे साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय क्रातिकारी आदोलन को सचालित कर रहा है और अतत विश्व के छठे हिस्से मे समाजवाद की स्थापना का वास्तविक काम कर रहा है और इस काम मे दिशा निर्देशन कर रहा है। इस अतिम क्षेत्र म अतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आदोलन की उपलब्धियो से ही पूजीवादी देशो की सर्वहारा जनता के बीच इसकी शक्ति और प्रभाव बढ रहा है और उपनिवेशो की शोषित जनता के बीच कम्युनिस्ट विचारधारा का प्रसार बढता जा रहा है।

सोवियत सघ का अस्तित्व आज कोमिनतर्न के नेतृत्व म चलने वाले अतर्राष्ट्रीय मजदूर आदोलन के लिए बहुत बडा अवलब है। इस आधार स ही कम्युनिस्ट इटरनेशनल, विकसित देशो की सर्वहारा जनता और उपनिवेशो की मेहनतकश जनता के सहयोग से पूजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध अभियान जारी रखेगा और अत म उन्हे जड स उखाड फेकेगा।

कम्युनिस्ट इटरनेशनल आज विश्व इतिहास मे एक ऐसा विशाल कारखाना है जो

> मानव समुदाय और मानव सभ्यता की नियति को एक नया स्वरूप प्रदान करेगा और वतमान व्यवस्था क अतगत मौजूद सवनाशकारी खतरा से उसकी रक्षा करेगा
>
> लेकिन बुजुर्आवग (पूजीपतिवग) के इन घृणित दलाला की समय म यह बात नही आएगी। उनके लिए कम्युनिस्ट इटरनशनल एक ऐसा गुप्त पडयत्र है जिस दड सहिता की किसी धारा की मदद से समाप्त करना होगा।
> (डा० जी० एम० अधिकारी का बयान)

इस मुकदम म भारत के मजदूर आदोलन को जो भूमिका रही वह अतर्राष्ट्रीय मजदूर आदोलन के उच्चतम मानदडो के अनुरूप रही और यह उन लोगा के लिए एक प्रेरणा और मिसाल बनी जिनके ऊपर आज भारत म समाजवाद और मजदूरवर्ग के झडे को ऊचा उठाने की जिम्मेदारी है।

सरकार ने इस मुकदमे को साढे तीन साल तक घसीटा, भारत के इतिहास मे चार वष की यह अवधि बहुत ही नाजुक थी और इस अवधि म मजदूरवग का सबसे अच्छा नेतृत्व जेला म पडा रहा। दड सहिता की धारा 121A के तहत जो आरोप लगाए गए थे उसकी पुष्टि के लिए प्रमाण पेश करने की कोई कोशिश नही की गई।

> ब्रिटिश भारत के भीतर या बाहर जो भी व्यक्ति ऐसे किसी अपराध का पडयत्र करता है जो धारा 121 के तहत दडनीय हो या सम्राट को ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी हिस्से से अपदस्थ करता है या अनुचित शक्ति के जरिए भारत सरकार का, या स्थानीय सत्ता का तख्ता पलटने का पडयत्र करता है उसे आजन्म या कुछ समय के लिए कालापानी की सजा दी जाएगी या उसे ऐसी कोई भी सजा दी जाएगी जिसकी अवधि दस वष तक हा।

यह स्वीकार किया गया कि आरोपा को सही साबित करने के लिए अभियुक्तो की किसी कायवाही का हवाला नही दिया जा सका। हाईकोट के जज ने अपने फैसले मे कहा यह मान लिया गया है कि अभियुक्तो पर यह आरोप नही लगाया गया है कि उन्होने तथा कथित पडयत्र म कोई गैरकानूनी तरीका अपनाया।

सरकारी वकील ने कहा

> अभियुक्ता पर यह आरोप नही लगाया गया है कि वे कम्युनिस्ट विचारधारा को मानत है बल्कि यह आरोप लगाया गया है कि उन्होने—भारत म सम्राट की प्रभुसत्ता को समाप्त करने के लिए पडयत्र रचा था। मुकदमे के मकसद के लिए

> यह साबित करना जरूरी नही है कि अभियुक्तो ने वास्तव मे कुछ किया है। यदि केवल यही साबित हो जाता है कि उन्होने षडयत्र किया था तो काफी है ।

षडयत्र' जैसी कोई चीज नही थी। अभियुक्तो के समाजवादी सिद्धातो को सभी लोग जानते थे और उन्होंने खुलेतौर पर अपने इन सिद्धातो की घोषणा भी की थी। इसी तरह मजदूर सगठन के काम भी सबके सामने थे। कही कोई अनुचित शक्ति' नही थी। केवल मजदूर आदोलन का सगठन और नेतृत्व था।

असली आरोप का पता अभियोगपत्र से चला। इसम अभियुक्तो पर आरोप लगाया गया था कि वे 'पूजी और श्रम के बीच शत्रुता बढात ह' मजदूर किसान पार्टिया, यूथ लीग, यूनियन आदि बनाते है' और हडतालो को बढावा देते है।' गवाहियो म भी इन्ही गतिविधिया पर खासतौर से ट्रेड यूनियन गतिविधियो पर सारा जोर दिया गया था। इन अभियुक्ता म स एक अभियुक्त, बगाल जूट वकर्स यूनियन के मत्री पर सरकारी वकील ने आरोप लगाया कि वह षडयत्र म उसी समय शामिल हो गया था जब उसने कलकत्ता के भगियो की हडताल मे हिस्सा लिया था।' इस मुकदमे के पीछे सरकार के मुख्य उद्देश्य क्या थे, इसकी घोषणा जज ने अपने फैसले मे कर दी

> सभवत इसमे ज्यादा गभीर बात यह है कि बबई के कपडा मिलमजदूरो पर इनका काफी प्रभाव है। इसका उदाहरण 1928 की हडताल और गिरनी कामगर यूनियन की क्रातिकारी नीति म मिल गया था।

फिर भी यह मुकदमा उभरते हुए मजदूर आदोलन को रोकने म एतिहासिक दृष्टि से उतना ही महत्वपूण था जितना महत्वपूण ब्रिटिश मजदूर आदोलन के इतिहास म सौ वष पुराना डौरचेस्टर क मजदूरा का मुकदमा था। यह मुकदमा लेबर सरकार क शासनकाल म चलाया गया था और लेबर सरकार ने इसकी पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी (हम इसकी पूरी जिम्मदारी अपन ऊपर लेत ह—भारतीय मामलो क मत्री पूर जोरशोर से भारत सरकार का समथन कर रहे ह',—1929 म ब्राइटन म लेबर पार्टी के सम्मेलन म डा० ड्रमड शील्स का भाषण)। 25 जून 1929 को डेली हेराल्ड' न कहा 'कानून की मशीन को अपना काम करत रहना चाहिए।' ब्रिटिश ट्रेड यूनियन के नाम भारत की ट्रेड यूनियन की अपील के जवाब म सर वाल्टर सिट्रीन न 1 अक्तूबर 1929 को लिखा कि मुकदम की कायवाही जल्दी स जल्दी पूरी हो जानी चाहिए। अभियुक्ता पर जो आराप लगाए गए हैं वे राजनीतिक आराप है और जनरल कौंसिल की राय म भारतीय ट्रेड यूनियन आदोलन का इससे कोई प्रत्यक्ष सबध नही है। बाद म जब मुकदमा समाप्त हो गया और लेबर पार्टी की सरकार भी नही रही तब 1933 म ट्रेड यूनियन काग्रेस और लेबर पार्टी की सयुक्त राष्ट्रीय समिति न एक पुस्तिका प्रकाशित की और इसम कहा कि

'मुकदमे की पूरी कार्यवाही शुरू से अत तक ऐसी थी जिसके एक भी शब्द का पक्ष नही लिया जा सकता और जो यायिक धाधलेबाजी का उदाहरण है।'

जनवरी 1933 म अदालत ने अत्यत क्रूरतापूर्ण सजाए सुनाई मुजफ्फर अहमद को आजीवन कालापानी, डागे घाटे, जोगलेकर निबकर और स्प्रैट को बारह साल का कालापानी ब्रडले, मिरजकर और उस्मानी को दस साल का कालापानी तथा इसी तरह की अय सजाए थी जिनम सबसे कम सजा तीन वप का कठोर कारावास था। इन सजाओ की घोषणा के बाद विश्व भर म विरोध प्रदशन हुए, परिणामत अपील करने पर इन सजाओ मे काफी कमी कर दी गई।[1]

6 मेरठ के बाद मजदूर आदोलन का पुनर्गठन

मेरठ मे हुई गिरफ्तारियो के बाद के कुछ वप भारत के मजदूर आदोलन क लिए काफी कठिन वप थे। हालाकि मेरठ के मुकदमे न ऐसी हर घटना की तरह ही आदोलन की भावी शक्ति और विजय के बीज काफी मजबूती से बोए फिर भी इन गिरफ्तारियो स आदोलन पर एक तात्कालिक प्रहार तो हुआ ही।

भारत के मजदूर आदोलन के विकास का यह प्रारभिक चरण था और ऐसी स्थिति म वह अपने गिरफ्तार नेताओ की कमी को जल्दी पूरा नही कर सका। आर्थिक सकट का दौर चल रहा था और इन दिनो जो भी हडताले हुइ, उनम मजदूरो की जबरदस्त हार हुई। आर्थिक सकट के दौर क बाद राष्ट्रीय सघप के नाजुक वप शुरू हुए और इन वर्षों म मेहनतकश वग की राजनीतिक भूमिका काफी कमजोर कर दी गई। साम्राज्यवादियो का इरादा भी यही था।

ट्रेड यूनियन आदोलन के सामन भी अनक तरह की कठिनाइया आइ। पिछले दो वर्षों म सगठन के व्यावहारिक काम और अपनी अपेक्षाकृत बढी शक्ति क आधार पर ट्रेड यूनियन काग्रेस के वामपथी बहुमत को अतत 1929 के अत म नागपुर अधिवेशन म सफलता मिल गई। पुरान सुधारवादी नेताओ न अपन को अल्पमत म पाया। उन्होन बहुमत क जनतात्रिक फसले को मानन से इकार किया और उन्हाने ट्रेड यूनियन काग्रेस म फूट डालकर अपनी अनुयायी यूनियनो का लकर ट्रेड यूनियन फेडरेशन की स्थापना कर ली। एन० एम० जोशी, शिवराव गिरि दीवान चमनलाल तथा अय लोगो की आर स जो बयान जारी किया गया उसम कहा गया कि 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस की कायकारिणी की कायवाही स यह बात अब साफ हो गई है कि उसक सदस्यो का बहुमत एसी नीति क पालन के पक्ष म है जिसस हम पूरी तरह असहमत ह। इस वक्तव्य म आग कहा गया कि हम कोई सदह नही कि काग्रेस का एक निर्णायक बहुमत उनक साथ है। इन परिस्थितियो म हम कहना चाहत ह कि कायकारिणी क प्रस्तावो स हमारा कोइ

नवध नही है और हम यह भी महसूस करते हैं कि कांग्रेस की कार्यवाहियो मे शिरकत करते रहने से अब कोई मकसद पूरा नही होगा।'

लेकिन ट्रेड यूनियन आदोलन पर अब जिन वामपथी नेताओ का नेतृत्व हुआ उनमे एकता या सहयोग नहीं था। इसकी वजह यह थी कि इस नेतृत्व म तरह तरह के लोग थे। फलस्वरूप कुछ समय बाद मुख्यतया मजदूरवर्ग की स्वतत्र राजनीतिक भूमिका के प्रश्न पर ट्रेड यूनियन काग्रेस म फिर फूट पड गई। मजदूरवर्ग की स्वतत्र राजनीतिक भूमिका की बात कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग करते थे और उन्होंने अपनी अलग अलग लाल ट्रेड यूनियन काग्रेस बना ली।

इन फूटो स ट्रेड यूनियन आदोलन कमजोर हो गया लेकिन मजदूरो न अलग अलग हडतालों के जरिए अपना सघर्ष जारी रखा। उन्होंने न केवल आर्थिक मागो के लिए बल्कि ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओ को नौकरी स निकाले जाने और दडित किए जाने के खिलाफ अर्थात संगठन के जनवादी अधिकार के लिए सघर्ष किया। इसका प्रमाण हडतालो की बढती हुई सख्या स मिल सकता है। 1929 मे 141 हडतालें हुई और 1930 तथा 1931 म क्रमश 148 तथा 166 हडतालें हुइ। इन हडतालो मे प्रति वर्ष 1 लाख से ज्यादा मजदूरो ने हिस्सा लिया। इन सघर्षों का नेतृत्व लाल ट्रेड यूनियन काग्रेस के कम्युनिस्टो ने किया और 1933 तक सरकार को भी बडी खीझ के साथ यह कहना पडा कि हालाकि मेरठ काड के नेता अब भी जेलो म पडे ह पर कम्युनिस्टो का खतरा बना हुआ है और यह पहल स तेज हुआ है' (इडिया, 1932-33)।

इन अलग अलग हडतालो से 1934 की हडतालो के बडे सिलसिले का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसका उद्देश्य मिलमालिको की अभिनवीकरण (रेशनलाइजेशन) योजना का विरोध करना था। यह योजना काम बढाने और शोषण तेज करने के लिए तैयार की गई थी। सघर्ष की इस लहर की तीव्रता और विस्तार का सबूत इस बात से ही मिल सकता है कि 1933 मे जहा 146 हडतालो म 164,938 मजदूरो ने भाग लिया और 2,168,961 काम के दिनो का नुकसान हुआ, वही 1934 म 159 हडतालें हुई जिनमे 220 808 मजदूरो न भाग लिया और 4,775,559 काम के दिनो का नुकसान हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि 1934 म 1933 क मुकाबले दुगने काम के दिनो का नुकसान हुआ। सरकार के जबरदस्त दमन के बावजूद सूती कपडा मिलमजदूरो की हडताल बबई म अप्रैल से जून तक और शोलापुर मे फरवरी से मई तक चली। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि मजदूरवर्ग न अपनी बिखरी शक्ति का फिर से बटोर लिया था अपनी एकजुटता फिर कायम कर ली थी और जुझारू नेताओ की एक नई पीढी को सामने ला दिया था।

सरकार ने फिर हमला किया। आपात अधिकारो स सबधित एक अध्यादेश जारी किया गया और कम्युनिस्टो तथा ट्रेड यूनियन नेताओ को बिना मुकदमा चलाए गिरफ्तार व

लिया गया। कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। कानूनी तौर स पजीकृत एक दजन से अधिक ट्रेड यूनियनो को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया, यग वकस लीग पर प्रतिबध लगा दिया गया और मेहनतकशवग के जुझारू और क्रांतिकारी सगठनो को कुचलने क लिए गोलिया चलाई गई।

इस जबरदस्त सघप का ही यह नतीजा था कि मेहनतकशवग के सगठना म फिर से एकता स्थापित करन के प्रयास शुरू हुए। 1935 म लाल ट्रेड यूनियन काग्रेस और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस मिलकर एक हो गए और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्वागत समिति के अध्यक्ष एस० एच० झाबवाला न अपने भाषण म कहा

> अपने व्यक्तिगत अनुभव स बिना किसी अतिशयोक्ति के, मै यह कह सकता हू कि कम्युनिस्टो के साथ काम करके मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। कम्युनिस्टो म ही मुझे ऐसे लोग मिले है जो मजदूरो क रोजमर्रा के हितो के लिए और उनकी एकता के लिए निरतर सघप कर सकते हैं। (आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस बबई के 15वें अधिवेशन की रिपोट, मई 1936)

इस अधिवेशन के मच से ही नेशनल फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियस ने सुधारवादी नेताओ के नाम एक अपील की गई थी जिसम कहा गया था कि उन्हे मजदूरो के केंद्रीय नेतृत्व म एकता कायम करने के लिए सहमत हो जाना चाहिए क्योकि मालिको और सरकार की ओर से मजदूरो पर हो रहे हमले को मजदूरो के देशव्यापी हमले के जरिए ही रोका जा सकता है। फेडरेशन के नेताओ को विश्वास दिलाया गया था कि एकता के लिए उनकी सारी शर्तें मान ली जाएगी बशर्ते व दो बुनियादी सिद्धातो पर सहमत हो जाए पहला यह कि ट्रेड यूनियन आदोलन का आधार वगसघप है और दूसरा यह कि ट्रेड यूनियनो के अदर जनवाद होना चाहिए। लेकिन फेडरेशन के नेताओ न तुरत सगठनात्मक एकता हो जाने का विरोध किया। इसलिए 1936 म एक सयुक्त बोर्ड बनाया गया और 1938 म कही जाकर नागपुर अधिवेशन के समय नेशनल फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियस अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के साथ सबद्ध हुई और काग्रेस की प्रबध समिति म दोनो सगठनो के बराबर बराबर प्रतिनिधि शामिल किए गए। ट्रेड यूनियन काग्रेस को एक बार फिर ऐसे सगठन का श्रेय मिला जो भारत क समूचे मजदूर आदोलन को एकजुट कर सके। केवल एक सगठन इसके बाहर रहा और वह था अहमदाबाद का लेबर ऐसोसिएशन जो गाधीवादी विचारधारा के तहत था।

राजनीतिक क्षेत्र म भी नई घटनाए हुई। मजदूर और किसान पार्टिया अपन दो वर्ग चरित्र की वजह स राजनीतिक मजदूर सगठन के लिए कोई स्थाई आधार न देकर महज विकास की सक्रमणकालीन अवस्था तयार कर सकती थी और मेरठ के बाद य पार्टिया राष्ट्रीय रगमच से गायब हो गई। हालाकि कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर

दिया गया था पर इस तरह के उपायो से समाजवादी और साम्यवादी प्रभाव तथा मार्क्स-वादी विचारधारा के प्रसार को नही रोका जा सका। 1930-34 का सविनय अवज्ञा आदोलन समाप्त हो जाने क बाद शक्ति मे और भी वद्धि हुई क्योकि वहुत से राष्ट्रवादी युवको ने इस आदोलन से सवक लेना शुरू कर दिया था।

1934 मे काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इस पार्टी का गठन युवा वामपथी राष्टवादी तत्वा के एक ग्रुप ने किया था जो मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव मे आशिक रूप से आ गया था। काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की खास विशेषता यह थी कि उसके सदस्य वही लोग हो सकत थे जो काग्रेस के सदस्य थे। इस प्रकार यह पार्टी काग्रेस का एक अग वन गई जिसमे आम जनता को सदस्य वनने के लिए प्रोत्साहित नही किया जाता था। पार्टी का कायक्रम और सविधान कुछ ऐसा था (पार्टी के सस्थापको म जो प्रगतिशील तत्व थे, उनका इरादा भले ही कुछ भी रहा हो) जिसमे मजदूर आदोलन अनिवाय रूप से राष्ट्रीय काग्रेस के तत्कालीन नेतृत्व क अनुशासन और नियत्रण के अधीन हो जाता था। व्यवहार म इसका अथ यह हो जाता था कि मजदूर आदोलन पूजीपतिवग के अधीन हो जाता था। काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की बुनियाद म ही यह अतर्विरोध था जिसकी अभि-व्यक्ति मजदूर आदोलन के हर नाजुक दौर म उसकी भूमिका म हुई। काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का समूचा इतिहास इसका प्रमाण है। यह अतर्विरोध आगे चलकर पार्टी के भीतर के वामपथी और दक्षिणपथी विचारधारा के पोषको के बीच सघष के रूप म प्रकट हुआ, वामपथी विचारधारा वाले चाहते थे कि कम्युनिस्ट पार्टी और मेहनतकशवग के सगठनो के साथ सहयोग किया जाए जवकि प्रतिक्रियावादी दक्षिणपथी तत्व, जिनका पलडा भारी था, कम्युनिस्ट पार्टी तथा मजदूरवग की हर प्रकार की स्वतत्र गतिविधियो का विरोध था।

7 विश्वयुद्ध से पहले की लहर

चुनावो म राष्ट्रीय काग्रेस की विजय तथा प्राता म काग्रेस मत्रिमडल वनने के साथ साथ ट्रेड यूनियन गतिविधियो की एक नई लहर उमडी जिसका नतीजा यह हुआ कि 1937-38 म हडतालो का जवरदस्त सिलसिला शुरू हुआ। हथियारो की होड से पूजीवाद को अस्थाई तौर पर पुनर्जीवन मिल गया था और इसके फलस्वरूप समूचे विश्व म हडतालो की जो लहर आई थी, भारत की ये हडताले भी उसका एक अग थी।

ट्रेड यूनियन आदोलन इतनी तेजी से फैला कि अनेक नई यूनियनो का गठन हुआ और साल म कुछ महीना चलने वाली (सीजनल) फैक्टरियो तथा असगठित उद्योगो तक के मजदूर इस आदोलन म शामिल हो गए। पजीकृत यूनियनो की सख्या बढती गई। 1928 म पजीकृत यूनियनो की सख्या केवल 29 थी जो 1929 म बढकर 75 और 1934 म 191 हो गई थी, 1938 म बढकर 296 हो गई। यूनियनो के सदस्यो की सख्या 261,000 हो गई। दरअसल ये मजदूर सगठन ही ऐसे केद्र थे जो मजदूरो की कई गुना अधिक सख्या को आदोलन के लिए प्रेरित कर सकते थे।

1937 म हडतालो की सख्या 379 तक हो गई। 1921 के वाद इतनी वडी हडताल पहली वार हुई थी। 1921 म भी जो हडतालें हुई थीं वह इस वप की हडतालो से 17 ही अधिक थीं। 1937 की हडताला म 676 000 मजदूरो ने हिस्सा लिया। पहले कभी मजदूरा ने इतनी वडी सख्या मे हडताला म हिस्सा नही लिया था। यह सख्या ट्रेड यूनियन के सदस्या की तिगुनी सख्या थी। इन हडतालो मे कुल 8,983 000 काम के दिनो का नुकसान हुआ। 1929 के वाद से कभी इतने दिन काम का नुकसान नही हुआ था। 45 प्रतिशत मामला मे मजदूरो को अपनी मागें पूरी कराने मे सफलता मिली थी।

हडतालो का जो सिलसिला चला था उनम सबसे जवरदस्त हडताल वगाल की जूट हडताल थी जो सरकारी दमन के वावजूद समूचे जूट उद्योग मे फल गई। इसने आम हडताल का रूप ले लिया जिसमे कुल मिलाकर 225,000 मजदूरो ने हिस्सा लिया। मजदूरो के वीच 1929 की उस आर्थिक मदी के दिना से ही असतोष इकटठा हो रहा था जब 130,000 मजदूरो को काम से निकाल दिया गया था, वेतन म कटौती की गई थी और 'अभिनवी करण (रेशनलाइजेशन) के नाम पर काम के घटे बेहद बढा दिए गए थे और मजदूरा का जमकर शोषण किया जाने लगा था। 1931 से 1936 के वीच हालाकि जूट के मिलो म करघा की सख्या केवल 13 प्रतिशत वढी पर जूट के उत्पादन म 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वगाल के प्रसिद्ध जूट उद्योगपति सर अलेक्जेंडर मरे ने कहा कि 'जब समूची दुनिया म मदी आई थी तब भी वे मुनाफा कमाने म सफल हुए।' 1936 से जूट उद्योग पुनर्जीवन प्राप्त करने के युग मे प्रवेश कर रहा था और फरवरी म जूट मजदूरो ने अपनी वेतन कटौती रद करने तथा पर्याप्त मजदूरी पाने के लिए हडताल शुरू कर दी। यह हडताल मई तक चली हालाकि फजलुल हक के प्रतिक्रियावादी मत्रिमडल ने इसको कुचलने के लिए तरह तरह के उपाय किए और इसके लिए यह दलील दी कि हडताल का कोई आर्थिक आधार नही है और 'भारत म क्राति का माग प्रशस्त करने के लिए कम्युनिस्ट लाग इस हडताल का इस्तेमाल कर रहे है।' मजदूरा ने अपनी एकता कायम रखी और व वगाल प्रातीय काग्रेस कमेटी की हमदर्दी पाने म सफल हो गए। काग्रेस कमेटी ने जनता स अपील की कि वे जूट मजदूरा की हडताल के लिए तयार कोष म धन दें। अतत मजदूरा की यूनियन का मान्यता मिल गई और मालिको को वेतन कटौती रद करने का सिद्धात स्वीकार करना पडा।

हडताल की यह जो लहर आई थी उसकी खास वात यह थी कि इस वार वग शाति के गाधीवादी सिद्धाता पर काम करने वाली यूनियनो के गढ अहमदाबाद तक हडताल की लपट पहुच गई। यहा वबई प्रात की काग्रेस सरकार ने दड सहिता की घृणित धारा 144 लागू कर दी जिसके अतगत पाच या इससे अधिक व्यक्तियो के एक स्थान पर इकटठा होने पर पावदी थी। यही वह धारा थी जिसका काग्रेस सदा से विरोध करती आई थी।

इन हडतालो की चरम स्थिति उस समय आई जब कानपुर की कपडा मिलो म हडताल

का सिलसिला शुरू हुआ। यह हडताल भी शीघ्र ही आम हडताल म तब्दील हो गई और उसमे 40 000 कपडा मजदूर शामिल हो गए। माचिस फैक्टरी, आयरन फाउड्री और वर्मा शैल डिपो जैसे कुछ अय उद्योगो के लोगो ने भी हमदर्दी म हडताले की। काग्रेस जाच समिति के फैसले को मजदूरो ने तो मान लिया पर मिलमालिका ने इस फैसले को अमल म लाने से इकार किया। नतीजा यह हुआ कि 1938 मे एक आम हडताल शुरू हुई ताकि मालिको का यह फैसला लागू करने के लिए मजबूर किया जा सके। इस हडताल मे काग्रेस और मजदूरवग की आदश एकता स्थापित हुई। सयुक्त प्रात की काग्रेस कमेटी ने अपने प्रस्ताव मे कहा कि 'कानपुर का मजदूरवग केवल अपने लिए नही बल्कि भारत के समूचे मेहनतकशवग के लिए लड रहा है (और) मानव अधिकारो के लिए सघप कर रहा है।' काग्रेस कमेटी ने जनता से अनुरोध किया था कि 'इस महान काय म, जिसे मजदूरो ने शुरू किया है, जनता को हर तरह की सहायता देनी चाहिए।' मिलमालिका के दलालो ने साप्रदायिक दग कराने की कोशिश की पर हिंदू और मुसलमान मजदूरो की एकता न उनके षडयन्त्र विफल कर दिए। अत मे 55 दिनो के सघप के बाद मजदूरो की शानदार जीत हुई जिसम अय मागे पूरी होने के साथ साथ उनकी यूनियन को भी मान्यता मिली।

नवबर 1938 म बबई के 90,000 से ज्यादा मजदूरो ने यूनाइटेड ट्रेड यूनियन काग्रेस के पूण समथन से खतरनाक इडस्ट्रियल डिस्प्यूट बिल के विरोध म हडताल की (इस बिल के जरिए मजदूरा के विवादो को हल करने के लिए एक ऐसी व्यवस्था थोप दी गई थी जिससे हर मामले मे चार महीने के लिए हडताल का अधिकार छिन जाता था, साथ ही मजदूर यूनियना के पजीकरण के ऐसे नियम बनाए गए थे जिससे कपनी की समथक यूनियनो को फायदा पहुचता था)। मजदूरवग की चेतना और जागरूकता का यह जबरदस्त प्रदशन था। इस हडताल द्वारा बबई प्रात की काग्रेस सरकार को चेतावनी दी गई थी ताकि वह मजदूर सगठनो के बारे म किए गए अपने चुनाव वायदो को पूरा करे।

रेल मजदूरो के सगठन का नेतत्व सुधारवादी नताओ के हाथ म होने के बावजूद वहा भी मजदूर आदोलन मे पुनर्जीवन के सकेत मिलने लगे। बगाल नागपुर रेल हडताल, जिसम 40 000 मजदूर शरीक हुए, एक महीने तक चली और उसे काग्रेस के फैजपुर अधिवेशन का समथन मिला। सुधारवादी नेताओ के प्रभुत्ववाली अखिल भारतीय रेलवेमेस फेडरेशन मजदूरो पर होने वाले दमन को चुपचाप देखती रही। 17 प्रतिशत मजदूरा की छटनी हुई, वेतन मे कटौती की गई मजदूरा से जमकर काम लिया जाने लगा जिससे दुघटनाओ की सख्या म 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई और रेलवे कपनिया के मुनाफे बढते रहे लेकिन फेडरेशन के नेता इन सारी स्थितियो से आखे बद किए रहे। फिर ट्रेड यूनियन गतिविधियो की जो लहर चली थी उसन ग्रेट इडियन पेनिनसुलर रेलवे के सुधारवादी तथा लाल झडा यूनियनो को मिलाकर एक कर दिया और इसकी सदस्य सख्या 20 000 से भी अधिक हो गई। यही बात बाबे बडौदा ऐंड सेंट्रल इडियन रेलवे, मद्रास ऐंड सदन मराठा रेलवे और साउथ इडियन रेलवे की यूनियना म भी देखने म आइ। ट्रेड यूनियन

आदोलन की इस जुझारू चेतना से उत्पन्न खतरे का सामना करने के लिए रेल प्रबधकों ने क्या क्या दावपेच अपनाए इसका एक उदाहरण यह है कि प्रबधकों ने बाब बडौदा ऐंड सेंट्रल रेलवे की सुधारवादी यूनियन के सामने प्रस्ताव रखा कि 'जब तक श्री जमनादास मेहता का यूनियन से सबध रहेगा और कम्युनिस्टो को इससे बाहर रखा जाएगा', तब तक उसे मान्यता मिली रहेगी। लेकिन आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस और नेशनल फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियस के एकीकरण ने और प्रतिद्वद्वी यूनियनो को मिलाकर एक करने की मजदूरो की जबरदस्त इच्छा ने फूट डालने की इस तरह की साजिशो को नाकाम कर दिया।

ट्रेड यूनियन काग्रेस के स्थापना दिवस 30 अक्तूबर 1938 तक इसकी सदस्य सख्या 325 000 हो गई। भारत के मजदूरवर्ग ने साम्राज्यवादी अपराधो के खिलाफ शक्तिशाली राजनीतिक विरोध करके और साम्राज्यवादी दमन के खिलाफ राष्ट्रीय मागो के समर्थन मे हर रोज सघर्ष छेडकर अपने को साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो का एक सगठित और मजबूत हिस्सा बना लिया था।

इन घटनाओ के साथ साथ और इनके कारण राष्ट्रीय आदोलन के भीतर भी मजदूर आदोलन की राजनीतिक भूमिका और उसके प्रभाव को महसूस किया जाने लगा। कम्युनिस्ट पार्टी पर लगे प्रतिबध को हटाने के लिए काग्रेस के प्रगतिशील तत्वो ने व्यापक अभियान शुरू किया जिसका अनेक ट्रेड यूनियनो ने समर्थन किया। काग्रेस मत्रिमडलो के बन जाने से नागरिक स्वतत्रता का क्षेत्र व्यापक हो जाने के कारण प्रतिबधो के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी के लिए अगरेजी और मराठी मे अपना मुखपत्र निकालना सभव हो सका। कम्युनिस्ट पार्टी ने अगरेजी मे 'नेशनल फ्रट' नाम से और मराठी मे 'क्राति' नाम से अपने मुखपत्र निकाले। बबई के मजदूरो के अधिकाश हिस्से की भाषा मराठी थी। इन अखबारो से साम्राज्यवाद के विरुद्ध सयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बनाने के विचार का तथा फासिज्म के बढते हुए खतरे का प्रचार किया जा सका। ये अखबार मजदूरो, किसानो तथा रियासतो मे बसने वाली जनता के सघर्षो का व्यापक प्रचार करते थे। विभिन्न काग्रेस समितियो के महत्वपूर्ण पदो पर कम्युनिस्टो का चुनाव किया गया और काग्रेस की सर्वोच्च निर्वाचित समिति अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी मे कम से कम 20 कम्युनिस्टो को स्थान दिया गया। कम्युनिस्टो तथा काग्रेस समाजवादी तत्वो के बीच वामपथी एकता स्थापित करने की बार बार कोशिश की गई ताकि काग्रेस के असरदार दक्षिणपथी नेतृत्व की घुटनाटेक नीति के खिलाफ लडाई छेडी जा सके किंतु काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिक्रियावादी नेतृत्व के जबरदस्त विरोध के कारण इस काम मे सीमित सफलता मिली।

8 द्वितीय विश्वयुद्ध के दौर मे मजदूरवर्ग

सितबर 1939 मे युद्ध छिडने पर भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन तथा भारत के मजदूर वर्ग के लिए एक निर्णायक दौर का सूत्रपात हुआ। राष्ट्रीय नेता अभी टालमटोल मे ही

लगे थे कि मजदूर आदालन ने 2 अक्तूबर 1939 को साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ एक दिन की राजनीतिक हड़ताल करके अपने आक्रमण की शुरुआत कर दी। इस हड़ताल म बंबई के 90,000 मजदूरा ने भाग लिया और विश्व के मजदूर आदोलन म यह युद्धविरोधी पहली हड़ताल थी। शक्तिशाली और सगठित वग के बीच से मजदूरवग भारत म साम्राज्यवादविरोधी शक्तियो का हरावल दस्ता बनकर सामने आ रहा था।

युद्ध के कारण जीवनयापन के खच म तेजी से वृद्धि आई लकिन इसके अनुरूप वेतन म वद्धि नही हुई और इस बात को भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार डा० टी० ई० ग्रेगरी ने भी स्वीकार किया। डा० ग्रेगरी के अनुसार यदि सितबर की कीमता को 100 मान लिया जाए तो 'प्राथमिक चीजो के दामो का सूचक अक 137 तक पहुच गया था।' इस सख्या म फुटकर विक्रेताओ का मुनाफा भी जोडा जाना चाहिए। बाबे क्रानिकल' के विशेष सवाददाता ने लिखा कि 'इन सामानो म मुनाफाखोरी (अर्थात बाजरा, ज्वार, चावल और गेहू जसे अनाजो म) को यदि सितबर की कीमता पर देखे तो औसतन 28 प्रतिशत थी। यदि इसमे फुटकर विक्रेताओ का मुनाफा जोडें जो कि अनुमानत 8 से 14 प्रतिशत है तो यह पता लगाया जा सकता है कि गरीब आदमी की जेब पर कितना बोझ पड रहा है।' ('बाब क्रानिकल', 6 दिसबर 1939)

मजदूरवग ने युद्ध के कारण पडे इन आर्थिक बोझो के खिलाफ लडाई की शुरुआत 5 माच 1940 को उस समय कर दी जब बबई के 175 000 कपडा मिलमजदूरा ने महगाई भत्ता पाने के लिए हडताल की। यह पूण हडताल थी और 40 दिनो तक चली हालाकि हडताल के दौरान नेताओ की व्यापक तौर पर गिरफ्तारिया की गइ। मजदूरो के मकान मे घुस-कर पुलिस ने परिवार के सदस्यो को पीटा और आतकित करने की हर कोशिश की पर हडताली मजदूरा का मनोबल बना रहा। 10 माच को ट्रेड यूनियन काग्रेस के आवाहन पर एक दिन की हडताल रही जिसम सभी वर्गों के साढे तीन लाख मजदूरो ने हिस्सा लिया।

बबई की इस हडताल स सपूण देश मे हडतालो का सिलसिला चल पडा। महगाई भत्ते की माग को लेकर कानपुर के बीस हजार कपडा मजदूरो, कलकत्ता के बीस हजार म्युनिसिपल मजदूरो, बगाल और बिहार के जूट मजदूरो, असम मे डिगबोई के तेल मजदूरो, धनबाद और झरिया के कोयला मजदूरो, जमशेदपुर के लोहा और इस्पात उद्योग के मजदूरो तथा अन्य विभिन्न उद्योगो के मजदूरो ने काम बद कर दिया। अब यह बात स्पष्ट हो गई थी। समूचा मेहनतकशवग लडाई म शामिल हो गया था।

सरकार ने एक बार फिर हमला किया। नेशनल फ्रट' और 'क्राति' अखबारा पर प्रतिबध लगा दिया गया। भारत रक्षा अधिनियम कानून जारी कर दिया गया। देश भर मे कम्युनिस्टो तथा अन्य प्रगतिशील तत्वा की गिरफ्तारिया की गईं और जनवरी 1941 म

सरकार के गृहमंत्री रेजिनैल्ड मैक्सवेल ने कहा कि जेलो म जो 700 व्यक्ति बिना मुकदमे के बद है उनम से लगभग 480 व्यक्ति बिना किसी अपवाद के या तो घोषित रूप स कम्युनिस्ट ह या हिंसात्मक भ्राति के कम्युनिस्ट कायक्रम के सक्रिय समथक है' (लेजिस्लटिव असेंबली डिबेट्स, 12 फरवरी 1941)। इसके अलावा 6,466 व्यक्तियो को सजा हो चुकी थी और 1 664 व्यक्तियो को नजरबद कर दिया गया था, उनपर अनेक तरह के प्रतिबध लगा दिए गए थे या उन्ह निर्वासित कर दिया गया था।

कम्युनिस्ट पार्टी पर सरकार की तरफ से तो हमला हो ही रहा था, काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने भी इसी समय कम्युनिस्टो के खिलाफ आक्रमण शुरू किया और अपनी पार्टी से उन लोगो को बाहर निकाल दिया था जिनपर कम्युनिस्ट होने का सदेह था या जो कम्युनिज्म के प्रति हमदर्दी रखते थे। अपनी इस कायवाही के पक्ष म काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने यह दलील दी कि वे (कम्युनिस्ट) अहिंसा के गाधीवादी सिद्धात को स्वीकार नही कर सक। पार्टी के महासचिव जयप्रकाश नारायण ने सदस्यो के नाम एक गश्ती चिट्ठी म लिखा कि कुछ गैरजिम्मेदार लोग ह—जो बिना सोचे समझे और दुस्साहसपूण ढग से हिंसा की भावना को बढावा देते हे—गाधी जो यह समन सके कि हम (काग्रेस सोशलिस्ट) हमेशा शातिपूण एव सुव्यवस्थित जनसघष पर जोर देते थे।' इस अवधि के दौरान काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के जुझारू सदस्यो का एक बहुमत अपनी पार्टी छोडकर गैरकानूनी कम्युनिस्ट पार्टी म शामिल हो गया। वह इस तरह के सोशलिस्ट नेतत्व से बेहद असतुष्ट था जिसन अहिंसा के गाधीवादी सिद्धात के सामने आत्मसमपण कर दिया था और वग-सघष के आधार को तिलाजलि दे दी थी। काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, ऐसे नेताओ का महज एक गुट बनकर रह गई जिनका न तो कोई जनसगठन था और न तो मजदूरवग म कोई वास्तविक आधार ही था।

अधिकारियो के आक्रमण के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी का न तो सगठन टूट सका और न उसके सदस्यो की सक्रिय भूमिका मे ही कोई कमी आई। हालाकि सरकार न इसके लगभग सभी नेताओ को गिरफ्तार कर लिया पर पार्टी बाकायदा काम करती रही, कुछ नेता पुलिस को चमका देकर काम करते रह और कानूनी जनआदोलन के साथ गैरकानूनी क्रातिकारी प्रचार का काम भी होता रहा। कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य सख्या म कम थे और उन्ह तमाम कठिनाइयो का सामना करना पडता था इसलिए वे घटनाओ को कोई निर्णायक मोड तो नही दे सके पर इसम किसी को सदेह नही रहा कि यही पार्टी मजदूरवग की असली पार्टी है और भारतीय राजनीति की एक प्रमुख शक्ति है।

इसके साथ ही देश भर म मजदूरवग न मिलकर जो आदोलन किया उसका नतीजा यह हुआ कि कद्रीय ट्रेड सगठनो म पूण एकता कायम हो गई। नशनल फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियस पूरी तरह आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस के साथ मिल गई, पर मिलने से पहल उसने जोर देकर विधान म यह तब्दीली करा ली कि सभी राजनीतिक सवाल, हडतालो

से सबधित मसले तथा किसी विदेशी सगठन से सबद्ध होने के सवाल तीन चौथाई बहुमत से तय किए जाएग।' ट्रेड यूनियन कायकर्ताओ के जुझारू वग न एकता के हित म इस धारा को मान लिया हालाकि बाद के वर्षो म इसने सगठित ट्रेड यूनियन आदोलन को गभीर नुकसान पहुचाया और इसके कारण मजदूरो को स्पष्ट राजनीतिक नेतृत्व नही दिया जा सका।

इस सीमा निर्धारण से जो नुकसान हुए उन्ह युद्ध तेज होने पर उत्पन्न कुछ नई समस्याओ के सदभ मे तब देखा गया जब सोवियत सघ पर नाजियो ने हमला कर दिया, युद्ध के मैदान म जापान कूद पडा और उसने दक्षिण पूव एशिया को रौद डाला, सयुक्त राष्ट्र सधि की स्थापना हुई और भारत के लिए जापान का खतरा बढने लगा।

फरवरी 1942 म अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस का कानपुर अधिवेशन हुआ। इस बीच मजदूरो की हालत काफी खराब हो गई थी। जापानी सेना मलाया और बर्मा को रौंदने के बाद भारत की ओर बढ रही थी। लेकिन ट्रेड यूनियन आदोलन का केंद्रीय नेतृत्व मजदूरो को स्पष्ट राजनीतिक नेतृत्व देने मे असफल रहा। कम्युनिस्ट पार्टी के उस प्रस्ताव का बहुमत ने समथन किया जिसमे कहा गया था कि राष्ट्रीय सुरक्षा के हित म युद्ध का बिना शत समथन किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय सुरक्षा के काम को कार-गर बनाने के लिए भारत के मजदूरो को राष्ट्रीय मागपत्र (चाटर आफ नेशनल डिमाडस) के लिए लडना चाहिए। इस प्रस्ताव को बहुमत का समथन प्राप्त था फिर भी उसे आवश्यक तीन चौथाई वोट नही मिले। इसलिए ट्रेड यूनियन आदोलन मे शामिल प्रत्येक राजनीतिक दल को इस बात की छूट मिल गई कि वह अपनी निजी नीतियो का प्रचार करे।

1942 45 का दौर मजदूरवग के लिए तथा सपूण देश के लिए अग्निपरीक्षा का दौर था। इस दौर मे तमाम घटनाए हुइ, सरकार युद्ध का खच चलाने के लिए अधाधुध ऐसे काम कर रही थी जिनसे मुद्रास्फीति बढती है, दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ की जखीरेबाजी और चोरबाजारी हो रही थी, रहन सहन का खच 200 प्रतिशत बढ गया था, देश भर मे राष्ट्रीय नेताओ की गिरफ्तारिया की गईं और इसके बाद काफी बडे पैमाने पर सरकार का दमनचक्र चला, सरकारी नीति से सपूण देश मे रोष की लहर दौड गई ये और ऐसी बातें थी जिनम से कोई एक अकेले भी होती तो मजदूरवग हडताल पर चला जाता लेकिन यह मजदूरवग और कम्युनिस्ट पार्टी की विवेकपूण वगभावना और विकसित राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण है कि उन्होने बदली हुई परिस्थिति को समझा, राष्ट्रीय सुरक्षा की जरूरतो को महसूस किया और हडतालो से अपने को बचाए रखा हालाकि इस बात के भी प्रमाण है कि अनेक अवसरो पर मजदूरो को भडकाया गया और मजदूरो के एक वग को घूस देने की कोशिश की गई ताकि वे हडताल करें। यह बात काफी महत्वपूण है कि इस दौरान केवल दो जगह महत्वपूण हडतालें हुईं, एक तो गाधीवादी ट्रेड यूनियन

आदोलन के गढ अहमदाबाद म जो तीन महीना तक चली और दूसरी हडताल जमशेदपुर के लोहा और इस्पात कारखाना मे। इन हडताला म मजदूरो का जितना श्रेय था, कम से कम उतना ही मालिकों का भी था।

इस अवधि मे कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व म मजदूरवग ने साम्राज्यवादी दमन का डटकर मुकाबला किया। ट्रेड यूनियन काग्रेस ने 25 सितबर 1942 को दमन विरोधी दिवस मनाने का आह्वान किया। पार्टी ने देशरक्षा के विचारो का प्रचार किया, जनता की दनिक जरूरतो मसलन मूल्य नियत्रण और राशनिग के लिए जबरदस्त अभियान छेडा काला बाजारी और जमाखोरी के खिलाफ सघष शुरू किया तथा जनता को इस बात के लिए आगाह किया कि वे साम्राज्यवादी उकसावे या जापानी प्रलोभना म न पडे।

इन कायक्रमो से ट्रेड यूनियन आदोलन विकसित हुआ और आदोलन पर कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव बढा। 1942 म कम्युनिस्ट पार्टी को 8 वष तक गैरकानूनी रहने के बाद कानूनी करार दिया गया जो कि मजदूरवग के आदोलन की सफलता थी। आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस के सदस्या के निम्नाकित आकडा से ट्रेड यूनियन आदोलन का विकास देखा जा सकता है

वर्ष	ट्रेड यूनियनों की सख्या	पजीकृत सदस्यो की सख्या
1938	188	363 450
1940	195	374,256
1941	182	337 695
1942 (फरवरी)	191	369,803
1943	259	332,079
1944	515	509 084

1942 45 की सकट की घडी म अत्यत विषम परिस्थितिया के बावजूद कम्युनिस्टो ने जो बहुमुखी काय किए, उससे पार्टी की सदस्यता काफी बढ गई। जुलाई 1942 म सदस्यो की सख्या महज 4,000 थी जो मई 1943 तक 15 000 की भारी सख्या तक पहुच गई। जनवरी 1944 मे यह सख्या 30 000 और 1946 की गरमिया तक 53,000 से भी अधिक हो गई।

युद्ध के दौरान एम० एन० राय के समथको ने ट्रेड यूनियन आदोलन म फूट डालने का असफल प्रयास किया। एम० एन० राय के समथका ने पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्यवादी हिता क साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था। इन समथका न 1941 म तथाकथित 'इडियन फेडरशन आफ लेबर' की स्थापना की जिसे सरकार स 13 000 रुपय मासिक का अनुदान मिलता था। इन्होंने काफी जमकर प्रचार किया फिर भी मजदूरवग क बीच

इनकी प्रभावकारी पैंठ नही हो सकी। सितबर 1946 म एक सरकारी जाच ने अतत निणय दिया कि सात लाख सदस्या वाली आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस ही भारतीय ट्रेड यूनियन आदोलन की निर्णायक रूप से प्रतिनिधि सस्था है।

1940 के बाद काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मुख्यता नेताओ का एक जुट बनकर रह गई थी। उसने काग्रेस के 1942 के प्रस्तावो तथा काग्रेसी नेताजो की गिरफ्तारी (अध्याय 16 देखें) के बाद अपना गुप्त सगठन बनाने की कोशिश की और काग्रेसी नेताओ की गिरफ्तारी के बाद जो स्वत स्फूत आदोलन शुरू हो गया था उसे सगठित करने का प्रयास किया। लेकिन उन्ह अपने इन प्रयासो म मजदूरवग का सहयोग नही मिल सका। विद्रोह के शात होने पर तथा अपने प्रयासों के व्यथ प्रमाणित होने पर उन्होन तेजी से अपना रवैया बदला, 'अब वे फासीवाद के प्रति तटस्थ न रहकर ऐसे रुख अख्तियार करने लगे जो सुभाषचद्र बोस के समथको के काफी समतुल्य था (सुभासचद्र बोस ने जमन और जापानी फासीवाद के साथ समझौता कर लिया था। उन्ह यह आशा थी कि फासिस्टो की मदद से व भारत को आजादी दिला लेंगे)। इन सबके बावजूद सचाई यह थी कि उन्होन (काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओ ने) जनता की स्वत स्फूत वीरता की प्रशसा मे ढेरभार गैरकानूनी साहित्य प्रकाशित किया था और कुछ हद तक तोडफोड की कायवाही का सगठन किया था इसलिए देश के युवा राष्ट्रवादिया पर और खासतौर से छात्रो पर उनका प्रभाव बढ गया लकिन मजदूरा मे वे अपना प्रभाव नही बढा सके। युद्ध के बाद उन्होने कम्युनिस्टविरोधी और सोवियतविरोधी प्रचार बहुत बडे पैमाने पर शुरू किया।

युद्ध के दौरान मजदूरवग के आदोलन न जो सफलता प्राप्त की और जो प्रगति की वह घटनाक्रम के विकास की एक अविस्मरणीय अवस्था है। युद्ध समाप्त होने और फासीवाद पर विजय प्राप्त करने तक मजदूर आदोलन साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघप करनेवाला सबसे ज्यादा सगठित और सबसे ज्यादा अनुशासित शक्ति बन गया था। इसका प्रमाण युद्ध बाद के महान जनसघर्षों मे देखन को मिला। आम राजनीतिक आदोलन के नताओ म जबरदस्त मतभेद के बावजूद मजदूर आदोलन म हिंदू मुसलमान और अछूत सब एक मच पर एकजुट रहे। राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक मुक्ति के लिए होन वाल आगे के सघर्षों म मजदूरवग को हरावल दस्ता का स्थान प्राप्त हुआ।

भारतीय राजनीति म कम्युनिस्ट पार्टी न तीसरा स्थान प्राप्त कर लिया हालाकि जनता पर प्रभाव के मामले म इसकी तुलना राष्ट्रीय काग्रेस या मुस्लिम लीग से नही की जा सकती। कम्युनिस्ट पार्टी का इस स्थिति तक पहुचना ही मजदूरवग की प्रगति का द्योतक है। युद्ध के बाद जो तूफानी दौर शुरू हुआ जो महान राष्ट्रीय विद्रोह शुरू हुआ और हडताडो का जो जबरदस्त सिलसिला चल पडा वह मजदूरवग के आदोलन का एक विकास था। जनसघर्षों म मजदूरवग न हरावल की भूमिका निभाई और यह क्रम अब भी जारी है।

13

भारतीय जनतत्र की समस्याए

प्राचीन रोमन सम्राटो का यह आदश वाक्य था कि 'फूट डालो और राज करो', और यही हमारा भी आदश वाक्य होना चाहिए।—बबई के गवनर लाड एलफिस्टन का कथन, 14 मई 1859 का कायवृत्त।

भारतीय राष्ट्रवाद, किसान विद्रोह और मजदूरवग के आदोलन की उभरती शक्तिया ही भारतीय समाज के प्रगतिशील तत्वा का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन वे किसी भी अथ मे भारतीय समाज की समूची तस्वीर नही है। हालाकि वे भारतीय जनता के एक विशाल हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है फिर भी उन्हे सारी जनता का प्रतिनिधित्व नही कहा जा सकता। यदि वे ही शक्तिया समूची जनता का प्रतिनिधित्व करती, यदि यह सघप एक खेमे म स्थित सयुक्त भारतीय जनता तथा दूसरे खेमे मे स्थित मुट्ठीभर ब्रिटिश शासको के बीच का साधारण सघप होता तो यह पहले ही समाप्त हो चुका होता या यो कह कि अगरेजो का प्रभुत्व कभी नही कायम हो पाता।

साम्राज्यवादी शासन के अतगत भारत जसे किसी समाज के लिए जहा विकास का अवरुद्ध हो जाना ही खास विशिष्टता हो, लाजिमी तौर पर समाज की रूढिवादी शक्तिया अपनी अदरूनी ताकत के कारण महत्वपूण हो जाती हैं। इन्ही पतनोन्मुख शक्तियो क कारण साम्राज्यवादियो की विजय सभव हो सकी। राष्ट्रीय जागरण की लहर तेजी से ज्यो ज्या आगे बढती है एसा लगता है कि इन पुरान अवशेषा का महत्व और भी ज्यादा बढ गया है, इसका असली कारण यह है कि साम्राज्यवादी शासन के वे ही एकमात्र जीवित अवलब हैं।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में रहने वाले कुल ब्रिटिश नागरिकों की संख्या 156,000 है (बतौर यूरोपीय पंजीकृत लेकिन मुख्यतया ब्रिटिश)। 1931 की जनगणना के अनुसार यह संख्या 168 000 है। इनमें से 60,000 सेना में, 21,000 व्यापार या निजी व्यवसाय में और 12,000 सरकारी असैनिक सेवा में थे। इसका अर्थ यह है कि देश पर साम्राज्यवादी शासन का प्रत्यक्ष रूप में प्रतिनिधित्व करने वाले वयस्कों की कुल वास्तविक संख्या 100 000 से कम है या प्रति 4000 भारतीय पर 1 के अनुपात में है। हालांकि इस बात का पूरा एहतियात बरता गया है कि भारतीय जनता को निरस्त्र रखा जाए और खासतौर से सारे भारी हथियार, तोपखाने और वायुसेना ब्रिटिश हाथों में बने रहने दिए जाएं फिर भी यह स्पष्ट है कि ऐसी शक्ति केवल ताकत के बल 40 करोड़ भारतीयों पर निरंतर अपना प्रभुत्व बनाए रखने की आशा नहीं कर सकती। इसलिए अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए उसे भारतीय जनता के बीच से ही अपने लिए एक सामाजिक आधार तैयार करना अनिवार्य है।

साम्राज्यवादी शासन बने रहने की यह अनिवार्य शर्त है कि भारतीय आबादी के बीच ही एक ऐसा सामाजिक आधार बरकरार रखा जाए जो साम्राज्यवाद के साथ संबद्ध हो। प्रत्येक प्रतिक्रियावादी शासन और खासतौर से विदेशी शासन के राज्यतंत्र के लिए यह जरूरी है कि वह जनता में फूट डाले। लेकिन इस तरह का सामाजिक आधार प्रगतिशील तत्वों में नहीं मिल सकता क्योंकि वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध तने रहते हैं। यह आधार केवल प्रतिक्रियावादी तत्वों के बीच ही तैयार किया जा सकता है क्योंकि इस वर्ग के हित हमेशा जनता के हितों के विपरीत होते हैं। हमने पहले ही यह देख लिया है कि ब्रिटिश शासन ने किस प्रकार अपने को बड़े सचेतन ढंग से जमींदारवर्ग के आधार पर खड़ा किया है—मोटे तौर पर इस वर्ग को अंगरेजों ने ही राज्य की नीति के रूप में अपने सरकारी आदेशों के जरिए पैदा किया है। इन तत्वों के साथ साथ अनेक ऐसे व्यापारिक एवं महाजनी हित भी हैं जो शोषण की साम्राज्यवादी व्यवस्था के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं और जो साम्राज्यवाद की ओर इस हसरत से देखते रहते हैं कि वह उन्हें संरक्षण प्रदान करेगा तथा सरकारी स्तर पर अपना मातहत बनाकर रखेगा। हमने यह भी देखा है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद ने सामाजिक सुधार की अपनी भूमिका को एक सौ वर्ष पहले ही छोड़ दिया है और आज जहां तक उसमें संभव हो पाता है वह सुधार की राष्ट्रीय मांग के विरुद्ध हर उस चीज का पोषण करता है और उसे संरक्षण देता है जो जनता के जीवन में सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ापन लाती है (साथ ही वह हमेशा यह भी कहता रहता है कि जनता की सामाजिक रीति रिवाजों और धार्मिक विश्वासों में वह हस्तक्षेप नहीं करता है और निष्पक्ष भूमिका निभाता है), साथ ही वह जनता के बीच भेदभाव पैदा करने की चिरकाल से चली आ रही प्रतिक्रियावादी नीति का जहां तक हो सकता है इस्तेमाल करता है, उदाहरण के लिए जातपात का भेदभाव (दलित वर्गों का अलग से प्रतिनिधित्व तथा इस आधार पर बनी पार्टियों को प्रोत्साहन देने की नीति)। लेकिन यह नीति जितनी खूबी के साथ इन दो क्षेत्रों में अपनाई गई है उतनी और कहीं देखने का

मिनती एक तो भारतीय राजाओं या तथाकथित 'भारतीय रियासतों' के मामले में दूसरे साम्प्रदायिक भेदभावों को, खासतौर पर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच वैर-बढ़ाने के क्षेत्र में।

ा की प्रतिक्रियावादी शक्तियों के संदर्भ में राष्ट्रीय आंदोलन के सामने जो आम या है, वस्तुतः ये दोनों समस्याएं उस आम समस्या का ही रूप हैं। जैसे जैसे राष्ट्रीय आंदोलन का विकास हो रहा है इन प्रतिक्रियावादी शक्तियों को इस्तेमाल करने के ण प्रयास किए जा रहे हैं। वर्तमान युग के चरित्र में ही यह बात निहित है। साम्राज्य-शासन के समाप्त होने के ये लक्षण हैं। इनसे यह पता चलता है कि साम्राज्यवादी या इस जुए में अपनी अंतिम बाजी लगा रही है। भारत में जनतंत्र की विजय के इन समस्याओं का समाधान किया जाना बहुत ही महत्वपूर्ण है।

1 राजा महाराजा

ाज्यवाद ने भारत को असमान खंडों में बांट रखा है एक खंड है ब्रिटिश भारत और ा खंड है तथाकथित 'भारतीय रियासतें'। इस बंटवारे को किसी भी अर्थ में प्रशासन दृष्टि से किया गया बंटवारा नहीं कहा जा सकता और इसका विस्तार देश की ाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में काफी गहराई तक है। इस बंटवारे के ि और असंगत स्वरूप को तभी समझा जा सकता है जब यहां के मानचित्र का ाधानी से अध्ययन किया जाए। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के मानचित्र पर जो ो छोटी 'रियासतें' हैं और अस्तव्यस्तता का जो अराजक कोलाहल है उसकी तुलना 9वीं सदी से पूर्व के जर्मनी की भी राजनीतिक प्रणाली कहीं ज्यादा व्यवस्थित थी।

ग्म से पूरब तक, उत्तर से दक्षिण तक, काठियावाड़ की 200 रियासतों या पश्चिम में ाजपूताना से लेकर मणिपुर की अनेक रियासतों और धुर पूरब में बेशुमार ग्रामी सरदारों , उत्तर में कश्मीर और शिमला की छोटी छोटी पहाड़ी रियासतों से लेकर दक्षिण में ास तथा मैसूर की रियासतों तक हर आकार प्रकार की असंख्य रियासतें ंी ंनक तो है। इनका विस्तार भारत के पांचवें हिस्से से लेकर आधे हिस्से तक है (बर्मा के ाग हो जाने से अब यह भारत के क्षेत्रफल के लगभग 45 प्रतिशत हिस्से तक फैली है)। की चौहद्दियां ऐसी हैं जो किसी भी नक्शानवीस के लिए चुनौती हैं। भारत में कुल 3 रियासतें हैं जिनका कुल क्षेत्रफल 712 000 वर्गमील और आबादी 8 करोड़ 10 ख (1931 की जनगणना के अनुसार) है जो भारत की कुल आबादी की लगभग एक थाई (24 प्रतिशत) है। इनमें हैदराबाद जैसी रियासत भी है जो आकार में इटली के ाबर है और जिसकी आबादी 1 करोड़ 40 लाख है लावा जैसी बहुत छोटी रियासतें हैं जिनका क्षेत्रफल महज 19 वर्गमील है और शिमला जैसी छोटी पहाड़ी रियासतें भी ो छोटी मोटी जोतों से थोड़ा ही बढ़कर होंगी। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि उनका सामान्य [illegible] नहीं किया जा सकता। [illegible] 103 बड़ी

रियासते है जिनके शासको को चैंबर आफ प्रिंसेज मे शामिल किया गया है। 127 ऐसी छोटी रियासते है जिनके शासक अप्रत्यक्ष रूप से अपने 12 प्रतिनिधि चुनकर चैंबर आफ प्रिंसेज मे भेजते है। शेष 328 रियासते दरअस्ल एक तरह की जमीदारिया है जिनको कुछ सामती अधिकार भी मिले हुए है पर जिनका अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित है। जो रियासते अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है उनमे निर्णायक शक्ति एक अगरेज रेजीडेट के हाथ मे होती है। छोटी रियासतो के लिए सरकार के कुछ राजनीतिक प्रतिनिधि (पोलिटिकल एजेट) है जो अलग अलग इलाको की देखरेख करते है।

इन्हे 'स्टेट' कहना सचमुच इनको एक गलत नाम देना है क्योकि ये पुरानी रियासतो के प्रेत या सरक्षित अवशेष हैं जिन्हे कृत्रिम ढग से बनाए रखा गया है। इन रियासतो के राजा महाराजा बिलकुल ही भिन्न, सत्तारूढ शक्ति के हाथो की कठपुतली है जो इस सत्ता के राजनीतिक हितो की पूर्ति करते है। इन राजाओ को छोटे छोटे मामलो मे जनता पर मनमाना अत्याचार करने की और कानून की अवहेलना करने की पूरी छूट थी लेकिन वास्तविक और निर्णायक शक्ति अगरेजो के ही हाथ मे होती थी। 1853 मे मार्क्स ने इस सदर्भ मे जो लिखा था वह आज भी काफी सही है

> जहा तक देशी रियासतो का सबध है, जिस क्षण से वे कपनी के नियत्रण म आई या कपनी द्वारा उन्हे सरक्षण मिलने लगा, उसी क्षण से उनका अस्तित्व समाप्त हो गया जिन परिस्थितियो म उन्हे ऊपरी तौर पर दिखाई देने वाली अपनी आजादी को बनाए रखने की इजाजत दी जाती है, वे परिस्थितिया स्थाई पतन की परिस्थितिया है—उनमे किसी भी हालत मे कोइ सुधार नही हो सकता। मौन अनुमति पर टिके सभी अस्तित्वो की ही तरह मूलभूत कमजोरी ही उनके अस्तित्व का सहज नियम है। इसलिए देशी रियासतो के नही बल्कि देशी राजाओ महाराजाओ और उनके दरबारो के बने रहने से मसला हल होता है। देशी राजा महाराजा वतमान घृणित अगरेजी शासनव्यवस्था के गढ है और भारत की प्रगति के माग की सबसे बडी बाधा है। (मार्क्स दि नेटिव स्टेट्स', न्यूयाक डेली ट्रिब्यून, 25 जुलाई 1853)

मार्क्स ने यह बात 86 साल पहले कही थी। भारतीय 'रियासते' या दूसरे शब्दो म कहे तो भारतीय राजा आज भी अपनी 'स्थाई पतन' की स्थिति म पडे हुए है, और इस बात की अत्यत घिनौनी कोशिश की गई हैं कि इन लाशो का विश्वसनीय रूप मे सहज सच्ची बनाकर पश किया जा सके। ब्रिटिश शासन ने भारत म अपनी सत्ता स्थापित करने के समय अव्यवस्था से भर यहा के भानमती के पिटारे को सामान्य तौर पर समाप्त करने की कोशिश की और इस बात का ढिंढोरा पीटा कि समान राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली के जरिए वह इस काम को पूरा कर रहा है। फिर क्या वजह है कि वही ब्रिटिश शासन विनाश के कगार पर खडी इन रियासतो के मायाजाल को इतने जोर शोर से

साथ बनाए रखने पर तुला है जबकि इन रियासता के अस्तित्व से सभी प्रशासनिक और वैधानिक एकरूपता को या अत्यत बुनियादी न्यूनतम मनदडा को बनाए रखने के काम को और यहा तक कि आकडो से सबधित एकरूपता को क्षति पहुच रही है ? यदि बुर्जुआ शासन की दृष्टि से या व्यापारी के खाते को ध्यान मे रखकर अथवा पूजी लगान वाले पूजीपति की दृष्टि से दखे ता अमूत ढग स विचार करन पर यह प्रणाली बेहद असगत लग सकती है क्योंकि किसी बुर्जुआ, व्यापारी या पूजी निवेशक के लिए अत्यत समान आर्थिक प्रशासनिक प्रणाली का होना आवश्यक है ताकि देश के अदर आसानी से घुसपैठ की जा सके। लेकिन सचाई यह है कि बुर्जुआ इग्लड म राजतत्र और कुलीनतत्र (इसी तरह क प्रेततुल्य और नपुसक रूप म) को बनाए रखने की तुलना म यह कतई असगत नही है। इसके जो कारण ह वे राज्य के कारण' ह। भारत म विदेशी बुर्जुआ शासन के बने रहने के लिए इसे सामती आधार का समथन मिलना जरूरी है।

अगरजो न देशी राजाआ को अपनी कठपुतलिया बनाकर रखने की नीति का पालन हमेशा किया और यह नीति आधुनिक काल तक जारी है। 19वी सदी के पूर्वाध म जब अगरेज बडे उत्साह के साथ अपन साम्राज्य का विस्तार करन म लग थे और उन्ह अपनी ताकत मे विश्वास था, वे सही गलत कोई न कोई बहाना ढूढकर इन पतनोन्मुख रियासतो को एक एक कर अपने राज्य म मिला लन की नीति का पालन कर रह थे। लेकिन 1857 के विद्रोह के बाद स्थिति बदल गई। 1857 का विद्रोह सामतवाद की नष्ट हो रही शक्तिया का, दश के पुरान शासका का विदशी प्रभुत्व की बढती हुई धारा को वापस मोडन क लिए किया गया आखिरी प्रयत्न था। जैसा पहले ही बताया जा चुका ह नवजात बुजुआवग का प्रतिनिधित्व करन वाले शिक्षित वग ने, जो इस समय की प्रगतिशील शक्ति था विद्राह क खिलाफ ब्रिटिश शासन का समथन किया। विद्रोह तो कुचल दिया गया पर अगरेजा को इससे एक अच्छा सबक मिल गया। इसके बाद मे ही सामती शासक ब्रिटिश राज के न ता मुख्य प्रतिद्वदी रह गए और न उसके लिए कोई ठोस खतरा बन सक, इसके विपरीत व जागृत जनता की प्रगति के माग के प्रमुख अवरोध बन गए। प्रगतिशील तत्वा क प्रति पहले अच्छा व्यवहार किया जाता था पर अब उन्ह सदेह से देखा जान लगा और सरकार का लगा कि जनता की जागती हुई शक्ति का कुशल नेतृत्व यही शक्तिया अब करेंगी। इस अवधि म सामती तत्वा का अधिक स अधिक सहारा लेन और इमी राजा महाराजा तथा उनकी रियासता को ब्रिटिश शासन क स्तभ क रूप मे बनाए रखन की निति अपनाई गई।

विद्रोह स एकदम पहले के वर्षों म सर विलियम स्लीमन ने तत्कालीन गवनर जनरल लाड डलहौजी को चतावनी दी थी कि अवध का अपन साम्राज्य मे मिलान की जितनी बडी कीमत ब्रिटिश सरकार का अदा करनी हागी वह अवध जैस दस राज्या के बराबर हागी और इसकी वजह स सिपाहिया म विद्राह हाना अवश्यभावी है। उन्होने यह भी धारणा व्यक्त की कि भारतीय रियासता का तरग रोध' समझना चाहिए क्योंकि जब व सभी समाप्त हो जाएगी तो फिर हम अपनी देशी सेना की दया पर निभर रहना पडेगा जा

जरूरी नहीं कि हमेशा पर्याप्त रूप से हमारे नियंत्रण मे रहे।' लेकिन डलहौजी इस बात से सहमत नही हुआ। वह विस्तार की नीति का जब प्रबल समथक और प्रवतक था और अपनी इस नीति का वह पूरे जोश खराश के साथ पालन करता था। 1857 के विद्रोह के अनुभवा से इस नीति मे निर्णायक तब्दीली आई।

1858 म महारानी की घोषणा म इस नई नीति का एलान किया गया हम देशी राजाओ के अधिकार, प्रतिष्ठा और सम्मान को अपने अधिकार, प्रतिष्ठा और सम्मान की तरह समझेंगे।' 1860 मे, डलहौजी के उत्तराधिकारी गवनर जनरल लार्ड कैनिंग ने इस नीति के उद्देश्य को बहुत साफ शब्दा म बता दिया

> सर जान मैलकोम न बहुत पहले ही यह कहा था कि यदि हमने समूचे भारत को जिलो म बाट दिया तो कुदरती तौर पर हमारा साम्राज्य पचास वर्ष भी नही टिक पाएगा, लेकिन यदि हमने देशी रियासता को राजनीतिक ताकत दिए बिना अपने हथियार के रूप म बनाए रखा ता जब तक हमारी नौसेना की श्रेष्ठता बनी रहेगी तब तक भारत म हम भी बने रहेगे। इस बयान मे काफी सचाई है, इसमे मुझे कोई सदेह नही और हाल की वारदाता ने तो उनके बयान का और भी गौरतलब बना दिया है। (लाड कैनिंग, 30 अप्रैल 1860)

इस प्रकार सारा जोडतोड इस तरह किया गया था कि ब्रिटिश राज्य को बनाए रखने के लिए भारतीय राजाओ को 'बिना राजनीतिक ताकत' दिए शाही हथियार के रूप म सुरक्षित रखा जाए। पद्रह वर्षा बाद वायसराय लाड लिटन न 1876 के रायल टाइटिल्स बिल के महत्व का इसी तरह बयान दिया। इस बिल के जरिए महारानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया गया था। लाड लिटन न इस बिल के बारे म कहा कि यह एक नई नीति की शुरुआत है जिसके जरिए आज से इग्लैड के सम्राट को शक्तिशाली देशी कुलीनतत्र के हितो आशाओ, आकाक्षाओ और उसकी हमदर्दियो का अभिन्न अग समझा जाना चाहिए।'

इस प्रकार देशी रियासतो का समाप्त होने से बचा लेना—जो अगरेजी राज न होने पर देर सबेर जरूर समाप्त हो जाती, अगरेजो की आधुनिक नीति का परिणाम था और यह कहना एकदम गलत है कि इन रियासतो के बने रहने से भारत की प्राचीन परपराओ एव सस्थाओ के अवशेष जीवित थे। देशी राजाओ के प्रमुख सरकारी प्रचारक प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स ने 1930 म एलान किया था। (प्रोफेसर विलियम्स 'इन्डियन प्रिंसेज स्पेशल आर्गनाइजेशन' के ज्वाइंट डायरेक्टर रह चुके है गोलमेज सम्मेलन म भारतीय रियासतो के प्रतिनिधिमडल के सलाहकार रह चुके है और 1925 तक भारत सरकार के पब्लिक इन्फार्मेशन डाइरेक्टर रह चुके है)

देशी रियासतो के शासक अगरेजी राज के साथ अपने सबधो के प्रति काफी वफादार

ह। उनम से अनेक का अस्तित्व तो ब्रिटिश सरकार के न्याय और हथियारो पर टिका हुआ है। 18वी सदी के उत्तराध और 19वी सदी के पूर्वाध मे हुए सघर्षो के समय यदि ब्रिटिश सरकार ने इन शासको को मदद न दी होती तो आज उनमे से अनेक का कही नाम निशान भी न होता। मौजूदा गडबडिया और आने वाले दिनो मे होने वाले उलटफेर के समय भी इन राजाओ के प्यार और निष्ठा से ब्रिटन सरकार को काफी मदद मिलेगी

भारत भर मे फैली इन सामती राज्यो की भौगोलिक स्थिति ऐसी है जो हमारे लिए रक्षा उपाय का काम करती है। इन राज्यो की स्थिति ऐसी ही है जैसे किसी विवादग्रस्त इलाके मे हमारे दोस्तो ने जबरदस्त किलाबदी कर रखी हो। इन शक्तिशाली और निष्ठावान देशी रियासतो के इस जाल के कारण अगरेजो के खिलाफ किसी आम विद्रोह का समूचे देश म फैलना बहुत कठिन होगा। (एल० एफ० रशब्रुक विलियम्स का 'इवनिंग स्टैंडड' म बयान, 28 मई 1930)

लेकिन यह 'किलेबदी' उतनी मजबूत नही है जितनी मजबूती का दावा इन प्रतिक्रियावादी गुलाम रियासतो के भद्र सरकारी प्रचारक किया करते है। यह सभी लोग जानते है कि अधिकाश राजा महाराजा अगरेजो की ताकत के बल पर अपनी प्रजा की इच्छा के विरुद्ध शासन कायम किए हुए ह।

यदि इनकी प्रजा के बीच आज जनमत सग्रह कराया जाए तो पता चलेगा कि लोग बडी खुशी के साथ रियासतो को ब्रिटिश भारत मे मिलाने के पक्ष मे मत देंगे। इन रियासतो का अस्तित्व अगरजो की कृपा से ही बना हुआ है। (एस० सी० रगा अय्यर इडिया, पीस आर वार')

आधुनिक राष्ट्र के निर्माण के लिए जिन विशेषताओ की आवश्यकता होती है व विशेषताए इन रियासतो म से किसी के पास शायद ही हो। आमतौर स इनकी सीमाए कृत्रिम होती है और वे जाति धम या सस्कृति के भेदो के अनुरूप नही होती। इसके अलावा राज्य के साथ राजवश को जोडने वाले तत्व आकस्मिक और कृत्रिम है और बहुधा 200 वष से कम पुराने है। दूसरी तरफ इन रियासतो की प्रजा को ब्रिटिश भारत क उनके भाइयो के साथ जोडन के जो सास्कृतिक और सामाजिक सबध है वे काफी शक्तिशाली और पुराने ह। एसा लगता है कि राजा के प्रति प्रजा का जो प्रेम है वह इस सदभ म किए गए प्रचार की तुलना म काफी कम है। (जे० टी० ग्वाइन काग्रेस ऐड दि स्टटस, मनचस्टर गार्जियन', 12 मई 1939)

1929 की बटलर कमटी की रिपोट म औपचारिक तौर पर यह बात स्पष्ट कर दी गई थी

कि 'विद्रोह अथवा बगावत' की स्थिति म देशी राजाओ की रक्षा करना अगरेज सरकार का कतव्य है।

> सधियो और सनदो की धाराओ को तथा राजाओ के अधिकारो, सम्मान और गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखने के सम्राट के वायदो को और दस्तूर को देखते हुए कहा जा सकता है कि सर्वोपरि सत्ता (सम्राट) का यह कतव्य है कि वह विद्रोह या बगावत की स्थिति मे रियासतो की रक्षा करे देशी राजाओ के अधिकारो, सम्मान और गौरव को सदा अक्षुण्ण रखने के सम्राट के वायदे मे यह बात भी शामिल है कि यदि किसी देशी राजा को हटाकर उसकी जगह पर दूसरे ढग की शासनव्यवस्था कायम करने की कोशिश की जाए तो ब्रिटिश सरकार का फज होगा कि उसकी रक्षा करे। (रिपोट आफ दि इडियन स्टेट्स कमेटी, 1929, अनुच्छेद 49 और 50)

इस तरह अगरेजो की देखरेख मे किस प्रकार की शासनव्यवस्था को मरक्षण मिल रहा था। अपनी आत्मकथा मे जवाहरलाल नहरू ने एक भारतीय रियासत के सामाय वातावरण का चित्र खीचा है

> यहा जुल्म का एहसास होता है ऐसा माहौल है जिसम दम घुटता है और सास लेना मुश्किल लगता है। इस ठहरे हुए या धीरे धीरे बह रहे पानी के नीचे सडन और गतिहीनता है। इसे देखकर कोई भी आदमी खुद को दिमागी और शारीरिक तौर पर कैद और घिरा हुआ महसूस करता है। कोई भी व्यक्ति यह महसूस कर सकता है कि एक तरफ तो जनता बेहद पिछडेपन और कगाली की हालत म जिंदगी गुजार रही है और दूसरी तरफ शाही महलो की तडक भडक की कोई सीमा नही है। रियासत की मपत्ति का कितना बडा हिस्सा इन राजाओ की निजी जरूरता और उनके ऐशोआराम पर खच होता है और इसका कितना कम हिस्सा किसी सेवा के रूप म जनता तक वापस पहुचता है

> इन रियासता पर रहस्य का परदा पडा रहता है। अखबार निकालने के लिए बढावा नही दिया जाता—अगर बहुत हुआ तो कोई साहित्यिक या अध सरकारी साप्ताहिक प्रकाशित हो जाता है। बाहर के अखबारो पर प्राय रोक लगी रहती है। त्रावणकोर, कोचीन आदि कुछ दक्षिणी रियासतो को छोडकर बाकी सभी जगह साक्षरता बहुत कम है। इन दक्षिणी रियासतो म साक्षरता ब्रिटिश भारत स भी कही ज्यादा है। रियासतो म जो प्रमुख खबरें आती ह उनम या तो वायसराय की यात्रा का वणन होता है जो जाहिर है खूब तडक भडक के साथ हुई रहती है और उन भाषणो के समाचार होते हैं जो एक दूसर की प्रशसा म दिए गए होत हैं या राजा के जन्मदिवस अथवा विवाह की वषगाठ पर फिजूलखर्ची के साथ मनाए

गए समारोहो का जिक्र होता है या किसानो के विद्रोह की खबर होती है। विशेष कानूनो के कारण राजाओ की आलोचना नही की जा सकती और मामूली से मामूली आलोचना पर भी कडा रुख अख्तियार किया जाता है। सावजनिक सभाए नही के बराबर होती है और सामाजिक उद्देश्यो से आयोजित सभाओ पर भी प्रतिबध लगा दिया जाता है। (जवाहरलाल नहरू आत्मकथा' पृष्ठ 531)

भारत सरकार की 25 जून 1891 की विनप्ति के जरिए भारतीय रियासतो के समाचार पत्रो पर बडे साफ शब्दो मे प्रतिबध लगा दिया गया है '1 अगस्त 1891 के बाद किसी भी स्थानीय इलाके मे जहा गवनर जनरल का प्रशासन है पर जो ब्रिटिश भारत मे नही है किसी भी समाचारपत्र या किसी भी प्रकाशित रूप म, चाहे कोई पत्रिका हो या पुस्तक, सावजनिक समाचार या सावजनिक समाचारो पर टिप्पणी को सपादित, प्रकाशित या मुद्रित करने के लिए राजनीतिक एजेट की अनुमति आवश्यक है।' ब्रिटिश भारत मे रियासतो की स्थिति के बारे म किसी भी तरह की आलोचना को प्रकाशित होने से रोकने के लिए 1934 के स्टेटस प्रोटक्शन ऐक्ट के जरिए और भी कानून बनाए गए।

भारत के यह कठपुतली राजा महाराजा अगरेजो की छत्रछाया म जिस प्रकार अपना शासन चलाते थे उसकी इतिहास म शायद ही कोई और मिसाल मिले। कुछ देशी रियासते ऐसी हैं जिनकी शासन व्यवस्था का स्तर ब्रिटिश भारत से कुछ ऊचा है और जिनके यहा अनिवाय शिक्षा की योजनाओ पर कुछ हद तक अमल हुआ है या जिनके यहा ऐसी सलाहकार परिषदें बना दी गई है जिनके पास बहुत सीमित अधिकार है और जिनका ढाचा बहुत प्रारम्भिक ढग का है। लेकिन ये रियासते अपवाद रूप म है। अधिकाश रियासतो म जिस पैमाने पर गुलामी, तानाशाही और दमन देखने को मिलता है उसका वणन नही किया जा सकता। एशिया के निरकुश राजाओ के इतिहास को देखे तो पता चलेगा कि इनके लिए भ्रष्टाचार और जुल्म कोई चीज नही है लेकिन उन पुराने राजाओ को कम से कम बाहरी आक्रमण या अदरूनी विद्रोह का डर तो लगा ही रहता था जिनसे इनके निरकुश शासन पर कुछ अकुश रहता था। इन नए राजाओ का अगरजो के सरक्षण के कारण इन बातो का भी कोई डर नही है। अगरेज सरकार के पास यह अधिकार है कि यदि वह किसी रियासत म बहुत ज्यादा अन्याय देखे तो राजा को गद्दी से हटा दे या उसके अधिकारो पर नियत्रण लगा दे लेकिन व्यवहार म अगरेजो ने इस अधिकार का उपयोग अन्याय रोकने के लिए नही बल्कि राजाओ को अपने प्रति निष्ठावान बनाए रखने के लिए किया है। इस प्रकार यहा के राजाओ ने पूरी तरह अपने को अगरेजो के हाथ की कठपुतली बना दिया है। इस प्रकार अत्यत पिछडेपन की स्थितियो म रहने वाली भारतीय रियासतो की जनता अपमान और यातना की जिन्दगी बिता रही है।

1939 म रियासतो की जनता के सम्मेलन स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस (रियासतो म चल रहे

लोकप्रिय जनवादी आदोलन की एक सस्था) ने अपने घोषणापत्र म इन राजाओ क शासन के स्वरूप के बारे मे अपनी धारणा इन शब्दो म व्यक्त की थी

> इन छोटी बडी रियासता म अत्यत व्यक्तिगत और निरकुश शासन का बोलबाला है। बहुत कम रियासते ऐसी ह जो इस मामले म अपवाद है। अधिकाश रियासता म कोई कानून नही है और जनता से बहुत बडे पैमाने पर कर वसूला जाता है। नागरिक स्वतत्रता का दमन कर दिया गया है। आमतौर से इन राजाओ के प्रिवीपर्स की राशि निर्धारित नही की गई है और जहा यह राशि निधारित की भी गई है वहा इसका पूरी तरह पालन नही होता। इन रियासतो म एक तरफ तो राजाओ की फिजूलखर्ची और जबरदस्त ठाट बाट देखने का मिलता है और दूसरी तरफ जनता भयकर गरीबी की हालत म गुजर बसर कर रही है।
>
> इस गरीब जनता की गाढी मेहनत की कमाई से इन रियासता के शासक विदेशो मे और भारत मे हर तरह के आनद उठा रहे है और ऐयाश जिंदगी बिता रहे हैं। ऐसी व्यवस्था अधिक समय तक नही चल सकती। कोई भी सभ्य समाज इस बरदाश्त नही कर सकता। इतिहास की समूची व्याख्या इसके विपरीत है। भारतीय जनता का तवर इस तरह के अन्याय क सामने आत्मसमपण नही कर सकता। (आल इडिया स्टेटस पीपुल्स कान्फ्रेस की स्थाई समिति का बयान, जून 1939)

इन रियासतो के प्रशासन का क्या स्वरूप था, इसका बहुत स्पष्ट सकेत उनके बजट देखने से मिल जाता है

> इग्लड के महाराजा मोट तौर पर राष्ट्रीय आय के सोलह सौ म से एक हिस्सा प्राप्त करते हैं। बेल्जियम के महाराजा एक हजार मे से एक, इटली के महाराजा पाच सौ म से एक, डेनमाक क महाराजा तीन सौ म से एक और जापान के सम्राट चार सौ म से एक हिस्सा प्राप्त करते है
>
> त्रावणकोर (जिसे भारत की सबस प्रगतिशील रियासत समझा जाता है) की महारानी राष्ट्रीय आय के 17 म स एक हिस्सा, हैदराबाद के निजाम और बडोदा के महाराजा तेरह म से एक हिस्सा तथा कश्मीर के महाराजा और बीकानेर के महाराजा पाच म से एक हिस्सा प्राप्त करत ह। यह राशि अन्य देशो की तुलना म आश्चयजनक है। दुनिया के लोगो का यदि यह बताया जाए कि भारत म कुछ ऐसी रियासतें भी ह जहा के राजा राष्ट्रीय आय के तीन हिस्स म से एक हिस्सा या दो हिस्से म से एक हिस्सा प्राप्त करत ह तो लोगा का हैरान होना बहुत स्वाभाविक है। (ए० आर० देसाई इडियन फ्यूडल स्टेट्स एड दि नेशनल लिबरेशन स्ट्रगल')

ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा खासतौर से सराहे गए बीकानेर राज्य का 1929-30 का बजट यहां प्रस्तुत है

	रुपये
राजकुल व्यय	1,255,000
राजकुमार की शादी	82,500
मकान और सड़क निर्माण	618,384
शाही महल का विस्तार	426,614
शाही परिवार पर व्यय	222,864
शिक्षा	222,979
स्वास्थ्य सेवा	188,138
जन सुविधा	30,761
सफाई	5 729

राजा, राज परिवार और महल पर जितना खर्च होता है उसके एक चौथाई से भी कम राशि शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा, जन सुविधाओं और सफाई पर खर्च किया जाता है। जामनगर का उदाहरण लें तो पता चलेगा कि 1926-27 में कुल 10 लाख पौंड का जो राजस्व प्राप्त हुआ था उसमें से 7 लाख पौंड की राशि जामनगर के राजा के व्यक्तिगत कामों में खर्च हुई जबकि शिक्षा पर 1 5 प्रतिशत और स्वास्थ्य-सेवा पर 0 9 प्रतिशत की राशि खर्च की गई।

इस तरह के प्रशासन के अंतर्गत रहने वाले लोगों की क्या स्थिति है? भारतीय रियासतें सामंती ढंग की अत्यंत पिछड़ी कृषीय अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। कुछ ही रियासतें ऐसी है जहां औद्योगिक विकास हुआ है। अनेक रियासतों में गुलामी प्रथा तो आम बात है

> राजपूताना की रियासतों के अनेक हिस्सों में गुलामों का समुदाय मौजूद है। यही स्थिति काठियावाड़ सहित पश्चिमी भारत की अनेक रियासतों की है। 1921 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार अकेले राजपूताना और मध्यभारत में चाकर तथा दरोगा वर्गों के एक लाख 60 हजार 735 गुलाम मौजूद थे। (पी० एल० चूडगर 'इंडियन प्रिंसेज अंडर ब्रिटिश प्रोटेक्शन', 1929, पृष्ठ 33)

इन रियासतों का एक सामान्य नियम यह बन गया था कि यहां के शासक गरीबों से हर तरह की बेगार कराते थे और मजदूरी के रूप में भोजन के अलावा कुछ भी नहीं देते थे।

> वेथ और बेगार के नाम से प्रचलित प्रणाली लगभग सभी भारतीय रियासतों में कायम है। सभी वर्गों के मजदूर, कामगर और शिल्पी राजा और उनके

अधिकारियों के लिए बिना पैसे लिए काम करने को मजबूर हैं। अनेक मामलों में इन्हें जो मजदूरी दी जाती है वह उनकी महज सबसे बुनियादी जरूरत के रूप में अर्थात भोजन के रूप में मिलती है। यह प्रजा किसी भी समय और किसी भी अवधि के लिए काम करने को मजबूर है। यहां तक कि जवान और बूढ़ी, विवाहिता या विधवा महिलाओं को भी नहीं छोड़ा जाता। यदि पुरुषों या महिलाओं में से कोई भी व्यक्ति अस्वस्थ है और ठीक से काम नहीं कर पाता तो उसे कोड़े लगाए जाते हैं।

इस लेखक को जो जानकारी मिली है उसके अनुसार मास्टरजी ने 60 साल की गरीब बूढ़ी महिलाओं तक को कोड़े लगाए हैं। कोड़े लगाने का काम खुलेआम सड़कों पर बेंत की छड़ियों से किया गया है। इनका अपराध महज यह था कि इन्होंने अपनी शारीरिक असमर्थता बताकर बेगार से छूट की मांग की थी। (वही पृष्ठ 37)

इन रियासतों में नागरिक अधिकारों जैसी भी कोई चीज नहीं है

रियासत के हिस्से म 40 प्रतिशत भाग आ जाता है। यदि वहुत सतुलित अनुमान लगाए ता अन्य कर लगभग 10 प्रतिशत ह इस प्रकार किसान के पास केवल 50 प्रतिशत ही वचता है

इसके अलावा उसे गाव के मुखिया या मुखिया के परिवार के सदस्यो की शादी का खच भी वहन करना पडता है और मुखिया के यहा यदि कोई लडका पैदा हुआ तो पुत्रज म समारोह पर तथा मुखिया की पत्नी या मा के मरने पर अतिम सस्कार के समय उसे इन समारोहा का खच वरदाश्त करना होता है।

भारतीय रजवाडा की यह शासनव्यवस्था जितनी दमनकारी और अयायपूण है उसकी दुनिया म कोई मिसाल नही। इसकी खास वजह यह है कि इसम अत्यत आदिम, सामती दमन सम्मिलित है, यहा नीचे के स्तर पर प्रत्यक्ष गुलामी के अवशेष हैं और ऊपर सर्वोच्च साम्राज्यवादी शक्ति और शोपण है।

इस शासनव्यवस्था को अगरेजी राज ने न केवल सुरक्षित रखा है और भारत के 2/5 से भी अधिक हिस्से पर कृत्रिम ढग से लागू किया है वल्कि आधुनिक युग म इसे और अधिक सामने रखा है और समूचे भारत के मामलो म इसे महत्वपूण स्थान दन की कोशिश की है। जैसे जैसे राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन आगे वढता गया है, वैस वैसे साम्राज्यवाद इस नीति पर अधिक से अधिक जोर देने लगा कि दशी राजाओ के सा I गठवधन किया जाए और राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के विरोध म उसे खडा किया जाए। 1921 म चवर आफ प्रिसेज की स्थापना हुई। 1935 के कानून के जरिए जिस सघीय विधान की योजना वनाई गई उसकी नीव देशी राजाओ की भूमिका पर रखी गई। उसम ऊपरी सदन म 2/5 से अधिक स्थान इन राजाओ को दिया गया और निचले सदन म एक तिहाई सीटें इन्ह मिली। ससदीय वहसो म लाड रीडिंग ने अपना मकसद वडे स्पष्ट शब्दो म जाहिर किया

> यदि भारतीय राजाओ का कोई अखिल भारतीय महासघ वनता है तो इसका हमेशा ही एक स्थाई प्रभाव होगा। इसम हमारे लिए सवसे ज्यादा डरने वाली वात क्या है? कुछ राजा ऐसे हैं जो भारत की आजादी के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से पूरी तरह अलग होन के लिए आदोलन करते है। मेरा अपना ख्याल है कि इस तरह की माग करने वाले राजाओ का अल्पमत है लेकिन यह वहुत सुस्पष्ट अल्पमत है और इनके पीछे काग्रेस का सगठन है। इसलिए हमारे लिए यह महत्वपूण है कि इस विचारधारा के विरुद्ध हम जो भी स्थाई प्रभाव पैदा कर सकत हैं, करे। तकरीवन 33 प्रतिशत राजा विधानसभा के सदस्य हुगे और ऊपरी सदन म इनका प्रतिनिधित्व 40 प्रतिशत हागा। वेशक एस भारतीयो की काफी सख्या है जो काग्रेस की विचारधारा को नही मानते ह। इस प्रकार यदि काग्रेस न काफी अधिक वोट

अधिकारिया के लिए बिना पैसे लिए काम करने का मजबूर है। अनेक मामला म इन्ह जो मजदूरी दी जाती है वह उनकी महज सबसे बुनियादी जरूरत के रूप म अर्थात भोजन के रूप म मिलती है। यह प्रजा किसी भी समय और किसी भी अवधि के लिए काम करने को मजबूर है यहा तक कि जवान और बूढी, विवाहिता या विधवा महिलाआ को भी नही छोडा जाता। यदि पुरुषा या महिलाओ म से कोई भी व्यक्ति अशक्त है और ठीक से काम नही कर पाता तो उसे कोडे लगाए जाते है।

इस लेखक को जो जानकारी मिली है उसके अनुसार कास्टेवलो ने 60 साल की गरीब वूढी महिलाओ तक को कोडे लगाए ह। कोडे लगाने का काम खुलेआम सडको पर बेंत की छडियो से किया गया है। इनका अपराध महज यह था कि इन्होने अपनी शारीरिक असमथता वताते हुए वेगार से छूट की माग की थी। (वही, पृष्ठ 37)

इन रियासतो मे नागरिक अधिकारो जैसी भी कोई चीज नही है

प्रजा को इस वात का अधिकार नही है कि राजा, प्रधानमत्री या रियासत द्वारा अपन अधिकारा का हनन किए जाने पर वह हरजाने की माग कर सके। राजा मनमाने ढग से किसी की भी सपत्ति जब्त करने का आदेश दे सकता है। वह किसी भी सीमा तक जुर्माना कर सकता है और वसूली का कोई भी तरीका अख्तियार कर सकता है। वह बिना किसी आरोप के या बिना मुकदमा चलाए किसी का भी अनिश्चित काल के लिए जेल मे डाल सकता है। (वही, पृष्ठ 72-73)

जनता पर अपनी मरजी के अनुसार करो का वोझ लाद दिया गया है ताकि राजमहल की अतिलोभी मागो की पूर्ति के लिए गरीव से गरीव आदमी का भी खून चूसा जा सके

नवानगर रियासत मे जिस तरह करो की वसूली की जाती है उससे और सभी रियासतो मे प्रचलित रीति का पता चल जाता है। पहली सूची म कुछ व्यावसायिक लोग हे तथा मजदूरो, शिल्पियो का नाम है। इसके साथ ही मवेशियो, सगाई, विवाह जन्म, मृत्यु और दाह सस्कार पर कर लिया जाता है। ध्यान देन की वात है कि हाथ से चक्की चलाकर पिसाई का काम करन वाली विधवा महिलाओ तक से कर लिया जाता है जबकि यह उनके जीवन यापन का एक मात्र साधन है

जहा तक भूमि कर की वात है—जहा नकद भुगतान किया जाता है यह कर प्रति एकड 4 शिलिंग है लेकिन जहा नकद कर नही दिया जाता वहा फसल का एक चौथाई हिस्सा कर के रूप म चना जाता है। व्यवहार म यह दर बढ जाती है।

रियासत के हिस्से म 40 प्रतिशत भाग आ जाता है। यदि वहुत सतुलित अनुमान लगाए तो अन्य कर लगभग 10 प्रतिशत है इस प्रकार किसान के पास केवल 50 प्रतिशत ही वचता है

इसके अलावा उसे गाव के मुखिया या मुखिया के परिवार के सदस्यो की शादी का खच भी वहन करना पडता है और मुखिया के यहा यदि कोई लडका पैदा हुआ तो पुत्रजन्म समारोह पर तथा मुखिया की पत्नी या मा के मरने पर अतिम सस्कार के समय उसे इन समारोहा का खच वरदाश्त करना होता है।

भारतीय रजवाडो की यह शासनव्यवस्था जितनी दमनकारी और अन्यायपूण है उसकी दुनिया म कोई मिसाल नही। इसकी खास वजह यह है कि इसम अत्यत आदिम, सामती दमन सम्मिलित है, यहा नीचे के स्तर पर प्रत्यक्ष गुलामी के अवशेष ह और ऊपर सर्वोच्च साम्राज्यवादी शक्ति और शोषण है।

इस शासनव्यवस्था को अगरेजी राज ने न केवल सुरक्षित रखा है और भारत के 2/5 से भी अधिक हिस्से पर कृत्रिम ढग से लागू किया है वल्कि आधुनिक युग म इसे और अधिक सामने रखा है और समूचे भारत के मामला म इसे महत्वपूण स्थान देने की कोशिश की है। जैसे जैसे राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन आगे बढता गया है, वस वैसे साम्राज्यवाद इस नीति पर अधिक से अधिक जोर देने लगा कि दशी राजाओ के साथ गठवधन किया जाए और राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के विरोध म उसे खडा किया जाए। 1921 म चैंवर आफ प्रिंसेज की स्थापना हुई। 1935 के कानून के जरिए जिस सघीय विधान की योजना बनाई गई उसकी नीव देशी राजाओ की भूमिका पर रखी गई। उसम ऊपरी सदन मे 2/5 से अधिक स्थान इन राजाओ को दिया गया और निचले सदन म एक तिहाई सीटें इन्ह मिली। ससदीय वहसो म लाड रीडिंग न अपना मकसद वडे स्पष्ट शब्दो म जाहिर किया

> यदि भारतीय राजाओ का कोई अखिल भारतीय महासघ बनता है तो इसका हमेशा ही एक स्थाई प्रभाव होगा। इसम हमारे लिए सवसे ज्यादा डरने वाली वात क्या है ? कुछ राजा ऐसे है जो भारत की आजादी के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से पूरी तरह अलग होने के लिए आदोलन करते हे। मेरा अपना ख्याल है कि इस तरह की माग करने वाले राजाओ का अल्पमत है लेकिन यह वहुत सुस्पष्ट अल्पमत है और इनके पीछे काग्रेस का सगठन है। इसलिए हमारे लिए यह महत्वपूण है कि इस विचारधारा के विरुद्ध हम जो भी स्थाई प्रभाव पैदा कर सकते है करें। तकरीवन 33 प्रतिशत राजा विधानसभा के सदस्य होंगे और ऊपरी सदन म इनका प्रतिनिधित्व 40 प्रतिशत होगा। वशक ऐसे भारतीयो की काफी सख्या है जो काग्रेस की विचारधारा को नही मानते है। इस प्रकार यदि काग्रेस ने काफी अधिक वोट

> पाने की व्यवस्था कर भी ली तो भी मुझे इस बात का तनिक भी भय नहीं है कि कुछ ऐसा हो सकेगा जो हमारे लिए प्रतिकूल हो।

इधर हाल के वर्षों मे राष्ट्रीय जनवादी आंदोलन इन कठपुतली रियासतो की गढी गयी सीमाओ को तोडता हुआ आगे बढा है। स्टेटस पीपुल्स कांफ्रेंस रियासतो मे जनआंदोलनो का सगठन किया करती है और इसकी ताकत काफी तेजी से बढी है। बुनियादी नागरिक अधिकारो के लिए एक के बाद दूसरी रियासत मे सक्रिय संघर्ष चलाए गए है।

रियासतो मे जनआदोलन की इस प्रगति के साथ साथ राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति मे भी परिवर्तन की झलक मिली है। अतीत मे राष्ट्रीय कांग्रेस ने सीधे तौर पर भारतीय रियासतो मे आदोलन की इस तरह की गतिविधियो मे भाग लेने से अपने को अलग रखा। 'हस्तक्षेप न करने' की नीति को जानबूझकर अपनाया गया और इसके साथ ही यह झूठी आशा की गई कि इन कठपुतली रियासतो के राजाओ के साथ किसी तरह की एकता कायम हो जाएगी। कांग्रेस ने कभी यह नही सोचा कि इन रियासतो की 8 करोड दलित जनता के साथ किसी तरह की एकता कायम की जाए। गोलमेज सम्मेलन मे गाधी ने कहा था कि 'अब तक कांग्रेस ने राजाओ की इस तरह सेवा करने की कोशिश की है कि वह उनके घरेलू तथा आतरिक मामलो मे किसी तरह की दखलअंदाजी नही करती।' गाधी ने आगे कहा

> मैं महसूस करता हू और यह जानता हू कि इन राजाओ के दिलों मे अपनी प्रजा के हित की बातें हैं। उनके और मेरे बीच कोई फर्क नही है सिवाय इसके कि हम लोग एक साधारण व्यक्ति हैं और उन्हें ईश्वर ने भद्र राजकुमार बनाया है। मैं उनके लिए शुभकामना व्यक्त करता हू, मैं उनकी समृद्धि की कामना करता हू।

बाद के घटनाचक्रो ने खुद ही इस घातक नीति को असफल साबित कर दिया। कांग्रेस ने स्वेच्छापूर्वक अपनी गतिविधियो को ब्रिटिश भारत तक ही सीमित रखा और हालाकि उसने खुद को अखिल भारतीय राष्ट्रीय संस्था का नाम दिया था लेकिन भारतीय रियासतो मे अपने नेतृत्व के तहत उसने कोई समानातर संगठन कायम करने की कोशिश नहीं की। लेकिन हाल के वर्षों मे त्रावणकोर और मैसूर जैसे तथाकथित अत्यत 'प्रगतिशील' रियासतो सहित राजाओ द्वारा जनआदोलनो की प्रारंभिक शुरुआतो के हिंसात्मक दमन से जो स्थिति पैदा हुई उसने भारतीय राष्ट्रीय आदोलन को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वह उठे और संघर्ष का बोझ खुद ही उठाए। 1938-39 की घटनाओं मे देखा गया कि राष्ट्रीय कांग्रेस ने जनता के अधिकारो और भारतीय रियासतो मे अपना अस्तित्व कायम रखने के अधिकार के लिए संघर्ष का सूत्रपात किया। रियासतो मे सविनय अवज्ञा आदोलन का समर्थन देने का प्रश्न राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों के बीच गहरे मतभेद का कारण बना और खुलकर सामने आ गया।

1938 म राष्ट्रीय काग्रेस का हरिपुरा अधिवेशन हुआ जिसम रियासतो के सबध म काग्रेस के आम सिद्धातो की घोषणा की गई

> काग्रेस रियासतो म भी उसी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतत्रता की हिमायती है जैसी वह शेष भारत म चाहती है। इसके साथ ही काग्रेस इन रियासता को भारत का अविभाज्य और अभिन्न अग मानती है। काग्रेस ने पूण स्वराज्य का जो लक्ष्य अपनाया है वह रियासता सहित समूचे भारत के लिए है क्योकि आजादी के दिनो मे भी भारत की एकता और अभिन्नता वैसी ही बनी रहनी चाहिए जैसी गुलामी के दिनो म रही है।
>
> काग्रेस केवल उसी तरह के महासघ की बात स्वीकार करेगी जिसम रियासते भी स्वतत्र इकाई के रूप म भाग ले सकें और उन्ह भी शेष भारत की तरह ही जनतत्र और स्वतत्रता की प्राप्ति हो सके।
>
> इसलिए काग्रेस की राय यह है कि रियासतो मे पूरी तरह उत्तरदायित्वपूण प्रशासन कायम होना चाहिए और नागरिक अधिकारा की गारटी मिलनी चाहिए। इसके साथ ही काग्रेस इस बात पर भी खेद प्रकट करती है कि इन रियासता की मौजूदा हालत पिछडी हुई है और अनेक रियासतो मे स्वतत्रता बिलकुल नही है तथा नागरिक अधिकारो का हनन किया जा रहा है।

इसके साथ ही हरिपुरा अधिवेशन के प्रस्ताव ने रियासतो के अदर काग्रेस की गतिविधियो पर खुद ही कुछ सीमाए भी लगा दी थी

> रियासतो म जनता का अदरूनी सघप काग्रेस के नाम पर नही चलाया जाना चाहिए। इस काय के लिए स्वतत्र सगठनो की शुरुआत की जानी चाहिए और जहा इस तरह के सगठन पहले से मौजूद ह, वहा उन्हे जारी रखना चाहिए।

1939 मे काग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन हुआ जिसमे उसने अपनी स्थिति मे आशिक सशोधन किया

> काग्रेस की यह राय है कि रियासतो के सबध म हरिपुरा अधिवेशन के प्रस्ताव न इसके द्वारा उत्पन्न की गई आशाओ को पूरा किया है और रियासता की जनता को अपने आपको सगठित करने तथा आजादी के लिए अपने आदोलनो को सचालित करने का बढावा देकर काग्रेस ने अपना औचित्य साबित कर दिया है। हरिपुरा मे जो नीति अपनाई गई वह जनता के सर्वोत्तम हिता को ध्यान म रखकर अपनाई गई थी ताकि जनता के अदर आत्मनिभरता तथा शक्ति पैदा हो। यह नीति मौजूदा

सूबो म लोकप्रिय मत्रिमडलो के फिर से गठित होन तथा उभरत क्रातिकारी विद्रोहो के कारण सावैधानिक वहसो के शुरू होने के साथ ही भारतीय रियासते भारत की राजनीतिक स्थिति का केंद्रबिंदु हो गई ह। रियासता म सामती निरकुशता के विरुद्ध स्वत - स्फूत सघप प्रारभ हो गए और उनका बहुत ही हिंसात्मक तरीके से राजाआ ने दमन किया है। राजाआ के इस काम मे ब्रिटेन के राजनीतिक विभाग का समथन प्राप्त है। इन सघर्षों का सबसे जबरदस्त उभार 1946 मे कश्मीर मे देखा गया जब जनता ने डोगरा राजवश के खिलाफ बहुत स्पष्ट और खुले शब्दो मे 'कश्मीर छोडो' नारा दिया।

यह देखा जा सकता है कि कांग्रेस की वतमान नीति आज भी रियासतो के पहले से बने बनाए ढाचो के अदर तथा राजाओ के चले आ रहे शासन के अतगत ही सुधारो की बात करती है। इस तरह की स्थिति महज एक अधूरी स्थिति हो सकती है, यह राष्ट्रीय आदोलन को बुनियादी मसले तक पहुचाने की दिशा मे एक अवस्था हो सकती है।

1946 के ब्रिटिश सावैधानिक प्रस्तावा ने राजाआ की भावी भूमिका के प्रश्न को एक नए चरण म पहुचा दिया। प्रस्तावित सविधान सभा मे राजाओ को कुल 386 स्थाना मे से 93 स्थान दिए जाने थे और जनतात्रिक ढग से चुनाव के किसी भी तरीके का इसम प्रावधान नही था। जैसाकि 1935 के सघीय सविधान मे कहा गया था, राजाआ को प्रस्तावित अखिल भारतीय सघ के दायरे म लाना था। लेकिन जिन शर्तों के अतगत उन्ह इसमे शामिल हाना था वे शर्तें पूरी तरह एच्छिक बातचीत पर छोड दी गईं। फिर भी यह बात स्पष्ट कर दी गई कि अगरेजो द्वारा सत्ता के हस्तातरण के बाद सर्वोपरिता का सिद्धात समाप्त हो जाएगा जिससे बातचीत के जरिए यदि कोई वैकल्पिक व्यवस्था हो सकी तो राजा कानूनी और कूटनीतिक तौर पर 'स्वतत्र और प्रभुसत्ता सपन्न' बने रहगे।

भारत म जनतत्र के भविष्य के लिए यह बहुत जरूरी है कि राजाओ की असामान्य स्थिति और रियासता के मनमाने ढाचे को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जाए। स्वतत्र भारत म इन देशी रियासतो का कोई स्थान नही हो सकता। ब्रिटिश भारत और राजाओ का भारत' नाम से देश का विभाजन किसी भी अथ मे प्राकृतिक विभाजन नही है, इसकी न तो कोई ऐतिहासिक आवश्यकता है और न यह जनता की भावात्मक जरूरतें पूरी करता है बल्कि यह साम्राज्यवादियो की एक ऐसी चाल है जिसके जरिए जनता मे भेद-भाव पैदा करके अपना प्रशासन बनाए रखा जा सके। राष्ट्रीय आदोलन का एकमात्र लक्ष्य यही हो सकता है कि सपूण भारत म समान अधिकारो और समान नागरिकता सहित जनतत्र की स्थापना की जाए। भारत की एकता, उसके प्रगतिशील विकास और भारत मे जनतत्र की स्थापना के लिए यह नितात आवश्यक है कि भारतीय रियासतो को पूरी तरह समाप्त किया जाए, सामती दमन के इन अवशेषा का नामोनिशान मिटा दिया जाए तथा प्राकृतिक, भौगोलिक, आर्थिक एव सास्कृतिक समूहो के आधार पर भारतीय जनता का एक वास्तविक सघ मे एकताबद्ध किया जाए (ऐसा तथाकथित 'सघ' नही

> परिस्थितियों को देखकर तैयार की गई थी लेकिन यह नहीं सोचा गया था कि इस नीति का हमेशा पालन करने के लिए कांग्रेस मजबूर है। कांग्रेस का हमेशा यह अधिकार रहा है और उसका यह कर्तव्य भी रहा है कि वह रियासतों की जनता का नेतृत्व करे तथा उन्हें प्रभावित करे। जनता के बीच जो महान जागरण हो रहा है उससे कांग्रेस ने अपने ऊपर जो सीमाएं थोप रखी थीं उनमें ढील दी जा सकती है या उन्हें एकदम समाप्त किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप रियासतों की जनता के साथ कांग्रेस का तादात्म्य अधिक से अधिक बढ़ता जाएगा।

इस नीति के अनुसार राष्ट्रीय नेताओं ने रियासतों की जनता के आंदोलनों में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। फरवरी 1939 में आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस का लुधियाना अधिवेशन हुआ और जवाहरलाल नेहरू इसके अध्यक्ष तथा पट्टाभि सीतारमैया उपाध्यक्ष चुने गए। सम्मेलन ने 'उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार' की स्थापना के संघर्ष में रियासतों की जनता के आंदोलन की प्रगति का स्वागत किया और कहा

> अब समय आ गया है जब इस संघर्ष को भारतीय स्वतंत्रता के उस अधिक व्यापक संघर्ष के साथ मिलाकर चलाया जाए जिसका वह एक अभिन्न अंग है। अखिल भारतीय स्तर पर चलाया जाने वाला इस प्रकार का संयुक्त संघर्ष अनिवार्य रूप से कांग्रेस के नेतृत्व में ही चलाया जाना चाहिए।

युद्ध के बाद अखिल भारतीय स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस की बैठक दिसंबर 1945 में उदयपुर में हुई और उसमें सम्मेलन का यह लक्ष्य स्वीकार किया गया कि 'वह एक स्वतंत्र तथा संघबद्ध भारत के अभिन्न अंग के रूप में रियासतों में शांतिपूर्ण तथा वैधानिक तरीकों से उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना करेगा।' अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने कहा

> यह अनिवार्य है कि रियासतों का एक बहुत बड़ा हिस्सा जो संभवतः आर्थिक इकाइयों के रूप में नहीं रह सकता, पड़ोसी इलाकों में मिला दिया जाए इस तरह की छोटी रियासतों के शासकों को किसी तरह की पेंशन दी जा सकती है और यदि वे किसी काम के योग्य हों तो उन्हें इसके लिए भी प्रोत्साहन दिया जा सकता है।
>
> अन्य रियासतें, जिनकी संख्या 15 से 20 हो सकती है और जो संघ की स्वायत्त शासित इकाइयों के रूप में रह सकती हैं उनके शासक एक जनतांत्रिक सरकार के अंतर्गत सांविधानिक अध्यक्ष बने रह सकते हैं। इनमें से कुछ शासक और राजा महाराजा अत्यंत प्राचीन रजवाड़ों के हैं जिनका इतिहास और परंपरा से घनिष्ठ संबंध है।

सूबो मे लोकप्रिय मत्रिमडलो के फिर स गठित होन तथा उभरते क्रातिकारी विद्रोहा के कारण साविधानिक वहसो के शुरू होने के साथ ही भारतीय रियासतें भारत की राजनीतिक स्थिति का केंद्रबिंदु हो गई है। रियासतो म सामती निरकुशता के विरुद्ध स्वत-स्फूत सघप प्रारभ हो गए और उनका वहुत ही हिंसात्मक तरीके से राजाआ न दमन किया है। राजाआ के इस काम म ब्रिटेन के राजनीतिक विभाग का समथन प्राप्त है। इन सघर्षो का सबसे जवरदस्त उभार 1946 मे कश्मीर मे देखा गया जव जनता ने डोगरा राजवश के खिलाफ वहुत स्पष्ट और खुले शब्दा मे 'कश्मीर छोडो' नारा दिया।

यह देखा जा सकता है कि काग्रेस की वतमान नीति आज भी रियासतो के पहले से वने वनाए ढाचा के अदर तथा राजाआ के चले आ रहे शासन के अतगत ही सुधारो की वात करती है। इस तरह की स्थिति महज एक अधूरी स्थिति हा सक्ती है, यह राष्ट्रीय आदोलन का बुनियादी मसले तक पहुचाने की दिशा मे एक अवस्था हो सकती है।

1946 के ब्रिटिश साविधानिक प्रस्तावा ने राजाआ की भावी भूमिका के प्रश्न को एक नए चरण म पहुचा दिया। प्रस्तावित सविधान सभा म राजाओ को कुल 386 स्थानो मे से 93 स्थान दिए जाने थे और जनतात्रिक ढग से चुनाव के किसी भी तरीके का इसम प्रावधान नही था। जसाकि 1935 के सघीय सविधान म कहा गया था, राजाआ को प्रस्तावित अखिल भारतीय सघ के दायरे म लाना था। लेकिन जिन शर्तो के अतगत उन्हे इसमे शामिल होना था, वे शर्तें पूरी तरह ऐच्छिक वातचीत पर छोड दी गई। फिर भी यह वात स्पष्ट कर दी गई कि अगरेजा द्वारा सत्ता के हस्तातरण के वाद सर्वोपरिता का सिद्धात समाप्त हो जाएगा जिससे वातचीत के जरिए यदि कोई वैकल्पिक व्यवस्था हो सकी तो राजा कानूनी और कूटनीतिक तौर पर 'स्वतत्र और प्रभुसत्ता सपन्न' वने रहग।

भारत म जनतत्र के भविष्य के लिए यह वहुत जरूरी है कि राजाआ की असामान्य स्थिति और रियासता के मनमाने ढाचे को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जाए। स्वतत्र भारत म इन दशी रियासतो का कोई स्थान नही हो सकता। ब्रिटिश भारत और राजाओ का भारत' नाम से दश का विभाजन किसी भी अथ म प्राकृतिक विभाजन नहा है, इसकी न तो कोई ऐतिहासिक आवश्यकता है और न यह जनता की भावात्मक जरूरतें पूरी करता है वल्कि यह साम्राज्यवादियो की एक ऐसी चाल है जिसके जरिए जनता म भेद-भाव पैदा करके अपना प्रशासन वनाए रखा जा सक। राष्ट्रीय आदोलन का एकमात्र लक्ष्य यही हो सकता है कि सपूण भारत म समान अधिकारा और समान नागरिकता सहित जनतत्र की स्थापना की जाए। भारत की एकता, उसके प्रगतिशील विकास और भारत म जनतत्र की स्थापना के लिए यह नितात आवश्यक है कि भारतीय रियासता को पूरी तरह समाप्त किया जाए, सामती दमन के इन अवशेषा का नामोनिशान मिटा दिया जाए तथा प्राकृतिक भौगोलिक, आर्थिक एव सास्कृतिक समूहा क आधार पर भारतीय जनता को एक वास्तविक सघ म एकतावद्ध किया जाए (ऐसा तथाकथित सघ' नही

होना चाहिए जो मौजूदा निरकुशता को बनाए रखने तथा जनता की आकाक्षाओ को दमन करने का एक व्यापक तत्व हो) ।

2 साम्प्रदायिक भेदभाव

अगरेजो ने राजाओ के जरिए भारतीय जनता मे फूट डालने की जो नीति अपनाई थी ठीक उसी तरह की नीति वे हिंदुओ और मुसलमानो के बीच भेदभाव पैदा करने के लिए बरतते थे ।

यहा साम्प्रदायिक भेदभाव की आम समस्या तथा इस समस्या के विशेष राजनीतिक रूपो के बीच फर्क करना बहुत जरूरी है क्योकि हाल के वर्षों मे मुस्लिम लीग का उदय और पाकिस्तान की माग ने यह साबित कर दिया है कि यह समस्या राजनीतिक रूप ले चुकी है । इन खास तरह के राजनीतिक रूपो के कारण कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न पैदा होते है जिनपर हम अगले अध्यायो मे विचार करेगे लेकिन उसके पहले साम्प्रदायिक समस्या और खास-तौर से हिंदू मुस्लिम विरोध के आम प्रश्न पर विचार कर लेना जरूरी है ।

भारत मे करीब दो तिहाई आबादी हिंदुओ की है तथा एक चौथाई मुसलमानो की और इनके अतिरिक्त कुछ छोटे छोटे धार्मिक सम्प्रदाय है जो मिलकर आबादी का दसवा भाग होते हैं । इसलिए 'साम्प्रदायिक' समस्या के नाम से या अलग अलग धार्मिक 'सम्प्रदायो' के आपसी सबधो के रूप मे जो सवाल सामने आता है, भारत मे उसकी कुछ अपनी विशेषताए है । राष्ट्रीय आदोलन के लिए यह एक गभीर मसला है लेकिन यह ऐसा कोई सवाल नही है जो सिर्फ भारत मे ही देखने मे आ रहा हो ।

कुछ विशेष परिस्थितियो मे भिन्न भिन्न नसलो और धर्मों के लोगो के एक ही देश मे रहने से काफी गभीर कठिनाइया पैदा हो सकती है, कभी कभी तो दगा-फसाद और खून खराबा हो सकता है । 20वी सदी के विश्व से ही अगर उदाहरण लें तो हम इस तरह की समस्याए देखने को मिल सकती है । उत्तरी आयरलैंड मे औरेंजमैन और कैथोलिको का झगडा, शासनादेश (मैंडेट) के दिनो मे फिलिस्तीन मे अरबो और यहूदियो का सघर्ष, जारशाही रूस मे स्लाव लोगो और यहूदियो का सघर्ष, नाजी जर्मनी मे तथाकथित 'आर्यों' तथा यहूदियो का झगडा, ये कुछ ऐसे मसले है जिनसे पता चलता है कि साम्राज्यवादियो ने भेदभाव की नीति हर जगह अपनाई । यूरोप मे आज यहूदी विरोध की जो भावना देखने को मिलती है उससे पता चलता है कि अलग अलग नस्ल या धर्म पर आधारित भेदभाव तथा विरोध कितने तीव्र रूप मे सामने आ सकता है ।

ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर बहुत स्पष्ट रूप मे यह बताया जा सकता है कि वे कौन सी परिस्थितिया है जिनमे इस तरह की समस्याए पैदा होती है ।

जब तक फिलिस्तीन ब्रिटेन के सरक्षण म नही आया था अरब और यहूदी लोग सदियो से शातिपूर्ण जीवन बिताते रहे। ब्रिटेन का शासन कायम होन के बाद और साम्राज्यवादियो द्वारा अपनी ताकत के बल पर तथा पश्चिमी महाजनी पूजी के सरक्षण म यहूदिया का आव्रजन शुरू होने के बाद से हिंसात्मक सघर्षों की भी शुरुआत हो गई। इन सघर्षों को कभी कभी नस्लवादी या धार्मिक सघष का नाम दिया जाता है लेकिन सचाई यह है कि ये सघष आक्रमण और विदेशी प्रभुत्व के खिलाफ आजादी के लिए चलाए जाने वाले राष्ट्रीय सघष है।

जारशाही रूस म और खासतौर से जारशाही के पतन के दिनो म यहूदिया का जितना जबरदस्त कत्लेआम हुआ उसकी कही और मिसाल नही है। समूचा विश्व इस कत्लेआम को देखकर हैरान रह गया और इन घटनाओ से इतिहास के बेशुमार पृष्ठ भरे पडे है। इस कत्लेआम के बारे म यह समझा जाता था कि रूस की जनता बहुत मूख और जगली है तथा उसके अनियत्रित उपद्रवो के कारण हिंसा का सहारा लेना पडा लकिन बाद के वर्षों म खुफिया पुलिस की रिपोर्टें प्रकाशित हुई उनस यह बात साबित हो गई कि कत्ले-आम के लिए सरकार ने सीधे तौर पर पहल की थी और इसका सचालन भी किया था। इन रिपोर्टों के छपने से पहले तक लोग 'ब्लैक हड्रेड्स' या 'पैंटिआटिक' नामक गुडा सगठनो के साथ सरकार के अनोखे सबधो की ओर सकेत करते थे। जिस दिन स रूस की जनता ने अपने देश का शासनभार स्वय सभाला उस दिन से ही इस तरह के हत्याकाड भी बिलकुल समाप्त हो गए। आज सोवियत गणराज्य म तमाम तरह की नस्लो और विभिन्न धर्मों को मानने वाल लोग बहुत सुख चन से एक साथ रह रहे है।

जमनी मे, वाइमर प्रजातत्र के दिनो म जमन और यहूदी लोग शातिपूवक साथ साथ रहते थे। जब जमनी मे नाजियो का शासन कायम हुआ तो हत्याकाड जारशाही रूस की बजाय मध्य यूरोप मे होने लगा।

इस प्रकार भिन्न भिन्न नस्लो और धर्मों के लाग यदि एक साथ रहे भी तो इस तरह की कठिनाइया पैदा होना स्वाभाविक रूप से अनिवाय बात नही है। ये कठिनाइया सामा-जिक राजनीतिक परिस्थितियो स उत्पन्न होती है। विशेष रूप से ये कठिनाइया उन देशो म पदा होती है जहा कोई प्रतिक्रियावादी सरकार जनता के आदोलन के खिलाफ अपने को बनाए रखने की कोशिश करती है। इस तरह की स्थितिया यदि कही पैदा हो रही हो तो यह समझना चाहिए कि अब इस शासनव्यवस्था को समाप्त होन स कोई ताकत रोक नही सकती।

भारत म हमारे सामने आज इसी तरह की समस्या है। भारत म आज (1941 की जन-गणना के अनुसार) 25 करोड 40 लाख मे अधिक हिंदू रहत है जो कुल आबादी का 65 93 प्रतिशत है। इनम से 19 करोड 'ब्रिटिश भारत' म रहत है जहा उनका अनुपात

कुल जनसख्या का 64 5 प्रतिशत होता है और साढे छ करोड लोग देशी रियासतो म रहते ह जहा उनका अनुपात रियासतो की कुल आवादी का 70 57 पतिशत होता है। यहा मुसलमानो की सख्या 9 करोड 20 लाख है जो कुल आवादी का 23 81 प्रतिशत होता है। इनमे से 7 करोड 90 लाख मुसलमान ब्रिटिश भारत मे रहते ह जहा उनका अनुपात कुल आवादी का 26 84 प्रतिशत होता है और 1 करोड 20 लाख से भी अधिक मुसलमान देशी रियासतो मे रहत ह जहा उनका अनुपात आवादी का 13 93 प्रतिशत होता है।

अगरेजो का शासन कायम होने से पहले भारत म उस तरह के हिंदू मुस्लिम झगडे कभी नही दिखाई दिए जैसे झगडे अगरेजी शासनकाल म और खासतौर स इसके अतिम दिनो मे देखन को मिले। किसी एक रियासत का किसी दूसरी रियासत के साथ सघप भी हुआ और कभी कभी यह भी देखन म आया कि एक रियासत का राजा हिंदू है और दूसरी रियासत का मुसलमान लेकिन ऐसा कभी नही हुआ कि इन सघर्पो ने हिंदू मुस्लिम सघप का रूप लिया हो। मुसलमान शासक हिंदुओ को विना किसी हिचकिचाहट के अपन यहा ऊचे से ऊचे पदा पर नियुक्त करते थे और हिंदू शासक भी मुसलमानो के प्रति इसी तरह का रवैया अपनाते थे।

देशी रियासता म यह परपरा आज भी देखी जा सकती है। साइमन कमीशन की रिपोट म कहा गया था कि 'मौजूदा दशी रियासतो म साप्रदायिक सघप का अपक्षाकृत काफी अभाव है।' इसके वाद के वर्षो म जहा जहा साप्रदायिक सघप होन की खबर मिली, जैसेकि 1931 32 म कश्मीर मे, वहा सघप की वुनियाद म साप्रदायिक प्रश्नो का रत्तीभर भी स्थान न था। सघप क मुद्दे कुछ और थ और साम्राज्यवादियो न इन सघर्पो को साप्रदायिक सघप कहकर प्रचारित किया। इन सघर्पो का साप्रदायिक मसलो स कोई भी सवध नही था। दरअसल कश्मीर म मुस्लिम जनता न, जो कुल आवादी का 4/5 भाग थी, अपन राजा के खिलाफ विद्रोह किया और यह इत्तफाक की वात थी कि उनका राजा हिंदू था। इस प्रकार इस विद्रोह को साप्रदायिक विद्रोह की सज्ञा दे दी गई हालाकि ब्रिटन के अखवारो को यह स्वीकार करना पडा कि 'यह एक अजीव स्थिति है कि साप्रदायिक विद्रोह होने के वावजूद एक भी हिंदू नही मारा गया' (डेली टलीग्राफ 8 फरवरी 1932)। वस्तुत जैस जैसे भारतीय रियासतो म जनता का विद्रोह तज होता गया और शक्ति ग्रहण करता गया वस वस इन रियासतो म जनता क वीच भदभाव पैदा करन का प्रचलित प्रतिक्रियावादी तरीका भी अपनाया जान लगा।

जसा हमन दखा है, हिंदू मुस्लिम विरोध क वार म वणन करत हुए साइमन कमीशन की रिपोट म दो अजीव तथ्यो की तरफ सकत किया गया है। एक तो यह कि इस तथ्य का विरोध उन इलाको म ज्यादा है जहा अगरजो का प्रत्यक्ष शासन है। देशी रियासतो म यह विरोध कम है हालाकि दोनो इलाको की आवादी एक जसी ही है और दूसरा

रियासतो तथा ब्रिटिश सूबो की सीमाए केवल प्रशासनिक सुविधाओ को ध्यान म रखकर निर्धारित की गई हैं। दूसरी बात यह है कि ब्रिटिश भारत के इलाको म भी यह विरोध अभी हाल के वर्षों म बढा है और एक पीढी पहल तक ब्रिटिश भारत म ऐसे साम्प्रदायिक सघष बहुत कम थे जिनसे जनजीवन की शाति को कोई खतरा हो। अत साम्प्रदायिक सघष ब्रिटिश शासन की आर खासतौर पर उसके अतिम दिना की अर्थात साम्राज्यवादी प्रभुत्व के पतन के दौर की विशेष देन है।

इस धारणा न सरकारी क्षेत्रा म काफी रोष पैदा किया कि भारत म साम्प्रदायिक तनाव को बढावा देने की मूल जिम्मेदारी अगरेजो के शासन की है (हम आगे चलकर देखेगे कि और भी कई चीजो के लिए ब्रिटिश शासन जिम्मेदार है)। फिर भी विभिन्न साक्ष्यो और ऐतिहासिक दस्तावेज देखन से इन तथ्या की अपरिहायता समान रूप से सिद्ध होती है। स्तब्धता और रोष प्रकट किया जाना कोई तक नही है। क्योकि साम्राज्यवाद सीजर की पत्नी नही है। इसके साथ ही साम्राज्यवादिया के छल-कपट से भरे दस्तावेज इतने अधिक हैं कि अत्यत जाहिर तथ्या को पाखडपूण ढग से नकार देने से विश्व जनमत धोखा नही खा सकता।

शुरू के वर्षों म अगरेज शासका न फूट डालो और राज करो' सिद्धात की खुलेआम घोषणा की लेकिन बाद के वर्षों म वे इस तरह की घोषणाओ के प्रति सतकता का रुख अपनाने लगे। 1821 मे ही एक अगरेज अफसर न मई 1821 के एशियाटिक रिव्यू के अक म 'कनाटिकस' नाम से लिखते हुए कहा था कि 'राजनीतिक, नागरिक अथवा सनिक हर क्षेत्र म हमारे भारतीय प्रशासन का मूल वाक्य फूट डालो और राज करो होना चाहिए।' मुरादाबाद के कमाडेंट लफ्टीनेट कनल कोक न 19वी सदी के मध्य म इस सिद्धात की नीव डाल दी

> हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम पूरी ताकत के साथ विभिन्न धर्मों और जातियो के बीच मौजूदा भेदभाव को बना रहने दें। हम यह भेदभाव समाप्त करने की कोशिश नही करनी चाहिए। फूट डालो और राज करो ही भारतीय सरकार का सिद्धात होना चाहिए।[1]

1888 म भारतीय मामला के आधिकारिक विद्वान सर जान स्ट्रेशी न लिखा

> सचाई यह है कि भारत म एक दूसरे की विरोधी जातियो का साथ साथ रहना ही हमारी राजनीतिक स्थिति के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत करता है। (सर जान स्ट्रेशी इडिया, 1888, पृष्ठ 255)

गाधी न बताया है कि किस प्रकार काग्रेस क सयुक्त सस्थापक ह्यूम न उनस साफ साफ

यह कहा था कि ब्रिटिश सरकार फूट डालो और राज करो की नीति पर दृढ है (जे० टी० सडरलैंड की पुस्तक इडिया इन बाडेज के पृष्ठ 232 पर उद्धृत)। 1910 म जे० रेमजे मकडोनल्ड ने मुस्लिम लीग की स्थापना के विषय म लिखा था

> अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसबर 1906 को हुई। मुस्लिम लीग को अपनी कोशिशा म इतनी अधिक राजनीतिक सफलताए मिली है कि लोगो को यह सदेह होने लगा है कि इस सगठन के पीछे काफी घातक शक्तिया का हाथ है। यह भी सदेह किया जाता है कि मुस्लिम नेताओ को कुछ अगरेज अफसरों से प्रेरणा मिली है और ये लोग शिमला और लदन मे ही बैठे बैठे अपने इशारे पर मुस्लिम नेताओ को नचा रहे ह तथा मुसलमानो के साथ विशेष पक्षपात करके हिंदू और मुसलमानो के बीच जानबूझकर मनमुटाव को बढावा दे रहे ह। (जे० आर० मैकडोनल्ड दि अवेकनिंग आफ इडिया', 1910, पृष्ठ 283-84)

बाद के वर्षों म जो प्रमाण मिले है उनसे यह सदेह और भी पुष्ट हो गया है। 1926 म लाड ओलीवियर न कुछ समय तक भारतीय मामलो के मत्री का पद सभालन के बाद, और सभी दस्तावजा को देखने क बाद 'दि टाइम्स' अखबार को एक पत्र लिखा

> जिस भी व्यक्ति को भारतीय मामला की अच्छी जानकारी है, वह इस बात से इकार करने को तैयार नही होगा कि ब्रिटिश अफसरशाही आमतौर पर मुसलमाना का पक्ष लेती है। कुछ हद तक ता यह पक्षपात सहानुभूति के कारण होता है ज्यादातर इसका उद्देश्य हिंदू राष्ट्रवादिता क खिलाफ मुसलमाना का इस्तेमाल करने क लिए किया जाता है। (10 जुलाई 1926 क दि टाइम्स म लाड आलीवियर का पत्र)

हाल क दिनो म इसी तरह के बुनियादी दृष्टिकाण का बडी चालाकी क साथ व्यक्त किया गया है। 1941 म दि टाइम्स अखबार न लिखा

> हिंदू मुस्लिम समझौत क बुनियादी महत्व पर जोर दन का अथ यह नही है कि अगरज फूट डालो और राज करा की नीति का पालन कर रहा है। दोना सप्रदाया क बीच फूट मौजूद है और जब तक यह फूट बनी रहगी तब तक अगरजा का शासन भी निश्चित रूप स बना रहगा। (दि टाइम्स 21 जनवरी 1941)

इस प्रकार सरकारी नीति है कहा जाता जिम्मदार सरकारी प्रतिनिधिया क अधिकृत [illegible] है।

फिर भी इस आम नीति ने प्रशासनिक व्यवस्था का रूप आधुनिककाल म ही ग्रहण किया है। राष्ट्रीय आदोलन के बढने तथा एक के बाद दूसरे वैधानिक सुधारा के साथ साथ इस बात की कोशिशे भी बढती गई कि साप्रदायिक फूट को प्रोत्साहन दिया जाए। इसके लिए एक एसी अजीब ढग की चुनाव प्रणाली का आविष्कार किया गया जिस इन वैधानिक सुधारा के साथ जोड दिया गया था। यह नया कदम 1906 म अर्थात ठीक उस समय जब राष्ट्रीय आदालन की पहली बडी लहर आई थी उठाया गया।

घटनाक्रम के इस विकास की पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमे उस सामाजिक आर्थिक प्रतिद्वद्विता के बीज देखना आवश्यक है जिसका असर हिदुओ और मुसलमानो पर नही बल्कि उदीयमान मध्यवग पर पडता है। बबई, कलकत्ता और मद्रास म अर्थात हिदू बहुल क्षेत्रा के उत्तर म मुस्लिमबहुल क्षेत्रो की तुलना म व्यापार व्यवसाय तथा शिक्षा का विकास काफी पहले शुरू हो गया था। 1882 म हटर कमीशन की रिपोट ने यह पता लगाया था कि विश्वविद्यालय की शिक्षा के मामले म औसतन मुसलमाना का अनुपात केवल 3 65 प्रतिशत था। आज भी मुसलमानो की तुलना म हिंदुआ मे साक्षर लोगा की सख्या ज्यादा है। इसलिए भारतीय बुजुर्आवग का उदय होने के साथ साथ ऐसे भेदभावो के लिए परिस्थितिया तयार हा गई जो बहुत आसानी से साप्रदायिक रूप धारण कर सकती थी। मुसलमानो का ऊपरी वग, जिसका मुख्य आधार बडे जमीदारो म था व्यापारिक एव औद्योगिक पूजीपतिवग की उन्नति को दखकर खुश नही हुआ क्योकि उसे ऐसा लगता था कि यह उन्नति हिंदुआ की या 'हिंदू बनिया' की उन्नति है। इसे वे बडी खतरनाक स्थिति मानते थे। उदीयमान मध्यवग म अलग अलग व्यापारिक गुटो के बीच साप्रदायिक विरोध का आधार मौजूद था क्योकि मुसलमान लोग ज्यादा पिछडे हुए थे। इसी प्रकार प्रशासनिक पदो के लिए शैक्षणिक योग्यताओ पर आधारित प्रतियोगिता म भी हिंदू मुसलमानो की तुलना म बाजी मार ले जाते थे। जब प्रतिनिधि सस्थाओ का विकास होने लगा और चुनाव प्रणाली आरभ हुई तो मुसलमानो को फिर कठिनाई का सामना करना पडा क्योकि मताधिकार केवल शिक्षा या सपत्ति के आधार पर मिलता था। और यहा भी मुसलमानवग हिंदुओ की तुलना म पीछे छूट जाता था। यही वजह थी कि अलग निवाचन की माग को मुसलमाना के बीच प्रेरणा मिली। इन स्थितिया स सरकार के लिए फूट के बीज बोना और दोना सप्रदाया के बीच निहित विरोधो को सामने लाकर उनके सहारे समूची राजनीतिक प्रणाली का एक ढाचा तैयार करना आसान हो गया।

1890 म ही सर सैयद अहमद खा न, जिनका सरकार के साथ घनिष्ठ सबध था मुसलमानो के एक गुट का नतत्व किया और उन्होने मुसलमानो के लिए विशेष अधिकारो और पदो की माग की। लकिन जिम्मेदार मुस्लिम जनमत न इस माग का विरोध किया। 'मुस्लिम हैराल्ड' नामक पत्र न इस माग की निंदा करत हुए कहा कि यह माग 'गावा और जिलो

के सामाजिक जीवन म जहर घोल देगी और भारत को नरक बना देगी।' उस समय इस सिलसिले म कुछ और सुनने को नही मिला।

लेकिन अगरज सरकार का 1906 म जब भारत के पहले व्यापक राष्ट्रीय जन आदोलन का सामना करना पडा तो उसने एक ऐसी नीति का सूत्रपात किया जिससे सचमुच ही गावो और जिलो के सामाजिक जीवन म जहर फैल जाने वाला था और भारत नरक बन जाने वाला था।' मुसलमानो के एक शिष्टमडल ने वायसराय से भेट की और उनसे माग की कि भारत म चुनाव की यदि कोई प्रणाली जारी की जा रही हो तो उसम मुसलमानो क लिए ज्यादा सीटो का बदोबस्त रहे। वायसराय लाड मिटो ने फौरन ही इस माग को स्वीकार कर लिया

> *आपका यह दावा बहुत सही है कि आप लोगो का महत्व आपकी सख्या स न आका जाए बल्कि आपके समुदाय का राजनीतिक महत्व देखा जाए और इस ध्यान म रखा जाए कि आप लोगो न ब्रिटिश साम्राज्य की कितनी सेवाए की ह। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हू।* (1906 म मुसलमानो के शिष्टमडल के सामने लाड मिटो का भाषण, 'लाइफ आफ लाड मिटो', जान बुशन, 1925, पृष्ठ 244)

बाद म 1923 मे राष्ट्रीय अधिवेशन क अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए मुसलमानो के नेता *मोहम्मद अली ने कहा कि यह मुस्लिम शिष्टमडल सरकार के ही इशारे पर वायसराय* से मिलने गया था। यह पूरी योजना सरकारी अधिकारियो क दिमाग की उपज थी और इसका सकेत 1906 के अत म लाड मिटो के नाम लिखे गए एक पत्र म लाड मोर्ले न दे दिया था

> *मै आपको मुसलमानो के इस झगडे म फिर नही डालूगा। मैं आदर के साथ सिर्फ एक बार और आपको यह याद दिलाना चाहता हू कि आपने ही अपने एक भाषण मे विशेषाधिकारो की बात करके (मुसलमान) खरगोशो को दौडने के लिए बढावा दिया है।* (लाड मिटो के नाम लाड मोर्ले का पत्र, 6 दिसबर 1909, मोर्ले, रिफ्लेक्शस, खड 2, पृष्ठ 325)

इस प्रकार साप्रदायिक चुनावक्षेत्रो और साप्रदायिक प्रतिनिधित्व की ऐसी प्रणाली की शुरुआत हो गई जिसने हर जनवादी चुनाव प्रणाली की जड पर हमला किया। इसकी तुलना के लिए हम उत्तरी आयरलैड की स्थिति की कल्पना करनी होगी। यदि वहा कैथोलिको और प्राटेस्टेटो का अलग अलग मतदाताओ की सूची म डाल दिया जाए और उन्हे अलग अलग प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाए तो ससद मे जो सदस्य चुन कर आएगे वे अपने क्षेत्र की समूची जनता के प्रति दायित्व का अनुभव न करके कैथोलिक और प्राटेस्टेंट सदस्यो के प्रति ही अपने कर्तव्यो का निर्वाह करेगे। साप्रदायिक सगठन

और वैरभाव को बढ़ावा देने के लिए इससे भी अच्छा कोई तरीका हो सकता है इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। और सचमुच मुस्लिम लीग का पृथक संगठन का समय दिसंबर 1906 ही है।

बहुधा यह तर्क दिया जाता है कि हिंदुओं की भरमार से मुसलमानों को बचाने के लिए पृथक चुनाव प्रणाली और पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अनिवार्य थी। इस तर्क का खोखलापन उन्हीं दिनों स्थानीय सरकारी चुनावों में दिखाई पड़ गया। यह चुनाव संयुक्त चुनाव प्रणाली के पुराने आधार पर ही संपन्न हुए थे। इस प्रकार 1910 में संयुक्त प्रांत में दोनों संप्रदायों के संयुक्त मतदाताओं ने जिला बोर्डों के चुनावों में 189 मुसलमान तथा 445 हिंदू और नगरपालिकाओं के चुनावों में 310 मुसलमान और 762 हिंदू प्रतिनिधि भेजे जबकि कुल आबादी में मुसलमानों की संख्या केवल 1/7 थी।

इन दोनों संप्रदायों के बीच वैरभाव पैदा करने के पीछे जो मकसद था वह सबसे ज्यादा स्पष्टता के साथ केवल अलग चुनाव क्षेत्रों और अलग प्रतिनिधित्व की प्रणाली से ही नहीं बल्कि इस बात से भी व्यक्त हुआ कि मुसलमानों को विशेष रूप से ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया गया। भारयोजन के लिए एक भारी भरकम व्यवस्था तैयार कर दी गई। इस प्रकार मार्ले मिंटो सुधारों के अंतर्गत मतदान का अधिकार पाने के लिए मुसलमानों के लिए यह जरूरी था कि वह कम से कम तीन हजार रुपये सालाना की आमदनी पर आयकर दाता हो जबकि गैरमुसलमानों के लिए यह राशि कम से कम तीन लाख रुपये कर दी गई थी। इसके अलावा मतदान का अधिकार पाने के लिए मुसलमानों को तीन साल पुराना ग्रेजुएट होना चाहिए था जबकि गैरमुस्लिम लोगों के लिए तीस साल पुराना ग्रेजुएट होने की शर्त थी। कुल सीटों के मामले में भी मुसलमानों को इसी तरह की सुविधाएं दी गई थीं। यह तरीका अपनाकर सरकार विशेषाधिकार प्राप्त अल्पमत का समर्थन प्राप्त करने की आशा करती थी और यह प्रयत्न करती थी कि इससे बहुमत वाले लोग सरकार पर अपना गुस्सा उतारने की बजाय मुस्लिम अल्पमत पर ही अपना गुस्सा उतारते रहेंगे।

बाद के वर्षों में जो सांविधानिक योजनाएं बनीं उनमें यह व्यवस्था और व्यापक बनाई गई जिसकी चरम परिणति 1935 के संविधान में देखने को मिली। इस समय भी (1946) जो संविधान है उसमें यह व्यवस्था है कि नए संविधान की रचना के लिए प्रस्तावित संविधान सभा के चुनाव के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव का तरीका अपनाया जाए। 1935 के कानून में न केवल मुसलमानों के लिए बल्कि सिखों, ऐंग्लोइंडियनों और भारतीय ईसाइयों[3] के लिए तथा दलित वर्गों और यूरोपीयों, जमींदारों और उद्योगपतियों आदि के लिए भी अलग अलग चुनावक्षेत्रों की व्यवस्था कर दी गई। संघीय धारासभा में कुल 250 सीटों में से 82 सीटें अर्थात एक तिहाई स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित थे हालांकि मुसलमानों की आबादी देश की कुल आबादी की चौथाई से भी कम थी। दूसरी ओर आबादी के अधिकांश के लिए केवल 105 अर्थात 40 प्रतिशत 'आम सीटें'

रखी गई थी और इनमे से भी 19 सीटें अनुसूचित जातिया' (दलितवग) के लिए सुरक्षित थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने चुनाव के मामल म जो गोलमाल किया था उसका यही गुणगान है।[4]

चुनाव के सदभ म जो नीति बरती जा रही थी वसी ही नीति का समूचे प्रशासन प्रब ध म भी पालन किया जा रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक विरोध बहुत ज्यादा बढ गया। साम्प्रदायिक विरोधो को शापण और साम्राज्यवादी शासन की व्यवस्था की रक्षा के लिए बढावा दिया जाता था लेकिन उनके पीछे कुछ सामाजिक और आर्थिक प्रश्न भी थे। यह बात उस समय और भी ज्यादा स्पष्ट रूप म दखी जा सकती है जब मध्यवर्गीय साम्प्रदायिक तत्व सरकारी पद या नौकरी के लिए एक दूसरे से होड लगाए हात है। जहा साम्प्रदायिक कठिनाइया आम जनता तक पहुच गई है वहा भी यह बात इतनी ही स्पष्ट है। बगाल और पजाब म जो हिंदू वग रहता है उसम ज्यादातर धनी जमीदार, व्यापारी और महाजन भी शामिल है जबकि मुसलमान लोग बहुधा गरीब किसानो के रूप म है और स्थानीय महाजनो के कजदार ह। दूसरे मामला म हिंदू किसाना के बीच बडे जमीदारा के रूप म मुसलमान पाए जात है। बार बार जिसे 'साम्प्रदायिक झगडा' या साम्प्रदायिक विद्राह' कहा गया है उसके पीछे हिंदू जमीदारा के खिलाफ मुसलमान किसानो का सघष रहा है अथवा हिंदू महाजनो के खिलाफ मुसलमान कजदारा का सघष रहा है अथवा हडताल ताडने के लिए बाहर से बुलाए गए पठानो क खिलाफ हिंदू मजदूरो का कोई सघष रहा है। यह बात भी काफी महत्वपूण है कि जब कभी किसी औद्योगिक केंद्र मे मजदूरवर्ग आगे बढा है तो वहा साम्प्रदायिक दगे करा दिए गए है (जिसम कुछ अज्ञात लोगो का हाथ रहता है) और पुलिस का मजदूरा की भीड पर गोलिया चलाने का मौका मिल जाता है। इन घटनाआ की मिसाल 1929 मे बबई म हुई महान हडताल के अवसर पर या 1938 म कानपुर मे सफल हडताल के बाद 1939 की घटनाआ म देखी जा सकती है। प्रतिक्रियावादियो की तिकडम और उनके सामाजिक आर्थिक उद्देश्य बहुत स्पष्ट थे, वे चाहत थे कि मजदूरवग की एकता को छिन्न भिन्न कर दिया जाए।[5]

भारत की हिंदू मुसलमान जनता के दो अलग अलग लक्ष्य नही हो सकत और न है। मुसलमानो की गरीबी और गुलामी तथा हिंदुओ की [illegible] र गुलामी अलग अलग चीजे नही है बल्कि वे समूचे [illegible] ी गरीबी और [illegible] के हजारा लाखो गावो म हिंदुओ और [illegible] आबादी का [illegible] हिस्सा एक जसी जमीदारी प्रथा के बोझ [illegible] एक जसे सू[illegible] लूट का शिकार हा रहा है, एक जसे साम्र[illegible] का शिका[illegible] इन दोनो वर्गों के बीच फूट डालन की क[illegible] ी दस[illegible] रखने की, कोशिशे [illegible]

साम्प्रदायिक समस्या का अतिम समाधान सामाजिक एव आर्थिक प्रगति के रास्ते पर चलकर ही होगा। मजदूर सगठना और किसान सगठनो म हिंदू और मुसलमान दोना बिना किसी भेदभाव के शामिल हो रहे हैं (और पृथक निर्वाचन पद्धति की जरूरत महसूस किए बिना), वर्गीय एकता और एक जैसी सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताए साम्प्रदायिक तथा जातपात के भेदभाव की नकली सीमाओ को ताड डालती है। साम्प्रदायिक समस्या को अतिम तौर पर हल करने का रास्ता यही से शुरू होता है। आम जनता के हितो के आधार पर जब जनआदोलन आगे बढेगा और सामान्य जनवादी आदोलन की प्रगति होगी तभी साम्प्रदायिक वैरभाव भी अतिम और पूर्ण रूप स समाप्त किया जा सकेगा।

धर्म के आधार पर भारत की जनता को कृत्रिम रूप से दो राष्ट्रो' म बाटने की कोशिश वस्तुत एक प्रतिक्रियावादी और अव्यावहारिक कोशिश है तथा यह जनतात्रिक स्वतत्रता क हितो के विपरीत है। 1931 म राष्ट्रीय काग्रेस न अपने कराची के घोषणापत्र म राष्ट्रीय आदोलन के लिए जिस बुनियादी नीति की स्थापना की थी वह जाति, धर्म या लिंग के भेदभाव बिना सभी लोगो को समान जनवादी नागरिकता देने के बुनियादी सिद्धात पर आधारित थी। इसके साथ ही इसम सभी अल्पसख्यको को सास्कृतिक सरक्षण देने तथा अपनी आत्मा की आवाज बहिचक कहन की स्वतत्रता दने की भी व्यवस्था थी।

लेकिन इसके साथ ही समस्या का पूरी तरह जनवादी समाधान ढूढने के लिए अलग अलग क्षेत्रो अथवा जातियो के स्वायत्त शासन या आत्मनिर्णय के अधिकार के दावो के नए उभरते सवालो पर विचार करना भी जरूरी है। हाल के दिनों म यह सवाल अस्थाई तौर पर हिंदू मुस्लिम सवाल के साथ उलझ गए है। इधर के कुछ वर्षों म मुस्लिम लीग का बढकर एक जनसगठन का रूप ले लेना और पाकिस्तान नाम से एक अलग राज्य बनाने की माग करना, इस विश्लेषण की अभिव्यक्ति करता है। हाल के वर्षों म काग्रेस और मुस्लिम लीग क सबधो की समस्याए बडी तेजी के साथ राजनीतिक रगमच पर सामने आई है। इन प्रश्नो का जल्दी स जल्दी समाधान हो जाना चाहिए क्योकि जैसा हमने 1946 के कैबिनेट मिशन क समझौता म देखा है, काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मौजूद मतभेदो का साम्राज्यवादियो न अपनी नीति निर्धारित करने के लिए मुख्य उत्तोलक बना लिया है। इन प्रश्नो के समाधान के लिए इतना ही जरूरी नही है कि हिंदू मुस्लिम एकता का सामान्य लक्ष्य प्राप्त किया जाए और साम्प्रदायिक वैरभाव समाप्त किया जाए बल्कि इसके साथ ही हाल मे पैदा हुई विशेष नई राजनीतिक समस्याओ की जाच-पडताल करना और उनका समाधान ढूढना जरूरी है।

3 बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान

बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान तथा काग्रेस लीग एकता क ताजा सवालो पर आन मे पहले

रखी गई थी और इनमे से भी 19 सीटे 'अनुसूचित जातियो' (दलितवग) के लिए सुरक्षित थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने चुनाव के मामले मे जो गोलमाल किया था उसका यही गुणगान है।[4]

चुनाव के सदभ म जो नीति बरती जा रही थी वसी ही नीति का समूचे प्रशासन प्रवध म भी पालन किया जा रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि साप्रदायिक विरोध बहुत ज्यादा बढ गया। साप्रदायिक विरोधो को शापण और साम्राज्यवादी शासन की व्यवस्था की रक्षा के लिए बढावा दिया जाता था लेकिन उनके पीछे कुछ सामाजिक और आर्थिक प्रश्न भी थे। यह बात उस समय और भी ज्यादा स्पष्ट रूप म देखी जा सकती है जब मध्यवर्गीय साप्रदायिक तत्व सरकारी पद या नौकरी के लिए एक दूसरे से हाड लगाए होत है। जहा साम्प्रदायिक कठिनाइया आम जनता तक पहुच गई है वहा भी यह बात इतनी ही स्पष्ट है। बगाल और पजाब म जा हिंदू वग रहता है उसम ज्यादातर धनी जमीदार, व्यापारी और महाजन भी शामिल ह जबकि मुसलमान लोग बहुधा गरीब किसानो के रूप म है और स्थानीय महाजना के कजदार ह। दूसरे मामला म हिंदू किसाना के बीच बडे जमीदारो के रूप म मुसलमान पाए जात है। बार बार जिसे 'साप्रदायिक झगडा या साप्रदायिक विद्राह' कहा गया है उसके पीछ हिंदू जमीदारा के खिलाफ मुसलमान किसानो का सघप रहा है अथवा हिंदू महाजनो के खिलाफ मुसलमान कजदारा का सघप रहा है अथवा हडताल तोडन के लिए बाहर से बुलाए गए पठानो क खिलाफ हिंदू मजदूरो का कोई सघप रहा है। यह बात भी काफी महत्वपूण है कि जब कभी किसी औद्योगिक केंद्र म मजदूरवग आग बढ़ा है तो वहा साप्रदायिक दगे करा दिए गए हैं (जिसम कुछ अज्ञात लोगा का हाथ रहता है) और पुलिस का मजदूरा की भीड पर गोलिया चलाने का मौका मिल जाता है। इन घटनाओ की मिसाल 1929 म बबई म हुई महान हडताल के अवसर पर या 1938 म कानपुर म सफल हडताल क बाद 1939 की घटनाओ म देखी जा सकती है। प्रतिक्रियावादियो की तिकडम और उनक सामाजिक आर्थिक उद्देश्य बहुत स्पष्ट थ, वे चाहत थे कि मजदूरवग की एकता को छिन्न भिन्न कर दिया जाए।[5]

भारत की हिंदू मुसलमान जनता के दो अलग अलग लक्ष्य नही हो सकत और न हैं। मुसलमाना की गरीबी और गुलामी तथा हिंदुओ की गरीबी और गुलामी अलग अलग चीजें नही हैं बल्कि व समूचे भारत की गरीबी और गुलामी हैं। भारत के हजारा लाखा गावा म हिंदुओ और मुसलमाना की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा एक ओर जमीदारी प्रथा क बाझ क नीच पिस रहा है एक ओर सूदखार महाजनो की लूट का शिकार हो रहा है, एक ओर साम्राज्यवाद के दमन का शिकार हो रहा है और इन दोनो वर्गों के बीच फूट डालन की कोशिश वस्तुत शोषण की इस व्यवस्था को बरकरार रखने की कोशिश है।

साप्रदायिक समस्या का अतिम समाधान सामाजिक एव आर्थिक प्रगति क रास्त पर चलकर ही होगा। मजदूर सगठनो और किसान सगठना म हिंदू और मुसलमान दानो बिना किसी भेदभाव के शामिल हो रहे है (और पृथक निर्वाचन पद्धति की जरूरत महसूस किए बिना), वर्गीय एकता और एक जसी सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताए साप्रदायिक तथा जातपात के भेदभाव की नकली सीमाओ को तोड डालती ह। साप्रदायिक समस्या को अतिम तौर पर हल करने का रास्ता यही से शुरू होता है। आम जनता के हिता के आधार पर जब जनआदोलन आगे बढेगा और सामान्य जनवादी आदोलन की प्रगति हागी तभी साप्रदायिक वैरभाव भी अतिम और पूण रूप से समाप्त किया जा सकेगा।

धम के आधार पर भारत की जनता को कृत्रिम रूप से दो 'राष्ट्रा' म बाटने की कोशिश वस्तुत एक प्रतिक्रियावादी और अव्यावहारिक कोशिश है तथा यह जनतात्रिक स्वतत्रता के हितो क विपरीत है। 1931 मे राष्ट्रीय काग्रेस न अधिकारो के घोषणापत्र म राष्ट्रीय आदोलन के लिए जिस बुनियादी नीति की स्थापना की थी वह जाति धम या लिंग के भेदभाव बिना सभी लोगो का समान जनवादी नागरिकता दने के बुनियादी सिद्धात पर आधारित थी। इसके साथ ही इसम सभी अल्पसख्यका को सास्कृतिक सरक्षण देने तथा अपनी आत्मा की आवाज के हिचक कहने की स्वतत्रता दने की भी व्यवस्था थी।

लेकिन इसके साथ ही समस्या का पूरी तरह जनवादी समाधान ढूढने के लिए अलग अलग क्षेत्रो अथवा जातियो के स्वायत्त शासन या आत्मनिणय के अधिकार के दावा के नए उभरत सवाला पर विचार करना भी जरूरी है। हाल के दिनो म यह सवाल अस्थाई तौर पर हिंदू मुस्लिम सवाल के साथ उलझ गए है। इधर के कुछ वर्षो म मुस्लिम लीग का बढकर एक जनसगठन का रूप ले लेना और पाकिस्तान नाम स एक अलग राज्य बनाने की माग करना, इस विश्लेषण की अभिव्यक्ति करता है। हाल के वर्षो म काग्रेस और मुस्लिम लीग के सबधो की समस्याए बडी तेजी के साथ राजनीतिक रगमच पर सामने आई है। इन प्रश्ना का जल्दी से जल्दी समाधान हो जाना चाहिए क्याकि जैसा हमने 1946 के कैबिनेट मिशन के समझौता म देखा है काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मौजूद मतभेदो का साम्राज्यवादियो ा अपनी नीति निर्धारित करने के लिए मुख्य उत्तालक बना लिया है। इन प्रश्नो के समाधान के लिए इतना ही जरूरी नही है कि हिंदू मुस्लिम एकता का सामान्य लक्ष्य प्राप्त किया जाए और साप्रदायिक वैरभाव समाप्त किया जाए बल्कि इसके साथ ही हाल मे पैदा हुई विशेष नई राजनीतिक समस्याओ की जाच-पडताल करना और उनका समाधान ढूढना जरूरी है।

3 बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान

बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान तथा काग्रेस लीग एकता के ताजा सवालो पर आन से पहले

रखी गई थी और इनम से भी 19 सीटें अनुसूचित जातियों' (दलितवग) के लिए सुरक्षित थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने चुनाव के मामले म जो गोलमाल किया था उसका यही गुणगान है।[4]

चुनाव के सदभ म जो नीति बरती जा रही थी वसी ही नीति का समूचे प्रशासन प्रबंध म भी पालन किया जा रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक विरोध बहुत ज्यादा बढ गया। साम्प्रदायिक विरोधो को शोषण और साम्राज्यवादी शासन की व्यवस्था की रक्षा के लिए बढावा दिया जाता था लेकिन उनके पीछे कुछ सामाजिक और आर्थिक प्रश्न भी थे। यह बात उस समय और भी ज्यादा स्पष्ट रूप म देखी जा सकती है जब मध्यवर्गीय साम्प्रदायिक तत्व सरकारी पद या नौकरी के लिए एक दूसरे से होड लगाए होते है। जहा साम्प्रदायिक कठिनाइया आम जनता तक पहुच गई हैं वहा भी यह बात इतनी ही स्पष्ट है। बगाल और पजाब म जो हिंदू वग रहता है उसमे ज्यादातर धनी जमीदार, व्यापारी और महाजन भी शामिल हैं जबकि मुसलमान लोग बहुधा गरीब किसानो के रूप मे है और स्थानीय महाजनो के कजदार हैं। दूसरे मामलो म हिंदू किसानो के बीच बडे जमीदारो के रूप म मुसलमान पाए जाते हैं। बार बार जिसे 'साम्प्रदायिक झगडा' या साम्प्रदायिक विद्रोह' कहा गया है उसके पीछे हिंदू जमीदारो के खिलाफ मुसलमान किसानो का सघष रहा है अथवा हिंदू महाजनो के खिलाफ मुसलमान कजदारो का सघष रहा है अथवा हडताल तोडन के लिए बाहर से बुलाए गए पठानो के खिलाफ हिंदू मजदूरो का कोई सघष रहा है। यह बात भी काफी महत्वपूण है कि जब कभी किसी औद्योगिक केंद्र मे मजदूरवग आग बढा है तो वहा साम्प्रदायिक दगे करा दिए गए है (जिसम कुछ अज्ञात लोगो का हाथ रहता है) और पुलिस को मजदूरो की भीड पर गोलिया चलान का मौका मिल जाता है। इन घटनाओ की मिसाल 1929 म बबई म हुई महान हडताल के अवसर पर या 1938 म कानपुर म सफल हडताल के बाद 1939 की घटनाओ मे देखी जा सकती है। प्रतिक्रियावादियो की तिकडम और उनके सामाजिक आर्थिक उद्देश्य बहुत स्पष्ट थे, वे चाहते थे कि मजदूरवग की एकता को छिन्न भिन्न कर दिया जाए।[5]

भारत की हिंदू मुसलमान जनता के दो अलग अलग लक्ष्य नही हो सकते और न है। मुसलमानो की गरीबी और गुलामी तथा हिंदुओ की गरीबी और गुलामी अलग अलग चीजे नही है बल्कि वे समूचे भारत की गरीबी और गुलामी है। भारत के हजारो लाखो गावो म हिंदुओ और मुसलमानो की आबादी का एक बहुत बडा हिस्सा एक जसी जमीदारी प्रथा के बोझ के नीचे पिस रहा है, एक जैसे सूदखोर महाजनो की लूट का शिकार हो रहा है, एक जैसे साम्राज्यवाद के दमन का शिकार हो रहा है और इन दोनो वर्गों के बीच फूट डालन की कोशिश वस्तुत शोषण की इस व्यवस्था को बरकरार रखने की कोशिश है।

साप्रदायिक समस्या का अतिम समाधान सामाजिक एव आर्थिक प्रगति के रास्त पर चलकर ही होगा। मजदूर सगठना और किसान सगठनो म हिंदू और मुसलमान दोनो बिना किसी भेदभाव के शामिल हो रह है (और पृथक निर्वाचन पद्धति की जरूरत महसूस किए बिना), वर्गीय एकता और एक जैसी सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताए साप्रदायिक तथा जातपात के भेदभाव की नकली सीमाओ को तोड डालती है। साप्रदायिक समस्या को अतिम तौर पर हल करन का रास्ता यही से शुरू होता है। आम जनता के हिता के आधार पर जब जनआदोलन आगे बढेगा और सामान्य जनवादी आदोलन की प्रगति होगी तभी साप्रदायिक वैरभाव भी अतिम और पूण रूप से समाप्त किया जा सकेगा।

धम के आधार पर भारत की जनता को कृत्रिम रूप से दो राष्ट्रो' म बाटने की कोशिश वस्तुत एक प्रतिक्रियावादी और अव्यावहारिक कोशिश है तथा यह जनतात्रिक स्वतत्रता के हितो के विपरीत है। 1931 मे राष्ट्रीय काग्रेस न अधिकारो के घोषणापत्र म राष्ट्रीय आदोलन के लिए जिस बुनियादी नीति की स्थापना की थी वह जाति, धम या लिंग के भेदभाव बिना सभी लोगो को समान जनवादी नागरिकता दन के बुनियादी सिद्धात पर आधारित थी। इसके साथ ही इसम सभी अल्पसख्यका का सास्कृतिक सरक्षण देने तथा अपनी आत्मा की आवाज वेहिचक कहन की स्वतत्रता दन की भी व्यवस्था थी।

लेकिन इसके साथ ही समस्या का पूरी तरह जनवादी समाधान ढूढने के लिए अलग अलग क्षेत्रा अथवा जातिया के स्वायत्त शासन या आत्मनिणय के अधिकार के दावो के नए उभरते सवाला पर विचार करना भी जरूरी है। हाल क दिनो म यह सवाल अस्थाई तौर पर हिंदू मुस्लिम सवाल क साथ उलझ गए है। इधर के कुछ वर्षों म मुस्लिम लीग का बढकर एक जनसगठन का रूप ल लेना और पाकिस्तान नाम से एक अलग राज्य बनान की माग करना, इस विश्लेषण की अभिव्यक्ति करता है। हाल के वर्षों म काग्रेस और मुस्लिम लीग क सबधो की समस्याए बडी तेजी के साथ राजनीतिक रगमच पर सामने आई है। इन प्रश्नो का जल्दी से जल्दी समाधान हो जाना चाहिए क्योकि जैसा हमने 1946 के कैबिनेट मिशन के समझौता म देखा है काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मौजूद मतभेदो को साम्राज्यवादियो न अपनी नीति निर्धारित करने के लिए मुख्य उत्तोलक बना लिया है। इन प्रश्नो के समाधान के लिए इतना ही जरूरी नही है कि हिंदू मुस्लिम एकता का सामान्य लक्ष्य प्राप्त किया जाए और साप्रदायिक वैरभाव समाप्त किया जाए बल्कि इसके साथ ही हाल मे पदा हुई विशेष नई राजनीतिक समस्याओ की जाच-पडताल करना और उनका समाधान ढूढना जरूरी है।

3 बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान

बहुराष्ट्रवाद और पाकिस्तान तथा काग्रेस लीग एकता के ताजा सवालो पर आने से पहले

मुस्लिम लीग के विकास तथा काग्रेस लीग सबधो के इतिहास पर सक्षेप म विचार कर लेना आवश्यक है।

मुस्लिम लीग की स्थापना दिसबर 1906 मे हुई थी। जैसा शुरू मे राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना के मामले मे हुआ था मुस्लिम लीग की स्थापना म भी अगरेजो की सरकारी नीति की उल्लेखनीय भूमिका रही। ब्रिटेन के सरकारी क्षेत्रो ने यह आशा की कि साप्रदायिक आधार पर मतदाताओ का विभाजन करने के साथ साथ मुसलमानो का यदि अलग से राजनीतिक सगठन बना दिया जाए तो राष्ट्रीय आदोलन को छिन्न भिन्न किया जा सकता है और काग्रेस की बढती हुई शक्ति को कमजोर बनाया जा सकता है। उस समय एक अगरेज अफसर ने वायसराय लाड मिंटो को लिखा था

> महामहिम की सेवा म मुझे यह कहना है कि आज एक बहुत ही बडी घटना हो गई है। राजनीतिक निपुणता का आज एक ऐसा कमाल हो गया है जो आने वाले कई वर्षो तक भारत को और भारत की राजनीति का प्रभावित करगा। दरअस्ल, आज जो काम हुआ है उससे 6 करोड 20 लाख लोगो को (मुसलमानो को) देशद्रोही विपक्ष (काग्रेस) से मिलने से रोक दिया गया है। (लेडी मिंटो 'इडिया, मिंटो ऐड मार्ले', 1934, पृष्ठ 47)

लेडी मिंटो ने आगे लिखा है कि लदन की सरकार का भी काफी हद तक यही विचार था।

अपने शुरू के दिनो म मुस्लिम लीग एक ऐसा सकीर्ण साप्रदायिक सगठन था जो मुख्यतया उच्चवर्ग के मुसलमान जमीदारो को आकर्षित करता था। लकिन काग्रेस की ही तरह जल्दी ही मुस्लिम लीग मे भी साम्राज्यवादविरोधी राष्ट्रीय भावना अपना असर दिखाने लगी। 1913 के आत आते मुस्लिम लीग ने भारत के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के अदर स्वराज्य प्राप्त करने का अपना लक्ष्य घोषित कर दिया था और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने 'दूसरे सप्रदायो के साथ सहयोग' करने का एलान कर दिया था। काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते की बातचीत शुरू हो गई थी और 1916 तक काग्रेस और मुस्लिम लीग ने लखनऊ सधि पर हस्ताक्षर कर दिए। इस सधि म अलग अलग चुनाव क्षेत्रो की व्यवस्था को स्वीकार करने के साथ साथ यह भी घोषणा की गई थी कि दोनो सस्थाओ का समान लक्ष्य भारत को डोमीनियन का दर्जा दिलाना है और इसकी प्राप्ति के लिए दोनो सस्थाए प्रयास करेगी।

काग्रेस और मुस्लिम लीग का एक सयुक्त अधिवेशन लखनऊ मे हुआ। काग्रेस अधिवेशन म तिलक ने कहा

> उपस्थित सज्जनो, कुछ लोगों द्वारा यह कहा जाता है कि हम हिंदू लोग अपने मुसलमान भाइयों के सामने बहुत अधिक झुक गए हैं। मेरा विश्वास है कि मैं देशभर के हिंदुओं की ओर से यह कह सकता हूं कि यह कहना गलत है कि हम जरूरत से ज्यादा झुक गए हैं जब हमें किसी तीसरे पक्ष से लड़ना हो तो यह बहुत बड़ी बात है यह बहुत महत्त्वपूर्ण घटना है कि आज हम इस मंच पर एक साथ खड़े हुए हैं, हम नस्ल, धर्म तथा राजनीतिक विचारों के सभी भेदभाव भूलकर यहां इकट्ठे हुए हैं।

इसी प्रकार लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने, जिन्होंने उस समय कांग्रेस लीग एकता के लिए काफी सक्रियता दिखाई थी, लीग के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से कहा

> मैं पूरी जिंदगी कट्टर कांग्रेसी रहा हूं और सांप्रदायिक नारों से मुझे कभी लगाव नहीं रहा। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मुसलमानों पर कभी कभी अलगाव का जो आरोप लगाया जाता है वह बिल्कुल गलत है। खासतौर पर जब मैं यह देखता हूं कि यह महान सांप्रदायिक संगठन एक संयुक्त भारत के जन्म के लिए बड़ी तेजी के साथ एक बड़ी ताकत बनती जा रही है तो ये आरोप मुझे और भी गलत लगते हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जो तूफानी उभार आया उसमें हिंदू मुस्लिम एकता पहले से भी ज्यादा मजबूत हुई। गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस और जुझारू मुस्लिम नेताओं की खिलाफत समिति, जिसका नेतृत्व अली बंधुओं ने किया था, के बीच संयुक्त मोर्चा कायम हो गया। दोनों संस्थाओं ने संयुक्त रूप से सरकार के खिलाफ ऐसा मोर्चा कायम किया जो स्वराज्यप्राप्ति के लिए संघर्ष छेड़ सके। सड़कों पर हिंदू मुस्लिम एकता के जोश भरे नारे सुनाई देने लगे। 1919 की सरकारी रिपोर्ट को मजबूर होकर यह स्वीकार करना पड़ा कि 'हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अभूतपूर्व भाईचारा कायम हो गया है दोनों सम्प्रदायों के बीच मैत्री के असाधारण दृश्य दिखाई देने लगे हैं।'

राष्ट्रीय उभार के इस महान युग में मुस्लिम नेताओं और मुस्लिम जनता ने भी कांग्रेस के साथ साथ अपने जुझारूपन का परिचय दिया। अली बंधुओं और हुसैन मदानी जैसे मुस्लिम नेताओं ने सैनिकों को राजद्रोह करने की शिक्षा दी और इसके लिए उन्हें छह वर्ष कैद की सजा सुनाई गई। मालाबार के मोपला किसान अपने आप ही जमींदारों तथा साम्राज्यवादियों के दमन के खिलाफ उठ खड़े हुए, उन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ लड़ाई लड़ी और आश्चर्यजनक वीरता तथा संघर्ष और बलिदान की क्षमता का परिचय दिया।

खिलाफत कमेटी के नेताओं ने ही सबसे पहले यह मांग उठाई थी कि स्वराज की व्याख्या पूर्ण स्वाधीनता के रूप में की जाए। 1921 में अहमदाबाद में मौलाना हसरत मोहानी ने

यह माग उठाई थी। यहा यह बात उल्लेखनीय है कि गाधी ने इसका विरोध किया था और कहा था कि 'इस माग से मुझे बहुत अफसोस हुआ है क्योंकि इससे गैरजिम्मेदारी की भावना प्रकट होती है।' इसी प्रकार 1919 म मुस्लिम लीग ने अपने अमृतसर अधिवेशन म यह प्रस्ताव पास किया था कि भारत के मुसलमानो को फौज म भरती नही होना चाहिए।

जून 1922 म खिलाफत कमेटी और जमियत उल उलमा का एक सयुक्त अधिवेशन लखनऊ म हुआ जिसम यह प्रस्ताव पास किया गया कि 'भारत और मुसलमानो, दोनो के हित म यह है कि काग्रेस के घोषित लक्ष्य म स्वराज्य' शब्द के स्थान पर 'पूर्ण स्वाधीनता शब्द रख दिए जाए। दुर्भाग्यवश उन दिनो काग्रेस के नेताओ ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपने विरोध के पक्ष म यह तर्क दिया कि इससे काग्रेस के सविधान म बुनियादी परिवर्तन' हो जाएगा।

काग्रेस और खिलाफत कमेटी के बीच जो एकता कायम हुई थी वह बनी नही रह सकी। गाधी के नेतृत्व म काग्रेस द्वारा आदोलन को अचानक बीच म ही रोक दिए जाने से दोनो गुटो म फूट पड़ गई। फरवरी 1922 म जब गाधी ने असहयोग आदोलन बद किया तो खिलाफत कमेटी के सभी नेताओ ने इस तरह से सघर्ष को रोक देने का विरोध किया।

इसके बाद के वर्ष निराशा के वर्ष थे जिसने एक बार फिर काग्रेस और मुस्लिम लीग के अलगाव तथा हिंदू और मुसलमानो के बीच वैरभाव का रास्ता खोल दिया। साम्राज्य वादियो का यह अवसर अपने लिए काफी अनुकूल लगा और उन्होने इसका भरपूर फायदा उठाया। बाद के वर्षों म यह देखा गया कि जहा आजादी के लिए मिलजुलकर सघर्ष हो रहे थे वहा अब जबरदस्त साप्रदायिक दगे होने लगे हे। साप्रदायिक प्रतिक्रियावाद पूरी तरह हावी हो गया। 1925 म मुस्लिम लीग के विरोध म अखिल भारतीय पैमाने पर हिंदू महासभा का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष लाला लाजपतराय चुने गए। 1927 म काग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिलकर साइमन कमीशन का बहिष्कार किया लेकिन 1928 के सर्वदलीय सम्मेलन म समझौता कराने की सारी कोशिशें विफल हो गई।

इस प्रकार 1937 म जब प्रातीय विधानसभाओ के चुनाव हुए तो काग्रेस और मुस्लिम लीग एक दूसरे के विरोध म मैदान म आ डटे। ये चुनाव 1935 के नए विधान के अतर्गत पहली बार कुछ अधिक व्यापक मताधिकार के आधार पर हुए थे। इन चुनावो म आम सीटो मे से ज्यादातर और प्रातो की विधानसभाओ की कुल सीटो म से लगभग आधी सीटें (1585 सीटो म से 711 सीटें) काग्रेस को मिली लेकिन मुस्लिम सीटो म से उसे विशेष सफलता नही मिली। काग्रेस ने 482 मुस्लिम सीटो म से केवल 58 के लिए चुनाव लड़ा और उनम से महज 26 सीटो पर उसे सफलता मिली (इनम से 15 उसे सरहदी सूबे म और 11 सीटें देश के बाकी हिस्से म मिली)। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग को इस

कारण बहुत कम सफलता मिली क्योकि मुसलमानो के अलग अलग गुट बन गए थे और उनम गहरी फूट थी। मुस्लिम लीग को कुल मुस्लिम वोटो का केवल 4 6 प्रतिशत भाग ही मिल सका (चुनाव म मुसलमानो के कुल 7 319,445 वोट थे जिनम से मुस्लिम लीग को केवल 321,772 वोट मिले)।

1937 के चुनावो के बाद मुस्लिम नेताओ ने काग्रेस के नेताओ से अनौपचारिक तौर पर प्रातीय मत्रिमडलो के सबध मे तथा सीटो के निर्धारण के बारे मे समझौता करने की कोशिश की। लेकिन इस समय काग्रेस यह महसूस कर रही थी कि उसकी स्थिति काफी मजबूत है और इसलिए उसने मुस्लिम लीग के प्रस्ताव को ठुकरा दिया, राजनीतिक भूमिका निभाने के मुस्लिम लीग के हर दावे को ठुकरा दिया और खुद यह दावा किया कि काग्रेस ही समूचे देश की प्रतिनिधि सस्था है। जनवरी 1937 म नेहरू ने जिन्ना के नाम एक खत लिखा जिसमे उन्होने कहा

> अतिम विश्लेषण म भारत म आज केवल दो ही शक्तिया है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतिनिधित्व करने वाली सस्था काग्रेस मुस्लिम लीग मुसलमानो के एक गुट का प्रतिनिधित्व करती है जिसम नि सदेह काफी महत्वपूर्ण लोग है लेकिन मुस्लिम लीग का काम केवल उच्च मध्यवर्ग के लोगो तक ही सीमित है और उसका मुस्लिम जनता से कोई आम सपर्क नही है। मुसलमानो के निम्न मध्यवर्ग स तो उसका बहुत कम सपर्क है।

इसके बाद काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच बहुत जबरदस्त सघर्ष छिड गया। मुस्लिम लीग ने जिन्ना के कुशल नेतत्व म अपने सगठन को मजबूत बनाने का बीडा उठा लिया और इसने मुस्लिम जनता म अपनी गहरी पैठ बनानी शुरू कर दी। इसने इधर उधर फैले विभिन्न असतुष्ट मुस्लिम दलो और सगठनो को अपने म मिलाने की कोशिश की ताकि मुस्लिम लीग भारत म रहने वाले मुसलमानो की प्रमुख सस्था बन जाए। यह नीति सफल नही रही। 1937 से 1945 के बीच मुस्लिम लीग की स्थिति म और उसकी सापेक्षिक शक्ति मे निर्णायक परिवर्तन हो गया। मुसलमानो ने अधिक से अधिक सख्या म इस सस्था का समर्थन करना शुरू किया। 1927 म मुस्लिम लीग के सदस्यो की कुल सख्या 1330 थी जो लीग द्वारा प्रकाशित आकडो के अनुसार 1938 म लाखो तक पहुच गई और 1944 म तो लीग ने आधिकारिक तौर पर यह दावा किया कि उसके सदस्यो की सख्या 20 लाख हो गई है। 1946 के चुनावो से इस बदली हुई स्थिति का पता चला। केद्रीय और प्रातीय विधानसभाओ के चुनावो म कुल 533 मुस्लिम सीटो म से 460 पर मुस्लिम लीग को सफलता मिली। इसमे कोई सदेह नही कि इन वर्षों मे मुस्लिम लीग ने खुद को भारतीय मुसलमानो के सबसे बडे राजनीतिक सगठन के रूप म स्थापित कर लिया है।

वे कौन से कारण थे जिनसे इन वर्षों में मुस्लिम लीग का जनता पर इतना जबरदस्त प्रभाव बना ? इसके कई कारण ढूंढे जा सकते हैं। पहली बात तो यह है कि पिछले दशक की राजनीतिक गतिविधियों का असर यह हुआ था कि जनता के नए हिस्से, जो अभी तक पिछड़े हुए थे, राजनीति में खिंच आए थे और उनके अंदर राजनीतिक चेतना का प्राथमिक रूप में संचार हो गया था। इन्हीं वर्षों के दौरान कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों की ताकत में तेजी से वृद्धि हुई। 1935-36 से 1938 39 के बीच कांग्रेस के सदस्यों की संख्या में 9 गुनी वृद्धि हुई और वह 44 लाख तक पहुंच गई लेकिन इनमें मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी। जनवरी 1938 में नेहरू द्वारा जारी किए गए एक प्रेस वक्तव्य के अनुसार कांग्रेस के 31 लाख सदस्यों में से केवल एक लाख अर्थात 3 2 प्रतिशत सदस्य मुस्लिम सम्प्रदाय के हैं। मुसलमानों के जिस विशाल बहुमत में नई राजनीतिक चेतना का संचार हुआ था उसने राजनीतिक संगठन के रूप में मुस्लिम लीग में शामिल होना पसंद किया था।

दूसरी बात यह है कि खुद मुस्लिम लीग के अंदर नौजवानों और प्रगतिशील तत्वों का एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया था जो एक जनतांत्रिक कार्यक्रम को लेकर आगे बढ़ रहा था और जिसका विरोध संगठन के ऊपरी पदों पर बैठे पुराने प्रतिक्रियावादी नेता कर रहे थे। कुछ जिलों और प्रांतों, जैसे पंजाब और बंगाल, में ये नौजवान जनता के सामाजिक और आर्थिक मसलों के बारे में सक्रिय रूप से अभियान कर रहे थे और अपने इस अभियान के जरिए उन्हें गरीब मुसलमान वर्ग का समर्थन प्राप्त हो रहा था। इस नीति की सफलता 1946 में पंजाब के चुनाव में साबित हुई जहां मुस्लिम लीग के हमले के सामने वहां की पुरानी प्रमुख पार्टी यूनियनिस्ट पार्टी को जबरदस्त मात खानी पड़ी।

तीसरी बात यह है कि मुस्लिम लीग का जनता के बीच जो प्रभाव बढ़ा और कांग्रेस संगठन में जो बहुत कम मुसलमान आए उससे निस्संदेह रूप से कांग्रेस की कुछ राजनीतिक, संगठनात्मक और कार्यनीति संबंधी कमजोरियां भी सामने आईं। कांग्रेस का बुनियादी लक्ष्य यह रहा है कि हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को इस संगठन में शामिल किया जाए। लेकिन व्यवहार में देखें तो सदस्य संख्या के संदर्भ में यह लक्ष्य कभी प्राप्त नहीं किया गया। हमने पहले ही देखा है कि किस प्रकार 1922 में जब असहयोग आंदोलन अपने सर्वोच्च बिंदु पर पहुंच गया था तब उसे अचानक रोक देने से कांग्रेस और खिलाफत कमेटी के संयुक्त मोर्चे से कायम एकता पर जबरदस्त आघात पहुंचा था। प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बनने के काल में लीग द्वारा प्रस्तावित समझौते की योजना को कांग्रेस द्वारा ठुकराने से यह पता चलता है कि उस समय मुस्लिम लीग की शक्ति को कांग्रेस बहुत कम करके आंकती थी। बाद के वर्षों में यही बात मुस्लिम लीग के हाथ में एक जबरदस्त हथियार बन गई थी जिसके जरिए कांग्रेसविरोधी प्रचार आसानी से हो जाता था। युद्ध के दौरान और युद्ध शुरू होने से पहले की जटिल राजनीतिक स्थिति में कांग्रेस के नेताओं ने बहुत ज्यादा उलझनों, परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों और ढुलमुलपन का परिचय दिया (सुभाषचंद्र बोस

को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया और फिर कांग्रेस से ही उन्हें निकाल दिया गया। युद्ध के साम्राज्यवादी दौर में निष्क्रियता दिखाई गई। ऐसी नीति का पालन किया गया जिसमें कहा गया कि युद्ध के प्रयासों की न तो हम मदद करेंगे और न उसका विरोध करेंगे। व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया गया। जिस समय जापानी सैनिक आगे बढ़ते आ रहे थे तब दुर्भाग्यपूर्ण अगस्त प्रस्ताव पास किया गया जिसके बाद समूचा नेतृत्व गिरफ्तार कर लिया गया। कठिन गैरकानूनी परिस्थितियां पैदा हो गईं और छिटपुट उपद्रव की घटनाएं हुईं जिन्हें नेतृत्व ने उस समय अस्वीकार किया और बाद में उन्हें राष्ट्रीय संघर्ष का नाम देकर सराहा गया)। युद्ध के कारण देश को आर्थिक कठिनाइयों और अकाल का सामना करना पड़ा लेकिन कांग्रेस के नेताओं ने इन मुसीबतों से छुटकारा पाने के लिए जनता का नेतृत्व नहीं किया। इसके फलस्वरूप युद्ध के अंतिम चरण में राजनीतिक विघटन हुआ और जनता का मनोबल गिरा। इस प्रकार इस दौरे में संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन की अपील पर भी किसी ने ध्यान नहीं दिया।

मुस्लिम लीग के विकास के पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि कांग्रेस ने गंभीरता के साथ मुस्लिम जनता तक पहुंचने और उससे अपील करने की कभी कोई कोशिश नहीं की। इसका सबूत यह था कि सरहदी सूबे में जहां पर अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगारों ने जनता के बीच गंभीरता के साथ काम किया वहां की स्थिति अन्य स्थानों की तुलना में बिलकुल भिन्न थी और वहां के मुसलमान पूरी निष्ठा के साथ कांग्रेस में थे। यह भी सही है कि कांग्रेस का कार्यक्रम हालांकि असांप्रदायिक था और इस संगठन में अनेक प्रमुख देशभक्त मुसलमान शामिल थे फिर भी कांग्रेस के काफी प्रचार में तथा खासतौर पर दक्षिणपंथी नेताओं और गांधी के प्रचार में हिंदू धर्म की एक गंध बनी रहती थी जो मुसलमान जनता को कांग्रेस की ओर आकर्षित होने से रोक देती थी।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेताओं पर इसकी बहुत गंभीर जिम्मेदारी है। हमने पहले ही देखा है कि युद्ध के पूर्व भारत में राष्ट्रीय जागरण की जो पहली बड़ी लहर आई थी उसमें तिलक, अरविंद घोष तथा अन्य जुझारू नेताओं ने हिंदू धर्म को अपने प्रचार का आधार बनाया था और इस बात की कोशिश की थी कि राष्ट्रीय जागरण को हिंदू धर्म के पुनरुत्थान के साथ मिला दिया जाए। इसका नतीजा यह हुआ कि मुस्लिम जनता राष्ट्रीय आंदोलन की धारा में अलग पड़ गई और सरकार को इस बात का अवसर मिल गया कि वह 1906 में मुस्लिम लीग का गठन होने दे।

यह घातक गलती पुरातनकाल के राष्ट्रवादियों या तथाकथित 'उग्रपंथियों' तक ही सीमित नहीं रही। आधुनिक काल में भी यह गलती जारी रही और गांधी के समूचे आंदोलन तथा प्रचार में इस गलती की गंभीर छाप देखी जा सकती है। गांधी के समूचे प्रचार में एक तरफ तो हिंदूवाद और उनकी धार्मिक धारणाओं का उपदेश दिया गया है तथा दूसरी तरफ आम राजनीतिक उद्देश्यों की बात कही गई है। इस प्रकार गांधी ने राजनीति और

धर्म की धारणाओं को बुरी तरह उलझा दिया। 1920 22 में जब राष्ट्रीय असहयोग आंदोलन काफी जोर पर था और इस संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन के नेता के रूप में जनता के सामने गांधी थे और जब उनपर यह जिम्मेदारी थी कि वह जो भी कहें वह एक संयुक्त आंदोलन के नेता को शोभा देने योग्य हो, उस समय उन्होंने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की थी कि वह 'सनातनी हिंदू' हैं (यह एक तरह का उग्रवाद था)। उन्होंने खुलेआम यह कहा था

> मैं अपने को सनातनी हिंदू कहता हूं क्योंकि —
>
> 1 मैं वेदों, उपनिषदों पुराणों और समस्त हिंदू शास्त्रों में विश्वास करता हूं और इसीलिए अवतारों तथा पुनर्जन्म में भी मेरा विश्वास है।
> 2 मैं वर्णाश्रम धर्म में विश्वास करता हूं। इसे मैं उन अर्थों में मानता हूं जो पूरी तरह वेदसम्मत हैं लेकिन उसके वर्तमान प्रचलित और भौंडे रूप को मैं नहीं मानता।
> 3 मैं प्रचलित अर्थों से कहीं अधिक व्यापक अर्थ में गाय की रक्षा में विश्वास करता हूं।
> 4 मूर्तिपूजा में मेरा अविश्वास नहीं है।
> (यंग इंडिया में गांधी का लेख, 12 अक्तूबर 1921)

'सनातनी' शब्द का अर्थ साधारण जनता क्या समझती है यह जानने के लिए नेहरू के इस कथन को याद कर लेना पर्याप्त होगा

> सनातनी लोग जिस रफ्तार से पीछे की तरफ चल रहे हैं उससे हिंदू महासभा मात खा गई है। सनातनियों में धार्मिक कट्टरता के साथ साथ ब्रिटिश सरकार के प्रति बहुत तेज या कम से कम काफी जोरदार शब्दों में प्रकट की जाने वाली वफादारी भी होती है। (जवाहरलाल नेहरू आत्मकथा पृष्ठ 382)

यहां तक कि हिंदू मुस्लिम एकता के लिए अपील करते समय भी गांधी एक ऐसे राष्ट्रीय नेता के रूप में नहीं बोलते थे जो दोनों संप्रदायों में एकता की भावना पैदा करता हो। वह हमेशा एक हिंदू नेता के रूप में बोलते थे, हिंदुओं को वह 'हम लोग' और मुसलमानों को 'वे लोग' कहते थे।

> यदि हम मुसलमानों के दिलों को जीतना है तो हम आत्मशुद्धि के लिए तपस्या करनी होगी। (यंग इंडिया में गांधी का लेख, सितंबर 1924)

आधुनिक राष्ट्रीय संघर्ष के किसी भी दौर में गांधी कांग्रेस की राजनीति को छोड़कर हिंदू

धम का सुधार आदोलन शुरू कर सकत थे (जैसा उन्होने 1932 33 म सघष के सकट-पूण दौर म किया था) और सुधार आदोलन को छोडकर फिर काग्रेस की राजनीति मे आ सकते थे।

इस प्रकार राष्ट्रीय काग्रेस का प्रतिनिधि नता और जनता की निगाहा म इसका मुख्य प्रतिनिधि हमशा हिंदू धम तथा हिंदू पुनरुत्थान के एक सक्रिय नता के रूप मे लोगो के सामन आता रहा। फिर इसमे आश्चय क्या यदि ऐसी परिस्थिति म (और जहा इस सदभ म मुख्य अपराध गाधी का था वहा यह भी सच है कि काग्रेस के बहुत स छाटे नेता और खासकर व लोग जो गाधीवाद से प्रेरणा लेते थे, इन्ही तरीको का प्रयाग करत थे) और काग्रेस के ऐस नेताओ तथा एसे प्रचार के अस्तित्व म हाने के कारण केवल दुश्मन आलाचक ही नही बल्कि साधारण जनता का भी एक बडा हिस्सा काग्रेस को हिंदू आदालन' समझता था ? यदि इन सारी चीजा के बावजूद कुछ चुने हुए मुसलमान नेता हमेशा निष्ठापूवक काग्रेस के साथ चलत रह तो इसका श्रेय उनकी राष्ट्रभक्ति को है। लेकिन य तरीके ऐसे नही थे जिनसे आम मुसलमान जनता काग्रेस के साथ आ जाती।

ब्रिटिश सरकार न साप्रदायिक फूट स भरपूर फायदा उठाया और जनता के आदोलन के विरुद्ध निस्सदेह एक घृणित अस्त्र के रूप म इस फूट का इस्तमाल किया। लकिन ब्रिटिश सरकार के हाथा म यह अस्त्र तिलकवाद और गाधीवाद ने दिया था।

फिर भी, इन सबके अलावा एक और विशेष कारण है जिसस जनता पर मुस्लिम लीग का प्रभाव बढा खासतौर पर 1940 म पाकिस्तान का कायक्रम स्वीकार कर लेने के बाद। पाकिस्तान के कायक्रम के जरिए शुरू शुरू मे यह माग की गई थी कि मुसलमानबहुल पश्चिमी और उत्तर पूर्वी भारत के इलाको म अलग से प्रभुसत्तासप न राज्यो की स्थापना की जाए। पाकिस्तान का कायक्रम क्या था इसपर हम आगे विस्तार से विचार करेंगे। प्रभुसत्तासपन राज्या की जो माग थी वह आगे चलकर छ प्राता क एक अलग स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य की माग म तब्दील हो गई। इस कायक्रम की आलोचना के लिए बडे ठोस आधार हैं। लेकिन इधर हाल के वर्षा म जिस तरह यह कायक्रम राजनीतिक रगमच पर सामने आया और इन इलाको की मुसलमान जनता ने उसका जिस तरह समथन किया उससे स्पष्ट है कि यह कायक्रम एक हद तक जनता की उचित भावनाओ और आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति करता था भले ही उसका स्वरूप काफी उलझा हुआ क्यो न हो। पाकिस्तान की माग और जनता द्वारा इस माग को मिले जबरदस्त समथन के पीछे यह देखा जा सकता है कि भारत के राष्ट्रीय जीवन मे एक नया तत्व सक्रिय हो उठा था।

राष्ट्रीय आदोलन जैसे जसे जनता के बीच व्यापक रूप ले रहा था वसे वसे वह राष्ट्रीय चेतना क नए स्वरूपा का ऊपर ला रहा था और भारतीय जनता के विभिन्न राष्ट्रीय तत्व

इन स्वरूपो से अभिव्यक्ति पा रहे थे। जिन राष्ट्रीय समूहो म खासतौर पर उत्तर पश्चिमी तथा उत्तर पूर्वी भारत के राष्ट्रीय समूहो म जहा आबादी पर मुस्लिम धम का काफी प्रभाव था एक हद तक पाकिस्तान का नारा इस नई बढती हुई राष्ट्रीय चेतना को एक विकृत रूप म व्यक्त कर रहा था। राष्ट्रीय आदोलन के विकास के साथ साथ भारतीय जनता का बहुजातीय स्वरूप तेजी के साथ स्पष्ट होता जा रहा था और स्तालिन न 1912 म ही इस भावी स्थिति का अनुमान लगा लिया था 'सभवत भारत म भी यह देखा जाएगा कि असख्य जातिया जो अभी तक सोती रही हैं, बुर्जुआ विकास के आगे बढने पर जग उठेगी।'

साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वाधीनतासघष म भारतीय जनता की एकता और भविष्य के स्वतत्र भारत को आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से एकजुट बनाए रखन के प्रगतिशील लक्ष्य से यह नतीजा नही निकाल लना चाहिए कि भारत की जनता कोई एकरूप इकाई है। इसके बदले आवश्यकता इस बात की है और इसके बहुत स्पष्ट तथा ठोस आधार है कि हम भारतीय जनता के बहुजातीय स्वरूप को स्वीकार करे। वस्तुत काग्रेस ने इन जातीय समूहो को उसी समय आशिक रूप से मा यता दे दी थी जिस समय उसने अगरेजो द्वारा मनमाने ढग से बनाए गए प्राती की जगह पर सास्कृतिक और भाषायी प्राता को स्वीकार किया था और यह माना था कि भविष्य म स्वतत्र भारत के सविधान म इन प्रातो को पूरी पूरी स्वायत्तता प्रदान की जाएगी। लेकिन इस अवधि के दौरान काग्रेस ने इन समूहो के जातीय स्वरूप को नही माना और उनका आत्मनिणय का पूण अधिकार दन का विरोध किया। फिर भी भारतीय जनता के बहुजातीय स्वरूप के इस प्रश्न को और मुस्लिम लीग द्वारा की गई पाकिस्तान की माग को बिलकुल अलग अलग चीजो के रूप म देखना चाहिए और उनके भेद को समझना बहुत जरूरी है।

पाकिस्तान की माग को (हालाकि इसे अभी तक नाम नही दिया गया था) मुस्लिम लीग ने सबसे पहले 1940 म अपनाया था। इससे पहले चौथे दशक म कुछ लोगो ने जब यह माग की थी (1930 म उर्दू के शायर इकबाल ने और 1933 म कैम्ब्रिज म कुछ छात्रा ने यह माग उठाई थी) तो मुस्लिम लीग के राजनीतिक नेताओ ने इस माग को नामजूर कर दिया था। 1933 म सावैधानिक सुधारो की सयुक्त समिति के सामने बयान देते हुए उन्होने कहा था कि यह 'विद्यार्थियो का एक सपना तथा अव्यावहारिक' है। 1937 म भी मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन म सगठन का यह लक्ष्य स्वीकार किया गया था कि मुस्लिम लीग 'भारत म पूण स्वतत्र जनतात्रिक राज्यो के एक सघ के रूप म पूण स्वाधीनता की स्थापना के लिए काम करेगी।' लेकिन 1940 म मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन ने यह प्रस्ताव पास किया

> यह तय किया जाता है कि आल इडिया मुस्लिम लीग के इस अधिवेशन की राय म इस देश म कोई भी सावैधानिक योजना उस समय तक अमल म नही लाई जा

> सक्ती या ऐसी किसी योजना को मुसलमानो की स्वीकृति नही प्राप्त हा सक्ती जब तक कि वह इन बुनियादी सिद्धातो के अनुसार नही बनाई जाती, भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे क आसपास की इकाइयो को अलग करके और उनकी चौहद्दिया म आवश्यक परिवतन करके ऐसे प्रदेश बना दिए जाए ताकि जिन इलाका म सख्या की दृष्टि से मुसलमाना का बहुमत हो जैसे भारत क उत्तर पश्चिमी और उत्तर पूर्वी इलाके, उन मुस्लिम बहुमत के इलाको को मिलाकर ऐसे स्वतत्र राज्यो की स्थापना की जाए जिनम सम्मिलित इकाइया का स्वायत्त शासन का अधिकार हो तथा प्रभुसत्ता प्राप्त हो।

वाद म इस अस्पष्ट प्रस्ताव की जवग्दस्त व्याख्या की गई। 10 दिसवर 1945 को एक भेटवार्ता म जिन्ना ने लीग की माग की इन शब्दो म व्याख्या की

> भारत म गतिरोध, भारत और अगरेज के बीच मे उतना ज्यादा नही है। वह हिंदू काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच है। जब तक पाकिस्तान की स्थापना नही होती तब तक कोई समस्या न हल हो सकती ह और न होगी सविधान निर्माण के लिए एक नही बल्कि दो सस्थाआ का गठन करना होगा, एक सस्था हिंदुस्तान का सविधान बनाएगी और दूसरी सस्था पाकिस्तान के सविधान के बारे म फसला करेगी और उसकी रचना करेगी।
>
> भारत का मसला हम दस मिनट मे हल कर सकत ह बशर्ते मिस्टर गाधी कह दे कि मैं पाकिस्तान के निर्माण के लिए राजी हू, मैं इस बात के लिए राजी हू कि एक चौथाई भाग्त जिसम सिंध, बलूचिस्तान, पजाव, सरहदी सूबा, बगाल और असम शामिल है, अपनी मौजूदा सीमाओ के साथ पाकिस्तान नामक नए राज्य का निर्माण करें।
>
> यह भी सभव ह कि आवादी की अदला बदली करनी पडे लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि लोग स्वेच्छा स इसके लिए तैयार हो। सीमाओ म निस्सदेह कुछ फेरवदल करना पडेगा ये सारी चीजे सभव ह लेकिन पहले यह मानना जरूरी है कि इन प्रातो की वतमान सीमाए भावी पाकिस्तान की सीमाए होगी। पाकिस्तान की हमारी सरकार सभवत प्रातो की स्वायत्तता पर आधारित एक सघीय सरकार होगी
>
> जहा तक मेरी वात है मुझे अगरेज सरकार की ईमानदारी मे काई सदेह नही है लेकिन मुझे उन लोगो की ईमानदारी म पूरा शक है जो यह उम्मीद लगाए ह कि भारत के मुसलमाना का पूरा पाकिस्तान दिए बिना ही कोई समझौता हा सक्ता है।

अत म अप्रैल 1946 म मुस्लिम विधायकों के सम्मेलन मे निम्न शब्दो म पाकिस्तान की व्याख्या की गई

> उत्तर पूव म बगाल और असम का इलाका तथा उत्तर पश्चिम म पजाब, सरहदी सूबा, सिध और बलूचिस्तान के इलाके मुसलमानो क बहुमत स भरे हैं जिन्ह हम 'पाकिस्तान जोन' कह सकत हैं। इन्ह मिलाकर एक स्वतत्र प्रभुसत्तासपन्न राज्य बना दिया जाए।

पाकिस्तान का सिद्धात इस धारणा पर आधारित है कि हिंदू और मुसलमान दो अलग अलग जातिया' ह। सारे भारत म और भारत के हर इलाके म हिंदू और मुसलमान भले ही मिलजुलकर रहत हा, भल ही हिंदू और मुसलमान एक ही परिवार क सदस्य हा लेकिन इस सिद्धात के अनुसार व दो अलग अलग जातिया' क लाग है। स्पष्ट है कि धम को जातीयता का आधार बनाने का यह कोशिश (और धम स सबधित समान सस्कृति को भी आधार बनाने की कोशिश) जातीयता की प्रत्यक ऐतिहासिक तथा अतर्राष्ट्रीय व्याख्या एव अनुभव के विपरीत ह। यह ठीक वसे ही है जसे यूरोप म रहन वाले कथालिको को एक अलग जाति मान लिया जाए। और वशक यदि इस तक का और बढाए तो हम इस नतीजे पर पहुचेग कि केवल मुसलमान होन स यदि जातीयता की परिभाषा निधारित हाती है तो उत्तरी अफ्रीका से लकर भारत तक के सभी मुसलमाना की एक जाति है और पाकिस्तान के सिद्धात की अतिम पूर्णाहुति सब इस्लामवाद (पान इस्लामिज्म) में होगी।

मार्क्स ने जाति या राष्ट्र की व्याख्या किस प्रकार की है इसका साराश स्तालिन न अपनी पुस्तक मार्क्सवाद तथा जातीय और औपनिवेशिक प्रश्न' म प्रस्तुत किया है। जाति हम उस कहेंगे जिसका ऐतिहासिक विकास इस प्रकार हुआ हो कि उसम भाषा प्रदेश, आर्थिक जीवन तथा मनोवज्ञानिक गठन की एकता हो। इसम स्तालिन ने यह महत्वपूण बात और जोड दी थी कि *इस बात पर जोर देना जरूरी है कि ऊपर बताई गई विशिष्टताओ म से कोई भी विशिष्टता जाति की व्याख्या करने के लिए अकेले पर्याप्त नही है। बल्कि अगर* इन विशिष्टताओ म से एक भी अनुपस्थित है तो जाति जाति न रहगी।'

इस जाच-पडताल से यह जाहिर है कि भारत क मुसलमानो को एक 'जाति' नही माना जा सकता। उनकी भाषाए अलग है, उनके इलाके अलग है और उनकी सस्कृतिया अलग है। नस्ल की दृष्टि से उनम अनेक तरह की विभिन्नताए है। एक पठान और एक बगाली मुसलमान के बीच जो एकमात्र समानता है वह धम की या पुरानी सस्कृति के कुछ अवशेषा की है। लेकिन जाति कहलान के लिए इतना ही पर्याप्त नही है। पुरान रूसी साम्राज्य मे रहने वाल यहूदियो के अलग अलग इलाके थे और उनकी अलग अलग

भाषाए थी लेकिन स्तालिन ने उनको एक अलग जाति मानने से इकार किया और अपने पक्ष मे उन्होने यह दलील दी

> उनके जीवन मे यदि किसी तरह की समानता है तो वह यह है कि उनका धम एक है, उनकी जड एक हे और उनमे जातीय स्वरूप के कुछ अवशेष पाए जाते हे। इन सब बातो म कोई विवाद नही है। लेकिन क्या कोई गभीरतापूवक यह कह सकता है कि जिस सामाजिक, आर्थिक एव सास्कृतिक वातावरण मे ये यहूदी रहते ह उससे ज्यादा ये मृत धार्मिक रीतिया और नष्ट हो रहे मनोवैज्ञानिक अवशेष उनके भाग्य का निणय करेगे ?

यहा जो प्रश्न है वह केवल जाति की औपचारिक परिभाषा का प्रश्न नही है। यदि यह केवल शब्दावली देने का प्रश्न होता तो इसपर बहस करना बकार था लेकिन यदि जाति का आधार धम को एक बार मान लिया जाएगा तो उसके राजनीतिक परिणाम बहुत ही गभीर होग। चूकि ठोस वास्तविक्ता मे जाति केवल एक निश्चित इलाके म ही रह सकती है और चूकि यह सिद्धात धरती से नही उपजा है बल्कि इसे राजनीतिज्ञो न तैयार किया है इसलिए इस कल्पित 'जाति' के लिए एक इलाका नकली तौर पर तैयार कर लेने की भी जरूरत पदा हो जाती है। जसे ही हम पाकिस्तान के भौगोलिक स्वरूप की जाच करते है, इस सिद्धात की कमजोरी का पता चल जाता है।

जिन छ प्रातो को 'उनकी वतमान सीमाओ के साथ' मिलाकर पाकिस्तान के निर्माण की बात कही गई थी उनकी कुल आबादी 10 करोड 70 लाख है। इनमे से मुसलमानो की सख्या 5 कराड 90 लाख अर्थात 55 प्रतिशत और गैरमुसलमानो की सख्या 4 करोड 80 लाख अर्थात 45 प्रतिशत है। इस प्रकार इस इस्लामी राज्य की लगभग आधी आबादी गैरमुसलमाना की होगी और लगभग 3 करोड 50 लाख अर्थात भारत के कुल मुसलमानो का तकरीबन 40 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान के बाहर रह जाता है। इससे यह पता चलता है कि भारत की मिलीजुली हिंदू मुस्लिम आबादी की साप्रदायिक समस्या को जबरन इलाके बाटकर हल करने की कोइ कोशिश सफल नही हो सकती। पूर्वी पजाब मुख्यतया गैरमुस्लिम क्षेत्र है। सिक्खो ने एलान किया है कि यदि पजाब को किसी भी मुस्लिम राज्य म मिलाया गया तो वे उसका जबरदस्त विरोध करेंगे। कलकत्ता सहित पश्चिमी बगाल भी गैरमुस्लिम इलाका है। असम मे गैरमुस्लिम लोगो का बहुमत है और सरहदी सूबे म मुसलमान लाग काफी बडी सख्या मे है जहा काग्रेस का भी मजबूत गढ है।

इन इलाका के राजनीतिक अलगाव के लिए जा दावे किए जा रहे हे उनका औचित्य तभी ठहराया जा सकता है जब यह साबित कर दिया जाए कि इन इलाका म रहने वाले लोगो का निर्णायक बहुमत इस तरह के अलगाव को पसद कर रहा है। यहा बुनियादी मसला यह नही है कि गुलाम जनता स्वीकृत और मान्य राष्ट्रीय दावे की माग कर रही

है। यह दावा उस तरह का नही है जैसाकि भारतीय जनता ने ब्रिटिश शासन स अपन को मुक्त करने के लिए किया है। यहा जिस दावे पर विचार किया जा रहा है वह बहुत ही विवादास्पद है। पाकिस्तान बनाने की माग पिछले कुछ वर्षो म राजनीतिक सिद्धातकारा ने उठाई है और उसे अत्यत साम्प्रदायिक शत्रुतापूण स्थिति के बीच राजनीति म प्रवेश करा दिया है। इस दावे के विवादास्पद स्वरूप को देखते हुए और इन इलाका म आबादी के अत्यत विभाजित स्वरूप के कारण यह उचित होगा कि सबद्ध लोगो की आकाक्षाओ को भलीभाति जाचा जाए और इसके लिए जनमत सग्रह कराकर या जनतात्रिक सलाह-मशविरे के ऐसे ही किसी उपाय के जरिए उनकी आकाक्षाओ को सामित किया जाए। यह प्रस्ताव (मुस्लिम बहुमतवाले इलाको म जनमत सग्रह कराने का प्रस्ताव) सबसे पहले 1942 म सी० राजगोपालाचारी ने और 1944 म गाधा जिन्ना बातचीत म गाधी ने पश किया था। लेकिन इस प्रस्ताव का मुस्लिम लीग की ओर से जिन्ना ने नामजूर कर दिया। उन्हाने यह कहा कि पूरी तरह मुस्लिम बहुमतवाले जिलो को मिलाकर यदि पाकिस्तान की रचना की जाती है तो इससे एक नकली' 'विकृत और बजर पाकिस्तान' की रचना होगी। दूसरी बात उन्हाने यह कही कि समूची जनता के बीच जनमत सग्रह करान का अथ यह होगा कि मुसलमाना के रूप मे मुसलमानो के आत्मनिणय के अधिकार का उल्लघन किया जा रहा है। इसका अथ यह होगा कि इस तरह का कोई भी जनमत सग्रह मुसलमानो की 55 प्रतिशत आबादी के बीच ही सीमित रहेगा जिससे यह नतीजा निकलेगा कि आबादी का 28 प्रतिशत हिस्सा समूची जनता के लिए इस समस्या का समाधान कर देगा। जाहिर है कि कोई भी व्यक्ति, जिसका जनतात्रिक सिद्धातो म विश्वास है, इस तरह के प्रस्तावा का समथन नही करता। जनता की आकाक्षाओ की उपेक्षा करके और जनतात्रिक समाधाना का विरोध करके अल्टीमेटम के रूप म सरकारी तौर पर पाकिस्तान की स्थापना की माग जिस प्रकार आई है उससे यह व्यवहार म प्रति क्रियावादी जनतत्रविरोधी और विध्वसक माग हो गई है जो साम्राज्यवादियो के हाथ का खिलौना है। लेकिन इन तमाम बाता से हम इस सचाई की ओर से आख नही मूद लेनी चाहिए कि पाकिस्तान की माग के पीछे जातीयता का सच्चा सवाल भी छिपा हुआ था।

इस प्रश्न का अतिम समाधान जनतात्रिक सिद्धाता पर चलकर ही हो सकता है। आत्म निणय का जनतात्रिक सिद्धात यह मानता है कि जिस इलाके म स्पष्ट रूप स आत्मनिणय की जातीय माग उठ रही हो अथात जिस इलाके के अधिकाश लाग अपन विशिष्ट जातीय स्वरूप एव सस्कृति के आधार पर यह माग कर रह हा कि उनकी अलग राज-नीतिक सस्थाए हानी चाहिए यदि भौगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि म यह बात सभव हो ता उस इलाके के निवासियो को अपनी अलग राजनीतिक सस्थाए कायम करन का पूरा अधिकार है। यदि उनकी इच्छा के विरुद्ध उनपर कोई राजनीतिक सस्था थापी जाएगी ता यह किसी भी रूप म उचित नही हागा। भारत की बहुजातीय समस्या क समाधान का मतलब बारबार दुहराया गया है कि आत्मनिणय क इस जनतात्रिक सिद्धात

का निरतर इस्तेमाल किया जाए। इसी सिद्धात पर चलकर सभी जातिया के स्वेच्छा-पूवक सगठित होने के लिए सर्वाधिक अनुकूल स्थितिया पैदा हो सकती है। इस तरह का समाधान हाल के दिनो मे वहुजातीय सोवियत सघ म और चीनी जनता के जनतत्र म किया गया है।

इस सिद्धात को मान्यता देने का अथ यह होगा कि भारतीय जनता का प्रत्येक ऐसा वग जिसके रहने का एक मिलाजुला प्रदेश है, जिसकी एक समान ऐतिहासिक परपरा है, जिसकी एक समान भाषा, सस्कृति, मानसिक गठन और समान आर्थिक जीवन है, उसे इस वात का अधिकार होगा कि वह स्वतत्र भारत म एक स्पष्ट जाति के रूप म जीवन विताए और यदि चाहे तो स्वतत्र भारतीय सघ या राज्य सघ के अदर एक स्वायत्त शासित राज्य के रूप मे रहे (जिसे सघ से अलग होने का अधिकार भी होगा)।

इस प्रकार आगामी कल का स्वतत्र भारत पठान, पजावी सिंधी हिंदुस्तानी, राजस्थानी गुजराती, वगाली, असमी विहारी, उडिया, आध्र, तामिल, केरलवासी, मराठा आदि विभिन्न जातियो के स्वायत्तशासी राज्यो के सघ या फेडरेशन का रूप धारण कर सकता है। इस तरह जो नए राज्य वनेंगे उनमे अल्पसख्यक जातियो के जो लोग इधर उधर बिखरे रह जाएगे उनकी सस्कृति, भाषा तथा शिक्षा सवधी अधिकारो को कानून के जरिए सरक्षण मिलेगा, उनके साथ किसी तरह का भेदभाव नही वरता जाएगा और यदि कोई इसका उल्लघन करता है तो उसे दड दिया जाएगा। जाति, नस्ल या समुदाय पर आधारित हर तरह की अयोग्यताओ, विशेषाधिकारो और भेदभावो को कानून के जरिए समाप्त कर दिया जाएगा और इनका उल्लघन करने वालो को सजा दी जाएगी।

वस्तुत इस तरह के जनतात्रिक समाधान से उन जनतात्रिक सिद्धातो की पूर्ति ही होगी जिसकी 1931 मे काग्रेस ने अधिकारो के घोषणापत्र मे अभिव्यक्ति की थी और जिसे 1946 म काग्रेस ने अपने चुनाव कायक्रम मे दोहराया था

> काग्रेस भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए चाहे वह पुरुष हो या महिला, समान अधिकारो और अवसरो के पक्ष म है। काग्रेस ने हमेशा सभी समुदायो और धार्मिक सगठनो के बीच एकता के लिए तथा इनके बीच सहिष्णुता एव सदभाव कायम करने का समथन किया है। काग्रेस इस पक्ष मे है कि देश की समूची आवादी को अपनी इच्छानुसार और अपनी योग्यता के अनुरूप उन्नति करने और विकसित होने के पूण अवसर प्राप्त हो। वह इस पक्ष म भी है कि देश की सीमा के अदर जितने भी समूह है और जितने भी इलाके है उन्ह इस वात की आजादी हासिल हो कि वे व्यापक ढाचे के अदर अपनी सस्कृति और जीवन का विकास कर सके और इस उद्देश्य के लिए जहा तक सभव हो प्रादेशिक

> इलाकों या प्रांतों को भाषा और संस्कृति के आधार पर गठित किया जाए। कांग्रेस ने सदा इस बात का समर्थन किया है कि सामाजिक दमन और अन्याय के शिकार लोगों को उनके अधिकार मिलें और समानता के मार्ग में उन्हें जिन अवरोधों का सामना करना पड़ता है वे दूर किए जाएं।
>
> कांग्रेस ने एक स्वतंत्र जनतांत्रिक राज्य की स्थापना के लिए संघर्ष किया है। ऐसे राज्य में सभी नागरिकों को संविधान के तहत मौलिक अधिकार और स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। कांग्रेस का विचार है कि यहां का संविधान एक संघीय संविधान होना चाहिए जिसमें इसकी इकाइयों को स्वायत्तता प्राप्त हो तथा इसकी विधान संस्थाएं बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संस्था हों। भारत का राज्यसंघ ऐसा होना चाहिए जिसमें इसके विभिन्न भाग स्वेच्छापूर्वक एकजुट हो सकें। राज्यसंघ में शामिल होने वाली इकाइयों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता देने की दृष्टि से ऐसी संघीय जनता की समान और बुनियादी न्यूनतम सूची होनी चाहिए जो सभी इकाइयों पर लागू हो सके तथा इसके अलावा एक वैकल्पिक सूची होनी चाहिए जिन्हें यदि चाहें तो इस तरह की इकाइयां स्वीकार कर सकें।

लेकिन भविष्य के प्रगतिशील विकास के लिए जहां कांग्रेस ने भारत की एकता को बहुत महत्वपूर्ण बताया है और इसके लिए अपनी चिंता जाहिर की है वहीं उसने आज तक राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धांत को पूरी तरह लागू होने का विरोध किया है। सितंबर 1945 में कांग्रेस का पूना में अधिवेशन हुआ जिसमें कांग्रेस की स्थिति को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया गया

> कांग्रेस इस तरह के किसी भी प्रस्ताव पर सहमत नहीं हो सकती जो किसी संघटक राज्य या क्षेत्रीय इकाई को भारतीय संघ या राज्यसंघ से अलग होने की स्वतंत्रता प्रदान करके भारत का विघटन करना चाहता है। जैसा कांग्रेस कार्य समिति ने 1942 में घोषित किया था, कांग्रेस भारत की आजादी और एकता के लिए कृतसंकल्प है और आज के युग में जबकि लोगों का दिमाग अनिवार्य रूप से और बड़े राज्यसंघों के अर्थों में सोचने का आदी हो गया है, इस एकता में किसी भी तरह की फूट सभी संबद्ध लोगों के लिए हानिकार और दुखदायी होगी। फिर भी समिति यह घोषणा भी करती है कि कांग्रेस किसी क्षेत्रीय इकाई की जनता को उसकी घोषित इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में बने रहने पर उन्हें बाध्य करने की बात नहीं सोच सकती है।

हम देख सकते हैं कि इस प्रस्ताव के दो भागों में कुछ अंतर्विरोध है। प्रस्ताव में अलग होने के अधिकार को मान्यता देने से इंकार भी किया गया है और इस बात से भी इंकार किया

गया है कि सघ म बने रहने के लिए वह किसी इकाई पर दवाव डालेगी।

अलग होने के अधिकार के साथ साथ आत्मनिणय के अधिकार को मान्यता देने का यह अथ नही होता कि अलग हो जाना सही है। इसके विपरीत भारत के जनतात्रिक विकास के हित म यह अत्यत आवश्यक है कि भारत की एकता वनी रहे। भारत की एकता खासतौर से इसलिए भी जरूरी है ताकि उसके विभिन्न भाग परस्पर सहयोग के जरिए तेजी स प्रगति कर सके तथा समूचे भारत की उन्नति के लिए पर्याप्त आर्थिक योजना वनाई जा सके, उसके अनुसार पूरे दश का विकास किया जा सके और जनता का सामाजिक स्तर ऊपर उठाया जा सक। लेकिन यह एकता स्वेच्छा स ही हा सकती है।

यह नीति सवसे पहले भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने 1942 क एक प्रस्ताव मे पश की थी जिसम भारतीय जनता के वहुजातीय स्वरूप से पैदा होने वाली नई नई समस्याओ पर पहली वार गभीरतापूवक विचार किया गया था। अभी हाल ही म 1946 मे ब्रिटिश कैविनेट मिशन को जो ज्ञापन दिया गया था उसमे भी इन समस्याओ पर गभीरता से विचार किया गया था

> सविधान सभा के प्रश्न पर काग्रेस और मुस्लिम लीग के वीच जो जवरदस्त मतभेद है उसे आत्मनिणय के सिद्धात को ईमानदारी से लागू करके ही दूर किया जा सकता है।
>
> हमारा यह सुझाव है कि अस्थाई सरकार को यह जिम्मेदारी दी जानी चाहिए कि वह प्रत्यक जनता के प्राकृतिक प्राचीन निवास स्थान के आधार पर सीमाए पुर्नानिर्धारित करने के लिए एक सीमा आयोग का गठन करे ताकि फिर से सीमाक्ति प्रात जहा तक सभव हो सके भाषा और सस्कृति की दृष्टि स एकरूप राष्ट्रीय इकाई वन सके। उदाहरण के लिए सिंध, पठानलैंड, वलूचिस्तान, पश्चिमी पजाव आदि।[6] इस तरह की प्रत्येक इकाई की जनता के पास आत्मनिणय का अधिकार होना चाहिए। अर्थात उसे यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह स्वतत्र रूप से यह तय कर सक कि वह भारतीय सघ मे शामिल होना चाहता है या अलग प्रभुसत्तासपन्न राज्य का गठन करना चाहता है।
>
> इसलिए सविधान सभा का चुनाव इस मौलिक अधिकार को मान्यता दिए जाने पर आधारित होना चाहिए और चुनावो के दौरान अलग होने का या साथ रहने का प्रश्न राजनीतिक पार्टियो द्वारा जनता के सामने रखा जाना चाहिए। प्रत्यक जातीय इकाई स निवाचित प्रतिनिधियो को वहुमत के आधार पर यह निणय लेना होगा कि व एक भारतीय सघ की रचना के लिए अखिल भारतीय सविधान सभा म शामिल होना पसद करेंगे या इससे अलग रहगे और स्वय

> एक पृथक प्रभुसत्तासपन्न राज्य की स्थापना करेंगे या दूसरे भारतीय सघ म शामिल होगे।
>
> कम्युनिस्ट पार्टी इस पक्ष म है कि प्रभुसत्तासपन्न इकाइयो का एक स्वतत्र स्वैच्छिक जनवादी भारतीय सघ कायम हो। कम्युनिस्ट पार्टी इस बात से पूरी तरह सहमत है कि भारत की जनता यदि एक सघ मे और समान भाईचारे की नीयत से एक साथ रहे, मिलजुलकर स्वतत्रता की रक्षा करे और सबके सहयोग से गरीबी की समस्याओ का हल ढूढे तो यही उसके सर्वाधिक हित म होगा। जैसाकि ऊपर बताया गया है आत्मनिणय के सिद्धात को अमल म लाकर ही भारत की एकता बनाई रखी जा सकती है।

यदि इस दृष्टिकोण का पालन करे तो हम इन समस्याओ का सबसे ज्यादा उपयुक्त ढग से समाधान ढूढ सकते है।

पाद टिप्पणिया

1 बी० डी० बसु की पुस्तक कसालिडशन आफ दि क्रिश्चियन पावर इन इडिया' मे उद्धत पष्ठ 74

2 सर जान स्ट्रेशी ने अपनी पुस्तक के परवर्ती सस्करण म इस साधारण वक्तव्य को भी सशोधित करने का प्रयास किया लेकिन उसम उन्हे मामूली सफलता मिली। वक्तव्य के नए रूप म कहा गया था

यह पुराना सूत्र वाक्य 'फूट डालो और राज करो' भारत म हमारी सरकार की नीति और व्यवहार के जितना विरुद्ध है शायद ही कोई दूसरी चीज इतनी खिलाफ हो। हमारी युद्धकारी सभ्यता का यह अत्यावश्यक कर्तव्य रहा है कि सभी वर्गों के बीच शाति बनाए रखने को मान्यता दी जाए लेकिन इसकी वजह स हम इस तथ्य स आख नहा मूद लेनी चाहिए कि इन विरोधी तत्वा का एकसाथ अस्तित्व बना रहना ही भारत म हमारी राजनीतिक स्थिति का सबस मजबूत मुद्दा है। मुसलमानो के बेहतर वर्गों को हम अपन लिए कमजोरी का नही बल्कि शक्ति का स्रोत मानते हैं। वे सख्या की दृष्टि स अपेक्षाकृत थोडे हैं लेकिन उनम काफी उत्साह है उनके राजनीतिक हित हमारे ही हिता जसे हैं और वे किसी भी स्थिति म हिंदुओ के बजाय हमारे शासन को ज्यादा पसद करेंगे। (सर जान स्ट्रेशी इडिया 1894 पृष्ठ 241)

इन दो विवरणो, कारे सत्य' और कूटनीतिक भूल सुधार की यदि तुलना करें ता हमे साम्राज्यवादी तत्वा के विकास को समझने में काफी मदद मिलगी। यह तथ्य भी कम महत्वपूण नहा है कि अपने वक्तव्या को थाडा अधिक कूटनीतिक रूप देकर तथा आडबरपूण बनाकर मूल नीति को जस का तसा रहने दिया जाता है।

3 यह ध्यान देने की बात है कि भारतीय ईसाई नेताआ ने पृथक निर्वाचनमडल प्रणाली का जबरदस्त विरोध किया है। यह प्रणाली सरकार द्वारा अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए, न कि उनकी आकाक्षाआ को पूरा करने के लिए, उन पर थोपी गई है। इसीलिए 1938 म आल इडिया क्रिश्चियन कांग्रेस के अध्यक्ष न अपने भाषण में कहा

पृथक निर्वाचनमडल के प्रति हमारी सबसे बडी आपत्ति यह है कि इस प्रणाली के जरिए हमें अन्य समुदायाआ के साथ घनिष्ठ सपक कायम करन स रोका जाता है। अपने पुराने नताआ के

जिनमे से कुछ हम छोडकर जा चुके है बताए हुए रास्ते पर चलते हुए एक समुदाय के रूप मे हमने हमेशा विशेष निर्वाचनमडलो का विरोध किया है क्योकि ये हमारे ऊपर हमारी इच्छा के विरुद्ध लाद दिए गए हैं। साप्रदायिक आधार पर निर्वाचनमडलो की मौजूदा प्रणाली ने भारत को एक ऐसे मकान के रूप मे बदल दिया है जिसने अपने ही खिलाफ अपना बटवारा कर दिया हो। मेरे पूर्ववर्तियो ने बार बार बताया है कि पृथक निर्वाचनमडल की इस प्रणाली को स्वीकार करके हमारे समुदाय के लोगो ने कितना नुक्सान उठाया है। मेरी राय है कि हम सभी समुदायो के नेताओ के पास जाकर उनसे बार बार यह अनुरोध करना चाहिए कि वे उचित समय आते ही देश के साफ सुथरे नाम पर लगे इस धब्बे को मिटाने के लिए मिलजुलकर अपनी पूरी ताकत लगा दें। (आल इडिया क्रिश्चियन कान्फ्रेंस मद्रास के अध्यक्ष डाक्टर एच० सी० मुखर्जी का बयान दिसबर 1938)

4 यह दलील देना बिलकुल गलत है कि मुसलमानो के इस विशाल प्रतिनिधित्व के पीछे एक अल्पसख्यक जाति को सरक्षण देने की चिंता निहित है। 1935 के अधिनियम के अतर्गत बगाल विधानसभा की सीटो का जिस तरह बटवारा किया गया उससे इस दलील का खोखलापन पूरी तरह साबित हो जाता है। देश की मौजूदा सीमाओ के अतर्गत बगाल मे मुसलमानवर्ग बहुमत मे है। फिर भी इनको ही सबसे ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया गया। मुसलमानो की आबादी वहा 55 प्रतिशत है और उन्हें सदन मे 117 सीटें प्राप्त हैं जबकि हिंदुओ की आबादी 43 प्रतिशत है और जो सामान्य सीटें उनके लिए निर्धारित हैं उनकी सख्या 78 है। (इनमे से 30 सीटें अनुसूचित जातियो अर्थात दलितवर्ग के लोगो के लिए सुरक्षित हैं और सामान्य सीटो के नाम पर केवल 48 सीटें बच रहती हैं।) उन्ही द्वारा निर्धारित आधार पर किए गए बटवारे के अनुसार हिंदुओ को 78 और मुसलमानो को 99 सीटें मिलती। इसलिए यह कहना कि ज्यादा प्रतिनिधित्व अल्पसख्यको को सरक्षण देने के लिए किया गया है बिलकुल बकवास है।

यह उदाहरण उस ढोगपूर्ण तर्क की भी धज्जियां उडा देता है (जिसे विस्तार से साइमन कमीशन की रिपोर्ट मे और माटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट मे बताया गया है) जो साप्रदायिक निर्वाचनमडल का औचित्य ठहराने के लिए यह बताने की कोशिश करता है कि इसकी प्रेरणा 1916 मे लखनऊ मे काग्रेस मुस्लिम लीग सधि की सिफारिशो से मिली थी। लखनऊ सधि ने लार्ड मिंटो और लार्ड मोर्ले द्वारा शुरू किए गए निर्वाचन सबधी साप्रदायिक भेदभाव को अवश्यभावी मानकर स्वीकार कर लिया और यह उसने गभीर भूल की लेकिन किसी भी रूप मे उसने यह प्रस्ताव सामने रखा कि निर्वाचनमडल के बारे मे फैसला ऐसा होना चाहिए जो अल्पसख्यक वर्ग के अनुकूल हो ताकि जिन प्रातो मे मुसलमानवर्ग अल्पमत मे है वहा उन्हें थोडा अधिक प्रतिनिधित्व करने की गुजाइश हो और बगाल जैसे प्रातो मे जहा इसका बहुमत है इसे थोडा कम प्रतिनिधित्व दिया जाए। लेकिन साम्राज्यवादी अधिकारियो ने यह कहने मे कोई चूक नही की कि वे लखनऊ सधि से ही प्रेरणा लेकर यह विभाजन कर रहे हैं हालांकि उन्होने हर मामले मे चाहे मुसलमान अल्पमत मे हो या बहुमत मे उन्हे अधिक प्रतिनिधित्व का अवसर दिया और इस प्रकार यह बता दिया कि अल्पसख्यको के सरक्षण से उनका कोई वास्ता नही है वे विशुद्ध रूप से नस्लवादी सिद्धातो से प्रेरित हैं वे मन माने ढग से पक्षपात करके आबादी के एक हिस्से को दूसरे हिस्से के खिलाफ खडा करना चाहते हैं और जनता में फूट डालना चाहते हैं।

5 1931 मे दगा के बारे मे नियुक्त कानपुर रायटस इक्वायरी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मे बताया कि साप्रदायिक दगा के पीछे छिपे तौर पर सरकारी अधिकारियो का कितना हाथ था
हर वर्ग के गवाहो ने इस बात पर सहमति प्रकट की है कि दगे की विभिन्न वारदातो से निबटने मे पुलिस ने निष्क्रियता और उदासीनता दिखलाई। इन गवाहो मे अगरेज व्यापारी हर विचारधारा के हिंदू और मुसलमान सैनिक अधिकारी अपर इडिया चेंबर आफ कामर्स के सचिव इडियन क्रिश्चियन कम्युनिटी के प्रतिनिधि और भारतीय अधिकारी भी शामिल हैं।

गवाहों के बयानों में जितनी सच्चाई है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती हमारे दिमाग में अब यह बात बहुत स्पष्ट हो गई है कि दंगे के शुरू के तीन दिनों के दौरान पुलिस ने अपने कर्तव्य का परिचय नहीं दिया जबकि उससे ऐसी आशा नहीं की जाती थी अनेक गवाहों ने ऐसी घटनाओं के उदाहरण दिए हैं जिनमें पुलिस की आंखों के सामने गंभीर अपराध हो रहे थे और वह चुपचाप खड़ी थी हम कई गवाहों ने और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने भी अपनी गवाही में यह बताया कि पुलिस की निष्क्रियता और उदासीनता के बारे में उस समय शिकायतें दर्ज कराई गई लेकिन खेद की बात है कि इन शिकायतों पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया। (कानपुर रायटस रिपोर्ट 1931 पृष्ठ 39)

6 राष्ट्रीय इकाइयों के निम्नांकित नामों का यहां उल्लेख किया जा रहा है जो ऊपर दिए गए सुझाव के अनुसार भारतीय रियासतों के समाप्त होने पर अस्तित्व में आ जाएंगे। तमिलनाडु आंध्र प्रदेश, करल कर्नाटक, महाराष्ट्र गुजरात, राजस्थान सिंध, बलूचिस्तान पठानलंड, कश्मीर, पंजाब, हिंदुस्तान बिहार, असम, बंगाल और उड़ीसा।
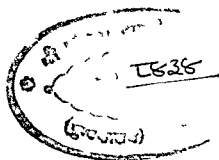
खण्ड पाच

साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय मुक्ति

14
साविधानिक रणक्षेत्र

> यह प्रस्तावित करना कि ग्रेट ब्रिटन का अपने उपनिवेशो पर से सभी अधिकार स्वच्छापूवक छोड देना चाहिए और उपनिवेशो पर ही यह काम छोड देना चाहिए कि वे अपना न्यायाधीश चुनें, अपने कानून अमल मे लाए और युद्ध का या शाति का, जो भी रास्ता उचित समझें अपनाए, एक ऐसा उपाय प्रस्तावित करना है जैसा दुनिया के किसी भी देश म न तो देखने मे आया है और न देखने म आएगा। कभी भी किसी देश ने स्वेच्छापूवक किसी उपनिवेश पर से अपना प्रभुत्व नही समाप्त किया है।---एडम स्मिथ वेल्थ आफ नेशस', 1776, खड 4, अध्याय 7।

एक ऐसे प्रकाशन म जिसकी दिलचस्पी वप बढने के साथ साथ बढती जाती है यानी 'रिफामस इयर बुक 1906' म 1905 के रूस के बारे म एक पृष्ठ सामग्री प्रकाशित है। उस महत्वपूण और घटनाओ स भर वप के बारे म जो 30 पक्तियो की सामग्री प्रकाशित ह उनम से 23 पक्तियो म तो केवल दूमा (ससद), उसकी स्थापना, उसका गठन, निवाचक आधार, उसके अधिकारो और सभावनाओ क बारे म ही लिखा गया है। फादर गयन का एक छोटा सा प्रसग है। शेप पक्तियो म हम बताया गया है कि राष्ट्रीय सकट और पुलिस की अत्यधिक बबरता के कारण इस वप मजदूर सगठनो का तेजी से विकास नही हो सका। रूस क प्रत्यक हिस्स म दगे और विद्रोह की घटनाए हुई। समकालीन प्रबुद्ध' पश्चिमी विद्वानो की दृष्टि म 1905 की रूसी क्राति का यही महत्व था।

इसी प्रकार ब्रिटिश विचारको द्वारा भारतीय समस्याओ के बारे म जो मोट मोट ग्रथ प्रकाशित हुए हैं उनम स 90 प्रतिशत ग्रथो की यही राय है कि 1914 18 के विश्व युद्ध क

बाद के 30 वर्षों में 'भारतीय समस्या' मुख्यतया ऐसे क्रमिक 'संविधानों' की समस्या रही है जो समय समय पर साम्राज्यवाद ने भारत की जनता को दिए। पृष्ठभूमि में, सांविधानिक समस्या का वातावरण दिखलाने के लिए इस बात की धुंधली सी झलक दी गई है कि 'उग्रवादियों' के प्रभाव में आकर जनता में 'बेचैनी' पैदा हो गई थी और इसकी अवांछित अभिव्यक्ति होने लगी थी। इसके साथ ही गांधी के रहस्यमय व्यक्तित्व का भी थोड़े बहुत जिक्र है। तेजी से तैयार हो रही भारतीय क्रांति की सभी गूढ़तम राजनीतिक और सामाजिक समस्याएं ऐसे सांविधानिक पांडित्य प्रदर्शनों के बंजर रेगिस्तान में दफना दी गई है जिनके अकथनीय उबाऊपन ने ब्रिटेन के राजनीतिक लोगों के अंदर नफरत पैदा कर दी है और बड़े प्रभावकारी ढंग से भारतीय मामलों में उनकी दिलचस्पी को समाप्त कर दिया है। समूची मानव जाति के आंदोलनरत इस पांचवें हिस्से की ज्वलंत सचाइयों को ऊपरी तौर पर विश्वसनीय लगने वाले 'नए संविधान' के धुंधले शीशे से देखा जा रहा है और इस 'नए संविधान' को ही केंद्रबिंदु माना जा रहा है।

लेस्साले ने एक बार कहा था कि किसी समाज का सही संविधान उस समाज का वास्तविक सत्ता संबंध है। भारतीय 'संविधान' के संदर्भ में यह बात जितनी स्पष्ट है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। साम्राज्यवाद ने भारत के लिए जो विभिन्न 'संविधान' या सांविधानिक योजनाएं पेश की हैं, वे भारतीय समस्या के न तो समाधान हैं और न समाधान के प्रयास। वे महज साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद के बीच संघर्ष, एक के बाद एक नई अवस्थाओं और संघर्ष स्थलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहां तक कि वे संघर्ष के मुख्य चरण भी नहीं हैं। यथार्थ तो संघर्ष है संविधान एक भ्रम है।

1 साम्राज्यवाद और स्वशासन

साम्राज्यवाद समर्थक सरकारी खेमों से कभी कभी यह बात कही जाती है कि भारत में ब्रिटिश शासन का वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को स्वशासन के लिए प्रशिक्षित करना है। भारत पर शासन करने वाले प्रारंभिक ब्रिटिश शासकों की यह धारणा नहीं थी। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की शक्ति ने जब तक स्वशासन के मसले को राजनीतिक मंच पर ठेलकर सामने नहीं ला दिया तब तक इस तरह के विकास की किसी भी संभावना को ब्रिटेन के शासकों ने बड़े अपमानजनक ढंग से नामंजूर किया। कंजरवेटिव नेताओं ने ही नहीं बल्कि ब्रिटिश प्रभुत्व के पुरातन काल से ही लिबरल नेताओं ने भी इसी दृष्टिकोण से अपनी सहमति प्रकट की। मैकाले ने 1833 में कहा था

> भारत में आपके पास प्रतिनिधि संस्थाएं नहीं हो सकती। जहां तक मेरी जानकारी है, भारतीय राजनीति के प्रश्न पर जिन असंख्य चिंतकों ने अपने सुझाव पेश किए उनमें से एक ने भी फिलहाल भारत में इस तरह की संस्थाओं की संभावना नहीं व्यक्त की चाहे वह विचारों में कितना भी जनतांत्रिक क्यों न रहा हो।
> (टी०बी० मैकाले का हाउस आफ कामंस में भाषण, 10 जुलाई 1833)

दार्शनिक उदारतावाद के सवमान्य पैगंबर और प्रतिनिधि सस्थाओ के घोर हिमायती जान स्टुअट मिल ने भी इस तरह की सस्थाओ को नकारने मे कम स्पष्टता का परिचय नही दिया। अपने उसी भाषण म मैकाले ने मिल के विचारो को उद्धृत किया

> उन्होंने (मिल ने) जोरदार शब्दो म, मैं समझता हू कि काफी जोरदार शब्दो मे, विशुद्ध जनतत्र के पक्ष म लिखा है—लकिन जब पिछले वष की समिति के सामने उनसे पूछा गया कि क्या व भारत मे प्रतिनिधि सरकार की स्थापना व्यावहारिक मानते है तो उनका साफ जवाब था कि इसका सवाल ही पैदा नही होता। (वही)

ग्लैडस्टोन और ब्राइट के बीच की बातचीत से भारतीय समस्या के सदभ म 19वी सदी के उदारतावाद के दिवालियेपन का पता चलता है

> आज शाम भारत के प्रश्न पर ब्राइट के साथ मेरी काफी लबी बातचीत हुई वह मानते है कि जनता को जनता द्वारा शासित करना अर्थात भारत को विशुद्ध ससदीय सरकार द्वारा शासित करना कितना कठिन काम है।
> (ग्लैडस्टोन का पत्र सर जेम्स ग्राहम के नाम, 23 अप्रैल 1858 'लाइफ ऐंड लेटस आफ सर जेम्स ग्राहम', खड 2, पृष्ठ 340)

लेकिन इस बात के कोई सकेत नही है कि 19वी सदी के उदारतावाद के इन नताओ म से किसी ने भी (ब्राइट ने भारत म कुप्रशासन के विरुद्ध आदोलन करके महत्वपूण काय किया) इस समाधान की सभावना नही व्यक्त की कि भारतीय जनता अपना शासन स्वय कर सकती है।

लाड क्रोमर ने प्रथम विश्वयुद्ध से पूव बडे साफ शब्दा म साम्राज्यवाद का पक्ष प्रस्तुत किया था

> आज जो हालात है उनम भारत मे स्वशासी सरकार की बात करना वैसे ही है जसे सयुक्त यूरोप मे स्वशासन के लिए दलील दी जाए ये बातें महज भोंडी ही नहीं है, ये महज अव्यावहारिक ही नही है। मै थोडा और आगे बढकर यह कहना चाहूगा कि इस तरह की बातो को तरजीह देना सभ्यता के विरुद्ध अपराध है और खासतौर से यह भारत के उन करोडो मूक लोगो के प्रति अपराध है जिनके हितो को देखना हमारी जिम्मेदारी है। (लाड क्रोमर, ऐंशेंट ऐंड माडन इपीरियलिज्म, 1910 पृष्ठ 123)

उसी अवधि म उदारवादी नेता लाड मोर्ले ने भी इस विषय पर अपनी बडी निश्चित राय

दी। लाड मोर्ले न मार्ले मिंटो सुधार के नाम से विख्यात सांविधानिक सुधारा को पेश करत हुए कहा था कि इन्हे किसी भी अथ म यह नही समझना चाहिए कि इनसे ससदीय सस्थाओ का माग प्रशस्त किया जा रहा है

> यदि ऐसा कहा जाना हो कि इन सुधारो से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप म भारत म ससदीय प्रणाली का रास्ता खुला तो कम से कम मुझे इन सुधारो से कोई सरोकार नही है। (हाउस आफ लाड्स म लाड मोर्ले का भाषण 17 दिसबर 1908)

भारत के सबध मे 1917 तक निरतर साम्राज्यवाद का यही दृष्टिकोण था। यदि 1917 के बाद साम्राज्यवादियो के कथन मे अचानक कोई परिवतन आया है और सभ्यता क विरुद्ध अपराध' को विधिवत रूप से घोषित लक्ष्य बना लिया गया ह तो जाहिर है कि साम्राज्यवादी नीति म या घोषित नीति मे जो अचानक रूपातरण हुआ उसका कारण कतई यह नही था कि साम्राज्यवादियो के मूल इरादो मे यह बात निहित थी बल्कि इसका कारण यह था कि बाह्य घटनाओ का जबरदस्त दबाव पडा था।

वास्तविक तब्दीली कहा तक हुई है ? या 1917 के बाद साम्राज्यवादी नीति या दृष्टि कोण मे ऊपरी तौर पर दिखाई पडने वाली तब्दीली किस सीमा तक परिस्थितियो के दबाव से अपनाई गई रणनीति है जिसका बुनियादी उद्देश्य और भी जबरदस्त तरीक स ब्रिटिश प्रभुत्व को बनाए रखना है न कि उस समाप्त करना ? आज इन बातो की जाच करना बहुत जरूरी है।

2 1917 से पूर्व की सुधारनीति

युद्ध शुरू होन तक साम्राज्यवाद का घोषित लक्ष्य यह था कि साम्राज्यवादी प्रशासनिक तत्र के घेरे म निरतर अधिक से अधिक भारतीयो को शामिल किया जाए। किसी भी साम्राज्यवादी व्यवस्था के सफल सचालन के लिए इस तरह की नीति अनिवाय है (भारत म सरकारी नौकरियो म लग लोगो की सख्या 15 लाख है और व्यावहारिक रूप से यह असभव है कि इन 15 लाख लोगो म अधिकाश अगरज हो)। इस लक्ष्य की निरतर घोषणा की जाती रही है और पिछले 1 सौ वर्षो से भी अधिक समय स इसका पालन किया जाता रहा है। बेशक इस बात की सतकता बरती जाती थी कि सामरिक महत्व की जगहो पर अगरेजो को ही रखा जाए। इस लक्ष्य स यह गलतफहमी नही पैदा होनी चाहिए कि यह स्वशासन स्थापित करन का लक्ष्य था। दरअस्ल दोनो एकदम विरोधी स्थितिया ह। 1917 तक स्वशासन की बात को लगातार नकारा जाता रहा है। इन दो लक्ष्यो क बीच उलझाव होन स बहुधा इस तरह की गलत तस्वीर सामन आई है कि उत्तर-दायित्वपूर्ण सरकार का लक्ष्य प्राप्त करन की दिशा म तथाकथित क्रमिक प्रगति हुई है।

1833 क घोषणापत्र म यह निर्धारित किया गया था कि कोई भी भारतीय मजहब धम,

जन्म स्थान, वश, रग या इस तरह के किसी भी आधार पर उक्त सरकार के अधीन कोई पद या नौकरी पाने के अयोग्य नही ठहराया जा सकता।' कोट आफ डायरेक्टस न इस धारा की अपनी ही व्यवस्था प्रस्तुत की 'कोट इस धारा का यह अथ समझती है कि ब्रिटिश भारत मे कोई अभिशासी जाति नही होगी कि योग्यता के लिए जो अन्य जाचे की जानी चाहिए उनमे उस सीमा तक जाति या धम के आधार पर भेदभाव नही करना चाहिए।'

1858 म महारानी ने जो घोषणा की और जिसे आमतौर पर नई नीति की शुरुआत समझा जाता है उसम भी वस्तुत उपर्युक्त कथन को ही विस्तार दिया गया था

> हमारी यह इच्छा है कि जहा तक सभव हो, हमारी प्रजा को जाति धम का भेदभाव वरते बिना स्वतत्र और निष्पक्ष रूप म हमारी सेवा मे लिया जाए उ ह उन कतव्यो का निर्वाह करने दिया जाए जिसके लिए शिक्षा, योग्यता और निष्ठा पर उनका चुनाव किया गया है।

शासक और शासित के बीच भेदभाव समाप्त करने और पूरी समानता बरतने की शपथ ली गई और वायदे किए गए पर इसमे कोई सदेह नही कि ऊपर से ये वायद जिन इरादो की अभिव्यक्ति करते थे उन्हे व्यापक अर्थों म पूरा करने की इच्छा नही थी। 1876-80 मे भारत के वायसराय लाड लिटन ने भारत के सदभ मे ब्रिटिश सरकार की नीति क बारे मे सेक्रेटरी आफ स्टेट लाड क्रेनब्रुक को जो 'गोपनीय' पत्र लिखा था उसमे कही गई बहुचर्चित बातो से लगा कि ब्रिटिश नीति 'उन वादो के सारतत्व को ध्वस्त करने की थी जो लोगो से किए गए थे'

> हम सभी जानते ह कि य वादे और आशाए न तो कभी पूरे हो सकते है और न पूरे होग। हमे दो म से एक रास्ता चुनना था, या तो उन्हे इन चीजो से वचित रखा जाए या उन्ह धोखे म रखा जाए और हमने वह रास्ता अख्तियार किया जो कम से कम स्पष्टवादी था यह बात मैं केवल आपको गोपनीय ढग से लिख रहा हू। मुझे यह कहने म कोई हिचकिचाहट नही है कि मुझे अभी तक ऐसा महसूस हो रहा है कि जनता से किए गए वादो के सारतत्व को ध्वस्त करने के लिए हर तरीके अपनाने की जो जिम्मेदारी दी गई थी उसे इग्लैंड और भारत की दोनो सरकारे सतोषजनक ढग से पूरा नही कर रही है।

लाड साल्सबरी ने भारत के सदभ म ब्रिटेन के वादो को राजनीतिक पाखड' का नाम दिया। (यह एक दिलचस्प अटकलबाजी होगी कि लाड साल्सबरी आधुनिक युग के बाल्डविन, लायड जाज, मैकडोनल्ड और चैंबरलेन जैसे लोगा को क्या कहते।)

बीते दिनो के (आज जबकि हम इसकी समानातर प्रक्रिया म एक कदम और आगे बढ

गए है उन दिनो से शिक्षा ली जा सकती है) इन भामक और भडकीले वादो तथा घोपणाओ का असली मक्सद यह था कि साम्राज्यवादी प्रशासनिक प्रणाली म वडी सावधानी के साथ भारतीयो को धीरे धीरे मातहत सेवाओ म लेन का काम वढाया जाए ताकि जनता को गुलाम बनाए रखन मे उच्च तथा मध्यवग के भारतीयों का समथन प्राप्त किया जा सके।

सरकारी सेवा म वडी सतकतापूवक भारतीया के लिए निर्धारित पदो (महत्वपूण पदा को अलग रखकर) की सख्या बढान के साथ साथ इस लक्ष्य को ध्यान म रखते हुए 1861 के बाद से एक के बाद एक सुधार सबधी उपाय किए। 1861 मे इडियन कौसिल ऐक्ट ने वायसराय की विधानपरिपद म छ नामजद गैरसरकारी सदस्या को शामिल करने की व्यवस्था की। इन नामजद सदस्यो म कुछ ऐसे भारतीय थ जिनका वडी सावधानी के साथ चयन किया गया था। ध्यान दने की वात है कि बाद के सभी सुधार उपायो की तरह ही इस बार भी सुधार' के साथ साथ एक नया दमनकारी कदम भी उठाया गया, वायसराय को यह अधिकार दिया गया कि वह किसी भी समय छ महीनो की अवधि तक के लिए अध्यादेश जारी कर सकता है यह ऐसा अधिकार था जिसका आज खुलकर इस्तेमाल हो रहा है।

1883-84 मे लोकल सेल्फ गवनमट ऐक्ट ने नागर प्रशासन म निर्वाचक सिद्धात की शुरुआत की और ग्रामीण परिपदो तथा जिला कौसिल की स्थापना की। 1892 म इडियन कौंसिल्स ऐक्ट न प्रातीय विधानपरिपदो म अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित कुछ सदस्यो को (दरअस्ल स्वीकृति के लिए प्रस्तुत न कि स्थानीय सरकार तथा अन्य सस्थाओ द्वारा विधिवत निर्वाचित) शामिल कर लिया और इन कौसिलो के जरिए फिर अप्रत्यक्ष रूप से चुनकर इन्हे वायसराय की विधानपरिपद म ले लिया गया। 1909 म मार्ले मिंटो सुधारो के नाम से विख्यात इडियन ऐक्ट ने प्रातीय विधानसभाओ म निर्वाचित बहुमत की (कुछ प्रत्यक्ष रूप से और कुछ अप्रत्यक्ष रूप से) और वायसराय की विधानपरिपद म निर्वाचित अल्पमत की (जमीदारो और मुसलमानो की सीटो का छोडकर शेप मामलो म अप्रत्यक्ष निर्वाचन) स्थापना की। इन परिपदो के कार्यों पर जबरदस्त प्रतिबध बने रहे। इनका प्रशासन या वित्त पर कोई नियत्रण नही था, इनके विधान की अस्वीकृति की हालत म वीटो किया जा सकता था, मताधिकार का दायरा बेहद सकीर्ण था और निर्वाचन सस्थाओ की वतमान बहुलता तो थी ही, साथ ही इसम पृथक मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रो को भी शामिल कर लिया गया।

मार्ले मिंटो सुधार इस तरह के पहले सुधार थ जिन्हे स्वाशासन की माग के समथन म हो रहे आदोलनो के बीच और इन आन्दोलनो के फलस्वरूप लागू किया जाना था। इन सुधारो का निश्चित उद्देश्य इन आदोलनो को परास्त करना तथा मार्ले के शब्दो म 'नरमदली नेताओ का माथ दना' था। इन सुधारो का पहली बार 1906 म सामने लाया गया।

इससे पहले 1905 में विदेशी माल के बहिष्कार तथा स्वदेशी के अपनाने का आंदोलन शुरू हुआ था, और 1905 की रूसी क्रांति हुई थी जिसने पूर्वी देशों के एक और बड़े तानाशाह जार को हिलाकर रख दिया था। इस परिस्थिति में इन मामूली सुधारों को धुआंधार प्रचार के बीच पेश किया गया और इस बात का ढिंढोरा पीटा गया कि इससे एक नए युग का सूत्रपात हो रहा है। इसके बाद तैयार की गई मांटेगु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में (जिसे खुद भी और बड़े पैमाने पर उसी प्रक्रिया को दोहराना था) अत्यंत नीरस शब्दों में कहा गया 'उस क्षण के उत्साह में उनके लिए बहुत अधिक दावे किए गए इन आशावादी आकांक्षाओं की अवधि बहुत थोड़ी थी।'

लार्ड मोर्ले ने स्वराज-आंदोलन को अपने सुधारों के जरिए विफल करने का जो जोड़-तोड़ बैठाया था उसे खुले तौर पर जाहिर कर दिया गया। उन्होंने निम्नलिखित विवरणात्मक शब्दों में स्थिति का विश्लेषण किया

> इस तरह की योजना पर काम करते समय हमें जिन लोगों पर विचार करना है उनके तीन वर्ग हैं। एक वर्ग तो उग्रपंथियों का है जो यह सपना देख रहे हैं कि वे एक दिन हमें भारत से खदेड़ देंगे दूसरा वर्ग इस तरह की कोई आशा नहीं पाल रहा है लेकिन यह आशा है कि उपनिवेशवादी तौर-तरीके पर आधारित स्वायत्त सरकार या स्वराज की स्थापना होगी। इन दोनों के बाद जो तीसरा वर्ग बचता है उसे इससे ज्यादा और कुछ नहीं चाहिए कि हमारे प्रशासन में उसका सहयोग लिया जाए।
>
> मेरा ख्याल है कि इन सुधारों का प्रभाव दूसरे वर्ग के लोगों को, जो औपनिवेशिक स्वायत्तता की आशा करते हैं तीसरे वर्ग के लोगों की ओर जो उचित और पूर्ण सहयोग से ही संतुष्ट रहेंगे, खींचना रहा है, और भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। (हाउस आफ लार्ड्स में वाइकाउंट मोर्ले का भाषण, 23 फरवरी 1909)

इस प्रकार सांविधानिक सुधारों के साथ साथ 'अपने प्रशासन में सहयोग' ही साम्राज्यवादियों का तयशुदा तरीका था जिसके जरिए वे स्वराज्य के राष्ट्रीय लक्ष्य को विफल बनाने की आशा करते थे।

सुधारों को 'स्वराज्य की दिशा में एक कदम' कहकर पेश करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। जैसा हमने देखा है, लार्ड मोर्ले ने यह बात एकदम साफ तौर पर कह दी थी कि इन सुधारों से यह नहीं समझना चाहिए कि वे 'भारत में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संसदीय व्यवस्था कायम करने' की दिशा में हैं। इसी प्रकार लार्ड मोर्ले ने लार्ड मिंटो के दावे को स्वीकार करते हुए और उसपर बल देते हुए लार्ड मिंटो को लिखा भेजा कि भारत में जिम्मेदार सरकार की स्थापना का न तो तब और न भविष्य में कोई प्रश्न पैदा होता है

महामहिम का अपनी सरकार के बारे म यह अस्वीकरण कि वह 'भारत के लिए उन्ही अर्थों म प्रतिनिधि सरकार की हिमायती है जिन अर्थों मे पश्चिमी देश इस शब्दावली को ग्रहण करते है' आशा के अनुरूप है। यूरोप म प्रतिनिधि सरकार प्रणाली की अत्यत जोरदार शब्दो म हिमायत करने वालो म से कुछ लोगो ने स्वय भारत के अनुभव से जो सबक लिया है उसे यदि महामहिम के ही शब्दो म कहूँ तो ऐसी सरकार 'विभिन्न नस्लो और जातियो से गठित भारतीय साम्राज्य की जनता के मनोभावो के सदृश कभी नही हो सकती' प्रतिनिधि सरकार के किसी भी यूरोपीय रूप को भारत म प्रतिरोपित करने के प्रयास की इच्छा को या ऐसे किसी इरादे को अस्वीकार करने के साथ ही परिषद म महामहिम ने यह इच्छा जाहिर की है कि वतमान शासनतत्र म सुधार किया जाए अथवा अपने देश की सरकार म हिस्सा लेने की भारतीय शिक्षित वग की सहज आकाक्षाओ को मान्यता देने के लिए 'किसी नए स्वरूप की तलाश की जाए'। कहने की आवश्यकता नही कि इस योजना मे आपको ब्रिटेन की शाही सरकार का हार्दिक सहयोग प्राप्त है।

चाहे कलकत्ता हो या व्हाइट हाल, जो लोग भारत सबधी नीति निर्देशन म हाथ बटा रहे है उनकी जाच का मुख्य मानदड यही होना चाहिए कि सर्वोच्च सत्ता की शक्ति और दृढता के आधार पर किसी भी समय जो भी नए प्रस्ताव तयार किए जा रहे है उनका क्या असर होता है। (लार्ड मिंटो के नाम लार्ड मोर्ले का पत्र। मांटेगु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, पृष्ठ 64)

इस स्थल तक साम्राज्यवाद की नीति बहुत ही स्पष्ट है और इस समझने म कोई भूल नही हो सकती। स्वराज्य की दिशा मे किसी तरह की प्रगति का सवाल ही पैदा नही होता। सर्वोच्च सत्ता के हित म बहुत निश्चित हैं। सांविधानिक सुधार का मकसद यही है कि साम्राज्यवाद के हितो को देखते हुए उच्चवग के अल्पमत का समथन प्राप्त किया जाए।

3 डोमीनियन का दरजा देने का प्रश्न

1914-18 का युद्ध हुआ जिसने साम्राज्यवाद की नीव को हिलाकर रख दिया। इस युद्ध ने सभी उपनिवेशो की तरह भारत की जनता को भी जगा दिया। भारत म हिंदुओ और मुसलमानो की एकता बढी और 1916 म काग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने मिलकर स्वराज्य की योजना बनाई। माच 1917 म रूसी क्राति हुई। इन घटनाओ ने सभी देशो म जन-आदोलनो को तज किया और विश्वभर म राष्ट्रीय आत्मनिणय का नारा गूज उठा।

20 अगस्त 1917 को ब्रिटिश सरकार ने अपनी नई नीति की घोषणा म इस स्थिति का मुकाबला किया। तब से ही इस नीति ने आधुनिक साम्राज्यवाद की सांविधानिक नीति

की कुंजी समझा जाने लगा। इस घोषणा के खास अंश इस प्रकार है

> महामहिम की सरकार की नीति, जिसके साथ भारत सरकार पूरी तरह सहमत है, यह है कि प्रशासन की सभी शाखाओं म भारतीयो की साझेदारी बढाई जाए और स्वशासी सस्थाओ का क्रमश विकास किया जाए। ये उपाय इसलिए किए जान चाहिए ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अग के रूप म भारत म एक जिम्मेदार सरकार की स्थापना का प्रगतिशील लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। उन्होंने फैसला किया है कि इस दिशा म जितनी जल्दी हो सके ठोस कदम उठाए जाए। इस नीति म प्रगति क्रमिक चरणों म ही की जा सकती है। भारतीय जनता की उन्नति और खुशहाली की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार पर है और इनकी जाच हर विकास के परिणाम और समय स की जानी चाहिए। उन्हे अपनी दिशा का निर्धारण उन लोगों से प्राप्त सहयोग के जरिए करना चाहिए जिन्हें सेवा के नए नए अवसर प्रदान किए जाएगे और इस तथ्य से करना चाहिए कि उनकी जिम्मेदारी की भावना म किस सीमा तक विश्वास किया जा सकता है।

यह घोषणा सक्रेटरी आफ स्टट ई० एस० माटेगु ने जारी की थी इसलिए इसे आमतौर से माटेगु घोषणा नाम से जाना जाता है। मोटे तौर पर इसका प्रारूप ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कट्टर महारथियों—कर्जन और आस्टिन चेबरलेन ने तैयार किया था। इस दस्तावेज मे लार्ड कर्जन ने 'जिम्मेदार सरकार' का जिक्र शामिल किया था (रोनाल्डशे 'लाइफ आफ कर्जन', खड 3, पृष्ठ 167)। स्मरणीय है कि 1905 म लार्ड कर्जन ने भारत छोडते समय अपने विदाभाषण म कहा था 'मैं हृदय स आशा करता हू कि आप भारत के वायसराय, भारत के राज्याध्यक्ष के पद पर इस शब्द के पूरे सही सही अर्थों मे सदा बने रहेंगे।'

यह घोषणा जारी करन म कितनी जल्दबाजी की गई इसका पता इस तथ्य से ही लग जाता है कि इसके जारी करने के बाद ही सरकारी जाच का एक लबा और व्यापक सिलसिला शुरू हुआ जिसमे यह पता लगाना था कि इस घोषणा का मकसद क्या है? अत म इस जाच क परिणामस्वरूप 1919 का भारत सरकार अधिनियम बना।

घोषणा का क्या अर्थ है यह एक विवाद का विषय बना हुआ है। क्या इसका इरादा स्वशासित डोमीनियनो के अर्थ म ही डोमीनियन का दरजा (घोषणा मे इस शब्दावली का इस्तमाल नही किया गया है) देना है? और यदि ऐसा है तो क्या इसम यह बात भी निहित है कि अमुक तिथि तक इस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जाएगा?

इस नीति को उन विभिन्न 'चरणों' से समझा जा सकता है जिनके लिए ब्रिटिश सत्ता के

अधिकारियों को हर विकास के परिणाम और समय से जांच करनी थी। पहला चरण पूरा होने में दो वर्ष का समय लगा। दूसरे चरण की तुलना में यह अवधि बहुत कम थी। माटेग्यु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में कहा गया था कि एक चरण से दूसरे चरण में पहुंचने के लिए हर 10 वर्ष बाद समीक्षा और संशोधन किया जाना चाहिए। फिर भी दूसरे चरण को पूरा होने में 16 वर्ष का समय लग गया और 7 वर्षों की भरपूर जांच के बाद 1935 का भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट आफ 1935) सामने आया। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की कि दस वर्षों का अंतराल बहुत कम समय है इसलिए यह अवधि बढ़ा दी जाए। 'नई प्रणाली' के प्रशासन का वास्तविक प्रभाव देखने के लिए दस वर्ष का समय पर्याप्त नहीं है' (साइमन रिपोर्ट, खंड 2, पृष्ठ 7)।

जून 1924 में यार्क में भारत के नाम अपील करते हुए प्रधानमंत्री मैकडोनल्ड ने अपने भाषण में भारत में नई साम्राज्यवादी नीति का चौकस कदम-ब-कदम प्रगति और विकासमूलक जांच के अभिप्राय को बड़ी कुशलतापूर्वक ग्रहण किया (यह नीति कम विकासमूलक और विनाशकारी साबित हुई जब उसने व्यावहारिक उपायों का सहारा लिया। मसलन उन्होंने बंगाल आपातकालीन अध्यादेश थोप दिए और बिना मुकदमा गिरफ्तारी की प्रणाली कायम की)

> आप ब्रिटिश जनतंत्र में अपना विश्वास बनाए रखें, लेबर सरकार में भी आप अपना विश्वास बनाए रखें। भारत सरकार और लेबर सरकार द्वारा एक जांच की जा रही थी। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय संविधान, उसकी कार्यप्रणाली और उसकी संभावनाओं का आधार तैयार करने के लिए इस जांच के जो परिणाम होंगे, उनसे भारतीयों को एक ऐसी व्यवस्था को जन्म देने में सहयोग मिलेगा जो स्वराज्य होगा।

इस कार्यक्रम और वचन की आशापूर्ण सुस्पष्टता ने भारत के प्रति साम्राज्यवादी नीति को उसी पुरातन शैली में मूर्त रूप दिया है जिसमें मैकडोनल्ड अद्भुत रूप से प्रवीण थे।

नई नीति को अमल में लाने के लिए अब तक दो वैधानिक उपाय शुरू किए गए हैं। पहला उपाय 1919 का भारत सरकार अधिनियम है जिसके जरिए द्वितंत्र (डाइआर्की) की स्थापना की गई। केंद्र सरकार के ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया गया लेकिन प्रांतीय सरकारों के मामले में स्वास्थ्य, शिक्षा तथा इसी तरह के रचनात्मक विषयों को, जिनके लिए धन नहीं था, उन भारतीय मंत्रियों के पास 'स्थानांतरित' कर दिया गया जो प्रांतीय विधान मंडलों के लिए जवाबदेह थे जबकि पुलिस तथा भूराजस्व जैसे सामरिक महत्व के मामले उन मंत्रियों के हाथों में 'सुरक्षित' रखे गए जो गवर्नर के प्रति जवाबदेह थे। प्रांतीय विधानमंडलों की स्थापना निर्वाचित सदस्यों के बहुमत से की गई। संपत्ति के आधार पर सीमित मताधिकार का गठन किया गया जो कुल आबादी (रमा

को छोड़कर) के 2 8 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करता था। प्रांतीय गवनरो को इस बात का अधिकार था कि विधानमडल द्वारा यदि कोई कानून स्वीकार नही बल्कि पारित कर दिया गया है तो चाहे तो व उसे वीटो कर सकते है या उसकी पुष्टि कर सकते है। केंद्र म दो सदनो की स्थापना की गई—एक कासिल आफ स्टेट और दूसरा लेजिस्लेटिव असेंबली। कौंसिल आफ स्टेट म लगभग आधे सदस्य नामजद होते थे और शेष आधे सदस्यो को उच्चवर्ग की एक बेहद मामूली तादाद म से (सपूर्ण देश के 18 000 स भी कम मतदाताओ मे से) चुना जाता था। लेजिस्लेटिव असेंबली म निर्वाचित सदस्यो का बहुमत होता था और इस निर्वाचन के लिए प्राता म हुए चुनाव से भी ज्यादा सीमित मताधिकार (कुल आबादी के 1 प्रतिशत के आधे से भी कम हिस्से को) को आधार बनाया जाता था। इन सब अधिकारो से बढकर गवनर जनरल के पास अधिकार थे वह चाहे तो कानून विशेष की पुष्टि करे या वीटो करे।

द्वितत्र की सभी न भत्सना की। भारतीय जनमत ने ही नही बल्कि सत्तारूढ साम्राज्यवादियो ने भी कुछ वर्षों के अनुभव के बाद इसकी निंदा की। यहा फिलहाल उन सीमाओ का विश्लेषण करने की जरूरत नही है जो बडी स्पष्ट दिखाई देती थी। भारतीय मामलो क मत्री ने 1925 म इसका इस प्रकार वणन किया यह एक तरह का पडिताऊ दकियानूस सविधान था जिसके प्रति ऐंग्लो सैक्शन समुदायो न आमतौर पर कोई प्रतिक्रिया नही व्यक्त की और इस बात की काई सभावना नही है कि एक ऐसे समुदाय स सफलतापूवक काई अपील की जा सके जिसके राजनीतिक विचार इतने बडे पैमाने पर ऐंग्लो सैक्शन प्रतिमानो स उद्भूत हो' (हाउस आफ लाड्स म लाड बर्कनहड का भाषण 7 जुलाई 1925)। भारतीय मत्रियो की 'जिम्मेदारी' एक ढोग था, यह सभी मानते थे। साइमन कमीशन की रिपोट न इस व्यवस्था के दावो का काफी भडाफोड किया जिसके जरिए व्यवहार मे भारतीय मत्री मोटे तौर पर सरकारी खेमे पर निभर करते थ' और 'सरकारी आदमी समझे जाते थे, 'सरकार के एकीकरण की अत्यत सम्मोहक भावना' ने जिम्मेदारियो को अलग अलग बाटने की कागजी योजनाओ को विफल कर दिया। बेशक उस निष्पक्ष न्याय से ज्यादा प्रभावशाली और कोई बात नही होगी जिसके जरिए साम्राज्यवादी सविधान निर्माण के हर अगले चरण ने अपने पूववर्तियो के आडबरो का पर्दाफाश किया। मोटेगु चेम्सफोर्ड रिपोट न मार्ले मिंटो सुधारो के हवाई वायदो क प्रति काफी निमम रुख अपनाया। मोटेगु चेम्सफोड रिपोट की असफलताओ और कमियो को बताने मे साइमन कमीशन रिपोट न भी कोई उदारता नही बरती। फिर भी, हर बार की ही तरह वतमान सविधान को आदश कहा गया और कहा गया कि इसकी भत्सना के पीछे भारतीयो की अदूरदर्शिता ही है।

1935 का भारत सरकार अधिनियम 1919 क बाद किए गए दूसरे सांविधानिक अधिनियमन का प्रतिनिधित्व करता है। चूकि यही सविधान 1937 से लागू है (हालाकि मुख्य सघीय अनुखड को युद्ध के बाद से अमल म नही लाया गया और अनिश्चित काल के

कई बयान सामने आए लेकिन ये सब बाध्यकारी अधिकारों से रहित थे। इन भाषणों में कोई भाषण कम महत्वपूर्ण था तो कोई ज्यादा, कोई कम निश्चित था तो कोई ज्यादा। 1928 में अपने पद से अवकाश पाने के बाद मैकडोनल्ड ने कहा था

> मैं आशा करता हूं कि कुछ वर्षों नहीं बल्कि कुछ महीनों के अंदर ही हमारे राष्ट्रमंडल में एक नया डोमीनियन शामिल हो जाएगा, एक दूसरी नस्ल के लोगों का डोमीनियन जिसे राष्ट्रमंडल के अंदर उतना ही आत्मसम्मान मिलेगा जितना अन्य देशों को प्राप्त है। मेरा आशय भारत से है। (जे० आर० मैकडोनल्ड, ब्रिटिश कामनवेल्थ लेबर कांफ्रेंस में भाषण, 2 जुलाई 1928)

लेकिन 'कुछ वर्षों नहीं बल्कि कुछ महीनों के अंदर' जो कुछ हुआ वह भारत में आतंक का साम्राज्य था और लगभग 100,000 भारतीयों की गिरफ्तारी थी जिसका संचालन मैकडोनल्ड ने ही किया और यह सारी कार्यवाही इसलिए की गई क्योंकि जनता स्वराज्य की मांग के समर्थन में आंदोलन कर रही थी।

1929 में वायसराय लार्ड इर्विन ने एक बयान जारी किया जिसका उद्देश्य गोलमेज सम्मेलन के लिए आधार तैयार करना था। उन्होंने कहा

> मुझे महामहिम की सरकार की ओर से यह कहने का अधिकार दिया गया है कि उनकी राय में 1917 की घोषणा में यह अंतर्निहित है कि भारत की सांविधानिक प्रगति का स्वाभाविक मुद्दा डोमीनियन का दरजा प्राप्त करना है। (लार्ड इर्विन का 31 अक्तूबर 1929 का बयान)

इस वक्तव्य पर ब्रिटिश संसद के सभी अंगरेज राजनेताओं ने जबरदस्त विरोध प्रकट किया और इसका औचित्य महज इस आधार पर ठहराया गया कि भारत में एक कठिन राजनयिक स्थिति में इसके 'बड़े अच्छे प्रभाव' हुए। लेकिन सेक्रेटरी आफ स्टेट ने उन सारी कोशिशों का जोरदार विरोध किया जो उनसे जिरह के लिए की जा रही थीं। उन्होंने कहा 'वायसराय की घोषणा का अर्थ वही है जो उसमें कहा गया है और मैं आदरणीय महानुभावों से कहना चाहूंगा कि वे मुझसे जिरह न करें वरना कठिनाइयां पैदा हो जाएंगी।'

'डोमीनियन का दरजा' का अर्थ क्या होता है? इसका भी जवाब तरह तरह का है। जैसाकि हमने देखा है, भारतीय मामलों के मंत्री ने दिसंबर 1929 में ही यह विचक्षण तर्क पेश किया था कि भारत को दस वर्ष पहले ही उसी समय से डोमीनियन का दरजा मिल गया है जबसे 'भारत' ने वर्साई संधि पर हस्ताक्षर किए और उसे राष्ट्रसंघ की सदस्यता मिली। एक तरफ तो इस तरह का अपना प्रिय तर्क पेश किया जाता था और दूसरी तरफ इसी के

साथ भारत की सावैधानिक प्रगति के भावी लक्ष्य के रूप म डोमीनियन दरजे का वादा
दिया जाता था जैसाकि वायसराय की घोषणा मे किया गया था। लेकिन यह कभी नही
बताया गया कि इन दोनो बातो म सगति क्या है ?

दूसरी ओर, इस दलील की हिमायत की जाती है कि अतत 'डोमीनियन का दरजा' शब्द
की परिभाषा देना असभव है (हालाकि ऐसा लगता है कि वेस्टमिंसटर के विधान ने इसकी
परिभाषा दे दी है)। इस प्रकार भारत सरकार विधेयक के आमुख म डोमीनियन स्टटस
लक्ष्य को शामिल करने की माग के सदभ म 'दि टाइम्स' समाचारपत्र ने 1935
मे लिखा

> किसी विशुद्ध सावैधानिक दस्तावेज मे 'डोमीनियन स्टेटस' की परिभाषा नही
> दी जा सकती 'डोमीनियन स्टेटस' का अलग अलग समय मे इतना अलग अलग
> अर्थ रहा है और यह आज इतनी तरह की सरकारो पर लागू है कि यदि इसे
> यहा तक कि ससदीय विधेयक के आमुख म भी ऐसी कोई परिभाषा देने की कोशिश
> की गई जिसपर सभी समान रूप से सहमत हो, तो निराशा ही हाथ लगगी।
> (दि टाइम्स का सपादकीय, 25 जनवरी 1935)

इस प्रकार चमक दमक से भरा यह लक्ष्य एक अनात और अबूझ क्षेत्र म लुप्त हो जाता
है। ये पक्तिया तब लिखी गई थी जब वेस्टमिंसटर की सविधि मे बडी स्पष्टता के साथ
'सावैधानिक दस्तावेज' और 'ससदीय विधेयक' के अर्थो मे डामीनियन स्टटस की
परिभाषा दी जा चुकी थी। लेकिन यह परिभाषा तो कनाडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिण
अफ्रीका के लिए थी, भारत के लिए नही।

इस अपरिभाषित और अपरिभाष्य डोमीनियन स्टटस का लक्ष्य कितनी दूर है ? यह कोई
नही जानता। इसके लिए कोइ समय निर्धारित नही है। लेकिन साम्राज्यवाद के प्रमुख
जिम्मेदार राजनेताओ न स्पष्ट तौर पर यह बताने म कोई चूक नही की कि यह लक्ष्य
काफी दूर है। भारतीय मामला के भूतपूव मत्री लाड बर्कनहेड ने 1929 म एलान
किया

> कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसी कोई अनुमानित अवधि नही निर्धारित कर सकता
> जिसम हम कह सकें कि भारत को डोमीनियन का दरजा मिल जाएगा। किसी
> को यह अधिकार नही है कि वह भारत की जनता को यह बताए कि निकट
> भविष्य म उन्ह डोमीनियन का दरजा हासिल हो जाएगा। (हाउस आफ लार्ड्स
> म लाड बर्कनहेड का भाषण, 5 नवबर 1929)

इसी प्रकार की धारणा बाल्डविन ने भी व्यक्त की

> कोई यह नही बता सकता कि उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना कब हो जाएगी, कोई यह नही बता सकता कि इसका रूप क्या होगा कोई यह नही जानता कि निकट भविष्य म या काफी समय बाद जब भारत म एक जिम्मेदार सरकार बन जाएगी तो डोमीनियन का दरजा क्या होगा। (हाउस आफ कामस म स्टेनले बाल्डविन का वक्तव्य, 7 नवबर 1929)

इस प्रकार अज्ञात लक्ष्य एक अज्ञात भविष्य की अभेद्य दूरी म गुम हो जाता है।

1939 म युद्ध छिडने के बाद डोमीनियन का दरजा प्राप्त करने के लक्ष्य का मसला एक बार फिर नवम आगे ला दिया गया क्योकि सरकारी प्रवक्ता ने एक बार फिर इसे स्वाधीनता की माग के विकल्प म पेश करना चाहा। 17 अक्तूबर 1939 को वायसराय लाड लिनलिथगो ने कहा

> जसाकि गवनर जनरल के नाम निर्देशों के प्रपत्र म कहा गया है महामहिम की सरकार का यह इरादा है और इसके लिए वह उत्सुक है कि साम्राज्य के दायरे क अदर ही भारत और ब्रिटेन के बीच साझेदारी बढाई जाए ताकि भारत को बडे डोमीनियनो के बीच उचित स्थान दिलाने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

लेकिन यह बताने की कृपा नही की गई कि वह 'उचित स्थान' क्या होगा। वायसराय की घोषणा के बाद जो ससदीय बहस हुई उसमे सर सैम्युअल होर ने सरकार की ओर से यह निश्चयपूर्वक कहा कि सरकार का लक्ष्य '1926 का डोमीनियन स्टेटस' दिलाना है

> जो लोग यह सोचते है कि डोमीनियन स्टेटस दो तरह का है वे गलत सोचते हैं। जिस डोमीनियन स्टेटस की हमने अपेक्षा की है वह 1926 का डोमीनियन स्टेटस है। (हाउस आफ कामस म सर सैम्युअल होर का वक्तव्य, 26 अक्तूबर 1939)

लेकिन इसके साथ ही उ होने इस पर रहस्य का एक नया आवरण डाल दिया

> डोमीनियन का दरजा कोई पुरस्कार नही है जो किसी योग्य समुदाय को दिया जाता है बल्कि यह उन तथ्यो को मा यता देता है जो वास्तव म मौजूद है। जसे ही ये तथ्य भारत म अस्तित्व म आएगे, और मेरे विचार से जितनी जल्दी ये अस्तित्व म आए उतना ही बेहतर है, हमारी नीति का लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा।

इस देववाणी सदृश उक्ति के पीछे जो बात थी वह वस्तुत रहस्यपूर्ण नही थी। सैम्युअल होर का एक और वक्तव्य आया जिसमे एक बार फिर हम वादो के अबार के बीच वही चिरपरिचित विदूषक चेहरा देखन को मिला

> सके ये समूचे ढाचे के इस्पाती चौखट है। (हाउस आफ कामस म लायड जाज का भाषण, 2 अगस्त 1922)

इसी प्रकार चर्चिल ने 1930 म एलान किया

> भारतीया के जीवन और उनकी प्रगति पर से अपना अचूक नियत्रण समाप्त करने का ब्रिटन का कोई इरादा नही है।
>
> हमारा यह कतई इरादा नही है कि हम ब्रिटिश सम्राट के ताज म से उस शानदार चमकील और बहुमूल्य रत्न का निकाल दें जो हमारे अय सभी डोमीनियनो और उपनिवेशो की तुलना म ब्रिटिश साम्राज्य को सर्वाधिक गौरव और शक्ति प्रदान करता है। (इडियन इपायर सोसायटी म 11 दिसबर 1930 को विंस्टन चर्चिल का भाषण)

1934 म प्रधानमत्री की हैसियत से बाल्डविन ने भी ऐसी ही भाषा इस्तमाल की थी

> आज की इस दुनिया के सयोगा और बदलावो के बीच मेरी यह निश्चित धारणा है कि समूचे भारतीय उपमहाद्वीप को ब्रिटिश साम्राज्य के अतगत हमेशा के लिए बनाए रखने के आपके पास अच्छे अवसर है। (नेशनल यूनियन आफ कजरवटिव ऐड यूनियनिस्ट एसोसिएशस की केंद्रीय कौसिल म स्टेनले बाल्डविन का भाषण, 4 दिसबर 1934)

इसी प्रकार 1931 म एक भाषण के दौरान उन्होने सांविधानिक सुधारो के मकसद की व्याख्या की

> भारत और ग्रेट ब्रिटेन को एकता के सूत्र म पिरोने वाले बधनो म किसी तरह की कमजोरी लाए बिना हम ऐसी घनिष्ठता कायम करना चाहते है जैसी पहले कभी नही थी। इस समय हम इसी घनिष्ठ एकता के काम मे लगे हुए है। (स्टेनले बाल्डविन का न्यूटन एवट मे भाषण 6 माच 1931)

इस सर्वेक्षण के नतीज अपरिहाय है। इन और इस तरह के समान वक्तव्यो के सचित प्रभावो का सर्वेक्षण असभव है जैसे कि भारत मे जिम्मेदार सरकार कायम होने की सभावना पर दढ अविश्वास और दुर्ग्राह्यता तथा भारत म अगरजी राज्य क बने रहने के बारे म आरोपित निश्चितता एव कठमुल्लेपन से परिपूण ऐसे और इस तरह के तमाम वक्तव्यो से सचित प्रभाव का सर्वेक्षण असभव है। इन सबने विभिन सांविधानिक कायक्रमो और योजनाओ के जरिए आधुनिक युग मे भारत म ब्रिटिश नीति के बारे म

यदि इसके मार्ग में कठिनाइयां है तो वे हमारी वजह से नहीं हैं। वे किसी ऐसे विशाल उपमहाद्वीप में जो विभिन्न जातियों और समुदायों में बंटा हो, सहज रूप से निहित हैं। यहां के राजा-महाराजा ब्रिटिश भारत का प्रभुत्व कायम होने की आशंका से डरे हैं, मुसलमान लोग इस बात के पक्के विरोधी हैं कि केंद्र में हिंदुओं का बहुमत स्थापित हो, दलितवर्ग के लोगों या अल्पमत जातियों के अन्य लोगों का यह सोचना ठीक ही है कि कोई जिम्मेदार सरकार जिसका अर्थ हिंदुओं के बहुमत पर टिकी सरकार है, उनके हितों की बलि चढ़ा देगी। ये चिंताएं आज भी बनी हुई हैं। काश! ये चिंताएं न होतीं। लेकिन जब तक इनका अस्तित्व है सरकार के लिए यह असंभव है कि वह किसी निश्चित तिथि पर केंद्र को तत्काल और पूरी जिम्मेदारी देने की मांग स्वीकार करे।

इस प्रकार एक बार फिर वे हथकंडे अपनाए गए जिनसे हम अच्छी तरह परिचित हैं। एक तरफ तो बिना किसी ठोस प्रस्ताव या निश्चित तिथि के डोमीनियन का दरजा देने का वादा किया गया और दूसरी तरफ भारतीय जनता की 'फूट' का बहाना लेकर इसकी प्राप्ति के हर प्रयास को विफल किया गया। डोमीनियन स्टेटस के वादे का इस्तेमाल गंभीर स्थितियों का सामना करने तथा आजादी की मांग का प्रतिकार करने के लिए एक कूटनीतिक चाल के रूप में किया गया लेकिन इस वादे को ऐसी शर्तों से घेर दिया गया है जो बड़े आराम के साथ इसकी उपलब्धि को एक अज्ञात तिथि के लिए गुमनाम मसला बनाकर रख देगी।

लेकिन असीम अनिश्चितता के इन चालपूर्ण कुहासों के विपरीत जब यह वायदा 1917 के संकल्प को पूरा करने का या भारत में 'जिम्मेदार सरकार' की स्थापना की संभावना का मसला बन जाता है तो समूचा दृश्य ही बदल जाता है और जब यह तय लगता है कि निकट भविष्य में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का जबरदस्त प्रभुत्व बना रहेगा तो इस अनिश्चय के कुहासे का स्थान निश्चय की ठोस चट्टान ले लेती है। यहां हम ठोस आधार पर होते हैं, यहां पर स्वर गुंजायमान और आत्मविश्वासपूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार लायड जार्ज ने 1922 में प्रधानमंत्री की हैसियत से अपने मशहूर इस्पाती (स्टील फ्रेम) भाषण में एलान किया

ब्रिटेन किसी भी हालत में भारत के प्रति अपनी जिम्मेदारी नहीं छोड़ेगा—यह मूलभूत सिद्धांत मौजूदा सरकार का ही नहीं बल्कि इसकी कोई भी ऐसी सरकार पालन करेगी जिसको इस देश की जनता का पूरा पूरा विश्वास प्राप्त है

मैं किसी ऐसी अवधि का अनुमान नहीं लगा सकता जब भारत ब्रिटिश सिविल सर्विस के इस ढांचे के केंद्रबिंदु से मिलने वाले दिशा निर्देश और सहयोग का छोड़

सके य समूचे ढाचे के इस्पाती चौखट है। (हाउस आफ कामस म लायड जाज का भाषण, 2 अगस्त 1922)

इसी प्रकार चर्चिल ने 1930 म एलान किया

भारतीयो के जीवन और उनकी प्रगति पर से अपना अचूक नियत्रण समाप्त करन का ब्रिटन का कोई इरादा नही है।

हमारा यह कतई इरादा नही है कि हम ब्रिटिश सम्राट के ताज म से उस शानदार चमकीले और बहुमूल्य रत्न का निकाल दें जो हमारे अन्य सभी डोमीनियनो और उपनिवेशो की तुलना म ब्रिटिश साम्राज्य को सर्वाधिक गौरव और शक्ति प्रदान करता है। (इडियन इपायर सोसायटी म 11 दिसबर 1930 को विंस्टन चर्चिल का भाषण)

1934 म प्रधानमत्री की हैसियत से वाल्डविन ने भी ऐसी ही भाषा इस्तेमाल की थी

आज की इस दुनिया के सयोगो और बदलावो के बीच मेरी यह निश्चित धारणा है कि समूचे भारतीय उपमहाद्वीप को ब्रिटिश साम्राज्य के अतगत हमेशा के लिए बनाए रखने के आपके पास अच्छे अवसर है। (नेशनल यूनियन आफ कजरवेटिव ऍड यूनियनिस्ट एसोसिएशस की केंद्रीय कौसिल मे स्टेनले वाल्डविन का भाषण, 4 दिसबर 1934)

इसी प्रकार 1931 म एक भाषण के दौरान उन्होने साविधानिक सुधारो के मकसद की व्याख्या की

भारत और ग्रेट ब्रिटेन को एकता के सूत्र म पिराने वाले बधनो म किसी तरह की कमजोरी लाए बिना हम ऐसी घनिष्ठता कायम करना चाहते है जसी पहले कभी नही थी। इस समय हम इसी घनिष्ठ एकता के काम मे लगे हुए है। (स्टेनले वाल्डविन का न्यूटन एबट म भाषण, 6 माच 1931)

इस सर्वेक्षण के नतीज अपरिहाय है। इन और इस तरह के समान वक्तव्यो के सचित प्रभावो का सर्वेक्षण असभव है जैसे कि भारत मे जिम्मेदार सरकार कायम होने की सभावना पर दृढ अविश्वास और दुर्ग्राह्यता तथा भारत म अगरेजी राज्य क बने रहन के बार म आरोपित निश्चितता एव कठमुल्लेपन से परिपूण ऐसे और इस तरह के तमाम वक्तव्या स सचित प्रभाव का सर्वेक्षण असभव है। इन सबने विभिन्न साविधानिक कायक्रमो और योजनाओ के जरिए आधुनिक युग म भारत म ब्रिटिश नीति के बारे म

स निष्कप तक पहुचे बिना अगरेजा के हाथ म तिहरे सुरक्षा उपायो सहित सभी
ामरिक स्थल सौप दिए ह । इस विषय म अधेपन या अनिश्चितता या भोल भाले
भ्रमो को पालना कोई सफाइ नही है । साम्राज्यवादियो की बुनियादी नीति म कोई परि
वतन नही हुआ है केवल उनकी रणनीति बदल गई ह ।

डोमीनियन का दरजा' देने की परिकाल्पनिक, अपरिभाषित, अनात और अनिश्चित मृग
मरीचिका एक ऐसा सुनहरा जाल थी जिसम भारतीय राजनीतिना को फसाकर उनका
सहयोग लिया जा सकता था। लेकिन साविधानिक सुधारो की जो सचाइया थी उनका
चरित्र एकदम भिन्न था।

साम्राज्यवादी प्रभुत्व को बनाए रखन का बुनियादी लक्ष्य आज भी वैसे ही जारी है जैसे
पहले था। वतमान सुधारो का रास्ता वही है जो 1917 से पूव के वर्षों म किए गए
सुधारो का रास्ता था। इनका विकास और भी कठिन स्थितियो म तथा साम्राज्यवादी
पतन के और भी विकसित चरण मे हो रहा है। आज जो लक्ष्य दिखाई दे रहा है वह
भारत मे साम्राज्यवाद के प्रगतिशील ढग से समापन का और भारत की जनता के हाथ
मे सरकार की बागडोर सौंपने का लक्ष्य नही है बल्कि आज कोशिश यह की जा रही है कि
पूरी एहतियात क साथ भारतीय जनता के अल्पमत उच्चवग को अपना सहयोगी बनाकर
जनता को गुलामी की जजीर म जकडे रखा जाए ताकि साम्राज्यवादी शासन और शोषण
बरकरार रह। जिन साविधानिक सुधारो और नई दृष्टि' का काफी ढिढोरा पीटा गया
था उनका बुनियादी रणनीतिक मकसद यही था। 1935 के सविधान के निर्माता
बाल्डविन के शब्दो म

> भारत म हमारे वायसरायो और गवनरो तथा सेक्रेटरी आफ स्टेट द्वारा भरती
> किए और ससद द्वारा सुरक्षा प्रदान किए गए सैनिको का कतव्य यह होगा,
> और जरूरत पडे तो उन्ह इस बात की गारटी देनी होगी, कि भारतीय मत्रिगण
> और विधानमडल उन्ही उद्देश्यो की पूर्ति के लिए अपन राजनीतिक अधिकार
> का इस्तेमाल करेंगे जिन्ह हम चाहते है। (गवनमट आफ इडिया बिल पर स्टैनले
> बाल्डविन का रेडियो प्रसारण, 5 फरवरी 1935)

4 1935 का सविधान

यदि हम मोर्ले मिंटो सुधारो को पहला सविधान मानें तो 1935 के भारत सरकार
अधिनियम मे प्रस्तुत सविधान, जिसे माटगु घोषणा के बीस वर्षो बाद 1937 म अमल म
लाया गया, आधुनिक युग म भारत के लिए तैयार किया गया तीसरा साम्राज्यवादी
सविधान है। सात वर्षो मे भी अधिक समय तक निमाणाधीन रहने के बाद इसे सविस्तार
प्रतिपादित किया गया। यह काम पहली बार साइमन कमीशन की नियुक्ति क समय से

शुरू हुआ और इसपर ब्रिटेन मे काफी विवाद हुआ और भारत म इसे लेकर काफी सघप हुए।

इस सविधान को आमतौर पर अगरजो ने कुछ परवर्ती रक्षा उपायो के अतगत स्वराज्य की परोक्ष उपलब्धि या किसी भी रूप म स्वराज्य की विस्तत और उदार स्थापना कहा। परिणामत भारतीय जनता न इसे एक स्वर से अस्वीकार किया और जब इसे नामजूर करने मे न केवल राष्ट्रीय काग्रेस बल्कि भारतीय उदारवादियो या नरमदली लोगा न भी भाग लिया तो इसपर लोगो को आश्चय हुआ और इस कायवाही का अनुचित बताया गया। उन लोगा ने भी इसे अनुचित बताया जो औपनिवेशिक जनता के अतिरिक्त अ य लोगो से अपने व्यवहार मे सामा यत उदार जनतात्रिक रवैया अख्तियार करत थे।

इसके वास्तविक प्रावधानो की यदि सावधानी से जाच करे तो इस विरोध के कारण का पता चल जाएगा और यह स्पष्ट हो जाएगा कि किन कारणो से भारतीय राजनीतिक नेताओ न राष्ट्रीय आदोलन के विकास और प्रसार के लिए इस व्यवस्था द्वारा खास तौर स प्रातीय अनुच्छेदो मे दी गई सुविधाओ को भरपूर इस्तमाल करने और उ ह मा यता देने के बावजूद सविधान का विरोध किया और उसे नामजूर किया। उ होन किन कारणो स विशेष रूप से सविधान के सघीय अनुच्छेदो का विरोध किया और महसूस किया कि यह योजना स्वराज्य की स्थापना के लिए नही बल्कि भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व को और मजबूत बनाने के लिए तैयार की गई है।

सविधान म दो मुख्य अनुच्छेद हैं पहला सघीय अनुच्छेद है जो ब्रिटिश भारत और देसी रियासतो के प्रायोजित अखिल भारतीय फेडरेशन की केंद्रीय सरकार के लिए है और दूसरा है प्रातीय अनुच्छेद जो ब्रिटिश भारत के प्रातो के लिए है। प्रातीय अनुच्छेद 1937 मे अमल मे आया जबकि सघीय अनुच्छद को कभी अमल म नही लाया गया (हालाकि वतमान सरकार आशिक तौर पर इसके प्रावधानो के अतगत ही काम करती है)। प्रातीय अनुच्छेद के तहत अधिकाश सूबा मे राष्ट्रीय काग्रेस ने कायभार सभाला और राष्ट्रीय काग्रेस ने सघीय अनुच्छेद को अमल मे लाए जाने का विरोध किया। सविधान का मूल भाव सघ की अवधारणा था। इसी से पता चलता है कि वह कौन सी नई दिशा ले रहा था और इसी मे उसका जबरदस्त प्रतिक्रियावादी चरित्र छिपा था।

भारत की राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक प्रगति क लिए भारत का राजनीतिक एकीकरण अनिवाय है। इस बात को हर विचारधारा और हर प्रवत्ति के लोग मानत ह। मुख्य रूप से छोटी छोटी रियासतो के रूप म भारत का मूखतापूण विभाजन किया गया है, भारत की एकता को एकदम दो तरह की प्रशासनिक प्रणालियो म बाट दिया गया है देश का 45 प्रतिशत हिस्सा एक तरह की और 55 प्रतिशत हिस्सा दूसरी तरह की प्रशासनिक प्रणाली के अतगत ह और इसके साथ अविश्वसनीय ढग से आडी तिरछी चौहद्दिया खीच

दी गई है जो एक दूसरे को काटती है और जिनका भौगोलिक, आर्थिक, जातीय, भाषाई या सास्कृतिक किसी भी दृष्टि से औचित्य नही है ये सारी बातें एक ऐस पुरावशेष हैं जिन्ह काफी पहले दूर किया जाना चाहिए था और जिनका बना रहना भारत म ब्रिटिश शासन के अतगत हर तरह का प्रतिक्रियावादी सुधार बनाए रखने का उपाय है। ऐसा इसलिए क्योकि जैसा हमने पहले दखा है भारतीय 'रियासतो' का कृत्रिम तौर पर अस्तित्व कायम रखा गया है। अगरेजो के मजबूत हथियारखानो न इन रियासतो को ध्वस्त होने स बचा रखा है। इनके अस्तित्व स भारतीय जनता की कोई जरूरत पूरी नही होती, ये भारत म ब्रिटिश शासन को एक मजबूत सहारा दत है। सरकारी प्रवक्ता के शब्दो म कई रियासतें ता 'विवादग्रस्त क्षेत्र मे मित्र पक्ष क गढ हैं।'

लेकिन सघ सबधी जो प्रस्ताव आए उनका मकसद किसी भी रूप म इस विभाजन को समाप्त करना नही था, उनका मकसद उन पुरातन तानाशाही हुकूमतो को नष्ट करना नही था और न उनका मकसद समान प्रशासनिक प्रणाली कायम करना ही था। इन प्रस्तावो का केवल एक मकसद था जो बहुत स्पष्ट था, इनके जरिए प्रतिक्रियावादी पुरावशेषो को और मजबूत बनाना था और उन्ह भारत की केंद्रीय सरकार के ममस्थल तक लाना था ताकि ब्रिटिश भारत मे साम्राज्यवादियो के कमजोर पड रह प्रभुत्व को मजबूत बनाया जा सके और राष्ट्रीय आदोलन अर्थात राष्ट्रीय एकीकरण क आदोलन का मुकाबला किया जा सके।

राज्यसघ क्या है ? किसी वास्तविक राज्यसघ के बुनियादी सिद्धात क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए *सयुक्त राज्य अमरीका स्विस गणराज्य, सोवियत समाजवादी गणराज्य* जैसे राज्यसघो के महान एतिहासिक मिसालो की जाच करनी होगी।

एक राज्यसघ ऐसी स्वतत्र प्रभुसत्तासपन्न इकाइयो का स्वैच्छिक सघ है जो इन इकाइयो पर आधारित और इन इकाइयो या इनकी जनता के प्रति उत्तरदायी प्रभुसत्तासपन्न केंद्रीय सगठन की स्थापना के लिए समान राजनीतिक लक्ष्यो आदर्शो या बाह्य आवश्यकताओ से प्रेरित हो और जो सीमित मात्रा म समान सगठन की स्थापना करे जिनमे पूण केंद्रीकरण न हान पर भी स्वेच्छापूवक सहमत सीमाओ के अतगत सघ के सभी नागरिको के लिए एक सघीय कानून बनाया जा सके।

इस सारी जाच पडताल स पता चलता है कि भारत के लिए प्रस्तावित राज्यसघ एक अयथाथ नाम है यह भाषा का एक छल है जो वतमान ढाचे म कुछ और विशेष किस्म के प्रतिक्रियावादी तत्वो को शामिल करके मनमानी निरकुश तानाशाही का बचाव करने के लिए है।

पहली बात ता यह है कि राज्यसघ म प्रभुसत्ता नही स्थित थी। प्रभुसत्ता स्पष्ट तौर पर

कानून के जरिए राज्यसघ से वाहर ब्रिटिश शासकवग के लिए, लदन से नियुक्त किए गए ब्रिटिश गवनर जनरल के लिए, जो केवल ब्रिटिश सरकार के प्रति जवाबदेह हो और जो निरकुश अधिकारा का इस्तेमाल कर रहा हो, ब्रिटिश ससद के लिए जवावदह सेक्रेटरी आफ स्टेट के लिए और अतत सर्वोच्च सत्ता के रूप मे ब्रिटिश ससद के लिए निर्धारित की गई थी। राज्यसघ के अदर या राज्यमघ की सरचना करन वाले सदस्य देशो को प्रभुसत्ता नही मिली थी। दूसरे शब्दा मे कह तो यह राज्यसघ नही था वल्कि निरकुश शासन एक खास प्रशासनिक तरीका था।

दूसरी बात यह है कि यह सघ प्रभुसत्तासपन्न घटको का स्वैच्छिक सघ नही था। यहा तक कि रियासता के खुशामदी राजाओ के शामिल होने को जो व्यवहार मे ब्रिटन के सरकारी फरमानो को मानने के लिए मजबूर है और जो ब्रिटन सरकार की इच्छा के जवरदस्त प्रवक्ता हैं हम राजनयिक दृष्टि से 'स्वेच्छापूवक' शामिल हाना, भले ही मान ले पर राज्यसघ क तीन चौथाई भाग की रचना करने वाले प्राती (ब्रिटिश भारत के) का शामिल होना एक अनिवाय क्रिया थी जो उनपर वाहर से थोपी गई थी, यह उनकी स्वैच्छिक क्रिया नही थी।

तीसरी वात जो राज्यसघ' की अवधारणाआ म सर्वाधिक असाधारण थी, वह यह थी कि कुल मिलाकर राज्यसघ के लिए निर्धारित सघीय कानून, कानून रचना या प्रशासन की कोई प्रणाली नही थी। राज्यसघ के नागरिको के लिए मौलिक अधिकारो की कोई घोषणा नही थी। रियासतो की प्रजा के पास कोई अधिकार नही थे, राज्यसघ से वे पूरी तरह अप्रभावित थी। लेकिन तानाशाह राजाओ को ब्रिटिश भारत के आशिक मताधिकार प्राप्त नागरिका के लिए कानून बनाने हेतु सघीय सदनो मे भाग लेने की व्यवस्था थी। सघीय विधानमडल को राज्यसघ के लिए नही वल्कि एक वग के लिए, ब्रिटिश भारत के लिए कानूना का निर्माण करना था। क्या राज्यसघ की वुनियादी अवधारणा म आज तक कभी इस तरह का अतर्विरोध दखन को मिला है? एक बार फिर यह स्पष्ट है कि इस तथाकथित राज्यसघ' न समूचे भारत के लिए किसी परिवतन का या अपेक्षातया घनिष्ठ सम्मिलन का प्रतिनिधित्व न करके ब्रिटिश भारत म नए प्रतिक्रियावादी तत्व पैदा करने का ही काम किया।

इसलिए शुरू म ही यह समझ लेना जरूरी है कि राज्यसघ का प्रश्न भारत के उस राजनीतिक एकीकरण का प्रश्न नही है जा आवश्यक है, जिसे सभी ने आवश्यक माना है, और जो होना अवश्यभावी है और काफी सभावना है कि जिस दिन यह एकीकरण होगा यह एक सही राजनीतिक राज्यसघ का रूप ल लेगा। इस सविधान के तथाकथित 'राज्यसघ' का मसला एक जनतत्रविरोधी पद्धति का मसला था जिसने देश के राजनीतिक विभाजन और रियासता की निरकुश व्यवस्था की बुराइया की ओर से तो आख मूद ली पर भारत क उस हिस्से को एक नई प्रतिक्रियावादी शक्ति से परिचित कराया जिसम कुछ सीमित

अधजनतात्रिक सस्थाओ की स्थापना हो गई थी और जहा राष्ट्रीय आदोलन का विकास हुआ था।

इसलिए तथाकथित 'राज्यसघ' की योजना का ऐसी योजना का नाम देना बिलकुल ठीक होगा जो रियासतो के निरकुश राजाओ को जो अपने अगरेज स्वामियो के अलावा और किसी के लिए जवाबदेह नही है, ब्रिटिश भारत की 27 करोड जनता के लिए कानून बनाने का अधिकार दे दे। सविधान के मसले पर विचार करने के लिए और राष्ट्रीय काग्रेस के विरोध म भविष्य मे जब कभी 'राज्यसघ' का उल्लेख किया गया है तो यह ध्यान रखना होगा कि इस शब्दावली का अर्थ वही है जो ऊपर बताया गया है।

'राज्यसघ' का वास्तविक उद्देश्य यही था कि ब्रिटिश भारत म प्रतिक्रियावादी शक्तियो का पलडा भारी किया जाए। प्रस्तावित सघीय विधानमडल के दोनो सदनो म राजाओं को दिए गए विशेष प्रतिनिधित्व तथा महत्व से यह बात स्पष्ट हो गई।

सघीय विधानमडल म दो सदन होने थ, ऊपरी सदन या कौसिल आफ स्टेट और निचला सदन या सघीय विधानसभा। इन राजाओ का दोनो सदनो म महज प्रतिनिधित्व ही नही करना था बल्कि जरूरत से ज्यादा प्रतिनिधित्व करना था और इस काम म यह नही देखा जाना था कि अमुक राजा अपनी रियासत के आकार और जनसख्या के आधार पर ही प्रतिनिधित्व करे। कौसिल आफ स्टेट के 260 स्थानो म से 104 स्थान अर्थात कुल का 2/5 हिस्सा, राजाओ के लिए निर्धारित था। सघीय विधानसभा म 375 स्थानो म से 125 स्थान अर्थात एक तिहाई स्थान राजाओ के लिए निर्धारित थे। समूचे भारत की आबादी का 24 प्रतिशत या एक चौथाई से भी कम भाग इन देसी रियासतो म रहता है। यदि वित्तीय आधार को ध्यान म रखा जाए तो यह असगति और भी स्पष्ट है। अनुमान यह लगाया गया था कि सघीय राजस्व का 90 प्रतिशत हिस्सा ब्रिटिश भारत से और केवल 10 प्रतिशत रियासतो से वसूला जाएगा। इसके बावजूद राजाओ को ऊपरी सदन म 2/5 और निचले सदन म 1/3 के अनुपात म प्रतिनिधित्व मिलना था।

इस प्रकार प्रत्येक सदन मे 'सरकारी गुट' के स्थान पर एक अनिर्वाचित और अप्रातिनिधिक ठोस प्रतिक्रियावादी गुट का प्रविष्ट कराकर इस तथाकथित 'प्रतिनिधि' प्रणाली को शुरू म ही विफल कर दिया गया। यह नया गुट पहले के गुट से भी ज्यादा प्रतिक्रियावादी था और इसकी सख्या पुराने मोटागू चेम्सफोर्ड सविधान के तहत गठित सदस्यो की सख्या से ज्यादा थी (पुरानी विधानसभा म अनिर्वाचित सरकारी सदस्यो की सख्या 40 या कुल सख्या की एक चौथाई थी। सदन म कुल सदस्यो की सख्या 145 थी)।

हमे इन नकमाल विधानसभाओ के अधिकारो पर भी अभी विचार करना है। सविधान द्वारा यद्द म वर्णित रूप से स्वीकृत 'जिम्मेदार' सरकार की अतिम अवशिष्ट कथा भी

लुप्तप्राय हो जाती है। गवनर जनरल द्वारा चुने गए तथा गवनर जनरल के लिए जवाब-देह एक मत्रिपरिषद का गठन किया जाना था पर उनकी सामथ्य बेहद सीमित थी। मिसाल के तौर पर रक्षा मत्रालय, विदेश मत्रालय, धमसबधी विभाग तथा वर्जित क्षेत्रो से सबधित मामले पूरी तरह गवनर जनरल के नियत्रण मे थे। अन्य अनेक विभागो का काम देखने के लिए विशेप अधिकारियो की अलग से नियुक्ति की जाती थी, वित्तीय स्थिरता और साख की देखरेख के लिए वित्तीय सलाहकार, कानूनी मामलो के लिए एक एडवाकेट जनरल और सघीय बैंक तथा रेलवे के लिए अन्य अधिकारियो की नियुक्ति की जाती थी। प्रशासकीय सेवा और पुलिस सेवा पर केवल सेक्रेटरी आफ स्टेट ही नियुक्ति कर सकता था। कुछ अन्य विशेप प्रावधानो के जरिए ब्रिटिश सरकार के बुनियादी कानूनो का उल्लघन अथवा ब्रिटिश आर्थिक हितो या अल्पसख्यको के अधिकारो या रियासतो के अधिकारो के विपरीत की जाने वाली किसी भी कायवाही को रोका जा सकता था। गवनर जनरल के पास जो सामान्य अधिकार थे वे इन सबसे ऊपर थे। यह बताना कठिन है कि मत्रियो के हाथो मे कौन से अधिकार बच रहे थे। लेकिन काफी मुमकिन है कि उन्हे इस बात की देखभाल करने की स्वतत्रता रही हो कि डाकखाने का कामकाज ठीक से चल रहा है या नही ?

कानून मे ऐसी कोई बात नही थी जो मत्रियो को विधानाग के प्रति जवाबदेह बनाए। उनके वेतनो को विधानाग की स्वीकृति की जरूरत नही थी और यदि उनके विरुद्ध बहुमत से भी अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए तो जरूरी नही था कि वे इस्तीफा दे दे। केवल गवनर जनरल के नाम निर्देशो के प्रपत्र मे यह सिफारिश की गई थी कि मत्रियो का चुनाव ऐसा हो जो विधानमडल मे एक ठोस बहुमत पर नियत्रण रख सके। लेकिन इसमे यह भी बात कही गई थी कि मत्रिपरिषद मे रियासतो और अल्पसख्यको के प्रतिनिधियो को भी शामिल किया जाए।

विधानमडल के अधिकारो की स्थिति क्या है ? प्रतिनिधि सस्था द्वारा शासन कायम करने की पहली कुजी है वित्तव्यवस्था पर नियत्रण। वित्त के सबध मे स्थिति क्या थी ?

बजट को दो भागो मे बाट दिया गया था 'राज्यसघ से प्राप्त राजस्व से किया जाने वाला व्यय' तथा 'अन्य व्यय'। पहले भाग के अदर सभी भारी और मुख्य खच, जिनके लिए विधानाग की स्वीकृति नही ली जाती, शामिल है, उदाहरण के लिए रक्षा व्यय, ऋण पर दिया जाने वाला ब्याज, अधिकारियो की बडी बडी तनख्वाह और पेशने आदि। इस तरह के मदो मे बजट का तीन चौथाई से 4/5 भाग तक खच हो जाता था। प्रोफेसर जी०एन० जोशी के अनुसार (इडियन एडमिनिस्ट्रेशन', पृष्ठ 69) कुल व्यय का अनुमानत 75 प्रतिशत भाग इन मदो मे खच होता था। राष्ट्रीय काग्रेस का अनुमान है कि इन मदो पर बजट का 80 प्रतिशत अश खच किया जाता था। गवनर जनरल को इस बात का अधिकार था कि वह जिस मद का चाहे इस भाग के अतगत ला सकते है।

केवल 20 या 25 प्रतिशत छोटे मोटे खर्चे ऐसे थे जिनके बारे म विधानमडल अपनी राय व्यक्त कर सकता था। लकिन इस मामले म भी वह राय ही व्यक्त कर सकता था। इन छोटे मोटे खर्चों म भी विधानमडल का कोई वश नही था। कोई भी वित्तीय विधयक या प्रस्ताव स्वीकृति के लिए तब तक पेश नही किया जा सकता था जब तक उसे पहले गवनर जनरल की अनुशसा न प्राप्त हो। विधानसभा द्वारा किसी अनुदान को नामजूर करने या अनुदान की राशि को कम कर देने की अवस्था म गवनर जनरल को यह अधिकार था कि वह अपन विशेष दायित्वो क निर्वाह के लिए अनुदान को आवश्यक घोषित कर दे और विधानमडल की अस्वीकृति के बावजूद उक्त खच को प्राधिकृत कर दे। इस प्रकार वित्तव्यवस्था की किसी जिम्मेदार प्रतिनिधि सस्था क लिए जो पहली बुनियादी शत है उसका यहा पूरी तरह अभाव था।

प्रतिनिधि सस्था द्वारा शासन कायम करने की दूसरी कुजी है सना और नौकरशाही के राजतत्र पर नियत्रण। रक्षा विभाग को विधानमडल के क्षेत्र से बाहर सुरक्षित रखा गया था। पुलिस और प्रशासनिक सवाओ म सेक्रेटरी आफ स्टेट को नियुक्ति करनी थी। उनक अधिकारो और सेवा शर्तों को विशेष धाराओ द्वारा सुरक्षा प्रदान की गई थी। पुलिस क लिए नियमो का निर्धारण गवनर जनरल को करना था, खुफिया पुलिस या राजनीतिक पुलिस पूरी तरह गवनर जनरल के ही अधीन थी। शासन कायम करने की तीसरी कुजी है कानून बनाने का अधिकार, कानूनो को पारित करने का अधिकार या प्रस्तावित कानूनो को मजूरी न देने का अधिकार।

इसम कोई सदेह नही कि विधानमडल उन सीमित विपयो के बारे म कानून पारित कर सकता था जिन्ह सरकार की स्वीकृति प्राप्त थी। इन विपयो के क्षेत्र को अनेक धाराओ द्वारा सीमित रखा गया था। विधानमडल तब तक वित्त सबधी उपायो पर हाथ नही लगा सकता था यहा तक कि उनपर बहस भी नही कर सकता था जब तक गवनर जनरल की पूव अनुमति उसे न मिल गई हो। यह उन कानूनो पर हाथ नही लगा सकता था जो ब्रिटिश सत्ता के बुनियादो को यथा सेना सबधी मसला, एव प्रशासनिक सेवाओ, रियासतो अल्पसख्यको ब्रिटिश आर्थिक हितो आदि के अधिकारो को प्रभावित करत हो। विशेष तौर से सघीय विधानमडल को यह अधिकार नही था कि वह ऐसे किसी उपाय को स्वीकृति दे जो

1 ब्रिटेन म रहन वाली ब्रिटिश जनता पर ऐसे प्रतिबध लगाए जिनका सबध उनके ब्रिटिश भारत म प्रवेश करने या घूमने, रहने, सपत्ति कमाने, रखने या बेचने से हो या सावजनिक सेवा म कोई पद ग्रहण करन कोई पशा, व्यवसाय या व्यापार करन से हो।
2 भारत म करारोपण क सदभ म ब्रिटेन म रहने वाली ब्रिटिश जनता या ब्रिटेन म स्थापित किसी कपनी क प्रति भदभाव बरत।

3 ब्रिटेन मे पजीकृत जहाजा, उनके नाविको, यात्रिया, उनपर लदे मालो आदि के प्रति भेदभाव वरते ।
4 ब्रिटेन के कानूनो के तहत सस्थापित कपनियो को राज्यसघ से प्राप्त राजस्व मे से अनुदान, आनुतोषिक या आर्थिक सहायता देने के सदभ मे भेदभाव वरत ।

इन शतनामा' से पता चलता है भारत म ब्रिटिश महाजनी पूजी को मजबूत सुरक्षा देने के बारे म अगरेज कितने चितित थे । इन शतनामो की वजह से भारतीय उद्योग, व्यापार या नौपरिवहन को बढावा देने के लिए या विशेष रियायत एव आर्थिक सहायता देने के लिए (ठीक उसी तरह जिस तरह ब्रिटिश सरकार ब्रिटन म वहा के उद्योग व्यापार या नौपरिवहन के साथ करती है) तब तक अनुमति नही मिलती थी जब तक भारत म ब्रिटेन के औद्योगिक तथा व्यापारिक हितो को भी वैसी ही सुविधाए न दी जाए ।

शेष जिन क्षेत्रो मे कानून बनाने की छूट थी भी, वहा विधानमडल के पास कोई स्वतत्र अधिकार नही था । यदि विधानमडल न किसी एसे विधेयक को पारित कर दिया जिसे सरकार नही पसद करती थी और मान लें कि घोर प्रतिक्रियावादी मत्रिपरिषद ने भी उस विधेयक को पारित कर दिया तो गवनर जनरल अपनी सहमति को एकदम 'रोक' रखता था । दूसरी ओर, गवनर जनरल अपनी सहमति को यह कहकर रोक' सकता था कि विधेयक पर अभी और विचार करने की जरूरत है औरयदि 12 महीनो तक उसने अपनी सहमति 'रोक' रखी तो विधेयक रद्द कर दिया जाता था । यदि उसन अपनी सहमति दे ही दी और बाद म उसने सोचा कि यह गलत हुआ है तो वह उसे बाद म 'अस्वीकार' कर सकता था ताकि वह रद्द हो जाए ।

दूसरी तरफ यदि विधानमडल किसी ऐसी कायवाही को स्वीकृति देने म विफल रहता है जिसे सरकार आवश्यक समझती हो तो गवनर जनरल उसे 'गवनर जनरल का कानून' कहकर पारित कर सकता था और यह कायवाही उतनी ही शक्तिशाली होती जितना कोई भी साधारण कानून । विकल्प के रूप म गवनर जनरल अध्यादेश जारी कर सकता था, इन अध्यादेशो को छ महीने तक कानून के स्थान पर इस्तेमाल किया जाता था । इसी तरह के 'अधिकार' इस 'विधानमडल' के पास थे । इसके चयन म की गई मेहनत बेकार ही प्रतीत हुई होगी ।

लेकिन इन सारी बातो से साम्राज्यवादी शासको के एहतियात मे एकदम कमी नही आई । वे स्पष्टत इस बात से पूरी तरह निश्चित होना चाहते थे कि व्यवस्था के बद दरवाजो से स्वराज्य की किसी फुसफुसाहट के भी अदर जाने की गुजाइश न रहे । हम अभी और भी विस्तार से इन सुरक्षित अधिकारो और 'सुरक्षा उपायो' के मोहक रूप की जाच करनी होगी ।

जब हम विधानमडल के 'अधिकारो' से होकर गवनर जनरल के अधिकारो तक पहुचते है तो हम अधेरे से एकदम उजाले म पहुच जाते है। कानून की कम स कम 94 धाराए ऐसी थी जिन्होने गवनर जनरल को खद ही निणय लेने के विशेष अधिकार दे दिए थे। इस प्रकार कोई भी गवनर जनरल अपने आप लिए गए निणय के आधार पर (अर्थात मत्रियो या निर्वाचित सस्थाओ की किसी सलाह के बिना) निम्न काय कर सकता था

1 मत्रियो की नियुक्ति या बरखास्तगी,
2 विधानमडल द्वारा पारित कानून पर वीटो,
3 विधानमडल द्वारा नामजूर कानून का पारित करना,
4 कानन क बारे मे बहस पर प्रतिबध,
5 अध्यादेश जारी करना,
6 प्रातीय गवनरो का अध्यादश जारी करने के निर्देश,
7 प्रातीय कानूनो पर वीटो का इस्तेमाल,
8 पुलिस के लिए कायदे कानून जारी करना,
9 सेना के इस्तेमाल को अपने अधीन रखना,
10 विधानमडल भग करना,
11 सविधान को स्थगित करना।

यह उसके कुछ चुने हुए मनमाने अधिकारो की सूची है। इसी के साथ साथ उसके पास कुछ सुरक्षित अधिकार भी थे। सुरक्षित विभागो के रूप मे उसके एकदम अपने नियत्रण मे रक्षा, विदेश, धार्मिक मामलो तथा वर्जित क्षेत्र से सबधित विभाग थे। और अत म कुछ ऐसे विशेष अधिकार है जिनका मकसद यह है कि यदि इन सबके बाद भी बचाव के किसी रास्ते के बन रहने की आशका हो तो उस रोका जा सके। गवनर जनरल के पास आठ 'विशेष जिम्मेदारिया' थी जिनके पालन के लिए वह व्यक्तिगत तौर पर जिस भी तरह की कायवाही आवश्यक समझे कर सकता था। इन 'विशेष जिम्मेदारियो' (आमतौर से इन्ह सुरक्षा उपाय' कहा जाता था हालाकि यह कानून, आदि से अत तक दरअस्ल सुरक्षा उपाय ही था) के अतगत निम्न बाते आती थी

1 भारत या उसके किसी भी भाग म शाति या चैन के लिए उत्पन्न गभीर खतरे को रोकना,
2 सघीय सरकार की वित्तीय स्थिरता और साख की रक्षा करना,
3 अल्पसख्यको के न्यायोचित हितो की रक्षा करना,
4 सावजनिक सेवा क सदस्यो, भूतपूव सदस्यो या उनके आश्रितो क न्यायोचित हितो' का सुरक्षा देना,
5 ब्रिटिश नागरिको या भारत म काम करन वाली कपनियो क प्रति चाह व भारत

में संस्थापित हों या ब्रिटेन में, वित्त एवं व्यापार संबंधी मामलों में भेदभाव बरते जाने से रोकना,

6 भारत में ब्रिटेन से आयातित सामानों के प्रति भेदभाव को रोकना,

7 रियासतों और राजाओं के अधिकारों की रक्षा करना,

8 और अंत में एक शानदार एवं बहुप्रयोजनपूर्ण रक्षा उपाय यह सुनिश्चित करके कि अपने कार्यों का उचित निष्पादन उन मामलों के संबंध में करके, जिनके संबंध में उसे इस कानून के द्वारा या जनगत अपने निर्णय से कार्य करना है, वह किसी अन्य मामले के संदर्भ में की गई कार्य प्रक्रिया द्वारा समुपस्थित नहीं होता है या प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है।'

संविधान का व्यापक सर्वेक्षण करने के उद्देश्य से अधिनियम की उन विशेष (और अति-विस्तृत) धाराओं की खोज करना एक लंबी प्रक्रिया होगी जिनमें ब्रिटिश महाजनी पूंजी के प्रत्यक्ष हितों, व्यापार और पूंजी निवेश, भारत में काम करने वाली ब्रिटिश कंपनियों, ऋण, रेलवे, बैंकों आदि के हितों को विशेष तौर पर सुरक्षा दी गई है या स्वतंत्र प्राधिकरणों के अंतर्गत रखा गया है। लेकिन यह निश्चय ही कहा जाना चाहिए कि अधिनियम की इन्हीं धाराओं से हमें समूचे संविधान के असली कार्यों का पता चलता है कि वह किस तरह भारत में ब्रिटिश महाजनी पूंजी के शोषण की रक्षा करने के लिए तैयार किया गया एक सुव्यवस्थित तंत्र है।

संविधान की जो प्रांतीय धाराएं हैं वे केंद्र के निरंकुश और प्रतिक्रियावादी रचनातंत्र के मातहत हैं। सामान्यतः प्रांतों की राज्यव्यवस्था केंद्रीय राजतंत्र के मनोनुकूल अंशों का ही जरा नरम रूप प्रस्तुत करती है। प्रांतीय गवर्नर के पास भी इन सारी धाराओं से बढ़कर अधिकार है, वह किसी कानून को वीटो कर सकता है या स्वतंत्र कानून पास कर सकता है। पुलिस, कानून और व्यवस्था तथा वित्तप्रबंध पर उसका कारगर नियंत्रण रहता है और उसके पास भी सात विशेष जिम्मेदारियां होती हैं। इसी प्रकार विधान-मंडलों का गठन भी साम्प्रदायिक आधार पर हुआ होता है और ऊपरी सदनों को जिनका पहले किसी प्रांत में अस्तित्व न था बंगाल, बंबई, मद्रास, संयुक्त प्रांत और बिहार जैसे सभी प्रमुख प्रांतों पर थोप दिया गया है।

तो भी, यह तंत्र केंद्र की तुलना में प्रांतों में ज्यादा लचीला है और केंद्र की तुलना में यहां जनआंदोलनों की ज्यादा गुंजाइश रहती है। इसके निम्न कारण हैं

पहली बात तो यह है कि प्रांतों में राजाओं का अस्तित्व नहीं होता। विधानमंडलों का पूरी तरह और प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन होता है हालांकि ऊपरी सदनों का स्वरूप प्रति-क्रियावादी है और उनका गठन अत्यंत सीमित मताधिकार के आधार पर किया गया है। दूसरी बात यह है कि प्रांतों में केंद्र की तरह आरक्षित विभाग नहीं हैं हालांकि पुलिस के

मामले म विशेष व्यवस्थाए ह। पुलिस के लिए निर्धारित नियम खुद गवनर के अधीन होते है, खुफिया पुलिस या राजनीतिक पुलिस को विशेष अधिनियमो क जरिए सुरक्षा प्रदान की जाती है और यहा तक कि उनके कार्यों से सबधित कागजात भारतीय मत्रियो को भी देखने को नही उपलब्ध हो सकते, पुलिस का इस्तेमाल किसी भी एसे आदोलन का मुकाबला करने के लिए किया जा सकता है जिसका उद्देश्य यह समझा जाए कि 'कानून द्वारा स्थापित सरकार का तख्ता पलटना' है। गवनर यदि यह महसूस करता है कि 'प्रात की शाति और सुख चैन के लिए खतरा है।' तो यह किसी भी तरह का कदम, जो वह उचित समझे, उठा सकता है। सत्ता के वास्तविक तत्व के सदभ म इन अत्यत जबरदस्त नियत्रणो के अधीन, प्रातीय सरकार कुल मिलाकर प्रशासन के लिए काय सचालन करती है और वह एक सीमा तक सामूहिक जिम्मेदारी की भावना पैदा कर सकती है। तीसरी बात यह है कि विधि निर्माण के मामले मे यहा केंद्र जैसे व्यापक नियत्रण नही है ऐसा इसलिए नही है क्याकि विधि निर्माण के अधिकार यहा अपक्षतया व्यापक है बल्कि इसलिए क्याकि वे और भी ज्यादा सकीण है, ऐसे मसले जिनका स्वरूप अखिल भारतीय होता है और जो ब्रिटेन के विशेष हितो को या आर्थिक वत्तीय सत्ता को प्रभावित करते हे, प्राता म पैदा ही नही हो सकत। इसलिए इस बात की बहुत सभावना है कि प्रातो म लोकप्रिय मत्रिमडल काय सचालन कर सक और यहा वे शासक की नही बल्कि एकदम उपयोगी तत्व की भूमिका निभाए।

ब्रिटिश भारत के 11 प्रातो म प्रातीय विधानसभाओ के लिए मतदाताओ की सख्या 3 करोड 10 हजार थी जो कुल आबादी का 11 प्रतिशत ही थी (जबकि माटेगु चेम्सफोड के सविधान मे इसे 2 8 प्रतिशत बताया गया था)। ब्रिटेन की मिसाल लें तो पता चलता कि वहा 67 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त है। मताधिकार प्राप्त करने की योग्यता मुख्यतया सपत्ति पर, कर दने की क्षमता पर और एक निश्चित मूल्य की काश्त पर निभर थी, इसके अलावा साक्षर होना जरूरी था। महिला मतदाताओ की सख्या 43 लाख थी। 1937 के चुनावो म जिन निर्वाचन क्षेत्रो म मतदान हुए वहा मतदान म 1 करोड 55 लाख अर्थात उन निर्वाचन क्षेत्रो के कुल मतदाताओ के 5› प्रतिशत हिस्से ने भाग लिया।

ग्यारह प्रातीय विधानसभाओ म 1,585 सीटो को निम्नाकित तरीके से बाट दिया गया है

सामान्य सीटें	657
मुस्लिम	482
अनुसूचित जाति	151
वाणिज्य और उद्योग	56
महिलाए	41

मजदूर	38
भूस्वामी	37
सिख	34
यूरोपीय	26
पिछडे क्षेत्र और जनजातिया	24
भारतीय ईसाई	20
आग्ल भारतीय	11
विश्वविद्यालय	8

यह देखा जा सकता है कि इतने जबरदस्त और प्रतिक्रियावादी उपविभाजन के बावजूद सघीय विधानसभा की तुलना मे यहा काफी अनुकूल सभावनाए है। यही वे स्थितिया थी जिन्होने अधिकाश प्रातो म काग्रेस मत्रिमडल के गठन को सभव बनाया। फिर भी यह सोच लेना गलत होगा कि इन प्रातीय काग्रेस मत्रिमडलो के पास अत्यत सीमित अधिकारो से कुछ ज्यादा अधिकार थे या ये मत्रिमडल उन महत्वपूर्ण समस्याओ पर हाथ लगा सकते थे जिन्हे स्वराज्य प्राप्ति के बाद ही हल किया जा सकता है।

इन प्रातीय मत्रिमडलो की पृष्ठभूमि मे क्या चीजे है, यदि इसपर गौर करे तो पता चलेगा कि इनका दायरा अत्यत सीमित है। दरअस्ल इनकी पृष्ठभूमि म एक ऐसी तानाशाह केद्रीय सरकार है जिसपर अगरेजो का नियत्रण है, विधान के जरिए हर उस काम को या ऐसे किसी भी मामले मे हस्तक्षेप को नियत्रित कर दिया गया है जो ब्रिटिश हितो को या शासन के मूल सगठन को प्रभावित करे और साथ ही प्रातीय गवनरो के पास सर्वोपरि अधिकार है। वित्त व्यवस्था के सदभ मे ये बाते खासतौर से प्रकट है। आयकर और सीमा शुल्क जैसे राजस्व के बढते हुए स्रोतो को केद्र के अधीन कर दिया है (बशर्ते नैमेयर फैसले क अतगत आशिक पुनर्निर्धारण का कुछ प्रबध हो) और केद्र का 80 प्रतिशत बजट ऐसा होता है जिसपर भारतीय प्रतिनिधियो का मत नही लिया जाता। दूसरी तरफ स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे व्यय के सभी रचनात्मक स्वरूप प्रातो को सौंप दिए गए हैं जबकि राजस्व के अपने मुख्य स्रोत के लिए उन्हे अत्यत बोझिल, अनम्य और अलोकप्रिय मालगुजारी का क्षेत्र दे दिया गया है जिसे कम करने की जबरदस्त जरूरत है। इस तरह के विभाजन का मकसद बहुत स्पष्ट है, साम्राज्यवादियो ने इस विभाजन द्वारा प्रातीय मत्रिमडलो के काम म बाधा डालने की कोशिश तो की ही है साथ ही यह भी चाहा है कि स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी आवश्यक सामाजिक सेवाओ और रचनात्मक विकास के मामले मे वे जो उपेक्षा बरतते है उसके लिए प्रातीय मत्रिमडलो को जिम्मेदार ठहराया जाए और उनकी बदनामी हो।

परिणामत प्रातीय मत्रिमडलो को किसी भी अथ म स्वराज्य की प्राप्ति नही माना जाना चाहिए। ऐसा इसलिए नहीं क्योकि अत्यत सीमित क्षेत्रो मे उनके अधिकारो पर भारी

प्रतिबंध लगा दिया गया है वरिन सबसे बढ़कर इसलिए कि वे भारतीय जनता के अत्यंत आवश्यक और बुनियादी मसलो पर हाथ ही नही लगा सकते है। प्रमुख प्रांतो में कांग्रेस मंत्रिमंडलो के गठन से पता चलता है कि स्वराज्य के लिए संघर्ष में राष्ट्रीय आंदोलन ने एक विकसित रणनीतिक स्थिति की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठा लिया है लेकिन स्वराज्य की प्राप्ति के लिए, राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता के लिए अभी संघर्ष चलाया जाना शेष ही है।

जितनी ही बारीकी से छानबीन की जाएगी उतनी ही अधिक, कुल मिलाकर संविधान के बारे में और खासतौर से निर्णायक संघीय केंद्र के संदर्भ में, जानकारी प्राप्त हो जाएगी। छानबीन से पता चलता है कि इसके जरिए न केवल जनतंत्र को नकारा गया है बल्कि भारत में साम्राज्यवादियों का शिकंजा और मजबूत बनाने के लिए तथा साम्राज्यवादी शासन के ढांचे के अंदर प्रतिक्रियावादी शक्तियों का पलड़ा और भारी करने के लिए एक तंत्र की स्थापना की गई है। *'जिम्मेदारी' की बात एक मखौल थी।* साम्राज्यवाद की शक्ति को मजबूत और दृढ़ बनाया गया था। स्वराज्य प्राप्ति का सही संघर्ष इस संविधान की सीमाओं के अंतर्गत नही चलाया जा सका। हालांकि इस तंत्र के जरिए कुछ गौण और प्रारंभिक कार्य पूरे कर लिए गए लेकिन निर्णायक युद्ध इस संविधान के दायरे से बाहर और संविधान के विरुद्ध ही लड़ा जा सकता है।

इस संविधान के बारे में किसी भी जनतांत्रिक व्यक्ति की अंतिम राय वही हो सकती है जो ब्रिटेन के प्रमुख सांविधानिक विशेषज्ञ प्रोफेसर ए० बी० कीथ ने बड़े कठोर और दो टूक शब्दो में व्यक्त की थी

> इस धारणा से इंकार करना मुश्किल है कि या तो जिम्मेदार सरकार की बात को खुलेआम असंभव घोषित किया जाए या सचाई को स्वीकार कर लिया जाए। इसमें कोई आश्चर्य नही कि विशेष जिम्मेदारियो वाली यह प्रणाली जैसी है वैसी दोगली रचना के लिए न तो स्वेच्छापूर्वक लोगो की कृतज्ञता सुलभ है और न सहयोग और सारे कार्य व्यक्तिगत फैसले के अनुसार किए जाने है।
>
> संघीय योजना के लिए किसी तरह के संतोष का अनुभव किया जाना कठिन है। जिन इकाइयों से इसकी रचना की गई है वे इतनी विषम है कि उन्हें ठीक से एक साथ नही रखा जा सकता और यह बात काफी स्पष्ट है कि अंग्रेजों की तरफ से इस योजना का समर्थन इसलिए किया जा रहा है ताकि इसे विशुद्ध कट्टरवादिता का तत्व दिया जा सके जिससे ब्रिटिश भारत द्वारा प्रदान किए गए जनतंत्र के हर खतरनाक तत्व का मुकाबला किया जा सके भारत में इस दावे से इंकार करना कठिन है कि मोटे तौर पर राज्यसंघ की उत्पत्ति के पीछे यह इच्छा काम कर रही थी कि जिम्मेदार सरकार को ब्रिटिश भारत

म केंद्र सरकार तक विस्तार देने के मसले को टाल दिया जाए। इसके अलावा, रक्षा विभाग और विदेश विभाग को संघीय नियंत्रण म देने से रोके रखना, जो इस प्रक्रिया मे अवश्यभावी है, जिम्मेदारी का कथित अनुमोदन प्रस्तुत करता है लेकिन यह सब व्यर्थ है। (प्रोफेसर ए० बी० कीथ, ए कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इंडिया *1600-1935, 1936*, पृष्ठ *473-74*')

प्रतिबंध लगा दिया गया है बल्कि सबसे बढ़कर इसलिए कि वे भारतीय जनता के अत्यंत आवश्यक और बुनियादी मसलों पर हाथ ही नहीं लगा सकते है। प्रमुख प्रांतो मे कांग्रेस मंत्रिमंडलों के गठन से पता चलता है कि स्वराज्य के लिए संघर्ष मे राष्ट्रीय आंदोलन ने एक विकसित रणनीतिक स्थिति की दिशा मे महत्वपूर्ण कदम उठा लिया है लेकिन स्वराज्य की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता के लिए अभी संघर्ष चलाया जाना शेष ही है।

जितनी ही बारीकी से छानबीन की जाएगी उतनी ही अधिक, कुल मिलाकर संविधान के बारे मे और खासतौर से निर्णायक संघीय केंद्र के संदर्भ मे, जानकारी प्राप्त हो जाएगी। छानबीन से पता चलता है कि इसके जरिए न केवल जनतंत्र को नकारा गया है बल्कि भारत मे साम्राज्यवादियो का शिकंजा और मजबूत बनाने के लिए तथा साम्राज्य-वादी शासन के ढांचे के अंदर प्रतिक्रियावादी शक्तियो का पलड़ा और भारी करने के लिए एक तंत्र की स्थापना की गई है। 'जिम्मेदारी' की बात एक मखौल थी। साम्राज्य-वाद की शक्ति को मजबूत और दृढ़ बनाया गया था। स्वराज्य प्राप्ति का सही संघर्ष इस संविधान की सीमाओ के अंतर्गत नहीं चलाया जा सका। हालांकि इस तंत्र के जरिए कुछ गौण और प्रारंभिक कार्य पूरे कर लिए गए लेकिन निर्णायक युद्ध इस संविधान के दायरे से बाहर और संविधान के विरुद्ध ही लड़ा जा सकता है।

इस संविधान के बारे मे किसी भी जनतांत्रिक व्यक्ति की अंतिम राय वही हो सकती है जो ब्रिटेन के प्रमुख सांविधानिक विशेषज्ञ प्रोफेसर ए० बी० कीथ ने बड़े कठोर और दो टूक शब्दो मे व्यक्त की थी

> इस धारणा से इंकार करना मुश्किल है कि या तो जिम्मेदार सरकार की बात को खुलेआम असंभव घोषित किया जाए या सचाई को स्वीकार कर लिया जाए। इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि विशेष जिम्मेदारियो वाली यह प्रणाली जैसी है वैसी दोगली रचना के लिए न तो स्वेच्छापूर्वक लोगो की कृतज्ञता सुलभ है और न सहयोग और सारे कार्य व्यक्तिगत फैसले के अनुसार किए जाते है।
>
> संघीय योजना के लिए किसी तरह के संतोष का अनुभव किया जाना कठिन है। जिन इकाइयो से इसकी रचना की गई है वे इतनी विषम है कि उन्हें ठीक से एक साथ नहीं रखा जा सकता और यह बात काफी स्पष्ट है कि अंग्रेजो की तरफ से इस योजना का समर्थन इसलिए किया जा रहा है ताकि इसे विशुद्ध कट्टरवादिता का तत्व दिया जा सके जिससे ब्रिटिश भारत द्वारा प्रदान किए गए जनतंत्र के हर खतरनाक तत्व का मुकाबला किया जा सके भारत मे इस दावे से इंकार करना कठिन है कि मोटे तौर पर राज्यसंघ की उत्पत्ति के पीछे यह इच्छा काम कर रही थी कि जिम्मेदार सरकार को ब्रिटिश भारत

म केंद्र सरकार तक विस्तार देने के मसले को टाल दिया जाए। इसके अलावा, रक्षा विभाग और विदेश विभाग को सघीय नियत्रण मे देने से रोके रखना, जो इस प्रक्रिया म अवश्यभावी है, जिम्मेदारी का कथित अनुमोदन प्रस्तुत करता है लकिन यह सब व्यथ है। (प्रोफेसर ए० बी० कीथ, 'ए कास्टीटयूशनल हिस्ट्री आफ इडिया 1600-1935, 1936, पृष्ठ 473 74')

प्रतिबंध लगा दिया गया है बल्कि सबसे बढ़कर इसलिए कि व भारतीय जनता के अत्यत आवश्यक और बुनियादी मसलो पर हाथ ही नही लगा सकते ह । प्रमुख प्रातो में काग्रेस मत्रिमडलो के गठन से पता चलता है कि स्वराज्य क लिए सघष म राष्ट्रीय आदोलन ने एक विकसित रणनीतिक स्थिति की दिशा मे महत्वपूण कदम उठा लिया है लेकिन स्वराज्य की प्राप्ति के लिए, राष्ट्रीय आदोलन की सफलता के लिए अभी सघष चलाया जाना शेष ही है।

जितनी ही बारीकी से छानबीन की जाएगी उतनी ही अधिक, कुल मिलाकर सविधान के बारे म और खासतौर से निर्णायक सघीय कद्र क सदभ म, जानकारी प्राप्त हो जाएगी। छानबीन से पता चलता है कि इसके जरिए न केवल जनतत्र को नकारा गया है बल्कि भारत म साम्राज्यवादियो का शिकजा और मजबूत बनाने के लिए तथा साम्राज्य वादी शासन के ढाचे के अदर प्रतिक्रियावादी शक्तियो का पलडा और भारी करने के लिए एक तत्र की स्थापना की गई है। जिम्मेदारी' की बात एक मखौल थी। साम्राज्य वाद की शक्ति को मजबूत और दृढ बनाया गया था। स्वराज्य प्राप्ति का सही सघष इस सविधान की सीमाओ के अतगत नही चलाया जा सका। हालाकि इस तत्र के जरिए कुछ गौण और प्रारभिक काय पूरे कर लिए गए लेकिन निर्णायक युद्ध इस सविधान के दायरे से बाहर और सविधान के विरुद्ध ही लडा जा सकता है।

इस सविधान के बारे मे किसी भी जनतात्रिक व्यक्ति की अतिम राय वही हो सकती है जो ब्रिटेन के प्रमुख सावैधानिक विशेषज्ञ प्रोफेसर ए० बी० कीथ ने बडे कठोर और दो टूक शब्दो म व्यक्त की थी

> इस धारणा से इकार करना मुश्किल है कि या तो जिम्मेदार सरकार की बात को खुलेआम असभव घोषित किया जाए या सच्चाई को स्वीकार कर लिया जाए। इसम कोई आश्चय नही कि विशेष जिम्मेदारियो वाली यह प्रणाली जैसी ह वसी दोगली रचना के लिए न तो स्वेच्छापूवक लोगो की कृतज्ञता सुलभ है और न सहयोग और सारे काय व्यक्तिगत फैसले के अनुसार किए जाते है।
>
> सघीय योजना के लिए किसी तरह क सताप का अनुभव किया जाना कठिन है। जिन इकाइयो स इसकी रचना की गई है वे इतनी विषम है कि उन्हे ठीक से एक साथ नही रखा जा सकता और यह बात काफी स्पष्ट है कि अगरेजो की तरफ से इस योजना का समथन इसलिए किया जा रहा है ताकि इसे विशुद्ध कट्टरवादिता का तत्व दिया जा सके जिससे ब्रिटिश भारत द्वारा प्रदान किए गए जनतत्र के हर खतरनाक तत्व का मुकाबला किया जा सके भारत म इस दावे स इकार करना कठिन है कि सादे तौर पर राज्यसघ की उत्पत्ति के पीछे यह इच्छा काम कर रही थी कि जिम्मेदार सरकार का ब्रिटिश भारत

15

युद्ध की पूर्वसध्या मे राष्ट्रीय सघर्ष की स्थिति

दुर्भाग्य की बात है कि काग्रेस के प्रवक्ताओ ने 'स्वाधीनता' शब्द को अधश्रद्धा का रूप दे दिया है। भारतीय मामलो के मत्री, दि मारकस आफ जेटलैंड का एक सवाददाता सम्मेलन मे कथन 11 फरवरी 1940।

1930-34 के महान जनसघर्षो के बाद से भारतीय राष्ट्रवाद का जो विकास हुआ उस हम बहुत साफ तौर पर दो अवस्थाओ से गुजरता देख सकते हैं। पहले चरण मे हम देखते है कि जबरदस्त दमन झेलने के बाद सगठन के पुनर्निर्माण का काय हुआ और नई नीतिया तैयार की गईं जिसके बाद चुनावो तथा प्रातो म काग्रेस मन्त्रिमडलो के गठन के जरिए सगठन ने इतनी प्रगति की कि उसका एक तरह से दवदबा कायम हो गया, ऐसा पहले कभी नही हुआ था। 1934 से 1939 तक के वर्षो की यह उपलब्धि है। दूसरे चरण म हम देखते है कि सकट गहरा होता गया। इसकी प्रारभिक झलक 1938-39 मे ही मिल गई थी। युद्ध के बाद से ही गभीर सकट पैदा हो गया था जिसने नए सघर्षो को जन्म दिया।

1 नवजागरण

1934 मे जनसघर्ष और सरकारी दमन अपनी चरम सीमा पर पहुच चुका था इसीलिए 1936 के बसत मे जब राष्ट्रीय काग्रेस का लखनऊ म अधिवेशन हुआ उस समय तक काग्रेस जबरदस्त सघर्षो और सरकारी दमन से प्रभावित अपनी ताकत सभालन म लगी थी। काग्रेस के सदस्यो की सख्या घटकर 457,000 तक पहुच गई थी। 1934-36 के दौर म काग्रेस की पराजय क जो तात्कालिक असर पडे थ वे बरकरार थे और कोई नई

प्रगति अभी तक दिखाई नही पड रही थी। 1934 म काग्रेस के बवई अधिवेशन म पारित प्रतिक्रियावादी मविधान का, जो गाधी की विदा विरासत था, निस्सदेह एक प्रतिवधकारी प्रभाव था (लखनऊ अधिवेशन म इसम आशिक रूप से सशोधन करना पडा था)। सारी गतिविधिया ससदीय क्षेत्र मे आकर केंद्रित हो गई थी, 1934 के अत म काग्रेस ने विधान सभा के चुनावो म हिस्सा लिया। लेकिन इस ससदीय गतिविधि का बहुत साधारण स्वरूप था और इन गतिविधिया के प्रति आम जनता म कोई दिलचस्पी नही पैदा हो सकी। लखनऊ अधिवेशन मे नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे बिना किसी लाग लपेट के वतमान स्थिति की कमजोरियो की आलोचना की और कहा 'हम मोटे तौर पर जनता के साथ अपना सपक खो चुके हे।'

लखनऊ अधिवेशन म अध्यक्ष पद से जवाहरलाल नेहरू ने जो कुछ कहा वह अविस्मरणीय है। इसका कारण यह है कि इस अधिवेशन म उन्हाने समाजवादी लक्ष्यो की घोषणा की, फासीवाद और प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध दुनिया की जनता के बढते सघष क परिप्रेक्ष्य मे भारतीय जनता के सघष को सामने रखा और साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो का एक ऐसा व्यापक जनमोर्चा या 'सयुक्त जन मोचा' बनाने की माग की जिसमे मजदूरो और किसानो का मध्यवर्गीय तत्वो के साथ, जिनका काग्रेस म प्रतिनिधित्व है, एकतावद्ध किया जा सके। सभी दिशाआ मे एक नई हलचल दिखाई पडने लगी थी। काग्रेस के अदर समाजवादी खेमा मजबूत होता जा रहा था। लखनऊ अधिवेशन म यह समाजवादी गुट सख्या की दृष्टि से तो छोटा था पर वैसे काफी महत्वपूण था लेकिन 1936 म जब फैजपुर मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ उस समय काग्रेस कमेटी के एक तिहाई सदस्य समाजवादी खेमे के ही थे। लखनऊ अधिवेशन मे नेहरू ने प्रस्ताव रखा था कि मजदूरो और किसाना के सगठनो को सामूहिक तौर पर काग्रेस के साथ सबध कर दिया जाए पर यह प्रस्ताव पारित नही हो सका। काग्रेस कमेटी ने इस प्रस्ताव को 35 के विरुद्ध 16 मतो से नामजूर कर दिया और इस विषय पर विस्तार से विचार करने के लिए एक 'जन सपक समिति' के गठन की बात कही। जनता और जनता के सामाजिक आर्थिक हितो के साथ घनिष्ठ सपक बनाने की जरूरत सभी लोग महसूस कर रहे थे। अभी तक सारा ध्यान चरखे पर और जनता का जीवनस्तर सुधारने पर केंद्रित था लेकिन अब किसानो की वास्तविक मागो को लेकर एक ठोस कृषीय कायक्रम को व्यापक रूप देने की कोशिशे की जाने लगी। फैजपुर अधिवेशन मे एक 13 सूत्री अस्थाई कृषीय कायक्रम मजूर किया गया। इसमे शामिल मागो म लगान और मालगुजारी कम करने, कज की राशि घटाने या समाप्त करने, बधुआ मजदूरी और जमीदारो के पावने की प्रथा समाप्त करने, खेतिहर मजदूरा के लिए एक उचित मजदूरी निर्धारित करने तथा बहुत सामान्य रूप म ही सही किसानो को यूनियन बनाने का अधिकार दने की मागे शामिल थी।

अप्रैल 1936 मे सपन्न लखनऊ अधिवेशन से ही राष्ट्रीय काग्रेस का आधुनिक इतिहास प्रारभ होता है। इस काल मे काग्रेस के कामा म जबरदस्त तेजी आई। दिसबर 1936 मे

फैजपुर अधिवेशन होने के समय तक कांग्रेस के सदस्यों की संख्या बढ़कर 636 000 हो गई। 1937 की समाप्ति तक चुनावों और प्रांतो मे कांग्रेस मंत्रिमंडलो के गठन के बाद यह सख्या 30 लाख से भी अधिक हो गई। फरवरी 1938 मे जब कांग्रेस का हरिपुरा अधिवेशन हुआ तो सदस्यो की संख्या 3,102 000 तक पहुच गई थी। 1938 खत्म होते होते 40 लाख से भी अधिक लोग कांग्रेस के सदस्य हो चुके थे। इनमे से अकेले संयुक्त प्रांत मे साढे बारह लाख सदस्य थे। 1939 मे कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन के समय सदस्यो की सख्या करीब करीब 50 लाख हो चुकी थी।

2 1937 के चुनावो मे विजय

नए सविधान के प्रति राष्ट्रीय कांग्रेस का क्या रवैया था इसकी सिद्धात रूप मे घोषणा 1934 मे ही उस समय हो गई थी जब सविधान सभा की माग को मजूर किया गया था। आने वाले वर्ष मे नए अधिनियम के तहत चुनाव लडने के फैसले को लखनऊ अधिवेशन ने अपनी स्वीकृति दे दी। अगस्त 1936 मे चुनाव घोषणापत्र जारी किया गया जिसका अनुमोदन फैजपुर अधिवेशन ने कर दिया। दिसबर 1936 मे फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन के प्रस्ताव ने, चुनाव लडने के सदर्भ मे कांग्रेस के निश्चित दृष्टिकोण की घोषणा कर दी

> देश की जनता की घोषित आकाक्षा के विरुद्ध भारत पर थोपे गए सविधान और 1935 के भारत रक्षा अधिनियम को यह अधिवेशन एक बार फिर पूरी तरह अस्वीकार करने की घोषणा करता है। अधिवेशन की यह धारणा है कि इस सविधान के साथ किसी भी तरह का सहयोग भारत के स्वतत्रता सग्राम के साथ विश्वासघात होगा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पकड को मजबूत बनाना होगा तथा साम्राज्यवादी प्रभुत्व के जुए तले बेहद गरीबी की चक्की मे पहले से ही पिस रही जनता का शोषण और भी अधिक बढाना होगा। इसलिए अधिवेशन एक बार फिर अपने इस सकल्प को दोहराता है कि कांग्रेस न तो इस सविधान के सामने आत्मसमर्पण करेगी और न इसके साथ सहयोग करेगी बल्कि वह विधानमडल के बाहर और भीतर हर जगह इसके खिलाफ सघर्ष करेगी ताकि इसका अत कर सके। कांग्रेस किसी विदेशी शक्ति या सत्ता द्वारा भारत के राजनीतिक और आर्थिक ढाचे को सचालित करने की बात को कभी मान्यता नही देती है और न देगी और इस तरह के हर प्रयास का भारतीय जनता के सगठित और दृढप्रतिज्ञ विरोध द्वारा मुकाबला किया जाएगा। भारतीय जनता केवल उस सावैधानिक ढाचे को अपनी मजूरी देगी जिसका निर्माण स्वय उसने किया हो और जो एक राष्ट्र के रूप मे भारत की आजादी पर आधारित हो तथा जो उनकी आवश्यकताओ और आकाक्षाओ के अनुसार विकास का उन्हे पूर्ण अवसर दे।

कांग्रेस भारत मे एक ऐसे वास्तविक जनवादी राज्य की स्थापना के पक्ष मे है

जिसम राजसत्ता का हस्तातरण कुल मिलाकर जनता को कर दिया गया हो और सरकार जनता के प्रभावकारी नियत्रण मे रहे। ऐसे राज्य की स्थापना सविधान सभा के जरिए ही हो सकती है जो बालिग मताधिकार पर आधारित हो तथा जिसके पास इतना अधिकार हो कि वह देश के सविधान के बारे मे अतिम तौर पर निणय करे। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काग्रेस देश मे काम कर रही है और जनता को सगठित कर रही है। विधानमडल म काग्रेस के प्रतिनिधियो को भी हमेशा यही बात ध्यान म रखनी होगी।

नए सविधान के अतगत विधानमडलो के लिए निवाचित काग्रेस सदस्य कोई पद स्वीकार करे या अस्वीकार करे, इसका फैसला प्रातीय चुनावो के समाप्त होते ही अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी करेगी।

पद स्वीकार करने के मसले पर फैजपुर अधिवेशन में मतभेद था। बहुमत की राय यह थी कि इस विषय मे किसी तरह के फैसले को अभी स्थगित रखा जाए। डागे (मेरठ षडयत्र के अभियुक्त और कम्युनिस्ट नेता) ने एक सशोधन पेश किया जिसमे सविधान सभा का गठन सभव बनाने के लिए जनसघष की तैयारी करने की बात थी लेकिन काग्रेस कमेटी ने 45 के विरुद्ध 83 मता से और काग्रेस के पूण अधिवेशन ने 62 के विरुद्ध 451 मतो से इस प्रस्ताव को नामजूर कर दिया। कोई पद निश्चित रूप स स्वीकार न करने के बारे मे प्रस्तुत सशोधन को काग्रेस कमेटी ने 48 के विरुद्ध 87 मता से नामजूर कर दिया।

चुनावो मे काग्रेस ने एक ऐसे सगठन के रूप म भाग लिया जो अखिल भारतीय था। विभिन्न प्रातो म काग्रेस के विरुद्ध चुनाव के मदान म उतरने के लिए साप्रदायिक और मौसमी पार्टियो का एक झुड तैयार हो गया। य पार्टिया जल्दी जल्दी बनाई गई थी और इनको अप्रत्यक्ष रूप से सरकार का भी समथन प्राप्त था। लेकिन इन सबके बीच राष्ट्रीय काग्रेस सयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे के रूप म डटी रही। इस राष्ट्रीय एकता, पूण राष्ट्रीय स्वाधीनता के लक्ष्य की दृढ घोपणा, सामूहिक गिरफ्तारियो और गैरसाविधानिक तरीको से चलाए गए जनआदोलनो से भरे सघर्षों का इतिहास ही वह पहला कारण था जिसने चुनाव मे काग्रेस की विजय को सभव बनाया।

काग्रेस का चुनाव घोपणापत्र एक ऐसा दस्तावेज था जिसने पूण राष्ट्रीय स्वाधीनता और सविधान सभा की उपलब्धि के लक्ष्य को प्रमुख स्थान दिया। साम्राज्यवादी सविधान की बिना शत भत्सना की और विधानमडल मे अपने प्रतिनिधि भेजने का मकसद स्पष्ट किया कि व वहा किसी भी प्रकार का सहयाग करने नही बल्कि अधिनियम के खिलाफ जमकर सघप करने और उसे समाप्त करन जा रह हैं।' इसके अलावा चुनाव घोपणापत्र सामान्य सिद्धाता पर नही टिका था। इसने एक ठोस और तात्कालिक कायक्रम भी तैयार किया जिसमे नागरिक स्वातत्र्य और समान अधिकारो की जनवादी मागें थी तथा एक ऐसा

सामाजिक और आर्थिक कायक्रम था जो जनता के व्यापक हिस्से को अनुकूल लगे। चुनावो म कांग्रेस की जीत का यह दूसरा कारण था।

कांग्रेस ने अपने चुनाव घोषणापत्र म जो सामाजिक और आर्थिक कायक्रम प्रस्तुत किया था वह बाद म गठित कांग्रेस मत्रिमडलो की नीतिनिर्धारण की दृष्टि से विशेष महत्वपूण है। उसके प्रमुख अशो मे कहा गया था

> कांग्रेस महसूस करती है कि इन विधानमडलो से न तो आजादी प्राप्त की जा सकती है और न गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्याओ का कारगर हल ढूढा जा सकता है। फिर भी कांग्रेस भारत की जनता के सामने अपना आम कायक्रम रख रही है ताकि उन्हे पता चल सके कि कांग्रेस का दृष्टिकोण क्या है और कांग्रेस के हाथो म जब शासन की बागडोर होगी तो वह किन लक्ष्यो को प्राप्त करने की कोशिश करेगी।
>
> 1931 म कांग्रेस के कराची अधिवेशन म कांग्रेस के आम लक्ष्य को मौलिक अधिकारो से सबधित प्रस्ताव मे परिभाषित किया गया था। वह आम परिभाषा आज भी बनी हुई है। फिर भी पिछले पाच वर्षों म निरतर बढ़ते सकट के कारण यह जरूरी हो गया कि गरीबी, बेरोजगारी तथा अय आर्थिक समस्याओ पर विस्तार से विचार किया जाए।
>
> देश के सामने सबसे महत्वपूण और अत्यावश्यक समस्या है जबरदस्त गरीबी, बेरोजगारी और किसानो पर लदा कज का बोझ। इनका बुनियादी कारण पुरातन और दमनात्मक भूमिव्यवस्था और लगान प्रणाली है। इसके साथ ही हाल के वर्षों मे खेतिहर उत्पादनो की कीमतो मे आई जबरदस्त मन्दी ने स्थिति को और गभीर बना दिया है।
>
> कराची अधिवेशन म की गई अपनी घोषणा को कांग्रेस फिर [illegible] है कांग्रेस जमीन की काश्त, मालगुजारी [illegible] प्रणाली म सुध [illegible]
> है और खेतिहर भूमि पर [illegible] उचित व्यव [illegible] पक्ष म
> है। इसके लिए वह किसानो [illegible] जाने वाली [illegible]
> मालगुजारी की राशि म [illegible] है
> कि अलाभकर जोतो को [illegible] मुक्त
>
> किसा [illegible] वि [illegible]
> चाहिए [illegible]
> घोषणा [illegible]

किया जाए तथा राज्य द्वारा आसान ब्याज पर ऋण देने की सुविधा की व्यवस्था की जाए। यह राहत खेतिहर काश्तकारो, किसान भूस्वामियो, छोटी जोत वाला और छोट व्यापारियो तक पहुचाई जानी चाहिए।

जहा तक औद्योगिक मजदूरा का सबध है काग्रेस की नीति यह है कि उनका जीवनस्तर उन्नत किया जाए, जहा तक देश की आर्थिक स्थितिया अनुमति दें उनके काम के घटे और श्रम की स्थितिया अतर्राष्ट्रीय मानदडो के अनुसार निधारित की जाए, कमचारियों और मालिको के झगडे निबटाने के लिए उचित व्यवस्था की जाए, वृद्धावस्था, बीमारी और बेरोजगारी के दिनो की आर्थिक तगी के लिए उपाय किए जाए तथा मजदूरा को यह अधिकार दिया जाए कि वे अपने हिता की रक्षा के लिए यूनियन बना सकें और हडताल कर सके।

काग्रेस ने पहले ही घोषित कर दिया है कि वह लिंग के आधार पर किसी का अयोग्य ठहराए जान के पक्ष म नही है, चाहे यह कानूनी क्षेत्र मे हो या सामाजिक क्षेत्र म अथवा सावजनिक जीवन के किसी भी क्षेत्र म। इसने मातृत्व सबधी सुविधाओ और महिला श्रमिका की सुरक्षा के पक्ष म अपनी धारणा व्यक्त की है। भारत की महिलाओ न स्वाधीनता सघष मे प्रमुख भूमिका निभाई है और काग्रेस की दृष्टि मे स्वतत्र भारत म महिलाओ को भी पुरुषो जैसे ही विशेषाधिकार तथा दायित्व मिलने चाहिए।

काग्रेस ने छुआछूत मिटाने तथा हरिजनो और पिछडी जाति के सदस्यो का सामाजिक और आर्थिक विकास करने पर जोर दिया है उसे सभी जानते हैं। काग्रेस की धारणा है कि इन्ह सभी नागरिक मामलो मे अन्या की तरह समाज-अधिकार मिलने चाहिए।

खादी और ग्रामोद्योग को बढ़ावा देना भी काग्रेस के कायक्रम की एक मुख्य योजना रही है। जहा तक बडे उद्योगो का सवाल है, उन्ह सुरक्षा दी जानी चाहिए पर मजदूरो और कच्चे माल के उत्पादका के अधिकारो को सरक्षण दिया जाना चाहिए और ग्रामीण उद्योगा के हितो को उचित सम्मान मिलना चाहिए।

इस व्यापक जनतात्रिक कायक्रम ने, जिसमे किसाना और औद्योगिक मजदूरा की तात्कालिक मागे प्रत्यक्ष तौर पर मुखर हो रही थी, चुनाव प्रचार मे काग्रेस द्वारा प्राप्त जबरदस्त जनसमथन (जो वास्तविक मतदाताओ स कही अधिक था) को सक्रिय बनाने म बहुत बडी भूमिका निभाई।

चुनाव के नतीजा ने पता चला कि राष्ट्रीय काग्रेस को जो अभूतपूव सफलता मिली उससे

सरकारी और आधिकारिक खेमे के लोग दंग रह गए और इससे बहुत प्रभावशाली ढंग से यह पता चला कि जनता के अंदर आजादी की भावना कितनी जोर पकड़ चुकी है। सरकार ने कांग्रेस के विरुद्ध हर तरह की ताकत लगाने में कोई कसर न छोड़ी थी। चुनाव अभियान के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस के महासचिव की रिपोर्ट के अनुसार कांग्रेस को हराने के प्रयास में सरकार ने सक्रिय रूप से अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया

> सरकार के कान खड़े हो गए थे। उसे पता था कि कांग्रेस की सफलता नए संविधान के लिए अशुभ है। विरोधों के बावजूद वह चुनाव के दौरान परोक्ष और अपरोक्ष रूप से अपने प्रभाव का इस्तेमाल करती रही। उसने कई पार्टियों के गठन में मदद की। संयुक्त प्रांत की नेशनल ऐग्रिकल्चरलिस्ट पार्टी, पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी तथा अन्य कई स्थानों पर इस तरह की पार्टियों को प्रांतीय सरकारों का समर्थन प्राप्त था (कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में महासचिव की रिपोर्ट 1938)

संयुक्त प्रांत में कोर्ट आफ वार्ड्स के सचिव द्वारा एक पत्रक जारी किया गया

> सामान्य तौर पर खेतीबारी से संबद्ध वर्ग और खासतौर से उस वर्ग के हित के लिए जिसका हम प्रतिनिधित्व करते हैं कांग्रेस को जहां तक संभव हो सके करारी मात देना बहुत जरूरी है इसलिए कोर्ट ने उस उम्मीदवार को समर्थन देने का फैसला किया है जो कांग्रेस का सक्रिय रूप से विरोध करेगा जिले के अधिकारियों को निर्देश दिया गया है कि वे प्रांत के एक एक निर्वाचन क्षेत्र का व्यवस्थित ढंग से सर्वेक्षण करें और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में उस उम्मीदवार की मदद के लिए खुद को तैयार रखें जो सरकार के प्रति निष्ठावान हो।

इस पत्रक को जारी करने के संदर्भ में सरकारी तौर पर खेद व्यक्त किया गया लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि हर संभव प्रभाव का इस्तेमाल किया गया भले ही हर बार ऐसा इतना खुलकर न किया गया हो।

कांग्रेस को कितने बड़े पैमाने पर सफलता मिली इसकी जानकारी हम चुनाव परिणामों से पा सकते हैं। कांग्रेस द्वारा विजित कुल 715 सीटों का महत्व उस समय और बढ़ जाता है जब हम यह याद करते हैं कि कुल 1 585 सीटों में से, दरअस्ल, 657 सीटें ही ऐसी थी, जो खुली प्रतियोगिता के लिए थी और किसी विशेष वर्ग के लिए अलग नहीं की गई थी।

कांग्रेस को मद्रास (ऊपरी सदन में भी) बंबई संयुक्त प्रांत, बिहार (ऊपरी सदन में भी), मध्यप्रांत और उड़ीसा में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। बंगाल और असम में इसे अकेली सबसे बड़ी पार्टी का दरजा मिला। लिबरल पार्टी के लोगों को (अर्थात नरमदलियों को) हर जगह मात खानी पड़ी। जस्टिस पार्टी (पुरानी गैरब्राह्मण पार्टी) का पूरी तरह सफाया

हो गया जबकि एक समय मद्रास में उसकी धाक जमी हुई थी। उसे कुल सीटों के बारहवें भाग से भी कम सीटें मिली। इस पार्टी पर सरकार की कृपा भी थी। इसी प्रकार सरकार की कृपाप्राप्त 'नेशनल ऐग्रिकल्चरिस्ट पार्टी' को संयुक्त प्रांत में और भी बुरे दिन देखने पड़े। कांग्रेस की हालत केवल पंजाब और सिंध में बुरी रही।

प्रांतीय चुनावों के परिणाम, 1937

प्रांत	कुल सीटें	सबके लिए सामान्य सीटें	कांग्रेस	मुस्लिम लीग	मुस्लिम सीटें निर्दलीय	अन्य
मद्रास	215	116	159	11		45[1]
बंबई	175	99	88	20	10	57
बंगाल	250	48	50	40	43	117[2]
संयुक्त प्रांत	228	120	134	27	30	37[3]
पंजाब	175	34	18	1	—	156[4]
बिहार	152	71	98	—	15	39
मध्य प्रांत	112	64	71	—	14	27
असम	108	40	35	9	14	50
सरहदी सूबा	50	9	19	—	2	29
उड़ीसा	60	38	36	—	—	24
सिंध	60	18	7	—	—	53
कुल योग	1,585	657	715	108	128	634

1 जस्टिस पार्टी सहित, 17। 2 प्रजा पार्टी सहित, 38।
3 नेशनल ऐग्रिकल्चरलिस्ट पार्टी सहित, 16। 4 ज्यादातर यूनियनिस्ट पार्टी।

कांग्रेस को जिन सीटों पर सफलता मिली, वे लगभग सारी सीटें 'सामान्य' वर्ग की थीं। जिन 58 मुस्लिम सीटों के लिए चुनाव हुआ उनमें से 26 पर कांग्रेस को सफलता मिली (15 सीटें सरहदी सूबे में)। मजदूरों, स्त्रियों और ईसाइयों के लिए निर्धारित कुछ सीटों पर भी सफलता मिली। भूस्वामियों के लिए निर्धारित 4 सीटें और वाणिज्य तथा उद्योग के लिए निर्धारित 3 सीटें भी कांग्रेस को मिलीं।

चुनाव में कांग्रेस को मिली सफलता का साम्राज्यवादियों के सोच पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय कांग्रेस को अभी तक एक 'मामूली अल्पमत' का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी मानकर चलने वाले समाचारपत्र 'लंदन टाइम्स' को मजबूर होकर अपनी इस धारणा को पूरी तरह तिलांजलि देनी पड़ी और लिखना पड़ा

एक बार फिर भारत के चुनावों ने दिखा दिया कि केवल कांग्रेस पार्टी ही ...

> पार्टी है जिसका महज प्रातीय आधार पर सगठन नही है। इसकी सफलताओ का लेखा जोखा अत्यत प्रभावशाली है कांग्रेस का काम कुल मिलाकर बहुत अच्छा रहा और हालाकि इसका श्रेय काफी हद तक कांग्रेस के उत्तम सगठन को और अपेक्षाकृत दकियानूस तत्वो की फूट तथा उनके सगठन की कमी का है फिर भी यह नही कहा जा सकता कि कांग्रेस की इन तमाम सफलताओ का कारण महज यही बातें थी इस पार्टी के तमाम प्रस्ताव, अधिकाश विपक्षी पार्टियो के प्रस्तावो की तुलना म ज्यादा सकारात्मक और रचनात्मक रहे हे। ग्रामीण निर्वाचन क्षेत्रो म जहा इसे आश्चयजनक सफलता मिली है, इसने ग्रामीण सुधार का एक व्यापक कायक्रम सामने रखा पार्टी को ऐसे मसलो क कारण विजय मिली जिनम उन लाखो करोडो लोगो की दिलचस्पी है जो गावो म रहत है और मतदाता है और जो मतदाता नही ह ऐसे लाखो लोगो की भी दिलचस्पी है। ('दि टाइम्स', 9 माच 1937)

अतिम मुद्दा विशेष रूप मे महत्वपूर्ण है। हालाकि साम्राज्यवादियो न समूची चुनाव प्रणाली को खानो म बाटकर उसे अत्यत सीमित कर रखा था फिर भी मतदान म भाग लेने वाले 1 करोड 55 लाख लोगो तथा उनके द्वारा कांग्रेस को मिले अपार बहुमत से पता चलता ह कि आजादी और सामाजिक प्रगति की देशवासियो को कितनी प्रबल आकाक्षा है। यह बताने की जरूरत नही कि यदि व्यापक जनता को, जिसके बारे मे दि टाइम्स भी स्वीकार करता है कि कांग्रेस के कायक्रम से बहुत प्रभावित थी, यदि वोट देने का अधिकार होता तो कांग्रेस को कितना विशाल बहुमत प्राप्त होता।

3 कांग्रेस के प्रातीय मत्रिमडल

चुनावो के बाद उन प्रातो म, जहा कांग्रेस को बहुमत मिला था, कांग्रेस मत्रिमडलो के गठन का प्रश्न अतिम रूप से हल किया जाना था। माच 1937 म, विस्तार से एक नियम तैयार किया गया और वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकार कर लिया गया जिसम कांग्रेस के सदस्यो को कुछ शर्तो के तहत पद स्वीकार करने का अधिकार दिया गया था

> अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उन प्रातो म जहा क विधानमडल म कांग्रेस का बहुमत है अपने सदस्यो को यह अधिकार और अनुमति देती है कि व पद स्वीकार करें लकिन इसके साथ एक शत है। मत्रिपद तब तक स्वीकार नही किया जा सकता जब तक विधानमडल म कांग्रेस दल का नता इस बात स आश्वस्त न हो जाए और सावजनिक रूप स यह घोषित करने योग्य न हो जाए कि मत्रियो के सावैधानिक कार्यों क मामल म गवनर न तो हस्तक्षेप करने के अपने विशेषाधिकार का इस्तेमाल करेगा और न मत्रियो की सलाह को दरकिनार करेगा।

यह नियम गाधी ने तैयार किया था और 70 के मुकाबले 127 मतो से इसे मजूर किया गया था। समाजवादियो और वामपथियो के बहुमत ने आमतौर से इस बात का विरोध किया था कि काग्रेसजन किसी पद को स्वीकार करें। उन्होने इसे साम्राज्यवादियो की तरफ से दी गई रियायत माना था और उन्हे इस बात का खतरा लगा था कि इससे जन-सघर्षों को छोडकर लोग यही रास्ता अख्तियार करने लगेंगे। पद स्वीकार करने के विरोध मे उन्होने जो सशोधन पेश किया था वह 78 के मुकाबले 135 मतो से नामजूर कर दिया गया। मोटे तौर पर इस विरोध का कारण यह था कि वामपथियो और समाजवादियो का नरमपथी सविधानपरस्त नेताओ मे विश्वास नही था और उन्हे डर था कि इस तरह के नेताओ का वग काग्रेस की नीति को साम्राज्यवादियो के साथ अधिक से अधिक समझौता करने की नीति मे बदल देगा।

कुछ शर्तों के तहत पद स्वीकार करने के पक्ष मे लिए गए फैसले के तीन महीने बाद काग्रेस मत्रिमडलो का गठन हुआ। काग्रेस अपनी इस माग पर डटी रही कि सरकार पहले इस बात की घोषणा करे कि गवर्नरो के विशेष अधिकारो का इस तरह इस्तेमाल नही किया जाएगा जिससे मत्रियो के सावैधानिक क्रियाकलाप प्रभावित हो। इस बीच 1 अप्रैल को अर्थात 'मूख दिवस' को (साम्राज्यवादी कार्यालयो के दिल मसखरे लोगो ने यह तिथि निर्धारित की थी इसका कोई इतिहास नही है) नए सविधान का उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर देशभर मे पूर्ण हडताल रही। चूकि काग्रेस तथा सरकार के बीच बातचीत मे गतिविरोध अभी बना हुआ था इसलिए बिना बहुमतवाले अतरिम मत्रिमडलो का गठन कर दिया गया। यह गतिरोध 22 जून को अतिम तौर पर तब समाप्त हुआ जब वायसराय ने एलान किया कि सभी गवर्नरो की कोशिश यह होगी कि वे अपने मत्रियो के साथ, चाहे वे किसी भी पार्टी के क्यो न हो किसी तरह का सघर्ष तो पैदा होने ही नही देंगे, हा यदि इस तरह का कोई सघर्ष हो तो वे उसका समाधान करने मे भी कोई कसर नही उठा रखेंगे। 'इस तरह की समझदारी के बाद काग्रेस ने पद स्वीकार किए हालाकि कायसमिति के अतिम प्रस्ताव मे यह स्पष्ट कर दिया गया कि वायसराय तथा अन्य अधिकारियो की घोषणाओ मे यद्यपि काग्रेस की माग के साथ तालमेल बैठाने की इच्छा प्रदर्शित की गई है फिर भी अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने जिन शब्दो मे आश्वासन की माग की थी उसकी पूर्ति यहा नही हो पाई है।

जुलाई 1937 मे छ प्रातो, बबई मद्रास, सयुक्त प्रात बिहार, मध्य प्रात और उडीसा मे काग्रेस मत्रिमडलो का गठन हो गया। इन प्रातो मे विधान सदन मे काग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त था। सरहदी सूबे मे 8 गैरकाग्रेसी सदस्यो का एक गुट काग्रेस मे शामिल हो गया और इस गुट ने काग्रेस का अनुशासन स्वीकार किया (एक हस्ताक्षरित घोषणा के द्वारा) जिससे काग्रेस को इस प्रात मे भी पूर्ण बहुमत मिल गया और वहा भी काग्रेस का मत्रि-मडल बन गया। इस प्रकार ब्रिटिश भारत के 11 जिलो मे से सात जिलो मे जिनकी कुल आबादी लगभग 16 करोड (ब्रिटिश भारत की कुल आबादी का $\frac{2}{3}$ भाग और भारत की

कुल आबादी का लगभग ½ भाग) थी, कांग्रेस मंत्रिमंडलों की स्थापना हो गई। बाद में असम और सिंध में भी कांग्रेस की मिलजुली सरकारें बन गई।

कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रिमंडलों का दो वर्ष से भी अधिक समय तक अस्तित्व बना रहा। युद्ध के कारण उत्पन्न संकट एवं केंद्र सरकार के साथ अनबन के कारण इन मंत्रिमंडलों ने नवंबर 1939 में इस्तीफा दे दिया। इन दो वर्षों के अंदर कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने जो कुछ किया उससे राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर जबरदस्त विवाद पैदा हो गया।

प्रांतों में जो कांग्रेस मंत्रिमंडल थे उन्हें किसी भी आधुनिक संसदीय अर्थ में सरकार नहीं कहा जा सकता। अगस्त 1938 में गांधी ने 'हरिजन' अखबार में एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने इन मंत्रिमंडलों के बेहद सीमित अधिकारों की बात साफ साफ कही और कहा कि इन्हीं कारणों से देश के वास्तविक मुक्तिसंग्राम में एक साधन के रूप में इन मंत्रिमंडलों की विशेष भूमिका है

> जनतांत्रिक ब्रिटेन ने भारत में एक उम्दा किस्म की प्रणाली स्थापित की है जिसे यदि आप उसके नग्न रूप में देखें तो पता चलेगा कि यह और कुछ नहीं बल्कि अत्यंत संगठित सैनिक नियंत्रण है। वर्तमान भारत सरकार अधिनियम के तहत यह किसी भी अर्थ में कम नहीं है। जहां तक वास्तविक नियंत्रण की बात है ये मंत्रिमंडल महज साम्राज्यवादियों के हाथ की कठपुतलियां हैं। गवर्नर के आदेश मात्र से कोई कलक्टर या पुलिस अधिकारी मंत्रियों को उनके पद से हटा सकता है उन्हें गिरफ्तार कर सकता है और जेल में डाल सकता है। इसीलिए मैंने कांग्रेस को यह सुझाव दिया है कि उसके सदस्यों ने पदों को स्वीकार किया है इसलिए नहीं कि उन्हें साम्राज्यवादियों के बनाए ढांचे के अनुरूप काम करना है बल्कि इसलिए ताकि वे जल्दी वह दिन ला सकें जब इस अधिनियम के स्थान पर भारत द्वारा सही अर्थों में निर्मित अधिनियम पेश किया जा सके।

लेकिन इस तरह की नीति का पालन कोई क्रांतिकारी नेतृत्व ही कर सकता था। मंत्रिमंडलों में नरमदली नेताओं का प्रभुत्व था और यही वजह थी कि उन्होंने एक अलग नीति का ही पालन किया। व्यवहार में इन मंत्रिमंडलों ने 'अधिनियम' पर उसी तरह अमल करना शुरू किया जिस तरह की आशा अधिनियम के निर्माताओं ने की थी और साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि भी अपने इस प्रयोग की 'सफलता' पर हुई खुशी को छिपा नहीं सके। नागरिक स्वातंत्र्य, कृषि के क्षेत्र से संबंधित कानून के निर्माण तथा सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक सुधारों की दिशा में किए गए प्रयासों के मामले में खासतौर से शुरू के वर्षों में कुछ सफलता मिली। इन सुधारों ने साम्राज्यवादी प्रभुत्व और शोषण के प्रमुख आधारों तथा आम जनता की गरीबी पर कोई असर नहीं पड़ा। इन सुधारों की कीमत के रूप में कांग्रेस मंत्रिमंडलों का अस्तित्व बना रहा और आम जनता के खिलाफ

साम्राज्यवादी प्रशासन के एक अग के रूप म उन्होने दिन व दिन खुलकर काम किया।

काग्रेस मत्रिमडलो का नागरिक स्वतत्रता के क्षेत्र म सबसे महत्वपूर्ण सफलता मिली। इस क्षेत्र म जो सफलता प्राप्त हुई वह खासतौर से शुरू के वर्षों की सफलता थी। एक एक करके लगभग सभी राजनीतिक बदी रिहा कर दिए गए। 1921 और 1922 मे क्रमश चौरीचौरा काड और मापला विद्रोह मे शामिल लोग इस समय तक जेलो मे सजाए काट रहे थे, उन्हे भी रिहा कर दिया गया। गढवाली सैनिको को भी रिहा कर दिया गया। अनेक राजनीतिक सगठनो पर से प्रतिबध हटा लिया गया (लेकिन केंद्र सरकार द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी पर लगाया गया प्रतिबध जारी रहा)। राजनीतिक कायकर्ताओ के एक स्थान म दूसरे स्थान जाने पर लगी पाबदी हटा दी गई। समाचारपत्रो से ली गई जमानत राशिया वापस कर दी गई और उस सूची को रद्द कर दिया गया जिनम ऐसे समाचार पत्रो के नाम थे जिन्हे उनकी राजनीतिक विचारधारा के कारण सरकारी विज्ञापनो आदि से वचित कर दिया गया था। समाचारपत्रो तथा अन्य प्रकाशनो को आशिक तौर पर स्वतत्रता प्रदान की गई और इसका पता इस तथ्य से चलता है कि उन दिनो राजनीतिक विचारधारावाले साहित्य के प्रकाशन मे जबरदस्त वृद्धि हुई।

तो भी, शुरू के दिनो से ही यह पता चलने लगा था कि काग्रेस मत्रिमडलो ने साम्राज्यवाद के पुलिस प्रशासन के अग के रूप म अपनी भूमिका निभाना शुरू कर दिया है। शुरू के ही कुछ महीनो के दौरान लोग उस समय सकते म आ गए जब मद्रास सरकार ने एक प्रमुख काग्रेस समाजवादी को राजद्रोह के जुर्म म छ महीने की सजा दी। कई मामलो मे धारा 124 ए (राजद्रोहात्मक प्रचार के विरुद्ध) और धारा 144 (सभाओ आदि पर पाबदी के लिए) का प्रयोग किया गया। इन दोनो घृणित धाराओ के खिलाफ पहले काग्रेस जोरदार शब्दो म आवाज उठाया करती थी और दमन के इन तरीको की भर्त्सना किया करती थी। इन घटनाओ से काग्रेस सगठन के अदर ही जबरदस्त विवाद पैदा हो गया। 'अहिंसा' के सिद्धात म स्वभावतया अद्भुत लचीलापन था 'हिंसा का प्रचार' करने वालो के विरुद्ध की जाने वाली पुलिस कार्यवाहियो और सजाओ को भी इस सिद्धात के अतगत शामिल कर लिया गया। दरअसल 'हिंसा का प्रचार' एक ऐसी शब्दावली थी जिसका मनमाने ढग से इस्तेमाल उस मत के विरुद्ध किया जाता था जो मौजूदा प्रशासन के विरुद्ध होता था और जो जनसघर्षों की हिमायत करता था। इस विवाद की जड मे काग्रेस के अदर के उच्च और मध्यवर्गीय तत्वो की चिताए थी जो मजदूरो और किसानो के तेजी से बढते आदोलन के कारण उत्पन्न हुई थी।

सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र म नए मत्रिमडलो ने बहुत सीमित कार्यक्रम लागू करने का प्रयास किया। इन्होंने उन जबरदस्त अवरोधो से निबटने का प्रयास नही किया जिनका प्रतिनिधित्व साम्राज्यवादी प्रभुत्व के अतगत वतमान भूमिव्यवस्था और आर्थिक

प्रणाली करती थी। इन्होंने जमींदारों और धनवानों के प्रति काफी लिहाज बरती क्योंकि कांग्रेसी नेतृत्व के नरमदली खेमे पर इनका काफी असर था।

कानून की दृष्टि से खासतौर से किसानों के संदर्भ में कुछ तात्कालिक उपाय लागू किए गए। किसानों पर लदे कर्ज की समस्या ऐसी थी जिसका तत्काल समाधान जरूरी था। मद्रास ऐग्रिकल्चरिस्ट डेट रिलीफ ऐक्ट के जरिए कर्ज की बकाया राशि का एक अंश रद्द कर दिया गया। संयुक्त प्रांत और बंबई में तत्काल ऋण स्थगन की व्यवस्था की गई। ऋण की राशि कम करने और ब्याज की दर सीमित करने (सामान्यतः 6-9 प्रतिशत तक) के उपाय किए गए। काश्तकारी कानून लागू किया गया जिसका उद्देश्य बेदखली के खिलाफ एक निश्चित सीमा तक सुरक्षा देना, लगान की राशि में वृद्धि को रोकना, अनियमित वसूली और जुर्माने को दूर करना और लगान की बकाया राशि पर ब्याज को सीमित करना था। कुछ मामलों में जमीन की मालगुजारी माफ कर दी गई। बंबई में 40,000 'दुबलों' या बंधुआ खेतिहर गुलामों को मुक्त कर दिया गया।

कृषि के क्षेत्र में जो कानून बने वे काफी अपर्याप्त थे और उनका क्षेत्र भी काफी सीमित था। इन्हें लागू करने के लिए किसानों को जबरदस्त आंदोलनों और प्रदर्शनों का सहारा लेना पड़ा। किसानों के इन प्रयासों का जमींदारों ने जमकर विरोध किया और इन्हें विफल बनाने के लिए अपने असर का इस्तेमाल किया। कर्ज की राशि में जो सचमुच कटौतियां हुई वह कर्ज की राशि समूची राशि की तुलना में बहुत कम थी। काश्तकारी से संबंधित कानून ने काश्तकारों के एक अल्पमत को लाभ पहुंचाया (इस प्रकार बाबे टेनेंसी बिल के साथ संलग्न विवरण के अनुसार इस बिल से केवल 4 प्रतिशत काश्तकारों को लाभ होने की आशा थी)। खेतिहर मजदूर अप्रभावित रहे। हालांकि, मद्रास में वे कुल आबादी का 42 प्रतिशत थे पर उन्हें ऐग्रिकल्चरिस्ट डेट रिलीफ ऐक्ट से अलग रखा गया। किसानों के लिए जितने भी कानून बने थे उन सबमें इस तरह की सीमाएं स्पष्ट दिखाई देती थीं। इनसे यह पता चलता था कि इस तरीके से छोटी मोटी तात्कालिक रियायतें तो हासिल हो सकती हैं पर किसानों को कोई गंभीर राहत देने के लिए इन उपायों से कहीं अधिक बुनियादी और प्रगतिशील उपाय अमल में लाने जरूरी हैं। बिहार, उड़ीसा और संयुक्त प्रांत में किसानों का आंदोलन जबरदस्त होता गया क्योंकि जमींदारों के विरोध को रोकने में कांग्रेस के मंत्री असफल साबित हुए थे और इस स्थिति से किसान बेहद असंतुष्ट थे। बिहार में तथाकथित कांग्रेस जमींदार गठबंधन की भर्त्सना की गई। कुल मिलाकर काश्तकारी कानून अत्यंत कम प्रभावकारी था और उसका लक्ष्य शिकमी काश्तकारों या बेदखल किए गए किसानों की बजाय बड़े किसानों के हितों की रक्षा करना था।

कांग्रेस मंत्रिमंडलों के गठन से औद्योगिक मजदूरों की सक्रियता में काफी तेजी आई उन्होंने अपने वेतन बढ़ाने की मांगें रखीं और ट्रेड यूनियन संगठन को मजबूत बनाने का

काम शुरू किया। 1937 में हुई हडतालो म कुल 90 लाख काम के दिनो का नुकसान हुआ जो पिछले तीन वर्षों म हुए नुकसान के कुल योग से भी अधिक था और 1929 के बाद के आकडो म सर्वोच्च था। इन हडतालो मे कुल 647,000 मजदूरो ने भाग लिया जो एक रिकार्ड है। काग्रेस मत्रिमडलो ने जहा मालिक और मजदूर के झगडो को समझौते से निपटाने की नीति को बढावा दिया और इसके लिए श्रम विवाद अधिनियम (ट्रेड डिस्प्यूट्स ऐक्ट) का इस्तेमाल किया वही उन्होने मजदूरो की हालत सुधारने तथा वेतनवृद्धि कराने म अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया। बबई कपडा मिलमजदूर जाच समिति ने मिलमजदूरो के वेतन म वृद्धि की सिफारिश की और मिलमालिको के कुछ विरोध के बावजूद समिति के निष्कर्षों को लागू किया गया। सयुक्त प्रात की काग्रेस सरकार ने कानपुर म मजदूरो की हडताल समाप्त करने के लिए सपन्न समझौते म सहयोग किया लेकिन समझौते के लिए यह शर्त रखी कि मजदूरो के वेतन बढाए जाए और यूनियन को मान्यता दी जाए, और 1938 मे जब मालिको ने फैसले का विरोध करना चाहा तो काग्रेस और मजदूरो की एकता के कारण ही मालिको के खिलाफ उन्हे सफलता मिल सकी।

आदोलन के रूप म हडताल का सहारा लेने के प्रश्न, हडताल के अधिकार से सबधित प्रश्न और ट्रेड यूनियन को मान्यता देने के सवाल को लेकर बडे तीखे मसले पैदा हो गए। मद्रास म मजदूरो और मालिको के विवाद म सरकार ने जितनी बार भी हस्तक्षेप किया वह हमेशा मजदूरो के खिलाफ ही रहा। शोलापुर म धारा 144 लगाने *(जिसम जुलूस निकालने या 5 से अधिक व्यक्तियो के एक साथ इकट्ठा होने पर प्रतिबध लगाया गया था)* हडतालो के विरुद्ध अन्य प्रशासनिक उपायो को अमल म लाने तथा मजदूरवर्ग की गतिविधियो की स्वतत्रता के सदर्भ म बबई सरकार के सामने गभीर कठिनाइया पैदा हो गइ, जो 1938 के उत्तरार्ध म बाबे इडस्ट्रियल डिस्प्यूट बिल को लेकर काफी गभीर हो गईं। इस बिल म कहा गया था कि विवाद हल करने के लिए जो समिति *गठित की जाएगी उसे काम करने के लिए चार महीने की अतरिम अवधि मिलनी चाहिए* और इस अवधि के दौरान हडताल करना गैरकानूनी समझा जाएगा। इस प्रकार इस बिल ने हडताल के अधिकार को अत्यत सीमित कर दिया। इसने यूनियनो के पजीकरण के लिए ऐसे जटिल कायदे-कानून थोप दिए जो कपनी की यूनियनो या मालिको की समर्थनप्राप्त यूनियनो के ही अनुकूल थे। ट्रेड यूनियनो द्वारा इसका विरोध करने पर इसम कुछ सशोधन कर तो दिए गए पर इसके मुख्य सिद्धातो म कोई तब्दीली नही आई और 7 नवबर को बबई प्रातीय ट्रेड यूनियन काग्रेस ने इस बिल के विरोध म हडताल का आह्वान किया। इस हडताल का लोगो ने काफी समर्थन किया। हडतालियो की पुलिस से मुठभेड हुई और कई मजदूर घायल हुए तथा एक मारा गया।

सामाजिक सुधार के क्षेत्र म काग्रेस मत्रिमडलो ने स्थानीय स्तर पर शराबबदी और नशीली दवाओ की रोक पर अपना सारा ध्यान केंद्रित कर दिया था (साम्राज्

सरकार अपनी अधीनस्थ एजेंसियों के जरिए शराब और नशीली दवाओं की बिक्री को प्रोत्साहन देती थी ताकि इससे उसे राजस्व मिले। इसलिए शराबबंदी का अर्थ भारी आर्थिक नुकसान था)। शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधार करने के कार्यक्रमों की योजना तैयार करने के प्रयास किए गए पर शिक्षा संबंधी किसी गंभीर कार्यक्रम के लिए धन की जरूरत थी और सरकार के पास पैसे का अभाव था। सामाजिक कानून बनाने के कुछ प्रयास किए गए जैसे संयुक्त प्रांत में कारखानों में काम करने वाली महिलाओं के लिए प्रसूति सुविधा की व्यवस्था की गई। अपनी आर्थिक सीमा के अंदर सार्वजनिक स्वास्थ्य के उपाय शुरू किए। यह काम खासतौर से गांवों में शुरू किया गया ताकि गांवों में पानी की उचित सप्लाई हो तथा गांवों को स्वच्छ रखा जा सके।

हर कदम पर कांग्रेस मंत्रिमंडलों को जिस सर्वव्यापी समस्या और अवरोध का सामना करना पड़ता था वह थी वित्त की समस्या। दरअस्ल यही वह समस्या थी जिससे पता चलता था कि साम्राज्यवाद के नियंत्रण में ये मंत्रिमंडल कितने असमर्थ थे। वित्त की कमी के कारण उनपर कितनी सीमाएं थोप दी गई थीं इसे हम प्रांतीय सरकारों के बजट की छानबीन करके जान सकते हैं। यह देखा जा सकता है कि वास्तव में कितना काम पूरा किया जा सका।

शिक्षा पर व्यय

(हजार रुपयों में)			
	1937-38	1938-39	1939 40
संयुक्त प्रांत	20,615	20 852	21,242
बंबई	16,805	19 064	20 017
मद्रास	25,796	26 198	26 357

सार्वजनिक स्वास्थ्य पर व्यय

(हजार रुपयों में)			
	1937-38	1938 39	1939 40
संयुक्त प्रांत	2 252	2,458	2,365
बंबई	2 406	2,754	2,810
मद्रास	4,407	2,657	2,730

कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रिमंडलों के गठन और इसके प्रारंभिक दिनों के अनुभव से इसमें मंत्रियों के काम का इतना हाथ न था जितना कि इसके द्वारा उत्पन्न आशा और उत्साह के कारण, राष्ट्रीय आंदोलन में काफी तेजी आई। लेकिन इसका नकारात्मक पहलू भी कम उल्लेखनीय नहीं है। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के दो वर्षों के अनुभव ने अत्यंत गंभीरता के साथ

वे खतरे उजागर कर दिए थे जो पहले से ही समझौतावादी सम्मान वाले नेतृत्व में अंतर्निहित थे। कांग्रेस संगठन और मंत्रिमंडलों पर नरमदलों नेताओं का दबदबा था और वे व्यवहार में साम्राज्यवाद के साथ सहयोग को तेजी से विकसित करने में लगे थे, उच्चवर्ग के जमींदारों और उद्योगपतियों के हित में खुलकर काम कर रहे थे तथा सभी तरह के जुझारू जनसंघर्षों और अभिव्यक्तियों के विरुद्ध बहुत साफ तौर पर अधिकाधिक शत्रुतापूर्ण रवैया अख्तियार कर रहे थे। जैसे जैसे लोगों को इन मंत्रिमंडलों का व्यावहारिक अनुभव होने लगा, लोगों में असंतोष बढ़ता गया। यह बात अधिक से अधिक स्पष्ट होने लगी कि राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष का निर्णायक कार्य सामने आ चुका है और यह कांग्रेस मंत्रिमंडल तंत्र से पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन का एक नया संकट विकसित होने लगा।

4 संघीय संविधान और बढ़ता हुआ संकट

फरवरी 1938 में राष्ट्रीय कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन ने संविधान के संघीय अनुच्छेद और इसको अमल में लाने की कोशिशों के संदर्भ में कांग्रेस की नीति की व्याख्या की। सर्वसम्मति से पारित इस प्रस्ताव में कहा गया था

> कांग्रेस ने नए संविधान को नामंजूर कर दिया है और एलान किया है कि देश की जनता को वही संविधान मान्य होगा जो स्वाधीनता पर आधारित हो और ऐसे संविधान की रचना स्वयं जनता करेगी। इस तरह के संविधान का निर्माण एक ऐसी संविधान सभा के जरिए होगा जिसमें किसी बाहरी सत्ता का हस्तक्षेप न हो। संविधान को अस्वीकार करने की इस नीति पर दृढ़ रहते हुए कांग्रेस ने फिलहाल प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों के गठन की अनुमति, यह बात ध्यान में रखकर दी है कि इससे देश अपना स्वतंत्रता संघर्ष चलाने में मजबूत होगा। प्रस्तावित राज्यसंघ के संदर्भ में अस्थाई तौर पर या किसी खास अवधि के लिए भी इस तरह का लिहाज नहीं किया जा सकता और राज्य संघ के थोपे जाने से भारत को गंभीर क्षति उठानी पड़ेगी तथा इससे वे बंधन और मजबूत होंगे जिन्होंने भारत को साम्राज्यवादी प्रभुत्व के अंतर्गत गुलाम बना रखा है। राज्य संघ की यह योजना सरकार के महत्वपूर्ण जिम्मेदार कार्यों के दायरे से अलग है
>
> इसलिए कांग्रेस एक बार फिर प्रस्तावित राज्य संघ योजना की भर्त्सना करती है तथा प्रांतीय और स्थानीय कांग्रेस कमेटियों के साथ साथ सामान्य तौर पर जनता से और प्रांतीय सरकारों तथा मंत्रिमंडलों से आग्रह करती है कि वे इसका उद्घाटन न होने दें। जनता की घोषित आकांक्षा के बावजूद यदि इसे थोपने की कोशिश की जाती है तो इस तरह के प्रयास का हर तरीके से मुकाबला किया जाना चाहिए और प्रांतीय सरकारों तथा मंत्रिमंडलों को चाहिए कि वे

> इसके साथ सहयोग करने से इंकार करे। यदि ऐसी कोई आकस्मिक स्थिति पैदा होती है तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को यह अधिकार और निर्देश दिया जाता है कि वह यह तय कर ले कि इस दिशा में कौन सी कार्यवाही करनी है।

यह देखा जा सकता है कि इस प्रस्ताव में संविधान के संघीय अनुच्छेद को पूरी तरह नामंजूर कर दिया गया है और समझौते के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई है। यह पूर्ण अस्वीकार इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि संघीय व्यवस्था से स्वराज्य के मार्ग पर कतई नहीं बढ़ा जा सकता, उल्टे इससे साम्राज्यवाद की पकड़ और भी मजबूत होगी।

साम्राज्यवादियों द्वारा संघीय संविधान थोपने की स्थिति में कांग्रेस की रचनात्मक नीति और कार्य की दिशा क्या होनी चाहिए? इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर, जिससे संघर्ष की नई अवस्था और आंदोलन के रूपों का समूचा मसला जुड़ा हुआ है, अभी तक हरिपुरा कांग्रेस ने भी, सिद्धांतवाक्यों के अलावा कुछ भी नहीं कहा है।

सरकारी क्षेत्रों की यह राय थी कि पूर्ण अस्वीकार की यह प्रारंभिक भंगिमा है और आगे चलकर किसी न किसी रूप में कांग्रेस इसे स्वीकार कर लेगी जैसा कि प्रांतों में मंत्रिमंडल बनाने के सिलसिले में हुआ था। हालांकि यह अनुमान करते समय सरकार ने देश के विपक्ष की ताकत को कम करके आंका था फिर भी यदि नए और जबरदस्त संघर्ष के विकल्प के रूप में की गई तैयारियों का न होना हम देखें और कांग्रेस के नेतृत्व में असरदार प्रवृत्ति को देखें तो पता चलेगा कि उनके कथन आधारहीन नहीं थे। ये नरमदली तत्व अधिनियम की शर्तों में या उसके व्यावहारिक कार्यों में संशोधन कराके मोलभाव की गुंजाइश निकाल सकते थे।

1938 के दौरान साम्राज्यवादियों के प्रमुख प्रतिनिधियों और कुछ कांग्रेस नेताओं के बीच कई बार बातचीत हुई और इस आशय की अफवाह फैलाई जाने लगी कि जल्दी ही कोई समझौता हो जाएगा। सरकार की किसी भी घोषणा में इस तरह की अफवाहों का कोई आधार नहीं था। फिर भी यह सही है कि दक्षिणपंथी नेताओं ने अलग अलग वक्तव्य जारी किए जिनमें संशोधित संघीय संविधान के आधार पर संभावित समझौते की बात निहित थी। अनेक वामपंथी तत्वों ने पहले ही संशोधनवाद की तरफ झुकाव के खतरे को समझ लिया था और यह जानते हुए कि 'हाई कमान' में दक्षिणपंथी तत्वों का बोलबाला है उन्होंने आशा व्यक्त की थी कि बहादुरी से भरे वक्तव्यों के बावजूद ये लोग आत्मसमर्पण कर देंगे।

दरअसल कांग्रेस का जन-आधार क्या है तथा मजदूरों और किसानों के बढ़ते जागरण के साथ उसका क्या रिश्ता है यह प्रश्न ही इस विवाद की जड़ में था। कांग्रेस का आधार

का जितना ही मजबूत करती और जनता के साथ उसका जितना ही ज्यादा सहज संबंध होता, उस ही अनुपात में उसके अंदर वह क्षमता आ पाती जिससे वह राज्यसंघ की योजना को विफल बना सकती और साम्राज्यवादियों पर अपनी शर्तें थोप सकती। नेतृत्ववर्ग के प्रमुख लोगों ने किसानों और मजदूरों के आंदोलन तेज होने पर जो चिंता व्यक्त की थी, वर्गसंघर्ष का 'अहिंसा' का उल्लंघन घोषित करके जिस प्रकार उसकी निंदा की थी और हड़तालों तथा असंतोष के खिलाफ की गई पुलिस की दमनात्मक कार्यवाही के पक्ष में दलील देने के लिए जिस प्रकार अपने को हमेशा तैयार रखा था उससे यह निश्चित हो गया था कि कांग्रेस ने ऐसा रास्ता अख्तियार कर लिया है जिसकी अंतिम परिणति साम्राज्यवादियों के साथ समझौता होगी।

ऐसी ही परिस्थिति में सुभाषचंद्र बोस ने, जिन्हें इससे पहले के वर्ष में कांग्रेस ने बिना चुनाव कराए अध्यक्ष पद के लिए नामजद किया था 1939 में फिर कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव लड़ने का फैसला किया। उन्होंने इस पद के लिए चुनाव लड़ने का यह आधार बताया कि राज्यसंघ के प्रस्ताव का तथा कांग्रेस के मौजूदा दक्षिणपंथी नेतृत्व की समझौतापरस्त नीति का विरोध करने के लिए देशव्यापी आंदोलन शुरू किया जाना चाहिए और यही आज का राजनीतिक मसला है। यह पहला अवसर था जब अध्यक्ष पद के लिए चुनाव हुआ। इस चुनाव का सबसे ज्यादा महत्व यह है कि अब तक कांग्रेस की कार्यसमिति या दल के शासक अंग के सदस्यों का चुनाव नहीं होता था—अध्यक्ष द्वारा उन्हें नामजद कर दिया जाता था। इसलिए अध्यक्ष का चुनाव किया जाना, सदस्यों को ऐसा संवैधानिक अवसर दिया जाना था जिसके जरिए वे कांग्रेस नेतृत्व के चरित्र के बारे में खुद की अभिव्यक्ति दे सकें। अध्यक्ष पद के लिए सुभाषचंद्र बोस के विरुद्ध जो सदस्य चुनाव लड़ रहा था उसे गांधी तथा पुरानी कार्यसमिति के अधिकांश सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। बोस को वामपंथी राष्ट्रवादियों, सोशलिस्टों तथा कम्युनिस्टों का समर्थन प्राप्त था। चुनाव में बोस को 1,376 मतों के मुकाबले 1575 मतों से सफलता मिली।

कांग्रेस की आधिकारिक व्यवस्था के विरोध के बावजूद सुभाषचंद्र बोस के चुन लिए जाने से भीतरी तौर पर जबरदस्त संकट पैदा हुआ। दरअसल अध्यक्ष पद पर किसी का व्यक्तिगत रूप से चुन लिया जाना संगठन के सदस्यों की भावनाओं को नापने के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है लेकिन इसे किन्हीं भी अर्थों में एक निश्चित राजनीतिक फैसला नहीं समझा जा सकता और न ही यह माना जा सकता है कि सदस्यों का बहुमत वामपंथी दिशा की तरफ मुड़ रहा है। त्रिपुरी अधिवेशन की कार्यवाहियों ने इस सिद्ध कर दिखाया। फिर भी चुनाव के परिणामों से यह संकेत तो मिलता ही है कि आमतौर से लोगों की विचारधारा वामपंथी दिशा ले रही थी। स्वयं गांधी ने सुभाष बोस के चुनाव को अपनी व्यक्तिगत पराजय माना और कहा 'अब मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कांग्रेस के प्रतिनिधिगण उन सिद्धांतों और नीतियों को नहीं मानते हैं जिनका मैं समर्थन करता हूं।' टाइम्स आफ इंडिया ने लिखा 'श्री बोस का चुनाव एक ऐसी कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करता है

जो वामपंथी दिशा ले रहा है।' बाम्बे क्रानिकल ने टिप्पणी की 'इस चुनाव में कांग्रेस का उग्रवाद की ओर झुकाव और जनता की दृढ़ता का स्पष्ट संकेत मिलता है। यह बात ध्यान देने की है कि बंबई प्रांतीय कांग्रेस समिति के चुनावों में कम्युनिस्टों का मुख्य रूप से सफलता मिली। मेरठ षड्यंत्र के अभियुक्त अधिकारी को शहर के किसी भी उम्मीदवार से ज्यादा वोट मिले और बंबई नगरपालिका के चुनावों में जिन चार कम्युनिस्ट उम्मीदवारों ने भाग लिया उन्हें सबसे ज्यादा वोट प्राप्त हुए।

अध्यक्ष पद के चुनाव के नतीजे ने गांधी तथा संगठन के प्रमुख नरमदली नेताओं को काफी निराश किया और वे लोग अपना क्षोभ छिपा नहीं सके। गांधी ने तुरंत एक बयान जारी किया और कांग्रेस पर आरोप लगाया कि वह एक 'भ्रष्ट संगठन' हो गया है और उसने 'फर्जी सदस्यों' को इकट्ठा कर लिया है। साथ ही गांधी ने यह भी धमकी दी कि बहुमत की नीति को यदि इन सदस्यों ने अस्वीकार किया तो संगठन के दक्षिणपंथी लोग संभवत कांग्रेस से अलग हो जाएं। कांग्रेस की विचारधारा को मानने वाले जो लोग कांग्रेस के षडयंत्रों के कारण संगठन से बाहर हैं वे कांग्रेस का सबसे ज्यादा प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए जो लोग कांग्रेस में बने रहने में असुविधा महसूस करते हैं वे बाहर आ सकते हैं।'

नतीजा यह हुआ कि कार्यसमिति के 15 सदस्यों में से 12 सदस्यों ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और त्यागपत्र देने के साथ अपने वक्तव्यों में यह बताया कि वे सुभाषचंद्र बोस के लिए मैदान छोड़ दे रहे हैं ताकि बोस मनमाने ढंग से काम कर सकें। इन सदस्यों ने यह भी आरोप लगाया कि चुनाव प्रचार के दौरान बोस ने उनकी सदाशयता पर कीचड़ उछाला। जवाहरलाल नेहरू ने भी कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया लेकिन उन्होंने अलग से एक वक्तव्य जारी करके अपना खास दृष्टिकोण प्रकट किया (इस संकट के संदर्भ में उनके द्वारा जारी की गई पुस्तिका 'व्हेयर आर वी ?' में इसपर विस्तार से बताया गया है)।

मार्च 1939 में राष्ट्रीय कांग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन को संगठन की एकता बनाए रखने में सफलता मिली लेकिन वह इस विवाद का हल नहीं कर सका। 'राष्ट्रीय मांगों' से संबंधित मुख्य प्रस्ताव में इस बात की फिर घोषणा की गई कि कांग्रेस, भारत सरकार अधिनियम की संघीय मांग का दृढ़ता के साथ विरोध करती है और इस थोपे जाने के विरुद्ध वह संघर्ष का संकल्प दोहराती है।

गांधी के समर्थकों ने नेतृत्व में पैदा फूट के बारे में एक प्रस्ताव पेश किया जिसे काफी वादविवाद के बाद अंतिम तौर पर स्वीकार कर लिया गया। इस प्रस्ताव में गांधी की नीतियों और उनके नेतृत्व में फिर से आस्था प्रकट की गई थी और अध्यक्ष से कहा गया था कि वह गांधी की इच्छा के अनुरूप अपनी कार्यसमिति के सदस्यों का नामजद करें। इस प्रकार व्यावहारिक रूप से गांधी की, जो कांग्रेस के सदस्य भी नहीं थे, व्यक्तिगत तानाशाही

को स्थापित किया गया। यह प्रस्ताव 135 के मुकाबले 218 मतों से विषय समिति में पारित कर लिया गया और कांग्रेस द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

त्रिपुरी अधिवेशन के बाद के अनुभवों से पता चलता है कि इस विवाद का कोई हल नहीं ढूंढा जा सका था। कार्य समिति के गठन के बारे में गांधी और बोस के बीच बातचीत चलती रही लेकिन इस बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला और वह बीच में ही टूट गई। अप्रैल 1939 में सुभाषचंद्र बोस ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक नए अध्यक्ष राजेंद्रप्रसाद का चुनाव किया। इसके बाद बोस ने कांग्रेस के अंदर उन विपक्षी लोगों को संगठित करना शुरू किया जो उनका समर्थन करते थे और एक नए संगठन को जन्म दिया जिसका नाम 'फारवर्ड ब्लाक' रखा गया। इस नए संगठन का लक्ष्य घोषित करते हुए कहा गया कि इसका उद्देश्य कांग्रेस के अंदर के प्रगतिशील और साम्राज्यवादविरोधी तत्वों को संगठित करना है।'

फारवर्ड ब्लाक ने संविधान, नीति और कार्यक्रम की कोई बुनियादी आलोचना नहीं की बल्कि उसने कांग्रेस के मौजूदा नेतृत्व के प्रति असंतोष जाहिर किया और स्वतंत्रता के लिए तथा भारत को राज्यसंघ का दर्जा दिए जाने के विरुद्ध जबरदस्त संघर्ष की तैयारियां करने का आह्वान किया। 1939 की गर्मियों में इस विवाद ने और भी तीव्र रूप ले लिया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में कुछ प्रस्ताव पारित किए गए जिनमें कहा गया कि कांग्रेस के संविधान को और कठोर किया जाए, कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा किए गए कार्यों के संदर्भ में कांग्रेस की प्रांतीय समितियों के अधिकारों को सीमित किया जाए और कांग्रेस समितियों की उचित स्वीकृति के बिना अहिंसात्मक प्रतिरोध से संबंधित आंदोलनों का नेतृत्व करने से कांग्रेसजनों को रोका जाए। अंतिम तीनों प्रस्तावों का उद्देश्य कांग्रेस के कब्जे से किसानों और मजदूरों के दिनोदिन बढ़ रहे स्वतंत्रता आंदोलन को छीनना था और इन प्रस्तावों की सबने यही व्याख्या की कि इनके जरिए किसानों और मजदूरों के संघर्षों को सीमित किया जाएगा। इस प्रस्ताव के विरोध में सुभाषचंद्र बोस तथा लैफ्ट कंसोलिडेशन कमेटी ने, जो विरोधी तत्वों के मिलजुले संगठन का प्रतिनिधित्व करती थी 9 जुलाई को प्रदर्शनों का आह्वान किया। बोस की इस कार्यवाही को कांग्रेस के अनुशासन का उल्लंघन माना गया और बोस को बंगाल कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता के अयोग्य ठहरा दिया गया। इसके साथ ही कांग्रेस संगठन में उन्हें तीन वर्षों तक कोई भी पद न देने का फैसला किया गया।

कांग्रेस के संगठन के भीतर की यह जबरदस्त फूट देश में बढ़ते हुए संकट का संकेत देती है। अब यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही थी कि कांग्रेस मंत्रिमंडलों का इस्तेमाल करके राष्ट्रीय आंदोलन के विकास की जो संभावनाएं सोची गई थी वे लगभग समाप्त हो चुकी है और साम्राज्यवाद तथा राष्ट्रीय आंदोलन के बीच एक बहुत बड़ी मुठभेड़ होने वाली है। कांग्रेस के नेतृत्व के उच्चवर्ग में पड़ी फूट से अभी तक किसी राजनीतिक तालमेल

तस्वीर नही साफ हो पा रही थी क्योकि इस फूट के पीछे अनेक व्यक्तिगत मसले भी थे। लेकिन काग्रेस के आम सदस्यो के बीच तथा आम जनता के बीच बेचैनी बढती जा रही थी। सगठन म मजबूत गाधीवादी नेतृत्व और काग्रेस क अदर बने गुट फारवड ब्लाक' के बीच कायक्रम या नीति को लेकर कोई बुनियादी विभाजन नही था। सुभाषचद्र बोस के शब्दो म फारवड ब्लाक' श्री गाधी के व्यक्तित्व और अहिंसात्मक असहयोग के उनके सिद्धात को पूरा सम्मान देता है लेकिन इसका अथ यह नही कि काग्रेस के मौजूदा हाई कमान म भी वह अपनी निष्ठा बनाए रखे।' जनआदोलन के लिए अभी बुनियादी कायक्रम और नेतत्व का विकास होना बाकी है लेकिन तथ्यो से पता चलता है कि राष्ट्रीय आदोलन के एक नए चरण मे प्रवेश के लिए स्थितिया तैयार हो गई थी।

यही वह स्थिति थी जब युद्ध के छिड जाने से साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय आदोलन के बीच एकत्र हुए सघष अचानक चरम बिंदु पर पहुच गए और उन्होने नई समस्याए सामन ला दी।

16

द्वितीय विश्वयुद्ध मे भारत

भारत की भौगोलिक स्थिति उसे दिन व दिन अतर्राष्ट्रीय राजनीति की अगली पक्ति मे लाती जाएगी।—23 मार्च 1905 इडिया कौंसिल म लार्ड कर्जन का भाषण।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रवाह ने भारत को अतर्राष्ट्रीय राजनीति की धारा म पूरी तरह पहुचा दिया। 1914 के विश्वयुद्ध म भारतीय सैनिकों और साधनो का भरपूर इस्तेमाल किया गया था फिर भी यह युद्ध भारत स अपेक्षतया काफी दूर चल रहा था। लेकिन 1942-44 के युद्ध और आक्रमण ने भारत के निकटतम पडोसियो को रौंद दिया और भारत की सीमाओ तक इसके धमाके सुनाई पडने लगे। 1914 के युद्ध ने भारत पर गभीर आर्थिक दबाव डाला था लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध न न केवल भारत की भयकर आर्थिक लूट की बल्कि उसने भारत म जबरदस्त मुद्रास्फीति को जन्म दिया, आर्थिक सरचना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और इस युद्ध के कारण भारत को अकाल का सामना करना पडा। 1914 के युद्ध ने भारत के लिए राजनीतिक प्रश्नो को काफी तीव्र बना दिया। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारत की आजादी के बुनियादी प्रश्न को भारतीय राजनीति की अगली पक्ति म ला खडा किया। इसने नए मसले, नई समस्याए और नए सघर्षों को भारतीय राजनीति के मर्मस्थल तक पहुचा दिया और हर तरह के राजनीतिक जोड तोड को प्रभावित किया।

1914 स पहले तक विश्व राजनीति म भारत की भूमिका के प्रश्न को यह समझा जा सकता था कि मूलत यह प्रश्न ब्रिटेन की रणनीति और ब्रिटिश नीति से सबद्ध है। राष्ट्रीय

आदोलन का पूरा ध्यान भारत म चलने वाल सघर्षों पर केंद्रित था और यह काफी स्वाभाविक भी था। यह बात काफी जतकपूण लगती थी कि जब तक भारत आजादी न हासिल कर ले तब तक भारतीय जनता स इस बात की अपक्षा नही की जा सकती कि वह विश्व की राजनीति म कोई स्वतत्र भूमिका निभाए। लकिन 1931 म विश्वव्यापी फासिस्ट आक्रमण के बाद से यह स्थिति बदल गई है। अब विदेश नीति का मसला राष्ट्रीय आदोलन का एक प्रमुख मसला बन चुका है।

द्वितीय विश्वयुद्ध से सबद्ध विशेष मसलो पर विचार करने स पूव यदि हम पहले की घटनाओ का सक्षेप म जायजा लेने और विश्व राजनीति के सदभ म ब्रिटिश रणनीति म भारत की भूमिका तथा विदेश नीति से सबद्ध मसला के प्रति राष्ट्रीय आदोलन के रुख के बारे म थोडा विचार कर ले ता यह काफी उपयोगी होगा।

1 ब्रिटिश अतर्राष्ट्रीय रणनीति और भारत

व्यापक अर्थों मे देखे तो ब्रिटिश शासन के अधीन भारत का मसला विश्वव्यापी राजनीति का मसला रहा है और अतर्राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूण विषय रहा है।

पिछले दो सौ वर्षो का इतिहास देखे तो यह बात स्पष्ट से स्पष्टतर होती गई है कि अगरेजो ने भारत को अपनी अतर्राष्ट्रीय रणनीति की धुरी बना रखा था। ऊपरी तौर से देखने पर ऐसा लग सकता है कि 18वी सदी म यूरोप की बदलती हुई परिस्थितिया और नए गुट ही ब्रिटन और फ्राम के बीच युद्ध का कारण थे लेकिन वास्तविकता यह है कि इन युद्धो का मुख्य कारण नई दुनिया क लिए सघष तथा भारत पर प्रभुत्व स्थापित करने का सघष था। ब्रिटेन के हाथ मे जब अमरीका निकल गया ता उसके लिए भारत का महत्व और अधिक बढ गया। नेपोलियन ने जब मिस्र और सुदूरपूव की तरफ अपनी सनाओ को बढने का आदेश दिया ता उसके दिमाग म भारत की ओर बढने की बात थी। 19वी सदी के दौरान ब्रिटेन को हमेशा रूस ... रहा ... आशका थी कि रूस कहा एशिया मे बढता न च... प्रकार ... भारत तक न पहुच जाए। 20वी सदी के पूर्वार्ध ... इन विव... उदासीनता की अपनी नीति छोडी तो उसन ... के स... जब इस सशोधित ... जापानी सधि ... ता ... शामिल किया ग... से ब्रिटेन ... म ... जमनी ... रहेगा ... रखने

भारत ... ऐसा
लिए नही था।
अमल म लान

लदा हुआ है उसका एक बहुत बडा भाग इन युद्धा के कारण ही उसपर चढा है। ब्रिटेन अपनी नीति के लक्ष्यो की सिद्धि के लिए दूसर एशियाई देशा और एशिया की सीमाआ स दूर लडाइया लडता था और इन सारे युद्धो का खर्च भारत को चुकाना पडता था। 1859 म ब्रिटेन के एक सैनिक अधिकारी ने लिखा

> एशियाई देशा म हमन जितने युद्ध लडे है उन सबका सैनिक और आर्थिक खच भारत सरकार न दिया है हालाकि इन युद्धा का उद्देश्य, कुछ मामला म शुद्ध रूप से ब्रिटेन के हितो की रक्षा करना था और कई अन्य मामला म इनका भारत के हिता स काई सबध न था। (मजर विनगट, 'अवर फाइनशियल रिलशस विद इडिया', 1859, पृष्ठ 17)

इसी आधार पर अफगानिस्तान, बमा, श्याम, चीन, फारस मेसोपोटामिया, अरब, मिस्र और अबीसीनिया म युद्धो का सचालन किया गया।

19वी सदी म जब ब्रिटेन अपन प्रभुत्व का विस्तार कर रहा था तब भारत के आधार पर विश्व म अपना प्रभुत्व स्थापित करन की ब्रिटन के सैनिक अधिकारियो की कितनी जबरदस्त आकाक्षाए थी और उन्हान कितनी बेहिसाब गणनाए कर रखी थी इसका दृष्टात हम चाल्स नपियर के कथन म मिलता है। चार्ल्स नेपियर 1857 के विद्रोह से पूव लाड डलहौजी के अधीन सेना के कमाडर इन चीफ थ

> अगर मैं भारत का सम्राट होता तो म न जान क्या क्या करता। मैं मास्को और पीकिंग का हिलाकर रख देता भारत से इग्लैंड तक नदिया और मैदाना का जाल बिछा ह पजाब की पाचो नदिया, इडस और सिंध, लालसागर और माल्टा इन सबको जोडकर इग्लैंड तक का रास्ता तैयार किया जा सकता है। अगर मैं इग्लड का राजा होता तो दिल्ली के महल से मैं अपने घूसे तानकर निकलता और रूस तथा फ्रास क दाता पर दे मारता। पश्चिम म इग्लैंड के जगी जहाजो के बेडे और पूव म भारतीय सेना का एकछत्र राज्य होना चाहिए।

भारतीय सेना का जितना बडा बनाया गया था और इसपर जितना पैसा खच किया जाता था वह महज इसलिए नही कि भारत की जनता को गुलाम रखन क लिए यह जरूरी था बल्कि इसलिए कि भारत की सीमाआ से परे अपन साम्राज्य का विस्तार करने के लिए जो युद्ध लडे जाए उनम इस सना का इस्तमाल किया जा सक। 1885 म वायसराय की कौसिल क सर आकलैंड कालविन ने वतमान नीति के प्रति अपनी विरोधात्मक टिप्पणी म कहा था

> अपन दश की जरूरता के लिए जितनी बडी सना की आवश्यकता है उससे बडी सना

रखने से हम अपनी सीमाओ स परे आक्रमण करने का लोभ सवरण नहीं कर पाएग। (सर फोटने इलवट विरोध टिप्पणी, 14 अगस्त 1885)

इसके तत्काल वाद वर्मा पर विजय प्राप्त करके और उसे भारत म मिलाकर यह भविष्य वाणी पूरी कर दी गई। इसके वाद 1895 का छित्राल अभियान हुआ, तिराह का कुख्यात अभियान हुआ, 1900 म कजन के अधीन उत्तर पश्चिम सीमा प्रदेशा को हथिया लिया गया और 1904 म तिब्बत पर हमला किया गया।

1904 5 म वजट पर हुई वहस के दौरान सर ई० एलिस न भारत के राष्ट्रीय नेता गोखल की आलोचनाओ के विस्तारवाद की नीति की वकालत की

क्या सीमाओ पर खडे पहाडा के पीछे अपने को छिपा लेने स ही हम यह भ्रम पाल लेना चाहिए कि हम सुरक्षित है जवकि एशियाई राज्यो का तेजी से पतन होता जा रहा है मैं समझता हू कि एशिया म शक्ति सतुलन वनाए रखने क लिए भविष्य म निस्सदेह भारतीय सेना की प्रमुख भूमिका होनी चाहिए। भारतीय सेना को अव महज स्थानीय सैनिक दस्ता समझना, जो केवल स्थानीय रक्षा और कानून एव व्यवस्था कायम रखने के लिए वनी हो असभव है।

इसी वहस के सदभ म लाड कजन ने जो वयान दिया उसम उन्होंने अपनी वाते और भी स्पष्टता के साथ कही

भारत एक वहुत वडे किले के समान है जिसके दोना तरफ विशाल सागर हैं और शेष दिशाओ मे पवतमालाए ह। लेकिन इन दीवारो के पार, जा निश्चित रूप से इतनी ऊची है जिन्ह पार नही किया जा सकता और इतनी मजवूत है जिनका भेदन नही किया जा सकता विभिन्न लवाई चौडाई के ढाल है। हम उनपर कब्जा करना नही चाहत लेकिन हम यह भी नही देख सकते कि हमारे दुश्मन उसपर कब्जा कर लें। हम इस वात से पूरा सताप रहेगा अगर ये इलाके हमारे सहयागियो या मित्रो के अधिकार म वने रह। लेकिन हमारे प्रतिद्वद्वियो और दुश्मनो का प्रभाव इन इलाको पर वढता गया और उन्हान विलकुल हमारी नाक क नीचे अपने को जमा लिया तो हम दखल दन पर मजवूर हाग क्योकि यदि हम ऐसा नही करते है तो इतना भयानक खतरा पैदा हो जाएगा जो एक दिन हमारी सुरक्षा को चौपट कर देगा। अरव, फारस, अफगानिस्तान, तिब्वत और पूरव म स्याम तक हमारी मौजूदा स्थिति का यही राज है।

लाड कजन की यह धारणा उनकी पुस्तक 'प्रावलम्स आफ दि फार ईस्ट' म विस्तार स देखी जा सकती है। लाड कजन के वाद जितन भी शासक भारत आए उन्हाने इसी

नीतियां का आज तक पालन किया है और इसके सकेत हम ढूढ सकते हैं

> भारतीय साम्राज्य इस भूमडल के तीसरे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्से मे सामरिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण केंद्र पर स्थित है लेकिन उसकी केंद्रीय और सचालनकारी स्थिति को जितनी पूर्णता के साथ उन राजनीतिक प्रभावो म देखा जा सकता है जो वह निकट और दूर के अपने पडोसियो का भाग्य निधारित करने के लिए इस्तेमाल करती है और जिस सीमा तक उनकी किस्मत भारतीय धुरी की परिक्रमा करती रहती है, वह और कही सभव नही है। (माननीय जी०एन० कर्जन 'प्राबलम्स आफ दि फार ईस्ट', 1894, पृष्ठ 9-10)

1913 मे आर्मी इन इडिया कमटी ने कहा था 'भारत को इसलिए अपनी सेना नही तैयार करनी है कि ब्रिटिश सरकार जब चाहे तब भारत स बाहर लड रहे युद्धो म इस सेना का इस्तेमाल करे, हालाकि, जैसा कि अतीत मे हुआ है वह अपने सैनिकों को इन युद्धो के लिए उस स्थिति म भेज सकता है जब वे अन्यथा उपलब्ध हो।'

1914 18 के युद्ध ने पूरी तरह दिखा दिया कि भारत का यही इस्तेमाल है। लगभग 10 लाख सैनिकों, जिनम स आधे से अधिक लडाकू सैनिक थे, फ्रास, को पूर्वी अफ्रीका, मिस्र मेसोपोटामिया आदि मे लडे जा रहे युद्ध म हिस्सा लेने के लिए भेज दिया गया और भारत से हजारो लाखो पौड की राशि वसूली गई। नए मध्य पूर्वी साम्राज्य की विजय के लिए भारत का आधार बनाया गया हालाकि बाद के वर्षो मे टर्की के पुनरुत्थान और सऊदी अरब के मजबूत होने से यह विजय अधूरी ही रह गई।

1920 की ईशर कमटी रिपोर्ट ने 1913 की आर्मी इन इडिया कमटी की तुलना मे कही ज्यादा स्पष्टता के साथ भारतीय सेना के बार म सरकारी धारणा को व्यक्त किया और इसे ऐसा अस्त्र बताया जिसे ब्रिटिश शासक भारत से बाहर इस्तेमाल करते हैं

> हम भारत मे स्थित सेना के प्रशासन को ब्रिटिश साम्राज्य की समूची सैन्य शक्ति से अलग नही मान सकते।

जैसा लाड राॅलिसन ने, जो पिछले विश्वयुद्ध के बाद 1921 म सेना के कमाडर इन चीफ थे बताया था और बाद म 'दि आर्मी इन इडिया ऐड इट्स इवाल्यूशन' नामक सरकारी पुस्तिका (1924 मे प्रकाशित) म जिसका विस्तार से उल्लेख किया गया है, आज भारत म सेना को तीन श्रेणियो मे सगठित किया गया है

1 क्षेत्रसेना (फील्ड आर्मी) जो भारत से बाहर लडे बडे युद्धो म भाग ले।

2 रक्षात्मक सेना (कवरिंग ट्रूप्स) जो सीमाओं पर युद्ध का संचालन करे और बड़े युद्धों के समय एक ऐसे आवरण का काम करे जिसके पीछे समूची सैनिक गतिविधियां बेरोकटोक होती रहें।
3 आंतरिक सुरक्षा सेना (इंटरनल सिक्यारिटी ट्रूप्स) जो भारत के अंदर रक्षक दस्ते का काम करे।

क्षेत्रसेना में चार डिवीजन और चार घुड़सवार ब्रिगेड (अब मशीन सज्जित) होते हैं और बताया जाता है कि किसी बड़े युद्ध की अवस्था में इन्हीं से दुश्मन पर भरपूर प्रहार किया जाता है।

1918 के युद्ध के बाद के वर्षों में ब्रिटिश साम्राज्य ने अपने सैनिक व्यय का बोझ कितने बड़े पैमाने पर भारत पर डाल दिया, इसका उदाहरण हम सैनिक खर्च के आनुपातिक आंकड़ों से देख सकते हैं। निम्न तालिका से पता चलता है कि 1913 से 1928 के बीच ब्रिटेन, भारत और डोमीनियन राज्यों के सैनिक व्यय में कितनी आनुपातिक वृद्धि हुई

सैनिक व्यय, 1913 28

(लाख पौंड में)

	1913	1928	प्रतिशत वृद्धि
ग्रेट ब्रिटेन	770	1150	49
भारत	220	440	100
अन्य डोमीनियन	90	120	33
कुल योग	1080	1710	57

(ईस्टर्न आर्मामेंटस सप्लिमेंट, 19 अक्तूबर 1929)

भारत पर (जिसे इस मामले में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं था) यह बोझ दुगना कर दिया गया जबकि ब्रिटेन पर इस वाय में आधा से भी कम और डोमीनियनों पर तो एक तिहाई से भी कम वृद्धि हुई। 1914 के युद्ध से पहले कुल बजट का 2/5 हिस्सा सैनिक कार्यों पर खर्च होता था। 1891-92 में यह व्यय 41 प्रतिशत और 1913 14 में 42 6 प्रतिशत था। 1914 के युद्ध से पहले कुल सैनिक व्यय औसतन 30 करोड़ रुपया था जो 1920-21 की बढ़ी हुई कीमतों के समय 87 करोड़ 40 लाख रुपया या कुल बजट का 51 प्रतिशत हो गया। 1925-26 तक कीमतों में कमी आने के साथ इस राशि में भी कमी आई और यह घटकर 56 करोड़ या 39 प्रतिशत हो गई। 1928 29 तक इस राशि में फिर वृद्धि हुई और यह बढ़कर 45 प्रतिशत हो गई। सरकारी अनुमान के अनुसार

1936-37 मे यह राशि कुल केंद्रीय बजट का 54 प्रतिशत और केंद्र व प्रातो के मिल-जुल बजट का 29 प्रतिशत थी।

ब्रिटेन के लिए भारत का सामरिक महत्व दो विश्वयुद्धो के बीच के वर्षो म काफी बढ गया। मध्यपूव म अगरेजो का नया साम्राज्य और प्रभावक्षेत्र भारत के आधार पर ही बनाया गया था। भूमध्य सागर पर नियत्रण खो बठने की स भावित स्थिति का मुकाबला करन के लिए अगरेजो ने साइमनटाउन म नया नौसनिक अड्डा बनाया और कप माग पर जोर दिया तथा प्रशात महासागर से हिंद महासार मे प्रवेश करने के माग पर कब्जा बनाए रखने के लिए सिंगापुर के तथाकथित अपराजय नौसैनिक अड्डे पर जोर दिया। इन बातो से पता चलता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत पर और भारत जाने वाल मार्गो पर अपने अधिकार को अपन साम्राज्य की धुरी मानत थे। जसे जैसे भूमध्यसागर और स्वेज नहर का रास्ता दिनादिन सकटपूण होता गया वसे वैसे ब्रिटेन को बगदाद कराची कलकत्ता और सिंगापुर तथा भारत और स्याम के जरिए सुदूर पूव होकर आस्ट्रेलिया से जोडने वाल ब्रिटिश हवाई मार्गो का रास्ता ब्रिटेन के लिए काफी महत्वपूण हो गया। जैसे जैसे प्रशात महासागर के क्षेत्र पर और चीन के समुद्रतट तथा जलमार्गो पर जापान का कब्जा बढता गया वैसे वैसे बर्मा होकर जाने वाले रास्ते का महत्व ब्रिटेन के लिए बढता गया।

इन सारी तैयारियो म दोष का पता द्वितीय विश्वयुद्ध म चल गया। एशिया म ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ताकत ने नही बल्कि अमरीका, सोवियत सघ और ब्रिटन की मिलीजुली मदद से धुरी राष्ट्रो के विरुद्ध मित्र राष्ट्रो की विजय ने (जिसने अतिम तौर पर जापान के खिलाफ शक्ति का केंद्रीकरण कर दिया) एशिया मे ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा झेले गए घाटे और विनाश का अतिम तौर पर निराकरण कर दिया। लेकिन इस समय तक एशिया के उपनिवेशो म मुक्तिआदोलनो म काफी तजी आ गई थी और युद्ध के बाद पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था का फिर से स्थापित करने के प्रयासो को जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पडा।

फिर भी यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी ब्रिटेन की अतरराष्ट्रीय रणनीति म भारत का महत्वपूण निर्णायक स्थान बना रहा। ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रभुत्व और प्रभावक्षेत्र के दो महत्वपूण सिरा, मध्यपूव और दक्षिणपूव एशिया के बीच भारत एक धुरी का काम करता है और ब्रिटिश नीति के अनुसार यह एक ऐसा अड्डा है जो अपरिहाय है। जलाई 1944 म लेबर पार्टी के प्रमुख प्रवक्ता लाड पैथिक लारेंस ने हाउस आफ कामस की बहस के दौरान बडे साफ शब्दो म कहा

> तमाम ऐसी घटनाए सामने आई है जिनसे मालूम समुद्रो मे शाति कायम करने की ब्रिटेन की शक्ति पर सदेह पैदा होता है। और यह बात दुनिया के और किसी हिस्से मे इतने साफ तौर पर नही देखी गई जितनी भारतीय उपमहाद्वीप के पडोस

म दखन म आई। जहा तक मरी धारणा ह, ब्रिटेन के लिए सैनिक दृष्टि स भारत एक महान बुज है। (इडियन एनुअल रजिस्टर, 1914, खड-2, पृ० 298)

एशिया म उपनिवेशवादविरोधी राष्ट्रीय आदोलन के खिलाफ ब्रिटेन को बहुत गभीर लडाई लडनी पडी और इसके लिए अगरजो ने अपन प्रमुख फौजी अड्डे के रूप म हमेशा भारत का इस्तेमाल किया। ब्रिटेन न वर्मा, मलाया, इडोनशिया जस एशियाई देशा म मुक्तिआदोलनो का दमन करन के लिए और इन देशा पर औपनिवशिक शासन फिर स कायम करने क लिए न केवल भारत के साधना का इस्तमाल किया वल्कि अपनी फौजा के लिए वहा लोगा की भरती भी की (यह काम वह तब तक करता रहा जब तक इडोनेशिया के विरुद्ध युद्ध का सचालन करने के लिए सैनिका की भरती के काम मे राष्ट्रीय आदालन के प्रतिरोध क कारण वाधा नही पडी)। अमरीका और ब्रिटेन की नीति म सोवियत सघ विरोधी जो खतरनाक प्रवृतिया थी उनका भारत पर अप्रत्यक्ष रूप स जवरदस्त प्रभाव पडा। इसम कोई सदह नही कि ब्रिटेन द्वारा भारत भेज गए कैबिनेट मिशन और 1946 म किए गए समझौता प्रस्तावो के पीछे सामरिक दृष्टि से की गई सोच की महत्वपूण भूमिका थी। तथाकथित आजादी की वात के साथ साथ अगरेजो ने भारत पर अपने सैनिक रणनीति नियत्रण को और कारगर ढग से मजवूत करन क व्यावहारिक उपायो को ही वढावा दिया।

2 ब्रिटेन की अदरूनी राजनीति मे भारत का महत्व

ब्रिटन के लिए भारत के सामरिक महत्व के साथ साथ जो वात घनिष्ठ रूप स जुडी ह वह है ब्रिटेन के अदरूनी सामाजिक और राजनीतिक सवधा के समूचे ढाचे और स्वरूप के लिए भारत के शोषण और नियत्रण का सामाजिक राजनीतिक महत्व। हमन यह दख ही लिया है कि किस सीमा तक भारत का विशेष शोषण करक ब्रिटन की पूजीवादी अथ व्यवस्था का क्रमश निर्माण हुआ है। यह काम 17वी और 18वी सदी मे भारत की लूट के प्रारभिक दौर के जरिए हुआ जिसने औद्योगिक क्राति के लिए शुरू के दिना मे पूजी के सचयन को समव वनाया। फिर 19वी सदी म मशीन निमाण के प्रमुख वाजार के रूप म और कच्चे माल के स्रोत के रूप म भारत का विकास किया गया और वाद क वर्षो म पूजी का नियात करन वाले क्षेत्र के रूप मे भारत को विकसित किया गया। इस घनिष्ठ आर्थिक सवध की प्रतिनिया ब्रिटेन की आर्थिक-सरचना पर ही नही वल्कि इसस मेल खाते सामाजिक और राजनीतिक ढाचे पर तथा ब्रिटेन की समूची राजनीतिक धारा पर भी अनिवाय रूप से हुई।

सील ने 'एक्सपैंशन आफ इग्लड' म खुद ही वडे उन्मुक्त क्षणा म कहा था कि इतिहास का प्रत्येक छात्र यह मानता है कि रामन साम्राज्य क दुस्स्वप्न के कारण ही रोम की स्वतत्रता नष्ट हा गई। सीले की यह टिप्पणी काफी गहरी चाट करती है और इसके

निष्कष जितने गभीर है उन्ह वह शायद स्वय स्वीकार करने को तैयार न हो। इग्लैंड का आधुनिक इतिहास साम्राज्य और जनतत्र के निरतर सघष से भरा पडा है।

18वी सदी क मध्य म भारत की विजय काल से ब्रिटेन की घरेलू राजनीति पर साम्राज्य के प्रत्यक्ष प्रभाव के इस तत्व को निरतर देखा जा सकता है। 18वी सदी की राजनीति पर और सुधार आदोलन के पूव वाले समय के भ्रष्टाचार पर 'नवाबो' का कितना प्रभाव था, यह सभी लोग जानते है।

1783 म फाक्स के सुधारवादी मत्रिमडल का भारत क प्रश्न पर पराजय का सामना करना पडा और उसके स्थान पर प्रतिक्रियावाद का दीघकालीन शासन आरभ हुआ, फ्रासीसी क्राति के प्रति दुराग्रहपूण प्रतिक्रातिकारी शत्रुता पैदा हुई और इग्लैंड म जनतात्रिक सुधार का काम स्थगित हो गया। जब 1832 के सुधार विधेयक (रिफाम बिल, न पुरातन आधिपत्य को समाप्त कर 19वी सदी के लकाशायर क प्रभुत्व को स्थापित किया तो भारत के शोषण म लकाशायर ने ही एक अहम भूमिका निभाई। इसन 19वी सदी के उदारतावाद की आकाक्षाओ को निष्फल करन के साथ उसे ऐसी दिशा दिखाई जिसक प्रतिफलन के रूप म हमारे सामन उदार साम्राज्यवाद आया। तानाशाही शासन म प्रशिक्षित आग्ल भारतीय शासको के खेमे से ब्रिटेन की आतरिक राजनीति म प्रतिक्रियावाद की शक्तियो की निरतर भरती का काम जारी है और यह सिलसिला वेलिंगटन के शासनकाल से लेकर कजन और लायड के शासनकाल तक जारी है। कजरवेटिव विचारधारा की अदरूनी धाराओ और दरारो के बीच आग्ल भारतीयो और कट्टरपथियो के घनिष्ठ सबध को निरतर तलाशा जा सकता है।

ब्रिटेन के लेबर आदोलन म जो विकृति और पतनशीलता आई उसकी मुख्य जिम्मेदारी ब्रिटिश साम्राज्य क उस प्रभाव का है जिसका असर सत्ताधारी वग क ही नही बल्कि मजदूरवग के सदस्यो पर भी पडा था। इसलिए अधिकारपत्रवाद (चार्टिज्म) की नई और शक्तिशाली धारा ने दुनिया के मजदूरवग को वर्गो की मुक्ति क लिए खुलेआम वर्ग-सघष क रास्ते पर लाकर तथा औपनिवेशिक जनता के हित को अपनाकर 19वी सदी म मजदूरो ने उच्चवग के घृणित समझौतो को स्थान दिया और उन्ह मालिको का विनीत पिछलग्गू बना दिया। माक्स और एगेल्स ने बार बार यह बताया है कि इस भ्रष्टाचार और पतन का मूल कारण यह है कि उपनिवेशो के शोषण से जो लूट का माल इकट्ठा होता है उनम इन्हे भी हिस्सा मिलता है। इन उपनिवेशो म भारत का प्रमुख स्थान है। यही वजह है कि जब समाजवाद की जीवनदायी शक्ति ने नए सिर स ब्रिटेन के मजदूरवग म जागृति का सचार किया तो यह प्रगति उदार साम्राज्यवाद (लेबर इपीरियलिज्म) के क्षयकारी प्रभाव स काफी हद तक कमजोर, विभाजित और विकृत हो गई। इसकी कीमत 1914 क युद्ध म और वतमान युद्ध म चुकानी पडी। भारत के मामले म लेबर पार्टी के कार्यो का शमनाक इतिहास देखने स पता चलता है कि ब्रिटिश मजदूरवग को

आजादी से वचित रखने वाला यह कैंसर नेबर आदोलन के प्रमुख वर्गो की नसो म कितनी गहराई तक धसा हुआ है। यह बात उन दोनो लेबर सरकारा क सदभ म भी सही है जिन्होने एक जनतान्त्रिक आदोलन के दमन के लिए जारशाही के सभी तरीको का इस्तेमाल किया। लेबर पार्टी जब विपक्ष म थी तब भी उसने भारतीय जनता के खिलाफ बार बार कजरवेटिव पार्टी की सरकार के साथ तालमेल बैठाया। 1937 म बूनमाउथ म लेबर पार्टी के अधिवेशन की विषयसूची म एक प्रस्ताव था जिसम कहा गया था कि भारतीयो को एक सविधान सभा के जरिए आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाए। यह एक ऐसी जनतान्त्रिक माग थी जिसका विरोध नही किया जा सकता था पर लेबर पार्टी के नेताओ ने इस बात की पूरी एहतियात बरती कि यह प्रस्ताव अधिवेशन म न लाया जा सके और इसपर मतदान न कराया जा सके।

यहा तक कि आज जब इस प्रभुत्व का आधार लडखडा रहा है और फलस्वरूप मजदूरा के एक वग की परोक्ष उपलब्धिया समाप्त हो रही ह साम्राज्यवाद के राजनेता अब भी ब्रिटिश साम्राज्य क मुनाफो का ब्रिटन के मजदूरवग तथा ब्रिटिश जनता क हिता के लिए अपरिहाय बताकर बढाए रखना चाहते ह। इस सदभ म चर्चिल ने कहा है

> विदेशो के साथ हमारे व्यापक सबध, हमारे निर्यात व्यापार जो अब आधा हो गया है हमारी जहाजरानी जो इतने बडे पमाने पर ठप पड गई, और विदेशो म पूजी लगाने से हुई आय जिनपर हमारी सामाजिक सेवाओ को बनाए रखने के लिए भार डाला जा रहा है इन सबके बिना जितने लोग रह सकते है उनमे डेढ करोड ज्यादा लोग यहा ह। मेरा ख्याल है कि इन द्वीपो मे 20 या 30 लाख लोग उन परोपकारी सेवाओ से अपना जीवन बसर कर रहे ह जो हमारे और भारत के बीच परस्पर चलती ह। (हाउस आफ कामस म विस्टन चर्चिल का भाषण, 29 मार्च 1933)

> भारत को अभी ब्रिटेन के वेतनभोगियो क विषय म बहुत कुछ करना है। लकाशायर के कपासकर्मियो ने अब उसे समाप्त पाया है। उनमे स 1 लाख व्यक्ति पहले से ही खैरात पर काम चला रहे है, और यदि भारत को हमने खो दिया, यदि हमारे साथ ब्रिटिशशासित भारत ने भी वही व्यवहार किया जैसा ब्रिटिशशासित आयरलड ने किया था तो ज्यादा आशका इस बात की है कि इस देश म रोजीरोटी कमाने वाले 20 लाख लोग सडको की खाक छानने लगेंगे और लेबर एक्सचेंजो क बाहर लाइन लगाने लगग। (भारत क बारे म विस्टन चर्चिल का रेडियो प्रसारण, 29 जनवरी 1935)

यह तक व्यवहार म भी उतना ही गलत है जितना सिद्धात म दपपूण। एक दुर्भाग्यग्रस्त और नष्ट हो रही इजारदारी के टुकडो की रक्षा के लिए ब्रिटिश मजदूरा की स्वतत्रता का

अपना जन्मसिद्ध अधिकार और अपने श्रम का भरपूर फल छोड देना पडेगा तथा गुलाम देशों की जनता के विरुद्ध अपने मालिकों की कतार मे खडा होना पडेगा। इस नीति का नतीजा समृद्धि नही बल्कि बरबादी है। मौजूदा समय म यह बात व्यवहार म साबित हो चुकी है। भारत को आजादी नही दी गई है पर आजादी न देकर भी नौकरी के इच्छुक ब्रिटेन के 20 लाख लोगो को लेबर एक्सचेंजा के सामने लाइन लगाने से नही रोका जा सका। 19वी सदी की पुरानी इजारेदारी अब दुर्भाग्य का शिकार हो चुकी है और उसे बचाया नही जा सकता। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए शोषको के साथ कधा मिलाना और ब्रिटिश सरकार के ही नही बल्कि ब्रिटिश जनता के प्रति भी गुलाम देशो की जनता के बीच शत्रुता की भावना को तेज करना एक ऐसी हरकत है जिसका नतीजा यह होगा कि ब्रिटेन एकदम अलग थलग पड जाएगा और ब्रिटिश जनता बरबाद हो जाएगी। इसके विकल्प की तलाश बिरादराना उत्पादन सबधो पर ही की जा सकती है, इसके ही जरिए ब्रिटिश मजदूरो के सम्मानजनक और समृद्ध अस्तित्व का प्रयोजन पूरी तरह सिद्ध हो सकता है। वह आधार भी पाया जा सकता है लेकिन इसे पाने का आधार भी उन लोगो की समान मैत्री पर निर्भर होगा जो साम्राज्यवादी शोषण के पुराने सबधों को समाप्त करके नए सबध कायम करने म लगे हो।

साम्राज्यवादियो की आपसी होड का परिणाम हमने एक बार फिर एक नए घातक विश्व-युद्ध के रूप म देख लिया है। लेकिन इसके साथ ही ब्रिटिश मजदूरवर्ग और ब्रिटिश जनता के सामने विकल्प के रूप म एक नया मार्ग भी प्रशस्त हो गया है। यह मार्ग समान जनतात्रिक अधिकारो, राष्ट्रीय स्वतत्रता, विश्वशाति और फिर समाजवाद के लिए समान रूप स सघर्ष म जुटी भारतीय जनता और सभी गुलाम देशो की जनता के साथ एकता कायम करने का मार्ग है। इन मामलो पर ब्रिटिश जनता का सजग होना भारतीय जनता के सजग होने की तुलना म किसी भी मान म कम महत्वपूर्ण नही है।

3 राष्ट्रवाद और विदेशनीति

ब्रिटेन की अतर्राष्ट्रीय नीति और ब्रिटेन की घरेलू राजनीति के लिए भारत का सामरिक महत्व क्या रहा है, इसपर विचार करें तो पता चलता है कि भारत की भूमिका हमेशा एक कठपुतली की रही है, उसने विश्वशक्तियो और सघर्षों के सतुलन म एक भूमिका बल्कि य कहे कि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है लेकिन इस भूमिका का चुनाव उसकी ससद ने नही हुआ और न इसपर उसका कोई वश ही रहा। आज वह स्थिति समाप्त हो रही है। भारत की जनता आज भारतीय मामलो म ही नही बल्कि अतर्राष्ट्रीय मामलो म भी अपने अधिकारो को दृढता के साथ रख रही है।

1914 म युद्ध स पूर्व भारतीय राष्ट्रीय आदोलन ने अतराष्ट्रीय राजनीतिक मसलो के उदभ म कोई सक्रिय भूमिका निभाने की कोशिश नही की। उसकी यह कोशिश केवल इन गिने मामलो म ही रही जैसे विदेशो म रहने वाले भारतीयो का विशेष मसला और

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य देशों की असमर्थताएं जिनका उन्हें शिकार होना पड़ता था।

इस युग मे विश्व के प्रमुख राजनीतिक मसलो के सदर्भ म महत्व के इस बोध से इस भ्रम मे नही पडना चाहिए कि यह तटस्थता के अथवा सुविचारित अलगाव के कारण है। राजनीतिक आदोलन मे शामिल लोग और यहा तक कि इन आदोलनो से काफी अलग पड़े लोगो के भी कुछ वर्ग विदेशो म घटित हो रही राजनीतिक घटनाओ म बेहद दिलचस्पी ले रहे थे और वे सोच रहे थे कि इन घटनाओ का भारत की मुक्ति पर क्या असर पड सकता है। ब्रिटिश साम्राज्य के कमजोर होने के हर सकेत को वे बडी उत्सुकता के साथ देखते थे और उनके अदर आशा का सचार होता था। दक्षिण अफ्रीकी युद्ध इसका प्रमाण है। 1905 म जब जापान की जीत हुई तो उन लोगो ने इसका जोरदार स्वागत किया, उनके अदर एक नया विश्वास पैदा हुआ और उन्होने इसे पश्चिमी साम्राज्यवाद की अब तक अजेय समझी जाने वाली शक्ति पर किसी एशियाई देश की पहली सफलता के रूप म लिया। ब्रिटिश प्रभुत्व के खिलाफ मिस्र और आयरलैंड के सघर्ष, बडी शक्तियो की लूटमार की योजना के खिलाफ सकटग्रस्त टर्की साम्राज्य के सघर्ष या विभाजन की ब्रिटिश रूसी योजना के विरुद्ध फारस के सघर्ष के प्रति इन लोगो ने गहरी सहानुभूति दिखाई। 1905 की रूसी क्राति टर्की की क्राति और चीनी क्राति ने इनमे एक नए जीवन का सचार किया। इन सारी घटनाओ से इस बात का सकेत मिलता है कि अतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक चेतना की शुरुआत हो चुकी है।

1914 के युद्ध ने और 1917 की रूसी क्राति ने एक नई स्थिति को जन्म दिया। 1914 के युद्ध म राष्ट्रीय आदोलन के बडे नेताओ ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपना पूर्ण समर्थन दिया। उन्हे यह उम्मीद थी कि इस समर्थन के पुरस्कारस्वरूप उन्हे भारत को जनतात्रिक दिशा म आगे ले जाने म मदद मिलेगी। जिस समय युद्ध की घोषणा हुई राष्ट्रीय काग्रेस का एक प्रतिनिधिमडल लदन म था जिसमे लाजपतराय जिन्ना, सिनहा तथा कुछ अन्य लोग थे। इन लोगो ने ब्रिटिश साम्राज्य की शीघ्र विजय के लिए अपने सहयोग की घोषणा करने म तनिक भी देर नही की। गाधी की भूमिका का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। युद्ध के प्रारभिक वर्षों म जहा तहा राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशनो म भाग लेने वाले सरकारी प्रतिनिधियो की जयजयकार की गई।

हरदयाल बरकतुल्ला जैसे जुझारू राष्ट्रवादियो के एक छोटे से गुट ने जर्मनी के साथ सबध स्थापित किया और उन्होने बर्लिन म एक भारतीय समिति का गठन किया लेकिन इसका कोई बहुत बड़ा प्रभाव नही पडा। भारत के अदर राष्ट्रीय आदोलन के नरमपथी तत्व उग्र सघर्षों का सचालन कर रहे थे।

युद्ध समाप्त होने के समय तक भी राष्ट्रीय काग्रेस के ... यह ... के प्रति ...
आत्मनिर्भर के व्यापक ... का ... , औ नि ... नाति

सम्मेलन म काग्रेस का प्रतिनिधित्व करने क लिए तिलक को चुना गया लेकिन ब्रिटिश सरकार ने उन्ह पासपोट दन से इकार कर दिया और वह इस सम्मेलन म भाग नही ले सके। इसके बाद तिलक न शाति सम्मेलन के अध्यक्ष क्लेमेंसू के नाम एक पत्र लिखा ताकि भारत के दावा पर वल दिया जाए। अपने पत्र म उन्होने लिखा

> इस बात को विस्तार से बताने की कोई जरूरत नही है कि विश्व की भावी शाति और भारत की जनता की प्रगति क लिए भारतीय समस्या का हल किया जाना कितना महत्वपूण है। भारत स्वत पूण है, दूसरे देशो की अखडता के खिलाफ उसकी कोइ योजना नही है और देश से बाहर उसकी कोई महत्वाकाक्षा नही है। अपने व्यापक क्षेत्रफल, असीमित साधनों और अतिविशाल आबादी के कारण वह बडे आराम से एशिया की प्रमुख ताकत बन सकता है। इसलिए वह दुनिया मे शाति बनाए रखने के लिए और एशिया या और कही के शाति विरोधियो क हर तरह के आक्रमणो के खिलाफ ब्रिटिश साम्राज्य को स्थिरता प्रदान करने क लिए राष्ट्र सघ का एक शक्तिशाली कारिंदा हो सकता है।

1919 का यह दस्तावेज अतर्राष्ट्रीय नीति के क्षेत्र म भारतीय राष्ट्रीय आदोलन का पहला दस्तावेज है और इससे पता चलता है कि उस समय किस तरह की विचारधारा हावी थी।

इन आशाओ का धूल म मिलना ही था। 'भारत' को राष्ट्रसघ का मौलिक सदस्य बना लिया गया। एस समय म जबकि भारत पर ब्रिटेन का पूरी तरह कब्जा हो और ब्रिटन ही भारत की समूची नीतियो का निधारण करता हो तथा उसका प्रतिनिधित्व करता हो, इस तरह की सदस्यता' देना कितना असगत है। प्रोफेसर ए० बी० कीथ ने इसपर बडी तीखी टिप्पणी की है

> 1919 की बुनियादी गलती यह थी कि भारत को राष्ट्रसघ म ऐसे समय स्थान दिया गया जब उसकी घरेलू और विदेशी नीति पर पूरी तरह ब्रिटिश सरकार का नियत्रण था। लीग की सदस्यता का औचित्य तभी ठहराया जा सकता था जब भारत को स्वायत्तता दी जाती ग्रेट डामीनियनो की बात के सदभ म इसकी बाकायदा भविष्यवाणी की जा सकती थी पर भारत के बारे म फिलहाल यह सच नही था और यह भी नही कहा जा सकता कि इस लक्ष्य को जल्दी प्राप्त किया जा सकता है। इन परिस्थितियो मे यह स्वीकार करना ज्यादा बुद्धिमत्तापूण है कि भारत को फिलहाल राष्ट्रसघ का सदस्य नही बनाया जा सकता। हा, जब उस स्वायत्तता प्राप्त हो जाएगी तब उसे उसका विशिष्ट सदस्य बना लिया जाएगा अभी राष्ट्रसघ म भारत की स्थिति स्पष्टत असगतियो से भरी है। ऐसा इसलिए क्योकि उसकी नीतिया अभी

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य देशों की असमर्थताएं जिनका उन्हें शिकार होना पड़ता था।

इस युग मे विश्व के प्रमुख राजनीतिक मसलो के संदर्भ मे महत्व के इस बोध से इस भ्रम मे नही पड़ना चाहिए कि यह तटस्थता के अथवा सुविचारित अलगाव के कारण है। राजनीतिक आंदोलन मे शामिल लोग और यहा तक कि इन आंदोलनो से काफी अलग पड़े लोगो के भी कुछ वर्ग विदेशो मे घटित हो रही राजनीतिक घटनाओ मे बेहद दिलचस्पी ले रहे थे और वे सोच रहे थे कि इन घटनाओ का भारत की मुक्ति पर क्या असर पड़ सकता है। ब्रिटिश साम्राज्य के कमजोर होने के हर संकेत को वे बड़ी उत्सुकता के साथ देखते थे और उनके अंदर आशा का संचार होता था। दक्षिण अफ्रीकी युद्ध इसका प्रमाण है। 1905 मे जब जापान की जीत हुई तो उन लोगो ने इसका जोरदार स्वागत किया, उनके अंदर एक नया विश्वास पैदा हुआ और उन्होने इसे पश्चिमी साम्राज्यवाद की अब तक अजेय समझी जाने वाली शक्ति पर किसी एशियाई देश की पहली सफलता के रूप मे लिया। ब्रिटिश प्रभुत्व के खिलाफ मिस्र और आयरलैंड के संघर्ष, बड़ी शक्तियो की लूट मार की योजना के खिलाफ संकटग्रस्त टर्की साम्राज्य के संघर्ष या विभाजन की ब्रिटिश रूसी योजना के विरुद्ध फारस के संघर्ष के प्रति इन लोगो ने गहरी सहानुभूति दिखाई। 1905 की रूसी क्रांति, टर्की की क्रांति और चीनी क्रांति ने इनमे एक नए जीवन का संचार किया। इन सारी घटनाओ से इस बात का संकेत मिलता है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक चेतना की शुरुआत हो चुकी है।

1914 के युद्ध ने और 1917 की रूसी क्रांति ने एक नई स्थिति को जन्म दिया। 1914 के युद्ध मे राष्ट्रीय आंदोलन के बड़े नेताओ ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपना पूर्ण समर्थन दिया। उन्हें यह उम्मीद थी कि इस समर्थन के पुरस्कारस्वरूप उन्हें भारत को जनतांत्रिक दिशा मे आगे ले जाने मे मदद मिलेगी। जिस समय युद्ध की घोषणा हुई, राष्ट्रीय कांग्रेस का एक प्रतिनिधिमंडल लंदन मे था जिसमे लाजपतराय, जिन्ना, सिन्हा तथा कुछ अन्य लोग थे। इन लोगो ने 'ब्रिटिश साम्राज्य की शीघ्र विजय' के लिए अपने सहयोग की घोषणा करने मे तनिक भी देर नही की। गांधी की भूमिका का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। युद्ध के प्रारंभिक वर्षों मे जहां तहां राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनो मे भाग लेने वाले सरकारी प्रतिनिधियो की जयजयकार की गई।

हरदयाल, बरकतुल्ला जैसे जुझारू राष्ट्रवादियो के एक छोटे से गुट ने जर्मनी के साथ संबंध स्थापित किया और उन्होने बर्लिन मे एक भारतीय समिति का गठन किया लेकिन इसका कोई बहुत बड़ा प्रभाव नही पड़ा। भारत के अंदर राष्ट्रीय आंदोलन के वामपंथी तत्व उग्र संघर्षों का संचालन कर रहे थे।

युद्ध समाप्त होने के समय तक भी राष्ट्रीय कांग्रेस के लोग यह आशा किए बैठे थे कि आत्मनिर्णय के व्यापक वायदो का लाभ शायद भारत को भी मिल जाए। वर्साई शांति

सम्मेलन म काग्रेस का प्रतिनिधित्व करन के लिए तिलक को चुना गया लेकिन ब्रिटिश सरकार न उन्ह पासपोर्ट दन से इकार कर दिया और वह इस सम्मेलन म भाग नही ले सके। इसके बाद तिलक न शाति सम्मेलन के अध्यक्ष क्लेमैंसू के नाम एक पत्र लिखा ताकि भारत के दावो पर बल दिया जाए। अपने पत्र म उन्होने लिखा

> इस बात को विस्तार से बताने की कोई जरूरत नही है कि विश्व की भावी शाति और भारत की जनता की प्रगति के लिए भारतीय समस्या का हल किया जाना कितना महत्वपूर्ण है। भारत स्वत पूर्ण है, दूसरे देशो की अखडता के खिलाफ उसकी कोई योजना नही है और देश से बाहर उसकी कोई महत्वाकाक्षा नही है। अपने व्यापक क्षेत्रफल, असीमित साधनो और अतिविशाल आबादी के कारण वह बडे आराम से एशिया की प्रमुख ताकत बन सकता है। इसलिए वह दुनिया म शाति बनाए रखने के लिए और एशिया या और कही के शाति विरोधियो के हर तरह के आक्रमणो के खिलाफ ब्रिटिश साम्राज्य को स्थिरता प्रदान करने के लिए राष्ट्र सघ का एक शक्तिशाली कारिंदा हो सकता है।

1919 का यह दस्तावेज अतर्राष्ट्रीय नीति के क्षेत्र म भारतीय राष्ट्रीय आदोलन का पहला दस्तावेज है और इससे पता चलता है कि उस समय किस तरह की विचारधारा हावी थी।

इन आशाओ को धूल म मिलना ही था। भारत' को राष्ट्रसघ का मौलिक सदस्य बना लिया गया। ऐसे समय म जबकि भारत पर ब्रिटेन का पूरी तरह कब्जा हो और ब्रिटेन ही भारत की समूची नीतियो का निर्धारण करता हो तथा उसका प्रतिनिधित्व करता हो, इस तरह की सदस्यता' देना कितना असगत है। प्रोफेसर ए० बी० कीथ ने इसपर बडी तीखी टिप्पणी की है

> 1919 की बुनियादी गलती यह थी कि भारत को राष्ट्रसघ म ऐसे समय स्थान दिया गया जब उसकी घरेलू और विदेशी नीति पर पूरी तरह ब्रिटिश सरकार का नियत्रण था। लीग की सदस्यता का औचित्य तभी ठहराया जा सकता था जब भारत को स्वायत्तता दी जाती ग्रेट डोमीनियनो की बात के सदभ मे इसकी बाकायदा भविष्यवाणी की जा सकती थी पर भारत के बारे म फिलहाल यह सच नही था और यह भी नही कहा जा सकता कि इस लक्ष्य को जल्दी प्राप्त किया जा सकता है। इन परिस्थितियो म यह स्वीकार करना ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण है कि भारत को फिलहाल राष्ट्रसघ का सदस्य नही बनाया जा सकता। हा, जब उसे स्वायत्तता प्राप्त हो जाएगी तब उसे उसका विशिष्ट सदस्य बना लिया जाएगा अभी राष्ट्रसघ म भारत की स्थिति स्पष्टत असगतियो से भरी है। ऐसा इसलिए क्योकि उसकी नीतिया कभी

> ब्रिटिश सरकार द्वारा निधारित की जाती है और यह क्रम अभी अनिश्चितकाल तक जारी रहेगा। (सर ए० बी० कीथ कास्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इडिया पृष्ठ 472-73)

एक तरफ तो राष्ट्रीय आदोलन के बुजुर्ग नेतागण अब भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपना स्वाभाविक नेता मान रहे थे और सावजनिक रूप से भारत को ब्रिटिश साम्राज्य को स्थिरता देने के एक शक्तिशाली कारिंदे' के रूप मे पेश कर रहे थे (जैसाकि 1919 मे लिखे तिलक के पत्र से स्पष्ट है) और दूसरी तरफ प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से ही नई धाराए विकसित हो रही थी। 1917 की रूसी क्राति, युद्ध समाप्त होने के बाद विश्व भर मे चली क्रातिकारी लहर और सभी गुलाम देशो मे उपनिवेशवादविरोधी मुक्ति आदोलनो ने दुनिया के सामने एक ऐसे नए युग का सूत्रपात किया जिससे भारत का बहुत घनिष्ठ सबध था। पश्चिमी साम्राज्यवाद के पुरातन प्रतिक्रियावादी खेमे के विरुद्ध, सोवियत सघ के व्यापक समान हितो से, अतराष्ट्रीय मजदूर आदोलन से तथा उपनिवेशो मे चल रहे राष्ट्रीय आदोलन से विश्व की शक्तिया नए सिरे से पक्तिबद्ध हुई। विश्व के इस नए मोर्चे के प्रति भारतीय राष्ट्रवाद की सभी प्रगतिशील धाराओ ने बड़े उत्साह के साथ अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की।

1925 27 के दौरान चीन की राष्ट्रीय क्राति के विकास पर भारत की जनता ने काफी उत्साहजनक प्रतिक्रिया व्यक्त की। 1927 मे राष्ट्रीय काग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमे चीनी क्राति के विरुद्ध लदन के लिए भारतीय सैनिको के दस्ते भेजे जाने का विरोध किया गया था। उसी वर्ष राष्ट्रीय काग्रेस ने उत्पीडित जनता की साम्राज्यवाद विरोधी अतर्राष्ट्रीय लीग' (इटरनेशनल लीग आफ दि आप्रेस्सड पीपुल्स अगस्ट इपीरियलिज्म)की स्थापना मे भाग लिया और स्वय को इस लीग के साथ सबद्ध किया। इस सिलसिले मे ब्रसेल्स मे हुई कान्फ्रेंस मे काग्रेस का प्रतिनिधित्व नेहरू ने किया। उप-निवेशो की जनता और अतर्राष्ट्रीय मजदूरवर्ग को जोडने वाली साम्राज्यवादविरोधी शक्तियो के सामूहिक मोर्चे के विकास मे यह एक महत्वपूर्ण घटना थी।

फासिस्ट युद्ध अभियान के तेज होने के साथ तथा फासिस्ट हमले को सहयोग पहुचाने मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सहापराधिता को देखते हुए, जिसकी परिणति एक विश्वयुद्ध मे हुई, यह चेतना और भी आगे बढ़ी। राष्ट्रीय काग्रेस ने अबीसीनिया की जनता का और स्पेन के जनतत्र का पक्ष लिया और उन्हे व्यावहारिक मदद दी। काग्रेस का प्रतिनिधित्व सितबर 1936 मे ब्रसेल्स मे आयोजित वर्ल्ड पीस काग्रेस मे हुआ और राष्ट्रीय काग्रेस ने भारतीय दृष्टिकोण के तहत अपने को अतराष्ट्रीय शाति अभियान से सबद्ध किया। भारतीय दृष्टिकोण यह था कि साम्राज्यवादी शोषण के आधार पर स्थाई शाति नही कायम हो सकती किसी भी ऐसी सधि को पवित्र नही माना जाएगा जो साम्राज्यवादी

प्रभुत्व को बनाए रखने के पक्ष म हो और भारत राष्ट्रसघ म एक स्वतत्र सदस्य की हैसियत से काम करने क लिए आजादी चाहता है।

1936 मे जब स्पानी जनतत्र के विरुद्ध जमनी और इटली की आक्रामक कायवाहिया के सदभ म ब्रिटेन और फास की सरकारें 'हस्तक्षेप न करने' की नीति का समयन कर रही थी, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने दिसबर 1936 म अपने फजाबाद अधिवेशन म एलान किया

> फासिस्ट आक्रमण बढ गया है। फासिस्ट शक्तिया यूराप और समूचे विश्व पर अपना प्रभुत्व कायम करने तथा राजनीतिक और सामाजिक स्वतत्रता का दमन करने के इरादे मे आपस म गठबदी और गुटबधन कर रही ह। काग्रेस इस खतरे के प्रति पूरी तरह सजग है और इस विश्वव्यापी खतरे को वह दुनिया के प्रगतिशील राष्ट्रो तथा प्रगतिशील जनता के सहयाग से इस विश्वव्यापी खतरे का मुकाबला करन की आवश्यकता को पूरी तरह महसूस करती है।

फरवरी 1938 म, हरिपुरा अधिवेशन ने, 'सामूहिक सुरक्षा' के समयन की घोपणा की और फासिस्ट आक्रमण के साथ सहापराधिता की उस नीति की भत्सना की जो युद्ध के खतरे को दिनोदिन नजदीक लाती जा रही थी। 1938 मे जापानी माल का बहिष्कार करने की घोपणा की गई। 1938 के बसत म राष्ट्रीय काग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन ने स्पष्ट शब्दा म म्यूनिखनीति से भारत को अलग कर लिया

> काग्रेस ब्रिटन की उस विदेशनीति को पूरी तरह नामजूर करती है जिसकी चरम परिणति है म्यूनिख सधि, आग्ल इतालवी समझौता, और विद्रोही स्पेन को मान्यता। इस नीति ने जानबूझकर जनतत्र के साथ विश्वासघात किया है बार बार अपने वादा को भग किया है, सामूहिक सुरक्षा को समाप्त किया है, और उन सरकारा के साथ सहयोग किया है जो जनतत्र और स्वतत्रता की घोर दुश्मन है काग्रेस अपने को पूरी तरह उस ब्रिटिश विदेशनीति से अलग करती है जिसने निरतर फासिस्ट शक्तियो की मदद की है और जनतात्रिक देशो के विनाश म सहायता पहुचाई है।

इस प्रकार काफी पहल 1939 म ब्रिटन द्वारा जमनी के विरुद्ध की गई युद्ध घोपणा मे पूव क नाजुक वर्षों म ही जब ब्रिटिश सरकार फासिस्ट हमलावरा का व्यावहारिक और कूट-नीतिक मदद द रही थी, भारतीय जनता न अपने राष्ट्रीय नेताआ के जरिए फासीवाद के प्रति अपन विरोध का और विश्व की जनतात्रिक तथा प्रगतिशील शक्तिया के प्रति समथन का एलान कर दिया था।

4 भारत और विश्वयुद्ध (1939-1942)

1939 मे जब ब्रिटन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तो ब्रिटिश सरकार ने उसी नीति का पालन करना चाहा जो 1914 के युद्ध के समय अपनाई गई थी। भारत को ब्रिटिश नीति के हाथो की कठपुतली बना दिया गया जो अपने देश की जनता से सलाह-मशविरा किए बिना अपने आप ही ब्रिटेन के पीछे पीछे युद्ध म घिसटता चला गया।

युद्ध की घोषणा के कुछ ही घटा के अदर वायसराय ने भारतीय जनता के प्रतिनिधियो से किसी तरह का सलाह-मशविरा किए बिना भारत को युद्ध म शामिल घोषित कर दिया। ब्रिटिश ससद ने चटपट 11 मिनट के अदर 'गवनमेट आफ इडिया अमडिग ऐक्ट' पारित कर दिया जिसम वायसराय को यह अधिकार दिया गया था कि वह प्राती की स्वायत्तता के प्रश्न पर भी सविधान के कार्यों को रद्द कर सकता है। 3 सितबर 1939 के भारतरक्षा अध्यादेश ने कद्र सरकार को यह अधिकार दे दिया कि वह राजाज्ञा (डिक्री) के जरिए शासन कर सकती है ऐसे कानूनो की घोषणा कर सकती है जो 'ब्रिटिश भारत की रक्षा जनजीवन की सुरक्षा, सावजनिक व्यवस्था, युद्ध के कुशल सचालन या समाज के लिए आवश्यक सामानो और सेवाओ की सप्लाइ बनाए रखने के लिए जरूरी समझे जाए', सभाओ तथा प्रचार के अन्य तरीको पर पाबदी लगा सकती है, बिना वारट किसी को भी गिरफ्तार कर सकती है और कायदे-कानूनो को तोडने के अपराध मे जुर्माने कर सकती है। इनम मृत्युदड या आजीवन कारावास की सजा भी शामिल है।

11 सितबर को वायसराय ने राज्यसघ की तैयारिया को स्थगित करने की घोषणा की। भारत म निरकुश शासनव्यवस्था को अब सविधान का कोई ढाग रचे बिना जारी रखने की योजना बनाई गई और इस अत्यत व्यापक असाधारण अधिकारो के जरिए मजबूत बनाया गया। 25 वर्ष पहले की ही तरह एक बार फिर भारतीय जनता को ब्रिटिश सरकार के पीछे घिसटते हुए एक ऐसे युद्ध म शरीक हो जाना पडा जिसम बचने का उसके पास कोई रास्ता नही था और जिसके बारे म उसने लगातार उस नीति का विरोध किया था जिसके कारण युद्ध अनिवार्य बना।

घटनाक्रमो ने जल्दी ही दिखला दिया कि 1914 के मुकाबले भारत की स्थिति कितनी भिन्न थी। 14 सितबर को राष्ट्रीय काग्रेस की कार्यसमिति ने युद्ध के सदर्भ म अपना बयान जारी किया। इस बयान म कहा गया था

> यह समिति एक ऐसे युद्ध से न तो स्वय को सबद्ध कर सकती है और न इस युद्ध के साथ सहयोग कर सकती है जो साम्राज्यवादियो की नीति पर चल रहा

हो और जिसका मकसद भारत तथा अन्य देशो म साम्राज्यवाद को मजबूत बनाना हा ।

प्रस्ताव म यह माग की गई

भारत की जनता को किसी बाहरी हस्तक्षेप के बिना एक सविधान सभा के जरिए अपने सविधान का गठन करके आत्मनिणय का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। उसे अपनी नीति स्वय निधारित करने का अधिकार मिलना चाहिए।

इसलिए राष्ट्रीय काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के लिए प्रत्यक्ष चुनौती प्रस्तुत कर दी

इसलिए कायसमिति ब्रिटिश सरकार का उस बात के लिए निमत्रित करती है कि वह स्पष्ट शब्दा म बताए कि इस लडाई म जनतत्र और साम्राज्यवाद के विषय मे उसके क्या उद्देश्य है और खासतौर से जिस नई व्यवस्था पर विचार किया जा रहा है, उस सदभ म य उद्देश्य कहा तक भारत पर लागू हाने जा रहे है और मौजूदा स्थिति म उन्हे किस प्रकार कारगर बनाया जा रहा है। क्या इन उद्देश्यो म साम्राज्यवाद को समाप्त करना और भारत के एक ऐसे स्वतत्र देश जैसा व्यवहार करना शामिल है जिसकी नीति देश की जनता की आकाक्षाओ के अनुरूप निर्देशित हो ?

राष्ट्रीय काग्रेस के इस सीधे सवाल के जवाब म ब्रिटिश सरकार ने जो जवाब दिया वह वस्तुत नकारात्मक था। ब्रिटिश सरकार ने अपना वही पुराना वादा दुहराया जिसम भविष्य मे कभी 'डामीनियन का दरजा' देकर किसी तरह की रियायत देन की बात कही गई थी (पिछले विश्वयुद्ध के समय भी ऐसी ही परिस्थितियो मे इसी तरह के उसने किए गए थे जो आज तक पूरे नही हो सके) और इस तरह के वादो की आड लेकर वादे अपना तात्कालिक कायक्रम एक परामश समिति' का गठन करना घोषित किया। परामश समिति, भारत को गुलाम बनाए रखने और युद्ध के सचालन को बढावा दने के लिए वायसराय को मदद पहुचाने के वास्ते भारतीयो के लिए बनाई गई थी।

राष्ट्रीय काग्रेस और ब्रिटिश सरकार के नताओ के बीच की यह प्रारभिक कूटनीतिक मुठभेड उस गहरे सघष का पहला सकेत था जो अदर ही अदर पनप रहा था। काग्रेस के नतागण वायसराय के साथ इन कूटनीतिक वाताआ म लग हुए ये जबकि जनता न आदोलन छेड दिया था। 2 अक्तूबर को बबई के 90 000 मजदूरा ने युद्ध और साम्राज्यवाद के दमनकारी उपाया क खिलाफ एक दिन की राजनीतिक हडताल की। बबई की सडके 'साम्राज्यवादी युद्ध का नाश हो', 'भारतीय आजादी अमर रहे', लाल झडा की जीत हो' क नारा स गूज उठी। युद्ध म सलग्न किसी भी दश म हुई यह पहली युद्धविरोधी

जन हडताल थी। हडताल के अत म कामगर मैदान म आयोजित आमसभा म सवसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमे कहा गया

> यह सभा दुनिया के मजदूरो और दुनिया की जनता क साथ अपनी एकता व्यक्त करती है जिन्ह साम्राज्यवादी शक्तिया द्वारा अत्यत विनाशकारी युद्ध मे घसीटा जा रहा है। यह सभा वतमान युद्ध को मजदूरवग की अतर्राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती मानती ह और घोषित करती है कि विभिन्न देशो के मजदूरा और लोगा का यह क्तव्य है कि व मानवता के विरुद्ध की गई इस साजिश को नाकाम करे।

बबई के मिलमजदूरो के इस प्रस्ताव म भारतीय मजदूरवग के सघप का साम्राज्यवाद के खिलाफ अतर्राष्ट्रीय मजदूरवग द्वारा चलाए जा रह सघप का एक हिस्सा समझा गया।

वायसराय क नकारात्मक जवाब के कारण अक्तूबर 1939 मे सभी काग्रेस मत्रिमडलो ने इस्तीफा दे दिया। 1940 के वसत मे रामगढ अधिवशन म काग्रेस ने अपना यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया

> भारत के सदभ म ब्रिटिश सरकार की ओर से की गई हाल की घोषणाओ से पता चलता है कि ग्रेट ब्रिटेन मूलत साम्राज्यवादी उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए ही यह लडाई लड रहा है—इन परिस्थितियो मे यह स्पष्ट है कि काग्रेस परोक्ष या अपरोक्ष किसी भी रूप मे युद्ध म शरीक नही होगी।

1940 की गर्मियो म यूरोप म नाजियो के बढने के साथ और फ्रास के पतन तथा युद्ध का सकट गहराने के साथ काग्रेस ने ब्रिटेन के साथ सहयोग का प्रस्ताव किया, बशर्ते भारत को आजादी दे दी जाए और केद्र मे एक अस्थाई राष्ट्रीय सरकार' की स्थापना की जाए जो भले ही अस्थाई तौर पर हो लेकिन केद्रीय विधानमडल क सभी निर्वाचित सदस्यो का उसे विश्वास प्राप्त हो—यदि ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिए गए ता देश की रक्षा के लिए कारगर सगठन बनाने के प्रयत्नो म काग्रेस अपनी पूरी ताकत लगा देगी।' यह प्रस्ताव जिसे स्पष्ट रूप मे गाधी की अहिसा की नीति से अलग होना ही था, जुलाई 1940 म पूना म दो तिहाइ बहुमत से स्वीकार किया गया। मतदान का परिणाम यह देखा गया कि 91 लोग अहिसा की नीति को छोडने के पक्ष म थ जबकि 63 लोग इसके विपक्ष मे थे, और 95 लोग ब्रिटन के साथ सशत सहयोग करने के त था 47 लोग सहयोग न करने के पक्ष म थे।

लेकिन ब्रिटिश सरकार न एक बार फिर इस प्रस्ताव पर नकारात्मक रवैया अपनाया। 8 अगस्त 1940 को वायसराय के बयान म (इस आमतौर स 'अगस्त प्रस्ताव' कहा जाता

है और वाद के वर्षों म क्रिप्स की योजना तथा नीति सवधी अन्य वक्तव्यो का यही आधार वनाया गया था) घोषणा की गई कि 'भारत की शाति और खुशहाली को देखत हुए ब्रिटिश सरकार अपनी मौजूदा जिम्मेदारियो को किसी एसी सरकार को हस्तातरित करने के वारे म नही सोच मकती थी जिसकी सत्ता को देश के राष्ट्रीय जीवन के वडे और शक्तिशाली तत्व प्रत्यक्ष तौर पर न मानते हो', अर्थात मुस्लिम लीग और राजाओ-महाराजाओ को इस वात का अधिकार मिलना चाहिए कि वे भारत की किसी भी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना म वीटो का इस्तमाल कर सकें। विकल्प के रूप म यह प्रस्ताव रखे गए

1 नए सविधान की रूपरेखा तैयार करन के लिए भारत के राष्ट्रीय जीवन के प्रमुख तत्वो को प्रतिनिधि सस्था की युद्ध के वाद स्थापना की जाए।
2 वायसराय की इक्जीक्यूटिव कौसिल म कुछ और भारतीयो को नामजद करके इसे विस्तार दिया जाए।
3 देशी रियासतो के प्रतिनिधियो तथा अन्य भारतीयो को लेकर एक 'युद्ध सलाहकार परिषद' का गठन किया जाए।

यह उत्तर इतना असतोषजनक था कि काग्रेस ने गाधी के नेतृत्व म एक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आदोलन छेडने का फसला किया और अक्तूवर 1940 म यह आदोलन छेड दिया गया।

साम्राज्यवाद के खिलाफ निर्णायक सघर्ष के लिए दवाव डालन वाली शक्तियो का विकास कितनी तीव्रता के साथ हो रहा था इसकी अभिव्यक्ति 1939-40 से मजदूरो, किसानो और उग्र राष्ट्रवादी तत्वो के खिलाफ सरकार द्वारा किए गए ववर दमन म ही नही वल्कि गाधी द्वारा शुरू किए गए अत्यत सीमित और चारो तरफ से घिरे सघर्ष के स्वरूप म भी होती है। यह किसी भी रूप म आजादी के लिए किया जाने वाला सघर्ष नही था। यह वोलन की स्वतत्रता का अधिकार प्राप्त करने के लिए शुरू किया गया एक साकेतिक सत्याग्रह था। सविनय अवज्ञा आदोलनकारियो के नाम की सूची गाधी के पास भेजी जाती थी ताकि वह पूरी तरह जाच ले और अपनी स्वीकृति दे। गाधी जिन नामो को अपनी स्वीकृति देत थे उनके लिए यह जरूरी था कि वे पहले से ही पुलिस को वता दें कि कव और किस जगह वे युद्ध के खिलाफ अपना साकेतिक विरोध प्रकट करने जा रहे है। इसके वावजूद वाद के महीनो म लगातार वडे पमाने पर गिरफ्तारिया होती रही और लोग जेलो मे जाते रहे (एक सरकारी वयान क अनुसार 24 मई 1941 तक सयुक्त प्रात के ही 12,000 लोग पकडे जा चुके थे और अनुमानत इस समय देश भर म गिरफ्तार लोगो की सख्या 20,000 तक पहुच गई थी। गिरफ्तार लोगो म प्रातीय विधानसभाओ के 398 सदस्य, 31 भूतपूर्व मत्री और केद्रीय विधानमडल के 22 सदस्य थे)।

देश इसी प्रकार के गतिरोध की स्थिति मे पडा था जब 1941 के उत्तराध की घटनाओ से युद्ध के स्वरूप म जबरदस्त तब्दीली आई। ये घटनाए थी सोवियत सघ पर जमनी का हमला, ब्रिटिश सोवियत सधि और सुदूर पूव मे जापान का आक्रमण और ब्रिटेन, अमरीका, सोवियत सघ तथा चीन के नेतृत्व म ब्रिटिश सोवियत मधि का मित्र राष्ट्रों के मिलेजुले मोर्चे का रूप लेना।

इन तमाम कारणो से युद्ध के स्वरूप म बुनियादी परिवतन आ गया और भारत के लिए इसका महत्व बढ गया जिसपर भारत के राष्ट्रवादी जनमत ने तुरत प्रतिक्रिया व्यक्त की। दिसबर 1941 म जवाहरलाल नेहरू ने घोपणा की 'दुनिया की प्रगतिशील ताकतें अब उस गुट के साथ पक्तिबद्ध है जिसका प्रतिनिधित्व रूस, ब्रिटेन, अमरीका और चीन कर रहा है।'

युद्ध के बदले हुए स्वरूप पर राष्ट्रीय आदोलन के सभी हिस्सो ने तत्काल इतनी निश्चित प्रतिक्रिया नही व्यक्त की। अब भी कुछ हिस्से ऐसे थे जा गाधी की 'अहिंसक' शातिवादी विचारधारा का अनुसरण कर रहे थे। अन्य लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ किसी प्रकार के सहयोग के प्रति सशकित थे। लेकिन राष्ट्रीय आदोलन के प्रमुख जिम्मेदार नेताओ न, जिनका प्रतिनिधित्व काग्रेस अध्यक्ष, मौलाना आजाद तथा जवाहरलाल नेहरू बहुमत के समथन से कर रहे थे, बराबरी के स्तर पर सयुक्त राष्ट्रा के मित्र राष्ट्र की हैसियत से सहयोग का आधार ढूढने की कोशिश की। स्पष्टत यह ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रा के हित म था कि वे इन शक्तियों के साथ समझौत का कोई आधार तलाशने की कोशिश करते। इस प्रकार 1941 के उत्तराध से ब्रिटिश सरकार के सामने एक अनुकूल स्थिति पैदा हो गई बशर्ते व एक नई भावना के साथ इस नई स्थिति का सामना करने को तैयार होते।

इन प्रस्तावो पर ब्रिटिश सरकार की पहली प्रतिक्रिया नकारात्मक थी। अगस्त 1941 म अतलातिक चाटर ने ब्रिटिश और अमरीकी सरकार की प्रतिभूत नीति का निर्धारण किया जिसका बाद म सभी सयुक्त राष्ट्रा ने पालन किया

> व सभी देशो की जनता के इस अधिकार का सम्मान करते है कि जिस सरकार क अधीन उम (जनता का) रहना है उस सरकार का चुनाव वह अपनी इच्छानुसार कर, और व चाहते हैं कि उन सभी लोगो को प्रभुसत्ता क अधिकार मिलें और स्वराज्य मिले जिन्हे इन चीजो स जबरन वचित कर दिया गया है।

लेकिन 9 सितबर 1941 को प्रधानमत्री विन्स्टन चर्चिल न अपन भाषण म सरकार की ओर स वक्तव्य जारी करत हुए खासतौर स कहा कि भारत, बमा तथा ब्रिटिश साम्राज्य क अन्य हिस्सा पर अतलातिक चाटर लागू नही होगा। उन्हाने कहा

> अतलातिक चाटर के सिलसिले मे हुई वैठक म हमारे दिमाग मे मूलत यूरोप के उन देशो को फिर से प्रभुसत्ता, स्वराज्य और राष्ट्रीय जीवन प्रदान करना था जो नाजियो के जुए तले पडे हुए थे।

इस सशोधन से भारत के राष्ट्रीय जनमत को वहुत क्रोध आया और सयुक्त राष्ट्रो की विरोधी प्रवत्तियो को वल मिला।

फिर भी दिसवर 1941 मे सरकार द्वारा काग्रेस के प्रमुख नेताओ को जेल से रिहा कर देना नए सिरे से बातचीत शुरू करने की दिशा म पहला कदम था। इससे सहयोग का आधार ढूढने की दिशा म नई प्रगति हुई। दिसवर 1941 की समाप्ति तक राष्ट्रीय काग्रेस के *बारदोली अधिवेशन* ने *(जनवरी 1942 म अभिपुष्ट)* इस *सिद्धात की घोषणा की* कि भारत सयुक्त राष्ट्रो के मित्र की हैसियत से फासिस्ट धुरी राष्ट्रो के खिलाफ हथियार लकर लडेगा वशर्ते उसे यह अवसर मिले कि वह एक राष्ट्रीय सरकार के तहत जनता को गोलबद कर सके। प्रस्ताव म कहा गया

> यद्यपि भारत के प्रति ब्रिटेन की नीति मे कोई तब्दीली नही आई है फिर भी समिति युद्ध के कारण घटित घटनाक्रमो पर तथा भारत क प्रति इसके रुख पर विचार करती है। काग्रेस की सहानुभूति निश्चित रूप से उन्ही लोगो के साथ होगी जो आक्रमण के शिकार है और गुलाम वनाए गए है तथा अपनी आजादी के लिए लड रह हैं, लेकिन एक स्वतत्र और स्वाधीन भारत ही ऐसी स्थिति मे हो सकता है कि वह राष्ट्रीय स्तर पर देश की रक्षा का दायित्व सभाल सके।

इस प्रस्ताव के पारित हो जाने के वाद राष्ट्रीय काग्रेस के नेतत्व से गाधी की छुट्टी हो गई क्योकि वह अहिंसा की नीति छोडने पर सहमत नही थे।

इस प्रस्ताव पर टाइम्स आफ इडिया' ने यह टिप्पणी की

> इस प्रस्ताव न ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते का दरवाजा फिर से खोल दिया है। इस प्रस्ताव के साथ एक महत्वपूण पहल की गई है और हम आशा करते है कि वदले म हम भी ऐसा ही रुख प्राप्त होगा।

रास्ता खुला था, केवल ब्रिटेन की ओर से कुछ राजनीतिज्ञता तथा अनुकूल प्रतिक्रिया की दरकार थी।

फरवरी 1942 म जनरलिस्सिमो च्याग काई शेक की भारत यात्रा से इस अनुकूल शुरुआत को और मदद मिली। उन्होन साथ साथ ही ब्रिटेन और भारत से सावजनिक अपील की।

उन्होंने भारतीय जनमत के समक्ष यह जोर देकर कहा कि 'आक्रमणकारी और आक्रमण-विरोधी, इन दो खेमों के बीच का कोई मध्य मार्ग नहीं है।' अपने भाषण में उन्होंने ब्रिटेन से अनुरोध किया कि वह भारत की जनता को जितनी जल्दी संभव हो 'वास्तविक राजनीतिक सत्ता' प्रदान करे ताकि इस देश की जनता अपनी समूची शक्ति के साथ युद्ध में हिस्सा ले सके। यह ध्यान देने की बात है कि जनरलिस्सिमो च्यांग काई शेक ने भारत की जनता को 'वास्तविक राजनीतिक सत्ता' देने की बात इसलिए कही है ताकि युद्ध में उसकी (भारत की) सहभागिता बढ़े अर्थात यह एक युद्ध संबंधी उपाय है न कि युद्ध के बाद का वादा। यह दृष्टिकोण भारतीय आंदोलन के दृष्टिकोण के अनुरूप है।

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के विदेशमंत्री ने फरवरी 1942 में यही विचार व्यक्त किया और अनुरोध किया कि युद्ध के दौरान भारत को स्वराज्य प्रदान किया जाए ताकि युद्ध में उसकी सहभागिता बढ़े

> भारतीय जनता की स्वराज्यसंपन्न राष्ट्र होने की आकांक्षाओं के प्रति हमारी सहानुभूति है। स्वराज्यसंपन्न होने पर भारत एशिया में मित्र राष्ट्रों के हितों की रक्षा करने में भाग ले सकेगा। (आस्ट्रेलियाई राष्ट्रमंडल के विदेशमंत्री डा० एच० वी० एवट का आस्ट्रेलिया की संसद में भाषण, 27 फरवरी 1942)

22 फरवरी 1942 को राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने बड़े साफ शब्दों में एलान किया कि अतलांतिक चार्टर 'समूची दुनिया' पर लागू होता है (इस प्रकार उन्होंने मौन भाव से चर्चिल के उस बयान को ठीक कर दिया जो उन्होंने सितंबर 1941 में दिया था)

> अतलांतिक चार्टर केवल दुनिया के उन हिस्सों पर ही नहीं लागू होता जो अतलांतिक सागर के तट पर हैं बल्कि यह समूची दुनिया पर लागू होता है। (राष्ट्रपति रूजवेल्ट का रेडियो भाषण, 22 फरवरी 1942)

इस रेडियो भाषण के साथ ही राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भारत को आजादी दिए जाने का समर्थन करते हुए ब्रिटिश सरकार के पास सीधे अपना संदेश भेजा। 1946 में अमरीका के भूतपूर्व विदेशमंत्री समनर वेलेस ने इस तथ्य का रहस्योद्घाटन किया

> 1942 में जब जापान का खतरा बहुत ज्यादा बढ़ गया था और भारत में असंतोष काफी तीव्र हो उठा था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने श्री चर्चिल से अनुरोध किया कि वे इस बात को मान लें कि भारत को आजादी दिए जाने में अब और अधिक देर करने की जरूरत नहीं है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अनुरोध किया कि भारतीय नेताओं को महासंघ की अमरीकी धाराओं (अमरिकन आर्टिकल्स आफ कानफेडरेशन) के आधार पर अपने राष्ट्रीय संविधान की रचना का अवसर

> मिलना चाहिए। राष्ट्रपति की यह धारणा थी कि इस तरह की अतरिम सरकार की स्थापना से भारतीय नेताओ को मिलकर काम करन का प्रोत्साहन मिलता और उन्ह अपने व्यावहारिक अनुभव से यह जानने का अवसर मिलता कि भारत की जनता की खास जरूरतो के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थाई सविधान का स्वरूप क्या होगा। इस तरह के समाधान को तब शायद भारतीय नताआ न स्वीकार कर लिया होता। वतमान ब्रिटिश सरकार आज इस तरह के प्रस्ताव पेश कर रही है और उसे सचमुच इस बात का खेद होगा कि क्या श्री चर्चिल ने इस तरह के प्रस्ताव को चार वष पूव मानने से क्रोधवश इकार कर दिया था। (क्रिश्चियन साइस मानिटर म समनर वेलेस का वक्तव्य, जून 1946)

भारत की राष्ट्रीय मागो के सदभ मे अमरीका, आस्ट्रेलिया और चीन द्वारा डाले गए दबाव को समझना तथा सयुक्त राष्ट्रा क अदर ब्रिटेन क अपेक्षाकृत अलग थलग पडे सरकारी दृष्टिकोण को जानना, जिसम युद्ध के दौरान भी भारत म जिम्मेदार राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की माग को नामजूर किया जा रहा था, काफी आवश्यक है।

1942 का वसत आत आत एक अनुकूल स्थिति तैयार हो गई थी। अब ब्रिटेन की बारी थी कि वह पहल करे। यदि ब्रिटेन के सरकारी खेमो म अब भी थोडी बहुत हिचकिचाहट थी और कुछ लाग इसका विरोध कर रहे थे तो माच मे जापानियो के रगून तक पहुच जाने से इस बाधा को दूर करने की आवश्यक प्रेरणा मिल गई। 8 माच को रगून का पतन हो गया। 11 माच को क्रिप्स मिशन की घोषणा हो गई।

1942 के माच और अप्रैल महीनो म क्रिप्स मिशन की भारत यात्रा युद्ध के दौरान ब्रिटिश भारतीय सबधा के सकट म एक सक्रातिबिंदु साबित हुआ। क्रिप्स योजना या भारत के लिए साविधानिक प्रस्तावो को ब्रिटेन के युद्धकालीन मत्रिमडल ने तयार किया था और इन प्रस्तावो को सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत लकर आए थे ताकि वे इसे समझौते का आधार बनाकर भारतीय नेताओ के साथ विचार विमश कर सके। क्रिप्स योजना के दो मुख्य भाग थे

1 युद्ध के बाद के प्रस्ताव

(क) एक नए भारतीय सघ के लिए डोमीनियन का दरजा जिसे यह अधिकार प्राप्त हो कि यदि वह चाहे तो ब्रिटिश राष्ट्रमडल से खुद को अलग कर ले,
(ख) युद्ध के तत्काल बाद एक 'सविधान का निर्माण करने वाले निकाय' का गठन किया जाए जिसम प्रातीय विधानसभा के सदस्यो द्वारा निर्वाचित कुछ सदस्य हो जिन्ह युद्ध के पश्चात समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुना जाए तथा कुछ सदस्य ऐसे हों जिन्ह देशी रियासतो के राजा

अपनी रियासत की आवादी के अनुपात म नामजद करे। ये लोग मिलकर देश का एक नया सविधान बनाए।

(ग) ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रात को या रियासत को अलग रहने का अधिकार हो और या तो वे वतमान आधार पर बने रहे या समान अधिकारो वाले एक पृथक डोमीनियन के रूप म एक नए सविधान की रचना करे।

(घ) ब्रिटेन तथा 'सविधान का निर्माण करने वाले निकाय' के बीच एक सधि हो ताकि जातिगत और धार्मिक अल्पसख्यको की रक्षा के लिए ब्रिटन की शाही सरकार द्वारा किए गए वादा के अनुरूप व्यवस्था की जा सके।

2 युद्ध के दौरान के तात्कालिक प्रस्ताव

भारतीय प्रतिनिधियो के परामशक सहयोग के जरिए ब्रिटेन द्वारा अपने हाथ म सत्ता रखना।

लेकिन काग्रेस युद्ध के दौरान ऐसी राष्ट्रीय सरकार चाहती थी जिसके पास काफी अधिकार हो और यह अतिम मुद्दा ही वह नाजुक मुद्दा सावित हुआ जिसपर क्रिप्स वार्ता टूट गई।

यह देखा जा सकता है कि समाचारपत्रो द्वारा एक नए और युगातरकारी प्रस्ताव के रूप मे बहुप्रचारित क्रिप्स योजना ने ब्रिटिश नीति म किसी बुनियादी तब्दीली का नमूना नही पेश किया। इसने 1940 मे वायसराय द्वारा पेश किए गए 'अगस्त प्रस्ताव' की पुरानी चिरपरिचित वातो को ही दुहराया जिसे भारतीय जनमत के प्रत्येक वग ने पहले ही ठुकरा दिया था। क्रिप्स मिशन के अधसरकारी इतिहास ने इस सचाई को स्वीकार किया

> घोपणा के मसौदे मे सरकारी नीति म कोई जबरदस्त परिवतन की वात नही थी सिद्धात के रूप म घोपणा का मसौदा वस्तुत 'अगस्त प्रस्ताव' से भी एक कदम आगे था। (प्रोफेसर आर० कूपलैंड 'दि क्रिप्स मिशन, आक्सफोड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1942 पृष्ठ 30)

उन्होने आगे लिखा

> घोपणा के मसौदे मे युद्ध के दौरान सविधान के स्वरूप मे किसी बडे परिवतन की वात को निकाल दिया गया था। (वही, पृष्ठ 31)

वातचीत के दौरान काग्रेस न किसी मनमुताबिक समझौते की आशा म बेहद रियायतें देन की वात कही। काग्रेस न कहा कि यदि उन्हे सचमुच जिम्मेदारी और अधिकार दिए जाए तो यह ब्रिटिश वायसराय के अधीन काम करने को तैयार है और वह एक ब्रिटिश कमाडर

इस चीज़ को भी स्वीकार करने को तैयार हैं जो उनकी समझ से न केवल हो रहेगा बल्कि उस मत्रिमडल का सदस्य भी होगा।

लेकिन इन सारी बातो का कोई नतीजा नही निकला। उनसे कहा गया कि ब्रिटेन का प्रभुत्व और ब्रिटेन की तानाशाही पूरी तरह बनी रहेगी, उनसे कहा गया कि भारत के रक्षा-मत्री का अधिक से अधिक कटीन और स्टेशनरी की देखभाल का काम दिया जा सकता है। जब उन्होंने (कांग्रेस नेताओं ने) अपनी असहमति के क्षेत्र का कम करने की कोशिश की तो उनसे साफ शब्दो म कहा गया कि जो दिया जा रहा है उसे लेना हो तो लो नही तो जाओ'। 'लेना हो तो लो नही तो जाओ' की इस प्रवृत्ति से पता चलता है कि अगरजो का इरादा समझौता करने का नही बल्कि भविष्य के सघर्ष के लिए आधार तैयार करने का था।

7 अप्रैल का लाड हैलीफाक्स ने जो दुर्भाग्यपूर्ण भाषण दिया उससे यह धारणा और दृढ़ हो जाती है। लाड हैलीफाक्स का यह भाषण तभी सामने आया जब समझौते की बातचीत अभी जारी थी। उन्होंने अपने भाषण म पहले ही से यह अनुमान लगा लिया कि यह वार्ता विफल हो जाएगी और कहा कि उस हालत म ब्रिटेन सरकार शासन की बागडोर अपने हाथ म बनाए रखेगी। उन्होंने यह भी कहा कि क्रिप्स मिशन ने भारत म ब्रिटिश शासन के भावी आलोचको को एक अकाट्य मामला देकर अपना मकसद हल कर लिया होगा।

भारतीय जनमत के हर वर्ग के लोगो ने, यहा तक कि अत्यत नरमदली विचारधारा के लोगो ने भी क्रिप्स योजना का जबरदस्त विरोध किया। कांग्रेस ने ही नही बल्कि सभी प्रमुख सगठनो ने क्रिप्स के प्रस्तावो को ठुकरा दिया। बातचीत भग होने पर कलकत्ता के स्टेट्समैन ने लिखा

> जब तक प्रस्तावो का मसौदा ब्रिटेन का भारतीय विभाग (इडिया आफिस) और भारत सरकार द्वारा तैयार होता रहेगा तब तक किसी भी दूत को सफलता नही मिल सकती और तब तक इस देश के लिए हर घट बढ़ते खतरे से निबटने का तरीका नही ढूढा जाएगा
>
> सारा दोष इडिया आफिस का और भारत सरकार के अधिकारीवग का है।

5 अगस्त प्रस्ताव और उसके बाद (1942-45)

क्रिप्स मिशन के साथ बातचीत भग हो जाने के बाद देश की राजनीतिक स्थिति म तेजी से गिरावट आई।

ब्रिटिश सरकार ने एलान किया कि इससे ज्यादा न दिया जा सकता था और उसने भारत के राष्ट्रीय आदोलन को बदनाम करने के लिए अत्यत पक्षपातपूर्ण ढग का दुष्प्रचार शुरू

किया और दुनिया के सामने वही घिसा पिटा तर्क देना शुरू किया कि कांग्रेस जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती है, भारतीय जनता निराशाजनक रूप से राजनीतिक फूट का शिकार है और वह स्वराज्य पाने लायक नहीं।

कांग्रेस जब फासिस्टविरोधी युद्ध में अपनी इच्छा के बावजूद सहयोग करने में असफल हो गई तो कुछ समय तक हिचकिचाने और कोई निश्चित फैसला न करने के बाद उसने देश की मांग को पूरा कराने के उद्देश्य से असहयोग का रास्ता अख्तियार कर लिया।

कांग्रेस के एक पक्ष ने जिसका प्रतिनिधित्व मद्रास के भूतपूर्व प्रधानमंत्री सी० राजगोपालाचारी कर रहे थे, यह तक पेश किया कि ब्रिटेन द्वारा भारत की राष्ट्रीय मांगों को नामंजूर कर दिए जाने के बावजूद मुस्लिमबहुल क्षेत्रों में राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के आधार पर मुस्लिम लीग तथा अन्य संगठनों के साथ मिलकर एक राष्ट्रीय मोर्चा बनाने के लिए और रचनात्मक नीति अपनाई जाए ताकि जापान का खतरा होने पर संयुक्त रूप से मिलाजुला प्रतिरोध संगठित किया जा सके। इस प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मई में 15 के विरुद्ध 120 मतों से नामंजूर कर दिया हालांकि कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद ने यह स्पष्ट कर दिया कि दोनों पक्षों को मान्य आधार तक पहुंचने के लिए कांग्रेस एक प्रतिनिधिमंडल को नामजद करने के लिए तैयार है जो मुस्लिम लीग के साथ समझौते की बातचीत कर सके। श्री राजगोपालाचारी ने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया ताकि वह अपनी नीति के पक्ष में प्रचार कर सकें।

दिसंबर 1941 में ही गांधी के हाथ से कांग्रेस का नेतृत्व निकल चुका था लेकिन अब वह फिर गांधी के हाथ में आ गया। गांधी अपने शांतिवादी सिद्धांत के प्रचार में लग थे जिसमें ये बातें शामिल थीं 1 जापान का अहिंसात्मक प्रतिरोध, 2 ब्रिटिश अधिकारियों के साथ असहयोग 3 फासिज्म के विरुद्ध संगठित देशों के मोर्चे के प्रति हमदर्दी, 4 भारत को संघर्ष से अलग रखने का प्रयास और नेहरू द्वारा प्रस्तुत हथियारबंद संघर्ष, छापामारों का गठन तथा 'फूंक नीति' की दलील का विरोध। कांग्रेस गांधी के शांतिवाद से सहमत नहीं थी पर भारत को आजादी दिलाने और इस प्रकार भारत की रक्षा को कारगर ढंग से संभव बनाने के लिए उसने गांधी के असहयोग संबंधी प्रस्तावों को एकमात्र हथियार मान कर अपना लिया। जून में गांधी, नेहरू और आजाद के बीच बातचीत के फलस्वरूप समझौते का आधार पा लिया गया जो 14 जुलाई को कार्यसमिति द्वारा पारित असहयोग संबंधी प्रस्ताव में प्रतिफलित हुआ। इस प्रकार फासिस्टविरोधी महत्वपूर्ण नेता, संयुक्त राष्ट्रों के साथ सहयोग के हिमायती लोग गांधी के पीछे और असहयोग आंदोलन छेड़ने के उनके खतरनाक प्रस्तावों के पीछे उस समय चल पड़े जब जापानी हमले का खतरा बना हुआ था।

इससे धुरी राष्ट्रों को काफी खुशी हुई और उन्होंने कांग्रेस की वाहवाही की। सुभाषचंद्र बोस

के अनुयायियो को, जो धुरी राष्ट्रो के तत्वावधान म अपना प्रचार चला रहे थ, अपनी घुसपैठ बढाने के लिए अनुकूल अवसर मिल गया जिसपर कांग्रेस न काफी चिंता के साथ गौर किया ('इस निराशा का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन के विरुद्ध बडी तीव्र और व्यापक दुर्भावना बढी तथा जापानी सैनिको की सफलता पर लोगो ने सतुष्टि महसूस की, कायसमिति इन घटनाओ को गभीर आशका के साथ देखती है।' कांग्रेस कायसमिति का प्रस्ताव, 14 जुलाई)

ब्रिटेन के सरकारी क्षेत्रो के अनतिक प्रतिक्रियावादी दुष्प्रचार ने भी कांग्रेस को बदनाम करने के इस नए अवसर का लाभ उठाया। जिस नीति न नेहरू और आजाद जैसे प्रमुख फासिस्टविरोधी तथा सयुक्त राष्ट्र के साथ सहयोग के हिमायती नेताओ को गाधी और असहयोग आदोलन के पीछे चलने पर मजबूर किया उस नीति के दिवालियपन को स्वीकार करन की बजाय इस नतीजे को सरकारी नीति का उल्लासपूण समथन समझा गया। इस अवसर का लाभ उठाकर गाधी द्वारा शातिवादी और तुष्टीकरण की नीति के समथन म कही गई अजीबोगरीब बातो को देश और विदेश मे व्यापक प्रचार दिया गया। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि समूचे राष्ट्रीय आदोलन को आत्मसमपणवादी और जापान के साथ सधि करने का इच्छुक घोषित कर दिया जाए। भावी सघष की तैयारियो के लिए कौन सा तरीका इस्तमाल किया जा रहा था इसका पता उन दस्तावेजो के धुआधार प्रकाशन से चलता है जो पुलिस द्वारा मारे गए छाप के दौरान जब्त किए गए थे। इनके जरिए उन तथ्यो का भडाफोड किया जा रहा था जो पहले ही गाधी ने सावजनिक रूप से लिखे अपने लेखो म दे दिए थे।

इसम कोई शक नही कि गाधी द्वारा कांग्रेस का 'जनरलिस्सिमो, पद (यह उपाधि उन्हे दी गई थी) ग्रहण करना राष्ट्रीय आदोलन के लिए एक बहुत बडा भार था और उसन विश्व जनमत की निगाह मे काफी नुकसान पहुचाया। विश्व जनमत ने गाधी की शातिवादी और तुष्टीकरण की नीति तथा राष्ट्रीय आदोलन की नीति को एक दूसरे के साथ मिला दिया। लेकिन यह तो मानना ही पडेगा कि अहिसा और तुष्टीकरण नीति के सदभ मे गाधी के जितने भी व्यक्तिगत बयान आए उन्हे कांग्रेस के आधिकारिक वक्तव्यो और प्रस्तावो द्वारा साफ तौर पर अस्वीकार किया गया।

असहयोग सबधी कांग्रेस प्रस्ताव जुलाई म लाया गया और 8 अगस्त को अतिम रूप से सशोधित रूप म पारित कर दिया गया (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व के विरोध म 13 वोट पडे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को 22 जुलाई को उसके कानूनी अधिकार पुन प्राप्त हो गए थे जिससे इस पार्टी के बढ़ते प्रभाव और ताकत का पता चलता है)।

इस प्रस्ताव मे एक बार फिर सयुक्त राष्ट्र के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की गई थी और यह माग दोहराई गई थी कि भारत म एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाए ताकि वह

एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप म सयुक्त राष्ट्र के साथ कधा मिलाकर फासिज्म के विरुद्ध सशस्त्र सघष म भाग ले सके

> भारत के हित और सयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य की सफलता—इन दोना बातो के लिए यह अत्यत आवश्यक है कि भारत म ब्रिटिश शासन समाप्त किया जाए।
>
> भारत की आजादी की घोषणा के बाद एक अस्थाई सरकार का गठन किया जाएगा और स्वतंत्र भारत सयुक्त राष्ट्र के मित्र की हैसियत से फासिस्टविरोधी महान सघष म उसकी हर तकलीफा और मुसीबतो तथा स्वाधीनता सघष म हिस्सा लेगा।
>
> अस्थाई सरकार का गठन देश की प्रमुख पार्टियो और प्रमुख ग्रुपो के सहयोग के जरिए ही हो सकता है इस सरकार का बुनियादी काय मित्र राष्ट्रो के साथ मिलकर अपने सभी हथियारो और अहिंसात्मक साधनो द्वारा भारत की रक्षा करना तथा हर तरह के आक्रमण का प्रतिरोध करना होगा
>
> भारत और मित्र राष्ट्रा के आपसी सबधो का निर्धारण इन सभी स्वतंत्र देशो के प्रतिनिधि आक्रमण का मुकाबला करने के सामूहिक काय म आपसी हितो और सहयोग के आधार पर विचार विमश के द्वारा करेगे
>
> कमेटी इस बात का ध्यान रखेगी कि किसी भी रूप म चीन या रूस का सुरक्षा म जिनकी आजादी बहुत अनमोल है और जिसे सुरक्षित रखन की जरूरत है—बाधा न पडे या सयुक्त राष्ट्रो की रक्षात्मक क्षमता सकट म न पडे।

यहा तक तो यह प्रस्ताव एसा था जो भारत तथा दुनिया के सभी जनतात्रिक और फासिस्ट विरोधी लोगा का समथन प्राप्त कर सकता था। लेकिन प्रस्ताव के अतिम अश म कहा गया था कि यदि राष्ट्रीय माग को स्वीकार नही किया गया तो असहयोग का कायक्रम शुरू किया जाएगा

> अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी एक बार फिर विश्व स्वाधीनता के हितो के इस अतिम क्षण म ब्रिटेन और सयुक्त राष्ट्र के सामने अपनी अपील दुहराती है।
>
> लेकिन कमेटी यह महसूस करती है कि अब इस बात का एकदम औचित्य नही है कि किसी राष्ट्र को साम्राज्यवादी और सत्तावादी सरकार के विरुद्ध, जो उस पर शासन कर रही हो और उस अपने तथा मानव समुदाय के हितो म काम करन से रोक रही हो अपनी आकाक्षा को बलपूवक कहन से रोका जा सक।

> इसलिए कमेटी यह निश्चय करती है कि स्वतत्रता और स्वाधीनता के भारत के अभिन्न अधिकार की रक्षा के लिए बडे से बडे पैमाने पर जनसघप शुरू कर दिया जाए ताकि देश पिछले 22 वर्षों के दौरान चलाए गए शातिपूर्ण सघर्ष के फलस्वरूप इकट्ठी की गई अहिसक शक्ति का पूरी तरह इस्तेमाल कर सके।
>
> इस तरह का सघर्ष अनिवार्य रूप से गाधी जी के नेतृत्व मे चलाया जाना चाहिए और कमेटी उनसे अनुरोध करती है कि वे इस सघर्ष का नेतृत्व अपने हाथ मे लें तथा आने वाले दिनो म आदोलन को दिशा प्रदान करें।

क्रिप्स मिशन की बातचीत असफल होने के बाद जो निराशा छाई थी उसका ही नतीजा था अगस्त प्रस्ताव। इस निराशा की अभिव्यक्ति नेहरू की 19 अप्रैल की घोषणा म हुई

> मैं नही समझ पा रहा हू कि क्या किया जाए लेकिन मैं एक बेचैनी की भावना से प्रेरित होकर तेज चल रहा हू। यह सोचकर मैं बहुत परेशान हो जाता हू कि —भारत पर किसी दुश्मन द्वारा हमला किया जा रहा हो और इसमे अमरीका, ब्रिटेन तथा अन्य देश भाग ले रहे है, ऐसी स्थिति मे मैं खुद को बहुत असहाय महसूस करता हू।

अगस्त प्रस्ताव को लेकर बडी तीखी बहस चली है। इसकी कोई भी आलोचना करने से पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि भारत के राष्ट्रीय नेता, जिनम वे लोग भी शामिल हैं जो हमेशा अतर्राष्ट्रीयतावादी और फासिस्टविरोधी रवैया अख्तियार करते रहे है, किस निमम धमसकट म फस गए थे और किन स्थितियो म उन्होने निराश और विवश होकर यह रास्ता अख्तियार किया। वे अपनी इच्छा के विरुद्ध इस रास्ते पर खिच आए थे क्योकि वे स्वतत्रता के आधार पर सहयोग करने की हर कोशिश हार गए थे और उनके सामने अब कोई ऐसा रास्ता नही बच रहा जिसके जरिए वे भारत की जनता को गोलबद कर पाते और युद्ध से उत्पन्न तात्कालिक सकट की हालत मे कारगर ढग से भारत की सुरक्षा कर पाते।

फिर भी यदि यह देखा जाए कि अगस्त प्रस्ताव का भारत पर और विश्व जनतात्रिक लोकमत पर क्या प्रभाव पडा तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि यह एक भयकर भूल थी। राजनीतिक दृष्टि से इस प्रस्ताव म एक ऐसी घातक विसगति थी जिससे पता चलता था कि प्रस्ताव पारित करने वाला के मन म उद्देश्य स्पष्ट नही था। प्रस्ताव के आमुख और उपसहार मे बहुत स्पष्ट विसगति थी और इसका कोई स्पष्टीकरण नही दिया जा सकता था। प्रस्ताव मे एक तरफ तो यह माना गया था कि 1941 के बाद से युद्ध का स्वरूप साम्राज्यवादी नही रह गया है अब यह दो साम्राज्यवादी खेमो की होड से उत्पन्न युद्ध नही है और इसके परिणामो के प्रति तटस्थ नही रहा जा सकता, अब यह ऐसा युद्ध बन

गया है जिसमे काग्रेस सयुक्त राष्ट्रो की विजय चाहती है जिससे प्रस्ताव मे यह लक्ष्य शामिल करने की घोषणा की जा सके कि 'सयुक्त राष्ट्रो की जीत हो' तथा भारत को 'सयुक्त राष्ट्रो का सहयोगी बनना चाहिए।' प्रस्ताव म विशेष रूप से यह बात कही गई कि काग्रेस को इस बात की बहुत चिंता है कि किसी भी रूप म चीन या रूस की सुरक्षा मे बाधा न पडे या 'सयुक्त राष्ट्रो की रक्षात्मक क्षमता सकट म न पडे।' प्रस्ताव के अत मे जो कायक्रम पेश किया गया था उसे यदि अमल मे लाया जाता तो मित्र राष्ट्रो के एक प्रमुख और बडे देश म भयकर अदरूनी सघष और अव्यवस्था शुरू हो जाती जो व्यवहार मे सयुक्त राष्ट्रो की रक्षात्मक क्षमता को कमजोर करती और फासिस्ट शक्तियो की जीत म मदद मिलती।

युद्ध के शुरू के दिनो म जिस समय यह युद्ध अभी महज आग्ल फ्रासीसी साम्राज्यवाद और नाजी जमनी के बीच का युद्ध था, जब भारत अगरेजो के पीछे चलने के सिवा युद्ध से और किसी भी तरह सबद्ध नही था और उसपर आक्रमण का कोई खतरा नही था उस समय भी इस बात की पूरी कोशिश की गई कि काग्रेस की किसी भी नीति से युद्ध के लिए आवश्यक तैयारियो म बाधा न पहुचने पाए। 5 सितबर 1939 को गाधी ने घोषणा की कि ब्रिटेन एक 'उचित कारण के लिए युद्ध' लड रहा है और भारत को इस युद्ध मे 'बिना शत सहयोग' देना चाहिए

> इसलिए मैं अभी, इस समय, भारत के उद्धार के बारे म नही सोच रहा हू। लेकिन यदि इग्लैंड और फ्रास का पतन हो गया तो भारत का उद्धार किस तरह का होगा? ('हरिजन', 9 सितबर 1939)

नतीजा यह हुआ कि ऐसे समय जब स्वय काग्रेस के ही शब्दो मे युद्ध 'साम्राज्यवादी उद्देश्यो की पूर्ति' के लिए लडा जा रहा था और भारत का अपना सघष तज करने का बहुत अनुकूल अवसर मिला था, जनआदोलन या सामूहिक सविनय अवज्ञा आदोलन के हर प्रस्ताव को इस आधार पर नामजूर कर दिया कि इससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की युद्ध सबधी तैयारिया म अडचन पैदा होगी। इसलिए व्यक्तिगत सत्याग्रह का विशुद्ध सावतिक तरीका अपनाया गया ताकि ब्रिटिश सरकार को किसी कठिनाई का सामना न करना पडे। अध सरकारी इतिहासकार सर रेगिनाल्ड कूपलैंड ने ठीक ही स्वीकार किया है कि 'इस आदोलन से सरकार को कुछ खास कठिनाई पैदा नही हुई।' ('इडिया ए रिस्टेटमट', 1945, पृष्ठ 206)

फिर भी जब युद्ध का स्वरूप पूरी तरह बदल गया और काग्रेस ने इस बदलाव को मान लिया, जब भारत के आवश्यक हित रूस और चीन तथा सयुक्त राष्ट्रो की विजय के साथ जुड गए और जब भारत पर सीधे आक्रमण का खतरा पैदा हो गया तो इस अवसर को

जन प्रतिरोध आदोलन छेड़ने का सबसे उचित अवसर माना गया जबकि 1939-40 मे इसे छेड़ना सभव नही माना गया था।

यह सही है कि इस तरह का सघर्ष छेड़ने का कोई गभीर इरादा नही था। नेताओ ने इसके लिए कोई तैयारी भी नही की थी। उन्होने सिर्फ समझौते की बातचीत शुरू करने के लिए सघर्ष की धमकी दी थी। अपनी नीति के समर्थन मे काग्रेसी नेताओ ने इस तथ्य का बार बार उल्लेख किया है जिससे यही पता चलता है कि उन्होने कितनी बुद्धिहीनता का काम किया। एक भयकर युद्ध के नाजुक दौर मे ऐसी नीति पर चलने का अर्थ यह था कि स्थिति को समझने मे और साम्राज्यवादियो के दाव-पेंच से परिचित होने मे वे धोखा खा गए।

जहा तक कार्यनीति का सबध है यह प्रस्ताव बहुत अविवेकपूर्ण था। इस प्रस्ताव के जरिए साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावादियो को एक बहाना मिल गया था जिससे वे अपना हमला कर सकते थे। यह काफी स्पष्ट है कि क्रिप्स मिशन के साथ बातचीत भग हो जाने के बाद के वर्षों मे साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावादियो ने जो तरीके अपनाए उनका उद्देश्य काग्रेस को दुविधा की स्थिति मे डाल देना था और उससे ऐसे गलत कदम उठवाना था जिनसे उन्हे अपना दमनचक्र चलाने का एक बहाना मिल जाए। जहा तक काग्रेस की पुरानी फासिस्ट विरोधी नीति की बात है साम्राज्यवादी अपने दाव-पेंच मे लाभप्रद स्थिति मे नही थे। काग्रेस ने शुरू से ही फासिस्टविरोधी नीति का पालन किया था और अपनी इसी नीति को एक एसी निर्णायक शक्ति मे रूप मे स्थापित किया था जो फासीवाद, साम्राज्यवाद तथा साम्राज्यवाद के फासिस्ट समर्थक सदेहास्पद कार्यों के खिलाफ दुनिया की जनता के सामूहिक सघर्ष मे भारत की जनता को भी शामिल कर सके। ज्योही यह प्रस्ताव पारित हुआ साम्राज्यवादियो को यह अवसर मिल गया कि वे अपने को भारत के रक्षक कहने का दावा कर सके। ब्रिटिश साम्राज्यवादियो ने कहा कि रक्षा व्यवस्था को भग करने की कोशिशे की जा रही है, भारत का राष्ट्रीय आदोलन फासिस्ट समर्थक और जापान समर्थक हो गया है और वह सयुक्त राष्ट्रो की युद्ध तैयारियो को बरबाद करना चाहता है। अगरेजो ने इसी बात को राष्ट्रीय आदोलन का दमन करने के लिए तैयार की गई प्रति-क्रियावादी नीति का राजनीतिक आधार बनाया।

इस प्रकार हमने देखा कि इस प्रस्ताव से भारत की स्वतत्रता का रास्ता आसान नही हुआ बल्कि इस प्रस्ताव के जरिए राष्ट्रीय नेताओ ने साम्राज्यवादियो की भड़काने वाली कार्यवाही के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और इस प्रस्ताव को पारित करने का अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रीय आदोलन साम्राज्यवादियो द्वारा फैलाए गए जाल मे सीधे जा फसा। दुर्भाग्य की बात यह है कि राष्ट्रीय नेता वास्तविक स्थिति से इतने बेखबर थे कि प्रस्ताव पारित करने के बाद वे वायसराय के साथ शातिपूर्ण वार्ता की तैयारिया कर रहे थे। उन्होने न तो इस बात की कल्पना की कि उनकी गिरफ्तारिया हो सकती हैं और न ऐसी

स्थिति से निवटने की कोई तैयारी ही की। उन्होने इस तरह के कोई निर्देश भी नही दिए कि अगला कदम क्या हो।

काग्रेस के एक अल्पमत ने इस प्रस्ताव का विरोध किया था और लगातार इसके दुष्परिणामो की ओर ध्यान दिलाया था। 26 जुलाई 1942 को कम्युनिस्ट पार्टी ने एक खुला पत्र लिखा जिसमे उसने कहा कि

> आप अगर सघर्ष शुरू करेगे तो उसका नतीजा क्या होगा ? वे आपको और हजारो सक्रिय काग्रेस कार्यकर्ताओ को चुपचाप जेलो मे डाल देगे और बहुत भोलेपन के साथ इस बात का एलान कर देगे कि भारत को फासिस्ट हमलावरो से बचाने के लिए उन्हे मजबूर होकर अपना फर्ज निभाना पडा है।

दुर्भाग्यवश इस चेतावनी पर ध्यान नही दिया गया। काग्रेसी नेताओ के सस्मरणो और वक्तव्यो को देखने से पता चलता है कि जब गिरफ्तारिया हुई तो वे आश्चर्यचकित रह गए। 14 अगस्त 1942 को गिरफ्तारी के तुरत बाद गाधी ने वायसराय के नाम एक पत्र लिखा जिसमे कहा

> भारत सरकार को कम से कम तब तक इतजार करना चाहिए था जब तक मैं जनआदोलन न शुरू कर देता। मैंने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की थी कि कोई भी ठोस कदम उठाने से पहले मैं आपको एक पत्र भेजूगा।

राष्ट्रीय आदोलन के जिन फासिस्टविरोधी मजदूरवर्गीय हिस्सो का प्रतिनिधित्व भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी करती थी वे शुरू से ही देश के मुक्तिसग्राम के सदर्भ मे एक स्पष्ट और सुसगत नीति का प्रचार कर रहे थे और कह रहे थे कि इस युद्ध से जो नए कार्य और दायित्व सामने आए उनको आगे बढकर सभाला जाए। उन्होने ठोस ढग से यह दिखाया भी कि भारतीय जनता की लोकप्रिय या राष्ट्रीय मागो का ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिरोध के बावजूद किस प्रकार एक रचनात्मक प्रतिक्रिया सभव और आवश्यक है। इस आधार पर उन्होने वर्तमान नाजुक स्थिति मे असहयोग के विकल्प के रूप मे अपना रचनात्मक कार्यक्रम पेश किया

1 काग्रेस, मुस्लिम लीग तथा अन्य राजनीतिक पार्टियो को मिलाकर एक सयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बनाया जाए जो मिलकर एक ही मच से फासिज्म का मुकाबला करे।
2 इस तरह के राष्ट्रीय मोर्चे के आधार पर सभी पार्टियो के समर्थन से ब्रिटिश सरकार पर यह दबाव डाला जाए कि वह समझौते की माग को मजूर करे और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने दे।

3 इस न्यायपूण राजनीतिक माग पर जोर देने के साथ साथ पूरी ताकत के साथ युद्ध सबधी प्रयत्ना मे भाग लिया जाए, जनता को गोलबद किया जाए और जनता के युद्ध प्रयासो को मजबूत करने के लिए तथा फासिज्म के खिलाफ राष्ट्रीय प्रतिरोध की क्षमता का बढाने के लिए राष्ट्रीय आदोलन के नेतृत्व मे गैरसरकारी तौर पर जनता को एकजुट किया जाए।

4 असहयोग की सभी नीतियो को दृढता के साथ अस्वीकार किया जाए क्योकि ये नीतिया भारतीय जनता के हितो के लिए घातक है।

लेकिन उस समय लोग बहुत गुस्से म थे और ब्रिटन का शासक वग बडे प्रतिक्रियावादी ढग से राष्ट्रीय सरकार की माग को पूरा करने से इकार कर रहा था इसलिए यह नीति राष्ट्रीय आदोलन के अधिकाश का समर्थन नही प्राप्त कर सकी।

भारत के राष्ट्रीय नेताओ म से अधिकाश ने यह आशा की कि बहुत थोडे समय तक अत्यत तीव्र सघप चलाकर राष्ट्रीय आजादी का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाएगा और जापानी आक्रमण का प्रतिरोध करन के लिए मजबूत स्थिति बना ली जाएगी तथा सयुक्त राष्ट्रो के कारगर मित्र के रूप म काय किया जा सकेगा (गाधी के प्रमुख सहयोगी वल्लभभाई पटेल न कहा कि एक हफ्ते म आजादी हासिल कर ली जाएगी हालाकि गाधी ने इसके जवाब म कहा यदि एक हफ्ते म आजादी मिल जाती है तो इसे चमत्कार ही कहा जाएगा')। उ ह यह विश्वास था कि इस तरह की सफलता से व अपनी कायनीति का औचित्य यह कहकर साबित कर लेग कि भारत की रक्षा इसी ढग से हो सकती थी और फासिज्म के विरुद्ध विश्वव्यापी विजय मे यही उनका सर्वोत्तम योगदान है। यह नीति कितनी आत्मघाती थी इसका पता चल गया। अहिंसा के इन पैगबरो ने, जो अपने तरीका से पिछले 22 वर्षों से ब्रिटिश राज्य सत्ता के गढ को हिलाने म सफल नही हो सके थे, अब यह आशा की थी कि दरवाजे पर दस्तक दे रहे जापानी हमलावरो का मुकाबला करने के लिए वे अपने इसी तरह के आदोलन के जरिए कुछ ही सप्ताहो के अदर पूरी राजसत्ता अपने हाथ मे ले लेगे। विकल्प के रूप म यदि उन्होने यह आशा की हो कि उनका आदोलन बढते बढते एक हिंसात्मक जनविद्रोह का रूप ले लगा तो इससे यही पता चलता है कि अहिंसा का प्रशिक्षण प्राप्त कोई आदालन कितने मूखतापूण ढग से अपनी योजनाए तैयार कर सकता है। यह सोचना सचमुच आश्चय की बात है कि जिस समय सीमाओ पर हमलावर सनाए खडी हो और युद्ध चल रहा हो, किसी देश की निहत्थी जनता राजसत्ता के लिए क्रातिकारी सघप बिना हिंसा का पाठ पढे, शुरू कर सकती है। वे इतनी आसान बात को नही समझ सके कि उनके आदोलन से भारत को आजादी मिलना तो दूर देश के अदर सघर्ष, अव्यवस्था और विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, जिससे भारत मे फासिज्म की विजय का माग प्रशस्त हो जाएगा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने बिना किसी लागलपट के कहा कि उनकी नीति 'खुद ही अपना गला

काटने वाली नीति है। इससे हमलावरो के विरुद्ध देश की रक्षा का काम कमजोर होता है और फासिस्टो का काम आसान हो जाता है।

असहयोग की नीति एक हताशाभरी नीति थी लेकिन इस नीति का पालन करने वाले नेतागण दरअस्ल सहयोग का कोई आधार ढढने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होने बडे साफ शब्दो म कहा था कि वे पहले समझौते की कोशिश करेगे और यदि समझौता सभव नही हुआ तभी आदोलन छेडगे। ऐसी नीति की आलोचना करने के पर्याप्त आधार हमारे पास ह जो इतनी नाजुक स्थिति मे असहयोग आदोलन छेडने की बात कर रही हो। सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति इस बात के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार है कि उसने भारत की न्यायोचित मागो को ठुकराकर और समान शर्तो पर सहयोग की उनकी आकाक्षा का गला घोटकर इस निराशाजनक परिणति को जन्म दिया।

जहा तक काग्रेस की बात है उसने अत तक अपनी यह इच्छा जाहिर की कि कोई समझौता हो जाए। व्यावहारिक सहयोग और समझौते की इच्छा पर जोर देने के लिए (ताकि फासिज्म के खिलाफ हथियारबद सघर्ष म भाग लिया जा सके) प्रस्ताव म सशोधन किया गया। बहस के अत म गाधी और नेहरू ने जो भाषण दिए थे उनम समझौते की इच्छा पर ही जोर दिया गया था। नेहरू ने अपने भाषण म कहा था यह प्रस्ताव कोई धमकी नही है, यह एक आमत्रण है और अपनी नीति की व्याख्या है, यह एक सहयोग का प्रस्ताव है।' जुलाई म जनरलिस्सिमो च्याग काइ शेक के नाम लिखे गए गाधी के प्रकाशित पत्र म साफतौर पर कहा गया था

> हम लोग जल्दबाजी मे कोई कदम नही उठाएगे और जो भी कदम उठाया जाएगा, यह ध्यान मे रखकर उठाया जाएगा कि इससे चीन का कोई नुकसान न हो या भारत अथवा चीन पर जापानी आक्रमण के लिए बढावा न मिले। मैं हर तरह से यह कोशिश कर रहा हू कि ब्रिटिश सरकार के साथ किसी तरह का सघर्ष न पदा हो।

यह बताया गया कि पहले कदम के रूप म कोई कार्यवाही शुरू करने से पहले वायसराय के नाम एक पत्र लिखा जाए जिसम समझौते की बातचीत का प्रस्ताव हो।

काग्रेस कमेटी की बैठक के तुरत बाद पत्र लिखने का काम शुरू हुआ लेकिन इसे पूरा नही होने दिया। कुछ ही घटो के अदर बडे पैमाने पर गिरफ्तारिया शुरू हो गई और इन गिरफ्तारियो ने एक व्यापक सघर्ष की शुरुआत कर दी।

काग्रेस ने 8 अगस्त को अपना प्रस्ताव पारित किया था। 9 अगस्त की सुबह सभी प्रमुख काग्रेसी नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया (148 लोग बबई म पकडे गए) जिनम

गाधी, नेहरू, आजाद, पटेल, कृपालानी, राजेंद्रप्रसाद तथा अ य लोग शामिल थे। इसके साथ ही काग्रेस को गैरकानूनी सगठन घोपित कर दिया गया।

कायसमिति के सदस्यो को अहमदनगर किले मे कैद रखा गया। लेकिन गाधी को अलग से *आगा खान* के महल मे नजरबद रखा गया। बेशक इस महल म आराम की सारी सुविधाए थी (आपने मुझे एक ऐसे महल म रखा है जहा सारी सुख-सुविधाए उपलब्ध है। मैंने इन सुख सुविधाओ का उपभोग किया है लेकिन ऐसा करते समय हमेशा मुझे अपने कतव्य का बोध रहा है न कि आराम का'—वायसराय के नाम गाधी का पत्र, 31 दिसबर 1942)। जेल मे बद नेताओ को काफी आराम से रखा गया और इसकी वजह यह थी कि वे इन नाजुक वर्षों मे अपनी सक्रिय राजनीतिक भूमिका या नेतृत्व न कर सके। और ऐसा ही हुआ भी। डा० सीतारमैया के सस्मरणो को देखा से पता चलता है कि इन वर्षों के दौरान काग्रेस कायसमिति के सदस्यो न राजनीतिक मसला पर बातचीत करने की कोशिश भी नही की, उ होने अपना सारा ध्यान धम दशन और मनोरजन म लगाया। इस प्रकार राष्ट्रीय आदोलन नेतृत्वविहीन होकर रह गया। इसकी वजह यह थी कि कभी इस बात की कोशिश नही की गई कि नेतत्व की दूसरी पक्ति तैयार की जाए अथवा नेताओ के गिरफ्तार हो जाने की अवस्था म आदोलन का आगे चलाने के लिए कोइ कायक्रम निधारित किया जाए।

राष्ट्रीय नेताओ की गिरफ्तारी से देश भर म प्रदशनो और असगठित सघर्षों का तथा अव्यवस्था का साम्राज्य कायम हो गया। इन प्रदशनो और सघर्षों का पुलिस ने बडे हिंसात्मक और क्रूर ढग से दमन किया। इस काम मे सेना की भी मदद ली गई। अनेक लोग हताहत हुए। केंद्रीय विधानसभा के गृह सदस्य के सरकारी बयान के अनुसार 9 अगस्त 1942 से लेकर 31 दिसबर 1942 तक 60229 व्यक्ति गिरफ्तार किए गए, 18000 लोगो का भारत रक्षा अधिनियमा के अतगत नजरबद किया गया, सेना और पुलिस की गोली से 940 लोग मारे गए और 1630 लोग घायल हुए। (माच आफ इवेंट्स 1942 45', बबई प्रातीय काग्रेस कमेटी द्वारा प्रकाशित, 1945)

राष्ट्रीय नेताओ की गिरफ्तारी के बाद देश भर म रोष का जो वातावरण बना और जनता ने जो व्यापक प्रदशन किए वे स्वत स्फूत थे। लेकिन इस तरह की जो छिटपुट मुठभेडे हुईं, असतोष फैला या अलग अलग गुटो और दलो की तरफ से जो परस्पर विरोधी और उलझन पैदा करने वाली हिदायतें जारी हुइ, वे काग्रेस के किसी सगठित आदोलन का प्रतिनिधित्व नही करती थी। जैसाकि चर्चिल ने बाद म ससद म कहा, ये छिटपुट आदोलन बडे आराम से' दबा दिए गए। काग्रेस ने इन आदोलना के लिए कभी अनुमति नही दी थी और गाधी ने सावजनिक रूप से यह कहा कि इन आदोलनो से उनका कोई सबध नही है। काग्रेस ने आदोलन छेडने का अधिकार केवल गाधी को दिया था। 23 सितबर 1942 को गाधी ने वायसराय के नाम अपने पत्र म लिखा

ऐसा लगता है कि काग्रेसी नताओ की जवरदस्त धर पकड स जनता इतने गुस्से म आ गई है कि वह नियत्रण खो बैठी है। मैं महसूस करता हू कि यह जो विध्वस हुआ है उसके लिए काग्रेस नही वल्कि सरकार जिम्मेदार है।

गृह विभाग के नाम लिखे गए 15 जुलाई 1943 के पत्र म गाधी ने लिखा

सरकार का देशव्यापी गिरफ्तारी का कदम इतना उग्र था कि जनता न आत्मनियत्रण खो दिया क्योकि काग्रेस के साथ उसकी सहानुभूति थी। आत्मनियत्रण खोन का अथ यह नही लगाया जाना चाहिए कि इसक पीछे काग्रेस का हाथ था।

एक अनौपचारिक सर्कुलर म कहा गया था (अपने 15 जुलाई 1943 के पत्र म उद्धत इन पक्तियो म गाधी ने उनम निहित नीति को हिचक के साथ किंतु पूरी तरह स्वीकार किया है)

कोई भी आदोलन तव तक नही किया जाना चाहिए या कोई भी कायवाही तव तक नही की जानी चाहिए जव तक महात्मा गाधी इस विषय मे कोई फैसला नही करते है। यदि आपने कोई आदोलन छेड दिया और मान लीजिए कि उन्होने कोई दूसरा फैसला लिया तो इस अकारण भूल के जिम्मेदार आप होगे। हमेशा तैयार रहिए, तुरत सगठित हो जाइए, हमेशा सतक रहिए लेकिन कभी कोई कदम न उठाइए।

21 सितवर 1945 को काग्रेस की ओर से जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और गोविंदवल्लभ पत के हस्ताक्षरो से एक आधिकारिक वयान जारी किया गया जिसम कहा गया था

कोई भी आदोलन अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी द्वारा या गाधी जी द्वारा आधिकारिक तौर पर कभी नही शुरू किया गया।

यह वाद की वात है कि एक अस्थाई और गुटवाजी से भरे राजनीतिक उद्देश्य के लिए अगस्त 1942 और उसके वाद के महीनो की नेतृत्वविहीन लडाई को 'अगस्त सघष' का नाम देने की कोशिश की गई। इस सघष को काग्रेस द्वारा प्रेरित सघष कहा गया जवकि काग्रेस का एकमात्र अधिकृत नेता इस आदोलन को अपना मानन से इकार कर चुका था और इसकी भर्त्सना कर रहा था। हिंसा की निरकुश घटनाओ को काग्रेस की कायवाही कहा गया जवकि काग्रेस की नीति सदा से अहिंसक थी, अगस्त प्रस्ताव म कही गइ वातो का विलकुल उलटा प्रचार किया गया था, इसम वोस को और जापानी खेमे का समथन

दिया गया था तथा सयुक्त राष्ट्रो के मोर्चे की निंदा की गई थी फिर भी इसे काग्रेस का प्रचार घोषित किया गया। और अतत इस विरोधाभास की चरम उपलब्धि हम तब दखत हैं जब बुनियादी तौर पर इस काग्रेस विरोधी आदोलन म शामिल न हाने को काग्रेस का अनुशासन भग करना माना गया जबकि काग्रेस के अनुशासन म यह स्पष्ट कर दिया *गया था कि कोई भी आदोलन तब तक शुरू नही किया जाएगा जब तक गाधी की* सहमति न हो। गाधी ने यह बात स्पष्ट कर दा ी कि इस सघष के लिए उ होने कोई निर्देश जारी नही किए थे।

अगस्त की घटनाओ के बाद राष्ट्रीय आदोलन मे जो विघटन की स्थिति पैदा हुई, सगठित नेतृत्व का अभाव हुआ और कोई स्पष्ट नीति नही रही उससे बाद के वर्षों म राजनीतिक गतिरोध के साथ साथ एक निराशा और उलझन का दौर शुरू हो गया। यही वे दिन थे *जब मुस्लिम लीग ने तेजी से अपनी ताकत बढा ली।*

अस्वस्थ होने के कारण 6 मई 1944 को गाधी को रिहा कर दिया गया। उन्होने बाहर आते ही एलान किया कि 8 अगस्त 1942 के प्रस्ताव का सविनय अवज्ञा आदोलन वाला अश अपने आप ही रद्द हो गया है क्योकि 1944 म वह 1942 की तरफ लौटकर नही जा सकते। फिर भी राजनीतिक गतिरोध जारी रहा क्योकि सरकार ने कह दिया था कि जब तक अगस्त प्रस्ताव वापस नही लिया जाता तब तक सरकार किसी तरह के समझौता प्रस्ताव पर विचार नही करेगी। इसके साथ ही सरकार ने जून 1945 तक कायसमिति के सदस्या को रिहा करन से इकार कर दिया और कायसमिति के सदस्य ही अगस्त प्रस्ताव की समीक्षा करने तथा नीति सबधी कोई नया वक्तव्य तैयार करने की स्थिति म हो सकते थे।

1945 की गरमियो मे इस गतिरोध को दूर करने की एक बार फिर कोशिश की गई। कद्रीय विधानसभा म काग्रेस पार्टी के ससदीय नेता भूलाभाई देसाई (जो गाधी के परामश पर और उनकी स्वीकृति स यह पदभार सभाल रहे थ) और मुस्लिम लीग के ससदीय नेता लियाकत अली खा के बीच मई मे एक अस्थाई समझौता हो गया जिसका आधार यह था कि जो अस्थाई राष्ट्रीय सरकार बनाई जाएगी उसम काग्रेस और मुस्लिम लीग के बराबर बराबर सदस्य रहग (40 प्रतिशत काग्रेस, 40 प्रतिशत मुस्लिम लीग और 20 *प्रतिशत अ य दल)। इस प्रस्ताव को वायसराय लाड वेविल के सामने रखा गया* और वह सलाह लेने लदन रवाना हो गए। लबी बातचीत क बाद लाड वेविल जब लदन से लौटे तो उनके साथ नीति सबधी एक नया प्रस्ताव था जिसे ब्रिटिश सरकार ने 14 जून 1945 को घोषित किया था। इसमे अस्थाई राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की योजना तो थी लेकिन इसम बहुत चालाकी के साथ एक परिवतन कर दिया गया था और इस सरकार म काग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो क शामिल होने की बात को बदल दिया गया था। काग्रेस और लीग की बराबरी के स्थान पर सवण हिंदुओ और मुसलमानो की बराबरी'

शब्दावली का इस्तेमाल किया गया था। इस प्रकार इस सारे प्रश्न को एक साम्प्रदायिक धरातल पर लाकर रख दिया गया था। ऊपर से देखने पर यह संशोधन बहुत मामूली संशोधन लगता था लेकिन इसने बातचीत भंग होने में मदद की। इस परिवर्तन का अर्थ यह था कि या तो कांग्रेस खुद को एक हिंदू संगठन के दरजे तक पहुंचा दे अथवा किसी मुसलमान कांग्रेसी के लिए एक मुस्लिम सीट की मांग करके लीग के साथ बराबरी के आधार का उल्लंघन करे। दूसरी तरफ लीग या तो उस मुसलमान कांग्रेसी को अपनी कोई मुस्लिम सीट दे दे और इस प्रकार बराबरी वाली बात छोड़कर कांग्रेस की तुलना में घाटे की स्थिति को स्वीकार करे। ऐसा न होने पर उसके सामने विरोध के अलावा और कोई रास्ता नहीं बच रहता और विरोध करने से सम्मेलन को भंग करने की सारी जिम्मेदारी उसके ऊपर आती है।

जून 1945 में कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा अन्य पार्टियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन शिमला में आयोजित किया गया लेकिन जल्दी ही इस सम्मेलन की कार्यवाही में गतिरोध पैदा हो गया। बुनियादी योजना के लिए कोई संयुक्त मोर्चा बनाने के स्थान पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेता एक दूसरे के खिलाफ कुप्रचार में लग गए। शिमला सम्मेलन असफल साबित हुआ। इस तरह युद्ध के समाप्त होने पर जब समूची दुनिया के लोग आजादी और मुक्ति की दिशा में बढ़ रहे थे, भारत उसी प्रकार गुलाम बना रहा जैसा वह युद्ध से पहले था।

17
आजादी ?

हमारी हड़ताल हमारे देश के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना रही है। यह पहला अवसर है जब सैनिको का खून आम आदमियो के खून के साथ समान हित के लिए बहा है। हम सेना के लोग इसे कभी नही भूलेंगे। हम यह भी जानते है कि आप, हमारे सभी बहन और भाई भी इसे नही भूलेगे। हमारी महान जनता जिंदाबाद! जयहिंद!—नौसैनिक केंद्रीय हड़ताल समिति का अंतिम सदेश, 23 फरवरी 1946।

बहुतो की यह राय है कि ब्रिटिश केबिनट मिशन के भारत आने से पहले, भारत क्राति के कगार पर खड़ा था। केबिनेट मिशन ने इस खतरे को दूर भले ही न किया हो लेकिन स्थगित तो कर ही दिया है। (भारतीय केंद्रीय विधानसभा मे यूरोपीय ग्रुप के नेता पी० जे० ग्रिफिथ्स का लदन म ईस्ट इडिया एसोसिएशन मे भाषण, 24 जून 1946)

जून 1946 मे लेबर दल के नेता, प्रधानमंत्री सी० आर० एटली ने अपनी पार्टी के अधिवेशन म भाषण करते हुए कहा था

हम दूसरा के लिए उसी आजादी की बात करते हैं जसी हम अपने लिए चाहत हैं। हम इस आजादी की घोषणा करत है लेकिन हम केवल घोषणा तक ही इसे सीमित नही रखत है। हम इसको अमल मे लाने की कोशिश करते हैं। इसका सबूत भारत है।

इसी प्रकार लेबर पार्टी के अध्यक्ष प्रोफेसर लास्की ने 23 मई 1946 को भारतीय समाचारपत्रों में प्रकाशित एक भेंटवार्ता में कहा था

> आधुनिक इतिहास में किसी साम्राज्यवादी शक्ति द्वारा किसी देश की जनता को इतने बड़े पैमाने पर अहिंसक तरीके से पद त्याग करते हुए नही देखा गया। मैं आशा करता हूं कि भारतीय राष्ट्रवादी नेता सोने की तश्तरी में दिए गए इस उपहार की प्रशंसा करेंगे।

दुनिया के अखबारों ने और खासतौर से ब्रिटेन और अमरीका के समाचारपत्रों ने 1946 के इन नए ब्रिटिश सांविधानिक प्रस्तावों को जोरदार प्रचार दिया। अभी तक आंग्ल अमरीकी समाचारपत्र ब्रिटेन द्वारा किए गए स्वार्थत्याग की प्रशंसा करने में डूबे हुए थे।

दूसरी तरफ इस विचारधारा को भारतीय जनमत ने किसी भी रूप में स्वीकार नही किया। 1 जून 1946 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आधिकारिक समाचारपत्रक ने अपना विचार प्रकाशित किया

> वही हुआ जिसका हमें डर था। कैबिनेट मिशन ने साम्प्रदायिक और सामंती हितों को तरजीह देने की कोशिश में देश के व्यापक हितों को भुला दिया। ब्रिटेन के मंत्रियों ने, अपनी अच्छी नीयत के साथ अपनी तरफ से जितना कर सकते थे, उतना किया लेकिन दुर्भाग्यवश मार्च 1942 में सवश्री चर्चिल और ऐमरी ने जो कुछ देने की इच्छा जाहिर की थी उससे बेहतर चीज हम नही पा सके जिस आजादी का वादा किया गया है उसके चारों तरफ पाबंदियों का ऐसा घेरा डालकर रखा गया है कि इसे आजादी नाम देना ही गलत है।

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की आत्मप्रशंसा और भारतीयों के असंतोष को अभिव्यक्ति देने वाली विचारधारा के बीच पूरी तरह से विरोध का कारण क्या है? क्या 1946 के ब्रिटिश सांविधानिक प्रस्तावों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अंतिम तौर से पद त्याग और भारतीय आजादी की मान्यता का प्रतिनिधित्व किया है? अथवा वे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की बहुत दिनों से चली आ रही इन कोशिशों का प्रतिनिधित्व कर रहे है जिनमें संविधान के आधार पर समझौते का कोई तरीका ढूंढ लिया जाए ताकि ब्रिटेन अपने आपको भारत की राष्ट्रीय मांगों के अनुरूप बदलती स्थितियों में ढाल ले और साथ ही इसका प्रभुत्व और शासन भी मूलत भारत पर बना रहे? क्या ये नये प्रस्ताव भारतीय आजादी की अभिव्यक्ति करते है? अथवा वे भारत को आजादी देने का महज दिखावा करते है जिसे शर्तों, प्रतिबंधों और सीमाओं के अभेद्य जंगल ने व्यवहार में असंभव कर रखा हो?

1 बदलते हुए विश्व मे भारत

1946 म कविनट मिशन का भारत क्या भेजा गया ?

ब्रिटेन की नीति न जो नई धारा ली थी उसके चार प्रमुख कारण है। पहली बात तो यह है कि विश्वयुद्ध की समाप्ति न समूचे विश्व म जनविद्रोहा की लहर तैयार कर दी थी। आधुनिक युग क प्रतिक्रियावाद क मुख्य अगुआ, जनतत्र के खिलाफ हमलावरा क प्रमुख नेता और नस्लवादी प्रभुत्व का खुले तौर पर अत्यत निर्मम तरीके से प्रचार करने वाले तत्व अर्थात फासिज्म को जनतात्रिक लोगो के सयुक्त सघष ने करारी हार दी थी। जमन, इतालवी और जापानी साम्राज्यवाद का नामोनिशान मिटा दिया गया था। शेष बच रहे थे ब्रिटिश अमरीकी साम्राज्यवाद लकिन उन्ह भी विश्व नेतृत्व म समाजवादी सोवियत सघ के साथ हिस्सा बटाना पडा था और इस प्रकार विश्व की तीन शक्तियो की एक असुविधाजनक हिस्सेदारी कायम हो गई थी। सोवियत सघ को युद्ध म अपार क्षति उठानी पडी थी और इसका मुख्य भार लाल सेना तथा सोवियत जनता पर पडा था। इन सबक बावजूद उसकी विश्व म अपनी स्थिति और अपनी ताकत बडी तजी से उभरी और यूरोप क जिन देशा को मुक्ति मिल गई थी व पुरानी सामती और सैन्यवादी तथा बडी व्यापारी शक्तियो के विरुद्ध प्रगतिशील जनतात्रिक सत्ता के माग पर बढत रहे। इन घिनौनी शक्तियो ने राष्ट्रीय हित के साथ विश्वासघात किया था और हिटलर की जी हुजूरी की थी। चीन पर से जापान का शिकजा हटा दिया गया और अमरीकी प्रतिक्रियावादियो द्वारा प्रगति के मार्ग म डाली गई तमाम बाधाओ क बावजूद चीन का राष्ट्रीय और जन-तात्रिक आदोलन फिर से आगे बढाया गया। सभी उपनिवेशो की जनता आदोलन मे जुट गई थी और वह उस आजादी की माग करने लगी थी जिसके लिए उनके मुक्ति-आदोलना ने सघष किया था। विश्व की इस नई और बदली हुई परिस्थिति मे इस बात की कोई गुजाइश नही रह गई थी कि भारत म पुरानी निरकुश और नौकरशाही शासनव्यवस्था को बिना बदले बनाए रखा जा सके। भारत ही ऐसा उपनिवेश था जो क्षेत्रफल के हिसाब से सबस बडा था और जहा का राष्ट्रीय आदोलन सबसे ज्यादा शक्तिशाली था।

दूसरी बात यह है कि जीत म बराबर की हिस्सदारी के बावजूद ब्रिटिश साम्राज्य बुनियादी तौर पर कमजोर हो गया था। ब्रिटेन की अदरूनी अथव्यवस्था और अतर्राष्ट्रीय अथ-व्यवस्था म ब्रिटिश पूजीवाद का अपेक्षाकृत पतन हो गया था और औपनिवशिक साम्राज्या पर से इसका दबदबा कम हो गया था। दो विश्वयुद्धा क बीच के दौर की यह एक उल्लेखनीय बात है। ब्रिटेन की विश्व म जो पुरानी महत्वपूण स्थिति थी वह द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से और खराब हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्मट्स और चर्चिल जैसे पुराने राजनीतिनो म बडी चिंता के साथ इस बात पर गौर किया था कि नए विश्व की दो 'विशालकाय' शक्तिया—अमरीका और सोवियत सघ—अत्यत प्रबल ढग स बढती जा रही हैं और मजबूत होती जा रही ह और इस बात की आशका पैदा हो गई है कि ब्रिटन

अब दूसरे या तीसरे स्थान पर पहुंच जाएगा। मिस्र और फिलिस्तीन से लेकर बर्मा और मलाया तथा इंडोनेशिया तक ब्रिटेन के प्रभुत्व वाले क्षेत्र में हर तरफ से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में गुलाम बनाए गए लोगों की चुनौतियां ब्रिटिश साम्राज्य पर टूट पड़ी थीं।

ब्रिटेन की जनता ने इन नई परिस्थितियों को सतर्क होकर महसूस किया था और वह टोरीवाद से दूर हटती जा रही थी ताकि अपनी प्रगति और समृद्धि के लिए कोई नया रास्ता ढूंढ सके लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के पुराने शासकों ने प्रभुत्व की इस टूटती आधारशिला को हर तरह से बनाए रखने की सारी संभव कोशिशें कीं। जैसाकि बर्मा, मलाया और इंडोनेशिया में हुआ, ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने इन फिर से विजित इलाकों में औपनिवेशिक दमन को पुनः स्थापित करने की कोशिश की। उन्होंने विश्व के बदले हुए संतुलन का मुकाबला करने के लिए नए साम्राज्यवादी गठबंधन किए। इस दिशा में उन्होंने सबसे पहले पश्चिम यूरोपीय गुट बनाने की कोशिश की लेकिन यूरोप की जनता के विरोध के कारण उन्हें इसमें असफलता मिली। इसके बाद उन्होंने सोवियत संघ के खिलाफ एक आंग्ल अमरीकी गुट के निर्माण की कोशिश की। इन सभी नई रणनीतिक जोड़तोड़ों में भारत का बुनियादी महत्व था। जर्जर हो रहे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए और उसकी आर्थिक जरूरतों तथा सैनिक योजनाओं के लिए भी यह बहुत जरूरी हो गया था कि वह भारत में बने रहने के लिए समझौते का कोई आधार ढूंढ ले। इसके जरिए राष्ट्रीय आंदोलन के उच्चवर्ग को संतुष्ट करके और यदि संभव हो तो उनपर विजय हासिल करके वह भारत को ब्रिटेन के आर्थिक और सामरिक दायरे में कैद रख सकता था।

तीसरी बात यह है कि विश्व के रंगमंच पर ब्रिटेन की स्थिति में आए परिवर्तन की झलक ब्रिटेन की घरेलू स्थिति में भी दिखाई पड़ रही थी। 1945 की गरमियों में टोरी पार्टी को चुनाव में जबरदस्त हार का सामना करना पड़ा हालांकि इन लोगों ने विजय के अवसर और चर्चिल की प्रतिष्ठा को खूब भुनाने की कोशिश की। पहली बार लेबर पार्टी बहुमत में आई और सत्तारूढ़ हुई। हालांकि नई सरकार का गठन करनेवाले लेबर पार्टी के नरम-दली दक्षिणपंथी नेताओं का व्यवहार में टोरी दल के ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के साथ घनिष्ठ संबंध था (और यह बाद के अनुभवों से जल्दी ही साबित हो गया), लेकिन चुनाव में जनता द्वारा टोरीवाद को नामंजूर करना इस बात का संकेत था कि ब्रिटेन की जनता पुराने साम्राज्यवादी आधार के स्थान पर किसी नए रास्ते की तलाश शुरू कर चुकी थी। लेबर पार्टी के अधिवेशन ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन के बाद कार्य समिति के प्रारंभिक प्रतिरोध के बावजूद आंदोलन की ओर से पेश प्रस्ताव को पहले ही स्वीकार कर लिया था जिसमें भारत को आजादी देने की बात कही गई थी। इस प्रकार लेबर आंदोलन आधिकारिक तौर पर भारत को आजादी देने के लिए प्रतिबद्ध था और नई लेबर सरकार के लिए यह जरूरी हो गया कि वह भारत के संबंध में अब तक चली आ रही नीति से कोई अलग नीति अपनाए।

चौथी और निर्णायक दृष्टि से महत्वपूर्ण बात यह थी कि भारत के अदर तथा विश्व भर म भारत को तत्काल आजादी देने की माग बहुत जोर पकडती जा रही थी। साम्राज्यवाद के लिए अब यह सभव नही रह गया था कि वह पुराने तरीके से भारत पर अपना प्रभुत्व बनाए रखे।

2 1945 46 का राष्ट्रीय उभार

फासीवाद की पराजय के बाद विश्व भर म लोकप्रिय आदोलनो की जो जबरदस्त लहर आई थी उससे भारत भी प्रभावित हुए बिना न रहा। हालाकि भारत ने सयुक्त राष्ट्रो के साथ मिलकर उन महान मुक्ति आदोलनो म हिस्सा नही लिया था जिन्होने फासिस्ट अधिकृत देशो मे सफलता हासिल करने के काम म और युद्ध के बाद राजनीतिक रूपातरण के लिए माग प्रशस्त करने के काम म शक्तिशाली भूमिका अदा की थी फिर भी भारत के अदर भी राष्ट्रीय मुक्ति और जनतात्रिक प्रगति की वही भावना काम कर रही थी। यहा तक कि धुरी राष्ट्रो के खेमे म सुभाषचद्र बोस द्वारा तैयार की गई इडियन नेशनल आर्मी' का उदाहरण और खासतौर से युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा इस सेना के प्रमुख अधिकारियो पर चलाए गए मुकदमो को देखें तो पता चलेगा कि भारत म जुझारू राष्ट्रभक्ति की दीपशिखा जल चुकी थी और यहा के सैनिको म इसका विशेष प्रभाव था।

1945 की गरमिया मे शिमला सम्मेलन का भग होना इस बात का द्योतक है कि ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति किस तरह के दलदल म फस गई थी। इसके साथ ही इस घटना से यह भी पता चलता है कि काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एक इतनी गहरी खाई हो गई थी जिसका पाटा जाना असभव था। काग्रेस और मुस्लिम लीग, इन दोनो दलो के नेताओ के लिए ब्रिटेन के खिलाफ कोई सामूहिक मोर्चा बनाने से ज्यादा आसान काम यह हो गया था कि वे एक दूसरे के खिलाफ शिकायत करके ब्रिटेन के साथ समझौते की बातचीत करें। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीय मोर्चे की यह सबसे बडी कमजोरी थी। साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध के बाद काग्रेस लीग खिलाफत का जो सयुक्त मोर्चा बना था, मौजूदा नीतिया उसकी नीति के एकदम विपरीत थी। अगरेजो ने इस कमजोरी का फायदा उठाया।

इसलिए युद्ध के फौरन बाद भारत म जनविद्रोह हुए, उन्हे किसी आधिकारिक राष्ट्रीय आदोलन का सयुक्त और कारगर नेतृत्व नही मिल सका। जहा तक जनता की बात है, उसके अदर साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघर्ष करने के लिए एकता की इच्छा काफी प्रबल थी। इसका प्रमाण कलकत्ता, बबई तथा अन्य प्रमुख शहरो म हुए विशाल प्रदर्शन हैं जहा जनता की भीड ने काग्रेस और मुस्लिम लीग के झडे तथा कई स्थानो पर कम्युनिस्ट पार्टी के झडे एक साथ फहराए। दुर्भाग्य की बात है कि निचले तबके म जितनी एकता थी उतनी एकता नेतृत्ववर्ग म नही पाई गई।

फिर भी आदोलन आम नागरिको के बीच ही नही बल्कि सेना के जवानो के बीच भी तेजी से स्थान बनाता गया और तेज होता गया। भारत के लिए यह एक नई बात थी। उसके क्रातिकारी महत्व को समझने मे ब्रिटिश साम्राज्यवादियो अथवा राष्ट्रीय आदोलन के उच्चवर्गीय नेताओ मे किसी ने भूल नही की। इससे पहले 1930 मे गढवाली सिपाहियो ने गोली चलाने से इकार कर ही दिया था। लेकिन अब फौजो मे और खासकर वायुसेना तथा नौसेना मे बडे पैमाने पर हडताले हो रही थी जिनसे यह पता चलता था कि अगरेजो की ताकत का आधार और उनका शासनतत्र पूरी तरह छिन्नभिन्न हो चुका है। फरवरी 1946 मे भारतीय नौसेना के विद्रोह ने तो मानो बिजली की तरह चमककर भारतीय क्राति की परिपक्व शक्तियो का परिचय दे दिया। महान क्रातियो मे नौसेना ने किस तरह हरावल दस्ते का काम किया है इसे हम 1905 मे रूस मे 'पोतेमकिन' 1917 मे रूस के क्रासतात या 1918 मे जमनी मे 'कील' विद्रोह मे महसूस कर चुके है। 1946 मे भारतीय नौसेना मे जो विद्रोह हुआ और उसके समथन मे देश मे जनआन्दोलन की जो लहर आई तथा बबई के मजदूरो ने जितनी वीरता के साथ हडताली नाविको का समथन किया उससे जाहिर हो गया कि भारत मे एक नए युग का सूत्रपात हो चुका है और ये घटनाए भारतीय इतिहास मे मील का पत्थर हैं। फरवरी 1946 के उन ऐतिहासिक दिनो मे यह बात सामने आ गई कि भारतीय जनता के प्रगतिशील आदोलनो के कौन लोग दुश्मन है और कौन लोग दोस्त है।

शाही भारतीय नौसेना के नाविको के विद्रोह का केद्रबिंदु बबई था लेकिन इसका विस्तार कराची और मद्रास तक था। इन शहरो मे लोगो ने इन नाविको का काफी समथन किया था। विद्रोह की शुरुआत 18 फरवरी की सुबह 'तलवार' प्रशिक्षण स्कूल से हुई थी जहा बहुत दिनो से लोगो की कुछ शिकायतें थी जिन्हे अधिकारीगण दूर नही कर रहे थे। 19 फरवरी की सुबह तक यह विद्रोह बबई मे 12 तटवर्ती प्रतिष्ठानो तथा बदरगाह पर खडे 20 जहाजो तक फैल गया और इसमे सभी 20 हजार नाविको ने भाग लिया। जहाज के मस्तूल पर से अगरेजो का झडा यूनियन जैक हटा दिया गया और काग्रेस तथा मुस्लिम लीग के झडे फहराए गए। शहर मे नाविको ने काग्रेस, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी के झडे लेकर जुलूस निकाले तथा नारे लगाए। उनके नारे थे, 'जय हिंद', 'इकलाब जिंदाबाद', 'हिंदू मुस्लिम एक हो', 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश हो', हमारी मागें पूरी करो', आई० एन० ए० के लोगो को और राजनीतिक बदियो को रिहा करो, इडोनेशिया से भारतीय सेना हटाओ'। यह हडताल भारतीय नौसेना के अन्य जहाजो तक भी फैल गई। इनमे कराची का 'हिंदुस्तान' जहाज भी शामिल था जिसने बाद मे सशस्त्र सघर्ष मे भी हिस्सा लिया।

विद्रोही नाविको ने शुरू से ही काग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओ के साथ सपर्क कायम किया था लेकिन इन नेताओ का न तो उन्हे कोई समथन मिला और न कोई व्यावहारिक मदद ही। इन विद्रोहियो ने एक केद्रीय नौसेना हडताल समिति का गठन किया और

पूण अनुशासन वायम रखा। ववई की जनता न इन हडतालियो वा जोरदार समथन किया और अपन घर स खाना वनवाकर जहाजा तक पहुचाया। ब्रिटिश अधिकारियो का उस समय वहुत हैरानी हुई जव उन्होन देखा कि आदोलन का तेजी से विस्तार होता जा रहा है और फिर उन्हाने जवरदस्त दमन का सहारा लिया। जल्दी जल्दी भारी सैनिक और नौसनिक टुकडिया ववई तथा कराची भेजी गइ। इन टुकडिया के भारतीय जवानो न जब अपन साथी हडताली नाविका पर गोली चलान से इकार कर दिया तव इस काम के लिए अगरेज सैनिका को बुलाया गया और 21 फरवरी को कैसिल वैरक क वाहर सात घट तक घमासान लडाई चलती रही। 21 फरवरी के तीसरे पहर एडमिरल गाडफ्रे न रडिया पर विद्रोहियो का अल्टीमेटम दिया और कहा कि 'सरकार तुम लोगो के खिलाफ अपनी जवरदस्त ताकत का पूरा पूरा इस्तमाल करेगी भले ही ऐसा करने मे हमारी नौसना पूरी तरह वरबाद हो क्यो न हो जाए। केंद्रीय नौसना हडताल समिति ने इस धमकी के जवाव म शहर की जनता से शातिपूण हडताल करने की अपील की। हालाकि उस समय जरूरत इस वात की थी कि हडताल का समयन करके अगरेज अधिकारी की इस धमकी को विफल किया जाए और नौसेना के नाविको का जीवन वचाया जाए लेकिन काग्रेस नेतृत्व की तरफ से वल्लभभाई पटेल ने हडताल का समथन करने से इकार कर दिया और उसके खिलाफ हिदायतें जारी कर दी। फिर भी केंद्रीय नौसेना हडताल समिति की अपील का ववई की ट्रेड यूनियना और कम्युनिस्ट पार्टी ने समथन किया और 22 फरवरी को बबई की मजदूर जनता ने इसके समथन मे व्यापक हडताल की। अगरेज अधिकारियो न इस जनआदोलन को विफल करने की कोशिश म सेना और पुलिस का सहारा लिया तथा जनता पर अधाधुध गोलिया चलाई गईं। 21 फरवरी से 23 फरवरी, तीन दिनो के अदर सरकारी आकडा के अनुसार 250 लोग मार गए। पटना का विवरण एक प्रत्यक्षदर्शी ब्रिटिश अधिकारी ने प्रस्तुत किया है

> शाम क चार वजे थे। मैं ववई की मजदूर वस्ती परैल म एलफिस्टन रोड के कान के पास सुपारीवाग राड के वरावर म टहल रहा था।
>
> सडक पर काफी लोग थे लेकिन उन्ह भीड नही कहा जा सकता था। कम्युनिस्ट पार्टी की सलाह पर इन लागो न अपने साथ काई हथियार नही रखा था यहा तक कि इनक पास डडे या पत्थर भी नही थे।
>
> अचानक विना किसी चेतावनी के ब्रिटिश सैनिका स लदी एक लारी एलफिस्टन रोड स गुजरी। इन सिपाहिया के पास राइफलें थी और एक ब्रेनगन थी।
>
> लाग इधर उधर भागने लग और मैं भी उन्ही म शामिल हा गया लेकिन तभी गारे सिपाहिया न भागत हुए लोगा की तरफ गाली चलाना शुरू कर दी। बीस लाग घायल हुए और चार मारे गए।

इसके पीछे वजह क्या थी ?

ट्रेड यूनियनों ने नौसनिक विद्रोह के समर्थन में आम हड़ताल का आह्वान किया था। यह हड़ताल सूती कपड़ा मिलों, कारखानों और रेलवे वर्कशापों में शतप्रतिशत सफल हुई थी।

किसी बड़े अधिकारी ने फैसला किया कि 'इन कलूटों को सबक सिखाया जाए', और उसके आदेश पर युद्ध के लिए तैयार हथियारबंद दस्ते लारियों में लादकर रवाना कर दिए गए और उन्हें आदेश दिया गया कि जहां भीड़ दिखाई दे फौरन गोलियां चला दो और किसी को पत्थर उठाने तक का मौका मत दो।

सड़कों पर कोई एंबुलेंस नहीं थी और लोगों को अपने ही आप अस्पताल जाना पड़ा।

बाद में डेलिजली रोड पर मैंने देखा कि गोरे सैनिक मजदूरों की चाल में घुस रहे हैं और घरों में बैठे लोगों पर गोलियां चला रहे हैं। इन चालों में चार लोग मारे गए और 16 घायल हुए।

परेल जिले में स्थापित किंग एडवर्ड मेमोरियल हास्पिटल में ही 50 व्यक्तियों की मौत हुई। परेल के अस्पतालों ने छः सौ घायलों में से दो सौ की चिकित्सा की।

तमाम अखबारों ने आपको 'गैरजिम्मेदाराना विद्रोह' की खबरें दी होंगी लेकिन इन अखबारों ने यह नहीं बताया होगा कि कैसिल बैरकों में अधिकारियों ने हड़तालियों को कैद कर दिया, उन्हें बिना खाना पानी दिए चारों तरफ से घेर लिया और अगर कोई पानी पीने बाहर निकला तो उसे गोलियों से भून दिया गया।

उन्होंने आपको भीड़ की हिंसा और उपद्रवी हरकतों के बारे में बताया होगा। उन्होंने यह नहीं बताया होगा कि जिस ट्रक पर सबसे पहले पथराव हुआ था उस ट्रक ने एक अनुशासनबद्ध जुलूस को अपनी तेज रफ्तार से रौंद दिया था।

अंधाधुंध आतंक से अपनी जान और अपने परिवार की जान बचाने के लिए जनता द्वारा किया गया यह एक संयुक्त संघर्ष था।

वातावरण में एक ही शब्द गूंज रहा था और वह था, हम एक हैं। टोपधारी

सनिको को जिस दृश्य से सबसे ज्यादा घबराहट हो रही थी वह था काग्रेस के तिरगे झडे, मुस्लिम लीग के आधे चाद वाले झडे और कम्युनिस्ट पार्टी के लाल झडे का जुलूस म एक साथ फहराया जाना। मुस्लिम लीग और काग्रस के झडे नबदा' नामक जगी जहाज क मस्तूल पर फहरा रहे थे।

जैसे ही हम अदर घुसे और पीछे से सनसनाती हुई गोलिया निकल गइ, एक भारतीय ने मुझसे कहा—'यह है ब्रिटेन का समाजवाद जो इस समय अमल म है।' मेरी चिंता लेबर सरकार की प्रतिष्ठा को लेकर ह जिसने 24 घटो के अदर वह समथन भी गवा दिया जो इडोनेशिया के बाद उसक पास बचा हुआ था।

सबसे बढकर मैं ब्रिटेन की जनता के सम्मान का लेकर चिंतित हू। लगभग सारी गालिया ब्रिटिश सैनिका द्वारा चलाई गई।

पुलिस को सबसे पीछे रखा गया था। मैंने एक भी भारतीय सैनिक नही देखा और मुझे बताया गया कि चूकि सेना म भी असतोष फल गया है इसलिए सरकार ने डर के कारण दमन के इस काय म भारतीय सैनिका को नही लगने दिया।

ब्रिटिश सैनिक किसी विशेष सैनिक दस्ते या सुरक्षा यूनिट के नही थे। वे साधारण रगरूट थे और युद्ध के समय स्वयसेवी सैनिको क रूप म काम कर चुके थे। अर्थात वे वर्दी पहने ब्रिटिश मजदूर थे, लिसेस्टर रेजिमट, ऐसेक्स रजिमेट, दि रायल आर्टीलरी और दि रायल मरीस के सैनिक थे।

अत म 23 फरवरी को वल्लभभाई पटेल के दबाव से कद्रीय हडताल कमेटी ने आत्मसमपण करने का फैसला किया। पटेल ने नाविका को आत्मसमपण करन की सलाह दी थी और आश्वासन दिया था कि 'काग्रेस इस बात की हर सभव कोशिश करेगी कि हडताली नाविका से बदला न लिया जाए।' मुस्लिम लीग ने भी इसी तरह का आश्वासन दिया था। लेकिन दो दिना के अदर ही नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। हडताल समिति के अध्यक्ष न अपने अतिम वक्तव्य म कहा 'हम भारत के सामने आत्मसमपण कर रहे ह ब्रिटेन के सामने नही।'

फरवरी म नौसना के नाविको के विद्रोह और बबई की जनता के सघर्षा स यह बात काफी स्पष्ट हो गई थी कि 1946 मे भारत मे जो विस्फोटक स्थिति थी उसमे कौन सी शक्तिया किनके साथ थी। एक तरफ तो इस आदोलन से यह पता चला कि आदोलन कितना विकसित हो चुका है, जनता म कितना जबरदस्त साहस और सकल्प है, और हिंदू मुस्लिम

एकता तथा कांग्रेस-लीग एकता के लिए जनता कितनी व्यग्र है। यह भी पता चला कि आदोलन का विस्तार सेना तक म हो गया है और अब ब्रिटिश शासन का आधार सुरक्षित नही रह गया है। दूसरी तरफ इस आदोलन ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि देश का वतमान नेतृत्व इन स्थितियो के लिए एकदम तैयार नही है और उसम एकता का अभाव है और इसीलिए राष्ट्रीय सघष का नेतृत्व करना उनके वश की बात नही है।

पहले मच पर भाषण देने के लिए बराबर पहले जापानियो और फिर ब्रिटिश सेना के सामने आत्मसमपण करने के बाद सुभाषचद्र बोस और उनकी इडियन नेशनल आर्मी को, तथा कथित क्रातिकारी राष्ट्रीय सघष के प्रतीक के रूप म गौरवान्वित किया गया था। 1942 की घटनाओ को भी, जिन्होने कभी जनसघष का रूप नही लिया, गौरवान्वित करने की काफी कोशिशें की गईं।

लेकिन अब, जबकि जनता का सही आदोलन सचमुच शुरू हो चुका था, जब हिंदू मुस्लिम एकता कायम हो रही थी और उसपर अमल हो रहा था, जब सामूहिक राष्ट्रीय आदोलन मे सेना के जवानो ने आम नागरिको के कधे से कधा मिलाकर सघष शुरू कर दिया था और जब आजादी की सही लडाई ने ब्रिटिश शासन की जडे हिला दी थी राष्ट्रीय आन्दोलन के बडे नेताओ के रुख म जबरदस्त तब्दीली दिखाई पडी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के उच्चवर्गीय नेता जनआदोलनो के खिलाफ हो गए और जनता के विरुद्ध कानून और व्यवस्था के प्रतिनिधि के रूप म उन्होने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पक्ष लिया। इन नेताओ की तरफ से एक के बाद एक बयान निकाले गए जिनम 'हिंसा' की निंदा की गई थी, लेकिन यह निंदा उन साम्राज्यवादियो की हिंसा की नही थी जिन्होने तीन दिनो के भीतर सैकडो लोगो को गोलियो से भूनकर मौत के घाट उतार दिया था बल्कि इनम उन निहत्थे हडतालियो की भत्सना की गई थी जिन्हे निममतापूवक गोलियो से भून दिया गया था। वल्लभभाई पटेल ने एक बयान जारी किया जिसम कहा गया था कि नौसेना के नाविको को हथियार नही उठाना चाहिए था और पटेल ने यह भी कहा कि 'मैं कमाडर इन चीफ की इस बात से सहमत हू कि नौसेना म अनुशासन जरूरी है।' कांग्रेस अध्यक्ष आजाद ने कहा

> हडतालो या देश की अस्थाई सरकार के आदेशो का उल्लघन करने का अब समय नही है। इस समय विदेशी शासको से किसी बात पर लडने का वक्त नही है क्योकि वे देखभाल करने वाली सरकार के रूप म फिलहाल काम कर रहे हैं।

गाधी ने अपने एक महत्त्वपूण बयान म हिंदुओ और मुसलमानों की नापाक एकता की भर्त्सना की क्योकि वह अहिंसा के सिद्धात को ठुकरा कर स्थापित हुई थी

> यदि हम आरम्भ से अत तक एकताबद्ध होते तो आज हम गभीर सकट म आ गए थे।

तब निस्सदेह इसका अर्थ यह होता कि भारत का निकृष्ट कोटि के अव्यवस्थित लोगो के हाथो मे सौंप दिया गया। मैं इस काम का अजाम देखने के लिए 125 साल तक जीना नही चाहता। इसके बजाय मैं चिता की लपटो को समर्पित हो जाना चाहूगा। ('हरिजन', 7 अप्रैल 1946)

इस प्रकार देश के सुधारवादी नेताओ और जनआदोलन के बीच की खाइ जो पहले भी 1922 मे चोरीचौरा काड के बाद और 1931 मे गाधी इर्विन समझौते के बाद प्रकट हो चुकी थी, अब और भी ऊचे धरातल पर सामने आ गई। कांग्रेस शासको के खिलाफ मिला-जुला सघर्ष चलाने के लिए हिंदुओ और मुसलमानो की एकता को देश की राष्ट्रीय आजादी का रास्ता न समझकर एक ऐसा खतरा समझा गया जिसको रोकने की जरूरत महसूस की गई क्योकि ऐसी स्थिति मे भारत मे आम जनता की विजय होती (भारत को निकृष्ट कोटि के अव्यवस्थित लोगो के हाथ मे सौंपना, एक ऐसा उद्घाटक वाक्य है जो आम जनता के प्रति उच्चवर्गीय नेतृत्व की शत्रुता को प्रकट करता है)। भारतीय उच्चवर्ग ने अगरेजो को दमनकारी शासक न समझ 'देखभाल करने वाला' शासक माना। उस सकट की घडी मे भारत की स्थिति मे छिपी क्रातिकारी शक्तियो के भय से उच्चवर्ग का इतना पतन हो गया था कि वह साम्राज्यवादियो की ओर ही झुकता चला गया। पहले भी जब जब भारत मे जनसघर्ष अपने उत्कर्ष पर पहुचता था यही स्थिति दिखाई पडती थी। और आज जब भारत का स्वाधीनता सघर्ष अपने अत्यत नाजुक दौर से गुजर रहा है, यह बात एक बार फिर सही साबित हो रही है।

अगरेज शासको ने राष्ट्रीय मोर्चे की इस कमजोरी को भापने मे तनिक भी देर न की और उन्होने इस कमजोरी का पूरा लाभ उठाया। जैसा बाद की कैबिनेट मिशन की कार्यवाहियो से पता चला, ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की सपूर्ण कार्यनीति कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओ का इस्तेमाल करने की हो गई। ब्रिटिश साम्राज्यवादी इन नेताओ मे एक तरफ तो उनके अन्दर यह आश्वासन पैदा करते थे कि सत्ता का हस्तातरण शातिपूर्ण ढग से उन्हे कर दिया जाएगा और दूसरी तरफ वे उन्हे जनता का डर दिखाते थे तथा उनके आपसी मतभेदो और विद्वेषो का फायदा उठाते थे।

18 फरवरी को बबई मे नौसेना के नाविको की हडताल शुरू हुई। 19 फरवरी को प्रधानमंत्री एटली ने हाउस आफ कामस मे एलान किया कि एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा जाएगा।

3 कैबिनेट मिशन

मार्च 1946 मे कैबिनेट मिशन भारत पहुचा। इसकी हिदायतो मे उसी नीति पर अमल किया गया जिसका सितबर 1945 मे वायसराय ने अपने रेडियो प्रसारण मे एलान किया था। सितबर 1945 मे वायसराय ने अपने रेडियो प्रसारण मे कहा था

> सरकार का यह इरादा है कि जितनी जल्दी सभव हो सविधान का निर्माण करने वाले एक निकाय का गठन किया जाए। और इसके प्रारभिक कदम के रूप म उसने मुझे यह अधिकार दिया है कि चुनावो के फौरन बाद म विभिन्न सूबा मे विधानसभाओ के प्रतिनिधियो से बातचीत करके यह पता लगाऊ कि 1942 की घोषणा म शामिल प्रस्ताव स्वीकाय है या कोई सशाधित अथवा वैकल्पिक योजना पसद की जाएगी।
>
> भारतीय रियासतो के प्रतिनिधियो के साथ भी बातचीत की जाएगी ताकि यह पता लगाया जा सके कि सविधान का निर्माण करने वाले निकाय म वे किस तरह अधिक से अधिक सक्रिय रह सकते है।
>
> सरकार उस सधि की मुख्य बातो पर विचार करने को सोच रही है जो ग्रेट ब्रिटेन और भारत के बीच सपन्न होनी है।
>
> जब तक ये तयारिया पूरी नही हो जाती भारत सरकार को अपना काम जारी रखना चाहिए इसलिए ब्रिटेन सरकार ने मुझे इस बात का अधिकार दिया है कि प्रातीय चुनावो के परिणाम प्रकाशित होने के फौरन बाद में एक एसी कायकारी परिषद का गठन करू जिसको भारत की सभी प्रमुख पार्टियो का समथन प्राप्त हो

यह देखा जा सकता है कि इस बयान मे सशोधन की सभावना के साथ सामान्य तौर पर उसी नीति का पालन किया गया है जो 1942 मे क्रिप्स प्रस्तावो मे पश की गई थी। वायसराय के रेडियो प्रसारण के साथ ही प्रधानमत्री ने एलान किया

> भारत के प्रति ब्रिटिश नीति की जो व्यापक परिभाषा 1942 की घोषणा म दी गई है और जिसे इस देश की सभी पार्टियो का समथन प्राप्त है वह आज भी अपनी समग्रता और उद्देश्य म ज्यो की त्यो है।

1946 के शुरू के महीनो म चुनाव कराए गए। परिणामो को देखने स पता चला कि देश का जनमत दो बडे राजनीतिक सगठनो के साथ है जो स्वाधीनता का लक्ष्य लेकर चल रहे है, सामान्य सीटो पर लोगो ने काग्रेस को और मुस्लिम सीटो पर मुस्लिम लीग को पसद किया है। इसके साथ ही यह भी पता चला कि अलग अलग खानो म बटे छोटे मोटे राजनीतिक गुटो का अस्तित्व अब अपेक्षाकृत समाप्त हो गया है। इन छोटे मोटे गुटो म हिंदू महासभा या पजाब म यूनियनिस्ट पार्टी और मद्रास म जस्टिस पार्टी जस राजनीतिक गुट है। केंद्रीय विधानसभा म (जिसका निर्वाचन अत्यत सीमित मताधिकार पर हुआ था। इसम ब्रिटिश भारत की आबादी के एक प्रतिशत के आधे स भी कम लोगो को वोट देने का अधिकार था) काग्रेस को 56 स्थान मिले (जो पहले 36 थे) और उस सभी सामान्य

सीटा पर 91 प्रतिशत त ा भुन वाट का 59 प्रतिशत भाग मिला। मुस्लिम लीग को सभी 30 मुस्लिम सीटा पर सफलता मिली (पहल उस 25 सीटें मिली थी) और उसे 86 प्रतिशत मुस्लिम वोट तथा कुन वोट का 27 6 प्रतिशत भाग मिला। प्रातीय विधानसभा चुनावा म आबादी के 11 प्रतिशत लोगा न और बालिग आबादी के 1/5 से 1/4 हिस्से न भाग लिया। इनम काग्रेस का 930 सीटें मिली जबकि 1937 म उस महज 715 सीटें मिली थी और उस कुल 55 5 प्रतिशत वाट मिल जबकि मुस्लिम लीग का 507 मुस्लिम सीटा म 427 सीटें प्राप्त हुई जबकि 1930 म उउ महज 108 सीट मिली थी और कुल मुस्लिम वाट का 74 3 प्रतिशत उसन प्राप्त किया। यह पहला मौका था जब कम्युनिस्ट पार्टी चुनाव म हिस्सा ले सकी और उसे 8 स्थान तथा 6,84 925 वोट प्राप्त हुए।

19 फरवरी का ब्रिटिश प्रधानमत्री न एलान किया कि तीन कैबिनेट मत्रिया, भारतीय मामला के मत्री पैथिक लारेंस बाड आफ ट्रेड क अध्यक्ष स्टैफाड क्रिप्स और नौपरिवहन मत्री लाड एडमिरलिटी एलक्जेंडर को भारत भजा जा रहा है। इस घाषणा क साथ ही एक दूसरे बयान क जरिए कैबिनेट मिशन के विचाराथ विषया का एलान किया गया था जिसम कहा गया कि मिशन का उद्देश्य भारतीय जनता के नताओ क सहयोग स भारत म पूण स्वराज्य शीघ्र स्थापित करने क काम का बढ़ावा देना है। इस दिशा म कबिनट मिशन का जो कदम उठान थ उनम य बातें शामिल थीं

1 ब्रिटिश भारत क निर्वाचित प्रतिनिधिया और देशी रियासता के साथ प्रारभिक बातचीत करना ताकि सविधान की निर्माण विधि पर सहमति को अधिक से अधिक गुजाइश पैदा की जा सके।
2 सविधान बनाने वाले निकाय का गठन करना।
3 एक ऐसी कायकारी कौंसिल की स्थापना करना जिसको भारत की प्रमुख राजनीतिक पार्टिया का समथन प्राप्त हो।

15 माच को कैबिनेट मिशन की रवानगी के अवसर पर ससद के अधिवेशन म प्रधानमत्री न एक और नीति सबधी वक्तव्य जारी किया (देख पहला अध्याय) जिसकी दो बातो ने काफी लोगा का ध्यान आकर्षित किया। पहली बात तो यह थी कि इस वक्तव्य म स्वतत्रता' शब्द का इस्तमाल पहली बार किया गया था जिस भारत के डोमीनियन राज्य चुन जाने के सभावित विकल्प के रूप म कहा गया था

> भारत को खुद यह तय करना चाहिए कि उसकी भावी स्थिति क्या होगी और विश्व म उसका क्या स्थान होगा। मुझे आशा है कि भारत शायद ब्रिटिश राष्ट्रमडल के अतगत रहना पसद करे, लकिन इसके बजाय यदि वह स्वतत्रता चाहता है, और हमारे विचार से उस यह चाहन का पूरा हक है, तो हम चाहिए कि हम इस हस्तातरण को जहा तक सभव हो आसान और बाधारहित बनाए।

दूसरी वात अल्पसख्यको के प्रश्न से सबद्ध थी

> हम अल्पसख्यका क अधिकारो के बारे म काफी सचेत ह और अल्पसख्यको को भय से मुक्त वातावरण म रहने की सुविधा मिलनी चाहिए। दूसरी तरफ हम किसी अल्पसख्यकवग का इस बात की अनुमति नही द सकत कि वह बहुसख्यकवग के विकास के खिलाफ अपने निषेधाधिकार का इस्तेमाल कर सके।

भारत के सावैधानिक विकास के एक सभावित लक्ष्य के रूप मे 'स्वतत्रता' के जिक्र का काफी स्वागत किया गया। इसे यह माना गया कि ब्रिटिश सरकार अब तक चली आ रही अपनी नीति से अलग हट रही है, साथ ही इसे भारत और ब्रिटेन के सबधो म एक नए रुझान का प्रमाण माना गया। वहम म टोरी प्रवक्ताओ ने मतैक्यता का परिचय दिया जो बात काफी सदिग्ध थी। भारत म ब्रिटिश शासन के अत्यत सक्रिय और घोर समथक व्यक्ति सर स्टैनले रीड जसे लोगो ने भी कहा कि 'स्वतत्रता शब्द का इस्तेमाल करन म किस तरह की हिचकिचाहट पैदा हो रही है?' फिर भी अत्यत चौकस और परिकल्पित यह प्रस्ताव कि ब्रिटिश शासको द्वारा निर्धारित की जाने वाली कायपद्धति और स्थिति स सपन्न जजातात्रिक सविधाननिर्माता निकाय को डामीनियन और स्वतत्रता म से चुनाव करना होगा, दरअस्ल नीति की कोई नई व्याख्या नही पश करता था। 1942 म क्रिप्स द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव मे यह बात पहल ही कही जा चुकी थी जिसे टोरी बहुमतवाल मत्रिमडल ने अपनी स्वीकृति दे दी थी

> ब्रिटिश सरकार का प्रस्ताव है कि भारत म जल्दी से जल्दी स्वराज्य कायम करने के उद्देश्य से एक ऐसे नए भारतीय सघ की स्थापना की दिशा म कदम उठाए जाने चाहिए जिसको पूरा पूरा डोमीनियन का दरजा प्राप्त हो और जो चाहे तो, ब्रिटिश राष्ट्रमडल से अपने को अलग कर सके।

राजनीतिक विकास रोकने के लिए अल्पसख्यकवग को वीटो की अनुमति देने से इकार करने का वादा शिमला सम्मेलन की स्थिति से आगे बढने का द्योतक है और इससे वतमान राजनीतिक गतिरोध को समाप्त करने के सकल्प का पता चलता है। लेकिन बाद म सरकारी स्तर पर भारत म दी गई व्याख्याओ म बताया गया कि अल्पसख्यकवग का अथ यहा मुसलमाना स नही है और इस व्याख्या ने सरकारी नीति म तथाकथित परिवतन के महत्व को समाप्त कर दिया।

कैबिनेट मिशन न शुरू के कुछ सप्ताहा की अपनी कायवाहियो के दौरान गवनरा, राजाओ, प्रातो के प्रधानमत्रियो तथा विपक्षी नेताओ और काग्रेस, मुस्लिम लीग तथा अन्य सगठनो के प्रतिनिधियो स अलग अलग भेंट की और बातचीत की। इन लोगो से अलग अलग बातचीत करक दुनिया को यह दिखाया गया कि भारत म विभिन्न राजनीतिक गुटो और

खासतौर से काग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच काफी मतभेद है और ये अलग अलग गुटा मे बट हैं। ईस्टर की छुट्टिया के बाद मिशन की कायवाही का दूसरा चरण शुरू हुआ और मिशन ने काग्रेस तथा लीग के बीच काई समान आधार ढूढने की दृष्टि से विचार विमश शुरू किया। मिशन न इस तरह के आधार के लिए प्रस्ताव पश किए और मिशन काग्रेस तथा लीग के बीच त्रिपक्षीय बातचीत के लिए आयोजित शिमला सम्मेलन का 5 मई से स्थगित करके 12 मई कर दिया गया। यह दूसरा शिमला सम्मेलन भी एक वष पूव आयोजित शिमला सम्मेलन की ही तरह बिना किसी फमले पर पहुचे समाप्त हो गया। इस प्रकार कैबिनेट मिशन की कायवाहियो के प्रथम सात सप्ताहा ने ब्रिटेन के फैसले के लिए जमीन तैयार कर दी।

16 मई का कैबिनेट मिशन के वायसराय तथा ब्रिटिश कैबिनट के साथ अपनी नीति से सबधित एक वक्तव्य जारी किया। नीति सबधी इस वक्तव्य म फसले और सिफारिशे दोनो बात थी सविधानसभा की स्थापना और इसके सघठन तथा इसकी कायपद्धति के सदभ म उठाए जाने वाले तात्कालिक कदमो के बारे म फैसले लिए गए थे तथा भावी सविधान के प्रबध सिद्धाता के सदभ म कुछ सिफारिशे की गई थी। इन सिफारिशा म सविधान-सभा द्वारा सशोधन किया जा सकता था जबकि ये फैसल मजूर या नामजूर करने के लिए रखे गए थे। चूकि तथ्य रूप म य फैसले उन सभी महत्वपूण कदमो का सचालित करते थे जिन्ह अनिवाय रूप से सविधान के चरित्र का आगे चलकर निर्धारित करना था इसलिए नीति सबधी यह वक्तव्य, दरअस्ल, ब्रिटेन द्वारा लिए गए एकतरफा फैसले द्वारा थोपा गया था (हालाकि शत से बचा गया था)।

कबिनट मिशन के साथ बातचीत म भारतीय प्रतिनिधियो की सबसे बडी कमजोरी यही थी कि काग्रेस और मुस्लिम लीग अलग अलग खेमो मे बटे हुए थे। चुनावो के परिणामो ने दोना पार्टियो की ताकत की पुष्टि कर दी थी और इससे इस फूट को और बल मिला था। अगर काग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिलजुलकर एक मच स काम करने की कोशिश की होती तो कैबिनेट मिशन इतनी आसानी से आजादी की घोषणा करने और सत्ता का हस्तातरण करने की व्यापक माग से कतरा नही सकता था। दूसरी ओर काग्रेस और मुस्लिम लीग, भावी सविधान पर तत्काल सहमत न होने पर भी, यदि मिशन के सामने काई सयुक्त मोर्चा बना पात और मिशन द्वारा अलग अलग चलाई जा रही बातचीत को नामजूर करत तथा इस बात की माग करते कि तत्काल आजादी की घोषणा की जाए और सत्ता का हस्तातरण किया जाए (साथ ही सविधान के स्वरूप के बारे मे अन्य तमाम प्रश्नो को यह मानकर छोड दिया जाता कि ये घरेलू राजनीति के मामले हैं और इन्ह बिना किसी तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप के देश के राजनीतिक सगठन स्वय हल कर लेंगे) तो अगरेज शासका को पहल करने स रोका जा सकता था और ब्रिटेन के लिए एकतरफा फसला लेना असभव हो जाता। दुर्भाग्यवश काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो पार्टिया के नतागण एक दूसरे की बजाय मिशन के साथ गोपनीय और घनिष्ठ बातचीत

के लिए ज्यादा उत्सुक थे और वे एक दूसर के विरुद्ध अपन दावो की पूर्ति के लिए मिशन का समथन प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई जिसम अगरेजी शासको को दुनिया के सामने यह ढिंढोरा पीटने का मौका मिल गया कि काग्रेस और मुस्लिम लीग मे जबरदस्त फूट है और यह फूट ही भारत को आजादी मिलने के रास्ते मे सबसे बडी बाधा है। अपने इसी दुष्प्रचार के आधार पर ब्रिटिश उपनिवेशवादियो को भारत की भावी राजनीति के बारे म अपना फैसला थोपने का मौका मिल गया जिसे उन्होने अनिवाय और एकमात्र फैसला घोषित किया।

4 1946 के नए सावैधानिक प्रस्ताव

कैबिनेट मिशन न 16 मई की अपनी घोषणा म निम्न प्रस्ताव पेश किए

1 भावी सविधान के लिए सुझाव

(क) ब्रिटिश भारत और देशी रियासतो को मिलाकर भारत का एक सघ बनाया जाना चाहिए जो विदेश, रक्षा और सचार सबधी मामला की देखरेख करे तथा जिसके पास जनता के लिए आवश्यक वित्तीय साधनो की व्यवस्था करन का अधिकार हो।

(ख) सघ की अपनी कायपालिका और विधायिका होनी चाहिए जिसमे ब्रिटिश भारत और रियासता के प्रतिनिधि शामिल हो।
विधानमडल मे किसी महत्वपूण साम्प्रदायिक मामले स सबद्ध प्रश्न पर फैसला लेने के लिए उपस्थित प्रतिनिधियो का बहुमत तथा दो प्रमुख समुदाया (काग्रेस और मुस्लिम लीग) का मतदान जरूरी है—साथ ही सभी उपस्थित सदस्या का बहुमत और मतदान जरूरी है।

(ग) सघ विषया से अलग सभी विषय तथा अवशिष्ट अधिकार प्रातो म निहित होने चाहिए।

(घ) सघ को सत्तातरित विषय और अधिकारो के अलावा सभी विषय और अधिकार राज्य के हान चाहिए।

(ङ) प्रातो को कायपालिकाओ और विधानागा सहित समूहो के गठन की छूट होनी चाहिए और प्रत्येक समूह को यह अधिकार होना चाहिए कि वह प्रातो क लिए समान विषय निर्धारित कर सके।

(च) सघ और समूहा के सविधाना म ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसस कोई प्रात अपना विधानसभा के बहुमत से कम से कम दस वर्षो क बाद और बाद म दस दस वष के अतराल से सविधान की शर्तों पर पुनर्विचार का काम कर सके।

2 सविधान बनाने वाले तत्र के लिए प्रस्ताव

(क) 389 सदस्यो की सविधानसभा बनाई जाए, इनमे से 292 सदस्य ब्रिटिश भारत के प्रातो से लिए जाए जिनका सामान्य, मुस्लिम और सिख समुदाय के लिए आबादी के अनुसार निर्धारित पृथक सीटो से साप्रदायिक आधार पर अप्रत्यक्ष निर्वाचन किया जाए और यह काम प्रातो की मौजूदा विधान-सभाए करे, रियासतो से 93 लोगो का चुनाव किया जाए और चुनाव का तरीका आपसी सलाह मशविरे से तय हो।

(ख) प्रातो का तीन भागो मे विभाजन

(अ) जो हिंदूबहुल क्षेत्रो का प्रतिनिधित्व करे (मद्रास, बबई, सयुक्त प्रात बिहार, मध्यप्रात और उडीसा)।

(ब) जो उत्तर पश्चिम के मुस्लिमबहुल क्षेत्रो का (पजाब, उत्तर पश्चिम सीमा प्रात, सिंध और बलूचिस्तान) और उत्तर पूर्व के मुस्लिम बहुल क्षेत्रो का (बगाल और असम) प्रतिनिधित्व करें। इन समूहो के प्रतिनिधि प्रत्येक समूह म सबद्ध प्रातो के लिए सविधान निर्धारित करने के लिए अलग अलग मिला करेगे। प्रातो को नए सविधान के बनने तथा इस आधार पर प्रथम चुनावो के होने के बाद ही अपनी पसद तय करने का अधिकार होगा।

(स) अपेक्षाकृत छोटे अल्पसख्यको के लिए सलाहकार समिति बनाई जाए।

(द) सघ का सविधान निर्धारित करन के लिए सघीय सविधानसभा बनाई जाए। महत्वपूर्ण साप्रदायिक मसलो से सबद्ध प्रस्तावो के लिए उपस्थित प्रतिनिधियो के बहुमत की और दोनो बडे समुदायो म से प्रत्यक के मतदान की आवश्यकता होगी।

3 राज्य

नए भारतीय सघ म राज्यो के सहयोग का आधार बातचीत द्वारा तय किया जाएगा। प्रारभिक चरण म राज्यो के प्रतिनिधित्व के बारे म एक प्रबधसमिति निणय लेगी।

स्वाधीनताप्राप्ति के बाद ब्रिटेन की सर्वोच्चता समाप्त हो जाएगी।

4 ब्रिटिश भारतीय सधि

सघीय सविधानसभा और ग्रेट ब्रिटन के बीच एक ब्रिटिश भारतीय सधि सपन्न की जाएगी।

5 अंतरिम सरकार

'प्रमुख राजनीतिक पार्टियो के समर्थन से एक अतरिम सरकार' के गठन की सिफारिश का काम वायसराय अपनी कार्यकारी कौसिल के पुनगठन के आधार पर करेगा

कैबिनेट मिशन की योजना पर तात्कालिक प्रतिक्रिया मिश्रित थी। सामान्य तौर पर अगरेजा ने इसकी बडी प्रशसा की और कहा कि ये प्रस्ताव भारत को स्वतत्रता प्रदान करने तथा भारतीय जनता को अपना सविधान स्वय बनाने का अधिकार देन के वादे को पूरा करते है। टोरी पार्टी के दक्षिणपथी खेमे के एक वग ने जिसका प्रतिनिधित्व चर्चिल करत थे, अपनी आलोचना म इस आम दष्टिकोण पर ही जोर दिया क्याकि यह आलोचना भी उसी धारणा पर आधारित थी कि इस योजना मे भारत का आजादी दने की बात निहित है।

इस मिशन के प्रति भारत मे जो टिप्पणिया हुई उनका दृष्टिकोण और भी विविधता लिए हुए था। गाधी ने शुरू से अत तक बातचीत के दौरान इस कैबिनेट मिशन के और अगरेज सरकार के सद्भाव और ईमानदारी की प्रशसा करने मे बेहद चुस्ती दिखाई थी ('वे हम धोखा नही देगे'—ये ये गाधी के शब्द जिनसे पता चलता है कि विद्रोह के लिए उठ खडे देश के नेता का दमनकारियो के प्रति क्या रवैया था) उन्होने इस योजना का स्वागत किया और कहा 'इसम ऐसे बीज है जो इस दुखददभरी धरती को एक ऐसी धरती म बदल देंगे जहा न दुख होगा और न यातना होगी।' काग्रेस के अधिकाश प्रमुख नेताओं की टिप्पणिया समथन और आलोचना का मिलाजुला रूप थी। मुस्लिम लीग ने तब तक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करन म बहुत सतकता बरती और एक अनिश्चित रुख दिखलाया जब तक जिन्ना ने एलान नही कर दिया कि इस योजना ने 'पाकिस्तान के लिए बुनियाद और आधार प्रदान किया है।' वामपथी काग्रेस के लागा की राय खुलेआम विरोधात्मक थी। फ्री प्रेस जनरल ने इस योजना की भत्सना करत हुए इसे 'भारत के भविष्य को बिगाडने के लिए ब्रिटेन द्वारा प्रस्तुत योजना' बताया है। कम्युनिस्ट नता पी०सी० जोशी ने इस योजना की निंदा करते हुए कहा 'भारत को अपने उपनिवेशवाद का सबसे बडा आधार बनाए रखने के लिए ब्रिटेन की यह एक साम्राज्यवादी चाल है।' और इसके जरिए ब्रिटन स्वाधीनता का कानून पारित होने से रोक रहा है ताकि भारत की जनता हमेशा आपस म लडती रहे।'

योजना की घोषणा क बाद लबी बातचीत का दौर चला। 27 मई को काग्रेस कायसमिति न अपने रुख के बारे म एक अनतिम बयान जारी किया। काग्रेस के प्रस्ताव ने अतिम फैसले को रोक लिया लेकिन काग्रेस की नीति और योजना म अनक विरोधी बातें दिखाई दी जो खासतौर से अतरिम सरकार की अवधि म सैनिक कब्जा बनाए रखन (आजादी न देने की स्थिति म विदेशी आधिपत्य सेना की मौजूदगी बराबर बनी रहेगी') सविधान सभा म यूरोपीया का प्रतिनिधित्व होने, प्रातो का अनिवाय वर्गीकरण करके प्रातीय

स्वायत्तता का उल्लघन करने, रियासतो मे जनतत्र की कोई गुजाइश न होने तथा प्रस्तावित अतरिम सरकार के अधिकारो के सीमित होने के सदर्भ मे थी।

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी आधिकारिक समाचारपत्रक ने 1 जून को अपनी आलोचना विस्तार से प्रकाशित की और कहा कि इस योजना के जरिए

> मार्च 1942 मे ही सवश्री चर्चिल और एमेरी ने जो कुछ देन की इच्छा जाहिर की थी उससे बेहतर चीज हम नही पा सके।
>
> जिस आजादी का वादा किया गया है, उसके चारो तरफ पाबदियो का ऐसा घेरा डाल रखा गया है कि इसे आजादी नाम देना ही गलत है। तथाकथित सविधानसभा यथार्थ मे कोई प्रभुसत्तासपन्न सस्था नही होगी बल्कि वह इसका दिखावा भर होगी। सघ और प्रात दोनो, प्रातो के कुछ मनमाने वर्गीकरण की दया पर निर्भर रहेगे। साम्प्रदायिक आधार पर विभाजित भारत मे सभव लगभग सभी दोष इस योजना मे हैं। पाकिस्तान के निर्माण की क्षतिपूर्ति के रूप मे प्रातीय इकाइयो को जो एकरूपता और सप्रभुता प्राप्त हो सकती थी उसकी भी कोई सभावना इसमे नही है।
>
> मुद्रा, बैंकिंग चुगी और योजना पर नियत्रण न होने की वजह से केद्र सरकार इतनी कमजोर होगी कि वह आधुनिक औद्योगिक परिस्थितियो मे देश की आर्थिक प्रगति का दिशा निर्देश नही कर सकेगी ।
>
> राष्ट्रीय हित साप्रदायिक ही नही बल्कि उससे भी ज्यादा सामती हितो के मातहत हो गए है। केंद्र के साथ भविष्य मे रियासतो के क्या सबध होगे इसका फैसला राजा साहब करेंगे न कि उनकी जनता
>
> यह योजना न तो आसान है और न आसानी से कार्यान्वित करने योग्य है।
>
> प्रभुसत्ता को इतने बढिया ढग से सघीय केंद्र उपसघीय समूहो, प्रातीय यूनिटो और राजाओ के बीच बाट रखा गया है (शाही सरकार की तो बात ही दूर जिसके आदेश सविधान बनने के बाद भी सर्वोपरि होग) कि इसकी तलाश हमेशा एक समस्या बनी रहेगी
>
> प्रतिबधो, शर्तो, सुरक्षा उपायो और एक के विरुद्ध दूसरे हितो के सतुलन के इस जगल मे एक मुक्त और स्वाधीन भारत की तस्वीर साफ साफ देख पाना बहुत कठिन है।

अभी तक साम्प्रदायिक और सामती हित, भारत म ब्रिटिश साम्राज्यवादी दल का मुख्य सहारा रहे हैं। उन्हे तथाकथित स्वतंत्र भारत म एक स्थाई और प्रभावकारी विशिष्टताओं के रूप म बनाए रखने की कोशिश से यह संदेह पैदा होता है कि ब्रिटिश सरकार अपने पूर्ववर्ती शासकों की परंपरागत नीति त्यागने म असमर्थ है।

24 मई के कांग्रेस प्रस्ताव के जवाब म कैबिनेट मिशन ने 25 मई को एक और वक्तव्य जारी किया तथा सफाई पेश की। इस वक्तव्य म अन्य मुद्दों के अलावा यह स्पष्ट किया गया था

1 यह योजना अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत है' अर्थात् इस पूरी तरह स्वीकार या अस्वीकार किया जाए।
2 प्रांतों को तब तक अपनी पसंद के अनुसार समूहों के चुनाव का अधिकार नहीं हो सकता जब तक एक संविधान की स्थापना न कर दी गई हो, उसे अमल म न लाया गया हो तथा चुनाव न हो गए हों।
3 भविष्य म भारत को प्रभुसत्ता दो शर्तों के अधीन दी जाएगी
   (क) 'अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था'
   (ख) 'ब्रिटिश सरकार के साथ एक संधि करने पर सहमति जिसके अंतर्गत सत्ता हस्तांतरण से उत्पन्न सभी मसले आ जाएं।'
4 संविधानसभा म रियासतों के प्रतिनिधित्व के मसले को उनकी सलाह के जरिए ही हल किया जा सकता है और 'यह ऐसा मामला नहीं है जिसपर शिष्टमंडल कोई फैसला ले।'
5 अंतरिम सरकार की अवधि म वर्तमान संविधान जारी रहना चाहिए और इसीलिए अंतरिम सरकार कानूनी तौर पर केंद्रीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं होगी।
6 अंतरिम सरकार की अवधि म सैनिक कब्जा जारी रहना चाहिए। इस अवधि म ब्रिटिश संसद पर वर्तमान संविधान के अंतर्गत, भारत की सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी है और इसलिए यह जरूरी है कि ब्रिटिश सैनिक यहां बने रहें।

संविधानसभा के चुनावों के लिए बाद म जो तैयारियां की गईं उनसे पता चला कि संविधानसभा के सदस्यों को पहले से ही सांविधानिक योजना को स्वीकार और कार्यान्वित करने का संकल्प करना जरूरी था।

योजना के निहितार्थों से इसके वास्तविक चरित्र का और भी स्पष्टता से पता चला कि यह एक थोपा हुआ फैसला है और कांग्रेस तथा वामपंथी राष्ट्रीय विचारधारा के उल्लेखनीय हिस्सों म इस योजना के प्रति जबरदस्त विरोध की भावना पैदा हुई।

6 जून को मुस्लिम लीग ने अपना यह कथन दुहराते हुए कि 'पूर्ण प्रभुसत्तासंपन्न पाकिस्तान की स्थापना ही अब भी भारत के मुसलमानों का अटल उद्देश्य है', यह एलान किया कि जब तक इस योजना में पाकिस्तान की बुनियाद और इसका आधार निहित है, मुस्लिम लीग दीर्घकालिक और अंतरिम दोनों प्रस्तावों को पूरी तरह स्वीकार करती है।

अंतरिम सरकार के संविधान के लिए बातचीत शुरू हो गई और इसके लिए अल्पसंख्यकों के मुख्य प्रतिनिधियों के रूप में कांग्रेस और लीग के मिलेजुले प्रतिनिधित्व को आधार बनाया गया। इन समझौता वार्ताओं से वे संघर्ष और मतभेद तत्क्षण सामने आ गए जो व्यवहार में योजना के कार्यान्वयन के लिए हर कदम पर निरंतर थे। अंतरिम सरकार के संघटन के बारे में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच कोई समझौता नहीं हो सका। समझौता होने की स्थिति में ब्रिटिश शासकों ने एक बार फिर वचन भंग किया और 16 जून के निर्णय की घोषणा की। अंतरिम सरकार के प्रस्तावित संघटन की घोषणा कांग्रेस के 5 प्रतिनिधियों (सभी हिंदू और कोई भी मुसलमान कांग्रेसी नहीं), मुस्लिम लीग के 5 प्रतिनिधियों तथा अल्पसंख्यकों के 4 प्रतिनिधियों (सिख, ईसाई, हरिजन और पारसी। साथ में कांग्रेस का एक अतिरिक्त चूंकि हरिजन एक कांग्रेसी हरिजन है इस प्रकार कांग्रेस को 6 सीटें देकर) के आधार पर की गई थी। यह स्पष्ट कर दिया गया था कि सरकार में शामिल होने का 'आधार यह होगा कि संविधान बनाने का काम 15 मई के बयान के अनुसार होगा।'

अंतरिम सरकार के इस प्रस्तावित संघटन का काफी विरोध हुआ, खासतौर से मुसलमान कांग्रेसी को अलग रखने के संदर्भ में जिसके कारण कांग्रेस एक हिंदू संस्था बनकर रह जाती थी। 24 जून को कांग्रेस ने अंतरिम सरकार की योजना को नामंजूर करने की घोषणा की लेकिन इसका अनुसरण उसने संविधान सभा में भाग लेना स्वीकार करके किया। कांग्रेस कार्यसमिति के 26 जून के प्रस्ताव में कैबिनेट मिशन की खामियों पर जोर दिया गया था 'फौरन आजादी' और सामाजिक प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने की कांग्रेस की नीति को दुहराया गया तथा एलान किया गया कि इस योजना में इन लक्ष्यों का अभाव है। कांग्रेस के प्रस्ताव में योजना को स्वीकार करने की घोषणा नहीं की गई बल्कि एक 'स्वतंत्र संयुक्त और जनतांत्रिक भारत का संविधान बनाने के उद्देश्य से' प्रस्तावित संविधानसभा में शामिल होने का फैसला लिया गया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वे इसमें अपनी व्याख्या और कानूनी सलाह के साथ शामिल होंगे तथा वे प्रांतों का अनिवार्य वर्गीकरण नहीं स्वीकार करेंगे।

इस घोषणा के बाद कैबिनेट मिशन और वायसराय ने एलान किया कि अस्थाई राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के सिलसिले में जब तक आगे बातचीत नहीं होती है, अधिकारियों की एक अंतरिम प्रभारी सरकार बना ली जाए।

29 जून का कैबिनट मिशन भारत स रवाना हो गया।

दुनिया के सामने 1946 की नई सावधानिक योजना को भारत की आजादी की योजना के रूप म पेश किया गया था। तो भी इसकी धाराओ की जाच-पडताल करें तो यही निष्कष निकलेगा कि वस्तुत 1942 की क्रिप्स योजना को ही दुहराया गया था और भारत को आजादी देने से या जनतात्रिक ढग से चुने गए जनप्रतिनिधियो को अपना भविष्य स्वय निर्धारित करने के अधिकार से उसका कोई सबध न था।

यह योजना निस्सदेह ब्रिटिश नीति को भारत की नई स्थिति के अनुरूप ढालने की निपुण कोशिश थी। मुख्य प्रस्तावो का उद्देश्य उस गतिरोध को तोडना था जिसन पूववर्ती वर्षो मे भारत म किसी तरह के सावधानिक विकास को रोक रखा था हालाकि इस व्यवस्था का स्वरूप भी वैसा ही था जिसम आने वाले दिनो मे अनक नए गतिरोधो की सभावना शामिल थी। इसने काग्रस और मुस्लिम लीग द्वारा मिलने वाले सभावित समथन और सहयोग के लिए आधार प्रस्तुत किया। इसने भावी स्वतत्रता का एक काल्पनिक प्रस्ताव सामने रखा। इसने मुख्य पार्टियो पर आधारित अतरिम सरकार के गठन का प्रस्ताव किया। ये प्रस्ताव 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव, 1940 के अगस्त प्रस्ताव और 1935 के सघीय सविधान से सबधित प्रस्ताव की नीतियो की तुलना म बहुत थोडा आगे थे। लेकिन इस योजना की सीमाए काफी स्पष्ट थी।

पहली बात तो यह है कि डोमीनियन का दरजा और आजादी के प्रस्तावो म से कोई एक चुनने की बात थी जो भारत की आजादी की तात्कालिक घोषणा से काफी अलग थी। देश के सभी राजनीतिक सगठन बिना किसी अपवाद के यह माग कर रहे थ कि आजादी की फौरन घोषणा की जाए। दरअस्ल आजादी से सबधित मसले को एक ऐसी अप्रतिनिधि सस्था के ऊपर फँसने के लिए छोड दिया गया था जिसका गठन और जिसकी कायपद्धति का निर्धारण ब्रिटेन के निणय द्वारा हुआ था और जिसका रुझान हमेशा प्रतिक्रियावादी दिशा की ओर रहता था।

दूसरी बात यह है कि सविधान के जनतात्रिक चयन के लिए किसी अनिवाय आधार की बात नामजूर की गई थी अर्थात व्यापक मताधिकार पर आधारित जनतात्रिक सविधान सभा के चुनाव को महज इस आधार पर अस्वीकार कर किया गया कि यह काम जल्दी होना है। सविधानसभा का गठन अजनतात्रिक था क्योकि इसस साप्रदायिक भेदभाव बढा था इसका गठन विधानसभाओ के अप्रत्यक्ष निर्वाचन स हुआ था और यह निर्वाचन जिस निर्वाचनमडल पर आधारित था वह आबादी के महज 11 प्रतिशत लोगो को लेकर बना था। इन सारी बातो के अलावा दस मविधानसभा म राजाओ के 93 नामजद सदस्य थे जो कुल सदस्यो का एक चौथाई हिस्सा था।

तीसरी बात यह है कि राजाओं के क्षेत्र में जनतंत्र के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी और भारत का एक तिहाई हिस्सा इन राजाओं के अधिकार में था। राजाओं के साथ प्रबंध की जिम्मेदारी पूरी तरह स्वच्छिक बातचीत पर छोड दी गई थी। इनमें वे मामले भी शामिल थे जिनका संबंध संविधानसभा में उनके प्रतिनिधित्व से था। इन रियासतों पर बिलकुल हाथ नहीं लगाया गया था। इतना ही नहीं ब्रिटेन की सर्वोच्चता समाप्त होने तक यदि बीच के समय में राजाओं की सहमति से कोई समझौता नहीं हो पाता तो वे वैधानिक और राजनयिक रूप से स्वतंत्र प्रभुसत्तासंपन्न प्रदेश बन जाते।

चौथी बात यह है कि इस योजना ने भारत को चार क्षेत्रों में बाट दिया, एक हिंदूबहुल क्षेत्र दो मुस्लिमबहुल क्षेत्र और चौथा राजाओं की रियासतोंवाला क्षेत्र। इस बटवारे के बारे में एकदम एकतरफा निर्णय लिया गया और इन इलाकों में रहने वाले लोगों से सलाह-मशविरा करने की कोई व्यवस्था नहीं की गई। इस बटवारे का आत्मनिर्णय के किसी सिद्धांत से कोई संबंध नहीं था।

पाचवी बात यह है कि इस बटवारे के आधार पर केंद्र की स्थिति बहुत कमजोर हो जाती थी और उसके अधिकार बहुत सीमित हो जाते थे। विशेष रूप से इस व्यवस्था के अंतर्गत समूचे भारत के आधार पर आर्थिक योजना तैयार करने या सामाजिक कायदे कानून निर्धारित करने के लिए कोई अधिकार नहीं बच रहता था। किसी समाज के प्रगतिशील जनतांत्रिक विकास के लिए तथा व्यापक आर्थिक पुनर्निर्माण और सामाजिक स्तर के उत्थान के लिए ये चीजें बहुत जरूरी है।

छठी बात यह है कि इस अंतरिम अवधि के दौरान सत्ता के हस्तातरण का कोई प्रस्ताव नहीं था, पुराने संविधान को जारी रखने की व्यवस्था की गई थी और अंतरिम सरकार वायसराय की परिषद का महज एक पुनर्गठित स्वरूप थी जिसके पास आवश्यकता पड़ने पर वीटो का अधिकार था और सर्वोच्च सत्ता थी।

सातवी बात यह है कि इस अनिश्चित अंतरिम अवधि के दौरान ब्रिटिश सेना का अधिकार बनाए रखने की बात कही गई थी ताकि नए संविधान के निर्माण का काम सेना की देख-रेख में हो सके।

आठवी बात यह है कि संविधानसभा को प्रभुसत्ता संपन्न नहीं माना गया था। इसके द्वारा तैयार किया गया नया संविधान तब तक मान्य नहीं होगा जब तक उसे ब्रिटेन की स्वीकृति न मिल जाए और ब्रिटेन की यह स्वीकृति दो शर्तों के पूरी होने पर निर्भर करती थी, अंगरेज शासकों का इस बात के प्रति संतुष्ट हो जाना कि अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए तथा भारत और ब्रिटेन के बीच होने वाली संधि को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त

व्यवस्था की गई है। किसी भी तरह की प्रभुसत्ता प्रदान करने से पूर्व इन दोनों शर्तों का पूरा होना जरूरी है।

यह योजना निश्चित रूप से एक ऐसे प्रयास की जानकारी देती है जो भारत म उच्चवर्ग के नतृत्व के साथ तालमेल बैठाने का आधार ढूढ रहा हो। सांविधानिक समझौता के साथ साथ इस बात के लिए पूरे प्रयास किए जा रहे थे कि ब्रिटेन और भारत के बडे पूजीपतियों के बीच घनिष्ठ सबध कायम कराया जा सके (बिडला न्यूफील्ड और टाटा-आई० सी० आई० समझौता आदि) जिसकी समीक्षा पहले ही छठे अध्याय म की जा चुकी है।

इन बडे पूजीपतियो के बीच गठबधन कायम करने की कोशिशें भारत की आतरिक स्थिति के सदर्भ म ही नहीं अतर्राष्ट्रीय स्थिति के सदर्भ मे भी काफी महत्वपूर्ण हैं। उच्चवर्ग के नतृत्व और जबरदस्त प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रतीक राजाओ को महत्व देकर तथा इनके साथ गठबधन के आधार पर भारत म किसी समझौते को बढावा देने के पीछे उद्देश्य यह था कि जनता की उभरती हुई ताकत को रोका जा सके और ब्रिटिश हितो की रक्षा की जा सके तथा इस प्रकार भारत की स्थिति को स्थिरता प्रदान करने के साथ साथ उसे एक ऐसे सैनिक अड्डे के रूप म बनाए रखा जा सके जो ब्रिटेन की अतर्राष्ट्रीय नीति के सदर्भ म भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सहयोगी बना दे। भारतीय नेताओ के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादी अपनी बातचीत चलाने के साथ साथ अतर्राष्ट्रीय नीति मे घोर प्रतिक्रियावादी जनतत्रविरोधी और सोवियतविरोधी रुख अपना रहे थे। इसे ध्यान म रखकर विचार करें तो ब्रिटिश नीति का यह पहलू और भी गभीर प्रतीत होगा। जिन दिनो बातचीत चल रही थी, भारत मे सोवियतविरोधी दुष्प्रचार बडे जोर शोर से चलाया जा रहा था। आजादी की बातचीत के साथ साथ सैनिक और सामरिक तैयारियां भी काफी जबरदस्त ढग से की जा रही थीं।

केंद्रीय विधानसभा म एक प्रश्न के दौरान जब यह माग की गई कि दस वर्षों के अदर भारतीय सेना का भारतीयकरण हो जाना चाहिए तो इसके जवाब मे सेना के कमाडर इन चीफ ने कहा कि इस काम के लिए कोई समय नहीं निर्धारित किया जा सकता और भारतीयकरण के काम म बीस या इससे भी अधिक वर्ष लग सकते है। कैबिनेट मिशन द्वारा नीति सबधी वक्तव्य जारी करने के फौरन बाद फील्ड मार्शल माटगोमरी रणनीति से सबधित विशेष मसलो पर विचार विमर्श के लिए भारत रवाना हुए। जाहिर है कि कैबिनेट मिशन की योजना के साथ साथ नीति से सबधित यह पहलू भावी भारत के लिए बहुत गभीर परिणामो को अपने अदर समेटे हुए था हालांकि उन दिनो इन बातो पर जनता ने कम ध्यान दिया था।

इन बातो के सामान्य निष्कर्ष अपरिहार्य है। 1946 की सांविधानिक योजना म भारतीय राजनीतिक जीवन के विभिन्न तत्वों को व्यापक रूप से सतुलित रखने का वही पुराना

तरीका अख्तियार किया गया था। इसमे खासतौर से एक ऐसी राजनीतिक स्थिति के निर्माण की कोशिश थी जो साम्प्रदायिक द्वेष पर आधारित हो। इसमे मुस्लिम लीग के मुकाबले काग्रेस को सतुलित रखने की कोशिश की गई थी और राजाओ को एक ऐसी प्रतिक्रियावादी धुरी के रूप मे स्थापित किया गया था जो व्यवहार मे भारत को आजादी देने के तथाकथित प्रस्ताव को व्यर्थ कर दे और अतिम तथा कारगर नियत्रण उनके हाथो मे बना रहने दे। नाजुक और अनिश्चित अतरिम अवधि मे ब्रिटेन का नियत्रण बने रहने की व्यवस्था थी और इस बात की भी व्यवस्था थी कि वह भावी सविधान के समूचे स्वरूप को अपने अनुसार ढाल सके। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अभी तक भारतीय जनता के हक मे सत्तात्याग नही किया था और भारत की जनता को सत्ता नही सौंपी थी। इसके बजाय उसने अपनी सारी चतुराई और सदियो पुराने राजनीतिक अनुभव का पूरा पूरा इस्तेमाल इस काम के लिए किया कि वह एक ऐसे व्यापक जटिल और दुरूह शासनतत्र की स्थापना कर सके जिसके जरिए भारत को विधिवत 'आजादी' देने का नाटक रचने के साथ साथ वहा के आर्थिक तथा सैनिक क्षेत्र मे अपना प्रभुत्व बनाए रखा जा सके। कैबिनेट मिशन की घोषणा के बाद समझौता वार्ताओ का लबा सिलसिला 1946 की गरमियो तक चला और इस समय तक भारतीय जनमत बडी तजी से यह समझ चुका था कि अतिम तौर पर भारत की आजादी के लिए अभी आने वाले दिनो मे सघर्ष चलाने होगे।

खण्ड छ

निष्कर्ष

18
भविष्य

> किसी भी व्यक्ति को इस बात का अधिकार नही है कि वह राष्ट्र की प्रगति की कोई सीमा निर्धारित करे। किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नही है कि वह अपन देश से कह वस इस सीमा तक वढा, इससे आग नही—पारनेल

एक शताब्दी पूव मकाले ने भारत मे ब्रिटिश शासन के वारे म कहा था कि वह एक 'महान और अति विशाल काम' म लगा है और यह काम है 'एक सडे-गल समाज के पुनर्निर्माण का काम'। मैंकाले ने बीत दिनो के भारत का महज एक ऐसे 'अरक्षित' साम्राज्य के रूप म देखा था जिसपर तजी से एक के वाद एक अलारिक्स और अट्टिलास का राज्यारोहण' होता गया था लकिन अपने जमान के आत्मतुष्ट आशावाद के कारण वह यह जान ही नही पाए कि उन दिना भारत म ब्रिटिश शासन अलारिक्स और अट्टिलास की तुलना मे कही अधिक तजी से प्राचीन भारतीय समाज को सडाने म लगा था, वह कही अधिक ताकत से सदियो स चली आ रही भारतीय जीवन-पद्धति का और भारतीयो के समूचे पुराने आधार को नप्ट करन म लगा था।[1]

आज यह तस्वीर उलटी हा गई है। आज खुद साम्राज्यवाद ही सडान की स्थिति मे आ चुका है और फासिज्म के हाल के अनुभव ने एक एसे सडे गले समाज' के चमत्कारिक दृश्य को वहुत साफ साफ दिखा दिया है जो यूरोपीय सस्कृति को पैरो तले रादत हुए 'अलारिक्स' और 'अट्टिलास' के तीव्र राज्यारोहण के दु स्वप्न स सत्रस्त ह।[2] साम्राज्यवाद, फासीवाद और प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध मुक्ति की दिशा म विश्व की जनता काफी प्रगति कर चुकी

है और इस विकास यात्रा म शामिल होकर अपना उचित स्थान प्राप्त करन के लिए भारतीय जनता तेजी से आगे आ रही है।

1 ब्रिटिश शासन के अतिम दिन

भारत पर स्थाई तौर पर तानाशाही हुकूमत वनाए रखने के पुराने मसूवे अब धूल म मिल चुके है। मौजूदा हालात म साम्राज्यवाद अधिक से अधिक यही उम्मीद कर सकता है कि वह नए राजनीतिक ढाचा की आड म अपने को इस तरह ढाल ले कि साम्राज्यवादी विशेषाधिकारो और शोषण का जारी रखा जा सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति क लिए पिछल पचास वर्षों मे साविधानिक सुधारा की भरमार के साथ साथ लगातार और कभी कभी बहुत तीव्र दमनचक्र चलाया गया। यहा तक कि 1946 मे 'आजादी' दन के विधिवत प्रस्ताव के जरिए जब इस नाटक की चरम परिणति हुई तब भी साम्राज्यवादी शासन भारत मे समाप्त नही हुआ यह नए राजनीतिक ढाचे के अनुरूप साविधानिक तौर पर अपना रूपातर करने की तमाम कोशिशा की अतिम कडी साबित हुआ। वे दिन अब बीत गए जब कट्टर दक्षिणपथी तत्व भारतीय समस्या के सहज समाधान के लिए सख्त कदम उठाने' की दुहाइ देते थे। वे आज उन बीत हुए सुखद दिनो' की याद म आह भर रहे हैं और उन दिनो के लौट आने के लिए तरस रह है जब इन काले कलूटो को (लाड सालसबरी न ब्रिटिश ससद के पहले भारतीय सदस्य को यही कहा था) बता दिया गया था कि उनकी औकात क्या है, और अब वे अपने खोए हुए अधिराज्य' की याद म भावुकतापूण शाकगीत लिखन म लगे हुए है। व आज भी यही सोचते होग कि पश्चिम की असगत सस्थाओ को शाश्वत पूव की कृतघ्न धरती म स्थानातरित करने क लिए सचेष्ट ससदीय राजनीतिज्ञो को सुधारने के जोश के कारण ही हम भारतीय प्रदेश' से हाथ धो बैठे (मेरा ख्याल है कि ड्यूक आफ वेलिंगटन ने एक बार कहा था यदि भारत कभी हमारे हाथ से गया तो इसकी जिम्मेदारी पार्लियामट पर होगी जिसकी वजह स भारत का खोएगे' लाड क्रोमर, एशेंट ऐंड माडन इपीरियलिज्म पृष्ठ 126)। लेकिन 19वी सदी के प्रभुत्व को फिर से स्थापित करने के लिए एक सरलीकृत समाधान क रूप मे जिस जबरदस्त दमन का सहारा लिया गया वह ब्रिटिश फासीवाद क शैशवकाल वाले इस आधुनिक युग म एक कायक्रम के रूप में खुलकर सामने आ सका।[3]

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञो न बहुत पहल ही यह समझ लिया था कि महज दमन का तरीका इस्तेमाल करना ही पर्याप्त नही होगा, इसके साथ साथ राजनीतिक दावपेच के अधिकाधिक नए तरीका की भी जरूरत है।

राष्ट्रीय विद्रोह के खिलाफ एक परकोटा तैयार करने की झूठी आशा के साथ भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना की प्रेरणा उग्र सुधारवादी लाड रिपन ने नही बल्कि लिबरल यूनियनिस्ट और अनुभवी पेशेवर कूटनीतिज्ञ लाड डफरिन ने दी थी। उग्र सुधारवादी लाड मार्ले न नही बल्कि टोरी पार्टी के लाड मिटो ने राष्ट्रीय आदालन की सचाइया का

मौके पर सामना किया था और 1909 के सुधारो के साथ मोर्ले की तुलना म वामपथ से और भी दूर जाने की कोशिश की और ब्रिटेन की लिबरल सरकार ने इसे स्वीकार करने की तत्परता दिखाई। लिबरल नेता माटेंगु ने नही बल्कि उग्र कजरवेटिव नेता कर्जन तथा आस्टिन चबरलेन ने 1917 म जिम्मेदार सरकार की स्थापना के वादे वाली सरकारी घोषणा तैयार की ताकि रूसी क्राति के बाद आई क्रातिकारी लहर की चुनौतिया का मुकाबला किया जा सके। यह ठीक वैसे ही था जैसे मिलनर किंडरगार्टेन के 'गोलमेज ग्रुप' के शिष्यो ने अमल म लाने के लिए बडी खूबी के साथ 'द्विशासन' की अव्यवहार्य योजना तैयार की। 1935 के भारत सरकार अधिनियम को और सघीय सविधान को बाल्डविन की कजरवेटिव सरकार न सविस्तार प्रतिपादित किया था न कि दोना म से किसी एक लेबर सरकार ने।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग म शुरू से अत तक कजरवेटिव पार्टी की प्रेरणा और दिशा-निर्देशन म भारत म 'सावैधानिक सुधार' के जितने भी कदम उठाए गए उनके पीछे कोइ यह मोह नही था कि सचमुच ही सुधार किया जाए बल्कि इन सारे कदमो के पीछे राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की बाढ को रोकने के लिए एक बाध तैयार करने की हताशापूर्ण कोशिश थी। और यह भी कहा जा सकता है कि लेबर सरकार के 1946 के सावैधानिक प्रस्तावो के जरिए भी 1942 की उस योजना म निहित आम नीतिया को ही आगे बढाया गया जिसे विदेशमत्री एमेरी और टोरी बहुमतवाले मत्रिमडल के तहत तैयार किया गया था।

राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की बाढ को रोकने के लिए एक के बाद एक बाध बनाकर और अस्थाई समझौतेवाले समाधानो तथा सक्रमणकालीन अवस्थाओ के लबे सिलसिले के जरिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नेताओ ने अपना पृष्ठरक्षक युद्ध जीतने की आशा की है। उन्होने नए राजनीतिक ढाचे के अनुरूप अपने को ढालने की प्रक्रिया पर अमल करने की जी जान से कोशिश की है। इसके ही जरिए वे भारत का शोषण करके अपने आर्थिक और वित्तीय हितो को और भारत पर अपने सैनिक प्रभुत्व को लबी अवधि तक बनाए रखने की आज भी कोशिश कर रहे हैं। वे जनता को व्यवस्था के तहत रखने और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ सहयोग का आधार बनाए रखने का काम धीरे-धीरे भारतीयो के हाथो म सौंपते जा रहे है।

लेकिन क्या वे इसम सफल हो सकते है ?

यदि यह मान लिया जाए कि समस्या का अब वस्तुत समाधान हो गया है और भारत म साम्राज्यवादी शासन की शर्तें निर्धारित हो चुकी हैं तो यह एक बहुत बडी भूल होगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अतिकुशल कूटनीतिज्ञो ने आजकल इस तरह के वक्तव्य देने शुरू कर दिए हैं कि भारत से अगरेज अब जा रहे है ब्रिटिश साम्राज्यवाद न बिना सघर्ष के

अपना प्रभुत्व समाप्त कर दिया और वह भारत म हाराकिरी करने को तत्पर है। लकिन इन वक्तव्यो के फलस्वरूप जो भ्रम पैदा होगा उससे वडा भ्रम कोई नही हो सकता।

ब्रिटिश बुर्जुआ हितो के लिए भारत पर ब्रिटन का प्रभुत्व बना रहना कितना आवश्यक है इसे काफी पहले ही माना जा चुका है। साम्राज्यवाद के पतन के युग म जब विश्व बाजार म ब्रिटेन का एकाधिकार लडखडा रहा था और ब्रिटिश उद्योगधधो की पकड कमजोर पड रही थी, जब अगरेजो के डोमीनियनो की आर्थिक और राजनीतिक स्वाधीनता बढ रही थी, ब्रिटेन के सत्ताधारी वग के लिए भारत पर एकाधिकारी प्रभुत्व को और उपनिवेशवादी शासन का न केवल बनाए रखना ही बल्कि इसका और अधिक विस्तार करना ज्यादा जरूरी हो गया। चर्चिल ने 19,3 म इस बात को बडे जारदार शब्दो म कहा था। इन सारे वर्षों म चर्चिल भारत मे ब्रिटेन के साम्राज्यवादी हितो के सबस उग्र और हठधर्मी प्रवक्ता थ

> ब्रिटन के लोगो की खुशहाली के लिए भारत का बहुत महत्व है और जब मैं यह देखता हू कि वे शक्तिया जिनपर हमारे देश की जनता काफी हद तक निभर करती है धीरे धीरे समाप्त हो रही है तो मुझे बहुत चिंता होती है। विदेशी पूजी-निवश म धीरे धीरे कमी आती जा रही है और नौपरिवहन की स्थिति म भी काफी गिरावट आ गई है। इन नुकसानो के साथ यदि हम किसी न किसी रूप म भारत का खो देते ह तो यहा ऐसी समस्याए पैदा हो जाएगी जैसी पहले कभी देखने म नही आइ। फिर यहा अतिरिक्त आबादी का ऐसा बोझ बढ सकता है जिसका भरण-पोषण करना सरकार के लिए काफी कठिन हो सकता है।
> (विंस्टन चर्चिल का एपिंग म भाषण, 8 जुलाई 1933)

भारत म साम्राज्यवादी हितो का निममतापूवक दावा करने वाली यह पुरातन विचार-धारा सुधारो और रियायतो के दौर मे निरतर जारी रही। उन बलौस और सुपरिचित घोषणाओ का उल्लेख करने की जरूरत नही है जैसी अमृतसर काड के समय पजाब क लेफ्टीनेंट गवनर सर माइकेल ओ डायर न की थी, उन्होने उस कतव्य की दुहाई दी थी जो 'ब्रिटिश साम्राज्य, भारत म रहन वाल अगरेज भाई बधुओ और भारत म लगी हजारो लाखो की ब्रिटिश पूजी के प्रति' है (सोसायटी आफ आथस म भाषण जिसे लाड ओलिवर ने 12 माच 1925 के 'मैनचेस्टर गार्जियन' मे उद्धृत किया था) या जो लाड रोथरमीयर ने 16 मई 1930 के 'डेली मेल' म की थी कि अनेक अधिकारियो का अनुमान है कि ब्रिटन का महत्वपूण व्यापार, बैंकिंग और नौपरिवहन व्यवस्था का जो अश प्रत्यक्षत भारत के साथ हमारे सबधो पर निभर है वह 20 प्रतिशत है भारत ब्रिटिश साम्राज्य का ठोस आधार है। यदि हम भारत का खो देते ह तो यह निश्चित है कि ब्रिटिश साम्राज्य ध्वस्त हो जाएगा पहले आर्थिक रूप से फिर राजनीतिक रूप स।

तमाम कूटनीतिक भाषणा अनिश्चित और अस्पष्ट वादा तथा अनिच्छापूर्वक दी गई रियायतो के जरिए हम आज भी यह पता लगा सकते है कि भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व को बनाए रखने के पीछे मुख्य उद्देश्य क्या है और इसे हम हर निर्णायक वक्तव्य म देख सकते है। अगस्त 1922 म लायड जार्ज की 'स्टील फ्रेम स्पीच' का महत्व यही था कि 'ब्रिटेन किसी भी हालत म भारत के प्रति अपनी जिम्मेदारी नही त्यागेगा और वह ऐसा कोई दौर देख पाए जब भारत अपने को ब्रिटेन के दिशा-निर्देशन से अलग कर सके।' 1929 मे बर्केनहड की चेतावनी का यही महत्व था कि 'कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति किसी ऐसी तिथि का अनुमान नही लगा सकता जब हम भारत को डोमीनियन का दरजा प्राप्त करते देखे।' 1930 म चर्चिल ने जो चेतावनी दी थी उसका भी यही महत्व था कि 'ब्रिटेन का ऐसा कोई इरादा नही है कि वह भारतीय जनता के जीवन और प्रगति पर से अपना प्रभावकारी नियत्रण समाप्त कर दे।' 1935 के सविधान का उद्देश्य बताते हुए बाल्डविन ने जो व्याख्या प्रस्तुत की थी उसका भी यही महत्व था कि 'ग्रेट ब्रिटेन और भारत की एकता को मजबूत करने वाले बधनो को कमजोर बनाने पर विचार करना तो दूर की बात है, हम चाहते है कि अब यह एकता इतनी प्रगाढ हो जाए जितनी पहले कभी नही थी।'

इधर हाल के वर्षो म अब भाषा बदल गई है। सरकारी बयानो म अब भारत को डोमीनियन का दरजा देने की दिशा म उठाए जाने वाले कदमो की लबी सूची का जिक्र नही किया जाता। उल्टे सरकारी बयानो म अब यह कहा जाता है कि ब्रिटेन अब पूरी तरह भारत पर से अपना शासन समाप्त कर लेगा और भारत को 'पूरी आजादी' दे देगा। लेकिन पिछले अध्याय म हमने 1946 के सावैधानिक प्रस्तावो की जो जाच पडताल की है उससे यही पता चलता है कि इन प्रस्तावो को आजादी मान लेना असभव है।

हम देख रहे है कि साम्राज्यवादी शोषण की वास्तविकताए बरकरार है लेकिन अगरेजो ने 'आजादी' और 'साम्राज्यवाद की समाप्ति' की बाते खूब बढचढकर शुरू कर दी है। साम्राज्यवादी नीति और प्रचार ने इधर हाल मे जो पैतरा बदला है उससे हम क्या नतीजा निकाल सकते हैं ? इस सवाल का जवाब पाने के लिए हम आधुनिक साम्राज्यवाद के विकास पर विस्तार से विचार करना होगा तथा भारत पर नजर डालनी होगी। साम्राज्यवादियो ने इधर एकदम हाल के वर्षो म एक नई तकनीक का इस्तेमाल शुरू किया है और इसका दिनोदिन खूब प्रचार तथा इस्तेमाल किया है। इस तकनीक को 'औपचारिक आजादी' देने की तकनीक कहा जा सकता है। सिद्धात रूप म यह अपने आप मे कोई नई चीज नही है दरअस्ल यह प्रच्छन्न शासन के उस पुराने सिद्धात को ही जारी रखना है जो भारत म ब्रिटिश प्रभुत्व के प्रारभिक दिनो की खास बात थी, लेकिन आधुनिक युग म इसका और विस्तार किया गया है तथा इसे और परिष्कृत ढग से प्रतिपादित किया गया है ताकि राष्ट्रीय मुक्ति आदोलनो की बढती हुई ताकत का मुकाबला किया जा सके।

इस तकनीक का बडी खूबी के साथ 1922 म मिस्र के मामल म देखा गया। स्मरणीय है कि 28 फरवरी 1922 को प्रकाशित ब्रिटेन क एक नीति सबधी वक्तव्य के तहत मिस्र को आजादी दी गई थी। लेकिन इस घोषणा म कहा गया था कि कुछ विषयो पर तब तक ब्रिटेन की महामहिम सरकार को फैसला लेने का पूरा पूरा अधिकार होगा जब तक उन विषयो के विनियमन के लिए ब्रिटेन और मिस्र की सरकारो के बीच कोई सधि नही हो जाती। इन खास खास विषयो म निम्न बातें शामिल थी

1 मिस्र मे ब्रिटिश साम्राज्य की सचार व्यवस्था की सुरक्षा,
2 मिस्र की प्रतिरक्षा,
3 मिस्र म विदेशी हितो और अल्पसख्यको का सरक्षण,
4 सूडान,
5 अन्य देशो के साथ मिस्र के सबध।

इन शर्तो को मिस्र के राष्ट्रीय आदोलन न नामजूर कर दिया। फिर भी मिस्र को आजादी देने की घोषणा की गई, फुआद को राजा बनाया गया और एक उपयुक्त प्रधानमत्री का चयन किया गया। 1923 के अगस्त तक मिस्र म ब्रिटिश मार्शल ला लागू रहा। इस तरह मिस्र एक 'आजाद' देश बन गया।

मिस्र से ब्रिटिश सैनिको को हटाने का मसला 24 वष बाद तक भी तय नही हो सका था और 1946 म भी ब्रिटेन और मिस्र की सरकारो के बीच इस विषय पर बातचीत चल रही थी। तब से आज तक 'आजादी' देने की साम्राज्यवादियो की इस नई तकनीक को और भी विस्तार दिया गया है और लागू किया गया है। इसे हम ईराक तथा अन्य देशो के मामले म देख सकते है।

इस प्रकार भारत म इस तकनीक को इस्तेमाल करने स पहले इसे काफी अच्छी तरह आजमा लिया गया था। जाहिर है कि औपचारिक 'आजादी' देने की इस तकनीक का उस माग स कोई साम्य नही है जो भारतीय जनता आजादी के लिए कर रही है। साम्राज्यवाद ने अभी तक अपनी जकड ढीली नही की है। सघष अब भी जारी है।

लेकिन क्या साम्राज्यवादी शासक अपना प्रभुत्व बनाए रख सकते है ? यह अलग बात है। क्या वे उन उदीयमान युगातरकारी शक्तियो पर काबू पा सकते है जो भारत म तेजी से विकसित हो रही है ? क्या वे भारत के जबरदस्त मुक्ति आदोलन को रोकने के लिए नए स्वरूपो और सामाजिक आधार का सहारा प्राप्त कर सकते है ताकि साम्राज्यवादी शोषण को बनाए रखने के लिए वे परिवतन की इस प्रक्रिया को बाधकर रख सके ? इस सवाल के जवाब पर ही भारत म साम्राज्यवाद के भविष्य का सवाल टिका हुआ है न कि

चमचमाते सांविधानिक सुधारों पर जो कि अत्यंत जटिलतापूर्वक राजनीतिक अभियानों की एक सार्वजनिक सूची मात्र हैं।

दरअसल बात यह है कि पुराना भारत अब नष्ट हो चुका है और वह अब कभी अस्तित्व मे नही आएगा। पिछले डेढ़ सौ वर्षों मे पूंजीवाद की निर्मम घुसपैठ के कारण पुरानी समाजव्यवस्था की बुनियाद ध्वस्त हो चुकी है जिसकी वजह से परिवर्तन की सक्रिय शक्तियां गतिशील हो चुकी है और उन्होंने ऐसी प्रक्रिया की शुरुआत कर दी है जिसे अब रोका नही जा सकता। पुरानी बुनियादों के ध्वस्त होने के साथ ही अपेक्षाकृत धीरे धीरे, पर पूरी अनिवार्यता के साथ पुराने दृष्टिकोण और सामाजिक रूढ़िवादिता के विश्वास, पुराने सप्रदाय और पुराने अवरोध नष्ट होते जा रहे है।

जमशेदपुर के इस्पात कारखानों में या बंबई के शेयर बाजार मे जाति की क्या भूमिका है? अपनी जमीन से बेदखल किए गए ग्रामीण सर्वहारा की बढ़ती हुई तादाद मे (जो गांव की कुल आबादी के 1/3 से 1/2 भाग तक है) संयुक्त परिवार प्रणाली कौन सी भूमिका अदा कर सकती है? बुर्जुआ संपत्ति संबंधों का क्षयकारी तेजाब रीति रिवाजों और पद पर निर्मित सामाजिक संस्थाओं के तानेबाने को उतनी ही कठोरता से खाता जा रहा है जितनी कठोरता से ब्रिटेन या जापान में बने सस्ते मशीनी सामान लाखों हस्त-कर्मियों को मुसीबत मे डालते जा रहे है और उन्हें दाने दाने का मोहताज बना रहे हैं।

भारत आज भी कालदोषों की धरती है। यहां आज भी सामंती और अर्धसामंती अवशेष मौजूद हैं दुराचारी रजवाड़ों का अस्तित्व है, बेगार प्रथा कायम है, साहूकारों, तारघरों और वायरलेस के साथ साथ कृषिदास प्रथा भी जारी है पुरातन मंदिर है जिनमे अति-प्राचीन यज्ञीय अनुष्ठान हो रहे हैं और पास में ही आधुनिक गंदी बस्तियां हैं। आधार तो गायब हो चुका है पर इस आधार पर बने ऊपरी ढांचे का भूत अब भी छाया हुआ है। साम्राज्यवाद के मृत हाथ समूचे तानेबाने को एक स्थगित प्राणसंचारण और अवरुद्ध विकास की स्थिति में पकड़े हुए हैं और उनकी कोशिश महज यह है कि समाज की शक्तियों को भीतर से पुनर्जीवित किए बिना वे अपनी शोषण प्रणाली को ऊपर से थोप दें।

लेकिन 20वीं सदी के रूस के पुराने जारशाही दिनों की ही तरह यह केवल एक खोल है जो स्पर्श मात्र से टुकड़े टुकड़े हो सकता है। साम्राज्यवादी पतन के दिनों के पश्चिमी देशों के रोमानी बुद्धिजीवी, जिन्होंने आधुनिक सभ्यता के विकास से पैदा अपने दुखों से छुटकारा और शांति पाने की कोशिश में 'पुण्यदेश' रूस के घिनौने पिछड़ेपन को चिरंतन आध्यात्मिक मूल्यों का तीर्थस्थल माना और जनतंत्र तथा समाज की आधुनिक धाराओं से अछूते कल्पित विनीत तथा श्रद्धालु किसानों की भूमि माना, एक लाश की आराधना मे लगे थे और जीवन की प्रचुर शक्ति तथा उस वास्तविक जनता की चेतना के प्रति अंधे थे

जा उसकी मृगमरीचिका या धूल में मिला देने के लिए तैयार बैठी थी। इसी प्रकार आज पश्चिम देश का कोई ढोंगी यात्री, जो भारत में स्मरणातीत पूर्व के दर्शन करने जाता है, वह चाहे पूर्वदर्शीय उच्च आध्यात्मिक विचारों के कीचड़ भरे स्रोत से अपनी प्यास बुझा रहा हो या एक संरक्षक की तिरस्कार भरी मुद्रा में 'भारत माता' के पिछड़ेपन का भंडाफोड़ कर रहा हो वह महज मध्ययुगीन कबाड़े के संग्रहालय के दर्शन कर रहा है और भारतीय जनता की जीवंत शक्तियों की ओर से आंखें मूंदे हुए है।

भारतीय जनता की प्रगामी शक्तियां आज जिस संघर्ष का नेतृत्व कर रही हैं वह जात पात, निरक्षरता, अछूतों के अपमान साम्प्रदायिक भेदभाव, महिलाओं के गुलामी की जंजीर में जकड़े रहने तथा उन सभी चीजों के खिलाफ है जो जनता को पिछड़ेपन का शिकार बनाती हैं। जहां एक ओर पुराकालीन हिंदू सभ्यता और इसकी अपरिवर्तनशील विशिष्टताओं पर विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए जा रहे हैं वहीं निर्विवाद रूप से भारतीय जनता के बहुमत का समर्थन प्राप्त यहां के प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलन ने अपनी ध्वजा पर सार्वभौम समान नागरिकता का पूर्ण जनतांत्रिक कार्यक्रम अंकित कर दिया है। इस कार्यक्रम में जाति, धर्म या लिंग का कोई भेद नहीं बरता गया है सभी विशेषाधिकारों और पद्धतियों को समाप्त करने की बात है, व्यापक बालिग मताधिकार और निश्शुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की योजना है, धर्म के मामले में राज्य के तटस्थ रहने की घोषणा है तथा भाषण करने, समाचारपत्रों के प्रकाशन विचारों की अभिव्यक्ति, सभा करने तथा संगठन बनाने पर छूट है जो ब्रिटिश के अर्धजनतंत्र से काफी आगे है।

1936 के उत्तरार्ध में उदारवादी पत्र मैनचेस्टर गार्जियन ने 'दि फर्मेंट इन इंडिया' नामक लेख में मजबूरन यह स्वीकार किया कि भारत में क्रांति की झलक मिलनी शुरू हो गई है जो राजनीतिक राष्ट्रवाद की पुरातन विचारधारा के अनुयायियों द्वारा कल्पना की गई किसी भी बात से ज्यादा महत्वपूर्ण है

> युद्धविराम के अठारह वर्षों बाद हम महसूस करते हैं कि भारत अब फिर विश्व की शक्तियों से अप्रभावित अपनी उस पुरानी स्थिर संतुलन की स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता है ब्रिटिश राज के रूढ़िवाद ने अतिप्राचीन बुराइयों का अनुमोदन किया। प्रजातंत्र की नवपरिवर्तनशील चेतना, जो जनमत के लिए प्रतिद्वंद्विता करने वाले, मत शक्ति प्राप्त करने के लिए बलप्रयोग का सहारा लेने वाले राजनीतिक दलों के माध्यम से कार्य करती है, उन सभी प्राचीन विशेषाधिकारों (सुविधाओं) को समाप्त करने में सक्षम होती है जिनके पीछे तक शक्ति और साहस का अभाव होता है जाति के आधार पर विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को पीछे हटना ही पड़ा है और यह पीछे हटना घोर पराजय जैसा दिखता है यदि छुआछूत को समाप्त कर दिया जाए तो क्या जाति के आधार पर भेदभाव बना रह सकता है? इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदुओं की

> शांति न तो विद्यालयों में है और न मंदिरों में, यह घर के अंदर है। फिर भी महिलाओं को शिक्षा देकर आधुनिकता की भावना घर में पैदा करने की दिशा में सक्रियता बनी हुई है। जात पात का प्रमुख परकोटा है हिंदुओं का संयुक्त परिवार और महिलाओं को शिक्षा देकर तथा उन्हें यात्रा की और बाहरी दुनिया से संपर्क की सुविधा देकर इस परकोटे की जड़ खोदी जा रही है। ('मैनचेस्टर गार्जियन वीकली', 4 दिसंबर 1936)

इस प्रकार जातांत्रिक लहर की प्रगति राजनीतिक क्षेत्र से सामाजिक क्षेत्र में किसी भी अर्थ में कम नहीं है। जैसा कि उपर्युक्त लेख में ही स्वीकार किया गया है यह लहर निश्चित रूप से सफलतापूर्वक 'पूर्ण सामाजिक आर्थिक क्रांति' की जबरदस्त शक्तियों को इकट्ठा कर रही है ताकि उस बुनियादी समस्या का समाधान हो सके जिसे 'भारत की गरीबी' कहते हैं

> भारत की गरीबी पर पूरा ध्यान केंद्रित किया जाएगा। जो लोग भारत की आबादी की तुलना उसकी धन-संपत्ति पैदा करने की क्षमता से करते हैं वे यह कहने से बाज नहीं आएंगे कि यह रोग लाइलाज है। लेकिन साम्यवाद के प्रचारक इस दिशा में प्रयत्न को निराशावादी पक्ष को कभी नहीं स्वीकारते। उनमें असंभव को संभव बनाने की कोशिश करने का साहस है और भारत की पीड़ित जनता उतावलेपन के लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराएगी। इसलिए हम यह देखने की आशा कर सकते हैं कि भारत के नए अधिकारीगण इस पक्की सामाजिक आर्थिक क्रांति का विरोध करने या उसे दिशा देने आगे आ सकते हैं।

क्या साम्राज्यवाद यह आशा कर सकता है कि वह इन शक्तियों को अपने जुए तले रख सकेगा और उनका इस तरह से पथ प्रदर्शन कर सकेगा जिससे शोषण की उसकी व्यवस्था मुकम्मल तौर पर बनी रहे जो कि भारतीय जनता के शोषण की समूची व्यवस्था का गढ़ है? इस प्रश्न का उत्तर न तो उदारवादी साम्राज्यवादियों की विशुद्ध अटकलबाजी से भरी बहसों में मिलेगा और न वकीलों की सांविधानिक सुधारों की जटिलताओं से प्राप्त होगा इसका जवाब साम्राज्यवाद की आर्थिक बुनियादों के ठोस तथ्यों में और भारतीय जनता की ज्वलंत आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के साथ उनके अंतर्विरोधों में ही मिलेगा।

भारत की जनता को अत्यंत महान कार्य करने हैं। भारत एक रोगग्रस्त देश है, एक पिछड़ा देश है। यह ऐसा देश है जहां विकास की गति अवरुद्ध हो गई है। यह बीमारी, गरीबी, परोपजीविता और बरबादी से ग्रस्त देश है। इस क्षेत्र में दुनिया के किसी भी भाग में इसका मुकाबला नहीं किया जा सकता है। एक तरफ तो यहां असीमित प्राकृतिक संपदा का भंडार है और दूसरी तरफ जनता की भयंकर गरीबी और दुखदर्द है। यह विरोधाभास

हर प्रेक्षक की निगाह में कौंध जाता है चाहे वह किसी भी सामाजिक या राजनीतिक विचारधारा का क्यों न हो। दूसरा कोई देश ऐसा नहीं है जहां जनता की हालत खुद बताती हो कि सरकार ने अपनी कौन सी जिम्मेदारियां पूरी की हैं और वह भी ऐसी सरकार जिसे विकास के एक सौ वर्षों से भी अधिक समय तक निरंतर जिम्मेदारी संभालने का मौका मिला हो। भारत की बुनियादी समस्या आर्थिक और राजनीतिक है। राजनीतिक समस्या राष्ट्रीय मुक्ति और जनतंत्र के लिए संघर्ष महज इस समस्या की तात्कालिक ऊपरी अभिव्यक्ति है। यह वास्तविक लड़ाई का पहला चरण है। कृषि के क्षेत्र में प्रति वर्ष संकट गहरा होता जा रहा है और इस क्षेत्र के विशेषज्ञों का चाहे वे किसी भी विचारधारा के क्यों न हों यही कहना है कि व्यापक कृषि क्रांति के अलावा इसके समाधान का कोई दूसरा उपाय नहीं है। लेकिन कृषि समस्या को औद्योगिक विकास से अलग रखकर नहीं हल किया जा सकता है। यह सभी लोग मानते हैं कि यहां जरूरत इस बात की है कि औद्योगिक विकास का वृहत कार्यक्रम हो देश के बरबाद हो रहे साधनों का इस्तेमाल किया जाए, शक्ति के नए स्रोतों को काम में लाया जाए देश के लाखों करोड़ों बेरोजगारों को काम पर लगाया जाए और गलत ढंग से इस्तेमाल हो रहे श्रम का सही इस्तेमाल किया जाए राष्ट्र की समृद्धि के लिए बुनियादी उद्योगधंधों की शुरुआत की जाए और उत्पादन स्तर को इस सीमा तक ऊंचा उठाया जाए जिसकी तुलना किसी भी विकसित तकनीकवाले देश से की जा सके। शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई तथा जनता की बुनियादी जरूरतों के क्षेत्र में सामाजिक और राजनीतिक पैमाने पर बेहद काम करना है। भारत की जनता के सामने आज यह प्रश्न है कि पुनर्निर्माण के इस महानतम कार्य का नेतृत्व कौन करेगा? इसे पूरा करने की शर्तें क्या हैं? किन स्वरूपों और तरीकों के जरिए यह काम निष्पादित किया जा सकता है?

निस्संदेह साम्राज्यवाद अब भी इस आशा में है और यह सोचे बैठा है कि वह भारत में अवश्यंभावी परिवर्तन की लहरों को नियंत्रित रख सकता है, वह यह सोच रहा है कि रियायतों और संचालन शक्तियों के सुविचारित संयोग से इस तरह के ढांचे और माध्यमों में होने वाले किसी भी रूपांतरण को दिशा दे सकता है, उसे पीछे ले जा सकता है या अपने अनुरूप ढाल सकता है जिससे सही अर्थों में स्वतंत्र भारत के उदय को रोका जा सके और ब्रिटिश पूंजी द्वारा निरंतर शोषण किए जाने के लिए भारत पर एकाधिकारी प्रभुत्व को बनाए रखा जा सके।

इसलिए आधुनिक युग में बहुप्रचारित संवैधानिक सुधारों के साथ साथ समूचे मोर्चे पर रणनीति और कूटनीति संबंधी जबरदस्त तैयारियां तथा रक्षा के सुरक्षित मोर्चों पर अच्छी तरह प्रतिपादित नीतियां रखी गई हैं। यह काम विभिन्न आयोगों और अनुवर्ती कानूनों के एक लंबे सिलसिले के जरिए किया गया है। 1916 18 में भारतीय औद्योगिक आयोग का गठन हुआ, 1921 22 में भारतीय राजकोषीय आयोग (इंडियन फिस्कल कमीशन) 1926-25 में भारतीय वित्त और मुद्रा संबंधी शाही आयोग 1926-28 में भारतीय कृषि

सबधी शाही आयोग और 1929 31 म भारतीय श्रम सबधी शाही आयोग का गठन किया गया। 1935 तक बक आफ इग्लड के साथ निजी साझेदारी के आधार पर रिजव बैंक आफ इडिया की स्थापना की गई और इसे महाजनी पूजी के नियत्रण का निर्णायक गढ बनाया। इसे पूरी तरह ब्रिटेन के वायसराय क अधीन रखा गया ताकि राजनीतिक दबाव' (अर्थात भारतीय राजनीतिक दबाव) से अलग रखा जा सके। वायसराय का बैंक के गवनर और डिप्टी गवनर के पद क लिए नामाकन करन का अधिकार है और उस इस बात का भी अधिकार है कि वह बाड के फैसलो को नामजूर कर दे। रिजव बैंक आफ इडिया का भारत सरकार अधिनियम की धारा 152 के तहत साविधानिक सुधारो के मुख्याश से खासतौर से अलग रखा गया और वायसराय को अनियत्रित 'स्वनिणय' तथा 'व्यक्तिगत फैसल' का अधिकार दकर इसे सुरक्षा प्रदान की गई। इस प्रकार आधुनिक पूजीवादी आर्थिक काय प्रणाली म शक्ति का मुख्य केंद्र ब्रिटिश महाजनी पूजी के विशष रूप से सुरक्षित क्षेत्र म बना रहने दिया गया।

ब्रिटिश बकिग व्यवस्था की दमघोटू पकड का भारत म क्या भविष्य है? इसमे कोई सदेह नही कि साम्राज्यवादी आर्थिक एकाधिकारिक हितो के अन्य महत्वपूण मसलो की तरह यह भी काफी महत्वपूण प्रश्न है जो सत्ता हस्तातरण क तुरत बाद पैदा होने वाले कुछ मामला म से होगा और ब्रिटेन तथा भारत के बीच आने वाले दिनो म होने वाली सधि म इसे हल कर लेना जरूरी होगा। स्मरणीय है कि इस प्रस्तावित सधि को स्वीकार करने की घोषणा कैबिनट मिशन ने 25 मई 1946 के अपन बयान म कर दी थी। उसन कहा था कि भारत की जनता को प्रभुसत्ता देन की दो अपरिहाय शर्तों म से एक शत यह सधि भी होगी।

इसके साथ ही हाल के वर्षो मे ब्रिटिश महाजनी पूजी की सक्रिय गतिविधिया को भी दखा जा सकता है। यह बात खासतौर से इपीरियल कैमिकल इडस्ट्री, न्यू फील्डस जैसे बडे न्यासा और एकाधिकारी कपनिया के मामले म दखा जा सकता है जो नए युग की तैयारियो के लिए भारत मे अपना आधार बनान के लिए प्रयत्नशील हे।

इस प्रक्रिया मे मिली सफलता को कम करके आकना गलत होगा। आधुनिक युग म ब्रिटिश महाजनी पूजी कुछ मामलो मे जितनी मजबूती के साथ भारत पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए अपेक्षाकृत निपुण तरीको का जो इस्तेमाल कर रही है उसे देखने मे यदि कोई चूक हुई तो यह बहुत बडा राजनीतिक भोलापन होगा। यह राजनीतिक भोलापन साविधानिक सुधारा की चकाचौध म से आखें बद कर लेने या सत्ता द्वारा बडे जोरशोर से प्रचारित की गई रियायतो को अथवा लकाशायर के व्यापारियो द्वारा भारत म अपने एकाधिकार के खो जाने की चीख-पुकार को सही मान लेने से भी ज्यादा घातक होगा। इस प्रक्रिया का विश्लेपण हमने छठे अध्याय म किया है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान ब्रिटिश न्यासा द्वारा नियत्रित कपनियो के जरिए भारत का जो नया साम्राज्यवादी अतिक्रमण हुआ है (ये कपनिया अपने आपको भारतीय औद्योगिक कपनिया कहकर

पण करती थी) उसे हम युद्ध की पूर्व संध्या में महसूस कर चुके हैं। इसका प्रमाण हमें 1939 में सीनियर ट्रेड कमिश्नर फार इंडिया की रिपोर्ट में मिलता है। उन्होंने लिखा है

> कुछ महत्वपूर्ण मामलों में खासतौर से सिगरेट, दियासलाई रबड़ टायर, साबुन, रंग रोगन और कुछ दवाइयों के उत्पादन के मामले में, ये औद्योगिक संस्थान ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य देशों की महत्वपूर्ण फर्मों की शाखाएं हैं। इन फर्मों ने यह फैसला किया है कि सीमा शुल्क के दायरे के भीतर रहते हुए और सरकारी खरीद-फरोख्त विभागों की जरूरतों के लिए टेंडर देते समय खुद को भारतीय मूल का बताकर यदि भारत के लोगों की मांग पूरी की जाए तो इसमें उन्हें (फर्मों को) काफी फायदा है। (भारत में ब्रिटेन के व्यापार की स्थितियों और संभावनाओं पर रिपोर्ट के लिए सर थामस एमकफ की प्रारंभिक रिपोर्ट 1939)

भारत के राष्ट्रवादी तत्वों की ये कटु शिकायतें हैं कि भारतीय उद्योग को संरक्षण देने का उद्देश्य इस प्रकार विफल होता जा रहा है और आरोप लगाया है कि सरकार और बैंक ब्रिटिश पूंजी का पक्ष ले रहे हैं जो अपने को भारतीय उद्योग के छद्म रूप में सामने प्रस्तुत कर रही है। भारतीय उद्योग के नाम पर बहुविज्ञापित वे सीमा शुल्क रियायतें उन्हें मिल रही हैं जिनके बारे में यह प्रचार किया जाता रहा है कि ये रियायतें भारतीय पूंजी-पतियों को दी जाएंगी। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश पूंजीवाद का और भी मजबूती से संस्थापन हो रहा है

> इस संरक्षण का उद्देश्य भारतीय उद्योगों को विकसित करना है। भारतीय उद्योगों में वे उद्योग शामिल हैं जिनका स्वामित्व, नियंत्रण और संचालन भारतीयों के द्वारा होता है लेकिन भारत में गैरभारतीय उद्योगों के काम करने से संरक्षण का यह उद्देश्य विफल हो जाता है। विदेशी पूंजी जिस तरीके से भारत पर धावा बोल रही है वह बहुत गूढ़ और जटिल तरीका है बहुधा इसे भारतीय रूप देने की कोशिश की जाती है जो महज एक प्रदर्शन होता है। बहुधा देखा जाता है कि इन उद्योगों पर वास्तविक नियंत्रण और इन उद्योगों का वास्तविक संचालन गैर भारतीयों के हाथों में है जो प्रायः दिखावे के लिए कुछ भारतीय डायरेक्टरों को अपनी सहायता के लिए नियुक्त किए रहते हैं
>
> यह बुराई महज आर्थिक नहीं है क्योंकि इस तरह के प्रत्येक निहित स्वार्थ सांविधानिक उपायों के जरिए अपनी घुसपैठ को निश्चित बनाने का तरीका निकालेंगे इनके जरिए वे भारतीय विधानमंडलों के अधिकार और शक्तियों को अत्यंत सीमित कर देंगे तथा महत्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का काम कठिन बना देंगे।

उद्योग के क्षेत्र म इस तरह के त थाकथित भारत ब्रिटिश सहयोग का पलडा अततोगत्वा राजनीतिक प्रतिक्रियावाद के पक्ष म भारी पडेगा और इस प्रकार वह वास्तविक आर्थिक स्वराज के लक्ष्य को एक स्वप्न बना देगा। (अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता म प्रकाशित लेख 'ए न्यू मिनेस' 11 नवबर 1937)

1946 के सावैधानिक प्रस्तावो के सा थ इधर हाल के वर्षो म ब्रिटिश पूजी की आर्थिक आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति फाइनेंशियल टाइम्स' म प्रकाशित इन अशो म देखी जा सकती ह

आर्थिक दृष्टि से भारत अगरेजो की मदद क बिना नही रह सकता और ब्रिटेन भारतीय बाजार का हाथ से निकलना नही बरदाश्त कर सकता। भारत के विकास म और भारत की समृद्धि मे ब्रिटेन की आज भी उल्लेखनीय आर्थिक साझेदारी है। भारत को ब्रिटिश औजारो और अनुभवो की जरूरत है और स्टर्लिंग का व्यापक सतुलन होने के साथ ब्रिटेन के वित्तीय भविष्य म उसकी काफी दिलचस्पी है यदि ब्रिटेन भारत को छोडता है तो उस सभी सभव सद्भावना से अलग होना पडेगा। फिर ब्रिटिश हितो के प्रति अनुकूल रवैया अपनान क लिए कौन स प्रमुख रक्षा उपाय बच रहगे ? क्या यह जुआ खेलना है ? समूची योजना अनेक चीजो को दाव पर लगाना है लकिन निणय ले लिया गया है। मुमकिन है कि इसस साम्राज्यवादी हितो को नुकसान पहुचे लेकिन यह भी हो सकता है कि इससे इन हितो को मजबूती मिले। फिलहाल इस सदभ मे कुछ भी नही कहा जा सकता। (फाइनेंशियल टाइम्स, 18 मई 1940)

इस प्रकार साम्राज्यवाद ने अपनी वतमान रणनीति को राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र की दिशा म मोड दिया है ताकि आन वाले नए युग म वह अपनी विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति को बनाए रखने म सफल हो सके। इसस उसे यह लाभ मिलेगा कि उस नए युग मे ब्रिटिश झडे के स्थान पर भले ही भारतीय झडा फहरा दिया जाए लेकिन अतिम शक्ति और शोषण का मुख्य लाभ जहा तक सभव होगा ब्रिटिश पूजीवाद के हाथ म बना रहेगा।

यही वह असली खतरा है जिसने राष्ट्रीय आदोलन के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने क लक्ष्य तक सघर्ष का जारी रखना आवश्यक बना दिया है। इस तरह की आजादी को पूरी तरह प्राप्त करने के लिए आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र म भी आजादी प्राप्त करनी होगी, विदेशी पूजी को दी जान वाली सभी रियायतें रद्द करनी होगी और उन सभी विदशी उद्योगो, चाय बागानो, कारखानो, रेलवे, नौपरिवहन व्यवस्था आदि पर कब्जा करना होगा।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने आधुनिक युग म निम्नलिखित बहुत ही कुशल और श्रमसाध्य रणनीति

अपनाई है लेकिन इसके बावजूद इस बात का कोई संभावना नही है कि आने वाले नए युग म भारत पर अपना प्रभुत्व और एकाधिकार बनाए रखन के ब्रिटेन के ये सपने कभी पूरे हो सकेंगे। भारत की उदीयमान शक्तियो को इतनी आसानी से उन रास्तो की ओर नही ले जाया जा सकता जिन्हे ब्रिटेन के निमम शासकवर्ग न तैयार किया है। आज के भारत म प्रति वर्ष आर्थिक समस्याए तेजी स बढती जा रही है लेकिन साम्राज्यवाद की स्थितियो म इन समस्याओ का समाधान सभव नही है। आधुनिक काल म साम्राज्यवादी नियत्रण के तहत अथवा इस नियत्रण द्वारा थोपे गए प्रतिबधो के बावजूद होन वाला आर्थिक विकास जटिल, बाधित तथा विकृत विकास है और उसम राष्ट्रीय पुनर्रचना का कोई लक्षण नही है। ट्रेड कमिश्नर की रिपोर्ट म ब्रिटिश पूजी के नियत्रण और इसकी पहल के अतगत जिन 'नए उद्योग धधो' के विकसित होन का उल्लेख किया गया है वे मूलत अप्रधान हल्के उद्योग धधे हैं (सिगरेट, दियासलाई, रबड टायर साबुन, रग रोगन और कुछ दवाइया) और उद्योगीकरण के लिए ये कोई आधार प्रस्तुत नही करत। भारत के अब तक छिपे हुए रासायनिक साधनो का पता लगान और उनका इस्तेमाल करने के लिए कई योजनाओ की घोषणाए की गइ और यह भी मानन के पर्याप्त कारण है कि सरकार ने 'आई० सी० आई० (इडिया) लिमिटेड' को उल्लेखनीय रियायतें दी। लेकिन भारी उद्योगो के विकास के लिए इस तरह का कोई उपाय नही किया गया। सभावनाओ और आवश्यकताओ के सन्दर्भ म देखे तो लोहा और इस्पात उद्योग का विकास बहुत दयनीय है। यह ध्यान देने की बात है कि यहा जो निर्णायक पथप्रदशक काय किया गया है वह ब्रिटिश पूजी ने नही बल्कि टाटा की भारतीय फम ने किया। बाद म इसम ब्रिटिश पूजी इसलिए लगी ताकि इसपर वित्तीय दबाव बना रहे (इडियन आयरन एँड स्टील कपनी के अधिकाश शेयर ब्रिटिश स्वामित्व वाली बगाल आयरन कपनी ने खरीद)। 1935 म लोहा और इस्पात उद्योग मे लगे मजदूरो की कुल सख्या 32 000 थी। 1924 से 1939 40 के बीच इस्पात की सिल्लियो का उत्पादन 341,000 टन स बढकर 10,70,355 टन हो गया। इसी अवधि म सोवियत सघ म यह उत्पादन 1924 मे 14,08,000 टन से बढकर 1936 म 16,300,000 टन हो गया।

पिछले युद्ध के दौरान यह पता चला था कि सकट के दिनो म भारत एक मोटर इजन या हवाई जहाज भी नही बना सकता था। यहा तक कि सरकारी कपनी हिंदुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्टरी, बगलौर (जिसे थोडी अवधि के लिए अमरीकी सेना को सौप दिया गया था) म एक भी हवाई जहाज नही बनाया। युद्ध के बाद के दिनो म भी विकास की जो योजनाए तैयार की गइ उनम इसी प्रवृत्ति की झलक मिलती है। यह घोषणा की गई कि नई 'भारतीय' कार 'हिंदुस्तान 10' के निर्माण के लिए बिड़ला और 'नूफील्ड' के बीच समझौते की बातचीत चल रही है लेकिन इस घोषणा के बाद पता चला कि इस कार के आवश्यक पुर्जो का निर्माण 'नूफील्डस करेंगे और इन्हे भारत म महज जोडा जाएगा। इसी प्रकार टाटा और आई० सी० आई० के बीच सपन्न समझौते की शर्तो म पता चलता है कि जब तक भारत आत्मनिभर नही हो जाता (आत्मनिभर होने की अवधि कम से कम बीस

वप बताई गई) तव तक आवश्यक दवाए इग्लैड से आयात की जाएगी और उन्ह 'भारतीय' कहकर भारत म बेचा जाएगा। इस तथ्य को भी काफी प्रचारित किया गया है कि सिहभूम का रेलवे वकशाप टाटा उद्योग समूह का सौप दिया गया है ताकि वे भारतीय लोकोमोटिव इजना का उत्पादन कर सकें लेकिन अनुमान है कि पहला लोकोमोटिव इजन वनन म अभी कई वप लग जाएगे। इस घोपणा को भी दुनिया भर म खूब वढा-चढाकर प्रचारित किया जा रहा है कि हिदुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्टरी अव भारत सरकार के नियत्रण और स्वामित्व म तथा ब्रिटिश इजीनियरा के माग निर्देशन म हवाई जहाजा का निमाण शुरू करेगी। लेकिन जसाकि इस घोपणा म स्वय वताया गया है हवाई जहाजा के निर्माण के मामले म भारत कम से कम बीस वर्षों म पूरी तरह आत्मनिभर हा सकेगा।'

समन्वित आर्थिक विकास के लिए भारी उद्योग के आधार को विकसित करना एक बुनियादी शत है लकिन इस काम म जो असफलता मिली है वह सयोगवश नही है, इससे साफ पता चलता है कि साम्राज्यवादी प्रभुत्व क तहत किसी देश की क्या स्थिति हाती है। भारत मशीना के लिए आज भी पूरी तरह दूसरे देशा पर निभर है। जसाकि पहले ही कहा जा चुका है धातुकर्मीय उद्योगधधा के विकास का अथ है वास्तविक औद्योगिक क्राति। इग्लैड, जमनी और अमरीका इन सभी देशो न अपन यहा कपडा वनान वाले कारखाना की शुरुआत से पहल आधुनिक पैमान पर लाहा और इस्पात उद्योग की नीव डाली।' (एल० सी० ए० नावेल्स, 'इक्नामिक डेवलपमट आफ दि ओवरसीज इपायर', पृष्ठ 443। विस्तार से अध्ययन के लिए पृष्ठ 160 देखें) यह प्रक्रिया सोवियत सघ मे और भी तजी से देखी जा सकती है। भारत म एकदम उल्टी ही प्रक्रिया है और इसम उसकी औपनिवशिक स्थिति प्रतिविवित होती है। भारत में भारी उद्योग के सही अर्थों म विकास के लिए सभी प्राकृतिक और तकनीकी सभावनाए मौजूद ह और इस विकास के लिए दश की स्थितिया फरियाद करती है लेकिन चूकि यह एक उपनिवेश है इसलिए विकास की प्रक्रिया का औपनिवेशिक स्थिति म परस्पर विराध है। यदि भारत म भारी उद्योग का विकास हा जाए तो दुनिया के पैमान पर एक प्रमुख राष्ट्र के रूप म स्वतत्र भारत के उभरन का आधार तैयार हो सकता है।

यही कारण है कि भारत म आर्थिक विकास की अनिवाय आवश्यकताओ तथा साम्राज्य-वादी प्रभुत्व के जवरदस्त वधनो के बीच सघप दिन ब दिन तेजी से वढता जाएगा और सदभाव तथा सहयोग कायम करने के हर प्रयास को बेकार कर देगा।

एक शताब्दी पूव भारत म ब्रिटिश बुर्जुआ के शासन का उसके तमाम विध्वसा और ववरताओ के बावजूद यह कहा जा सकता था कि वह पुरानी समाजव्यवस्था की वुनियादो को नष्ट करने म और नई समाजव्यवस्था के लिए स्थितिया तयार करने म इतिहास के हाथा म एक अचेतन हथियार' की भूमिका अदा कर रहा था। आधुनिक साम्राज्यवाद

वतमान युग की घटनाओ के क्रम म, जब पुर्ननिर्माण के कार्यो को आग बढाना होगा, अब यह भूमिका अदा नही कर सकता।

भारत मे साम्राज्यवाद के दिवालियेपन की कहानी भारत की वतमान स्थिति और यहा की जनता की हालत के रूप म लिखी हुई है। पिछले 25 वर्षो मे सोवियत सघ ने जो उपलब्धिया की है और इसी अवधि के दौरान भारत की जो उपलब्धिया रही ह उनके बीच कितनी विपमता ह इसे देखे विना नही रहा जा सकता। हम जब उन आकडा पर विचार करते हे जो लाहा और इस्पात उद्योग के बारे म ऊपर पश किए गए ह तब भारत और सोवियत सघ की प्रगति की विपमता का स्पष्ट पता चलता है। यही स्थिति अय मामलो म भी है। मसलन, सोवियत सघ म निरक्षरता का समाप्त हो जाना और भारत म बीस वर्षो मे निरक्षरता मे महज दो प्रतिशत की कमी होना, कृषि के विकास म और राष्ट्रीय आय की वृद्धि मे दोनो देशो के बीच का अतर अथवा सोवियत सघ म स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओ का निरतर जाल बिछते जाना तथा भारत म अत्यत बुनियादी सेवाओ का लगभग पूरी तरह अभाव का होना। इन तथ्यो से भारतीय जनता का महत्व पूण सबक मिलता है और इस सबक को पूरी तरह हृदयगम कर लेना चाहिए।

यह दिवालियापन किसी एक प्रशासक की योग्यता या यहा तक कि उसकी ईमानदारी अथवा सद्भाव का मामला नही है जिसने यदि वह बहुत सजग प्रतिनिधि हुआ तो, इन निराशाजनक स्थितियो के खतरे को महसूस किया और यह समझ सका कि ये स्थितिया कौनसी दिशा ले रही ह। यदि इन प्रतिनिधियो के भीतर कुछ अच्छा कर दिखाने की इच्छा भी रही तो साम्राज्यवादी शासन ने उन्ह ऐसी शक्ति नही दी थी कि वे कोई असामान्य नतीजे निकाल सके। इसका कारण यह है कि साम्राज्यवादी शासन के बने रहने का सामाजिक आधार वही शक्तिया ह जो भारत को पिछडेपन का शिकार बनाए हुए ह। कृषि आयोग के समक्ष भारत म निरतर बढ रहे कृषि सकट के बुनियादी प्रश्न पर विचार विमश करने के बारे मे सरकारी तौर पर जो निषेधात्मक रवया अपनाया गया वह भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दीवालियेपन का एक प्रतीक है। जब तक जमीदारी प्रथा से सबद्ध मसला हल नही कर लिया जाता, जब तक भूमि समस्या का कोई बुनियादी समाधान नही ढूढ लिया जाता तब तक भारत की प्रगति की समस्या नही हल हो सकती, बुनियादी आर्थिक या सामाजिक पुर्ननिर्माण की सभावनाए नही ढूढी जा सकती। लेकिन जमीदारी प्रथा पर आक्रमण करने का अथ यह है कि साम्राज्यवादी प्रभुत्व की बुनियाद पर आक्रमण किया जाए और उन सामाजिक शक्तियो के लिए माग प्रशस्त कर दिया जाए जिनकी प्रगति का अथ है साम्राज्यवाद का विनाश। साम्राज्य वाद ने अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए एक सामाजिक आधार पाने की कोशिश की है और इसके लिए उसने आबादी के उस हिस्से के विशेषाधिकारो और सुविधाओ को बना रहने दिया है जिनके हित आम जनता के हितो के प्रतिकूल ह। इसी स पता चलता है कि अगरेजी राज सामाजिक तौर पर कितना दकियानूस है और अत्यत बुनियादी सुधारो क

माग म वह किग तरह गधाए डालता है।[4] ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत मे अपनी किस्मत को जमीदारवग, राजाओ महाराजाओ साप्रदायिक भेदभाव बनाए रखने वाले निहित स्वार्थी तत्वा तथा पिछडेपन और पतनशीलता की हिमायती प्रतिक्रियावादी शक्तियो की किस्मत के साथ बाध रखा है।

इधर हाल के वर्षों म भारत के औद्योगिक बुर्जुआवग के साथ सहयोग कायम करने के लिए अतिम बार किसी आधार का प्राप्त करने की कोशिश की गई है लेकिन जनता की सामाजिक प्रगति का विरोध करन वाल कुछ समान हिता के बावजूद यह आधार कभी स्थिर नही हो सकता। आने वाले दिना म इन प्रतिक्रियावादी शक्तियो को पतन से कोई नही बचा सकता और उन्ही के साथ साम्राज्यवाद का भी विनाश निश्चित है।

इसलिए इस बात की पूरी सभावना है कि आने वाले दिना म भारत का स्वाधीनता मिल जाएगी हालाकि अतिम लडाई अब भी लडनी बाकी है। यह आजादी जल्द या देर से प्राप्त होगी, यह इस बात पर निभर करता है कि जनता म कितनी एकता है। राष्ट्रीय आदोलन का जन आधार कितना मजबूत है तथा आदोलन की अपने लक्ष्य के प्रति कितनी साफ दृष्टि है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो भारत म पुनर्निर्माण के अत्यत आवश्यक काय होने बाकी हैं और इसे स्वय भारत की जनता ही चला सकती है और उसी को यह काय पूरा करना होगा।

2 किस तरह का आजाद भारत ?

इस प्रकार भारत के भविष्य से सबधित अन्य प्रश्न भारतीय जनता की आतरिक शक्तियो पर आकर टिक जाते ह। भारत की जनता समग्र रूप से सजातीय नही है। हमने देखा है कि कुछ एसी ताकतवर प्रतिक्रियावादी शक्तिया ह जो अपने विशेषाधिकार बनाए रखने की आशा मे साम्राज्यवादियो के साथ पूरी तरह साठ गाठ किए हुए ह (हालाकि साम्राज्यवाद के कमजोर होने के साथ ही इनम से भी कुछ के अदर अब अनिश्चय की भावना घर करन लगी है)। हमने भारतीय बुर्जुआ की ढुलमुल भूमिका को देखा है जिसका ब्रिटिश बुर्जुआ से जबरदस्त विरोध है वह भविष्य के भारत को एक आजाद देश के रूप मे देख रहा है और उसन राष्ट्रीय आदोलन म एक शक्तिशाली ही नही बल्कि प्रमुख भूमिका निभाई है। फिर भी हर बार जब जनसघर्ष तेज होने लगा है उसने राष्ट्रीय आदोलन के विकास म अवरोध का काम किया है और साम्राज्यवाद के साथ अस्थाई मोलभाव करने के बाद फिर सघर्ष मे कूद पडा है। हमने औद्योगिक मेहनतकशो का उदय और किसानो का विद्रोह देखा है जिसके फलस्वरूप भारत के राजनीतिक रगमच पर नए सामाजिक मसल बडी तजी से उभरकर सामने आए ह। छात्र, बुद्धिजीवी युवक, शहरी निम्न पूजीपतिवग कोई स्वतत्र भूमिका नही निभा सकते लकिन वे एक सचेतन राजनीतिक आदोलन को अत्यत सक्रिय आदोलनकारी और सगठनकारी अवयव प्रदान

कर सकते है। हमने देखा है कि बढ़ते हुए राष्ट्रीय और सामाजिक संकट के दौर म इन वर्गों म य सभी परस्पर विरोधी धाराए उद्घाटित हुई ह।

क्या स्वतंत्रता के लिए लडी जा रही लडाई म साम्राज्यवाद को अतिम रूप से पराजित करने तक राष्ट्रीय आदोलन की एकता को सफलतापूर्वक बनाया रखा जा सकेगा? या बढ़ते हुए जनआदोलन के भय से बुर्जुआवग का राष्ट्रीय रूढ़िवादी तत्व आदोलन स अपने को अलग करके साम्राज्यवाद के साथ साठ गाठ कर लेगा और इस प्रकार साम्राज्यवाद को अस्थाई जीवनशक्ति द देगा जिससे राष्ट्रीय स्वाधीनता सघष की अतिम विजय सामाजिक मुक्ति के लिए जारी जनसघष से जुड जाएगी? यदि आजादी हासिल होती है तो पुराने ब्रिटिशशासित भारत के स्थान पर किस तरह के नए भारत की स्थापना होने जा रही है? क्या नवीकृत ग्रामीण अथव्यवस्था तथा उद्योगवाद की सीमाओ पर आधारित आधुनिक परिस्थितियो के अनुरूप रूपातरित पुनर्निर्मित हिंदू या प्राचीन भारतीय सभ्यता के पुनरुत्थानवादी समथक सघष को आग बढा सकेंगे और अपने सपनो के भारत का निर्माण कर सकेंगे? या औद्योगिक बुर्जुआवग तथा शिक्षित वग म उनके प्रतिनिधि यह बीडा उठाएगे और पश्चिम के पूजीवादी देशो के नमूने पर आधुनिक पूजीवादी भारत का निमाण करेंगे? या टर्की की तरह ही नियत्रित पूजीवाद की पद्धति पर एकदलीय राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का अस्थाई दौर आ टपकेगा? या जनता का कठिन परिश्रम तथा जबरदस्त सघष निकट भविष्य म ही समाजवाद के रास्ते पर बढने वाले एक जनवादी भारत को जन्म देगा?

भारत से सबधित विचारणीय विषयो म ऐसे और इस तरह के कई प्रश्न बडी तेजी से पैदा हो रहे ह। य ऐसे मसले नही है जो भविष्य के बारे मे पूरी तरह अटकलो पर आधारित ह क्योकि भावी लक्ष्यो की अवधारणा और वतमान सघष म समाज के अलग अलग वर्गो और शक्तियो की भूमिका का आकलन मौजूदा सघष को और राष्ट्रीय आजादी की प्राप्ति की सभावनाओ को अत्यधिक प्रभावित करता है। भारत म वगसघष और राष्ट्रीय सघष एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से जुडे हुए हैं और भारतीय राजनीति को समझने के लिए तथा भारतीय जनता के सामने मौजूद तूफानी सागर पर सफलतापूवक विजय प्राप्त करने के लिए इस अतरसबध को समझना अत्यावश्यक है।

इन मसलो पर विचार करते समय उन वास्तविक सामाजिक या वग शक्तियो के बीच (जिनकी सापेक्षिक शक्ति और जिनका पारस्परिक प्रभाव एक के बाद एक आने वाली अवस्थाओ तथा अतिम निष्कष को दरअस्ल सचालित करता है) तथा एकदम ताजा दृष्टिकोणो और विचारधाराओ के बीच फक करना जरूरी है जिनके जरिए फिलहाल ये शक्तिया स्वय आशिक रूप से अभिव्यक्त होती है और जो अनेक स्तरो पर विचार धाराओ के सघष का स्वतत्र आधार प्रतीत होती ह।

राष्ट्रीय आदोलन मे आज तीन मुख्य प्रवत्तिया या मुख्यत तीन तरह के सामान्य सामाजिक दृष्टिकोण मौजूद ह। इनम पहली प्रवत्ति को रूढिवादी (सामाजिक अर्थों म इसे रूढिवादी प्रवृत्ति कह सकते हैं लकिन जरूरी नही कि राजनीतिक अर्थों म या साम्राज्यवाद के सदभ म भी यह प्रवत्ति रूढिवादी हो) या पीछे की ओर दखने वाली प्रवृत्ति कह सकत ह। यह प्रवृत्ति अपना कायक्रम एक ऐसे आदश पुरातन भारतीय सभ्यता के आधार पर तैयार करती है जिसकी बुराइयो का मोटे तौर पर तो निकाल दिया जाता है पर जिसम हिंदूवाद की बुनियादी मस्याए और इसक सिद्धात बन रहत है। यह आधुनिक उद्योगवाद को बहुत खतरनाक समझती ह (इसे बिना किसी भेदभाव के पूजीवाद या साम्यवाद जितना खतरनाक मानती है) और चरखा लेकर तथा आदिम कृषीय जीवन को ही एक आदश स्थिति मानकर समझती है कि किसाना की आकाक्षाओ का सही प्रतिनिधित्व कर रही है।

दूसरी शक्तिशाली प्रवृत्ति औद्योगिक बर्जुआ की प्रवृत्ति ह। औद्योगिक बुर्जुआ पश्चिम के नमून पर आधुनिक पूजीवादी भारत के निर्माण की कोशिश करता है लेकिन साथ ही वह औद्योगिक मजदूरो की अनिवाय रूप स बढती शक्ति तथा उनकी मागो और किसाना के बीच बढते असतोष से भयभीत रहता है। नतीजा यह होता है कि वह अपने लक्ष्यो को कभी कभी एक अधसमाजवादी नारा देकर आदश साबित करने की कोशिश करता है। वह सामान्य तौर पर प्रचलित बिना वगसघष का समाजवाद' या 'भारतीय समाजवाद' नारा देता है जो एक बहुत अस्पष्ट मानवतावाद और वग समझौतावाद को अभिव्यक्त करता है।

तीसरी प्रवृत्ति है समाजवाद की उभरती प्रवत्ति जो अत्यत स्पष्ट रूप मे औद्योगिक मेहनतकशवग के लक्ष्य की सचेतन अभिव्यक्ति का और भारतीय समाज के बुनियादी रूपातरण का प्रतिनिधित्व करता है। राष्ट्रीय आदोलन मे इस प्रवृत्ति को दिनादिन काफी तजी से खासतौर से युवावग का समथन मिलता जा रहा है।

इन तीनो प्रवृत्तिया म से पहली प्रवृत्ति का महत्त्व आज भी बना हुआ है और हालाकि इसका न तो कोई ठोस सामाजिक आधार है और न अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने की इसके पास कोई व्यावहारिक सभावना है फिर भी इसे कम करके नही आका जाना चाहिए। इसका यह विश्वास एक बहुत बडा भ्रम है कि वह किसानो की आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति करती है और इसलिए 'वास्तविक जनता' तथा 'भारतीय समाज की सरचना' के काफी निकट है। यह भ्रम ठीक वैसा ही है जसा एक जमाने मे रूस मे पापुलिस्टो ने तथा अन्य देशा म आदोलना के दौरान विभिन्न प्रवत्तियो ने पाल रखा था। लेकिन जैसाकि रूस मे या अन्य देशा म हुआ, औद्योगिक मजदूरवग के साथ घनिष्ठ सबध कायम करके जब कृषि क्राति विकास करेगी तो य भ्रम अपन आप ही चूर चूर हो जाएग। दरअस्ल जब निम्न पूजीपतिवग का एक उल्लखनीय हिस्सा आर्थिक स्थिति म होने वाले

राष्ट्रीय आदोलन मे आज ती न मुख्य प्रवत्तिया या मुख्यत तीन तरह के सामान्य सामाजिक दृष्टिकोण मौजूद है। इनम पहली प्रवृत्ति को रूढिवादी (सामाजिक अर्थों मे इसे रूढिवादी प्रवृत्ति कह सकते है लकिन जरूरी नही कि राजनीतिक अर्थों म या साम्राज्यवाद के सदर्भ म भी यह प्रवत्ति रूढिवादी हो) या पीछे की ओर देखने वाली प्रवृत्ति कह सक्ते हे। यह प्रवृत्ति अपना कायक्रम एक ऐसे आदश पुरातन भारतीय सभ्यता के आधार पर तैयार करती है जिसकी बुराइयो का मोटे तौर पर तो निकाल दिया जाता है पर जिसम हिंदूवाद की बुनियादी सस्थाए और इसके सिद्धात बने रहत है। यह आधुनिक उद्योगवाद को बहुत खतरनाक समझती है (इसे बिना किसी भेदभाव के पूजीवाद या साम्यवाद जितना खतरनाक मानती है) और चरखा लकर तथा आदिम ग्रामीण जीवन को ही एक आदश स्थिति मानकर समझती है कि किसानो की आकाक्षाओ का सही प्रतिनिधित्व कर रही है।

दूसरी शक्तिशाली प्रवृत्ति औद्योगिक बर्जुआ की प्रवत्ति ह। औद्योगिक बुर्जुआ पश्चिम के नमूने पर आधुनिक पूजीवादी भारत के निर्माण की कोशिश करता है लकिन साथ ही वह औद्योगिक मजदूरों की अनिवाय रूप से बढती शक्ति तथा उनकी मागा और किसानो के बीच बढते असतोप से भयभीत रहता है। नतीजा यह होता है कि वह अपने लक्ष्यो का कभी कभी एक अर्धसमाजवादी नारा देकर आदश साबित करन की कोशिश करता है। वह सामान्य तौर पर प्रचलित 'बिना वगसघप का समाजवाद' या 'भारतीय समाजवाद' नारा देता है जो एक बहुत अस्पष्ट मानवतावाद और वग समझौतावाद को अभिव्यक्त करता है।

तीसरी प्रवृत्ति है समाजवाद की उभरती प्रवत्ति जो अत्यत स्पष्ट रूप म औद्योगिक मेहनतकशवर्ग के लक्ष्य की सचेतन अभिव्यक्ति का और भारतीय समाज के बुनियादी रूपातरण का प्रतिनिधित्व करता है। राष्ट्रीय आदोलन मे इस प्रवृत्ति को दिनोदिन काफी तजी से खासतौर से युवावग का समथन मिलता जा रहा है।

इन तीना प्रवृत्तिया म से पहली प्रवृत्ति का महत्व आज भी बना हुआ है और हालाकि इसका न तो कोई ठोस सामाजिक आधार है और न अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने की इसके पास कोई व्यावहारिक सभावना है फिर भी इसे कम करके नही आका जाना चाहिए। इसका यह विश्वास एक बहुत बडा भ्रम है कि वह किसानो की आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति करती है और इसलिए 'वास्तविक जनता' तथा 'भारतीय समाज की सरचना' के काफी निकट है। यह भ्रम ठीक वैसा ही है जैसा एक जमाने म रूस मे पापुलिस्टो ने तथा अन्य देशा मे आदोलना के दौरान विभिन्न प्रवृत्तियो ने पाल रखा था। लेकिन जसाकि रूस मे या अन्य देशो म हुआ, औद्योगिक मजदूरवग के साथ घनिष्ठ सबध कायम करके जब कृषि क्राति विकास करेगी तो ये भ्रम अपने आप ही चूर चूर हो जाएगे। दरअस्ल जब निम्न पूजीपतिवग का एक उल्लेखनीय हिस्सा आर्थिक स्थिति म होने वाले

परिवतनो का बरदाश्त नही कर पाता, उससे परशान हो जाता है तथा खतरा महसूस करन लगता है, उसके परिचित तटबधा म जब दरार पड जाती है सक्रमण और सघष के तूफान म वह बिना किसी पथप्रदशक के फेंक दिया जाता है और सहार के लिए किसी पुरातन अनिश्चितता की चट्टान तलाशन की असफल कोशिश कर रहा होता है तब प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के रूप मे इसी तरह के भ्रम सामने आते ह। अपने गूढतम अर्थों म वह उन सभी सामाजिक शक्तियो की बरबादी की अभिव्यक्ति है (उजडे हुए हस्तकर्मी, जमीन से बेदखल किए गए किसान दिवालियापन के शिकार छोटे व्यापारी) जिन्ह साम्राज्यवाद विनष्ट कर रहा है और जो 'पैशाचिक पश्चिमी सभ्यता' तथा मशीनो को ही अपना दुश्मन समझ रही हैं। यह अत्यत दुखद दृष्टिकोण है जा मूलत निराशावादी है। यह पृथ्वी व जीवन का दुखा और भ्रमा स भरा मानकर किसी दूसर लाक के काल्पनिक आध्यात्मिक जगत म राहत तलाश करना है। यह चुकी हुई शक्तियो की अभिव्यक्ति है जा राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के भीतर भी एक हार रही लडाई लड रही है जबकि राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन का स्वरूप ही उदीयमान हाता है और वह आशावादी आदोलन होता है। लेकिन इसका वतमान महत्व है। महज इसलिए नही कि यह भारत म साम्राज्यवाद द्वारा की गई विनाश प्रक्रिया का एक सामाजिक लक्षण है बल्कि इसलिए भी कि यह आज भी उस पुरातनपथी 'कट्टरवादिता' का आधार है जा काग्रेस के अदर मौजूद है और जो गाधी का मसीहा मानकर उसके चारो तरफ इकट्ठा हुई।

इस प्रवत्ति के प्रतिनिधियो न रचनात्मक कायक्रम के नाम पर गावा मे पुनर्निर्माण का काम शुरू किया और उद्योगीकरण का विरोध किया।

> सही समाजवाद ग्रामोद्योगो के विकास म है। हम यह नही चाहत कि हम अपन दश म भी पश्चिमी देशा की तरह वैसी ही अव्यवस्थापूर्ण परिस्थितिया पैदा कर दे जो बडे पैमान पर उत्पादन की वजह स हुई है। (वल्लभभाई पटल का अहमदाबाद म भाषण, 3 जनवरी 1935)

> अपनी सस्कृति के पुनर्विकास क लिए भारत, चीन और मिस्र को अपनी कृषि-सभ्यतावाले अतीत के दिना को देखना चाहिए। (अखिल भारतीय ग्रामोद्याग एसोसिएशन क सचिव जे०सी० कुमारप्पा व्हाई दि विलज मूवमट, 1936, पृष्ठ 55)

आत्मनिभर ग्राम समुदायो पर आधारित पुरानी 'भारतीय सभ्यता' (मावस न इसी के घिसे पिटे रूप के बारे म बताया था कि इसन पूर्वी दशा म तानाशाही, गुलामी अध विश्वास और जडता पैदा की) को एक ऐसा आदश माना गया जिसके पुनर्जीवन की जरूरत पर जार दिया गया।

मेरा विश्वास है कि भारत ने जिस सभ्यता का विकास किया था उसका मुकाबला दुनिया का कोई भी देश नहीं कर सकता। (गांधी 'इंडियन होम रूल', 1908, नई भूमिका के साथ पुनर्मुद्रित 1919, पृष्ठ 66)

जैसाकि गांधी के शुरू के लेखों में देखा गया, बाद के वक्तव्यों में और भी जोरदार शब्दों में मशीन और आधुनिक विज्ञान की एक साथ भर्त्सना की गई

यह मानना बहुत जरूरी है कि मशीन अपने आप में बुरी चीज है। पहले हम यह मान लें फिर धीरे धीरे इस योग्य हो जाएंगे कि उसके बिना भी काम चला लें। (गांधी 'इंडियन होम रूल', पृष्ठ 124)

अस्पताल पाप का प्रचार करने वाली संस्था है। (वही, पृष्ठ 64)

1909 में अपने एक मित्र को लिखे 'कन्फेशन आफ फेथ' में गांधी की यह विचारधारा और भी स्पष्ट रूप से सामने आती है

भारत पर अंगरेजों का शासन नहीं है बल्कि यह आधुनिक सभ्यता है जो अपनी रेलव्यवस्था, तार, टेलीफोन तथा सभी नए आविष्कारों के जरिए भारत पर शासन कर रही है। इन आविष्कारों को सभ्यता की विजय माना गया है

यदि कल अंगरेजों के शासन के स्थान पर भारतीयों का शासन स्थापित हो जाए और यह शासन भी उन्हीं आधुनिक साधनों पर आधारित हो तो भारत की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं होगी। हां, वह अपना कुछ पैसा जरूर बचा सकेगा जो अभी इंग्लैंड चला जाता है लेकिन तब भारत यूरोप या अमरीका के देशों में महज दूसरे या पांचवें राष्ट्र का स्थान पा सकेगा

चिकित्साविज्ञान काले जादू का सारांश है। उच्च चिकित्साविज्ञान की कुशलता से जो ज्ञान हासिल होता है उससे नीम हकीमी कई गुना बेहतर है

भारत का उद्धार इसी में है कि उसने पिछले पचास वर्षों के अंदर जो कुछ भी सीखा है, भुला दे। रेलव्यवस्था, तार अस्पताल, वकील, डाक्टर और इस तरह के सभी साधनों को समाप्त होना होगा और तथाकथित उच्चवर्ग के लोगों को यह सीखना होगा कि वे किस तरह सचेतन ढंग से और धार्मिक रूप से साधारण किसानों का जीवन व्यतीत करें। (गांधी 'ए कनफेशन आफ फेथ', 1909, स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज', पृष्ठ 1041-43)

जाहिर है कि यह कार्यक्रम भारत की गरीबी का कोई समाधान नही प्रस्तुत करता है बल्कि गरीबी को वह मानव जाति के बहुमत के लिए दैवी इच्छा मानकर आदर्श रूप प्रदान करता है।

> भौतिक सुख सुविधाओं म वृद्धि किसी भी रूप म नैतिक विकास म सहायक नही होती है। (गाधी 'ए कनफेशन आफ फेथ', स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज', पृष्ठ 1042)

> भौतिक सुख-साधन हमारे पास जितना ही अधिक रहेगे उतना ही अधिक हम दुनिया की मोहमाया से बधते जाएग। (कुमारप्पा 'व्हाई दि विलेज मूवमट', पृष्ठ 39)

> सुख की प्राप्ति हमे भौतिक वस्तुओ की प्रचुरता से नही होती है। (वही, पृष्ठ 65)

इसम कोई आश्चय नही कि भूखी और असतुष्ट जनता को दिए जाने वाले इस तरह के उपदेशो को भारत के बडे बडे उद्योगपतियो का भरपूर समथन और सरक्षण मिलता है। ये उद्योगपति स्वय भी एक तरफ तो अपन फुरसत के समय म थोडा-बहुत चरखा कात कर आम जनता के सादा जीवन के प्रति अपनी सतुष्टि का इजहार करत ह और दूसरी तरफ मशीनो और औद्योगिक शोषण के जरिए अपार सपत्ति इकट्ठा करते है। सपत्ति क अधिकार के सदभ म गाधी ने अपन सामाजिक सिद्धात म जो कहा था उसस भी हम अपरिचित नही है

> मेरा सामाजिक सिद्धात यह है कि हालाकि हम जन्म से एक समान हे अर्थात हम समान अवसर प्राप्त करने का अधिकार है तो भी हम सबकी सामर्थ्य एक जैसी नही है। कुदरती तौर पर यह असभव है कि हम सब डीलडौल म एक जैसे हो, हमारी चमडी का रग एक हो और हम सबके पास एक जसी बुद्धि हो और इसीलिए स्वाभाविक तौर पर हमम से कुछ ऐसे होगे ही जो दूसरो की तुलना म ज्यादा भौतिक समृद्धि जुटा सकेगे। जिनके पास क्षमता है, वे अपनी क्षमता का इस्तमाल इस उद्देश्य की सिद्धि क लिए करते है। यदि व अपनी क्षमताओ का इस्तेमाल अच्छी भावना के साथ करेगे तो उनका काम जनता के कल्याण के लिए होगा। ये लोग 'न्यासधारी' (ट्रस्टीज) होग और कुछ नही। यदि कोई व्यक्ति बुद्धिमान है तो उस अधिक स अधिक कमाने का मौका देना चाहिए और उसे अपनी योग्यता का इस्तमाल करन म कोई बाधा नही पहुचानी चाहिए। (चार्ल्स पेत्राश का दिया गया गाधी का इटरव्यू, माद', 20 फरवरी 1932)

यहा आदशवाद की आड म उन्ही जाने-पहचाने बुर्जुआ सिद्धातो को पश किया गया है।

इस कायक्रम की तत्काल व्यावहारिक रूप से जो अभिव्यक्ति हुई वह चरखा और तकली

के प्रचार म, राष्ट्रीय प्रतीक क रूप म खादी क इस्तेमाल का वढावा दन म तथा ग्रामोद्योग के विकास म दिखाई पडी। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघ' का राष्ट्रीय काग्रेस की एक महत्वपूर्ण सहायक सस्था क रूप म सगठित किया गया। इस आदोलन के लिए आधार कितना व्यावहारिक था यह देखना जरूरी है। विकसित बुर्जुआ अथव्यवस्था के श्रेष्ठतम अथशास्त्री अपनी व्यवस्था की ज्ञानोद्दीप्त ऊचाइयो से इस अत्यत पिछडी धारणा का वडे बेलौस ढग से मजाक उडाते है कि भारतीय अथव्यवस्था की विशाल समस्याओ को और उत्पादन की कमी को चरखा कातकर और आदिम तरीके अपनाकर हल कर लिया जाएगा। फिर भी इस आदोलन को जा सीमित और आशिक समथन मिला उसके कारण विशुद्ध सैद्धातिक नही है बल्कि व्यावहारिक समझ है। दरअस्ल भारत एक ऐसा देश है जहा कृषि के क्षेत्र म निराशाजनक रूप से विघटन की स्थिति मौजूद है जिसकी वजह से काफी वडी आवादी का इस तरह के श्रम म जुतना पडता है जिसम तकरीवन वष का आधा हिस्सा वह वेराजगारी म काटती है और यहा औद्योगिक विकास न होने के कारण चरखा, हथकरघा और हस्तशिल्प उद्योग किसी भी रूप म एक उल्लेखनीय आवादी के लिए अस्थाई तौर पर राहत पहुचा सकत ह क्योकि इसमे बहुत कम उपकरणा या साधनो का इस्तेमाल हाता है।

फिर भी यह एक ऐसी दिलासा है जो भारतीय अथव्यवस्था की मौजूदा विकृति और अवरुद्धता की निकृष्टतम खामियो को स्वीकार करने पर आधारित है और इसका मकसद इन बुराइयो को समाप्त करने के वजाय अपने का इनके अनुसार ढालना है। आर्थिक दष्टि से देखें तो पूजीवादी जगत म हस्तउद्योग को फिर से स्थापित करने के कृत्रिम प्रयास का कोई भविष्य नही है। कीमत के मामले म खादी का कपडा मिल म वन कपडे का मुकावला नही कर सकता और इसलिए यह अत्यत निधनवग की पहुच के वाहर है। गाधी न अपने पत्र हरिजन' के 19 जनवरी 1938 के अक म शिकायत की थी कि काग्रेस सविधान म खादी स सवधित धारा का पालन स ज्यादा उल्लघन किया जा रहा है' और उन्होन अपने देशवासिया से अपील की कि 'विदेशी कपडा जसा मुलायम, आकषक तथा सस्ता न होने के वावजूद व खादी का ही इस्तेमाल करें।' पहली दिक्कत (अर्थात मुलायम और आकषक न होना) को देशभक्तिपूण अपीलो से दूर किया जा सकता है लेकिन दूसरी दिक्कत (सस्ता न होना) काफी महत्वपूर्ण है क्याकि आम भारतीय की मौजूदा आय वहुत कम है। यहा एक वात वहुत स्पष्ट है कि भारत जसे अत्यत गरीव देश म उत्पादन के ऐस श्रमसाध्य और आदिम साधना की जरूरत नही है जिसस अधिक से अधिक महनत से कम से कम उत्पादन हो वल्कि अत्यत आधुनिक तकनीक और उपकरणा की जरूरत है जिसस काफी तेजी से अधिक स अधिक उत्पादन किया जा सक ताकि गरीवी पर कावू पाने के साधन उपलब्ध हो। वशक यह ध्यान दन का वात है कि अपनी वाद की घोषणाआ म गाधी ने आधुनिक मशीना के वारे म अपन विचारा म सशाधन किया और यह तक पश किया जैसाकि उन्होंने ग्रामोद्योग के वार म 'हरिजन' म अपन वाद के एक लेख म कहा कि 'मशीनीकरण उस स्थिति म अच्छा ह जव निर्धारित काम

का पूरा करने के लिए बहुत कम हाथ हो। जब काम की जरूरत से ज्यादा हाथ हो तो मशीनीकरण एक बुराई है और भारत म यही स्थिति है।' इस तक म छिपी प्रतिक्रियावादी भ्राति स्पष्ट है।

भारतीय समस्याओ के समाधान के लिए एक आदिम अथव्यवस्था का प्रचार करना महज इसलिए प्रतिक्रियावादी काम नही है क्योकि यह सारी कोशिशो को मूल समाधान की विपरीत दिशा म ले जाता है (क्योंकि गरीबी और दुखदद की वतमान बुराइया की ज" आदिम तकनीक ही है और यह अपने आप म उस समाजव्यवस्था की जड मे मौजूद है जो साम्राज्यवाद के तहत शोषण की शिकार है) बल्कि यह किसानो और आम जनता का ध्यान उन बुनियादी सामाजिक समस्याओ से हटाता है जो उनके सामने अपने भीषणतम रूप म खडी है। जब तक जमीन, जमीदारी प्रथा और जमीन के पुनर्वितरण की समस्या से नही निबटा जाता, तब तक कृषि के क्षेत्र म विकास असभव है। लेकिन इस स्थल पर खेतिहर आदशवादियो और लुप्त ग्रामीण समुदाय के पुजारियो की आवाज धीमी पड जाती है जबान लडखडाने लगती है और जमीदारी प्रथा के पक्ष म अस्पष्ट सकोचपूण दलील म डूब जाती है। गाधी ने सयुक्त प्रात के जमीदारो से 1934 म कानपुर मे जो बातचीत की थी वह काफी मशहूर है। जमीदारो द्वारा समाजवाद के खतर का भय प्रदर्शित करने पर गाधी ने उन्हे आश्वासन दिया कि 'जमीदारो और काश्तकारो के बीच अच्छे सबध बनाए जा सकते है और इसके लिए दोनो का हृदय परिवतन करना होगा। मै कभी इस पक्ष मे नही हू कि तालुकेदारी या जमीदारी प्रथा को समाप्त किया जाए।' उन्होने आगे कहा

> मैं सपत्तिवान वर्गों को बिना किसी उचित कारण के उनकी निजी सपत्ति से वचित कराने के काय म कोई भूमिका नही निभाऊगा। मेरा लक्ष्य आपके हृदय तक पहुचकर उसका इस तरह से परिवतन करना है ताकि आप अपनी सारी निजी सपत्ति को अपने काश्तकारो के लिए न्यास का रूप दे दें और इसका इस्तेमाल अब मुख्यतया उनकी खुशहाली के लिए करें मेरी कल्पना मे जो रामराज्य है उसम राजा और रक दोनो के अधिकारो की गारटी शामिल है। आप निश्चित रह सकते हैं कि किसी तरह का वगसघष रोकने म मैं अपने प्रभाव का भरपूर इस्तेमाल करूगा मान लीजिए कि आपको आपकी सपत्ति से वचित करने का कोई अन्यायपूण प्रयास होता है तो वैसी हालत म आप मुझे अपनी ओर से लडता पाएगे। हमारा समाजवाद या साम्यवाद अहिंसा पर तथा श्रम और पूजी एव जमीदार और काश्तकार के बीच सद्भावपूण सहयोग पर आधारित होना चाहिए। (गाधी की सयुक्त प्रात के जमीदारो के शिष्टमडल से भेंटवार्ता, जुलाई 1934, 'महरट्टा', 12 अगस्त 1934)

हमने पहले भी कई बार देखा है कि किस प्रकार गाधी ने इसी तरह से औद्योगिक पूजीपति

का पक्ष लिया है और वर्गमेद पर आधारित मजदूर सगठनो का विरोध किया है।

यदि बडे बुर्जुआ के दृष्टिकोण म देख जो एक मुस्कान के साथ अपनी आदशवादी उत्कठाओ और भोलीभाली अद्भुत कल्पनाओ को झेलना या कभी कभी प्रोत्साहित भी करता होता है तो इस उपदेश का व्यावहारिक महत्व समझ म आ जाएगा। वे जानते है कि अपने वर्ग-हिता की रक्षा के लिए और जनता को काबू म रखकर शाति बनाए रखने के लिए इनका व्यापारिक महत्व कितना है। आधुनिक युग की नाजुक सक्रमणशील स्थितियो म बुर्जुआ राष्ट्रवाद के अभीष्ट प्रतिनिधि और योग्यतम नेता के रूप म गाधी की ऐतिहासिक भूमिका का जो सामाजिक महत्व है, वह उनके सामाजिक दशन और बुर्जुआ दृष्टिकोण के बीच के सतही अतर्विरोध के बावजूद व्यवहार म उनकी राजनीतिक भूमिका से मल खाता है। उनके भाषणो और प्रवचनो म जो अतर्विरोध और दोष दिखाई देते है, जिसे कोई भी सामान्य आलोचक भाप सकता है वही दरअस्ल उनकी अदभुत सफलता और उपलब्धि का रहस्य है। इस सक्रमणकाल म दूसरा ऐसा नेता न था जो राष्ट्रीय आदोलन की वास्तविक बुर्जुआ दिशा और सजग होती हुई (किंतु जो उस समय तक पूरी तरह जागरूक न थी) जनता के बीच की खाई को पाट सकता। शुभ और अशुभ दोनो के लिए गाधी ऐसा कर सके थे। उन्होने आदोलन को नतृत्व दिया यहा तक कि ऐसा लगता था मानो आदोलन को उन्होने ही जन्म दिया था। उनकी यह भूमिका तभी समाप्त हुई जब जनता धीरे धीरे अपने वर्गहिता को स्पष्ट रूप से पहचानने लगी और भारतीय दृश्यपटल पर वास्तविक वर्गशक्तियो तथा वर्गसबधो ने काल्पनिक तथा धार्मिक आवरण का सहारा लिए बिना डटना शुरू किया।

फिर भी औद्योगिक बुर्जुआ ने गाधीवाद को यद्यपि बहुत खुलकर नाम के लिए अपना और जनता का नेता माना पर राष्ट्रीय आदोलन के आवश्यक कायक्रम के रूप म प्रगतिशील औद्योगिक विकास की आवश्यकताओ और लक्ष्यो की प्राप्ति के माग म इसे कभी नही आने दिया। यहा सामाजिक रूढिवाद को सिद्धात म चाहे यह कुछ भी उपदेश क्यो न दे व्यवहार म बदलना पडा। भारतीय मिलो म बने कपडे के समान अधिकार को स्वीकार किया गया और 1930 के गाधी के 11 सूत्री प्रस्ताव को माना गया जो सामान्यतया बुर्जुआ व्यापारिक, औद्योगिक और वित्तीय कायक्रम था। जैसाकि 1938 के औद्योगिक नियोजन कायक्रम के बाद काग्रेस द्वारा स्थापित राष्ट्रीय योजना आयोग से पता चलता है राष्ट्रीय आदोलन और राष्ट्रीय काग्रेस एक साथ अत्यत तीव्र औद्योगिक विकास की योजना म जुट गए।

औद्योगिक विकास के बारे म काग्रेस के आधुनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति काग्रेस अध्यक्ष ने 1938 म इडियन साइस एसोसिएशन की वार्षिक बैठक म की। इस बैठक म प्रोफेसर साहा ने सवाल किया था

क्या मैं जान सकता हू कि आने वाले कल का भारत ग्राम्य जीवन के दर्शन को या बलगाडी दर्शन को फिर स जीवित करने जा रहा है जिससे गुलामी का शाश्वत बनाया जा सके अथवा वह एक ऐसे आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र का रूप लेने जा रहा है जो अपने सभी प्राकृतिक साधना का विकास करके गरीबी, अज्ञानता और सुरक्षा की समस्याओं को हल कर सके और राष्ट्रों के सौजन्य मे सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सभ्यता का एक नया चक्र शुरू कर सक ?

राष्ट्रीय काग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस ने जवाब दिया

राष्ट्रीय विकास का काम विज्ञान की मदद से ही सभव है भारत आज भी विकास की पूव औद्योगिक अवस्था मे है। कोई भी पुनरुज्जीवन या पुनरुत्थान तब तक सभव नही ह जब तक भारत एक औद्योगिक क्राति की यातना से न गुजरे। हम चाहे इसे पसद करे या नही लेकिन हम यह तथ्य मानना होगा कि आधुनिक इतिहास का वतमान युग औद्योगिक युग है। औद्योगिक क्राति से बचने का कोई उपाय नही है। अधिक स अधिक हम यही तय कर सकत है कि यह क्राति अथात उद्योगीकरण का काम ग्रेट ब्रिटेन की तरह अपेक्षतया धीरे धीरे हो या सोवियत रूस की तरह तेजी के साथ जिसम अधिक प्रयत्न की जरूरत होती है। मैं समझता हू कि इस देश म भी यह काम तजी से होना है।

इस प्रकार व्यावहारिक अनुभव और विकास ने पुरानी आधिभौतिक अटकलबाजियो का जवाब दे दिया। सक्रिय राष्ट्रीय आदोलन के क्षेत्र से सामाजिक रूढिवादिता अब जा रही है सिवाय कुछ पुरान भ्रमा के जो अब भी घिसट घिसट कर अपना अस्तित्व बनाए हुए है, पर वे अब नीतिनिर्देशन का दावा नहीं कर सकते। इस प्रकार यह बात सामन आई कि आधुनिक राष्ट्रीय आदोलन म व्यावहारिक रूप म तीन नही बल्कि दो मुख्य प्रवत्तिया, वर्गीकरण, कायक्रम और नीतिया है एक तो प्रमुख औद्योगिक पुर्जुआ प्रवृत्ति जिसकी निम्न पूजीपतिवग क समूहा पर अलग अलग छाप है और दूसरी औद्योगिक मजदूरवग की समाजवाद की प्रवत्ति जो मजदूरो, गरीब किसाना और शहरी निम्न पूजीपतिवग क निचले तबके के हितो को अभिव्यक्त करती है। नीति विषयक इन दो प्रमुख धाराओ के बीच विभिन्न कायक्रम, नेतृत्व और वग एक समूह बनाते है हालाकि इनकी नीति अक्सर बहुत साफ नही होती। इन वर्गों के आपसी सबधो और शक्ति सबधो पर, जो अपन भिन्न सामाजिक लक्ष्या क बावजूद राष्ट्रीय सघष और कुछ सीमा तक राष्ट्रीय पुनर्निमाण क लक्ष्यो की दिशा म फिलहाल एक साथ बढ सकत है भारतीय राजनीति क विकास का भावी माग निभर है।

3 पुनर्निर्माण, उद्योगीकरण और समाजवाद

आधुनिक युग म राष्ट्रीय आदोलन न उद्योगीकरण को केंद्र म रखत हुए राष्ट्रीय पुनर्निमाण

के दूरगामी कायक्रम की आवश्यकता को महसूस किया है। अक्तूबर 1935 म दिल्ली म प्रातीय सरकारो के उद्योगमत्रिया का सम्मेलन हुआ था जिसम पश प्रस्ताव म कहा गया था

उद्योगमत्रिया के इस सम्मेलन की धारणा है कि गरीबी और बेरोजगारी राष्ट्रीय सुरक्षा और सामान्य तौर पर आर्थिक पुनरुत्थान की समस्याए उद्योगीकरण के बिना हल नही की जा सकती। उद्योगीकरण की दिशा म एक कदम के रूप म राष्ट्रीय नियोजन की एक व्यापक योजना तैयार की जानी चाहिए

विभिन्न प्रातीय सरकारा के दृष्टिकोण पर विचार करने के बाद सम्मेलन की यह राय है कि जब तक व्यापक औद्योगिक योजना तैयार नही हो जाती तब तक के लिए अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय महत्व के निम्नाक्ति बडे उद्योगो को शुरू करन की दिशा म कदम उठाने चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जहा तक सभव हो सभी प्रातो तथा रियासतो को मिलकर प्रयास करना चाहिए

(क) सभी तरह की मशीनो, सयत्रा और औजारा का निर्माण,
(ख) मोटरगाडिया, मोटरचालित नौकाओ, आदि तथा इनके सहायक उपकरणो और परिवहन तथा सचार व्यवस्था से सबधित अन्य उद्योग,
(ग) विद्युत सयत्रा और इनके सहायक उपकरणो का निर्माण,
(घ) भारी रसायन और उवरको का उत्पादन,
(च) धातु उत्पादन,
(छ) बिजली पैदा करने और बिजली सप्लाई करन स सबधित उद्योग।

इस प्रस्ताव के अनुरूप काग्रेस काय समिति क निर्देशन म एक अखिल भारतीय राष्ट्री योजना समिति का गठन किया गया। इस समिति की सिफारिशा का साराश पहल ही प्रकाशित किया जा चुका है।

पुनर्निर्माण और नियोजित विकास क लिए अनेक महत्वाकाक्षी परियोजनाए भारत मे तैयार की जा रही है या इनपर विचार किया जा रहा है। भारतीय उद्योगपतिया की सबसे बडी योजना, ए प्लान आफ इकनामिक डेवलपमट फार इडिया' (जिसे आमतौर से बबई योजना' कहत है) का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। 1944 और 1945 मे इसे दो भागो म प्रकाशित किया गया था। 100 अरब रुपय की वृहद पूजी खच करने के कायक्रमवाली इस योजना क लक्ष्य क अनुसार 15 वर्षों के अदर कुल राष्ट्रीय आय म तीन गुनी वृद्धि हो जाएगी जिससे इस अवधि म जनसख्या म वृद्धि होने के बावजूद प्रति व्यक्ति आय दुगनी हो जाएगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति क लिए मुख्य रूप से उद्योग पर निभर रहा गया है। उपर्युक्त योजना के निर्माताओ ने प्रस्तावित किया था कि उद्योग म

होने वाली आय में 500 प्रतिशत, कृषि में होने वाली आय में 130 प्रतिशत और सेवा से होने वाली आय में 200 प्रतिशत की वृद्धि की जाएगी ताकि कुल राष्ट्रीय आय में उद्योग का योगदान मौजूदा 17 प्रतिशत की बजाय 35 प्रतिशत, कृषि का योगदान मौजूदा 53 प्रतिशत की बजाय 40 प्रतिशत और सेवा का योगदान मौजूदा 22 प्रतिशत की बजाय 20 प्रतिशत हो जाए। उन्होंने बुनियादी उद्योगों को वरीयता देने की मांग की है, इन उद्योगों में बिजली, खान, इंजीनियरिंग, रसायन, जहाजनिर्माण, आटोमोबाइल्स और विमान निर्माण आदि शामिल हैं। लघु और कुटीर उद्योगों के लिए पर्याप्त क्षेत्र की व्यवस्था की जाने की योजना है।

इस योजना में वैसे तो बड़े प्रशंसनीय उद्देश्य शामिल किए गए हैं लेकिन इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्तों की उपेक्षा कर दी गई है। इस योजना में भारत में उद्योग धंधों के विकास पर लगे बुनियादी बंधनों को जमींदारी प्रथा के जानलेवा नियंत्रण को तथा ब्रिटेन के निहित स्वार्थों के प्रभुत्व को समाप्त करने का कोई इरादा नहीं है। न तो राष्ट्रीय संपदा के समान वितरण की समस्या को किसी प्रभावकारी ढंग से हल किया गया है। यहां तक कि काफी हद तक वित्त की आपूर्ति मुद्रास्फीति और विदेशी पूंजी के जरिए करने की व्यवस्था है। सचाई यह है कि राष्ट्रीय हितों को बढ़ाने के लिए कोई स्वतंत्र औद्योगिक विकास का खाका सामने रखने की बजाय इस योजना में यह गंध मिलती है कि भारतीय बुर्जुआवर्ग अब ब्रिटिश महाजनी पूंजी के साथ मिलकर शोषण करने का प्रयास करेगा। जीवनस्तर उठाने के सिलसिले में जो बढ़ चढ़कर बातें की जाती थीं उनके पीछे असली इरादा क्या था यह उस समय बहुत स्पष्ट हो गया जब इस योजना के तीन प्रमुख प्रवर्तकों जे० आर० डी० टाटा, घनश्यामदास बिड़ला और सर श्रीराम ने ब्रिटिश पूंजीपतियों के साथ समझौते कर लिए।

भारत के सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए उद्योगीकरण की आवश्यकता को एक मुख्य व्यापक कार्यक्रम के रूप में सामान्य रूप से और अधिकाधिक सुस्पष्टता के साथ स्वीकार कर लेना ही राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम है। लेकिन साथ ही यह भी जाहिर है कि इस तरह के कार्यक्रम के प्रश्न के साथ कुछ नए तरह के दूरगामी मसले पैदा हो जाते हैं जिनका संबंध आवश्यक स्थितियों तथा इस कार्यक्रम की पूर्ति के तरीकों से तथा इस कार्यक्रम को पूरा करने वाली सामाजिक शक्तियों की क्षमता से है। जैसाकि अनेक विकसित पूंजीवादी देशों में देखा गया है, आर्थिक संकट के सदमे के कारण तथा सोवियत संघ में समाजवादी योजना की सफलता से प्रेरणा पाकर अनेक देशों में योजना की अवधारणा को स्वीकार किया गया है लेकिन यह काम बहुत अमूर्त तकनीक के साथ हुआ है और इस अवधारणा को स्वीकार करते समय न तो उन विभिन्न नियमों को ध्यान में रखा गया जो पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं और न वास्तविक सामाजिक तथा वर्गशक्तियों का ही ध्यान में रखा गया। पूंजीवादी देशों के अनुभव ने इस तरह के दृष्टिकोण की कमजोरी को पूरी तरह साबित कर दिया है।

इस तरह का दृष्टिकोण अपनाना तो भारत जैसे देश म मनव भी नही क्योंकि भारत ऐसा दश है जो वस्तुत क्रांतिकारी मामाजिक रूपातरण की प्रक्रिया स गुजर रहा है और जहा भूमि मजदूरो तथा किसानो की मागो को अनिवाय रूप से परिवतन की निर्णायक प्रेरक शक्ति का महत्वपूण स्थान लेना हागा। आर्थिक पुनगठन के प्रश्न को बुनियादी सामाजिक और वर्गीय मसलो स अलग नही किया जा सकता।

भारत के उद्योगीकरण का काम और मौजदा निधनताग्रस्त निम्न तकनीक के स्तर से उठाकर इसे विकसित तकनीकवाले देशो क स्तर तक पहुचाने का काम एक ऐसा विशाल काय है जिसके लिए अत्यत विराट शक्तिया की जरूरत है। इसके लिए समूची आबादी के सक्रिय सहयोग की जरूरत है। इसके लिए देश की आर्थिक और वित्तीय व्यवस्था के निर्णायक स्थलो पर राजसत्ता का अपने हाथ म होना जरूरी है।

क्या भारतीय बुर्जुआ यह काम पूरा कर सकता है ? क्या भारत की जनता एक लब सघष के द्वारा आजादी हासिल करन के बाद देश का मुट्ठी भर शोषकवग को सौपना और खुद को गुलामी की बेडिया म जकडना पसद करगी ? यह सवाल पूछना इसलिए जरूरी है ताकि यह बताया जा सके कि भारत मे आर्थिक और सामाजिक प्रगति का काम उद्योगीकरण का काम तथा नए समाज की स्थापना का काम पश्चिमी देशो के प्रारभिक पूजीवाद के दिनो की औद्योगिक क्राति की प्रक्रिया से बुनियादी तौर पर भिन्न होना चाहिए। पूजीवाद के ह्रास तथा अतराष्ट्रीय सवहारा क्राति के विकास के दौर मे भारत म हो रहे उद्योगीकरण और आर्थिक पुनगठन का काम निश्चित रूप से अपने अनुकूल स्वरूपो और तरीको के जरिए पूरा होगा।

उद्योगीकरण का काम तब तक पूरा नही हो सकता जब तक कृषि के क्षेत्र म पूरी तरह पुनगठन न हो। यह आज भी भारतीय अथव्यवस्था की मुख्य समस्या है। य दानो प्रक्रियाए दरअस्ल एक दूसरे की पूरक ह। यहा तक कि पूजीवादी अथव्यवस्था की स्थितियो म भी जब तक खेती म लगी जनता गरीबी की निम्नतम सीमा पर रहती है और औद्योगिक उत्पादनो क लिए देश म बाजार तैयार नही होता है तब तक औद्योगिक विकास बाधित और पगु बना रहता ह। इसकी उलटी स्थिति यह है कि कृषि के क्षेत्र म पुनगठन के लिए औद्योगिक विकास जरूरी होता है क्योकि औद्योगिक विकास के जरिए ही खेती के लिए मशीनें मिलती है और मशीनें ही उत्पादन का स्तर ऊचा उठाती ह तथा बडे बडे बजर पडे खेतो को जोतती बोती ह। इसके साथ ही औद्योगिक विकास से उन लाखो लोगो को काम मिलता ह जो खेती पर जरूरत से ज्यादा बोझ होन के कारण गरीबी और अध बेराजगारी का जीवन बिता रह हाते हैं। कृषि क क्षेत्र म पुनगठन स खेती पर लद अत्यधिक बोझ स छुटकारा मिलता ह।

लेकिन जसाकि इस समस्या से सबधित स्थितियो की तीसर अध्याय म की गई जाच

पडताल से पता चलता है, कृषि के क्षेत्र म पुर्गठन के लिए जरूरी है कि जमीदारी प्रथा को समाप्त किया जाए, खेतिहर जाता का बुनियादी तौर पर पुर्नवितरण हो, अलाभकर जीतो की दिवालिया प्रणाली को समाप्त किया जाए और खेती की आदिम छोटे पैमान वाली तकनीक से धीरे धीरे बड़े पैमाने पर की जाने वाली सामूहिक खेती की दिशा मे बढा जाए। इसका कोई अधूरा समाधान यहा सभव नही है। कृषि के क्षेत्र म 'सुधार' की बात करना और जमीदारी प्रथा को ज्यो का त्या बना रहने देना, 'विकसित' खेती का प्रवचन दना और वतमान भूमि वितरण व्यवस्था पर आच न आन देना, इससे कोई लाभ नही हो सकता। भारत की जो वतमान निराशाजनक स्थिति है उसम मौजूदा जमीदारी प्रथा और उपजमीदारी प्रथा की बेतहाशा परजीविता को, किसाना पर असीम बोझा की अथवा भूमि की वतमान जोत व्यवस्था तथा खेती की भयकर बरबादी की न तो कोई गुजाइश है और न इन खामिया को झेलने के लिए साधन ही उपलब्ध ह। भारत के प्रमुख कृषि विशेषज्ञ प्रोफेसर राधाकमल मुखर्जी ने जो अपने दृष्टिकोण मे किसी भी अथ म समाजवादी नही ह, सो 1935 म अपन आगरा एक्सटेशन लेक्चर म यहा तक कहा है कि भारतीय कृषिव्यवस्था म तब तक कोई सुधार सभव नही है जब तक 'भारत के गावा म बिखरी छोटी छोटी जोतो को मिलाकर एक सहकारी फाम न बना दिया जाए और कृषि को एक सामूहिक सेवा न माना जाए।' यह काम महज एक छलाग म पूरा नही हो सकता। लेकिन इस दिशा मे पहला कदम यह हो सकता है कि जमीदारी प्रथा समाप्त की जाए, और खेतिहर जोतो का पुर्नवितरण हो तथा इसके बाद सरकारी सहायता, सहकारी सस्था से ऋण सुविधाओ तथा कृषि तकनीक को उन्नत बनाने के लिए डिपो केंद्रो से खेती के काम आने वाली मशीनो को उधार के रूप मे देने की व्यवस्था की जाए। कृषि क्रांति से कतराकर नही निकला जा सकता। यह परिवतन की मुख्य प्रेरक शक्ति है और नए भारत की आधारशिला है।

फिर भी यही वह स्थल है जहा भारत क राष्ट्रीय आदोलन के विकास के भावी नेता के रूप मे भारतीय बुर्जुआवग की कमजोरी बहुत खुलकर सामन आती है। अपनी उन्नति और विकास की स्थितियो की वजह से भारत का औद्योगिक और व्यापारिक बुर्जुआवग जमीदारवग के साथ घनिष्ठ रूप से जुडा हुआ है, सपत्ति के हिता और स्वरूपा मे एक अतर्संबध है। इसलिए प्रगतिशील बुर्जुआ ने भूमिव्यवस्था म बुनियादी सुधार की समस्या को हल करने म तथा जमीदारी प्रथा को समाप्त करन म हमेशा हिचकिचाहट दिखाई है भल ही य चीजे भारतीय अथव्यवस्था या भारत के औद्योगिक विकास क लिए कितनी भी जरूरी क्यो न हो? 1946 क कांग्रेस के चुनाव कायक्रम म जमीदारी प्रथा की समाप्ति के सिद्धात को मान लिया गया था लेकिन इसके लिए यह आधार तय किया गया था कि जमीदारो को बदले म 'उचित मुआवजा' दिया जाए जिसका अथ वस्तुत किसाना पर बोझ का बना रहना ही है। इसी प्रकार 1946 म कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति के तत्वावधान मे प्राथमिक शिक्षा के कायक्रम का जो मसौदा प्रकाशित हुआ था उसम बडे शात भाव से यह प्रस्ताव रखा गया था कि किसाना का दिया

जाने वाला ऋण सरकार द्वारा निषिद्ध होना चाहिए जिसका 10 प्रतिशत किसानों से लिया जाना चाहिए, जिसमें से 5 प्रतिशत भाग सूदखोरों को चला जाएगा और 5 प्रतिशत से प्राथमिक शिक्षा का खर्च चलेगा।

भूमिव्यवस्था की बुनियादी समस्या हल करने में भारतीय बुर्जुआवर्ग की हिचकिचाहट का मुख्य कारण महज यही नहीं है कि जमींदारवर्ग के हितों के साथ उसके हित मेल खाते हैं या जमींदारवर्ग के साथ उसका घनिष्ठ अंतर्संबंध है बल्कि इस हिचकिचाहट के पीछे यह भय भी काम करता है कि कृषि क्रांति से व सामाजिक शक्तियां छूट निकलेंगी जो इस बुर्जुआ वर्ग के विशेषाधिकारों, संपत्ति के पूंजीवादी स्वामित्व के समूचे आधार और शोषण को समूल नष्ट कर देंगी। भारतीय बुर्जुआ के साम्राज्यवादविरोधी संघर्ष को पंगु बनाने के लिए और इस प्रकार राष्ट्रीय संघर्ष को भीतर से कमजोर करने के लिए साम्राज्यवादियों ने बड़ी चालाकी से और लगातार इस भय को खूब बढ़ा चढ़ाकर प्रचारित किया है। लार्ड हली (तत्कालीन सर मैलकोम हेली) ने 1924 में ही स्वराज पार्टी को चेतावनी देने के लिए विधानसभा में यह तर्क पेश किया था

> भारत में यदि सही अर्थों में क्रांति जैसी कोई घटना हुई तो इसका उस वर्ग पर बहुत घातक असर पड़ेगा जिसका इस समय विधानसभा और प्रांतीय कौंसिलों में प्रतिनिधित्व है, क्योंकि अज्ञानता में डूबी भारतीय जनता के बीच कोई भी राजनीतिक क्रांति बहुत कम समय में सामाजिक क्रांति का रूप ले लेगी।

इस वक्तव्य के साथ गांधी के इस स्पष्ट कथन की तुलना की जा सकती है जो जनवरी 1940 में उनके पत्र 'हरिजन' में छपा था

> कांग्रेस के एक काफी प्रभावशाली सदस्य ने मुझसे कहा है कि इस बार जैसे ही मैं सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करूंगा मुझे बहुत आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया देखने को मिलेगी। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि देश के अनेक हिस्सों के मजदूर किसान सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ ही हड़ताल छेड़ देंगे। मैंने उनसे बताया कि यदि ऐसा हुआ तो मैं बहुत उलझन में पड़ जाऊंगा और मेरी सारी योजना ही अस्तव्यस्त हो जाएगी मैं आशा करता हूं कि मुझसे यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि मैं जानबूझकर कोई ऐसा संघर्ष छेड़ूंगा जिसकी परिणति अराजकता और रक्तरंजित तबाही हो।

सभी देशों के दकियानूस प्रतिक्रियावादी इसी बहुप्रचलित शब्दावली का इस्तेमाल करते हैं कि मजदूरों और किसानों की कार्यवाही से 'रक्तरंजित तबाही' हो जाएगी और वे साम्राज्यवाद तथा राष्ट्रीय बुर्जुआ के लिए एक ही मंत्र प्रदान करते हैं।

इस प्रकार भारतीय स्थिति के प्रत्यक्ष अनुभव न और इसकी पहले के किसी भी दौर की तुलना म तीव्र आवश्यकताओ ने, राष्ट्रीय सघप म बुर्जुआवग के नतृत्व की विफलता और कमजोरी के वार वार के अनुभव ने तथा इन सबसे वढकर मजदूरवग की उदीयमान शक्ति, सक्रियता और चेतना न तथा किसान क्रांति को सपन्न करने वाली शक्तियो की एकजुटता न ही भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के आधुनिक दौर म समाजवाद क प्रश्ना को अपरिहाय रूप से अगली पक्ति म लाकर खडा कर दिया है। भारत मे समाजवाद की अवधारणा भविष्य की कोई अमूत अटकलबाजी नही है जो विदेश से आयात की गई हो वल्कि यह भारतीय स्थितियो और भारतीय अनुभव का सीधा उत्पाद तथा परिणाम है जिसन हर देश की ही तरह विश्व आदोलन के अनुभव, सिद्धात और व्यवहार का इस्तमाल किया है। भारत म मजदूरवग का आदोलन आज भी विकास की प्रक्रिया म है, यह आज भी अपने सगठन, अपन कायक्रम की स्पष्टता, अनुभव और जन आधार को मजबूत कर रहा है लेकिन सभी लोग यह मानने लगे ह कि यह भविष्य की एक उभरती शक्ति है।

राष्ट्रीय आदोलन के भीतर समाजवादी विचारधारा के प्रभाव का और राष्ट्रवाद क साथ समाजवाद के सबध को प्रचारित करने के काम को पिछले दशक म 1929 और 1936 38 मे काग्रेस अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू की सामरातिक स्थिति म विशिष्ट अभिव्यक्ति मिली। जवाहरलाल नहरू हमेशा सगठित समाजवादी आदोलन से बाहर रह लेकिन उन्होन उभरती हुई समाजवादी विचारधारा और अपक्षाकृत पुरान नतृत्व क बीच एक पुल का काम किया। नेहरू ने राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक मुक्ति के बीच के घनिष्ठ सबध को एकदम सामने ला दिया

> विदेशी सरकार के स्थान पर यदि कोई देशी सरकार स्थापित होती है और उस समय भी निहित स्वाथ ज्यो के त्यो बन रहत है तो यह आजादी की छाया भी नही होगी
>
> इसलिए भारत का तात्कालिक लक्ष्य महज यही होना चाहिए कि उसकी जनता का शोपण समाप्त हो। राजनीतिक रूप से इसका अथ स्वाधीनता तथा ब्रिटेन के साथ सबधो की समाप्ति अर्थात साम्राज्यवादी प्रभुत्व की समाप्ति होना चाहिए, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से इसका अथ सभी खास वर्गो के विशेषाधिकारो और निहित स्वार्थो की समाप्ति होना चाहिए। (जवाहरलाल नहरू विदर इडिया' ? 1933)

यह मानत हुए कि राष्ट्रीय सघप म काग्रेस समाजवादी और गैरसमाजवादी तत्वो क सहयोग का प्रतिनिधित्व करती है और गैरसमाजवादी तत्वो का फिलहाल बहुमत है, उन्होन यह बताया कि किस प्रकार वह यह आशा करत ह कि राष्ट्रीय आदोलन समाज वादी दृष्टिकोण की दिशा म बढेगा

मैं भारत की आजादी के लिए सघप कर रहा हू क्योकि मेरे भीतर जो राष्ट्रीय तत्व है वह कभी विदेशी प्रभुत्व का बरदाश्त नही कर सकता, मैं आजादी के लिए इसलिए भी सघपरत हू क्योकि मरे विचार से सामाजिक और आर्थिक परिवतन के लिए यह एक अनिवाय कदम है। मैं चाहूगा कि काग्रेस एक समाजवादी सगठन का रूप ले और नई सभ्यता के लिए दुनिया की जो अन्य शक्तिया काम कर रही हैं उनके साथ कधे स कधा मिलाए। लेकिन मैं जानता हू कि काग्रेस का आज जो स्वरूप है, उसम अधिकाश काग्रेसी शायद इसके लिए तैयार न हो

इस देश मे समाजवाद के विकास की जबरदस्त इच्छा के बावजूद मैं इस प्रश्न को काग्रेस पर थोपना नही चाहता और अपने स्वाधीनता सघप म कोई कठिनाई नही पैदा करना चाहता। मैं खुशी खुशी और अपनी पूरी ताकत के साथ उन लोगो के साथ सहयाग करूगा जो आजादी के लिए काम कर रह है भले ही वे समाजवादी समाधान से असहमत क्यो न हो। लेकिन मैं अपनी स्थिति बडे साफ शब्दो मे स्पष्ट करके ही ऐसा करूगा और यह आशा करूगा कि आने वाले दिनो मे काग्रेस को और देश को समाजवादी विचारधारा म ढाल लूगा क्योकि मैं जानता हू कि ऐसा करके ही आजादी मिलेगी। (जवाहरलाल नेहरू, राष्ट्रीय काग्रेस के लखनऊ अधिवशन म अध्यक्षीय भाषण, 1936)

यहा काग्रेस के धीरे धीरे समाजवाद म रूपातरित होन की एक तस्वीर पेश की गई है। समाजवाद म रूपातरण के बीच की अवधि मे एक अस्थाई सतुलन भी बनाए रखा गया। फिर भी इस अवधारणा मे उन वग शक्तियो के वतमान सघष को परे रखा गया है जो अनिवाय रूप से काग्रेस के भीतर और काग्रेस तथा आम जनता के बीच के सबध के मसले मे अभिव्यक्त होती है। परिणामत यह अवधारणा राष्ट्रीय एकता के नाम पर वर्गों के बीच समझौते का सिद्धात बन जाती है और इस तरह का वग समझौता व्यवहार मे उस राष्ट्रीय बुर्जुआ नेतृत्व के इशारे पर चलता है जो सक्रिय राष्ट्रीय सघष के विकास को पीछे खीचता है।

इसम कोई सदह नही है, और यह प्रगतिशील भारतीय जनमत के दिमाग म अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि भारत की समस्याओ को समाजवादी रास्ते पर चलकर ही हल किया जा सकता है। समाजवादी उद्योग और सामूहिक कृषि के जरिए ही अतिम तौर पर वे साधन प्राप्त हो सकत हैं जो भारत को दुनिया भर के कूडे-कचरे म उठाकर समृद्धि और उल्लास की धरती बना देग। अपन पूण स्वरूप म विकसित और नेतृत्व की भूमिका प्राप्त मजदूरवग तथा तमाम बधनो से मुक्त मेहनतकश किसानवग की जबरदस्त सामाजिक शक्तिया ही अत्यत कुशाग्र बुद्धिवाले प्रगतिशील बुद्धिजीविया और निम्न पूजीवादी तबके

के लोगो को अपन साथ लेकर गदगी से भरे अस्तवल को अतिम तौर पर साफ कर सकेगी और भारत म नए समाज का निर्माण कर सकेगी।

दूर बैठे किसी प्रेक्षक को भले ही भारत क भविष्य के बारे म यह दष्टि काफी दूर की बात लगे लेकिन बात ऐसी है नही। भारत के समाजवादी भविष्य की गतिशील शक्तिया, औद्योगिक मजदूरवग और जागृत किसानवग की शक्तिया पहले से ही एकजुट हो रही है और राजनीतिक रगमच पर दिन ब दिन बडी स्पष्टता के साथ अग्रिम पक्ति म अपना स्थान बना रही है। एक बार जैसे ही मजदूरवग ने माक्सवादी विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त कर और वगसघप के दृढ आधार पर अपनी राजनीतिक पार्टी और टेड यूनियन सगठन के जरिए सगठन और राजनीतिक नेतत्व की परिपक्वता को प्राप्त कर लिया और जसे ही उसने एक बार गरीब किसान जनता तथा अपने किसान सगठन बना रहे खेतिहर सवहारा के साथ सपक और सहयोग कायम कर लिया त्या ही मेहनतकशवग के भारतीय गणराज्य की प्राप्ति के लिए स्थितिया तैयार हो जाएगी। यह गणराज्य मजदूरो और किसाना की जनतात्रिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करेगा। इस गणराज्य म मजदूरा और किसानो के साथ होगे प्रगतिशील बुद्धिजीवी तथा शहरी निम्न पूजीपतिवग के अन्य तत्व जो अपने सामूहिक प्रयास से उस रास्ते पर सामाजिक पुनर्निर्माण की नीव डाल सकते है जो समाजवाद की ओर जाता है।

इस सदभ म सोवियत सघ और वहा विकसित नए तरह के जनतत्र के अनुभव का भारत जैसे देश के लिए बहुत महत्व है और इस अनुभव से लाभप्रद सबक लिया जा सकता है। क्राति से पूव के पुराने जारशाही रूस और वतमान भारत की स्थिति के बीच बुनियादी मतभेद है और दोनो की स्थितिया म यात्रिक ढग से कोई तुलना नही की जा सकती। यह अतर खासतौर से एक साम्राज्यवादी देश और एक उपनिवेश की स्थितियो के बीच का अतर है फिर भी सामाजिक शक्तियो और रूस मे पैदा हुई विशेप तरह की समस्याओ के सदभ मे जिनका समाधान किया गया, दोनो देशो म महत्वपूण साम्य है जिनका आज भारत के लिए बहुत महत्व है। भारत म हम एक ऐसे विदेशी तानाशाह शासन की तस्वीर देखते है जो दिनोदिन कमजोर होता जा रहा है और जो प्रतिक्रियावाद सामती शक्तियो को अपने टिके रहने का आधार बना रहा है। यहा हम एक कमजोर औद्योगिक बुर्जुआवग को देखते ह जो तानाशाही शासन का बडे ढुलमुल ढग से विरोध करके आगे बढने की महत्वाकाक्षा तो रखता है पर साथ ही वह जनशक्ति से भी भयभीत है। यहा हम एक उभरते हुए मेहनतकशवग को देखत है जो सख्या मे ता कम है लेकिन बडे पैमाने पर फैले औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे (अपेक्षाकृत अत्यत सीमित महत्वपूण केंद्रा म) जमा है और अत्यत जुझारू वगचेतना तथा सक्रियता का परिचय दे रहा है। यहा हम आबादी के एक विशाल भाग के रूप म किसाना को दखते है जो पुरातन भूमिव्यवस्था की अत्यत पिछडी स्थितियो म रह रह है जिन्ह अज्ञान और अशिक्षा की बडिया म कद रखा गया है, जिन्ह

राशा के गहन अधकार म ठेल दिया गया है पर जो कृषि के क्षेत्र मे बुनियादी रूपातरण के लिए आगे बढ रहे है।

भारत जसी सामाजिक स्थितिया वाले देश म यह स्पष्ट है कि जनतत्र का सर्वाधिक उचित स्वरूप ससदीय जनतत्र न हो बल्कि ऐसा स्वरूप हो जो जनता की स्थितियो और जीवन के काफी अनुरूप हो और मेहनतकश किसानों की ग्रामीण परिषदो को कारखाना मजदूरा की परिषदो तथा अन्य ऐसे सगठनो से जोडता हो। जनतत्र का यह स्वरूप ही सोवियत जनतत्र है। सोवियत जनतत्र आम जनता, कारखाना मजदूरा और ग्रामीण किसानो के काफी निकट है। किसी भी अन्य रूप की अपेक्षा सोवियत जनतत्र ही मजदूरो, किसाना, बुद्धिजीविया, वैज्ञानिको, तकनीशियनो और शहरी निम्न पूजीपतिवग की रचनात्मक शक्ति का उद्धार कर सकता है। समाज के इन वर्गो को अभी तक वतमान व्यवस्था म सबके कल्याण के लिए तथा नए भारत के निर्माण के सामूहिक काम म सहयोग करने के लिए अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल करने से रोका गया है।[5]

भारत के लिए और खास तौर से देश के पिछडे इलाको तथा देश के मूल निवासियो की शेष बची जातियो के लिए सोवियत सघ के मध्य एशियाई गणराज्या का अनुभव विशेष रूप से महत्वपूण है जिन्ह जारशाही के दिना म पूरी तरह राष्ट्रीय तथा सामाजिक अधीनता की स्थिति म रखा गया था। इन इलाका म विकसित औद्योगिक मजदूरवग के सहयोग से सस्कृति की अत्यत आदिम अवस्था म भी जनता को सभावनाए दिखाई गई है ताकि वह तेजी स विकास कर सके और बीच की पूजीवादी व्यवस्था के बिना वह तकनीकी और सास्कृतिक प्रगति के जरिए समाजवाद तक पहुच सके।

4 भारत राष्ट्र के समक्ष महत्वपूर्ण कार्य

समाजवाद की दिशा म बढ रहे जनवादी भारत या मजदूरो और किसाना के भारत का यह परिप्रेक्ष्य ही आधुनिक विश्व म भावी भारत की तस्वीर प्रस्तुत करता है। इस परिप्रेक्ष्य के सहारे हम भारत म समाजवाद के निमाण और अतत ऐसे भावी वगरहित समाज के निर्माण की तस्वीर देख सकते है जिसमे राष्ट्रीयता के आधार पर भेदभाव (अनिवायत स्वाधीनता और अलगाव की साकातिक स्थिति म एक देश द्वारा दूसरे देश को गुलाम बनाने की रीति खत्म करने के लिए) अतिम तौर पर समाप्त हो जाएगे और भारत सयुक्त विश्वव्यापी वगरहित समाज का एक हिस्सा बन जाएगा।

लेकिन इसका अथ यह नही कि इस लक्ष्य को एक ही कदम म प्राप्त किया जा सकता है या भारत म तत्काल उठाया जाने वाला अगला ही कदम समाजवाद है। पहला महत्वपूण काम है राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति। भारत की जनता के सामने तत्काल पूरा किया जाने वाला दूसरा काम है राष्ट्रीय स्वाधीनता पर विजय प्राप्त करना जो साम्राज्यवादी शासन को समाप्त करे और आबादी के अदर इस शासन के सामती प्रतिक्रिया-

ादियो का तख्ता पलटकर अर्थात जनतन्न के लिए सघप चलाकर पूरा किया जा सकता है।

लेकिन भारत म राष्ट्रीय मुक्ति और जनवादी क्राति का काम ब्रिटिश शासन से भारतीयो के हाथ म सत्ता का महज हस्तातरण करके और प्रभुसत्ता सोपकर नही पूरा किया जा सकता। पहली बात तो यह है कि जैसा हमने देखा है, पूण स्वाधीनता की कारगर ढग से प्राप्ति और भारत म साम्राज्यवादी प्रभुत्व की समाप्ति का काम भारत मे साम्राज्य-वाद के राजनीतिक शासन के विधिवत समापन स ही नही पूरा होता। इसके लिए भारतीय जनता के जीवन, श्रम, साधन और विकास की स्वतत्रता पर ब्रिटिश महाजनी पूजी की दमघोट पकड को छिन्नभिन्न करना होगा अर्थात विदेशी पूजी को फिलहाल दी जा रही रियायते समाप्त करनी होगी और सभी विदशी उद्योगो, चाय बागानो, कारखानो रेलो, जहाजो सिचाई कार्यों आदि का इस तरह राष्ट्रीयकरण करना होगा जो शक्तिसबधो के अनुसार राजनीतिक और कूटनीतिक दष्टि से सभव हो ताकि कज का बोझ उतारा जा सके।

दूसरी बात यह है कि जैसा हमने देखा है जनतात्रिक रूपातरण का काम कृषि क्राति से जुडा हुआ है। उसम जमीदारी प्रथा की समाप्ति होगी, भूमि का पुनर्वितरण होगा, किसानो पर से कज का बाझ उतरेगा और खेती का आधुनिकीकरण होगा। तीसरी बात यह है कि भारत म आर्थिक और सामाजिक पुर्ननिर्माण के तात्कालिक कार्यो के लिए, उद्योगीकरण और आवश्यक सास्कृतिक प्रगति को स्वतत्र भारत के एकमात्र आधार के रूप मे सभव बनाने के लिए यह जरूरी है कि स्वाधीन भारतीय राज्य क अधिकार म अथव्यवस्था के मुख्य केंद्र हो (जसाकि काग्रेस के अधिकारो के घोषणापत्र म कहा गया था) अर्थात प्रमुख उद्योगो, सेना, खनिज साधनों, रेल व्यवस्था, जल माग, जहाजरानी तथा सावजनिक परिवहन और बकिंग तथा साख के अन्य साधनो पर स्वाधीन भारतीय राज्य का नियत्रण हो।

फिर भी इन कामो से समाजवाद की स्थापना नही हो जाती है हालाकि इनसे इसकी नीव जरूर पड जाती है। जाहिर है कि भारत म जिस जनतात्रिक गणराज्य की स्थापना होगी जो राष्ट्रीय मुक्ति सग्राम का वतमान लक्ष्य है, वह अनिवायत एक नए तरह का जनतात्रिक गणराज्य होगा जो पश्चिम के धनिकतत्र साम्राज्यवादी अधजनततो से एकदम भिन्न होगा। यह एक ऐसा जनतात्रिक गणराज्य होगा जो सामतवाद और जमीदारी प्रथा की बुनियादो को समाप्त कर चुका होगा, जो राष्ट्रीय विकास के लिए अथव्यवस्था के सभी महत्वपूण केंद्रो पर अपना अधिकार कायम कर चुका होगा और जो मजदूरो तथा किसानो के सगठन और विकास के लिए खुला रास्ता प्रदान करेगा।

भारत म स्वतत्रता के लिए निर्णायक सग्राम निकट भविष्य म होने वाले हैं। स्वतत्रता

म यह सक्रमण तूफानी होगा और भारी कुरबानियो के बाद प्राप्त होगा अथवा शीघ्र गति से और सहजता से होगा, यह केवल भारतीय राष्ट्रीय आदोलन की शक्ति पर निभर नही करता यह ब्रिटिश मजदूरवग और जनतात्रिक आदोलन के सदभाव तथा सक्रिय सहयोग पर निभर करता है। सघप की चाहे जैसी भी स्थिति हो लेकिन हर हालत म यह सक्रमण ऐतिहासिक दृष्टि स निश्चित है और ब्रिटेन के मजदूरो तथा जनतात्रिक शक्तियो के लिए यही अच्छा होगा कि वे इस सचाई को समय रहते मान ले। युद्ध ने उन मसलो को महज और तज कर दिया है जो भारत म पहले स ही चरम बिंदु पर पहुच रह थे, ये मसले राष्ट्रीय मुक्ति के लिए और परिणामत सामाजिक मुक्ति के लिए चल रहे निर्णायक सघप से सबद्ध मसले ह।

इसम कोई शक नही कि भारत म जनवादी शक्तिया आगे स बढ रही ह। मजदूरो और किसानो की शक्तिया सघप के जरिए शक्ति की चेतना की, महान रचनात्मक काय की, और एक सुखद भविष्य की ओर बढ रही है। समूची दुनिया की प्रगतिशील शक्तियो और विश्व के मजदूरवग की सहानुभूति और सद्भाव भारतीय जनता के साथ है जो अपनी पूण मुक्ति के लिए ऐसे सघप मे जुटी है जिसका विश्व के भविष्य के लिए वृहद महत्व है और जिसपर तमाम आशाए टिकी हुई ह। भारत की स्वतत्रता का अथ मानव जाति की मुक्ति, समानता और एकता की दिशा म एक महान कदम है, *साथ ही यह विश्व-शाति और विश्वसमाजवाद की दिशा मे अतिम विजय के लिए उठाया गया कदम है।*

पादटिप्पणिया

1 10 जुलाई 1833 को मकाले ने भारत म ब्रिटिश शासन के वरदानो के पक्ष म और इस्ट इडिया कपनी के गुणो की प्रशसा म हाउस आफ कामस म अपने भव्य शब्दाडबरो से भरे विख्यात भाषण मे जो कुछ कहा था उसका पूरा पूरा रसास्वादन करने के लिए उस समय विद्यमान परिस्थितियो से अवगत हो लेना जरूरी है। 17 अगस्त 1833 को मकाले ने अपनी बहन को लिखा

मुझे अवश्य जीना है मैं केवल अपना कलम के बल पर जी सकता हू और किसी भी व्यक्ति के लिए यह असभव है कि वह इतना अधिक लिखे जिससे वह प्रतिष्ठित जीवन बिताने के लिए पर्याप्त पसे पा सके और साथ ही राजनीति मे भी सक्रिय रूप से भाग ले सके। मैंने कभी अपने लेखन से प्रति वप दो सौ से ज्यादा नही कमाया। मैं खुद पाच सौ से कम म आराम से नही रह सकता और तमाम सभावनाए इस बात की हैं कि मुझे अन्य कई लोगो का भी खच चलाना होगा। हमारे परिवार का भविष्य, यदि इसकी सभावना है तो, पहले के किसी भी समय से ज्यादा भयकारमय है।

अपने इसी पत्र म उन्हाने बताया है कि उनके भारत मे विधि सदस्य के पद पर नियुक्त किए जाने की सभावना है और यदि एसा सभव हो गया तो उनकी समस्या हल हो जाएगी। इस पद पर 1834 म उनकी नियुक्ति की गई

इसम मुझे प्रति वप 10 हजार पौंड वेतन मिलेगा। मुझे तमाम एसे लोगो ने जो कलकत्ता के बारे मे खूब अच्छी तरह जानते हैं और कलकत्ता के श्रेष्ठतम तबके मे तथा प्रसीडेंसी के उच्चतम पदो पर रह चुके हैं, बताया है कि मैं वहा प्रति वप 5 हजार पौंड म बडे ठाठबाट के साथ रह सकता हू और वेतन के शेप हिस्से को सूद के साथ बचा सकता हू। मैं महज 39 वप की उम्र म

जीवन की भरपूर उमग के साथ इग्लैंड वापस आ जाऊंगा और मेरे साथ 30 हजार पौंड की धनराशि होगी। इससे ज्यादा समृद्धि की मैंने कभी इच्छा भी नही की।

यह छोटा अंश जिससे साम्राज्यवाद और समूचे बुर्जुआ जीवन दर्शन के रहस्यो का पता चलता है इस महत्वपूर्ण भाषण के प्रत्येक पुनर्मुद्रण मे (खासतौर से स्कूलो के लिए तैयार किए गए संस्करण मे) परस्पर समझौता संबंधी बातचीत के प्रकटीकरण के रूप मे शामिल कर दिया जाना चाहिए। इस भाषण को आज भी भारत मे ब्रिटिश उद्देश्यो की भव्यता की आदर्श अभिव्यक्ति माना जाता है। यदि उपयुक्त अंशो को इस भाषण के साथ प्रकाशित कर दिया जाए तो खासतौर से इस तरह के अंशो के व्यक्त शब्दाडबरो का पूरा पूरा जायका मिल जाएगा

मैं श्रद्धा और उल्लास के साथ उस सम्माननीय गरीबी को देखता हू जो जबरदस्त प्रलोभनो के बीच बनाकर रखी गई ईमानदारी का सबूत है। मैं यह देखकर प्रसन्नता का अनुभव करता हू कि मेरे देशवासी, करोडो लोगो पर शासन करने के बाद पर्याप्त सपन्नता के साथ स्वदेश लौटते हैं।

2 मकाले ने ब्रिटिश शासन के बरकतो के भारत मे आने से पूर्व, 18वी सदी के भारत मे व्याप्त अराजकता और आतक की जो अतिरजित तस्वीर प्रस्तुत की है उसके समकक्ष चर्चिल का यह उद्धरण पेश किया जाता है जो उनके द्वारा 1914-18 के यूरोप के वर्णन से लिया गया है

जब सब कुछ समाप्त हो गया था तब उत्पीडन और मानवभक्षण ही दो युक्तिया थी जिनसे सभ्य वैज्ञानिक ईसाई राज्य बच सकते थे और इनकी उपयोगिता संदिग्ध थी। (विंस्टन चर्चिल दि वर्ल्ड क्राइसिस। पृष्ठ 20)

बीस वर्षों बाद उत्पीडन का लोप कर देने से कोई कल्याण नही हुआ।

3 ब्रिटिश फासिज्म ने फासिज्म ऐंड इंडिया शीर्षक से प्रकाशित कार्यक्रम की घोषणा मे, जिसकी राजनीतिक निरक्षरता से बुनियादी तथ्यो तक के बारे मे भी उसकी अज्ञानता का पता चलता है भारत मे ब्रिटिश शासन के तेजी से विनाश के लिए अपना अचूक नुस्खा पेश किया है। फासिस्ट सूरमा इस तरह की दृढ़ घोषणाओ से शुरुआत करते हैं जो पूर्वी मानस की समझ मे आए कि तत्काल या अंतत ब्रिटिश प्रभुत्व का ह्रास होने की कोई संभावना नही है, वे सांविधानिक सुधारो को मिटा देंगे, कल्याणकारी शक्ति के रूप मे बडे जमीदारो का समर्थन करेंगे, औद्योगिक विकास मे बाधा उत्पन्न करेंगे (क्योकि भारत का भविष्य मुख्यतया कृषि पर निर्भर है) और आधुनिक शिक्षा पर प्रतिबंध लगा देंगे (सामान्य तौर पर भारतीयो को पश्चिमी ढग की शिक्षा नही मिलनी चाहिए)। *इस प्रकार भारत के दमन की भरपूर शक्ति की मदद से* 19वी सदी का पुराना स्वर्ग फिर स्थापित किया जाएगा हम दोनो देशो के बीच सहज व्यापार सतुलन का विकास करेंगे ब्रेट ब्रिटेन से तैयार माल आएगा और भारत से कच्चा माल तथा खाद्य सामग्री जाएगी (मोस्ले 'फासिज्म ऐंड काटन 1934) जबकि फासिस्ट सरकार के तहत भारत पर्याप्त पूजीनिवेश के लिए उपयुक्त स्थितिया प्रस्तुत करेगा। साम्राज्यवाद की सहज भूख की बिना किसी जिम्मेदारी के अभिव्यक्ति की गई है।

4 वर्ष 1912 के लिए इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के कागजातो को देखते समय मेरी निगाह एक विधेयक पर गई जिसमे विभिन्न जातियो के लोगो के बीच सिविल विवाह की छूट के लिए अनुमति मांगी गई थी। इस विधेयक को श्री भूपेंद्रनाथ बसु ने पेश किया था। ऐसा लगता है कि इस बिल मे इससे ज्यादा कुछ नहीं कहा गया था कि लोगो को बिना यह घोषित किए कि वे भारत के किसी ज्ञात धर्म के अनुयायी नही है 1872 के विशेष विवाह अधिनियम (जो संभवत सिविल विवाह की छूट देता है) का लाभ उठाने की छूट मिलनी चाहिए। इस बिल पर बहस मे एक अपवाद छोड़ केवल भारतीय सदस्यो ने ही भाग लिया। यह अपवाद थे गृह सदस्य जिन्होंने उसके से ऐलान किया कि जब तक विधेयक के प्रस्तावक यह न साबित कर दें कि इस परिवर्तन के पक्ष मे विशाल जनमत है तब तक सरकार इसका विरोध करेगी। श्री गोखले ने इसी नीति

इस विधेयक को चयन समिति म भेज दिया जाए जिसम सरकारी सदस्यो का बहुमत हे लेकिन उनकी दलील अनसुनी कर दी गई। जवाब देने के बाद प्रस्तावक का दस अन्य सदस्यो ने समर्थन किया। उसके खिलाफ बहुमत को देखकर गवर्नर जनरल और उनकी कौंसिल ने ब्रिटिश अधिकारियो के समूचे जत्थे को आदेश दिया कि वे सदन मे जाए और विधेयक को पारित न होने दें

इन विषयो पर सरकार का रुख समाजसुधारको के सामने बाधाए उपस्थित करना है जो बडी दुखद स्थिति है। (लायनेल कर्टिस लेटर्स ट दि पीपुल्स आफ इंडिया आन रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट', 1918 पृष्ठ 140-42)

इसके बाद एक संशोधनकारी कानून पारित हुआ है लेकिन आज भी कोई सामान्य सिविल मरिज एक्ट नही है (देखें नेहरू की 'आटोबायग्राफी' पृष्ठ 451 जिसम उन कठिनाइयो का जिक्र किया गया है जो आज भी आबादी के विभिन्न भागों के बीच कृत्रिम अवरोधो का काम करती हैं)। एक अंगरेज साम्राज्यवादी की इस टिप्पणी के साथ नेहरू क अपने वक्तव्य की तुलना की जा सकती है

समाजसुधारक की दृष्टि स देखें तो आधुनिककाल में स्थिति बदतर हुई है क्योंकि अंगरेज लोग अब दिनादिन इन बुराइयो की मौन प्राचीर का काम कर रहे हैं। ऐसा अत्यत प्रतिक्रियावादी तत्वो *क साथ उनके घनिष्ठ सबध क कारण है। (नेहरू आटोबायग्राफी पृष्ठ 382)*

5 जवाहरलाल नेहरू ने 1936 म राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन म अपने अध्यक्षीय भाषण म सोवियत जनतत्र क प्रति जो सम्मान प्रकट किया वह ध्यान देने योग्य है

रूस के बारे मे वेब्स की नई पुस्तक मे प्रस्तुत ऐतिहासिक और प्रभावकारी विवरण काफी दिलचस्प हैं कि किस प्रकार सोवियत सघ का समूचा ढाचा एक विशाल और जीवत जनतांत्रिक बुनियाद पर आधारित है। रूस को पश्चिमी देशो के नमूने पर सचार जनतांत्रिक देश नही माना जाता है फिर भी हम देखते हैं कि उस देश में जनता में जनतत्र के बुनियादी तत्व जितनी बडी मात्रा म मौजूद हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। वहा 6 लाख गावो और नगरो का विशाल जनतांत्रिक सगठन है प्रत्येक की अपनी सोवियत हैं जो निरतर नीतिया तयार करने के लिए आपस मे बहस विचार विमर्श, आलोचना और एक दूसरे की सहायता करते हैं और उच्च समितियो के लिए प्रतिनिधियो का चुनाव करते हैं। इस सगठन म 18 वष स अधिक उम्र के सभी नागरिक हैं। इसके अलावा जनता का एक और विशाल सगठन है जो उत्पादन मे लगा है और नीमरा इतना ही बडा सगठन उपभोक्ताओ का है। लाखो पुरुष और महिलाए सावजनिक मामलो से सबधित बहसो म वस्तुत देश क प्रशासन मे निरतर हिस्सा ले रहे हैं। अभी तक इतिहास म जनतांत्रिक प्रक्रिया का इतना व्यावहारिक उपयोग नही देखने मे आया।

अनुक्रमणी

रजनी पाम दत्त परिचिता और मित्रा के बीच आर० पी० डी० नाम से लोकप्रिय। 1921 से लेकर मृत्युपयत लेवर मथली' के सपादक और इसी पत्र के 'नोट्स आफ दि मथ' स्तभ के लेखक।

ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी के सस्थापक सदस्य और इसकी कायकारिणी के प्रथम काग्रेस के समय स ही सदस्य। शीपस्थ मार्क्सवादी चितक और कई महत्वपूर्ण पुस्तका के लेखक। कुछ अत्यत विख्यात पुस्तकें फासिज्म ऐंड सोशल रिवाल्यूशन, 'वल्ड पालिटिक्स, 'क्राइसिस आफ ब्रिटन ऐंड ब्रिटिश इपायर, 'इटरनशनल्स। ये सभी ग्रथ पाम दत्त की सूक्ष्म मार्क्सवादी अ वपक दृष्टि के परिचायक हैं। विश्व कम्युनिस्ट आदोलन को आग बढाने म इन पुस्तका का बहुत बडा हाथ है।